Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०७९८८१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष
१
अंक
३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079881

श्रमण

079881

न नग्गचरिया न जटा न पङ्का
नानासका थण्डिलसायिका वा ।
रजोवजल्लं उक्कुटिकप्पधानं
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं ॥

जिस पुरुष की आकांक्षाए समाप्त नहीं होतीं उस मनुष्य की शुद्धि, न नंगे रहने से, न जटा धारण करने से, न पंक लपेटने से, न उपवास करने से, न खाली भूमि पर सोने से, न धूल लपेटने से और न उत्कुटिक आसन लगाने से होती है ।

—धम्मपद

वर्ष १ अंक ३

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी
बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक—श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम० ए०,
शास्त्राचार्य, वेदान्तवारिधि, न्यायतीर्थ.

इस अंक में—

१.	मृत्युञ्जय—इन्द्र एम० ए०	१
२.	अपनी बात—(सम्पादकीय)	३
३.	धर्म का पुनरुद्धार और संस्कृति का नव निर्माण—प्रो० दलसुख मालवणिया	९
४.	नाटक की परीक्षा—इन्द्र एम० ए०	१४
५.	प्रेम का अभ्यास—आचार्य विनोबा	२२
६.	अवसरवादी—	२३
७.	हार जीत—ज्ञानचन्द्र भारिल्ल	२४
८.	मानव जीवन का आधार—श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री	२५
९.	सम्यक्त्व की कसौटी—मोहन लाल मेहता सिद्धांत प्रभाकर	२८
१०.	अधरा स्वप्न—श्री ब्रह्मदेव	३०
११.	प्राचीन भारत में संस्कृतियों का संघर्ष—आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री	३३
१२.	सेवा का अर्थ—मुनि श्री विद्या विजय जी	३५
१३.	बापू मानते थे—	३९

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनीऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) **एक प्रति ।=)**

प्रकाशक—कृष्णचंन्द्राचार्य,
जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस ५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष १ जनवरी १९५० अंक ३

मृत्युञ्जय–

–इन्द्र एम० ए०

तेरा व्रत है अरे तपस्वी, जन जन का कल्याण महान् ।
जलकर गलकर अरे स्वयं तू, करता जग में सुख निर्माण ।
तू जलता प्रतिपल दीपक बन, दुनिया में दीवाली आती ।
तू गलता कन कन हिम गिरि से गंगा की धारा बह जाती ।
तू बन जाता बाष्प किन्तु फिर, क्षिति की प्यास बुझाने आता ।
भूगह्वर में मिट कर छिप कर, कुसुमों में सुगन्ध-भर जाता ।
तू कंकर बन कुट जाता है, जग करता सुख से अभियान ।
तेरा व्रत है अरे तपस्वी, जन जन का कल्याण महान् ।
अपनेपन की चिन्ता कैसी तूने जब सर्वस्व लुटाया ।
दुनिया में सुख सृष्टि रचाने जब अपना अस्तित्व मिटाया ।
फिर क्यों यशः कामना मन में, भूमा में मिल चुका अरे जब ।
एकमेव का जो रहस्य है, जीवन में भर चुका अरे जब अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख दुख की परिभाषाओं से, रहता तू सतत अनजान।
तेरा व्रत है अरे तपस्वी, जन जन का कल्याण महान्।

पाक यज्ञ में ईंधन बन कर, जब जलना है तुझे निरन्तर।
अग्नि शिखा प्रज्वलित किए जा, क्या आगे पीछे का अन्तर।
सामग्री बन चुका अरे जब, फल की व्यर्थ प्रतीक्षा कैसी।
सतत साधना ही फल है जय, अन्य ध्येय अन्वीक्षा कैसी!

सेवा तेरा चरम लक्ष्य है, मिटना है तेरा अरमान।
तेरा व्रत है अरे तपस्वी, जन जन का कल्याण महान्।

गरल स्वयं पीकर औरों को अमी बांटना है व्रत तेरा।
स्वयं धूप सहकर जगती का, ताप मिटाना है व्रत तेरा।
इच्छाएँ निज कुचल कुचल, जग का हित साधन है व्रत तेरा।
मिट कर स्वयं अरे मिटते को, जीवनदेना है व्रत तेरा।

सम्मानित करना भूतल को सह कर सब अपमान।
तेरा व्रत है अरे तपस्वी, जन जन का कल्याण महान्।

करता जा तू सुरभित जग को, सूख लता पर गया तो क्या है।
माली चुने, हार में गूंथे, और न गूंथा गया तो क्या है!
किसी महामानव के सिर पर, यदि चढ़ गया अरे तो क्या है।
यदि बिछ गया किसी के पथ में मिट्टी में मिल गया तो क्या है!

विविध रूप हैं कर्म मार्ग के करता जा निज जीवन दान।
तेरा व्रत है अरे तपस्वी, जन जन का कल्याण महान्।

प्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात—

—इन्द्र एम० ए०

बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध—

इस वर्ष के साथ बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध का अन्त हो रहा है। हमारी कामना है इसका उत्तरार्द्ध विश्व में स्थायी शान्ति और सुख लाने वाला बने। किन्तु इसके लिए पूरी तैयारी करनी होगी। यदि हम एक वर्ष त्याग और तपस्या द्वारा आत्म शुद्धि के पथ पर चलें तो सम्भव है, वह स्वर्णयुग आ सके।

विश्वव्यापी अशान्ति का बहुत बड़ा कारण अधिकारों की लड़ाई है। सर्व साधारण की यह मनोवृत्ति बन गई है कि वह अधिकारों के लिए चिन्तित रहता है, कर्तव्य के लिए नहीं। अधिकार प्राप्त करने की इच्छा बुरी नहीं है किन्तु उसका एक मात्र अमोघ उपाय कर्तव्य-पालन है। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करता जाता है उसे अधिकार अपने आप मिल जाते हैं। इनके लिए हिंसात्मक लड़ाई का आश्रय वही लेता है जो कर्तव्य की उपेक्षा करता है।

विद्यार्थी परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने पर अध्यापक या परीक्षक को दोष देता है। हड़ताल और दूसरे उपायों द्वारा ज़बर्दस्ती पास होना चाहता है। वह मानता है कि बिना परिश्रम किए ही उत्तीर्ण होना उसका अधिकार है। अपनी असफलता के लिए वह अपने को उत्तरदायी मानने के लिए तैयार नहीं है। स्त्री अपने अशान्त जीवन के लिए सारा दोष पुरुष समाज पर डालती है। इस ओर ध्यान नहीं देती कि एक माता बहिन या पत्नी के रूप में उसका जो कर्तव्य है वह उसे कहाँ तक निभा रही है। वह कहती है मैं पुरुष के साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर चलूंगी और इसका अर्थ समझती है, जो काम पुरुष करेगा वही मैं करूंगी। यदि पुरुष नेता हो तो वह भी स्टेज पर खड़ी होकर व्याख्यान देना चाहती है। यदि बोलना नहीं आता तो पुरुष को दोषी ठहराती है कि उसने सीखने का अवसर नहीं दिया। वह इस बात को भूल जाती है कि कंधे से कंधा भिड़ाने का अर्थ यही है कि वे दोनों मिलकर घर के सारे काम आपस में बाँट लेवें। जो जिस कार्य के लिए उपयुक्त हो वह उसी को सम्भाले। इसमें छोटे और बड़े का प्रश्न नहीं है। दूसरी ओर पुरुष को भी यह न समझना चाहिए कि पतिभक्ति और सदाचार का सारा जिम्मा केवल स्त्री पर है। उसे भी अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्य को पूरी तरह निभाना चाहिए। जनता कहती है, सरकार अपने कर्तव्य का पालन नहीं करती। सरकार कहती है जनता अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझती। साधु श्रावकों को दोष देते हैं और श्रावक साधुओं को।

हम अपने अधिकार और दूसरे के कर्तव्य पर ध्यान देते हैं। इसके विपरीत यदि अपने कर्तव्य और दूसरे के अधिकार पर ध्यान देने लगें तो सभी का जीवन आनन्दमय बन सकता है। बड़े बड़े दार्शनिक तथा धर्मप्रवर्तकों ने इसी बात को भिन्न भिन्न रूपों में रखा है। भगवान् महावीर ने आचारांग में कहा "—

पुरिसा! अप्पाणमेव जुज्झारि, किं ते जुज्झेण बज्झओ!"

अर्थात्—हे पुरुष! अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध कर। बाहर किससे युद्ध करता है?"

तुम्हें जो अधिकार चाहिए अपनी आत्मा से लो। तुम्हें सुख और दुख देने वाला आत्मा ही है। व्यक्ति को अपने में योग्यता प्राप्त करनी चाहिए, सम्पत्तियाँ अपने आप आ जाएंगी। हम अपने धर्मोपदेष्टा साधुवर्ग से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने जीवन तथा वाणी द्वारा भगवान् महावीर के इस सिद्धान्त का प्रचार करें। दूसरे को दोष देने की अपेक्षा आत्मनिरीक्षण और कर्तव्य पालन का पाठ सिखाने का प्रयत्न करें।

सभ्यता और संस्कृति की पहली शर्त है मिल जुल कर रहना। इसके लिए हमारा स्वभाव ही ऐसा बन जाना चाहिए कि हम अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दें, दूसरे के दोषों पर नहीं। अपनी उदारता के द्वारा दूसरे की कमी को पूरी करने का प्रयत्न करें। अपनी असफलता के लिए दूसरे पर क्रोध करना तो सांस्कृतिक दिवाला है। अध्यात्म, नीति, धर्म, राज्यतन्त्र, विज्ञान आदि विषयों पर लम्बे चौड़े ग्रन्थ रच लेने पर भी मनुष्य को तब तक सभ्य नहीं कहा जा सकता जब तक वह अपने उत्तरदायित्व को नहीं पहिचानता। कुत्ता रोटी के एक टुकड़े के लिए दूसरे कुत्ते से लड़ पड़ता है। सभ्य कहलाने वाले राष्ट्र जमीन के टुकड़े के लिए अपने पड़ोसी राष्ट्र से लड़ पड़ते हैं। इसके लिए भयङ्कर अस्त्र शस्त्रों का आविष्कार करते हैं। लाखों करोड़ों निर्दोष मनुष्यों के प्राण ले लेते हैं और उसे राष्ट्रसेवा कहकर अपने अपने पाप पर परदा डालते हैं। श्रमणसंस्कृति उस परदे को हटाकर हिंसा को उसके नग्न रूप में सबके सामने रख देना चाहती है। भगवान् महावीर ने कहा है—भाई, बन्धु, पत्नी, मित्र, जाति, राष्ट्र या अन्य किसी निमित्त से हिंसा की जाय, हिंसा तो हिंसा ही है। वह किसी प्रकार उपादेय नहीं है। यदि मानवमात्र के सामने हिंसा का असली रूप आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय और वह राष्ट्रीयता, देशभक्ति आदि के नाम से चढ़ाए जाने वाले नशे से दूर रह सके, तभी कल्याण है।

साधुसमाज में शिथिलाचार—

हमारे समाज नायक साधुसमाज में बढ़ते हुए शिथिलाचार से बड़े चिन्तित हैं। अमुक साधु ने ब्रह्मचर्य व्रत में दोष लगा लिया, अमुक के प्रेमपत्र पकड़े गए, अमुक ने गुरु आज्ञा का उल्लंघन किया, आदि घटनाएं प्रतिदिन की वस्तु बन गई हैं। इससे एक ओर आदर्श संस्था का पतन हो रहा है दूसरी ओर नवीन सन्तति में धर्म के प्रति अश्रद्धा बढ़ रही है। वह तो व्यक्ति को देखता है। हम जिसे अपने आदर्शों का प्रतीक मानकर पूजते हैं वह जब चारित्रहीन दिखाई देता है तो स्वाभाविक रूप से आदर्शों के प्रति घृणा हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में बीसवीं सदी, नवीन शिक्षा आदि को दोष देना केवल आत्मवञ्चना है।

शिथिलाचार के कारणों पर विचार करने पर हमारे सामने नीचे लिखी बातें आती हैं—

(१) अयोग्य दीक्षा—साधुओं में शिष्य लोभ इतना बढ़ा हुआ है कि वे दीक्षा देते समय किसी बात का विचार नहीं करते। जिसमें सभ्य समाज का नागरिक बनने की भी योग्यता नहीं है उसे धर्मगुरु के आसन पर बैठने योग्य मान लिया जाता है। इस विषय में जब कोई गृहस्थ आपत्ति खड़ी करता है तो साधु कहते हैं—गृहस्थों को हमारे मामले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। आश्चर्य तो यह है कि उस समय हमारे विद्वान् एवं प्रतिष्ठित साधु भी चुप्पी साध लेते हैं।

(२) दूषित चर्या—दीक्षा लेने के बाद बहुत थोड़े साधु ऐसे निकलते हैं जिनकी चर्या संयम के अनुकूल रहती है। रसनेन्द्रिय पर बिल्कुल नियन्त्रण नहीं रहता। इससे एक ओर अजीर्ण और दूसरे रोग घेरे रहते हैं, दूसरी ओर मन में विकार उत्पन्न होते हैं। भोजन के विषय में साधुसमाज के लिए कड़े नियम होने चाहिएं।

(३) अनुचित वातावरण—साधुओं का वातावरण भी ठीक नहीं रहता। दिन भर स्त्रियों का आना जाना लगा रहता है। कहने को तो झट कह दिया जाता है कि साधु चार विकथाओं का त्याग करता है किन्तु यह निश्चित है कि घण्टों पास बैठी रहने वाली स्त्रियों के साथ साधु धर्मकथा नहीं करते। कुछ साधु ऐसे मिलेंगे जिन्हें धनिक गृहस्थों की सारी रिश्तेदारियां याद हैं। स्त्रियों के साथ वार्तालाप करने के लिए यह एक अच्छा मसाला होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) घातक प्रश्रय—शिथिलाचार का सबसे बड़ा कारण है दोषियों को प्रश्रय देना। कोई भी दोषी, वह साधु हो या श्रावक, अपने आप खड़ा नहीं रह सकता। कई आचार्य तथा दूसरे बड़े साधु अपने शिष्यों में दोष देखते हुए भी आँखें बन्द कर लेते हैं। इसके लिए हमारे पास आँखों देखी घटना है:—

एक बड़ी सम्प्रदाय के आचार्य के पास उनके एक शिष्य की कुछ कुचेष्टाओं के विषय में शिकायत की गई। आचार्य महाराज उसे मानने के लिए ही तैयार न हुए। शिकायत करने वाला व्यक्ति वहाँ का अग्रणी था। जब उसने धमकी दी तो आचार्य महाराज कुछ झुके। उन्होंने साधु को चौमासी प्रायश्चित दिया अर्थात् उसकी दीक्षा बीस साल से घटकर पौने बीस साल की हो गई। गृहस्थ ने बहुत कहा कि—महाराज! ऐसे साधु को नहीं रखना चाहिए। यदि रखना ही हो तो यहाँ से रवाना कर दीजिए। यहाँ बड़ी बदनामी हो रही है।" किन्तु आचार्य श्री न माने।

एक महीने बाद उस साधु ने आचार्य श्री से शिकायत की "अमुक सेठ जी स्थानक में आते हैं और दूसरे सब साधुओं को वन्दना करके चले जाते हैं। मुझे वन्दना नहीं करते।"

आचार्य श्री ने सेठ जी से पूछा। चौमासी प्रायश्चित देने के बाद वे उसे पक्का और सच्चा साधु मानने लगे थे। इस पर सेठ जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—महाराज! मुझे आश्चर्य हो रहा है कि आप इन्हें वन्दना करने के लिए कह रहे हैं। इनके पतित कृत्यों को आँखों से देख लेने पर भी किस का सिर इनके सामने झुक सकता है? आज तक तो मैं इन्हें ही वन्दना नहीं करता था किन्तु यदि आप इनका अनुचित समर्थन करेंगे तो आपकी भी वन्दना छोड़नी पड़ेगी।

दोषी लोग सदा भले आदमियों के सहारे पर गुजर करते हैं। यदि हमारे सच्चे साधु और सद्गृहस्थ यह प्रतिज्ञा कर लेवें कि वे किसी दोषी का समर्थन नहीं करेंगे तो शिथिलाचार बहुत जल्दी मिट सकता है।

हम समाज का ध्यान पंजाब स्था० जैन सभा द्वारा कुछ शिथिलाचारी साधुओं के विरुद्ध उठाए गए कदम की ओर खींचना चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को वह रिपोर्ट पढ़नी चाहिए।

एक ओर साधु यह चाहते हैं कि उनकी गणना साधारण भिखमंगों में न हो। दूसरी ओर वे किसी प्रकार का नियन्त्रण मानने को तैयार नहीं हैं। यदि वे चाहते हैं कि उनकी प्रतिष्ठा पहले के समान बनी रहे तो उन्हें अपने चरित्र बल को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा के अवसर—

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने अपने जीवन की एक घटना सुनाई—"मैं रेलगाड़ी में जा रहा था। साथ में एक दूसरे साधु थे। वृद्धावस्था और अशक्ति के कारण मेरे लिए अधिक देर बैठे रहना कष्टदायी था। स्वामी जी (मेरे साथी) ने, मुझे ऊपर वाली सीट पर चढ़ा दिया। थोड़ी देर में नींद आ गई। गाड़ी का डब्बा काफी लंबा था। स्वामी जी को दूसरे कोने पर सोने के लिए जगह मिल गई। वे थके हुए थे। पड़ते ही गहरी नींद आ गई।

थोड़ी देर में मुझे लघुशंका प्रतीत हुई। उन दिनों दिखना बिलकुल बंद हो गया था। स्वामी जी को आवाज़ दी। किन्तु वे दूर और गहरी नींद में थे। मैं जोर जोर से स्वामी जी ! स्वामी जी ! की आवाजें लगाता रहा। यह भी कहा—मुझे पेशाब करना है।" किन्तु कोई भला आदमी मेरी सहायता के लिए न आया। इतना ही नहीं, एक ओर से हँसने की आवाज़ भी आई। मैं अपने देश के भाइयों की मनोवृत्ति पर विचार करता पड़ा रहा। एक घंटे बाद स्वामी जी की नींद खुली और मुझे पेशाब के लिए ले जाया गया।

युरोप में मैं अन्धा होने पर भी अकेला घूमा हूँ। कभी साथ में किसी आदमी को रखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जहाँ खड़ा होता वहीं May I help you ! की आवाज आती। जहाँ जाना चाहता वहाँ पहुँचा दिया जाता और Good bye के साथ हाथ पकड़ने वाला चला जाता। सहायता करने वालों में अधिकतर बालक या युवतियाँ हुआ करती थीं। जब मैं उनके साथ अपने देश के युवक और युवतियों की तुलना करता हूँ तो मन में चोट लगती है।"

हम सेवा और त्याग के बड़े बड़े उपदेश देते हैं किन्तु अवसर उपस्थित होने पर आँखें बंद करके चले जाते हैं। ऐसी हमारी आदत सी बन गई है।

एक व्यक्ति साइकल से गिर पड़ता है, हम उस पर हँस तो देते हैं किन्तु उसकी बिखरी हुई चीजों को समेटने में मदद नहीं करते, हम उसे खड़ा करके हाथ में साइकल पकड़ाना नहीं जानते। यदि कहीं दुर्घटना हो गई है तो टक्कर लगाने वाले तांगे या मोटर के मालिक को गालियाँ देकर अपना कर्तव्य पूरा कर लेते हैं। घायल को उठाकर प्राथमिक उपचार करना नहीं जानते।

स्टेशन पर एक बूढ़ा आदमी सिर पर गट्ठर लादे लड़खड़ाता हुआ चल रहा है। हम हँस तो देते हैं कि वह कुली के पैसे नहीं खरचता किन्तु थोड़ी देर के लिए उसके बोझ को हलका करना नहीं जानते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा के लिए इस प्रकार के अवसर प्रतिदिन आते रहते हैं किन्तु हम उन सब अवसरों को छोड़कर राष्ट्र सेवा और समाज सेवा करना चाहते हैं। हम तो झण्डा साथ लेकर, नारे लगाते हुए समस्त राष्ट्र की सेवा करना चाहते हैं। व्यक्ति को राष्ट्र का अंग नहीं मानते। घर में तड़फते हुए रोगी को छोड़कर सेवाधर्म पर व्याख्यान देने चले जाते हैं। पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षण एक समस्या बना हुआ है किन्तु धार्मिक मान्यताएं और क्रियाकाण्ड सिखाने के पहले बालक को सेवाभावी बनाने की आवश्यकता है। उसे सेवा में आनन्द आना चाहिए। उसकी दैनिक चर्या में यह एक नियम होना चाहिए कि वह कोई न कोई सेवा का कार्य प्रतिदिन करे।

वह हस्पताल में जाय और रोगियों की सेवा करे। स्टेशन पर जाय और मुसाफिरों को पानी पिलाए। भूले, भटके और असमर्थ यात्रियों को सहायता पहुँचाए। वह जब भी किसी को काम के बोझ से दबा हुआ या अन्य प्रकार से दुखी देखे तो उसके काम को हलका करदे। सहायता का अधिकारी पैसे वाला है या गरीब इस ओर उसका ध्यान न जाना चाहिए। लड़कियाँ अपने मुहल्ले के घरों में, जनाना हस्पतालों में तथा अन्य स्थानों में ऐसे अवसर ढूंढ सकती हैं। हमारी माताएं ओर बहिनें अपने घरों के कार्यों से निवृत्त होकर दूसरे की सेवा के लिए जा सकती हैं। धर्मस्थानों में जाकर दिन भर साधु साध्वियों के साथ गप्प मारने से यह कहीं अच्छा है।

यदि आप पढ़े लिखे हैं और छुट्टियाँ मना रहे हैं तो आफिस में जाकर किसी क्लर्क का थोड़ा सा काम बाँट लीजिए और एक बार उसे हँसा दीजिए। हस्पताल में शून्य चित्त पड़े हुए रोगियों को कोई मनोरंजक किताब सुनाइए। कचहरी में जाकर कण्ट्रोल, राशनिंग तथा अन्य सरकारी कानूनों के पचड़े में उलझे हुए भाइयों को योग्य सलाह दीजिए। अछूतों और दलितों को पढ़ाइए। उन्हें स्वास्थ्य के नियम बताइए। इस प्रकार अनेक अवसर आप अपने आप ढूंढ सकते हैं।

हम चाहते हैं, प्रत्येक नगर में इस प्रकार का एक संगठन हो जो युवकों को सेवा के लिए तैयार करे। इसी प्रकार बहिनों का भी अलग संगठन हो।

इससे समाज और देश का जीवन अधिक आनन्द और सुखमय बनाया जा सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म का पुनरुद्धार और संस्कृति का नवनिर्माण–

–प्रो० दलसुख मालवणिया

अक्सर प्रतिगामी लोग अज्ञान आम जनता के समक्ष संस्कृति और धर्म के विनाश का नारा लगा कर जननायक बनने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु शीघ्र ही उन्हें पता चलता है कि यह नारा सभी को चिरकाल तक धोखे में नहीं डाल सकता। इस का कारण यही है कि धर्म कभी नष्ट होता ही नहीं और संस्कृति कभी एक रूप रहती ही नहीं। इस बात का पता जनता को ठोकरें खाकर शीघ्र ही लग जाता है। जिसका नाश होना है, वह धर्म की आत्मा नहीं होती, वरन् धर्म का बाह्य शरीर होता है। भला, उसे तो नष्ट होना ही है। मनुष्य हज़ार प्रयत्न करे, धर्म के बाहरी रूप को वह शाश्वत नहीं बना सकता। इसके विपरीत संस्कृति की एकरूपता कभी नहीं रह सकती, उसे तो नित्य नूतन होना ही है। ऐसा न हो, तो संस्कृति–संस्कृति न रहेगी, वरन् उस की लाश होगी। अतएव जो लोग संस्कृति की रक्षा की बात करते हैं, वे संस्कृति की आत्मा की नहीं बल्कि उस की लाश की रक्षा करने की बात करते हैं। संस्कृति की रक्षा का प्रश्न उठाना ही संस्कृति के प्राण की हत्या करना है। संस्कृति की सच्ची रक्षा यदि है, तो यह है कि उस का समयानुकूल रूपान्तर करते रहना। जो प्रजा अपनी संस्कृति की रक्षा–अर्थात् उसे एक रूप रखने की बात करती है, उस प्रजा में जीवन-संस्कृति है ही नहीं, प्रत्युत मृत्यु-संस्कृति का साम्राज्य है, ऐसा मानना चाहिए।

प्राक् ऐतिहासिक काल की बात छोड़ दें। वेद काल से तो हमारी संस्कृति के विकास-क्रम का सिलसिलेवार इतिहास मिलता है। वेद-कालीन भाषा हम आज नहीं बोलते। वेद कालीन घुमक्कड़ जंगली जाति के रूप में आज हम नहीं हैं। वेद-कालीन लग्न-प्रथा आज नहीं है और न वेद-कालीन समाज-रचना या शासन-प्रणाली ही है। अब प्रतिगामी लोगों से पूछा जाय कि कौन-सी, किस काल की भारतीय संस्कृति की रक्षा वे करना चाहते हैं? क्या सरल वैदिक संस्कृति की, या यज्ञ और आडम्बर-पूर्ण ब्राह्मण-संस्कृति की, या ज्ञान और तपःप्रधान औपनिषद् आत्म-संस्कृति की, या सर्वधर्मसहिष्णु मौर्यकालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति की या इहलौकिक जीवन में उल्लास और उत्साह देने वाली गुप्तों की संस्कृति की, या मध्यकालीन पतित संस्कृति की, या अंगरेजी हुकूमत की गुलाम भारतीय संस्कृति की ? उत्तर यही मिलेगा कि हिन्दू-कोड-बिल पास कर के, हरिजन-मंदिर प्रवेशका समर्थन करके या ऐसी ही मानव-संस्कृति के अनुकूल कार्यों द्वारा भारतीय संस्कृति का नाश हो रहा है। भारतीय संस्कृति से क्या अभिप्रेत है, इसका स्पष्टीकरण वे नहीं करते । किन्तु जिन कार्यों को वे संस्कृति के लिए घातक घोषित करते हैं, उनसे हम अनुमान कर सकते हैं कि प्रतिगामियों की दृष्टि में भारतीय संस्कृति क्या है।

पश्चिम की संस्कृति के साथ वेष-भूषा और भाषा आदि की दृष्टि से हमारी संस्कृति में कुछ भेद हो सकता है; किन्तु पूर्व और पश्चिम की संस्कृति में जो यह भेद किया जाता है कि भारतीय या पूर्व संस्कृति आध्यात्मिक है और पश्चिम की भौतिक, यह एक भ्रम है। इस का अन्त जितना शीघ्र हो, उतना ही हमारे लिए हितावह है। ऐसा होने पर ही हम मानव-संस्कृति की एकता को शीघ्र पहचान सकेंगे, संस्कृति के ये कृत्रिम भेद करना छोड़ देंगे और समझने लगेंगे कि संस्कृति-महानद का प्रवाह एक है, जो मानव-संस्कृति है, उसी के निर्झर के रूप से तथा कथित दैशिक और कालिक नाना संस्कृति-प्रवाह बह रहे हैं। उस महानद का जीवन इसी में है कि उस में नया नया पानी आता रहे और ऐसा होने पर छोटे-छोटे झरनों का जीवन टिकता है। महानद में से—मानव-संस्कृति में से—प्रेरणा लेना यदि कोई संस्कृति छोड़ दे, तो वह जीवित नहीं रह सकती।

धर्म की आत्मा या स्वरूप अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—निर्मम भाव—है। वस्तुतः ये सभी अहिंसा को सिद्ध करने के लिए ही उसी के नाना रूप हैं। क्या कोई इसका विनाश—सर्वथा विनाश—अपने जीवन में कर सकता है ? संसार के विभिन्न धर्मों की ओर ध्यान दिया जाय, तो यही सार्वभौम व्रत सभी धर्मों के मौलिक सिद्धान्त हैं। धर्मों के यावत् विधि-निषेधों की ओर ध्यान दिया जाय, तब भी किसी धर्म में हिंसा के लिए हिंसादि का विधान नहीं है। संसार के सभी धर्म इन्हीं सार्वभौम व्रतों के प्रचारार्थ उत्पन्न हुए हैं और तत्कालीन तथा तद्देशीय जन-समाज की शक्ति-अशक्ति के अनुसार उन्हीं सार्वभौम धर्मों की साधना की ओर अग्रसर हुए हैं। यही कारण है कि मौलिक धर्मों की एकता रहने पर भी देश-काल के भेद से आचरण-भेद हो गया है। यह ध्यान में रहे कि आचरण धर्मके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए है, स्वयं धर्म नहीं है। किन्तु मनुष्य अपने संकुचित विचारों के कारण आचरणों को ही धर्म मानने लगा और आचरण-भेद देखकर परस्पर अधार्मिकता का आरोप करने लगा। वहीं से धर्म, सम्प्रदाय का रूप ले लेता है और मनुष्य जो धर्म नहीं है, धर्मका शरीर है, उसे ही धर्म मानने लगता है। तब वह धार्मिक नहीं, वरन् साम्प्रदायिक बनता है। जब प्रगतिशील लोग सम्प्रदाय के नाश करने की बात करते हैं, तब उसे यह लगता है कि ये धर्म के नाश की बात करते हैं। ऐसे ही समय में प्रतिगामी लोग धर्म-नाश का नारा बुलंद करते हैं और आम जनता को थोड़े समय के लिए भ्रम में डाल देते हैं। किन्तु जनता का यह भ्रम चिरकाल तक नहीं रहता। वह शीघ्र ही सांप्रदायिक तथ्यों को मौलिक धर्म से भिन्न समझने लगती है। यही क्रम इतिहास में कई बार घटित हुआ है। गांधीजी ने जैसे ही सांप्रदायिक धर्म के ढकोसले को नष्ट करने का प्रयत्न किया कि तुरन्त ही प्रतिगामियों द्वारा धर्म-नाश का नारा उठाया गया जो आज तक बुलंद है। गांधीजी की मृत्यु के समय उसे काफी वेग मिला था, किन्तु उनकी मृत्यु ने जनता को सचेत कर दिया कि धर्म का चोला पहन कर सांप्रदायिकता क्या नहीं कर सकती। आम जनता अपने सांप्रदायिक रुख के विषय में सोचने लगी और उसके प्रति घृणा उत्पन्न हुई। ऐसा लगने लगा कि गांधीजी की मृत्यु से भारतवर्ष से सांप्रदायिकता उठ जायगी; किन्तु किसी अच्छे संस्कार को टिकाए रखना कठिन है। जनता घटना-क्रम को शीघ्र ही भूल जाती है और फिर आज वही सांप्रदायिकता अपना नंगा नाच दिखाने के लिए प्रस्तुत है।

संस्कृति का इतिहास देखा जाय, तो यही स्पष्ट होता है कि जब तक वह परिवर्त्तनशील प्रवाह के रूप में प्रगतिशील है, तब तक वह 'संस्कृति' नाम को सार्थक करती है। किन्तु जैसे ही प्रवाह की गति रुक जाती है, परिवर्त्तन रुक जाता है, प्रगति का अवरोध हो जाता है, तब वह संस्कृति-नाम के योग्य नहीं रहती; बल्कि वह घातक रूढियों का रूप धारण कर लेती है। और रूढियाँ मानव-जाति को संस्कृत करने के बजाय विकृत और रोगग्रस्त मानसवाली बना देती हैं।

जो लोग आज धर्म और संस्कृति के नाश का नारा लगाते हैं उनसे पूछा जाय कि धर्म और संस्कृति वे किसे कहते हैं। धर्म तथा संस्कृति के नाम से उनके समक्ष सांप्रदायिक क्रिया-कलाप, बुद्धिहीन मान्यताएँ और जड़ रूढ़ियाँ हैं। यदि विश्लेषण करके उन्हें बताया जाय कि तुम जिसे धर्म या संस्कृति कहते हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह तो सनातनधर्म या संस्कृति नहीं है, वरन् संयोगवश किसी समय में किसी के द्वारा चलाई हुई कोई विधि या संस्कार-मात्र है; तब क्षण-भर के लिए वे विचार में पड़ जाते हैं। मनुष्य जब गहराई से सोचता है, तब तथ्य पाने में कठिनाई नहीं होती। किन्तु हमारे आचार्यों और धर्मगुरुओं ने सोचने का भार अपने ही पास रखा है। जनता को तो सोचने की आवश्यकता बताई ही नहीं जाती। उसके लिए तो श्रद्धा का मार्ग ही एकमात्र धर्माचरण बताया गया है। यही कारण है कि सुधारकों का मार्ग सरल भी है और कठिन भी। सरल इसलिए कि जिसने किसी बात को विवेक से ग्रहण नहीं किया होता है, उसे उसको छोड़ने में देरी नहीं लगती--यदि धैर्य से तर्क पूर्वक समझाने का ठीक प्रयत्न किया जाय; और कठिन इसलिए कि श्रद्धालु जीव दूसरी बात सुनना ही नहीं चाहते, तो यह निश्चित है कि धर्म के नवनिर्माण की नहीं, किन्तु पुनरुद्धार करने की सतत आवश्यकता रहती है और संस्कृति के पुनरुद्धार की नहीं किन्तु नव निर्माण की।

तब प्रश्न उठता है कि धर्म का पुनरुद्धार कैसे हो? इसका सरल उत्तर तो इतना ही है धर्मांधी सांप्रदायिकता का नाश करके। फिर भी प्रश्न उठता है सांप्रदायिकता का नाश कैसे हो? क्या सभी एक ही देव की उपासना करने लग जायँ? यह तो संभव नहीं दीखता। तब सांप्रदायिकता का नाश कैसे हो? इसका एक ही रास्ता है, और वह है सर्वधर्म-सहिष्णुताका। सभी अपने इष्टदेव की पूजा करें, इसमें विवाद नहीं होना चाहिए। बुद्धिपूर्वक गृहीत या विरासत के धर्मानुसार उपास्य देवकी कोई पूजा करे, यह स्वाभाविक है। किन्तु यदि कोई यह समझे कि एक ही उपास्य देव है, अतः सभीको उसीकी शरण में आना चाहिए, तो यह सांप्रदायिकता है और उसके रहने पर धार्मिक कलह मिट नहीं सकते।

वस्तुतः उपास्य की पूजा धर्म नहीं है वरन् उसकी पूजा के द्वारा विश्व-वात्सल्य, विश्व-मैत्री और समभाव का प्रकटीकरण ही धर्म है। यदि पूजा करके भी यह ध्येय सिद्ध नहीं हुआ, तो वह पूजा पूजा नहीं, बल्कि निरर्थक जड़ क्रियाकाण्ड-मात्र है। इससे यह भी फलित होता है कि उपासना धर्म का एक अंग है, किन्तु उसीमें धर्म के अंगों की समाप्ति नहीं होती। ध्येय हमारा निश्चित है और वह है विश्व-मैत्री। यदि यह बिना पूजा या उपासना के भी सिद्ध होता है तो किसी के जीवन में उपासना या पूजा को स्थान न भी हो, तब भी वह धार्मिक हो सकता है। धर्म की इस व्याख्या का प्रचार करके ही धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उद्धार हो सकता हैं। धर्मों में गुरु-पूजा और देवोपासना को अत्यन्त गौण साधन माना गया है। अन्त में तो सभी धर्मों का एक ही उपदेश है कि 'आत्म-दीपो भव'। अतएव यदि धर्म का उद्धार करना है, साधना के ऊपर नहीं, किन्तु साध्य के ऊपर भार देना होगा। ऐसा होने पर ही सांप्रदायिक कलह मिट सकता है और जीवन में सच्चा धर्म आ सकता है।

साध्य के ऊपर भार देने का मतलब यह नहीं लिया जाना चाहिए कि धर्म साधना का प्रकार कैसा भी हो सकता है। यहीं विवेक की आवश्यकता है। जैसा साध्य हो, तदनुकुल ही साधन आवश्यक होते हैं। हमारा ध्येय-रूप धर्म यदि विश्व मैत्री है, तो हमारी साधना ऐसी ही चाहिए, जो विश्व-मैत्री को अवश्य सिद्ध कर सके। ऐसी स्थिति में हमारे धर्म-स्थान हरिजनों के लिए निषिद्ध नहीं हो सकते, अन्यथा मैत्री के बजाय घृणा भाव की ही वृद्धि होगी। हमारे जीवन में प्रत्येक प्रवृत्ति विश्व-मैत्री की निष्ठा से जागरुकता के साथ होनी चाहिए। यह देखना चाहिए कि हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति पारस्परिक प्रेम-वर्धक हो। हमारा ध्येय ध्रुव तारे के समान सतत समक्ष रहे और उसी के अनुकूल सभी व्यवहार हों। ऐसा होने पर केवल भगवान की पूजा-उपासना ही नहीं, अपितु जीवन के छोटे-बड़े सभी व्यापार धार्मिक हो जाएँगे। इस दृष्टि से एक भंगी भी, जो मल की सफाई करता है, धार्मिक प्रवृत्ति से काम लेता है। प्रवृत्ति का ऐसा विभाग करना कि अमुक तो लौकिक है और अमुक धार्मिक या जीवन का ऐसा विभाग करना कि उसका अमुक अंश व्यावहारिक या लौकिक है, और उसका दूसरा अंश धार्मिक या अलौकिक, यह जीवन और धर्म दोनों को ही नहीं समझने का परिचायक है। जीवन और प्रवृत्ति एक और अखण्ड है। उस के उक्त प्रकार के खण्ड नहीं किये जा सकते। आप का ध्येय यदि धर्म है और उस को सामने रख कर जीवन के समस्त कार्य आप करते हैं, तो वह जीवन धर्ममय है और आप की सभी प्रवृत्तियां धार्मिक हैं। इसके विपरीत यदि जीवन धर्म-विमुख है, तो पूजा पाठ आदि वस्तुएँ भी अधार्मिक हैं। धर्म के उक्त मौलिक रूप को जीवन में फिर से आविर्भूत करना ही धर्मोद्धार है, और तदनुकूल संस्कारों का निर्माण करना ही संस्कृति का नवनिर्माण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक की परीक्षा—

—इन्द्र एम०ए०

पण्डित विशाखदत्त राजगृही के प्रसिद्ध विद्वान् थे । संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के प्रखर पण्डित, साहित्य और दर्शन सभी विषयों में गहरे उतरे हुए, सफल अध्यापक और सरस कवि, वाणी और लेखनी दोनों पर पूरा अधिकार था । प्रत्येक शब्द से पाण्डित्य और प्रतिभा टपकती थी । किन्तु सरस्वती जितनी प्रसन्न थी, लक्ष्मी उतनी ही अप्रसन्न । घर पर विद्यार्थी पढ़ने आते थे किन्तु उन में सूखी भक्ति के सिवाय अधिक सेवा करने की सामर्थ्य न थी । मठाधीश अपनी गद्दी की नाक रखने के लिए कभी कभी शास्त्रार्थ में वावदूक चुन लेते और बड़े सम्मान के साथ बुलाते । पण्डित जी उस समय अपने दारिद्र्य को भूल जाते और आत्माभिमान के साथ जम कर बैठते । समस्त समाज की दृष्टि उनकी ओर घूम जाती । जब प्रत्येक वाक्य के साथ सदस्यों के मुंह से साधुवाद निकलता तो उन्हें घर का कोई भान न रहता । किन्तु शास्त्रार्थ समाप्त होने पर दक्षिणा लेकर जब घर लौटते तो पण्डितानी की लिस्ट देख कर चौंक उठते । उन्हें पता चलता कि उस दक्षिणा से तो दो सप्ताह भी निर्वाह न होगा । अभाव अपना मुंह बाए खड़ा दिखाई देता । दूसरी ओर से कानों में पड़ता कि वे जिस महन्त के वावदूक बने थे, चारों ओर उसकी विजय के ढोल पीटे जा रहे हैं और उसके चरणों में बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ चढ़ रही हैं । पण्डित जी की समझ में न आता कि वह किस पाप का फल है जिससे वे अपने परिश्रम और प्रतिभा का फल स्वयं नहीं भोग सकते । उनकी विद्वत्ता का मूल्य महन्त को क्यों मिल रहा है ? स्वयं पण्डितानी और तीन बच्चों की उदरपूर्ति करना पंडित जी के लिए बहुत बड़ी समस्या थी । वे त्याग और मोक्ष का उपदेश घण्टों दे सकते थे, दर्शनशास्त्र की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझा सकते थे, कुबेर के खज़ाने की सूची तैयार कर सकते थे किन्तु पाँच प्राणियों के पेट की गुत्थी को सुलझाना पहुँच के बाहर था ।

प्रातः होने पर पण्डित जी जिस बात से बहुत अधिक बचना चाहते थे वह था पण्डितानी का साक्षात्कार । उन्हें भय होता था कि आटे दाल का प्रश्न न खड़ा हो जाय । किन्तु भयभीत होने मात्र से मुक्ति नहीं मिला करती ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुस्थिति का सामना करना ही पड़ता है। जब पण्डितानी उदास हो कर कहती कि आज आटा खत्म हो गया है, दाल भी एक दिन से अधिक न चलेगी तो वे मन ही मन कुढ़ कर रह जाते। शास्त्रार्थों में अप्रतिहत बहने वाली उन की वाग्धारा यहाँ सूख जाती। प्रतिभा कुण्ठित हो जाती। तेज मन्द पड़ जाता। यह पराजय बहुत अखरती किन्तु कोई मार्ग न सूझता।

घर में एक छोटी सी कोठड़ी थी। उस के द्वार पर घास का छप्पर था। छोटे से अहाते के चारों ओर कांटों की बाड़ थी। पण्डित जी अपनी कुटिया से सन्तुष्ट थे, उन्हें महलों की चाह न थी किन्तु जब बच्चों का कोलाहल और उन्हें पीटती हुई पण्डितानी का कर्कश स्वर कानों में पड़ता तो विद्या की उपासना और विश्राम दोनों असम्भव हो जाते। उस समय उन के मन में खीझ उठती। कभी तो वह पण्डितानी पर उतरती, कभी बच्चों पर और कभी अपने पर।

तत्त्वचिन्तन और कविता के लिए पण्डित जी के पास एक ही समय था। रात को जब सब बच्चे सो जाते तो वे कोठरी के एक कोने में दिया जलाकर बैठते। बड़ी रात तक अध्ययन तथा लेखन में लगे रहते। दिन भर के अशान्त वातावरण से क्षुब्ध मस्तिष्क और उत्तप्त हृदय को छोड़ कर वे कल्पना के मधुर जगत् में विचरण करने लगते। जहाँ उन्हें सब कुछ परिपूर्ण और अपने मन के अनुकूल मिलता। वे भूल जाते कि फटी हुई साड़ी लपेटे, दिन भर के कामों और कोलाहल से परेशान, थक कर लेटी हुई उस ब्राह्मणी के साथ भी उनका कोई सम्बन्ध है जो वर्षों के लिहाज़ से युवती होने पर भी बुढ़ापे को निमन्त्रित कर चुकी है। उन की कल्पित नायिका तो नख से लेकर शिखा तक अनिन्द्य सुन्दरी, सतत तरुणी और कौशेय से आवृत होती थी। उन्हें इस बात का भी ध्यान न रहता कि फटी हुई चटाई पर सोए हुए छोटी छोटी बातों के लिए तरसने वाले ये भोले शिशु मेरी ही सन्तान हैं और इन के भरण पोषण तथा सुख सुविधा का उत्तरदायित्व मुझ पर है।

जीवन के रेगिस्तान में कल्पना वह है जो प्यासे हरिण को दौड़ते रहने के लिए प्रेरित करती है। लोग कहते हैं, मरीचिका धोखा है। किन्तु क्या उस में प्रगति के लिए प्रेरणा विद्यमान नहीं है? दौड़ते रहने का नाम जीवन है, उस में फल प्राप्ति का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। सत्य और मिथ्या का आधार फल प्राप्ति नहीं है। उन का आधार है जीवन के लिए प्रेरणा। जिस में जितनी अधिक जीवन के लिए प्रेरणा है वह उतना ही सत्य है। निठल्ले बैठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने का अर्थ है मृत्यु को समय से पहले स्वीकार कर लेना। दौड़ते दौड़ते प्राण देने का अर्थ है जीवन के प्रत्येक सांस को उपयोग में ले आना। इसी का नाम सफलता है। पण्डित जी उस कल्पना जगत् में तब तक विचरते रहते जब तक निद्रा पूरी तरह अभिभूत न कर लेती।

एक दिन पण्डितानी ने कहा—"अपने नगर के राजकुमार अभयसिंह बड़े दानी हैं। पण्डितों और कवियों का आदर करते हैं। आप उनके पास जाइए।"

विशाखदत्त को पाडित्य का बड़ा गर्व था। किसी के सामने हाथ पसारना आत्म सम्मान के विपरीत मालूम पड़ता था किन्तु लाचारी थी। पण्डितानी के आग्रह से वे राजकुमार के पास पहुँचे और भोजपत्र पर लिखा हुआ एक श्लोक अर्पित किया। उसमें लिखा था—

"उमंग से बीज बोया, पेड़ उग आया किन्तु जीवन भर एक भी फल नहीं लगा। जिसे दारिद्रय रूपी लू झुलस डालती हो उसके लिए बेचारा किसान क्या करे?"

श्लोक पढ़ कर कुमार पण्डित का दुःख समझ गया। उसने पूछा—"पण्डित जी! आप की क्या सेवा की जाय"

विशाखदत्त ने कहा—"विद्या प्राप्त करनें में मैंने बहुत परिश्रम किया है। अपने पाण्डित्य का मुझे अभिमान है। इस के लिए मेरा सर्वत्र आदर होता है। किन्तु मेरे पास न तो घर है जिसमें शान्तिपूर्वक रह सकूं और न पाँच प्राणियों का पेट भरने का साधन। आप यह स्वयं जान सकते हैं कि मेरी दरिद्रता का निवारण कैसे हो सकता है।"

"अच्छा पण्डित जी! कोई नई रचना लाइए। यदि मुझे पसन्द आ गई तो एक लाख सुवर्ण मुद्राएं पारितोषिक मिलेगा।"

"जय हो राजकुमार की"। पण्डित जी ने पुलकित होते हुए कहा। "मैं अवश्य नई रचना लाऊँगा। आप को उससे प्रसन्नता होगी।"

यह कह कर प्रसन्न होते हुए वे अपने घर चले गए।

(२)

दूसरे दिन पण्डित विशाखदत्त ने एक नाटक लिखना प्रारम्भ किया। किन्तु जहाँ कल्पना के तन्तु निकलें और टूट जायें ऐसी स्थिति में सारा वस्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे बुना जा सकता है ? न तो घर में शान्ति थी और न आजीविका के लिए निश्चिन्तता । न रात को निद्रा का ठिकाना था न दिन को विश्राम । पण्डित जी बड़े संकट में पड़ गए । प्रत्येक समय बेचैन रहने लगे । कभी कभी इतने उद्विग्न हो उठते कि गृहिणी के साथ लड़ पड़ते । वे कहते—"वास्तव में मुझे दरिद्र बनाने वाली तुम्हीं हो । तुम्हारे कारण मेरी शक्ति रुकी हुई है । प्रतिभा कुण्ठित हो रही है । मैं घर से बाहर जब पण्डितों में जा कर बैठता हूँ तो परम शान्ति का अनुभव करता हूँ । जब घर में आता हूँ तो एक क्षण भी शान्ति नहीं मिलती । दरिद्रता दूर करने के लिए राजकुमार ने जो उपाय बताया है उसे भी नहीं करने पाता ।"

इस प्रकार व्याकुल होकर वे अपने पोथी पाने लेकर नगर के बाहर निकल जाते और किसी शान्त उपवन में बैठ कर नाटक लिखते । दरिद्रता दूर करने का अनुष्ठान करते ।

उन्हें संसार के द्वन्द्वों का एक साथ अनुभव हो रहा था । एक ओर घर का कोलाहल और अशान्ति थी, दूसरी ओर वन का एकान्त तथा स्तब्धता । एक ओर दरिद्रता का कांटा चुभ रहा था दूसरी ओर साहित्यरचना का सात्विक आनन्द । एक ओर पेट की क्षुधा थी, दूसरी ओर चित्त की तृप्ति । इस प्रकार द्वन्द्वों का अनुभव करते हुए उन्होंने रचना पूर्ण की, उसे लेकर कुमार के पास पहुँचे ।

कुमार ने आदर से बुलाया, बैठने के लिए आसन दिया । पूछा—"कहिए पण्डित जी ! आप की रचना कैसी है ? गद्य, पद्य या चम्पू ?"

"मैंने एक नाटक लिखा है ।" पण्डित जी ने उत्तर दिया ।

"नाटक रचा है ? बड़ी अच्छी बात है ।" कुमार ने आनन्द प्रकट करते हुए कहा "किन्तु पण्डित जी ! "कुमार ने फिर कहना प्रारम्भ किया । "नाटक का आनन्द तो केवल सुन कर नहीं लिया जा सकता। उस का नाटकगृह में प्रयोग होना चाहिए । तभी देख कर उस का मूल्यांकन हो सकेगा ।"

"जैसी आप की इच्छा ! विशाखदत्त ने उत्तर दिया । "आप प्रयोग की व्यवस्था कर दीजिए । उसे देख लेने पर यदि आप को सन्तोष हो तभी पारितोषिक दीजिएगा ।" पण्डित जी को अपनी रचना पर पूरा भरोसा था ।

नाटक की पाण्डुलिपि राजकुमार के पास छोड़ कर वे घर की ओर रवाना हुए । चित्त में यह आनन्द था कि उन की कृति का अभिनय होगा और बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े विद्वान् पण्डित देखेंगे। विद्वान् को तब विशेष आनन्द होता है जब उस की रचना अधिकारी विद्वानों द्वारा जाँची जाती है।

घर पहुँचा तो पण्डितानी आशा लगाए बैठी थी। विशाखदत्त को खाली हाथ देख कर उस ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। पण्डित जी का सारा आनन्द हवा हो गया। पण्डितानी का निःश्वास तीर के समान कलेजे में चुभ गया। ऐसा मालूम पड़ा जैसे वे बहुत थक गए हों। सीधे कोठरी में जाकर पड़ गए। सारे शरीर से पसीना बहने लगा।

राजकुमार ने राजमहल के साथ लगे हुए राजकीय नाटचगृह में अभिनय की व्यवस्था कर नाटचाचार्य शार्ङ्गपाणि को सूत्रधार बनाया। दूसरे पात्रों के लिए नगर की रंगशालाओं में से, नर्तकियों तथा वारांगनाओं में से तथा राजसेवकों में से चुनाव करने की आज्ञा दी।

(३)

अभिनय की सारी तैयारियां हो गईं। निश्चित दिन प्रयोग प्रारम्भ हुआ। नाटक देखने के लिए राजकुटुम्ब, सभी राजकुमार, नगर के सेठ, राज-कर्मचारी, पण्डित, आचार्य कवि, कलाकार तथा दूसरे नागरिकों से प्रेक्षागृह भर गया। पण्डित विशाखदत्त भी राजकुमार के पास ही बैठे थे।

नाटक का नाम था 'निर्वेद'। नमिराज का चरित्र कथावस्तु था। तीन अंक थे। पहले अंकमें नमिराजा का हाथी हस्तिशाला से निकल भागा और चन्द्रयश राजा की सीमा में पहुँच गया। चन्द्रयश ने उसे पकड़ कर अपनी हस्तिशाला में बन्द कर दिया। परिणामस्वरूप दोनों में युद्ध हुआ। इस प्रकार पहले अंक में वीररस प्रधान था।

दूसरे अंक में चन्द्रयश की माँ साध्वी मदनरेखा युद्ध को रोकना चाहती है। वह दोनों को समझाती है। अन्त में नमिराज को यह पता चलता है कि मदनरेखा दोनों की माँ है। वह अपने बड़े भाई चन्द्रयश से प्रेमपूर्वक मिलता है। इस में शान्त और करुणा का सम्मिश्रण था।

इसके बाद तीसरा अंक प्रारम्भ होता है। नमिराजा के शरीर में दाह ज्वर उत्पन्न होता है। राजा व्याकुल हो कर शय्या में करवटें बदलता है किन्तु चैन नहीं पड़ता। वह पुकार रहा है—"मुझे ठण्डे पानी में डुबा दो। मेरे लिए हिमालय का शिखर तोड़ लाओ। कितनी जलन हो रही है! वैद्यों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुलाओ ! यदि वे मेरे दाह को शान्त न कर सकें तो उन के नाक कान काट कर नगर से बाहर निकाल दो ।"

इतने मे राजवैद्य आता है, राजा के सारे शरीर पर चन्दन पोतने के लिए कहता है । तुरन्त सैकड़ों दासियाँ और रानियाँ चन्दन घिसने लगती हैं । चन्दन के भरे हुए कटोरे आने लगते हैं । और लेप प्रारम्भ हो जाता है ।

"किन्तु इतनी खनखनाहट क्यों हो रही है ? यह कोलाहल तो मेरे कानों को फाड़े डालता है ?" राजा ने घबड़ा कर कहा ।

रानियों के हाथों में चूड़ियाँ थी । चन्दन घिसते समय उन्हीं की झनझनाहट हो रही थी । राजा यदि स्वस्थ होता तो सम्भवतः उसी आवाज़ को सुन कर प्रसन्न हो उठता । उस में रस लेता । किन्तु इस समय वही मधुर झंकार कर्ण ज्वर उत्पन्न कर रही थी । सुन कर सिर फटा जा रहा था । चन्दन के लेप से कुछ शान्ति मिल रही थी किन्तु चूड़ियों की आवाज़ नई अशान्ति उत्पन्न कर रही थी । राजा ने आकुल हो कर कहा—यह कोलाहल मेरे कानों में भयंकर पीड़ा उत्पन्न कर रहा है । या तो इसे बन्द कर दो या मेरे कानों में कोई ऐसी चीज़ डाल दो जिससे यह सुनाई न पड़े ।

रानियों ने सौभाग्य के चिन्ह् स्वरूप एक एक चूड़ी हाथ में रहने दी और बाकी चूड़ियों को उतार दिया । आवाज़ शान्त हो गई । राजा को कुछ चैन पड़ा ।

उसने पास ही खड़े सेवक से पूछा—क्या चन्दन घिसने का काम समाप्त हो गया ?

सेवक ने उत्तर दिया—नहीं महाराज ! चन्दन तो अब भी घिसा जा रहा है ।

तो आवाज़ कैसे बन्द हो गई ?

सेवक ने बताया—रानियों ने एक एक चूड़ी हाथ में रख कर बाकी सब उतार दी हैं । आवाज़ चूड़ियों की परस्पर रगड़ से होती थी । अब बन्द हो गई ।

"ओह ! मैं अब समझा !" राजा ने इस तरह कहा जैसे कोई भूली वस्तु मिल गई हो । "जहाँ दो होते हैं वहीं संघर्ष अशान्ति तथा द्वन्द्व खड़े होते हैं । जहाँ व्यक्ति अकेला हो वहाँ कोई अशान्ति नहीं होती ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्दन के लेप से राजा के शरीर में काफी शान्ति हो गई थी। जीवन रहस्य की इस अनुभूति ने उसे नया बल प्रदान कर दिया। वह शय्या से उठ बैठा और अपने ही आप कहने लगा—

हे मानव ! तू शरीर और आत्मा रूप दो तत्त्वों से रचा गया है। जहाँ दो हैं वहाँ सदा भय है। वहाँ संघर्ष और अशान्ति रहते ही हैं। इसी संघर्ष के कारण प्राणी संसार में भटकते हैं। यदि तू चिर शान्ति प्राप्त करना चाहता है तो अकेला हो जा।

राजा अशान्ति के कारण को समझ लेता है और गार्हस्थ्य का त्याग करके मुनिव्रत अंगीकार करने के लिए तैयार होता हैं। कंठ, बाहु, कटि, अंगुली आदि अंगों पर चमकते हुए अलङ्कारों को उतारने लगता है। मन्त्री, रानियाँ, पार्श्वचर तथा अन्य सेवक आश्चर्य में पड़ जाते हैं। नगर में बात फैलती है और हाहाकार मच जाता है। नमिराजा सर्वप्रिय था, इस लिए प्रजा अत्यन्त दुखी हो उठती है।

उसी समय एक ब्राह्मण आता है और राजा से प्रार्थना करता है—राजन् ! आपके संसारत्याग की बात सुनकर सारी मिथिला में हाहाकार मच गया है। आप ज़रा देखिए। तो सही ! ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपका महल और अन्तःपुर जल उठे हों।

नमि ने उत्तर दिया—न तो महल मेरे हैं और न अन्तःपुर मेरा है, मिथिला के जलने से मुझे क्या ! मैं तो अकेला रहने में ही सुख मानता हूं। अन्तःपुर तथा प्रजाजन के दुख का कारण आसक्ति है, मोह है। इस का अन्त होना ही उचित है। जिस व्यक्ति ने स्त्री पुत्र आदि परिवार को छोड़ दिया उसे न कोई प्रिय है, न कोई अप्रिय है। वह तो भिक्षु हो जाता है, संसार के द्वन्द्वों से अलग होकर अकेला विचरण करता है।"

सभी को छोड़ कर नमिराजा वन की ओर चल पड़ता है। यहीं नाटक पूरा हो जाता है।

(४)

सारे प्रेक्षागृह में करुणा और वैराग्य छा गया। कुछ देर तो ऐसा वातावरण बना रहा जैसे वह नाटक न होकर सच्ची घटना हो। सभी दर्शक स्तब्ध बैठे रहे।

नाटक की रचना और उसका प्रयोग देखकर राजकुमार को बड़ी प्रसन्नता हुई। इस सुन्दर रचना के लिए विशाखदत्त को अभिनन्दन देने की इच्छा से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079881

उसने दृष्टि घुमाई। विशाखदत्त हाथ जोड़ कर खड़ा था। कुमार की दृष्टि पड़ते ही उसने कहा—कुमार अब मैं जाने की अनुमति चाहता हूं।

"ठहरिए! अपने पारितोषिक की लाख मुद्राएं तो लेते जाइए।"

कुमार ने प्रसन्न होते हुए कहा।

"बस, अब मुझे मुद्राएं नहीं चाहिएं। मैं तो अब जाने के लिए तैयार बैठा हूँ।"

विशाखदत्त ने विरक्ति के साथ कहा।

"कहाँ जाएंगे, पण्डित जी?" राजकुमार ने चकित होकर पूछा।

"जहाँ नमिराजा गया है।"

"यह आप क्या कह रहे हैं?"

"कुमार! मैं अशान्ति से तंग आ चुका हूँ। शान्ति खोज रहा हूँ। मेरे सरीखे व्यक्ति के लिए यह सच्चा मार्ग है। और कहीं शान्ति नहीं है। एकत्व में ही शान्ति है। इसी का नाम मोक्ष है।"

कुमार सुन कर स्तब्ध रह गया। उसने कहा—पण्डित जी! यह तो नाटक था। आप का ही रचा हुआ। नमिराजा यहाँ कहाँ था, वह तो नाट्याचार्य शार्ङ्गपाणि अभिनय कर रहा था।

"कुमार! मैं यह सब कुछ जानता हूँ। इस नाटक को लिखते समय मेरे मन में कई बार विरक्ति आई थी, किन्तु वह परिपाक तक न पहुँच सकी। इस अभिनय को देखकर उसका परिपाक हो गया है। मुझे जाने के लिए मार्ग दीजिए।"

प्रेक्षकों ने मार्ग छोड़ दिया। उनकी आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं। विशाखदत्त नाट्यगृह से निकल कर सीधा वन की ओर चला गया।

'जैन' में प्रकाशित निर्वेद के आधार पर

079881

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम का अभ्यास—

—आचार्य विनोबा

प्रेम का भी अभ्यास होता है। इसका भी मुहावरा करना पड़ता है। लोग मानते हैं कि क्रोध आदि विकार अनिवार्य हैं। यह मान्यता सच्ची नहीं है। ये सभी विकार मन के साथ जुड़े हुए हैं और हम मन से अलग हैं। यदि इतना भान हो जाय तो जिस प्रकार हम घड़ी को अपने हाथ में लेकर सभार सकते हैं उसी प्रकार मन को भी परख सकते हैं। उसकी कमियों को देख सकते हैं। जब आँख बिगड़ जाती है तो हम पढ़ना लिखना छोड़ कर जीवन को दूसरी बातों में लगाते हैं। क्योंकि हम यह जानते हैं कि पढ़ना जारी रखने पर आँख और बिगड़ जाएगी। हम आँख से अलग हैं, इस लिए जानते हैं कि उसका उपयोग कैसे करना चाहिए। इसी प्रकार हम मन से भी अलग हैं। इस सत्य को जान लेने पर हम मन का ठीक उपयोग कर सकते हैं। मन में जो तरंग उठते हैं उन के साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है। यदि यह विश्वास मन में जम जाय तो हम तटस्थ रह कर मन की लीला देख सकते हैं। फिर मन की त्रुटियों को दूर करने और उस की विशेषताओं का विकास करने का मार्ग मिल जाएगा।

जो व्यक्ति प्रत्येक बात में क्रोध करने लगता है वह क्रोध का अभ्यास करता है। ईर्ष्या की भी इसी प्रकार आदत पड़ जाती है। इसी प्रकार प्रेम का भी अभ्यास कर सकते हैं। उसे अपनी आदत बना सकते हैं। समाज में व्यवहार करते समय यदि हम प्रेम से बर्ताव करें तो प्रेम व्यापक बनता है और हमारे हृदय में गहरा जम जाता है। अच्छे गुणों को फैलाने का यह खास उपाय है। वे यदि अपने हृदय में गहरे उतर जायँ तो समाज में भी आसानी से फैल सकते हैं।

एक दूसरी बात भी समझ लेनी चाहिए। कोई वस्तु कितनी ही अच्छी हो उस में कोई न कोई कमी रहती ही है। इस लिए हम सभी को विवेक से काम लेना चाहिए। कैसा ही सुन्दर स्थान हो और कितना ही उत्तम शास्त्रवांचन या उपदेश हो तो भी अपनी विवेक बुद्धि से काम लेना चाहिए। उस में सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन करना चाहिए कि कौन सी वस्तु मुख्य है और कौन सी गौण। प्रकाश के साथ अन्धकार होता ही है। अकेले सफेद कागज से चित्र नहीं बनता। इस के लिए काला और सफेद दोनों रंग चाहिएं। सभी वस्तुओं का निर्माण गुण और दोष के सम्मिश्रण से होता है। उन में से हमें गुण ग्रहण कर लेने चाहिएँ और दोष छोड़ देने चाहिएँ। व्यवहार में इस प्रकार हम प्रतिदिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते रहते हैं। खेत से काट कर लाए हुए अनाज में से हम चुन चुन कर पत्थर और कंकड़ निकाल देते हैं। आटे का कचरा हम छान कर निकाल देते हैं। भोजन करते हैं, उस में से अनुकूल भाग हमारे शरीर में पचा लेते हैं और शेष भाग बाहर निकाल देते हैं। इसी प्रकार गुण और दोषों को समझ कर उन में से गुण पसन्द करने चाहिएं और अपने प्रत्येक व्यवहार तथा बर्ताव द्वारा उन्हें जीवन में उतारने का प्रयत्न करना चाहिए।

अवसरवादी—

एक सड़क थी। उस पर कंकड़ कुटे हुए थे। पहिए की रगड़ से एक कंकड़ उखड़ गया। उस ने अपने आप कहा—मैं अपना जीवन स्वतन्त्र होकर बिताऊँगा। इन सब में क्यों बँधा रहूँ ?

राह चलते बालक ने उसे उठा लिया। वह कहने लगा—मेरी इच्छा शक्ति बड़ी प्रबल है। अभी मन में आया था, कहीं की सैर की जाय। बस सोचने भर की देर थी।

लड़के ने एक मकान पर फेंक दिया। वह बोला—हां, हां, मैं उड़ना चाहता था। भला, ऐसा भी कहीं हो सकता है कि मैं चाहूँ और काम न हो ?

कंकड़ खिड़की से टकराया। शीशा टूट गया। वह बोला—शैतान ! देख, तूने क्या कर दिया ?"

"अच्छा होता तुम मेरी राह से हट जाते।" कंकर ने जवाब दिया। "मैं नहीं चाहता, कोई मेरे मार्ग में अड़ा रहे। तुम अपनी करनी का फल भुगतो। प्रत्येक वस्तु मेरी सुविधा के लिए है। जानते हो ? यह मेरा विश्वास ही नहीं, सिद्धान्त है।"

वह एक कोमल बिस्तरे पर जा गिरा। कहने लगा—थक गया था। अब थोड़ी देर लेट कर विश्राम करूंगा।

नौकर ने उठाकर बाहर फेंक दिया। वह फिर उसी सड़क पर जा गिरा। अपने साथियों को बुला कर कहने लगा—

नमस्कार, भाइयो ! नमस्कार। एक महल से बुलावा आया था, किन्तु मुझे अमीरी चोंचले पसन्द नहीं आए। अपने भाइयों को देखने के लिए मन तड़फने लगा। इसलिए वापिस तुम्हारे पास चला आया।

—एक रूसी कहानी के आधार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हार.......जीत–

–ज्ञानचन्द्र शास्त्री

जीत की पहली निशानी हार है ।
प्रगति-पथ पर जो बढ़े
वे हारकर जीते सभी हैं,
दूर मंजिल-चिन्ह जो हैं
पास भी आते कभी हैं;
जो नहीं दुस्तर दिखाई दी
अरे वह जीत कैसी—
हार को कोसो नहीं, यह
मनुज पर आभार है ।
जीत की पहली निशानी हार है ।
हार के क्षण में निराशा
जीत की आशा बनेगी,
हार ही सचमुच विजय की
सरल परिभाषा बनेगी;
विजय का यदि स्तम्भ निर्मित
हो सकेगा जो कभी तो—
सत्य मानो हार ही उसका
सबल आधार है ।
जीत की पहली निशानी हार है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिल्ल

मानव जीवन का आधार—

—श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री.

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना वह एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। मानव प्रकृति का निर्माण कुछ ऐसे तत्त्वों से हुआ है कि उस का अस्तित्व समाज के अन्य व्यक्तियों के सहकार तथा सहयोग पर ही अवलम्बित है। कोई भी व्यक्ति यह चाहे कि वह अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग पका कर अपना जीवन यापन कर सकेगा, तो यह नितान्त असंभव है। वह न तो स्वयं चावल पैदा कर सकता है और न उसके सब साधन स्वयमेव जुटा सकता है। दूसरे मनुष्यों द्वारा बनाई गई वस्तुओं का उपयोग उसे करना ही पड़ेगा। एक व्यक्ति जीवन की सभी आवश्यकताओं को बिना किसी दूसरे व्यक्ति के सहयोग के पूर्ण कर सके, यह संभव ही नहीं। मानव समाज का संगठन ऐसे सिद्धान्तों पर हुआ है कि सभी व्यक्ति अपनी अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति के कार्य का दूसरे लोग लाभ उठाते हैं। समाज का व्यवहार तभी शक्य है। जिस प्रकार शरीर के विविध अंग समस्त शरीर के रक्षण के लिए अपना अपना कार्य सम्पन्न करते हैं, उसी प्रकार समाज के भिन्न भिन्न सदस्य समग्र समाज के पोषण के लिए अपने अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। इस में उपकार की वृत्ति या सहानुभूति की भावना का प्रश्न नहीं। यह तो शुद्ध कर्त्तव्य पालन है जिस के अभाव में हमारा निजी अस्तित्व भी ख़तरे में पड़ जाता है।

एक व्यक्ति समाज से दूर भाग कर जंगल में चला जाता है। परन्तु वहाँ भी जब तक वह नये समाज की रचना नहीं कर लेता, उस का रहना असंभव है। वह वहाँ पशुपक्षियों से नाता जोड़ता है, वनस्पति से मित्रता करता है, नदी, नालों और झरनों को अपना साथी बनाता है। यह सब कुछ होने पर भी उसका हृदय प्रायः दूसरे मानव साथी की खोज में तड़पने लगता है। रोबिन्सन क्रूसो एकाकी एक द्वीप में कुछ समय के लिए रह सका, तो उस का रहस्य यह था कि जहाज़ के नष्ट होने के बाद उस के पास कुछ ऐसी चीजें बच गई थीं जो अन्य मनुष्यों द्वारा निर्मित थीं और उन्हीं के सहारे वह मानव समाज से अपना संबंध क़ायम रख सका था। इस प्रकार हम देखते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य का जीवन एक दूसरे की सहायता, सहयोग और सहकार पर अवलम्बित है। अगर हम जीना चाहते हैं तो समाज के अन्य सभ्यों के प्रति अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा नहीं कर सकते। हमारा कर्त्तव्य है कि हम दूसरों के लिए उत्सर्ग और दान की भावना को विकसित करते रहें।

मानव समाज पारस्परिक दान और सहयोग पर टिका हुआ है, इस बात को हमारे धर्म शास्त्रों ने भली भांति स्पष्ट किया है। इस्लाम धर्म के पवित्र ग्रन्थों में वर्णन आता है कि जब खुदा पृथ्वी की रचना कर चुका तो वह इधर उधर डोलने लगी। उसे स्थिर रखने के लिए खुदा ने पृथ्वी पर जगह जगह पहाड़ रख दिए। तब फरिश्तों ने पूछा, "ए खुदा! क्या तुम्हारी सृष्टि में पर्वतों से बढ़ कर भी कोई मजबूत चीज है ?"

खुदा ने उत्तर दिया, "लोहा पहाड़ों की अपेक्षा मज़बूत है क्योंकि यह उन्हें फोड़ देता है।"

"क्या तुम्हारी सृष्टि में लोहे से भी मज़बूत कोई चीज़ है ?"

"हाँ, आग लोहे से मज़बूत है क्योंकि यह लोहे को पिघला देती है।"

"क्या आग से भी बढ़ कर कोई पदार्थ है ?"

"हाँ, पानी–क्योंकि यह अग्नि को भी शांत कर देता है।"

"क्या पानी से बलवान् भी कोई तत्त्व है ?"

"अवश्य, हवा–क्योंकि यह पानी को गति प्रदान करती है।"

"क्या हवा से भी अधिक दृढ़तर कोई वस्तु है ?"

"अवश्य, वह सज्जन् व्यक्ति जो दान देता है। प्रत्येक सत्कार्य दान है। अपने भाई को देख कर प्रसन्न होना, भूले भटके यात्री को ठीक रास्ता बताना, प्यासे को पानी पिलाना–ये सब कार्य दान ही हैं।"

हिन्दुओं के धर्म शास्त्रों में एक आख्यान है कि ब्रह्मा के तीनों शिष्य—देव, दानव और मानव जब शिक्षा पूर्ण कर चुके तो अन्तिम उपदेश लेने के लिए अपने गुरु के चरणों में पहुँचे। ब्रह्मा ने उस समय केवल एक अक्षर कहा। वह था 'द'। देवताओं ने इस से यह समझा कि हमारा जीवन विलासिता का है, हम दिन रात विविध भोगोपभोगों के आनन्द लूटने में ही डूबे रहते हैं, इन्द्रियों को वश में रखने या संयम की ओर हमारा कभी ध्यान ही नहीं जाता, अतः ब्रह्मा ने 'द' द्वारा हमें 'दमन' का उपदेश दिया है।

राक्षसों ने 'द' के रहस्य पर अपनी बुद्धि लड़ाई। उन्होंने सोचा कि हमारा जीवन आद्योपान्त क्रूरता से ओत प्रोत है, दूसरों पर अत्याचार करना, हिंसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना, प्राणिवध करना, धार्मिक कार्यों में विघ्न बाधाएँ उपस्थित करना हमारी प्रकृति के अंग हो गए हैं । अतः गुरुजी ने 'द' से हमें 'दया' का परामर्श दिया है और बताया है कि हम अपने व्यवहार में दया की भावना की आराधना करें।

मानव ने भी गुरु के अन्तिम उपदेश का वास्तविक रहस्य समझने का प्रयत्न किया। उसे भान हुआ कि मनुष्य जीवन का आधारभूत सिद्धान्त एक दूसरे के काम आना है, एक दूसरे की मदद करना है और इस ढंग से अपने कर्त्तव्य का पालन करना है कि एक के कार्य से सबका और सबके कार्य से एक का हित सम्पादित हो । अतः गुरुदेव ने 'द' के रहस्यपूर्ण अक्षर द्वारा मानव समाज को 'दान' का दिव्य संदेश दिया है और कहा है कि यदि जीवित रहना चाहते हो तो अपने हृदय और कार्यों में दान को स्थान दो।

जैनों के तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में जीवों का धर्म बताते हुए वाचकश्री उमास्वाति कहते हैं, "परस्परोपग्रहो जीवानाम्"। अर्थात् परस्पर सहयोग, सहकारिता या मैत्री की भावना यह जीवों का स्वभाव है। हमारा जीवन इसी आधारभत सिद्धांत पर आश्रित है । हमें चाहिए कि अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए इस भावना को मूर्त्त रूप प्रदान करें।

जब से हमारी आर्थिक व्यस्था में पूंजीवाद के विनाशकारी सिद्धांत का पदार्पण हुआ है, तब से मानव जीवन के आधार भूत उपर्युक्त नियम को ज़बर्दस्त धक्का लगा है। एक ऐसा स्वार्थी वर्ग बन गया है जो समाज को देना कुछ नहीं चाहता और समाज के परिश्रम को हड़प कर बिना स्वयं श्रम किए सुख और आनन्द की प्राप्ति चाहता है। इस वर्ग की यह कुत्सित भावना है कि वह दूसरों का शोषण करने तथा उन पर शासन करने के लिए ईश्वर की ओर से पट्टा ले कर इस पृथ्वीतल पर अवतरित हुआ है। इस वर्ग की शोषण नीति के परिणाम स्वरूप आज सर्वत्र समाज में अशांति और असन्तोष का बोल बाला है। शोषित वर्ग जागरित हो गया है और यदि पूंजीपति समय पर न चेते तो ऐसी क्रान्ति की आग भड़केगी कि उनका जीवित रहना कठिन हो जायगा। आवश्यकता इस बात की है कि मानव समाज का प्रत्येक सभ्य यह समझ ले कि समाज का अंग होने के नाते उसे अपने काम का कर्त्तव्य बुद्धि से समाज को दान करना है और समाज के दूसरे सभ्यों द्वारा किए गए कार्य से लाभान्वित होना है। व्यष्टि समाज का हित सम्पादन करे और समाज व्यष्टि का, यही दान या उत्सर्ग अथवा त्याग का महत्त्व है और यही नियम मानव जीवन की नींव है।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्यक्त्व की कसौटी–

–मोहन लाल मेहता, सिद्धान्तप्रभाकर

कई व्यक्तियों में आज कल यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि अपने से विरोधी पक्ष को तुरन्त मिथ्यात्वी या नास्तिक कह देते हैं। कोई नवयुवक या अन्य कोई सुधार-प्रेमी किसी धर्माधिकारी से वाद-विवाद करने लगता है तो उस की शंका का समाधान न कर के उस को यह कह दिया जाता है कि तुम लोग मिथ्यात्व के जाल में फँसे हुए हो। वीतराग की वाणी में शंका के लिए तनिक भी स्थान नहीं। केवली के वचन कभी मिथ्या नहीं होते। जो व्यक्ति सम्यक्त्व-धारी होता है उस के हृदय में कभी भी केवली के वचनों के प्रति अनास्था या शंका उत्पन्न नहीं होती.........इत्यादि। इस प्रकार के अधूरे प्रत्युत्तर से कभी भी शंका का निवारण नहीं होता। कौन मिथ्यात्वी है और कौन सम्यक्त्वधारी है, इस का निर्णय केवल कथनमात्र से नहीं होता अन्यथा जगत् में सभी मिथ्यात्वी हो जायंगे क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने विरोधी को मिथ्यात्वी या नास्तिक कह सकता है। सम्यक्त्व की कसौटी के लिए हमें प्रमाण का आधार लेना होगा। जो कथन या सिद्धान्त प्रमाण की दृष्टि में निर्दोष सिद्ध होगा वही सिद्धान्त वास्तविक और सच्चा माना जायगा। प्रमाण के अतिरिक्त हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं है जिस की सहायता से हम अपने पक्ष को सच्चा अर्थात् सम्यक् सिद्ध कर सकें।

अब हमें यह देखना चाहिये कि वह प्रमाण क्या है? प्रमाण का लक्षण बतलाते हुए माणिक्यनन्दी कहते हैं कि "स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्"; इसी प्रकार आचार्य हेमचन्द्र के शब्दों में "सम्यगर्थनिर्णयः प्रमाणम्" यही प्रमाण का लक्षण है। वादिदेव सूरि के कथनानुसार "स्वपरव्यवसायिज्ञानं प्रमाणम्" यही प्रमाण का स्वरूप है। इन सभी सूत्रों की विशेष आलोचना न करते हुए सामान्यरूप से इतना ही कह सकते हैं कि सम्यक् ज्ञान ही प्रमाण है। जो बात सम्यक् ज्ञान की कसौटी पर सच्ची उतरे वही प्रमाणभूत है। तात्पर्य यह है कि क्या सम्यक् है और क्या मिथ्या ह, इसका निर्णय सम्यक् ज्ञान से ही किया जा सकता है। इस प्रकार के निर्णय के अभाव में किसी को भी मिथ्यात्वी कह देना अपने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्यात्व का आरोप करना है। जब तक हम किसी सिद्धान्त को ज्ञान की कसौटी पर पूर्ण रूप से कस न लें तब तक यह कैसे कह सकते हैं कि हमारा सिद्धान्त ही सम्यक् है और हमारे विरोधी का सिद्धान्त एकान्त मिथ्या है। चाहे दूसरे का सिद्धान्त झूठा ही क्यों न हो किन्तु जब तक हम अपने सिद्धान्त को प्रमाण से सम्यक् सिद्ध नहीं कर लेते तब तक हमारी विजय नहीं हो सकती। अपने सिद्धान्त की सिद्धि ही अपनी जय है जैसा कि आचार्य हेमचन्द्र ने स्पष्टरूप से लिखा है—"स्वपक्षस्य सिद्धिर्जयः"। अपने सिद्धान्त की सिद्धि किये बिना ही किसी को मिथ्यात्वी कह देना दुर्बलता है। यह दुर्बलता ही पराजय है—"असिद्धिर्पराजयः"

कोई यह कहे कि हमारे शास्त्र तो जिनोक्त हैं—वीतराग की वाणी हैं। वे कदापि मिथ्या नहीं हो सकते। इस प्रकार का कथन तो ठीक है किन्तु इसका क्या प्रमाण कि अमुक संप्रदाय के शास्त्र तो जिनोक्त हैं और अमुक के नहीं। प्रतिपक्षी भी यही कह सकता है कि हमारे शास्त्र भी वीतरागोक्त हैं। ऐसी अवस्था में हमें पुनः प्रमाण की शरण में जाना पड़ेगा। यदि हमारे शास्त्र वास्तव में जिनोक्त हैं, ऐसे पुरुष के द्वारा निर्मित हैं जिस में तनिक भी राग-द्वेष नहीं है तो वे प्रमाण से कदापि खण्डित नहीं हो सकते। वीतराग की वाणी कदापि प्रमाण से विरुद्ध नहीं हो सकती। जो वाणी प्रमाण से खण्डित हो जाती हो वह वीतराग की वाणी नहीं हो सकती। प्रमाण से सिद्ध होने पर भी यदि कोई अपने हठ के बल पर उस को नहीं मानता तभी हम उसे मिथ्यात्वी कह सकते हैं और अपने को सम्यक्त्वी। प्रमाणसिद्ध वचन चाहे किसी के भी हों, सर्वदा ग्राह्य ही होते हैं। हठ के आधार पर प्रमाण का खंडन नहीं किया जा सकता और न किसी को कथन मात्र से ही मिथ्यात्वी बनाया जा सकता है। मिथ्यात्व और सम्यक्त्व दोनों की कसौटी प्रमाण है। जिन वचनों का युक्ति से खंडन हो जाता हो वे ही मिथ्या हैं और जिन सिद्धान्त-सूत्रों की प्रमाण से सिद्धि होती हो वे ही सम्यक् हैं। युक्ति ही सम्यक्त्व की कसौटी है जैसा कि हरिभद्र ने कहा है—

> पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
> युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधूरा स्वप्न–

–श्री ब्रह्मदेव

प्रमोद का मन आज किसी पुस्तक में नहीं लग रहा था। सिर कुछ भारी-भारी सा था। शरीर में आलस्य था। सोचने पर भी कोई कारण समझ में नहीं आया। एक अंगड़ाई ली और आराम कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। सामने दीवार पर टंगा इन्दु का चित्र एक बार पुनः देखा। वह मानो कह रहा था–"बहुत देर हो चुकी है, क्योंकि तुम्हारी आयु २३ वर्ष की हो चुकी है। सात वर्ष लगेंगे तुम्हें डाक्टरी पास करने में। तब तुम्हारी आयु ३० वर्ष की हो जायगी। तुम्हारे पास मरीज़ न होंगे, चेम्बर न होगा, पैसा न होगा, कुछ भी नहीं। बस, एक कागज का टुकड़ा होगा, जो यह प्रमाणित करेगा कि प्रमोद एक डाक्टर है! मैं एक डाक्टर की पत्नी बनने के लिए सात वर्ष तक रुक नहीं सकती।"

इन्दु यह बात उससे कितनी ही बार कर चुकी थी और यही कारण था कि प्रमोद कल मित्र की एक कपड़े की दुकान में साझा करने जा रहा था। उसने निश्चय कर लिया था–हाँ, निश्चय। दो महीने पश्चात् वह इन्दु से विवाह कर लेगा। फिर धीरे-धीरे अपना घर, बार······परन्तु इन्दु सात वर्ष तक रुक क्यों नहीं सकती?

जब से प्रमोद समझने योग्य हुआ, वह डाक्टर बनने के स्वप्न देखने लगा–एक ऐसा डाक्टर, जो लोगों के दुःख दूर करने में कोई कसर उठा न रखेगा, अमीरों से अधिक पैसा लेगा और निर्धनों का इलाज बिना मूल्य करेगा। एक आदर्श डाक्टर होगा वह और कितना आनन्द आयगा जब रोते कराहते प्राणी उसके दवा खाने से प्रसन्न और हंसते हुए निकलेंगे। परन्तु लगता है, उस का यह स्वप्न अधूरा ही रह जायगा, क्योंकि इन्दु जो नहीं मानती वह बड़ी हठीली है।

फिर ध्यान आया इन्दु का सुन्दर मुखड़ा और यौवन से इठलाती देह और साथ ही उसने अनुभव किया एक गरम निःश्वास का स्पर्श अपने गालों पर! मन में सोचा कि टहलने पर शायद तबीयत कुछ हल्की हो जाय, अतः छड़ी उठाई और निकल पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विचारों में खोया, मानसिक संघर्ष में निमग्न वह कितना चला, कुछ ध्यान नहीं रहा। इतने में सामने जो देखा, तो एक विशाल गगनचुम्बी इमारत को खड़ा पाया। उसने आंखें मलीं, परन्तु वह सात मँज़िल की इमारत वैसी-की वैसी ही रही। आश्चर्य इस बात का नहीं था कि इमारत सात मंज़िल की थी; बल्कि इस बात का कि दृष्टि जितनी ऊँची जाती थी, वहाँ तक वह इमारत दिखाई पड़ती थी। अनुमान लगाया कि प्रत्येक मंजिल कम-से-कम तीन हज़ार फीट ऊँची होगी। ऊपर से आते जब दृष्टि नीचे आकर रुकी, तो उसने देखा कि द्वार पर एक पीतवस्त्रधारी साधु खड़ा है। उस की आयु कोई सत्तर के लगभग होगी, क्योंकि बाल अपनी यात्रा पूरी कर चुके थे। रोबीली मूँछें और डेढ़ हाथ लम्बी डाढ़ी में कहीं काला बाल नाम को भी न था। यह दीर्घकाय मनुष्य गम्भीरतापूर्वक धीरे-धीरे आगे बढ़ा—मानो स्वागत करवाने आ रहा हो। समीप पहुँच कर रुका, फिर इमारत की ओर उँगली करके बोला—"इसे देखकर आश्चर्य न करो। मैं ही यहाँ देख भाल करता हूँ। आओ, मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें दिखाऊँगा कि हमें इतनी बड़ी इमारत की आवश्यकता क्यों पड़ी। यहाँ हम अधूरे स्वप्न रखते हैं—वैसे ही, जैसे चिट्ठियां रखी जाती हैं। फाइलों में प्रत्येक मनुष्य के अधूरे स्वप्न यहां एकत्र होते हैं, और जब मनुष्य मरता है, तो उसे यहाँ बन्द कर दिया जाता है। प्रत्येक के अधूरे स्वप्न, उसके नाम, शहर, देश के अनुसार रखे जाते हैं। जितने स्वप्न सत्य हो जाते हैं, उन्हें तो पृथ्वी पर ही स्थान मिल जाता है। अधूरे स्वप्नों में भी तो बहुत कुछ रहता है न, उन्हें भी तो कहीं-न-कहीं स्थान मिलना ही चाहिए।"

इतनी बातों के बाद वह प्रमोद को लेकर अन्दर पहुँचा। प्रमोद ने देखा, वहाँ दराजों की कतारें-ही-कतारें बनी हुई हैं। सब पर नम्बर, शहर तथा देशका नाम लिखा हुआ है। साधु ने एक दराज खोलकर एक हरे रंग की गोली निकाली। इस गोली ने उसके हाथ में एक हरे-भरे बाग का रूप ले लिया। वह बोला—" देखो, यह स्वप्न कल रात आया है। यह एक बारह वर्ष के लड़के का है, जो अपना जीवन अपने चाचा के बगीचे में बिताना चाहता था, परन्तु रात ही उसकी मृत्यु हो गई।"

आगे चलकर उसने एक और दराज खोला। उसके हाथ में पीली गोली आई, जिसने धीरे-धीरे सोनें की ईंट का रूप धर लिया। वह बोला—"वह बैंक के एक चपरासी का अधूरा स्वप्न है और यह एक प्रेमी का।"—उसने दूसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दराज खोलते हुए कहा। उसमें से एक सफेद और लाल रंग की गोली ने एक सुन्दरी का रूप धर लिया। "ऐसे अधूरे स्वप्नों की तो भरमार रहती है, जिनमें सुन्दर युवक अथवा युवतियाँ होती हैं। न जाने संसार वाले ऐसे स्वप्न अधूरे क्यों छोड़ देते हैं। और यह देखो, यह है हिटलर का स्वप्न।" इस बार उसने एक काले रंग की गोली निकाली, जिसमें लाल-लाल रेखाएँ थीं। काली गोली से संसार का एक अस्पष्ट सा गोलाकार बना, जिसमें कई स्थानों पर आग लगी हुई थी। पश्चात् एक हरे तथा पीले रंग की गोली धीरे-धीरे एक हरे खेत तथा गांव का धुंधला-सा चित्र बना, जिस पर एक ओर से सूर्योदय हो रहा था। "यह तुम्हारे गांधी के राम राज्य का अधूरा स्वप्न हैं।"

इसी प्रकार वह प्रमोद को एक दराज से दूसरे तक ले गया। हर दराज में एक नन्हा सा छेद था। प्रमोद के पूछने पर उसने बताया—"कभी कभी अधूरा स्वप्न फिर पूरा हो जाता है, सो उसके जाने लिए यह छेद रखा गया है।"

इसी प्रकार कुछ आगे चलकर एक गोली निकली, जिसने एक सुन्दर शिशु का रूप लिया। यह एक वेश्या का अधूरा स्वप्न था। एक के अधूरे स्वप्न में गेहूं के ढेर थे। वह भख से मरा था। इसी प्रकार जब काफी देर हो गई, तो साधु बोला—"यह देखो, यह तुम्हारा अधूरा स्वप्न भी तो आज ही आया है।"

और एक दराज खोलकर उसने अपनी हथेली पर एक गोली रख ली। प्रमोद ने देखा और देखता ही रहा। हां, यही था उसके अधूरे स्वप्न का साक्षात् रूप।

वह मुड़ा, मुड़कर दौड़ा द्वार की ओर, और ऐसा दौड़ा कि उस साधु के अन्तिम शब्द 'जरा दुनिया वालों से कह देना कि स्वप्न कम देखा करें, और जो देखें, उन्हें अधूरा न छोड़ें! पूरा करने की हिम्मत रखें, नहीं तो मेरा कार्य बहुत बढ़ जायगा।" भी नहीं सुने।

(नया समाज से)

'जो कोई पाप करता है वह अपना ही बुरा करता है। जो भला करता है अपने ही लिए करता है। जो कोई भूल करता है तो वह अपने को ही नुकसान पहुँचाने के लिए भूल करता है।'

कुरान शरीफ़ ४–११ और १७.५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत में संस्कृतियों का संघर्ष—

—आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री

इस बात को तो सभी स्वीकार करते हैं कि प्राणी का विकास भोग में नहीं वरन् त्याग में है। किन्तु त्याग के रूप भी जनता के सम्मुख विभिन्न धर्मों द्वारा इतने अधिक उपस्थित किए गए हैं कि साधारण व्यक्ति तो उनके चक्कर में पड़कर यही सोचता रह जाता कि उनमें कौनसा रूप सर्वोत्तम है और अपनी परिस्थिति के अनुसार किस रूप को ग्रहण किया जाय। फिर भी प्राचीन भारत में प्रमुख स्थान दो विचार धाराओं को मिला। एक विचार धारा यज्ञयाग के द्वारा साधक को सांसारिक सुख सामग्री सुलभ करती थी तो दूसरी विचार धारा साधक को उस सामग्री के परित्याग का उपदेश देती थी। उसका कथन है कि साधक अपने शरीर से भी ममत्व न रखता हुआ उग्र तपश्चरण द्वारा आत्म साधना करे। प्रथम संस्कृति को वैदिक संस्कृति तथा दूसरी को श्रमण संस्कृति कहा जाता था। प्राचीन भारत में यह दोनों संस्कृतियां कई सहस्र वर्ष तक साथ साथ चलती रही। उस समय अनेक ऐसे अवसर आए जब वैदिक संस्कृति ने श्रमण संस्कृति को दबा लिया अथवा श्रमण संस्कृति ने वैदिक संस्कृति को दबा लिया।

इन दोनों संस्कृतियों के संघर्ष का प्रधान कारण था वैदिक संस्कृति का हिंसावाद। प्राचीन भारत में वेदों के नाम पर हिंसामय यज्ञयाग किए जाते थे। उनमें घोड़ों, भैंसों, बकरों तथा कभी कभी मनुष्यों तक को काट कर उनके मांस द्वारा यज्ञ-कुण्ड में आहुति डाली जाती थी। श्रमण संस्कृति ने इस सिद्धान्त का प्रबल विरोध किया। जैन शास्त्रों में मिलने वाली नारद पर्वत की कथा से यह पता चलता है कि आरंभ में वैदिक लोग भी यज्ञयाग में हिंसा नहीं करते थे किन्तु पर्वत ने अपने स्वार्थ वश वेद मन्त्रों का अर्थ बदल कर हिंसात्मक कर दिया। जैन शास्त्रों में इस प्रसंग में 'अजैर्यष्टव्यम्' के रूप में एक वेद वाक्य दिया गया है, जिसमें नारद अज का अर्थ जौ तथा पर्वत अज का अर्थ बकरा करते हैं। नारदपर्वत की यह कथा वैदिक साहित्य में भी एक बदलते हुए रूप में मिलती है। गत शताब्दी में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी आर्यसमाज का उपदेश देते समय अपना मुख्य सिद्धान्त यही रखा कि "वेदों में हिंसा नहीं है तथा वेद मन्त्रों का हिंसा परक अर्थ करना अनर्थ है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद मन्त्रों में हिंसा की गुंजाइश हो या न हो किन्तु यह तथ्य है कि प्राचीन भारत में वेदों के नाम पर हिंसा की जाती थी और जैसा कि स्वर्गीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने एक व्याख्यान में कहा था "वेदों के इन हिंसामय यज्ञयागों को भारत से उठा देने का श्रेय जैनियों को प्राप्त है। उन्हों ने हिंसामय यज्ञों को बंद करके सनातन धर्म पर अपनी एक अमिट छाप लगादी है।

ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में भगवान महावीर स्वामी के समय तक यह हिंसामय यज्ञयाग बहुत कुछ बंद हो गए थे, यद्यपि इसके बाद भी पुष्पमित्र शुंग तथा सम्राट् समुद्रगुप्त जसे राजाओं ने अश्वमेधादि यज्ञ किए, किन्तु यह घटनाएं कतिपय हैं और बाद में तो ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति एक दम असम्भव हो गई।

भगवान महावीरस्वामी के समय में इन दोनों विचार धाराओं में से एक तीसरी ही धारा निकल पड़ी। उस समय साधारण जनता को भोगवाद से विरक्ति हो गई थी। उपनिषदों के उपदेशों के कारण यज्ञवाद से बहुत कुछ घृणा हो गई थी। शरीर को अत्यधिक कष्ट देने वाले तपश्चरण से जनता घबरा उठी थी अतएव उसे अतिभोग तथा अतित्याग दोनों से ही उपरति हो चली थी कि गौतम बुद्ध ने ऐसा मध्यम मार्ग बतलाया जिसमें न तो भोगों की गुंजाइश थी और न अत्यन्त कष्ट दायी तपश्चरण ही करना पड़ता था। वास्तव में बौद्धमत के शीघ्रता पूर्वक फैलने का कारण उसका राजधर्म होना उतना नहीं था जितना उसका मध्यममार्ग होना। भले ही अशोक के समय में उसका राजधर्म होने के कारण अधिक प्रचार हुआ हो, किन्तु चीन, जापान, बर्मा, स्याम, मलाया तथा लंका जैसे देशों में वह अपने मध्यममार्ग के कारण ही अधिक फैला है।

वास्तव में जैन और बौद्ध दोनों ही श्रमण संस्कृति की दो धाराएं हैं दोनों के ही साधुओं को श्रमण कहा जाता है किन्तु लोक भावना एक वस्तु है और कल्याण का वास्तविक मार्ग बिलकुल ही दूसरी वस्तु है। बौद्धमत मध्यम मार्ग होते हुए भी भारत से लुप्त हो गया जबकि जैन श्रमण संस्कृति अनेक प्रकार के आघात प्रतिघात सहती हुई आज भी भारत में अपने अस्तित्व की रक्षा किए हुए है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा का अर्थ—

—मुनि श्री विद्या विजय जी

सेवा का क्षेत्र जितना विशाल है, उतना ही विकट। इसे वही समझ सकते हैं जो इसमें रस लेते हैं। सच्ची सेवा हृदय में उमंग और त्याग की भावना के बिना शक्य नहीं। सेवा दूसरों के कल्याण, दूसरों की भलाई अथवा परोपकार के लिए नहीं, केवल स्वकल्याण के लिए, अपने कर्त्तव्य पालन के लिए एवं अपनी शक्ति के सदुपयोग के लिए ही हो सकती है। तनिक भी बदले की आशा से की गई सेवा सेवा नहीं हैं किन्तु वह तो क्रय विक्रय है। एक वस्तु देकर दूसरी लेना व्यापार नहीं तो और क्या है? कार्य के फल का आधार मनोवृत्ति है। संसार की दृष्टि में किसी कार्य का महत्व कितना भी हो, किन्तु इसकी सच्ची परीक्षा स्वयं कार्यकर्त्ता की आत्मा ही कर सकती है। यह संभव है कि लाखों के दान में भी सेवा के तत्त्व की मात्रा रत्ती भर न हो, और आधी रोटी के दान में सेवा की मात्रा सोलह आने हो। जिसके मन का जैसा परिणाम होता है उसे उसी प्रकार पुण्य अथवा पाप की प्राप्ति होती है। इसलिए कहा गया है कि—"परिणामे बन्धः।"

सेवा करने वाला वास्तव में परोपकार करता है अथवा स्वोपकार यह विचारणीय प्रश्न है। मेरी मान्यता तो यह है कि परोपकार की दृष्टि से सेवा करने वाला सच्ची सेवा नहीं कर सकता, और सेवा का वास्तविक पुण्य भी उपार्जन नहीं कर सकता। एक मनुष्य या कोई जानवर बहुत बीमार है, अत्यन्त कष्ट में है। एक श्रीमन्त गृहस्थ से हम कहते हैं, इसकी कुछ मदद करिए। हमारे कहने से इच्छा न होते हुए भी वह मदद करता है। इस सहायता में उनका हृदय दुःखी के दुख से दुखित नहीं हुआ। 'एक भला आदमी मुझे श्रीमन्त समझ कर मेरे पास आया है, अतः मुझे उसे कुछ देना चाहिए ऐसा विचार करके दी गई मदद से क्या वह पुण्योपार्जन कर सकता है? व्यावहारिक दृष्टि से हम उसे अवश्य मददगार और दयालु समझेंगे। कदाचित् अगर बड़ी रकम दी होगी तो 'दानवीर' भी मान लेंगे, किन्तु उसके दान में सच्ची दया का तत्त्व कितना है? सच्ची सेवा का तत्त्व कितना है? यह तो उसकी आत्मा समझ सकती है। किसी समाज में कोई श्रीमन्त है। वह अपनी श्रीमन्ताई के अनुरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक कार्यों में व्यय करता है। निस्संदेह, उसके द्रव्य से समाज का लाभ अवश्य होता है, किन्तु दूसरे को लाभ हुआ इससे पहले को पुण्य उपार्जन हुआ यह निश्चित रूप से कैसे कहा जा सकता है ? जैन सिद्धान्त कहता है—'कृत का नाश एवं अकृत का आगम नहीं होता'। अर्थात् जो किया है वह जाता नहीं और जो नहीं किया वह आता भी नहीं। जिसकी भावना में करने की बुद्धि नहीं, जिसके हृदय में शुद्ध भावना उत्पन्न न हुई हो, उस क्रिया से पुण्योपार्जन होना कैसे संभव है ? शुभ कर्मों का बन्ध कैसे हो ? सामान्य वचन इस प्रकार है—'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।' ज्ञान, ध्यान, तपस्या, दान, पुण्य, परोपकार, सेवा इत्यादि प्रत्येक कार्य में भावना के अनुसार फल की प्राप्ति होती है। वाचिक या कायिक क्रिया नहीं करने पर भी केवल तीव्र दुर्भावना के कारण नरक गति का बन्ध हो जाता है। सेवा के क्षेत्र में भी इतनी उलझनें हैं कि उसकी व्याख्या करना भी बहुत कठिन है। साधारणतया वह ऐसे की जा सकती है—

"बदले की आशा रखे बिना, कर्त्तव्य समझकर, अन्य के हित के लिए प्रयत्न करना ही सेवा है।" पहले कहा जा चुका है कि जिस कार्य में बदले की आशा होती है वह क्रय विक्रय कहलाता है। निस्संदेह, छद्मस्थों को प्रत्येक कार्य में पुण्योपार्जन की इच्छा रहती है, किन्तु विशुद्ध रूप से कर्तव्य पालन करते हुए और दूसरों का हित विचारते हुए पुण्योपार्जन अनायास हो ही जाता है। आज मनुष्य प्रायः जो कुछ भी करता है उसे हम परोपकार अथवा सेवा में गिन लेते हैं। शुद्ध सेवक को 'मैं परोपकार कर रहा हूँ' अथवा 'मैं सेवा कर रहा हूँ' यह भावना अपने हृदय में नहीं रखनी चाहिए। "पुण्य के उदय से मुझे अमुक शक्ति प्राप्त हुई है, यह शक्ति किसी भी प्रकार मुझसे दूर अवश्य होगी, मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उसका सदुपयोग करलूँ" यह समझ कर अपनी शक्ति का सदुपयोग करना ही उसका कर्त्तव्य है, और उस कर्त्तव्य पालन से जिसका लाभ हो वह उस मनुष्य का उपकार माने तो अलग बात है, किन्तु कर्त्तव्य पालक स्वयं यह समझे कि 'मैं उपकार कर रहा हूँ'। मैं सेवा कर रहा हूँ' यह सच्चे पुण्यबंध का कारण नहीं होता। श्रीमन्तों को समझना चाहिए कि—हमारे पास का धन कोई लूट लेगा तो चला जायगा, आग लग जायगी तो नष्ट हो जायगा, चंचल लक्ष्मी कहीं न कहीं अपना मार्ग खोज लेगी, तो मैं उसका सदुपयोग क्यों न कर लूं ? शारीरिक शक्ति रखने वाले को यह समझना चाहिए कि—यह शक्ति एक दिन नष्ट होगी, बल्कि स्वयं शरीर भी भस्मसात् हो जायगा, तो दूसरों के लाभ के लिए इसका उपयोग क्यों न कर लूँ ? ज्ञानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को विचारना चाहिए कि ज्ञानप्राप्ति हुई है तो किसी समय ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से अज्ञानता भी छा सकती है तो फिर अभी ज्ञान का सदुपयोग क्यों न करलूँ ? बस इसी वृत्ति से अपना कर्त्तव्य समझ कर अपनी शक्ति का सदुपयोग करना और दूसरों का हित करना चाहिए।

अनेक बार सेवा की आड़ में स्वार्थ साधना होती दिखाई देती है। साधारण जनता इस वस्तु को बहुत थोड़ी ही समझ सकती है। वह ऐसा सोच सकती है कि—देखो, इस भाई नें कितना त्याग किया ? परन्तु साधारण बुद्धि वाले यह नहीं समझ सकते कि उसने त्याग के बाद कितना गुना प्राप्त कर लिवा है या कर रहा है ? प्राप्त करने के बाब भी सामान्यतः यही कहा जाता है कि "इसमें इसे क्या ?" किन्तु पूर्ण रूप से जानें तो मालूम होगा कि इस प्रकार प्राप्त की हुई वस्तु के ऊपर की मूर्च्छा अथवा सत्ता क्या बताती है ? एक उदाहरण लीजिए—

मानिये कि एक धारा-शास्त्री है। वह अपना धंधा करता है और सद्भाग्य से वह उसमें सफल भी होता है और अच्छी कमाई भी होती है। अब वही महानुभाव अपना धँधा छोड़ कर देश सेवा या समाज सेवा में रत होते हैं। प्रारम्भ में वह खूब निस्वार्थता बताते हैं, खूब त्याग करते हैं, जेल तक का कष्ट भी सहन करते हैं और इस प्रकार एक 'सच्चे सेवक' के रूप म भी जगत में प्रसिद्ध होते हैं। लोगों का विश्वास प्राप्त करने से वे हज़ारों रुपये उनपर न्योछावर करते हैं, भेंट और सौगातों का ढेर लग जाता है, उनकी अपील पर लाखों और करोड़ों रुपया इकट्ठा हो जाता है। इस सारी मिल्कियत के ऊपर वह धीरे धीरे अपनी सत्ता जमाता जाता है। परिणाम यह होता है कि—एक कागज़ भी कोई उनकी आज्ञा के बिना हिला नहीं सकता, एक पाई भी उनकी आज्ञा के बिना खर्च नहीं की जा सकती। उनकी आज्ञा ही नियम बन जाती है। अपने शिष्यों और वाह वाह करने वालों से ही उनका कामकाज चलता है। वह लाखों की गड़बड़ी करता है, और कुछ होता नहीं। अब हम धैर्य से यह विचार करें कि यह सेवा कैसी सेवा है ? "बदले की आशा रखे बिना, कर्त्तव्य समझ कर दूसरों का हित करने के लिए जो कुछ किया जाय उसका नाम है सेवा" क्या इस व्याख्या में उपर्युक्त सेवा का समावेश होता है ? अनेक बार अपने हृदय में स्थित ऐहिक स्वार्थवृत्ति के पोषण के लिए आज तथाकथित सेवा का ढोंग होता है और दूसरों का 'भला' बताया जाता है। किन्तु वास्तव में अन्दर की वासना का विस्तार करने के लिए थोड़े का त्याग किया जाता है, यह बात सामान्य वर्ग बहुत थोड़ा समझता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा में दूसरों के भले का आशय प्रधान है किन्तु दूसरों का हित चाहते समय मतिभ्रम से 'बुरे को भला' समझने में आ जाता है। किन्तु इस वस्तु का निर्णय इस प्रकार किया जा सकता है कि—उसे यह विचार करना चाहिए कि उसके स्थान पर यदि मैं होता तो क्या होता ? एक उदाहरण लें—एक जीव बीमार है। उसकी बीमारी हमारी दृष्टि से दुःसाध्य ही नहीं असाध्य है। उसके कष्ट और वेदना की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि कोई भी देखने वाला यह कह सकता है कि यह पीड़ा भयंकर है और वह बचेगा नहीं। ऐसी अवस्था में एक सच्चा सेवक क्या करे ? मनुष्य जाति का ज्ञान जबतक केवलज्ञान न हो तबतक अपूर्ण है। सम्पूर्णज्ञान रखनेवाला मनुष्य की अन्तिम घड़ी तक उसका उपचार करने का प्रयत्न करेगा। उसे बचाने का प्रयास करेगा। किसी भी कष्ट में पड़े हुए जीव को बचाने के लिए—उसे आराम पहुँचाने के लिए प्रयत्न करना ही कर्त्तव्यनिष्ठ मनुष्य का धर्म है। सच्चे प्रकार से आराम पहुँचाने का, उसे बचाने का उपाय मनुष्य क्यों करता है ? मनुष्य जाति का हृदय आर्द्र है। वह दूसरे का दुःख नहीं देख सकता—दूसरे का दुःख देखकर—उसके हृदय में पीड़ा होती है। बस, 'स्वयं की पीड़ा की दवा करनी' यही मनुष्य को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। स्वयं की पीड़ा की यह दवा ही उस जीव को आराम पहुँचाने का—बचाने का उपाय है। उसे आराम पहुँचे या न पहुँचे, वह बचे या न बचे, वह तो उसके भाग्य पर है; किन्तु प्रयत्न करने वाले का कष्ट अवश्य यह सोच कर कम होगा कि मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा किया, मेरे से बना उतना किया, अपनी शक्ति का उपयोग किया। दूसरों का दर्द न देख सकने से और अपनी कल्पना से यह मान कर कि 'यह जीव बचेगा नहीं' हम उसे प्रयत्न करके मार डालें यह कहाँ तक न्याय संगत है ? यह विचारणीय है। मार डालने का विचार करने वाले को पहले यह सोचना चाहिए कि यदि उस जीव के स्थान में मैं होता तो क्या होता ? और 'मार डालने से सुखी होगा, कष्ट से मुक्त होगा' यह कल्पना किसी भी मनुष्य के लिए अनुचित है।

सच्ची सेवा एक भिन्न ही वस्तु है। इसीलिए मैंने प्रारम्भ में ही कहा है कि सेवा का क्षेत्र जितना विशाल है उतना ही विकट भी है, इसलिए अच्छे अच्छे विद्वानों को भी कहना पड़ा है कि—

"सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः"

—:※:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बापू मानते थे–

अद्वेष—निर्दोष से द्वेष न करना अद्वेष नहीं है। दोषी से द्वेष न करना ही अद्वेष की शोभा है।

अनुयायी—जो धर्म, देश ओर सत्य के लिए मरने को तैयार नहीं है और जो स्वयं अपने को तुच्छ समझ कर नम्रता का व्यवहार नहीं करता, वह मेरा अनुयायी नहीं है।

अमरत्व—अमरत्व मृत्यु में ही है।

अहिंसा—अहिंसा और शान्ति का अर्थ नामर्दी नहीं है। मर्दानगी ही उस का शुद्ध अर्थ है।

प्रमुख—प्रमुख वह है जो सबसे ज्यादा सेवा करता है।

आत्मराज—इस संसार में बुद्धि राज्य नहीं करेगी परन्तु आत्मा राज्य करेगी। आत्मराज्य का अर्थ है सदाचार का राज्य।

आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य—हम लोग ब्रह्मचर्य की व्याख्या केवल स्थूल रूप से ही करते हैं और जो प्रतिक्षण क्रोध करता है उस को इस में सम्मिलित नहीं करते। जिस प्रकार सुख के लिए स्थूल ब्रह्मचर्य आवश्यक है उसी प्रकार आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य की भी आवश्यकता है।

एकान्त सत्य—एकान्त सत्य मौन में ही है।

कर्त्तव्य—वैर करना या बदला लेना मनुष्य का कर्त्तव्य नहीं है। क्षमा ही उस का कर्त्तव्य है।

कला—तपस्या जीवन में सब से बड़ी कला है।

कलाकार—जिस ने उत्तम जीना जान लिया है वही सच्चा कलाकार है।

कला का विकास—जितने अंशों में मानव, मानव की हत्या करता है उतने अंशों में कला का नहीं, पाखंड का विकास है। जितने अंशों में मानव एक दूसरे के लिए दुःख देखता है, मरता है, उतने ही अंशों में कला का विकास होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु—गुरु वह है जो दूसरों को तारता है। जो स्वयं ही नहीं तैरना जानता वह दूसरों को क्या तारेगा ?

जितेन्द्रिय—जो मनुष्य जिह्वा से सत्य बोलता है, गंदा नहीं खाता है, बुरी दृष्टि नहीं रखता है, अपनी स्त्री के अतिरिक्त सभी स्त्रियाँ जिस के लिए मां बहन के सदृश हैं और जिस का मन वश में है वही जितेन्द्रिय है।

तप—आत्म प्रहार भी एक तपस्या है।

त्रिकालदर्शी—जो सत्य को जानता है, मन, बचन और काया से उसका आचरण करता है, वही त्रिकालदर्शी है।

दयाधर्म—भूखों का पेट भरने और नंगों को ढकने के लिए हमें खाना और पहिनना चाहिए। इसी में दया धर्म का समावेश है।

दयाधर्म की परिसीमा—दयाधर्म की परिसीमा खटमलों को मारने में नहीं है। खटमल न मरे, यह ठीक है लेकिन खटमलों को पैदा न करें। जितनी हिंसा मारने में है उस से भी ज्यादा उत्पन्न करने में है।

दिव्य शान्ति—दिव्य शान्ति का तात्पर्य जड़ता, मूर्खता या दुर्बलता नहीं है। वह तो शुद्धचेतना, ज्ञान और शूरवीरता है।

धर्म—एक सर्वोपरि अदृश्य शक्ति के विषय में सजीव अचल श्रद्धा का नाम ही धर्म है।

ध्येय—ध्येय वस्त्र के समान नहीं है जिस को घंटे भर में पहन लें और निकाल लें। ध्येय तो वह है जिस की प्राप्ति के लिए पीढ़ियाँ बितानी पड़ती हैं।

पतिव्रत—अखंडित पतिव्रत का अर्थ तो यही हो सकता है कि जिस को एक बार ज्ञान पूर्वक पति मान लिया है उस की मृत्यु के पश्चात् भी उसी की आराधना करें और संतोषी बनें। इतना ही नहीं बल्कि उस को याद करने में भी आनन्द का अनुभव करें।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण का अभिनन्दन

मैंने 'श्रमण' को बड़ी रुचि से पढ़ा, विशेष कर 'अपनी बात' को। वास्तव में मुझे बड़ी सन्नता हुई। प्रायः बिल्कुल वही विचार प्रकट किये गये हैं जो मेरे अपने हैं। मैं पूर्णतया उद्देश्य से सहमत हूँ। भारत में असांप्रदायिक वातावरण को उत्पन्न करना एक बड़े महत्त्व का कार्य है, साथ ही कठिन भी है।

डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री एम०ए०डि०फिल०
भूतपूर्व प्रिंसीपल और रजिस्ट्रार
गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस

'श्रमण' के दर्शन से मेरी निराशा जाती रही और मुझे भरोसा हुआ कि श्रमण संस्कृति, जो कि भारत की मौलिक और सनातन संस्कृति है, उसकी विशेषता को समझने वाले लोग अभी भारत में मौजूद हैं? मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्रमण संस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति के विषय में जैसा मेरा अध्ययन और अनुभव है उसीका इसमें सम्पादन हुआ है, जिस के लिए मैं 'श्रमण' परिवार को कृतज्ञता पूर्वक धन्यवाद देता हूँ और इस पत्र का स्वागत करता हूँ।

भदन्त बोधानन्द महास्थविर
संस्थापक और सभापति
Indian Buddhist Society,
Buddhist Research Society
Buddh—Vihara.
लखनऊ

'श्रमण' समाज में पूर्णतया क्रान्ति कर समाज का हृदय-परिवर्तन करने में समर्थ बने।...........'श्रमण' की मूल धारणाएं व ध्येय सराहनीय एवं अनुकरणीय हैं। 'श्रमण' अपने ध्येय में पूर्णतः सफल हो।

पं० मुनि श्री सिरेमल जी म०सा०

बिना वर्ग, जाति और धर्म भेद के समता की भावना का प्रसार करने वाला यह पत्र जिन प्रसिद्ध विद्वानों, विचारकों एवं लेखकों के सहयोग से अपना प्रयाण प्रारम्भ कर रहा है, वह उसके स्थायित्व एवं ध्येय निष्ठा का प्रतीक है।

'झलक' ब्यावर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस का नया अनुष्ठान

श्रमण

भारत के अतीत स्वर्णयुग की आधार शिला पर नव निर्माण का सन्देश देने वाला अहिंसा संयम और तप का प्रेरक

मासिक पत्र

सरल भाषा, प्रामाणिक विचार, देश जाति तथा सम्प्रदाय की परिधियों से दूर रहकर शुद्ध मानवता की उपासना।

सम्पादकः—श्री इन्द्रचन्द्र एम. ए. शास्त्राचार्य, वेदान्त वारिधि

मूल्य ४) वार्षिक एक प्रति ।=)

विद्याश्रम की अन्य प्रवृत्तियाँ:—

रिसर्च विभाग, कालेज विभाग, पुस्तकालय,

प्रकाशन विभाग, और प्रचार विभाग

पत्र व्यवहार के लिए

अधिष्ठाता-जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५

उपयोगी साहित्य मंगाइए

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन एम०ए०,

चौसठ लौकिक, धार्मिक और ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह। भाषा सरल और रोचक। व्याख्यानों तथा प्रवचनों में उदाहरण देने योग्य।

—मूल्य ३)

कुन्दकुन्दाचार्य के तीनरत्न

मूल लेखक—गोपालदास जीवाभाई पटेल। अनु० शोभाचन्द्र जी भारिल्ल

आचार्य कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् आध्यात्मिक ग्रन्थों का संक्षिप्त और सरल भाषा में सुन्दर विवेचन।

—मूल्य २)

ज्ञानोदय

आध्यात्मिक और सामाजिक नवचेतना द्वारा मानव समाज में समता, स्वतन्त्रता और शान्ति का सक्रिय उद्बोधन करने वाला मासिक।

मूल्य ६) वार्षिक

एक प्रति ।।=)

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस नं० ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

न मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बम्भणो।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण तावसो॥
समयाए समणो होई, बम्भचेरेण बम्भणो।
नाणेण य मुणी होई, तवेण होइ तावसो॥

केवल सिर मुँडाने से श्रमण नहीं होता, ओंकार की माला जपने से ब्राह्मण नहीं होता, जंगल में बसने से मुनि नहीं बनता और मूँज लपेटने से तपस्वी नहीं बनता। समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी बनता है।

—उत्तराध्ययन

वर्ष ९ अंक ४

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी
बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक—श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम० ए०,

शास्त्राचार्य, वेदान्तवारिधि, न्यायतीर्थ.

इस अंक में—

१.	स्वयं मंजिल पास आई (कविता)—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल	१
२.	अपनी बात (संपादकीय)—इन्द्र एम० ए०	३
३.	श्रमण संस्कृति और नया संविधान—श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए०	९
४.	पयान की वेला (गद्य कविता)—'रवीन्द्र'	१६
५.	दक्षिण हिन्दुस्तान और जैनधर्म—प्रो० दलसुख मालवणिया	१७
६.	बलिवेदी पर—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल	२०
७.	स्नेह-बंधन (कहानी)—मोहन लाल मेहता	२१
८.	हमारा आज का जीवन—श्री रतन सागर जैन बी० कॉम०	२७
९.	छाया पर अधिकार—ईसपबोध	३०
१०.	साहित्य-सत्कार (समालोचना)—प्रो० दलसुख मालवणिया —मोहन-मेहता	३१
११.	भारतीय जनतन्त्र की पहली महावीर जयन्ती—इन्द्र एम० ए०	३५
१२.	एक नई योजना—इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम० ए०	३६
१३.	भारत जैन महामण्डल—मद्रास अधिवेशन के प्रस्ताव	३८

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेजी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनीऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) **एक प्रति ।=)**

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष १ मार्च १९५० अंक ५

स्वयं मंज़िल पास आई—

—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल

मैं चला दो डग सम्हल कर, स्वयं मंज़िल पास आई।
हृदय में विश्वास, गति ले चरण में
मैं बढ़ चला जब,
शूल कोमल हो उठे
पथ-विकट-संकट सब टला तब;
सिमट बाधाएँ गईं सब
प्रगति का वरदान पाकर—
लो! क्षितिज से एक बदली विजय का संदेश लाई।
मैं चला दो डग सम्हल कर, स्वयं मंज़िल पास आई।
वह न मानव जो रुका, या
झुक गया अवरोध पाकर,
वह न मानव जो न पाया
तोड़ बन्धन बल लगाकर;
एक अँगड़ाई, कि व्याकुल
हो उठीं कड़ियाँ तड़क कर—
एक अविचल साधना थी, लक्ष्य को जो खींच लाई।
मैं चला दो डग सम्हल कर, स्वयं मंज़िल पास आई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिर-सजग यह दीप मेरा
आँधियों से बुझ न पाया,
झुक न पाया शीश मेरा
नियति ने कितना झुकाया;
हृदय का उद्वेग मेरा
सह न पाया दीन सागर—
चीर तम का वक्ष प्रखर प्रकाश-धारा पुनः आई।
मैं चला दो डग सम्हल कर, स्वयं मंज़िल पास आई।

गान मेरी पूर्णता के
गा उठा खग-कुल सवेरे,
सुमन के हँसते विभव में
हँस पड़े अरमान मेरे;
जगत की नव चेतना में
छिपा मेरा जागरण था—
श्वास मेरे चुरा, जग में वायु जीवन फूँक आई।
मैं चला दो डग सम्हल कर, स्वयं मंज़िल पास आई।

पा तनिक संकेत मेरा
काँपते रवि, शशि, सितारे,
वेग यौवन के उदय का
सह न पाए वे बिचारे;
यह प्रलय है, यह उदय है,
यह विजय है आज मेरी—
इस सफलता पर मुझे फिर क्यों न देगा जग बधाई ?
मैं चला दो डग सम्हल कर, स्वयं मंज़िल पास आई !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात—

—इन्द्र एम० ए०

जीवन के दो दृष्टिकोण

प्रत्येक प्राणी को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए दूसरे प्राणी की सहायता लेनी पड़ती है। किन्तु सहायता लेने की पद्धतियाँ भिन्न भिन्न हैं। शेर अपने से दुर्बल को मार कर निर्वाह करता है। इसलिए उसका जीवन सदा अशान्त रहता है। उसके सामने जब कोई आएगा तो स्वयं मर जाएगा या शेर को मार देगा। इसके विपरीत गाय दूध देती है और बदले में भोजन प्राप्त करती है। गाय के साथ हमारा सम्बन्ध आदान प्रदान का है और सिंह के साथ भक्ष्य-भक्षक का। आदान प्रदान के सम्बन्ध को दूसरे शब्दों में परस्परोपकार या परस्परोपग्रह कहा जा सकता है और भक्ष्य-भक्षक के सम्बन्ध को हिंस्य हिंसक, शोषक शोषित आदि शब्दों से। समाजवाद इसी आधार पर पूँजीपति और सर्वहारा के रूप में दो वर्गों की कल्पना करता है। मनुष्य के सामने यह समस्या है कि वह अपने पड़ोसी के साथ कौन सा सम्बन्ध स्थापित करे। भारतीय संस्कृति में इन सम्बन्धों को प्रकट करने वाला एक सिद्धान्त है—'जीवो 'जीवस्य जीवनम्।' दूसरा सिद्धान्त है—'परस्परोपग्रहो जीवानाम्।' मनुष्य ने आध्यात्मिक क्षेत्र में तो दूसरे को अपनाया और व्यावहारिक क्षेत्र में पहले को। आज तक बड़े बड़े साम्राज्य और राष्ट्र पड़ोसी राष्टों की कब्रों पर खड़े होते रहे हैं। प्रत्येक जाति ने अपने विकास और प्रभुत्व का मुख्य उपाय दूसरी जातियों को नष्ट करना ही मान रखा है। एक व्यापारी समझता है कि दूसरे का व्यापार नष्ट कर देने पर ही मेरा व्यापार पनप सकता है। बड़े सन्त और महात्माओं ने ठीक मार्ग दिखाया किन्तु मानव समाज ने उन के उपदेश को चर्च या धर्मस्थानों में बातें करने के लिए सीमित कर दिया। प्रिंस क्रोपाटकिन ने राजनीति और आर्थिक क्षेत्र में भी 'जीवो जीवस्य जीवनम्' का खण्डन किया और परस्परोपकार के सिद्धान्त का समर्थन किया। महात्मा गांधी ने प्रयोग में लाकर दिखा दिया। अब मानव समाज के सामने एक ही प्रश्न है, यदि वह जीवित रहना चाहता है तो इस बात को भूल जाना होगा कि जीव जीव का भोजन है। उसके स्थान पर यह मानना होगा कि एक जीव दूसरे जीव का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपकार करता है। पहली भावना का परिणाम है हत्याकाण्ड, लूट, भुखम और सर्वतोमुखी विनाश। दूसरी भावना हमें परस्पर प्रेम, समृद्धि और सु की ओर ले जाएगी। विश्व में शान्ति स्थापित करने का यही उपाय है कि परस्परोपग्रह के सिद्धान्त को सर्वसाधारण के हृदय में जमा दिया जाय। श्रम संस्कृति के जिन अनुयायियों को यह वाक्य विरासत में मिला है उन पर इस प्रचार का विशेष उत्तर दायित्व है।

नए पैगम्बर

नए नए विचारक तथा क्रान्तिकारियों का होना जागृति का चिह्न है प्रत्येक देश तथा समाज के लिए यह गौरव की बात है। किन्तु वे ही ज अपने अनुयायिओं को बढ़ाने और सम्प्रदाय की स्थापना में लग जाते हैं तो वरदान के स्थान पर अभिशाप बन जाते हैं। भारतवर्ष इसी प्रकार के सम्प्रदा का दंगल बना हुआ है। आज राम और कृष्ण के अनुयायी अपने उपास्य आदर्श को भूल कर परस्पर झगड़ रहे हैं। अहिंसा के अनुयायी अहिंसा अवतार की पूजा करने के लिए दूसरे पुजारी के प्राण ले लेते हैं। ऐसी द में आवश्यकता इस बात की है कि जनता में व्यक्ति पूजा के स्थान पर गुणपू का प्रचार किया जाय। सम्प्रदायवाद को समाप्त करके मानव कल्याण क वाले सच्चे धर्म की प्राणप्रतिष्ठा की जाय। प्रत्येक व्यक्ति को बताया ज कि उसके धर्म का सच्चा आदर्श क्या है। अब नया पंथ खड़ा करने आवश्यकता नहीं है।

स्वामी सत्यभक्त के नाम से एक नए पैगम्बर हमारे सामने आ रहे हैं वर्धा में उनका आश्रम है और 'संगम' उनका संदेशवाहक है। हम उन आचार और विचारों की चर्चा नहीं करना चाहते। हम यह भी मानते हैं उन्होंने सर्वसाधारण को एक नई दृष्टि दी है। उनका सर्वधर्मसमन्वय अं समभाव का ध्येय अभिनन्दनीय है। किन्तु इसके लिए नया पंथ खड़ा क की आवश्यकता नहीं है। हमें स्वामी जी से तो मिलने का सौभाग्य प्रा नहीं हुआ किन्तु उन के शिष्यों से वार्तालाप हुआ है। हमने उन में भी व कट्टरता देखी जो एक साम्प्रदायिक आग्रह वाले व्यक्ति में होती है।

मानव मस्तिष्क को नए नए विचार देना अच्छी बात है। इससे उस विकास होता है किन्तु जब एक व्यक्ति पैगम्बर का रूप धारण कर लेता तो अनुयायियों की विवेचन शक्ति कुण्ठित हो जाती है। उस समय एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातावरण खड़ा कर दिया जाता है जिस में मनुष्य अपने आप नहीं सोच पाता। वहाँ से अन्ध श्रद्धा और कदाग्रह शुरू होते हैं। इस से उन्नति के स्थान पर अवनति होने लगती है। किसी व्यक्ति के पैगम्बर बन जाने का अर्थ है उसका आलोचना से मुक्त हो जाना। किसी अनुयायी में इतना साहस नहीं रहता कि वह अपने पैगम्बर के विरुद्ध कुछ भी कह सके। भारतवर्ष इस प्रकार की अंध श्रद्धा के बुरे फल काफी भोग चुका है। अब उसके लिए नए आधार खड़े करना उचित नहीं कहा जा सकता।

साधुसंस्था का सामाजिक उपयोग

'श्रमण' के पिछले अंक में भिक्षु काश्यप जी का लेख प्रकाशित हुआ है। उन्होंने बताया है कि बौद्ध देशों में हाईस्कूल तक की शिक्षा का सारा उत्तरदायित्व बौद्धसाधुओं ने ले रखा है। इस से वे समाज के उपयोगी अंग बने हुए हैं। प्रधानमंत्री और राजा से लेकर जूता सीने वाले चमार तक सभी ने बौद्ध साधु के चरणों में बैठ कर शिक्षा प्राप्त की है। परिणाम स्वरूप समस्त राष्ट्र उन का ऋणी है। इसी लिए विज्ञान के इस युग में भी उन लोगों की अपने साधुओं के प्रति अटूट श्रद्धा है। प्रोफेसर, डाक्टर, इंजिनीयर, राज्याधिकारी और मजदूर प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति उन का सम्मान करता है। भारतवर्ष को धर्मप्रधान देश कहा जाता है। किन्तु यहाँ साधुसमाज के प्रति श्रद्धा उत्तरोत्तर कम हो रही है। बहुत से लोग तो उन का विरोध करते हुए अत्यन्त उग्र हो उठते हैं। इसका समाधान यही है कि साधुओं को देश तथा समाज के लिए उपयोगी बनना चाहिए। अब 'संसार से हमें क्या काम' कहने से काम न चलेगा। जब तक संसार में साँस लेते हैं उन्हें अपनी उपयोगिता सिद्ध करनी होगी। इसके विना वे अपने प्रभाव को सर्वथा खो देंगे।

इस से हम यह नहीं कहना चाहते कि साधुसमाज अपनी मर्यादाओं को ढीली कर दे। जहाँ तक हमारा ख़याल है जैनियों के अतिरिक्त ऐसा कोई सम्प्रदाय नहीं है जहाँ बालकों तथा प्रौढों को निःशुल्क पढाने में आचार मर्यादा टूटती हो। किन्तु इससे राष्ट्र को जो लाभ होगा उस का मूल्याङ्कन नहीं हो सकता। प्रारम्भिक शिक्षा में खर्च होने वाले करोड़ों रुपए बच जाएंगे, बालकों में धर्म के संस्कार जमेंगे और साथ साथ शिक्षा का प्रचार भी अपेक्षाकृत अधिक होगा। जैन साधु भी अपनी मर्यादाओं में रहते हुए समाज के लिए उपयोगी बहुत से कार्य कर सकते हैं। समाज सेवा और धर्म के मार्ग अलग अलग नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कम से कम वे परस्पर विरोधी तो किसी भी दशा में नहीं हैं। हम 'श्रमण' के पिछले अंकों में अछूत तथा कई दूसरी समस्याओं की ओर साधुसमाज का ध्यान खींच चुके हैं। वे अपने व्याख्यान तथा अन्य प्रयत्नों द्वारा उन्हें दूर करने में सहायक हो सकते हैं। किन्तु यह कार्य स्थानक या उपाश्रय में बैठ कर व्याख्यान देने से न होगा। उन्हें अपने व्याख्यानों के विषय भी बदलने होंगे। स्वर्गीय पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज हमेशा राष्ट्रिय समस्याओं की चर्चा करते थे। उन के व्याख्यानों में धर्म और राष्ट्रियता का सुन्दर समन्वय होता था। कम से कम जैन बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा का कार्य भी साधु अच्छी तरह कर सकते हैं। इस से उन की मर्यादा नहीं टूटती। यह बात दूसरी है कि उसे बड़ी पाठशाला के रूप में न करते हुए वैयाक्तिक तौर पर किया जाय। यदि हमारा साध्वीसमाज स्त्री शिक्षा को अपने हाथ में ले लेवे, बहिनों को नागरिकता, स्वास्थ्य एवं सभ्यता के नियम बतावे, उन के मन में जमी हुई कुरीतियों और बुरे बुरे संस्कारों को दूर करे तो समाज का शीघ्र उत्थान हो सकता है। आशा है, हमारा त्यागी वर्ग इस ओर ध्यान देगा।

भारतीय विश्वविद्यालयों की संकुचित मनोवृत्ति

'श्रमण' के पहले अंक में हमने लिखा था कि जैन और बौद्ध साहित्य अत्यन्त समृद्ध होने पर भी भारतीय विश्वविद्यालयों में उसे कोई स्थान नहीं मिला है। जैन समाज भारत का एक समृद्ध एवं सम्पन्न समाज है। स्वाधीनता संग्राम में उसने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। महात्मा गांधी के निर्माण में जैन संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव है। जिन तीन महापुरुषों के उपदेशों को राष्ट्रपिता ने अपने जीवन में उतारा था उन में श्रीमद्‌राजचन्द्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे एक जैन महात्मा थे। इस बात को सभी मानते हैं कि श्रमण संस्कृति में वे तत्त्व विद्यमान हैं जिन से विश्व में शांति स्थापित हो सकती है। श्रमण संस्कृति का स्वर्णयुग ही भारत का स्वर्णयुग रहा है फिर भी इस ओर विश्वविद्यालयों की उपेक्षा किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कही जा सकती।

'भारत जैन महामण्डल' के मद्रास अधिवेशन में इस विषय का एक प्रस्ताव पास हुआ है। और एतदर्थ आवश्यक कारवाई करने के लिए ग्यारह व्यक्तियों की एक उपसमिति बनाई गई है। उसमें स्थानकवासी, श्वे० मूर्तिपूजक, तेरहपंथी तथा दिगम्बर समाज की प्रतिनिधि संस्थाओं के सभापति तथा मन्त्रियों के अतिरिक्त कुछ प्रोफेसर तथा कार्यकर्ताओं को सम्मिलित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्डल का यह कार्य प्रशंसनीय है। हम चाहते हैं उपरोक्त प्रस्ताव केवल प्रस्ताव न बना रहे। इस के लिए जैन एवं बौद्ध समाज की सभी संस्थाओं को आन्दोलन करना चाहिए। प्रत्येक संस्था की ओर से राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री, तथा प्रान्तीय शिक्षामन्त्रियों के पास प्रार्थनापत्र जाने चाहिए और उनका ध्यान इस ओर दिलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विश्वविद्यालय के कुलपति के पास भी इस आशय का पत्र जाना चाहिए। समाचार पत्रों को इस के लिए आन्दोलन करना चाहिए। सभी शिक्षण संस्थाओं को इस के लिए प्रस्ताव पास करने चाहिए। आशा है, हमारा समाज इस ओर ध्यान देगा।

भारत जैन महामण्डल का मद्रास अधिवेशन

उपरोक्त मण्डल के विषय में हम संक्षिप्त रूप से पिछले अंक में निर्देश कर चुके हैं। इस संस्था को स्थापित हुए बावन वर्ष हो गए। यह जैन समाज के इने गिने उन महापुरुषों की देन है जो साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर शुद्ध जैनत्व का प्रचार करना चाहते थे। अजैन जनता के सामने जैनत्व का उज्वल रूप रखने के लिए इस संस्था ने महत्व पूर्ण कार्य भी किया है किन्तु इसमें वह गरमी नहीं आई जो एक साम्प्रदायिक संस्था में अ सकती है। सन् १८९८ से आज तक यह अपनी शान्त किन्तु दृढ़ नीति से चल रही है। अब समय आ गया है कि इसमें प्राण-प्रतिष्ठा की जाय। नए युग का मानव साम्प्रदायिक बन्धनों को तोड़कर आगे निकल जाना चाहता है। उसके सामने जैन धर्म भी यदि एक सम्प्रदाय की संकुचित परम्परा के रूप में आता है तो वह मानने के लिए तैयार नहीं है। वह उसे तभी अंगीकार कर सकता है जब वह संकुचित दीवारों को गिराने में सहायक सिद्ध हो ऐसी दशा में श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि अवान्तर सीमाएं तो और भी त्याज्य बन जाती हैं। प्रत्येक फ़िरके की प्रतिनिधि संस्था का अब इतना ही उपयोग है कि वह अपने प्रभाव द्वारा अखण्ड जैनत्व की प्रतिनिधि संस्था को दृढ़ करे।

भारत जैन महामण्डल ने केवल चार प्रस्ताव पास किए हैं। उनमें से भी एक धन्यवाद का है। शेष तीन प्रस्ताव जैन समाज के सामने एक रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। पहला, विश्वविद्यालयों में जैन पाठ्यक्रम स्वीकृत कराने के लिए है। इस पर हम अलग टिप्पण दे रहे हैं। दूसरा, जैनसमाज से साम्प्रदायिक भावना दूर करके उसे संगठित और दृढ़ करने के विषय में है। संसार और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की वर्तमान उथल पुथल और संघर्ष में खड़े रहने के लिए इस प्रस्ताव को कार्य रूप में परिणत करना अत्यन्त आवश्यक है। तीसरे में, मन्दिरों में हिंसा रोकने वाले मद्रास धारासभा के बिल का अभिनन्दन किया है। चौथा है ,श्रमण संस्कृति सम्मेलन के विषय में। यह निश्चित है कि इस समय विश्व का कल्याण श्रमणसंस्कृति के सिद्धान्तों द्वारा हो सकता है। इसी बात को व्यावहारिक रूप देने के लिए कुछ उदार चेता मनस्वियों का एक सम्मेलन किया जाय जिस में विश्व के सामने धर्म का असली रूप रखने के लिए एक निश्चित रूपरेखा बनाई जा सके। इसका एकमात्र ध्येय होगा सम्प्रदाय, धर्म, जाति या प्रदेश के झगड़ों को दूर करके शुद्ध मानवता को आगे लाना।

मण्डल के सभी प्रस्ताव अभिनन्दनीय हैं। किन्तु आवश्यकता है उनको व्यावहारिक रूप देने की। मानव कल्याण चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इसम सहयोग देना चाहिए। प्रस्ताव अन्यत्र दिए जा रहे हैं।

हमारी नई योजना

हम चाहते हैं श्रमण में 'हमारे समाज निर्माता' के नाम से एक नया स्तम्भ रखा जाय। इस स्तम्भ में उन महापुरुषों की जीवन गाथाएँ रहेंगी जिन्होंने धार्मिक, आर्थिक या सामाजिक किसी क्षेत्र में अग्रणी का कार्य किया है। उदाहरण स्वरूप हम मद्रास में 'शाह अगरचन्द मानमल' फर्म के संस्थापक सेठ अगरचन्द जी को ले सकते हैं। वे कुचेरा (मारवाड़) से बैलगाड़ी में मद्रास पहुँचे। मार्ग में छह महीने लग गए। मारवाड़ी के सिवाय कोई भाषा न जानते थे। अनेक कष्टों का सामना करते हुए छोटी सी दुकान खोली। विश्वास और प्रतिष्ठा प्राप्त की। अपना काम जमने पर दूसरों को ऊँचा उठाया। आज वह फर्म स्वयं तो करोड़पति है ही किन्तु उसका सहारा लेकर दूसरे सैकड़ों व्यक्ति लखपति बन चुके हैं। धार्मिक क्षेत्र में पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज, पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज, पूज्य श्री जवाहर लाल जी महाराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार सामाजिक क्षेत्र में बहुत से क्रान्तिकारी हुए हैं। वे सब जैन समाज के निर्माता हैं। उनकी जीवनगाथा हमारी आने वाली सन्तति के लिए प्रेरणा दायक होगी। इसी उद्देश्य से हम प्रत्येक अंक में कम से कम एक महापुरुष की जीवनी देना चाहते हैं। इसके लिए पाठकों का सहयोग आवश्यक है हमारा अनुरोध है कि वे इस प्रकार के व्यक्तियों के विषय में लिख कर भेजते रहें। हम उसे उचित रूप देकर प्रकाशित करते रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण संस्कृति और नया संविधान—

—श्री पृथ्वीराज जैन एम०ए०, शास्त्री

संसार के इतिहास में २६ जनवरी १९५० ई० का शुभ दिन चिरस्मरणीय रहेगा। उस दिन एक नए प्रजातंत्रात्मक राष्ट्र का उदय हुआ। संसार के देश इस उदीयमान शक्तिशाली राष्ट्र की ओर आशाभरी दृष्टि से देख रहे हैं। वे जानते हैं कि भारत की अपनी विशिष्ट संस्कृति है। उस संस्कृति में विश्व की पीड़ित और त्रस्त जनता को शान्ति प्रदान करने की अमोघ शक्ति मौजूद है। भारत की जनशक्ति भी दुनिया में एक विशेष स्थान रखती है। हजारों वर्ष के इतिहास, परंपरा, उच्चकोटि की सभ्यता तथा संस्कृति का स्वामी होते हुए भी हमारा यह देश सैकड़ों वर्षों से राजनैतिक पराधीनता की कड़ियों से जकड़ा हुआ था। यह एक महान् आश्चर्य था। विश्ववन्द्य महात्मा गांधी के नेतृत्व में आज से ठीक बीस वर्ष पहले भारत के नरनारियों, बूढ़ों और बच्चों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए किसी भी बलिदान को बड़ा न समझेंगे। परिणाम यह हुआ कि लगभग बीस वर्ष के अहिंसक संघर्ष के बाद हम इस प्रतिज्ञा को पूरा कर पाए। आज हमारा मस्तक विश्व के स्वतंत्र राष्ट्रों से कम ऊँचा नहीं है। हम वास्तविक रूप में अपनी धरती के मालिक हैं, हमारा भविष्य हम पर ही निर्भर है, देश के शासन की बागडोर हमारे परखे हुए नेताओं के हाथ में है। यद्यपि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अब भी हम सदस्य हैं, किन्तु यह सदस्यता हमने अपनी स्वतंत्र इच्छा से स्वीकृत की है और इससे हट जाने का हमें हर समय अधिकार है। लगभग तीन वर्षों के भगीरथ प्रयत्न के बाद हमारे कर्णधार नए संविधान का निर्माण करने में सफलमनोरथ हुए हैं। भिन्न भिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं और ब्रिटिशराज्य की विशेष देन रूप सैंकड़ों देशी रियासतों में बँटे हुए देश का संविधान बनाना कोई सरल कार्य न था। इस कार्य के लिए हमारे नेता बधाई के पात्र हैं।

जनसाधारण ने उत्साह और हर्ष के साथ इस संविधान का स्वागत किया है। ३९५ अनुच्छेदों तथा आठ अनुसूचियों वाला यह महान् संविधान संसार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास में सदैव महत्त्वपूर्ण रहेगा, इस में सन्देह नहीं। श्रमण संस्कृति में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए भी इस संविधान का सिंहावलोकन बहुत उपयोगी होगा।

'संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य' का राष्ट्रध्वज श्रमण संस्कृति की एक महान् विजय का प्रतीक है। विश्व-शांति और विश्व-बंधुता का इस से श्रेष्ठतर चिह्न शायद दूसरा नहीं हो सकता था। इस झंडे में धर्मचक्र सारनाथ के अशोक-स्तंभ से लिया गया है। बौद्धों के 'धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त' में इस धर्मचक्र का विशेष वर्णन है। पुरातत्त्व संबंधी कुछ जैनमूर्तियों में भी इस का रूप देखने में आता है। 'सत्यमेव जयते' का सारगर्भित तथा महान् आदर्श मुण्डक उपनिषद् में से लिया गया है। जैन-आगमों में इसी से मिलता जुलता आदर्श 'सच्चं लोगम्मि सारभूयं'—सत्य ही संसार में सारभूत है—के रूप में देखने में आता है। यह अहिंसा की दृष्टि से और भी उपयुक्त है। 'जयते' में कुछ हिंसा की भावना पाई जाती है। सर राधाकृष्णन् ने झण्डे के भिन्न भिन्न रंगों का महत्त्व बताते हुए कहा था कि 'केसरिया रंग त्याग-भावना का, सफ़ेद रंग सत्य और पवित्रता का तथा हरा रंग समस्त प्राणियों के लिए आश्रयभूत विशाल पृथ्वी से संबंध का द्योतक है।'

संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व-प्रजासत्तात्मक राज्य की मुख्य विशेषताएँ मानी गई हैं। कहना न होगा कि भगवान् महावीर, भगवान् बुद्ध और वर्तमान युग में महात्मा गांधी ने इन सिद्धान्तों को चरितार्थ करने में ही अपने समस्त जीवन को होम दिया था। अहिंसा तथा त्यागमूलक श्रमण संस्कृति की धारा से महात्मा गांधी ने विशेष प्रेरणा प्राप्त की। वे चाहते थे कि अहिंसा और त्याग के आदर्श को ऐसा व्यापक रूप दिया जाय जिससे वह हमारे जीवन के हर क्षेत्र नें मूर्तिमान बन सके। हमारा संविधान उपर्युक्त सिद्धान्तों की दृढ़ नींव पर खड़ा किया गया है। यदि विश्वास और लगन से काम किया गया तो इस में शक नहीं कि हमारा नवीन भारत हज़ारों वर्षों तक मानव समाज को सच्चा आश्रय देता रहेगा।

संविधान से स्पष्ट है कि आज भारतवर्ष के लंबे और क्रमबद्ध इतिहास में पहली बार सच्ची जनतंत्र राज्यप्रणाली का प्रयोग शुरू हुआ है। यह ठीक है कि महावीर और बुद्ध के समय में तथा उस के बाद भी कई ऐसे गणराज्य थे जिनका शासन राज्य के शिष्ट तथा शालीन लोगों द्वारा होता था। परन्तु ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण नहीं मिलते जिन से यह मालूम होता हो कि राज्य के प्रत्येक वयस्क नरनारी को शासन-व्यवस्था में भाग लेने का अधिकार था। एक देश के लगभग १७ करोड़ नरनारियों को एक साथ समानता के आधार पर मताधिकार प्राप्त हुआ हो, यह तो संभवतः विश्व के इतिहास में भी पहली घटना है। इस संविधान ने जनता के हाथों में ही संपूर्ण प्रभुता सौंप दी है। हमारा प्रधान शासक पैतृक-परंपरागत राजा न होगा किन्तु वह व्यक्ति होगा जिसे हमारे द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि बहुमत से यह सन्मान देंगे। यही नहीं, विधान का उल्लंघन करने पर अनुच्छेद ६१ खंड ४ के अनुसार राष्ट्रपति को अपने पद से पृथक् भी किया जा सकता है। इस प्रकार राज्य के प्रत्येक नागरिक को शासन प्रणाली में भाग लेने का अधिकार दिया गया है और किसी के व्यक्तित्व को दूसरे से हीन नहीं समझा गया है।

भगवान् बुद्ध ने अपने प्रथम उपदेश में ही भिक्षुओं को 'सर्वजनसुखाय' 'सर्वजनहिताय' विचरने का आदेश दिया था। भगवान् महावीर का आदर्श भी प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भावना रखते हुए यतनापूर्वक आचरण था। केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद वे अपने श्रमण संघ के साथ जगह जगह समस्त प्राणियों को अहिंसा, शांति, समता और निर्भयता का सन्देश देते हुए तीस वर्ष तक विहार करते रहे। हमारे नवीन संविधान के चतुर्थ भाग में उन निर्देशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है जिन पर अग्रसर होने के लिए राज्य भरसक प्रयत्न करेगा। हाँ, इन तत्त्वों पर अमल करने के लिए अदालतों की ओर से बाध्यता न होगी। इन तत्त्वों के आधार पर भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक न्याय की प्राप्ति होगी, सभी के लिए आजीविका के साधनों को जुटाने का प्रयत्न किया जायगा, सम्पत्ति के स्वामित्व और नियंत्रण के ऐसे नियम बनाए जायँगे जिनसे सामूहिक हित की सिद्धि हो सके, समान कार्य के लिए पुरुष हो या स्त्री, हरेक को समान वेतन ही दिया जायगा, मजदूरों के स्वास्थ्य आदि का विशेष ध्यान रखा जायगा, जनता के स्वास्थ्य की उन्नति के उपाय सोचे जायँगे, निश्चित काल तक बालकों में शत प्रतिशत प्रारंभिक शिक्षा का प्रचार किया जायगा तथा लोक कल्याण के साधक दूसरे उपायों का अवलम्बन भी किया जायगा।

हमारा संविधान प्रत्येक मनुष्य को समानता का अधिकार देता है। इस के अनुसार राज्य सभी नागरिकों के हित व सुख के लिए कोशिश करता रहेगा। श्रमण संस्कृति का दायरा मानव के हित तक ही सीमित नहीं। वह पशुओं तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य प्राणियों के प्रति भी दया और हिंसा के भाव की आराधना अपना ध्येय समझती है। महान् सम्राट अशोक ने अपने राज्य में ऐसे नियम बनाए थे जिन से पशुओं के प्रति होने वाला क्रूर व्यवहार बंद हो जाय। हमारा संविधान इस विषय में मौन सा है। हाँ, निर्देशक तत्त्वों में यह अवश्य वर्णित है कि कृषि की उन्नति और पशुपालन का प्रयास किया जायगा और गाय, बछड़ों व अन्य दुधारू और वाहक ढोरों के वध का प्रतिषेध करने के लिए राज्य अग्रसर होगा। हम समझते हैं कि इस विषय में निश्चित नियम बनाए जा सकते थे और पशुवध को तत्काल रोका जा सकता था।

श्रमण संस्कृति का मूल सिद्धांत अहिंसा है। इस सिद्धान्त को व्यापक रूप देने का श्रेय महात्मा गांधी को है। इस महापुरुष ने हमें बताया कि हमारी सभी समस्याओं का हल अहिंसा से हो सकता है। इतना ही नहीं, अन्याय का प्रतिकार भी हम अहिंसक साधनों से कर सकते हैं। उन्होंने विश्व के एक महान् साम्राज्य से टक्कर लेकर तथा उस में शानदार सफलता प्राप्त कर अपनी मान्यता की सचाई को प्रत्यक्ष दिखा दिया। अहिंसा की इस विजय को मानते हुए, भाषणों तथा लेखों में उस की घोषणा करते हुए भी हम अपने संविधान में उसे यथोचित स्थान नहीं दे सके हैं। हमारे लिए वह एक आदर्श मात्र रह गया है। शायद संसार की वर्तमान स्थिति में हम समझते हैं कि नवीनतम वैज्ञानिक संहारकारी अस्त्रशस्त्रों से सज्जित सेना को रखे बिना हम अपने देश की रक्षा न कर सकेंगे। आक्रमण के लिए नहीं किन्तु रक्षात्मक दृष्टि से हमें सेना रखनी ही होगी; नहीं तो हमारा जीवित रहना कठिन हो जायगा। जैनधर्म गृहस्थों को आपत्काल में शस्त्र द्वारा रक्षा करने की छूट देता है। किन्तु अब हमारे सामने महात्मा गांधी का आदर्श आचुका था। हम उसे स्वीकार कर सकते तो अहिंसा की अमर विजय होती। फिर भी अहिंसा की शक्ति से प्रेरणा प्राप्त कर संविधान के ५१ वें अनुच्छेद में यह मान लिया गया है कि भारतराज्य अन्ताराष्ट्रिय शांति व सुरक्षा की उन्नति, राष्ट्रों में न्यायपूर्ण व संमान पूर्ण संबंध बनाये रखने तथा अन्ताराष्ट्रिय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निबटारा करने में प्रोत्साहन देने का यत्न करेगा।

संविधान में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी भाषा को राजभाषा माना गया है। यह भी महावीर और बुद्ध के लोकभाषा के सिद्धान्त की विजय है। उन दोनों युगपुरुषों ने जनता की प्रचलित भाषाओं में ही उपदेश दिया था। हमारे विशाल देश में विविध भाषाओं का व्यवहार होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह प्रसन्नता की बात है कि संविधान में प्रादेशिक भाषाओं को भी मान्यता दी गई है। हां, संघ की अलग अलग इकाइयों में पारस्परिक व्यवहार के लिए किसी एक भाषा का माना जाना अनिवार्य था। हिन्दी को वह गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। हम आशा करते हैं कि हिन्दी अपने उदर को विशाल बनाते हुए अन्य भाषाओं से लेन देन अवश्य रखेगी अन्यथा लोकभाषा का सिद्धान्त कोरा सिद्धान्त ही रह जायगा।

संविधान का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश उसका तीसरा भाग है जिसमें मूल अधिकारों की विशद घोषणा की गई है। भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध ने २५०० वर्ष पहले आध्यात्मिक उन्नति के द्वार सभी मनुष्यों के लिए खुले हुए बताकर समानता का संदेश दिया था। धार्मिक ग्रन्थों का आधार लेकर मानव-समाज के कुछ अंगों को तिरस्कृत, पददलित तथा अयोग्य समझा जाता था। उन्हें किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त न थे। महावीर और बुद्ध ने समाज के उस बहिष्कृतप्राय अंग को सान्त्वना दी और मुक्ति का मार्ग बताया। भिक्षु संघ में जातपांत का भेद जाता रहा। किन्तु सामाजिक जीवन में उसका स्थान बना रहा। महात्मा गांधी ने इस अन्याय को दूर करने का बीड़ा उठाया। आज इन सभी महापुरुषों की साधना व तप का फल हमारे समक्ष है। नए विधान में अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है। अस्पृश्यता से पैदा होने वाली किसी भी निर्योग्यता का लागू करना दण्डनीय अपराध होगा। कानून के समक्ष सभी बराबर होंगे और कानून से सभी को समान संरक्षण प्राप्त होगा। धर्म, मूलवंश जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर राज्य किसी नागरिक में विभेद न करेगा। दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में सभी को प्रवेश का अधिकार होगा। राज्य और उसके द्वारा अंशतः पोषित या आम जनता के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों आदि का सब उपयोग कर सकेंगे। कुछ प्रतिबंधों के साथ भाषण, अभिव्यक्ति, विश्वास, धार्मिक व सांस्कृतिक शिक्षा, शांतिपूर्वक निरायुध सम्मेलन, संस्था बनाने आदि की स्वतंत्रता होगी। मनुष्यों की खरीद व बेच, बेगार, जबरदस्ती लिया गया श्रम प्रतिषिद्ध होगा।

अनुच्छेद २९ में सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार स्वीकृत किए गए हैं। विभिन्न धार्मिक संप्रदायों को इसके लिए संस्थाएं बनाने का अधिकार होगा किन्तु अनुच्छेद २८ खंड १ में कहा गया है कि राज्यनिधि से पूरी तरह पोषित किसी शिक्षण संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायगी। हम इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहमत नहीं। किसी विशेष संप्रदाय की शिक्षा न दे कर उदार धार्मिक व नैतिक नियमों की शिक्षा का विधान किया जा सकता था। वर्तमान परिस्थिति में इसकी आवश्यकता भी है। उदार धार्मिक शिक्षण के अभाव में हमारे देश की जो दुर्दशा हो रही है, वह प्रत्यक्ष ही है।

एक और बात की ओर संकेत किया जाना आवश्यक है। श्रमण संस्कृति भौतिक आवश्यकताओं को घटाने तथा कम से कम परिग्रह रखने में विश्वास रखती है। हम यह तो स्वीकार करते हैं कि आधुनिक युग में परिग्रह, धन, सम्पत्ति के सर्वथा त्यागी तथा कुछ भी वेतन लिए बिना काम करने वाले ऐसे व्यक्ति नहीं मिल सकते जिन्हें शासन का उत्तरदायित्व दिया जा सके। फिर भी भारत की आर्थिक स्थिति को देखते हुए ऊँचे वेतन शोभा नहीं देते। कांग्रेस ने १९३१ में कराची के अधिवेशन में स्वीकृत किया था कि भारत के स्वतंत्र होने पर उच्च से उच्च कर्मचारी का वेतन ५००) मासिक होगा। यदि वर्तमान महंगाई को लगभग पाँच गुना भी समझ लिया जाय, (हालांकि बहुत से नौकरी पेशा वालों के वेतन पांच गुना नहीं बढ़े हैं) तो यह वेतन २५००) हो सकता था। किन्तु संविधान में राष्ट्रपति का १००००) मासिक तथा राज्यपाल—गवर्नर का ५५००) मासिक वेतन स्वीकृत किया गया है। वर्तमान भत्ते पूर्ववत् ही मिलेगें। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय मंत्रिमंडलों के वेतन वे ही रहेंगे, जो २६ जनवरी से पूर्व थे। इसे देखकर हमें बरबस बापू की याद आ जाती है। यदि आज वे जीवित होते तो यह अन्याय इस रूप में न चल सकता।

संविधान लागू हो चुका है। इसका रूप प्रायः सुन्दर और प्रशंसनीय है। यह जनसाधारण को समता, स्वतंत्रता और शोषण के विरोध का अधिकार प्रदान करता है। संविधान से स्पष्ट है कि सत्ता जनता के हाथों में ही है, शासन प्रणाली पूर्णतः प्रजातंत्रात्मक है तथा राज्य का उद्देश्य भेदभाव से रहित हो कर सबका हितसम्पादन है। हमें इस आदर्श तक पहुँचना है। देश की वर्तमान संकटमय स्थिति, साम्यवाद का खतरा, शिक्षा का अभाव, मतभेद तथा जन साधारण की दरिद्रता आदि लक्ष्य तक पहुंचने में बाधक हो सकते हैं। फिर भी हमें इसकी प्राप्ति के लिए दृढ़प्रतिज्ञ होना चाहिए। उच्च जीवनस्तर तथा भविष्य का विश्वास दिला कर रूस का साम्यवाद बढ़ता जा रहा है। उसके प्रतिरोध के लिए आवश्यक है कि हमारा विधान कागज़ की ही शोभा न रह जाय। श्रमण संस्कृति की धारणा सिद्धान्तों के आचरण की है। संविधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उसके वास्तविक रूप में लागू करके ही हम अपने महान् ध्येय में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

संविधान के लागू हो जाने के बाद श्रमण संस्कृति के उपासकों तथा उसकी प्रचारक संस्थाओं पर महान् उत्तरदायित्व आ जाता है। राज्य के पास किसी भी चीज को लागू करने का ठोस साधन कानून ही है। किन्तु हम शांतिमय और नैतिक साधनों का आश्रय लेकर ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं जिससे जनता संविधान के मूलभूत सिद्धान्तों पर अमल कर सके तथा दूसरों का समुचित ध्यान रखते हुए अपने अधिकारों का उपयोग कर सके। अस्पृश्यता के निवारण, शिक्षा के प्रचार, दलित जातियों के उत्थान, राज भाषा के प्रचार, गोवध आदि को रोकने और सभी सम्प्रदायों में सहिष्णुता के भाव लाने में हम राज्य की पूरी पूरी सहायता कर सकते हैं। इन कार्यों के द्वारा हम श्रमण संस्कृति की ही सेवा करेंगे और लोककल्याण के आदर्श को मूर्त रूप देने में समर्थ होंगें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पयान की वेला—

—रवीन्द्र

ना भाई !
तू कमर कस कर तैयार हो जा,
बार बार हिलना ठीक नहीं है।
मेरे दोस्त !
सोच में पड़ा रह कर हाथ आई हुई लक्ष्मी को क्यों ठुकराता है ?
इधर या उधर एक बात तै कर ले।
वह भी क्या,
कि विचारों के स्रोत में बहते ही रहो,
इस प्रकार बहते रहना तो मरने से भी बुरा है।
ना भाई !
एक बार इधर, एक बार उधर, यह खेल अब बन्द कर दो।
रत्न मिलता हो तो, न मिलता हो तो,
एक बार प्रयत्न तो फिर भी करना ही पड़ेगा।
क्या हुआ ?
यदि वह तेरे मन लायक नहीं है
भाई ! अब आँसू मत गिरा।
डोंगी धारा में छोड़नी है तो छोड़ दे।
पशोपेश में क्यों पड़ा हुआ है ?
समय व्यर्थ मत जाने दे
जब अवसर हाथ से निकल जाएगा,
पयान की वेला बीत जाएगी,
क्या तू तब आँख खोलेगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवीन्द्र

दक्षिण हिन्दुस्तान और जैन धर्म–

–प्रो० दलसुख मालवणिया

उत्तर हिन्दुस्तान जैन तीर्थंकरों के जन्म और विहार का क्षेत्र रहा है। श्रमणों के विहार के कारण वह प्रदेश भी बिहार के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जहाँ उनका विहार–विचरण अधिक होता था। पर आज बिहार, बंगाल और पूर्वीय यू०पी० में जैनों की संख्या नहींवत् है। बंगाल, बिहार और यू० पी० के पूर्वीय भागों में जहाँ कहीं जैन हैं, वे वहाँ के निवासी नहीं हैं किन्तु व्यापार के लिए अंतिम दो शताब्दिओं से बसे हुए हैं। जैनों के मौलिक तीर्थस्थान अधिकतर बिहार में हैं किन्तु तीर्थक्षेत्रों के प्राचीन होते हुए भी बिहार में प्राचीन मन्दिर आज नहीं हैं। जो भी तीर्थ आज सुरक्षित हैं उनका निर्माण मध्यकाल में हुआ है। बिहार में खुदाई भी पर्याप्त मात्रा में नहीं हुई जिस से प्राचीन अवशेष भी आज नहीं मिलते।

प्राचीन काल में राजगृह और पटना–ये जैनों के केन्द्र थे। किन्तु समय बीतने पर उनका उतना महत्त्व नहीं रहा और जैनसंघ ने मथुरा के आसपास अपना केन्द्र जमाया। वहाँ भी जैनसंघ अधिकसमय स्थिर न रह सका; अन्त में उस का केन्द्र गुजरात, मालवा तथा पश्चिम हिन्दुस्तान बना। इस प्रकार हिन्दुस्तान के उत्तर से पश्चिम की ओर जैनसंघ की यात्रा का यह संक्षिप्त सार है।

इसी तरह उत्तर से दक्षिण की ओर भी जैनसंघ का प्रस्थान हुआ है। जैनधर्म के दक्षिण की ओर के प्रचार में राजा संप्रति ने बहुत मदद की। राजा संप्रति ने आन्ध्र, द्रविड़ आदि देशों में साधुओं का विहार सुखपूर्वक हो, इस के लिए अपने सैनिकों की सहायता से उन क्षेत्रों को साधुओं के विहार योग्य बनाया। राजा संप्रति अशोक का पौत्र था अर्थात् अशोक के समय तक दक्षिण देश विहार योग्य नहीं था। वह अनार्य देश समझा जाता था। इस के बाद तो पश्चिम हिन्दुस्तान की तरह दक्षिण भारत भी जैनधर्म का केन्द्र बन गया। दक्षिण में जैनधर्म का प्रचार दो दिशाओं से हुआ है; मालवा की राजधानी उज्जैन से होकर और पूर्व में उड़ीसा से होकर भी दक्षिण में जैनधर्म फैला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारंभ में तो पश्चिम हिन्दुस्तान में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों का अस्तित्व पाया जाता है। पर बाद में पश्चिम हिन्दुस्तानमें श्वेताम्बरों का ही प्राधान्य रह गया। इस के विपरीत दक्षिण में पहले तो दोनों ही रहे होंगे किन्तु बाद में वहाँ दिगम्बरों का ही प्राधान्य हो गया।

जैन आगम भले ही वे श्वेताम्बर मान्य हों या दिगम्बर मान्य—दोनों की रक्षा पश्चिम हिन्दुस्तान में ही हुई है। वल्लभी में श्वेताम्बर संमत आगमों की वाचना हुई और दिगम्बर मान्य षट्खण्डागम आदि का मूल भी पश्चिम हिन्दुस्तान में सुरक्षित था। किन्तु आगमिक सिद्धान्तों को दार्शनिक रूप देने का श्रेय दक्षिण भारत को है।

वस्तुतः देखा जाय तो भारतीय दर्शनसूत्रों का विवरण और विविध दार्शनिक विचार धाराओं का विकास दक्षिण भारत में ही हुआ है। मीमांसकों में शबर, कुमारिल और प्रभाकर; वेदान्तिओं में शंकराचार्य, मध्व, रामानुज आदि; बौद्धों में नागार्जुन, दिग्नाग और धर्मकीर्त्ति तथा उनकी शिष्य परंपरा में होने वाले बड़े बड़े दार्शनिक–ये सभी दक्षिण में हुए। ऐसी स्थिति में उनके बीच रहने वाले जैन आचार्य अपने दर्शन को–नये नये प्रकाश में स्फुट न करते तो अपना अस्तित्व ही खो बैठते। इसी परिस्थिति में से स्वामी समन्तभद्र, अकलंक, विद्यानन्द जैसे जैन दार्शनिकों की प्रतिभा प्रज्वलित हुई है। इन आचार्यों ने जैन दर्शन को अजेय बनाने के लिए जो प्रयत्न किया उसी में से भारतीय दर्शन को–अनेकान्तवाद जैसे एक स्वतन्त्र, सर्व समन्वयी दर्शन की प्राप्ति हुई है और जैनों को गौरवपूर्ण साहित्य मिला है।

कला के क्षेत्र में जहाँ पश्चिम हिन्दुस्तान में शत्रुंजय, गिरनार और आबू के पहाड़ों में अद्भुत जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ है, वहाँ दक्षिण में भी श्रवण बेलगोला के पहाड़ पर जो बाहुबली की विशाल काय, सुरम्य मूर्ति है; वह विश्व का अन्यतम आश्चर्य मानी गई है। संभवतः जैनों की यही एक प्राचीन दर्शनीय विशालकाय मूर्ति अपने मूल रूप में और मूल स्थान में है; जो कि जैनों का दर्शनीय प्राचीनतम स्मारक होने के साथ ही अपने प्राचीन रूप में आज विद्यमान है। मथुरा का स्थापत्य इस से भी प्राचीन है किन्तु वह आज मूल रूप में नहीं है, सिर्फ भग्नावशिष्ट है। गिरनार और शत्रुंजय में कई बार पुनरुद्धार होने के बाद आज के मन्दिर खड़े हैं। आबू के मन्दिरों का निर्माण ही ऐसा है, जो उक्त मूर्ति के बाद हुआ है। इस दृष्टि से देखा जाय तो दक्षिण भारत को–जैसे प्राचीन हिन्दू स्मारकों की सुरक्षा का श्रेय है उसी प्रकार प्राचीन जैन स्मारकों की सुरक्षा का भी श्रेय मिलना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर भारत में जैनों का प्रभुत्व कभी नहीं रहा किन्तु पश्चिम भारत में राजा कुमारपाल के कारण वहाँ जैनों को प्रभुत्व प्राप्त था और समस्त गुजरात के सांस्कृतिक जीवन के निर्माण में जैनों ने पर्याप्त योगदान दिया। राजा अमोघ वर्ष के समय में और खास कर राष्ट्रकूटों के समय में जैनों का प्रभाव दक्षिण में बढ़ा; पर वह चिरस्थायी नहीं था। शैवधर्मी राजाओं ने जैनों के ऊपर वहाँ जो अत्याचार किये हैं उस का वर्णन पढ़ कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस के बाद दक्षिण में जैनधर्म टिका तो रहा किन्तु ब्राह्मण धर्म के आचारों को अपना कर ही। यही कारण है कि वर्णाचार में पश्चिम भारत के जैनों की अपेक्षा दक्षिण के जैन अधिक कट्टर हैं।

दक्षिण भारत की कन्नड़ भाषा में प्राचीन ग्रन्थ अधिकांश में जैनाचार्यों के ही उपलब्ध होते हैं इस दृष्टि से उस भाषा की जो सेवा जैनाचार्यों ने की है वह सर्व मान्य है। तामिल भाषा का प्राचीन साहित्य भी जैनों के विचारों से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत की लोक भाषाओं की उन्नति में जैनों की देन नगण्य नहीं है।

दक्षिण भारत की आबो हवा भी सम शीतोष्ण है। अतएव वह क्षेत्र उत्तर की अपेक्षा दिगम्बर साधुओं के लिए अधिक अनुकूल है। यही कारण है कि अन्य किसी स्थान की अपेक्षा प्राचीन और मध्य काल में दिगम्बर सम्प्रदाय का वहाँ अधिक विकास हुआ किन्तु शैवों के अत्याचार के कारण वहाँ जैनों की सामाजिक स्थिति बिगड़ गई और अधिकांश जैनों को पंचमवर्णी करार दे दिया गया। इसी कारण से उस का विकास वहाँ रुक गया।

आधुनिक काल में रेल और व्यापार की सुविधाओं के कारण श्वेताम्बर लोग भी दक्षिण भारत में गए हैं। किन्तु खेद है कि दोनों जैन फिरके वालों ने आपसी परिचय पर्याप्त मात्रा में नहीं बढ़ाया है। श्वेताम्बरों में अच्छे व्यापारी हैं तो दिगम्बरों में विद्वानों की कमी नहीं। ये दोनों मिल कर यदि जैनधर्म की विचार धारा का पुनरुद्धार करें तो आज से बढ़ कर अनुकल अवसर कोई नहीं हो सकता।

मद्रास और बंगलोर जैसे स्थानों में जहाँ भी जैन बोर्डिंग हों वहाँ दक्षिण और उत्तर भारत के जैन छात्रों को समान रूप से अवकाश देकर भी आपसी संबन्ध का सूत्रपात किया जा सकता है। कन्नड़ तथा तामिल भाषा में जो जैन साहित्य लिखा गया है उसका हिन्दी अनुवाद क्रमशः प्रकाशित करके दक्षिण का ज्ञान उत्तर वालों को दिया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलिवेदी पर—

—श्री ज्ञानचन्द्र भारि

निष्ठुर दीप !

कोई नहीं जानता कि तुमने अबतक कितने प्रणय के प्यासे पतंगों को जल कर भस्म कर दिया है—इस चिर-अतृप्त ज्वाला को अब समेट लो। स्नेह वरदान पाने जो आया, उसे विनाश का अभिशाप देकर तुमने लौटा दिया निर्मम ! प्रेमी पतंग के अधजले पंखों की ओर एक बार तो देखो ? माना तुम्हारे बुझने का अर्थ होगा जगत का अंधकार, किन्तु यदि जलना है तो अ स्नेह से प्रज्वलित होकर जलो—प्रेमी के प्राणों की आहुति न लो !

भोले पतंग !

किस आकर्षण पर आज बलि हुआ चाहते हो ? मृत्यु का आलिंगन क के लिए इतने अधीर क्यों हो ? जीवन के कर्मक्षेत्र से भागकर कहीं आ नहीं मिलेगा।······अथवा तुम्हारी अखंड साधना की यही इतिश्री आज तुम जलकर जी उठोगे—मरकर अमर हो जाओगे, काश, मानव समझ सकता !

अभागे मानव !

जीवन और मृत्यु का यह अद्भुत नाटक देखो—और देखो कि जीवन जितनी मस्ती है, मरण में भी उतनी ही मादकता है—जीवन से प्रेम करते तो मरण का स्वागत भी करो— जीना चाहते हो तो मरना सिखो।

दीप ! प्राणों की आहुति न लो;
पतंग ! तुम चिर-विश्राम करो;
मानव ! तुम मरना सीखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेह-बंधन—

—मोहन लाल मेहता, सिद्धान्तप्रभाकर

आर्द्रकुमार के चारों ओर प्रलोभन बिखरे हुए थे और साथ ही साथ ५० व्यक्तियों का अप्रत्यक्ष पहरा भी। राजा को भय था कि कहीं राजकुमार वैराग्य के नशे में पागल होकर बन में न भाग जाय! इतना होते हुए भी राजकुमार विजयी हुआ। राजा की पराजय हुई। एक दिन प्रातःकाल होने के पूर्व ही आर्द्रकुमार न जाने किस ढंग से भव्य प्रसाद का त्याग कर वन में जा पहुंचा। वह दिवस आर्द्रकुमार के जीवन का स्वर्ण–दिवस था। कितना प्रसन्न था वह!. जो आनन्द उस को राज महल में नहीं मिल सका वह वन में प्राप्त हुआ। गुरु के अभाव में अपने आप ही उसने मुनिव्रत धारण कर लिया। राजकुमार की राज्यदीक्षा और क्या होती है? आर्द्रकुमार का राज्यभिषेक कितना रमणीय था? नहीं, नहीं, वह तो महाराज्याभिषेक था! आर्द्रकुमार 'महाराज' हो गया था।

सौन्दर्य और सद्गुण की वह प्रतिमा! जितना सुन्दर उनका बाह्य शरीर था उतना ही सुन्दर उनका अन्तर भी था। सौन्दर्य का वह संगम सचमुच दर्शनीय था। उनके प्रत्येक अंग से सौन्दर्य अठखेलियाँ कर रहा था। देखने वाला एक बार तो मुग्ध होकर देखता ही रह जाता! यौवन का प्रवाह भी तो पूर्ण वेग से बह रहा था। सचमुच उनका शरीर प्रयाग था जहाँ सौन्दर्य और यौवन भागीरथी और भानुजा के रूप में मिलते थे और सद्गुण की सरस्वती अन्तःप्रवाहित हो रही थी। पवित्रता की प्रतिमूर्ति दर्शनीय थी, वन्दनीय थी और अभिनन्दनीय थी। ज्ञान तथा ध्यान की आराधना करते करते नव मुनिवर वसंतपुर के उद्यान में पहुँचे। वसन्त का समय था। चारों ओर मलय की सुगन्ध को लिए हुए मधुर समीर मन्थर गति से बह रहा था। पुष्पों की प्रकीर्ण सुगन्ध वातावरण को सुवासित कर रही थी। कोकिला का कलरव कर्णरन्ध्रों में कमनीय भाव का वर्षण कर रहा था। लताएँ स्वागत के लिए कलियों की आरती लिये उपस्थित थीं। वसन्तपुर का वसन्त वास्तविक वसन्त था, मरुधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कृत्रिम वसन्त नहीं। आर्द्रकुमार का हृदय अकस्मात् हिल उठा। इतना होते हुए भी मुनिराज ने स्वच्छन्द मन को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया और वे सफल भी हुए। मुनिवर ध्यानावस्था में लीन हो गए। कितना मधु था योगी का वह आत्मचिन्तन !

× × × ×

वसंतपुर के राजा की कन्या का नाम था श्रीमती। श्रीमती का रूप-सौन्दर्य नामानुरूप ही था। उसके जीवन का वसन्त उस सौन्दर्य की अभिवृद्धि में आज के प्राकृतिक वसंत की अपेक्षा कहीं आगे था। वह षोडशवर्षीया कुमारिका अपनी सखियों के साथ उसी उद्यान में जा पहुँची। उसका यह नियम था कि उद्यान में पदार्पण करने वाले प्रत्येक मुनि के चरणों में वन्दना करना तथा उनकी सेवा-पूजा करना। श्रीमती इसी नियम के अनुसार मुनिराज की सेवा में पहुँची। भक्तिपूर्वक वन्दन करने के उपरान्त ज्योंही उसने अपने वदन को ऊपर उठाया त्योंही उसके हृदय में एक प्रकार का विद्युत्प्रवाह दौड़ गया। वह सोचने लगी 'क्या यह मानव-मूर्ति है ? मानव-मूर्ति का सौन्दर्य इतना अभिराम नहीं हो सकता। अवश्य ही यह देव-मूर्ति है—स्वर्ग से उतर कर आई हुई सुर-प्रतिमा है ! आज मेरा अहोभाग्य ! इस देवमूर्ति के दर्शन से मेरा हृदय पुलकित हो उठा। मेरी जीवन-साधना आज सफल हो गई। हो, न हो, यह मेरी साधना का ही फल है। आज मेरा जीवन सफल हुआ। जीवन के ये सोलह वर्ष फलप्रद सिद्ध हुए। धन्य मेरा सद्भाग्य ! साधु-वेष का आवरण सत्य को नहीं छिपा सकता। ये मेरे हैं और मैं इनकी हूँ। जीवन-समर्पण की यह स्वर्ण सन्ध्या कितनी शान्त है ! किरणों की लालिमा अपनी क्रीड़ा से मेरा परिहास करना चाहती है ! मुनिराज के प्रत्येक अंग से कैसी स्वच्छन्द क्रीड़ा कर रही है ! इस लालिमा के स्थान पर यदि मैं होती तो क्या ही अच्छा होता ! मुनिवर का वरण ही मेरा जीवन-ध्येय है।

"मुनिवर ! मुनिवर !! देवमूर्ति ! दिव्यविभूति !!............ इस सेविका की ओर..................इस चरणसेविका की ओर भी देखिए ! किसका ध्यान धर रहे हैं आप ? कौनसी सिद्धि करना चाहते हैं आप ?........" कहते कहते सखियों का समूह उधर से पास ही आ निकला। श्रीमती की निद्रा भंग हुई। वह लज्जा से मंद मंद कंपन का अनुभव करने लगी। सखियों के ऊपर उसे क्रोध आया। उन सखियों ने ही उसके अलौकिक-आनन्द में व्यवधान खड़ा कर दिया था। मुनिराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणों में एक बार पुनः नमस्कार करके श्रीमती अपनी सखियों के साथ राजमहल में लौट आई।

'हां, वे बैठे हुए हैं मेरे मुनिवर! मेरे प्रिय·········! मैं तो उन्हीं के चरणों में रहूँगी। क्यों मुनिवर! आप मेरे हैं न? मैं तो अपने को आप ही के चरणों में समर्पित कर चुकी हूँ। आप क्या मेरी भेंट को अस्वीकृत कर देंगे। नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है? साधुजन किसी की भेंट को अस्वीकृत नहीं किया करते। प्रेम का समर्पण अस्वीकृत किया भी कैसे जा सकता है? समर्पित करने वाले को कितना कष्ट हो, यदि उसकी भेंट अस्वीकृत कर दी जाय! आप तो सब कुछ समझते हैं–ज्ञानी हैं! बस, मैं तो आपकी हो चुकी! आप भी सुन्दर और मैं भी·······! प्राणप्रिय! ठीक रहेगा न! मैं आप के जीवन में बाधक नहीं बनूंगी। आप और मैं दोनों ही साधना करेंगे···········' श्रीमती स्वप्नावस्था में न जाने क्या क्या देख रही है। उसके सामने आर्द्रकुमार की दिव्यमूर्ति खड़ी है और वह अपनी अभिलाषा की पिटारी खोल कर उनके सामने अपने भावों को सजा रही है। श्रीमती अपनी जागृतावस्था की मनोकामनाओं को स्वप्नावस्था में पूरी कर रही है किन्तु वह भोली बालिका यह क्या जाने कि जागने पर पुनः उसकी अभिलाषाएं भी जागृत् हो जायंगी। इसी प्रकार से रात्रि व्यतीत हुई।

प्रातःकाल होते ही श्रीमती अपनी शय्या से उठी किन्तु वहीं बैठी रही। उसके सामने इस समय न तो मुनिवर की मूर्ति थी और न वसन्त के रंग से हरा भरा वह उद्यान। वह फिर खिन्न हो गई। उसका स्वप्न-संसार उसके हृदय को विह्वल बनाने लगा। वह सीधी उद्यान की ओर चल पड़ी। आर्द्रकुमार के चरणों में वन्दन करके बैठ गई। आर्द्रकुमार का हृदय इस समय एक विचित्र स्थिति में डोल रहा था। एक ओर श्रीमती की विनयभरी सौन्दर्य-मूर्ति थी और दूसरी ओर संयम की कठोरता भरी प्रतिमा। वे यह निर्णय न कर सके कि किसको स्वीकार करूं? आराधक के दो आराध्य थे और दोनों ही एक दूसरे से बलवान्। अन्ततो गत्वा श्रीमती की पराजय हुई। कोमलता की हार हुई और कठोरता की जीत। संयम की जीत हुई और सौन्दर्य की हार। आर्द्रकुमार वसन्तपुर के उद्यान को छोड़ कर आगे चले गए। श्रीमती भग्नाश हो कर लौट गई।

× × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसपास के सुन्दर सुन्दर राजकुमारों के सन्देश आने लगे। श्रीमती के विवाह के लिए तरह तरह के प्रयत्न किये जाने लगे किन्तु श्रीमती तो यही कहती—'मैं तो आर्द्रकुमार का वरण कर चुकी, अब मेरे लिए कोई भी वरणीय नहीं है। भक्त अपनी भेंट समर्पित कर चुका, वह स्वीकृत हो या न हो, इससे भक्त का कोई प्रयोजन नहीं।' लोग श्रीमती को पगली समझने लगे। एक मुनिराज को उनके पथ से हटा कर अपने पथ पर ला सके, ऐसा श्रीमती में क्या था? किन्तु श्रीमती अपने प्रण से विचलित न हुई। वह यही सोचती रहती कि कभी न कभी मेरे प्रिय प्रार्थना को अवश्य साकार बनाएंगे।

आर्द्रकुमार का जीवन-प्रवाह भी किसी अन्य दिशा में ही प्रवाहित हो रहा था। आत्मध्यान के बहाने वे श्रीमती का ही ध्यान किया करते थे। वास्तव में वे श्रीमती से पराजित हो गए थे। उनकी विजय तो आत्म-प्रवंचना मात्र थी। श्रीमती की कमनीयता आर्द्रकुमार के हृदय में चित्रित हो चुकी थी। श्रीमती का सौन्दर्य उनके मानस-पटल पर अंकित हो चुका था। उसकी प्रार्थना को अस्वीकृत करके आर्द्रकुमार ने कितनी बड़ी भूल की थी!

वियोग के बारह वसन्त व्यतीत हो गए। श्रीमती आर्द्रकुमार के लिए व्याकुल थी तो आर्द्रकुमार श्रीमती के लिए विह्वल थे। दोनों का जीवन एक दूसरे के अभाव में अपूर्ण था। श्रीमती नित्य प्रातःकाल उद्यान में जाया करती और उस उद्यान में आने वाले प्रत्येक मुनि की भक्ति पूर्वक पूजा किया करती। वह सोचती थी कि न जाने कौन से मुहूर्त में आर्द्रकुमार के दर्शन हो जायँ? कौनसी शुभ घड़ी में उस भव्य-मूर्ति का साक्षात्कार हो जाय? चातक प्रत्येक मेघ की ओर अपना मुँह खोले बैठा रहता है। न जाने कौन सा मेघ स्वाति की बूंदें बरसा दे। यही दशा श्रीमती की भी थी।

× × × ×

इस वर्ष श्रीमती की वियोगावस्था का तेरहवां वसन्त है। चारों ओर वही शोभा और वही छटा है। उद्यान की धरती उसी प्रकार से प्रफुल्लित है। वृक्ष और लताएं उसी प्रकार से प्रसन्न हैं। पक्षियों का कलरव उसी मधुरता से गूंज रहा है। चारों ओर वही माधुर्यपूर्ण वातावरण है। यदि श्रीमती का हृदय-देवता इस समय इसी उद्यान मे होता तो क्या ही अच्छा होता! इतिहास का पूर्ण पुनरावर्त्तन हो जाता! हुआ भी ऐसा ही। सामने ही एक मुनिवर अपनी संयतगति से चले आरहे हैं। उनकी चाल में संयम होते हुए भी कुछ चंचलता है। ऐसा क्यों? इसका उत्तर कौन दे? श्रीमती ही इसका समाधान कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है। मुनिराज पास में पहुँचे। श्रीमती का वदन-नलिन खिल उठा। सरसिज के लिए सूर्योदय होगया! आज श्रीमती की साधना पूर्ण हुई। उसकी बारह वर्ष की तपस्या सफल हुई।

"नाथ! बहुत दिनों से दर्शन हुए। इस दिव्याकृति का इतना लम्बा वियोग! बारह वर्ष किसे कहते हैं? प्रियवर! आज की यह वेला! आज मुझे पुनः जीवनदान मिला है! प्राणप्रिय! आपने मुझे विस्मृत नहीं किया, यह आप की महती कृपा है। पधारिये! उद्यान की भूमि को पवित्र कीजिये। वसन्तपुर की धरणी को अपने पादपद्म से सुवासित कीजिये! इस सेविका के करों को सेवा का शुभ अवसर दीजिये।" श्रीमती ने प्रसन्न वदन से आर्द्रकुमार का स्वागत किया। आर्द्रकुमार का तृषित हृदय तृप्त होगया। कितनी मधुर वाणी थी श्रीमती के मुखारविन्द की!

आर्द्रकुमार का जीवन-प्रवाह परिवर्तित हो गया। श्रीमती का जीवन-रस फिर से आर्द्र हो गया। दोनों ने जीवन के एक नवीन सोपान पर चरण रखे। सुख और साधना का लक्ष्य जीवन-रस के रूप में बदल गया। यह पतन था या उत्थान!' महापुरुषों का पतन भी उत्थान के लिए ही होता है। पतन के अभाव में उत्थान कैसा!

×　　×　　×　　×

आर्द्रकुमार का मन पुनः विरक्ति की ओर बढ़ने लगा। वे घण्टों बैठे बैठे यही सोचा करते थे कि किस प्रकार से जीवन के इस शेषांश को साधना के मार्ग में लगाया जाय? श्रीमती भी अब उनके इस कार्य में बाधक बनना नहीं चाहती थी। एक दिन श्रीमती और आर्द्रकुमार दोनों बैठे बैठे इसी विषय पर वार्तालाप कर रहे थे। आर्द्रकुमार ने कहा—"श्रीमती! हमने जीवन-रस का काफ़ी आस्वादन कर लिया। भोगों के जीवन से अब विरक्ति सी हो गई है। मैं अब इस माया-जाल से अपने को मुक्त करना चाहता हूँ। मेरा जीवन इस समय निर्वेद की भूमिका पर स्थित है और निर्वेद स्थायिभाव से शान्तरस की उत्पत्ति हो, यह स्वाभाविक ही है। अब मैं उसी शान्ति का उपभोग करना चाहता हूँ। मैं घर छोड़कर बाहर चला जाऊँगा।"

पास ही में उनका शिशु पद्मकुमार क्रीड़ा में रत था। श्रीमती ने पद्मकुमार की ओर संकेत करके कहा—"सुनते हो, तुम्हारे बापू जी अब चले जायंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्म विस्मय में पड़ गया—'बापू जी चले जायंगे' इसका क्या अर्थ ? मा, आज क्या कह रही है ? क्या बापूजी हम लोगों से नाराज होगये हैं ? चले क्यों जायंगे ? क्या वे हम लोगों के साथ नहीं रहेंगे ? तो फिर हम लोग किसके साथ रहेंगे ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं बापू जी को कदापि नहीं जाने दूँगा। हम को छोड़ कर बापूजी बाहर चले जायं, ऐसा नहीं हो सकता। ठहरो, अभी बापूजी को बाँध देता हूँ। फिर कैसे जायंगे ? हाँ, अभी बाँधता हूँ।' पद्मराज घर के अन्दर पहुँचा और अपनी मा के हाथ के काते हुआ सूत का एक गुच्छा उठा लाया। अपने दोनों नन्हें नन्हें हाथों से उसी सूत के धागों से पिता को बाँधने लगा। आर्द्रकुमार के पैरों में सूत के धागे लिपट गये। बालक बहुत प्रसन्न हुआ। उसको अपनी सफलता पर गर्व का अनुभव हुआ। "अब कैसे जायंगे ? क्यों पिता जी ? अब तो नहीं जायंगे न ? देखा मा ! मैंने पिताजी को बाँध दिया न ? अब पिता जी नहीं जा सकते–घर से नहीं भाग सकते !"

आर्द्रकुमार और श्रीमती बालक के इस भोलेपन पर हँसने लगे। आर्द्रकुमार ने उन धागों को गिना। कुल बारह थे। आर्द्रकुमार ने यह निश्चय किया— "मैं बारह वर्ष तक गृह-त्याग नहीं करूँगा। पद्मकुमार के ये कच्चे सूत के धागे एक दम कसे तोड़े जा सकते हैं ? इनको तोड़ने में पूरे बारह वर्ष लगेंगे। एक एक धागा एक एक वर्ष में टूटेगा। स्नेह का बन्धन कितना दृढ़ होता है, इसका अनुभव आज हुआ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा आज का जीवन–

–श्री रतन सागर जैन, बी० कॉम०

अपने जीवन की सूनी घड़ियों में जब मैं कुछ चिन्तन मनन करता हूँ तब न जाने क्यों मन आजकल के मानव जीवन की ओर पहुँच जाता है। मैं सोचने लगता हूँ कि जीवन के जिस पथ पर हम बढ़े चले जा रहे हैं वह ठीक है अथवा नहीं ? दूसरे शब्दों में यों कहिए कि आज के युग में जिस प्रकार का जीवन हम बिता रहे हैं वह किस सीमा तक न्याय संगत है।

वास्तव में यह एक बड़ी समस्या है। जहाँ तक मेरा विचार है, जो जीवन आज कल अधिकतर व्यतीत किया जा रहा है वह मानव के लिए लज्जाजनक तथा उपेक्षणीय है। आजकल तो मनुष्य की प्रकृति ही कुछ बुरे रास्ते पर जाने की बन गई है फिर जब उसका उत्साह बढ़ाने वाले बहुत से साथी मिल जायँ तब तो उसका साहस और बढ़ जाता है।

अब देखना यह है कि ऐसी कौनसी बात है जिसने हमारा जीवन इतना बुरा बना दिया है। आज दुनिया में जिस ओर भी नेत्र उठते हैं 'हाय रुपया' की ही रट सुनाई पड़ती है। फिर वह रुपया चाहे जहाँ से, चाहे जिस प्रकार और जिस रूप में प्राप्त हो, किसी को भी उसे ग्रहण करने में संकोच नहीं होता। रुपया प्राप्त होने पर कोई यह नहीं देखता कि जो रुपया हमने लिया है—वह न्याय तथा अधिकार से भी लिया है–कहीं हमारा यह रुपया लेना किसी के प्रति अन्याय तो नहीं हो जायगा।

रिश्वत लेना तो एक साधारण सी बात हो गई है। छोटे से छोटे ओहदे पर काम करने वाले से लेकर बड़े से बड़ा अफ़सर भी रिश्वत लेने से नहीं हिचकता। सरकार कहाँ तक रोक थाम करे–परेशान हो गई है–समझाते समझाते।

चोर बाजारी को ही लीजिए–बात बात में चोर बाजारी चलती है। गेहूँ में–चीनी में–कपड़े में–कहाँ तक गिनाया जाय–पग पग पर प्रत्येक वस्तु में चोर बाजारी का जोर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब ओर झूठ, छल, प्रपंच ही दृष्टिगत होता है। सच बोलना तो मानो कोई अपराध हो गया है आज के इस युग में। सब को धन चाहिए—न्याय अन्याय कुछ नहीं। धन की लगन में मनुष्य अपने धर्मध्यान तथा ईमान तक को भुला बैठा है। स्वार्थ ने मनुष्य को सब ओर से जकड़ लिया है। व्यभिचार में तो मनुष्यों ने कुत्ते को भी मात कर दिया—फिर भला ऐसे जीवन को न्यायशील कहें भी तो कैसे ?

विनय जीवन में रहा ही नहीं। आज का मनुष्य मनुष्यता को भूलकर पशुता को ही अधिक अपनाता जा रहा है।

हमारे इस कुशील जीवन ने हमारे समक्ष बहुत सी नई कठिनाइयाँ उपस्थित कर दी हैं। बहुत से मनुष्य सहायता करना चाहते हैं, पर छल कपट से रहित होने के कारण नहीं कर पाते। मनुष्य की बुद्धि भी तो ठिकाने नहीं रही। वह सद्भावना का नाम तक भूल गया है। वह भूल चुका है 'कर भला, हो भला' वाली उक्ति को। वह दूसरों से ही अपने प्रति अच्छा व्यवहार कराना चाहता है—पर अपना भी उनके प्रति कुछ कर्तव्य है यह नहीं जानता। पर जब दोनों ओर से एक सा व्यवहार हो तभी काम चल सकता है। एक पहिये से भला कब तक गाड़ी चले।

परन्तु खेद से कहना पड़ता है कि आज के मानव-जीवन में स्वार्थ अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। यही कारण है कि संगठन का नाम तक भी नहीं रह गया है। मनुष्य मिल जुल कर रहने के बजाय परस्पर ईर्ष्या और द्वेष को अपनाने लगे हैं। अपनी अपनी ढफ़ली है और अपना अपना राग—कौन किधर जा रहा है किसी को परवाह नहीं। मुसलमान की तो बात ही छोड़िए—एक हिन्दू भी दूसरे हिन्दू को घृणा की दृष्टि से देखता है।

जब हम अपने प्राचीन युग की ओर दृष्टिपात करते हैं तो आँखें देखते ही रह जाती हैं। रामायण का एक एक अंश कर्तव्य परायणता से भरा हुआ है—राम वनवास, सीता का त्याग इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं जिन पर आज के मानव को सहज ही विश्वास भी नहीं होता। उस काल में कर्तव्य का स्थान भावना से ऊपर था।

अशोक का ही युग लीजिए। कितनी शांति और सरलता भरी हुई थी उस समय के मनुष्यों में। मनुष्य क्रोध, मान, माया, लोभ को भूलकर भगवान महावीर तथा बुद्ध के शान्तिप्रिय उपदेशों को मानकर चलते थे। उस समय का जीवन न्याय और विनय के ढाँचे में ढला हुआ जीवन था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज हम स्वतन्त्र हैं—परन्तु मस्तिष्क से परतन्त्रता की बू अभी दूर नहीं हुई है। अर्थात हमारे विचार, चरित्र इत्यादि दिन प्रति दिन गिरते ही जा रहे हैं। हममें वही उद्दण्डता विद्यमान है—हमारे कार्य स्वतन्त्र नागरिकों के समान नहीं हैं। हम अपनी सरकार की उलझनों को सुलझाने के बजाय और अधिक उलझाते जा रहे हैं।

शरणार्थी समस्या हमारी अपनी ही तो पैदा की हुई है। हम इसे मुस्लिम लीग के द्वारा उत्पन्न की हुई समझते हैं। कुछ अंशों में है भी ठीक—पर कुछ खराबियां हममें भी आ गई थी, कुछ साम्प्रदायिकता अधिक फैल गई थी। मनुष्य न्याय और विनय को भुला बैठे थे। जिसके फल स्वरूप हमारे पूज्य बापू का वध हुआ। वह महान व्यक्ति जिसने सारा जीवन हम हिन्दुस्तानियों की भलाई में ही लगा दिया, जिसने जगत को अहिंसा का एक नया तत्त्व समझाया जो सदैव सत्य की खोज में ही लगा रहा—हमारी नासमझी के कारण हमसे असमय में ही छिन गया।

धर्म भी तो एक ढकोसला बन गया है आजकल। धर्म की आड़ में एक दूसरे को लूटने के प्रयत्न किये जाते हैं। धर्म के नाम पर खून किये जाते हैं—दंगे फिसाद किये जाते हैं। मनुष्यों को भड़काया जाता है। इसके अतिरिक्त धर्म का मानो कोई उपयोग ही नहीं रहा।

क्या कहा जाय ऐसे जीवन को, न्यायशील और विनयशील कह कर तो न्याय और विनय को भी व्यर्थ में बदनाम करना है। हाँ, कुशीलता पूर्ण जीवन हम उसको कह सकते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि फिर हमारा जीवन हो कैसा ? कौनसा मार्ग है जिसे अपनाकर मनुष्य आदर्श जीवन व्यतीत कर सकता है।

सबसे पहली बात तो यह है कि यह जो बनावटीपन, रूखापन हममें घुस गया है इसको दूर करने का प्रयास करें। हमें अपने जीवन को पूर्ण तथा पवित्र और शान्तिमय बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। जिससे कि हम जगत के सामने सिर ऊँचा कर सकें। दुनिया को बता सकें कि सच्चे प्रेम और लगन में वह शक्ति है जो बड़े से बड़े हथियार में भी नहीं है। हमारा जीवन असत्य, चोरी, ईर्ष्या, छल, कपट, हिंसा और द्वेष से रहित होना चाहिए। हमारे हृदय में मैत्री व परोपकार की भावना का होना जरूरी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जीओ और जीने दो' वाली उक्ति पर मनुष्य चले तभी तो रहने का सुख है। अन्त में मैं तो केवल यही कहूँगा कि हमें सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए अपना जीवन भी सच्चा बनाना होगा तभी हम सुख और शान्ति की साँस ले सकेंगे। महात्मा गांधी जी ने भी कहा है 'सच ही परमात्मा है'।

इस प्रकार से जब हम अपने जीवन से कुशीलता को दूर कर सकेंगे तभी न्यायशील, विनयशील कहलाने के अधिकारी बनेंगे।

छाया पर अधिकार–

–ईसपबोध

अरब की बात है। एक आदमी ने एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिए गधा भाड़े पर किया। गधे का मालिक उसे हाँक रहा था और वह ऊपर बैठा था। रास्ते में दोपहर हो गया। रेगिस्तान की तेज धूप थी। आसपास कोई पेड़ न था। किरायेदार सवार घड़ी भर विश्राम लेने के लिए गधे से उतरा। और उसकी छाया में बैठने लगा। इतने में मालिक जल्दी से आकर वहाँ बैठ गया।

सवार ने कहा—"मैंने गधा भाड़े किया है। गाँव पहुँचने तक इसपर मेरा हक है। तुम इसकी छाया में नहीं बैठ सकते।

"मैंने गधा भाड़े दिया है, इसकी छाया तो भाड़े नहीं दी। छाया पर तुम्हारा नहीं, मेरा हक है।" मालिक ने जबाब दिया।

बातचीत धूप से भी ज्यादा गरम हो गई। दोनों क्रोध से जलने लगे। इतने में गधा स्वयं छाया की तलाश में वहाँ से भाग निकला। सवार और मालिक फिर भी लड़ते ही रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सत्कार–

'ज्ञानोदय'–विश्व-शांति अंक, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस नं० ४ मूल्य १)

विश्व शान्ति की आज जितनी आवश्यकता है उतनी कभी नहीं थी किन्तु उसके लिए बड़े राष्ट्रों ने जिन उपायों का अवलम्बन किया हैं उनसे संसार में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। साध्य के अनुकूल साधन हों तब तो साध्य सिद्ध होता है किन्तु प्रतिकूल साधनों के प्रयोग के द्वारा वह कदापि सिद्ध नहीं होता। शान्ति और शस्त्र का परस्पर विरोध है। शान्ति तो आध्यात्मिक है और शस्त्र भौतिक। ऐसी स्थिति में शस्त्र के द्वारा–फिर वह एटम् बम्ब हो या हायड्रोजन बम्ब–कभी भी शान्ति हो नहीं सकती। अतएव शस्त्रों की वृद्धि के द्वारा जो शान्ति की बात करते हैं वे विश्व को धोखा दे रहे हैं और वस्तुतः शान्ति के नाम पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते हैं यह स्पष्ट हैं। अमेरिका और रूस में शस्त्र निर्माण की होड़ शान्ति स्थापन के नाम पर होती है किन्तु वस्तुतः यह प्रयत्न शान्ति स्थापना का नहीं किन्तु अपना प्रभुत्व जमाने का है। और इस प्रयत्न में ये दोनों राष्ट्र सुन्दोपसुन्द न्याय से स्वयं नष्ट होंगे और विश्व का भी सत्यानाश करेंगे। यह बात आज स्पष्ट है। यही कारण है कि चारों ओर से आवाज उठती है कि ट्रूमन और स्टेलिन को मिल कर इस शस्त्र निर्माण की होड़का अब अन्त करना चाहिए अन्यथा शान्ति और सुख का संसार से लोप हो जायगा।

विचारक लोग आज उस तथ्य का अनुभव करते हैं जिसे आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भ० महावीर और बुद्ध ने कहा था कि आत्मबल ही सच्चा बल है–आत्म विजय ही सच्ची विजय है और आत्म विजय से ही सच्ची विजय है और आत्म विजय से ही सच्ची शांति और सुख की संभावना है। यही प्रतिधोष गांधीजी ने भारत में बीसवीं सदी में किया। और लोगों का ध्यान भौतिक उन्नति से हटा कर आध्यात्मिक उन्नति की ओर आकृष्ट किया। उसी के फलस्वरूप भारत में विश्व के विभिन्न देशों के शान्तिवादी लोग एकत्र हुए थे पहले शान्ति निकेतन में और बाद में वर्धा में। आज शक्ति का संचय राज्य-कर्ताओं के हाथ में हुआ है अतएव शान्ति की कोई निश्चित योजना संभव नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि राज्यकर्ताओं को अभी शस्त्र में ही विश्वास है। उनके उस विश्वास का कारण भी आम जनता के भयमूलक संस्कार पारस्परिक अविश्वास तथा परिग्रह की ममता ही हैं। अतएव आम जनता में से धीरे धीरे इन कारणों को दूर करने का प्रयत्न करना इससे अधिक शान्तिवादी लोग फिलहाल कुछ नहीं कर सकते। यही कारण है कि शान्तिवादिओं ने मिलकर कोई निश्चित योजना तो नहीं बनाई किन्तु आपसी विचारों की लेन देन मात्र करके तथा प्रत्यक्ष परिचय करके ही संतोष का लाभ किया।

'ज्ञानोदय' के विश्वशान्ति अंक में उन शान्ति के दूतों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है तथा उनके दोनों सम्मेलनों की भी कार्यवाही दी गई है। इसके अतिरिक्त उक्त सम्मेलन को लक्ष्य करके जो सन्देश लिखे या पढ़े गये थे उनमें से चुन कर कुछ दिये हैं। सभी सदस्यों को श्री निर्मल कुमार वसु ने–जो गांधीजी के साथ नोआखाली में गए थे–एक तावीज भेंट दिया था। उसमें गांधीजी का एक संदेश है जो सर्वदा सभी को अपने हृदय में धारण करना चाहिए—

"मैं तुम्हें एक तावीज देता हूँ। जब कभी तुम्हें शंका हो, तुम्हारा अहं तुम्हें तंग करे तब तुम उस निर्धन से निर्धन और लाचार से लाचार व्यक्ति के चेहरे को अपने दिल में याद करो जिसे तुमने कभी देखा हो; और फिर अपनी आत्मा से पूछो कि जो कदम तुम उठा रहे हो क्या उससे उस व्यक्ति का कोई लाभ होगा क्या उससे उसे अपने जीवन को सुखमय बनाने में कोई सहायता मिलेगी।"

बौद्ध महायानियों का तो यह मूलमन्त्र ही था किन्तु इस मन्त्रको जैन श्रमणों को भी अपनाने में कोई बाधा नहीं। वे भी अपनी अहिंसा, विश्वमैत्री का मात्र निषेधपरक नहीं किन्तु विधिरूप अर्थ लेकर—मात्र निवृत्तिरूप नहीं किन्तु प्रवृत्तिरूप अर्थ लेकर विश्व कल्याण में अग्रसर हो सकते हैं, हुए हैं और होना चाहिए इस बात का दृढता के साथ प्रतिपादन पं० श्री सुखलाल जी ने अपने लेख में किया है।

श्री विनोबा जी ने एक विचार रखा है जो हमारे जीवन में प्रत्येक के काम का है। आज सब लोग विश्वयुद्ध की चिन्ता में लगे हैं और उसी के विषय में अधिक सोचते और बातें करते हैं तथा उसी को अधिक भयंकर भी बताते हैं किन्तु विनोबा जी ने कहा है कि जो लोग अहिंसक नहीं बन सकते उन्हें यही प्रण लेना चाहिए कि वे विश्वयुद्ध ही करेंगे, छोटे छोटे युद्ध नहीं। इस एक बात में ही वस्तुतः उन्होंने विश्वयुद्ध की जड़ ही काटने का रास्ता बतला दिया है। हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी अपने अपने क्षेत्र में ही वस्तुतः लड़ते हैं और अपने आसपास का वातावरण हिंसक बना देते हैं। यदि हम आपसी व्यवहार में ही अहिंसक रहने का प्रयत्न करें तो फिर विश्वयुद्ध की नौबत ही कैसे आ सकती है। हरएक व्यक्ति की आदत होती है कि स्वयं दूषित होने पर भी दूसरों के दोष ढूँढता है, अपना सुधार नहीं करता। श्रमणों के निवृत्ति मार्गका यदि कोई अर्थ है तो वह इतना ही है कि वह स्वयं अपना सुधार पहले करता है और दूसरों के दोष नहीं ढूँढता। अपने दुःख और सुख का कारण अपने में ही खोजता है और अपने को ही उत्तरोत्तर विशुद्ध बनाकर दूसरों के लिए आदर्श उपस्थित करता है।

श्री मशरूवाला ने भी इसी बात पर भार दिया है कि प्रजा में जो दूसरों को दोष देने की आदत बढ़ गई है वही सब दोषों की जड़ है। हम चाहते हैं कि हम अपने तरीकों के अनुसार ही जीवन व्यतीत करें किन्तु एक ही शर्त पर कि हमारा पड़ोसी उसमें बाधक न बने। हम अपना तरीका पड़ोसी की सुविधानुसार नहीं करना चाहते किन्तु चाहते हैं कि हमारा पड़ोसी ही हमारे अनुकूल हो जाय। यही स्वार्थ-दृष्टि और यही परदोष-दर्शन सभी युद्धों की जड़ है। उन्होंने भी श्रमणों के ही आदर्श को आगे रखा है कि व्यक्ति स्वयं अपना स्वार्थ-त्याग प्रथम करे तब दूसरे भी स्वतः अनुकूल हो जाएँगे।

'ज्ञानोदय' के संपादकों ने इस अंक में इस प्रकार मनन करने योग्य अच्छी सामग्री उपस्थित करके शान्तिवादियों का ही एक कार्य-प्रचार—करने में सहयोग दिया है उसके लिए वे अभिनन्दन के योग्य हैं।

—दलसुख मालवणिया

संवत्सरी—

व्याख्याता—स्वर्गीय जैनाचार्य श्री जवाहर लाल जी
सम्पादक—श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल, न्यायतीर्थ
प्रकाशक—श्री चम्पालाल जी बाँठिया-मंत्री जवाहर साहित्य-समिति, भीनासर
मूल्य—२) रु०

स्वर्गीय जैनाचार्य जी जैनसमाज के एक कर्मठ कर्णधार थे। धार्मिक क्षेत्र में कार्य करते हुए भी उनका दृष्टिकोण विशाल था। उनके व्याख्यान शास्त्र-सम्बद्ध होते हुए सर्वजनोपयोगी होते थे। यह संस्करण उनके व्याख्यानों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मक्खन है। जवाहर किरणवाली के नाम से पूज्य श्री के २१ अन्य संग्रह प्रकाशि हो चुके हैं, ऐसा इस किरण से प्रगट होता है। संवत्सरी के नाम से पहले पह यह भ्रम हो जाता है कि यह पुस्तक संवत्सरी-पर्व विषयक है किन्तु श्री जै गुरुकुल ब्यावर के अधिष्ठाता जी के प्राक्कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि य पुस्तक संवत्सर अर्थात् एक वर्ष के दृष्टिकोण से संगृहीत की गई है। पुस्तक ३६० पृष्ठ हैं और प्रत्येक पृष्ठ एक एक तिथि का प्रतीक है। संग्रह का प्रत्ये अंश किसी एक दृष्टि को स्पष्ट करता है। पुस्तक में सामाजिक, धार्मिक, नैति राष्ट्रिय इत्यादि सभी दृष्टियों का समन्वय अत्यन्त सुन्दर है।

छुआछूत की वृत्ति का खण्डन करते हुए आचार्य कहते हैं—'आज वर्णों नाम पर उच्चता-नीचता की जो भावना फैली हुई हैं वह वर्ण-व्यवस्था का स्वरू नहीं हैं—विकार है।' (पृ० ११४) विलासिता की ओर बढ़ने वाले आधुनिक समा को फटकारते हुए पूज्य श्री कहते हैं—'मैं बार बार कहता हूँ कि सब अनर्थों मूल विलासिता है।' (पृ० ७४) सम्पत्तिपतियों के लिए यह चेतावनी आँखें खो देने वाली हैं–'आप धनवान् हैं तो क्या हुआ, गरीबों का आपके ऊपर ऋण है (पृ० ७५) सेवा और रक्षा में पाप मानने वालों को इस वाक्य पर मनन कर चाहिए—'वास्तव में अखिल संसार सेवा के सहारे टिका हुआ है।' (पृ०३२ साधुओं के लिए यह चेतावनी बड़े काम की है—'भारतीय संस्कृति नगरों नहीं, वनोंमें ही उत्पन्न हुई और सुरक्षित रही है।'

इस प्रकार से यह संग्रह प्रत्येक बुद्धिधारी मानव के लिए पठनीय तथा म नीय हैं। संपादन का कार्य पंडित जी जैसे एक सफल विद्वान् के हाथ से तदनु हो, यह स्वाभाविक ही है। पंडित जी के 'दो शब्द' से ऐसा प्रतीत होता है कि जवाहर–साहित्य का कुछ अंश कहीं अन्यत्र रुका हुआ है। पारस्परिक–द्वेष अग्नि में इस प्रकार के लोकोपयोगी साहित्य का होम न हो तो अच्छा! ह 'संवत्सरी' का हृदय से स्वागत करते हैं।

मोहन–मेह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय जनतन्त्र की पहली महावीर जयन्ती—

—इन्द्र एम०ए०

कुछ सुझाव

आगामी चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को भारतीय जनतन्त्र की पहली महावीर जयन्ती आ रही है। जुलूस, सभाओं और भाषणों के अतिरिक्त हमें इसमें कुछ रचनात्मक कार्य भी करना चाहिए, जिससे जनता के सामने श्रमणसंस्कृति का व्यवहारिक रूप उपस्थित हो। इसके लिए नीचे कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं—

१. जैनधर्म जातपाँत को कोई महत्व नहीं देता। भगवान् महावीर के शासन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी को आत्मविकास का समान अधिकार था। इसलिए महावीर जयन्ती के दिन मन्दिर, उपाश्रय तथा स्थानक आदि सभी धर्मस्थान एवं पुस्तकालय, धर्मशाला आदि सार्वजनिक स्थान तथाकथित अछूतों के लिए खोल दिए जाँय। यदि कोई शूद्र साधुजी को छूकर वन्दना करना चाहे तो वे किसी प्रकार का संकोच न करें। वे उस दिन गोचरी के लिए हरिजनों के घरों में जायें। कुछ देर के लिए उन्हीं के मुहल्ले में व्याख्यान भी दें। एक ऐसे प्रतिभोज का आयोजन किया जाय जिस में सभी लोग हरिजनों के साथ बैठ कर भोजन करें। इस का अर्थ यह नहीं है कि हरिजनों को भोजन करा दिया जाय किन्तु उन के साथ स्वयं भी बैठ कर भोजन किया जाय जिस से घृणावृत्ति दूर हो।

२. आगामी वर्ष के लिए कुछ ऐसे समारोह निश्चित किए जायें जिन से साम्प्रदायिकता दूर हो और सभी फिरकों में परस्पर प्रेम की वृद्धि हो। उदाहरण के रूप में पर्युषण को नीचे लिखे रूप में मनाया जा सकता है। श्वेताम्बरों का पर्युषण भाद्रकृष्ण की द्वादशी से प्रारम्भ होकर शुक्ल चतुर्थी को समाप्त होता है और दिगम्बरों का दशलाक्षणी पर्व पंचमी से प्रारम्भ होकर चतुर्दशी को समाप्त होता है। कुल सोलह दिन होते हैं। इन दिनों समाज के लिए उपयोगी विविध विषयों पर ऐसे व्याख्यानों का आयोजन किया जाय जिस में सभी सम्मिलित हो सकें। यह आयोजन सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा आदि के समय को छोड़ कर करना चाहिए जिस से अपने अपने धर्मस्थान में जाकर धर्माराधन करने में भी किसी को अड़चन न हो।

३. समाज के चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए ठोस प्रयत्न किया जाय। युवकलोग वृद्धविवाह, बालविवाह, मृत्युभोज आदि में सम्मिलित न होने की प्रतिज्ञा करें। परदा तथा दूसरे बुरे रिवाजों को छोड़ने एवं चोर बाजार तथा व्यापार सम्बन्धी अन्य बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नई योजना—

प्रिय बन्धु !

आप को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि हमने 'श्रमण' में 'हमारे समाज निर्माता' के नाम से एक लेखमाला प्रकाशित करने का निश्चय किया है। इस में उन महापुरुषों की जीवनियाँ रहेंगी जिन्होंने धार्मिक, सामाजिक या आर्थिक क्षेत्र में अग्रणी का कार्य किया है। हमारे पूर्वज मारवाड़, गुजरात या पंजाब से चलकर कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, आसाम आदि दूर प्रान्तों में पहुँचे। किसी प्रकार की शिक्षा न होने पर भी वहाँ जाकर अपना व्यापार जमाया। लखपति और करोड़पति बने। अपने भाई बन्धुओं को ऊँचा उठाया। इसी प्रकार हमारे वे वन्दनीय साधुजन जिन्होंने अपने त्याग और तपस्या द्वारा समाज को गौरवान्वित किया। वे दानी और कर्मठ वीर जिन्होंने अपनी टेक रखने के लिए सर्वस्व दे डाला। जिनके सामने बादशाहों तक को झुकना पड़ा। उन सब की जीवनी हमारी आने वाली सन्तति के लिए स्फूर्तिदायक होगी। उन के कार्य हमारे समाज का सुनहला इतिहास है। उन का त्याग हमारे समाज की आधारशिला है।

हम उन सब का चरित्र क्रमशः 'श्रमण' में देना चाहते हैं। इस के बाद वह पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया जा सकता है। इस पुनीत कार्य में हम आप का सहयोग चाहते हैं। आप हमें इस प्रकार के महापुरुषों के विषय में आवश्यक सामग्री भेजने की कृपा करें।

अगले पृष्ठ पर हम एक प्रश्नावली दे रहे हैं। आशा है आप उसके अनुसार सूचना भेजें। प्रश्नावली के अतिरिक्त आप अपनी तरफ से जो चाहें लिख सकते हैं।

निवेदक—

१५-२-५०
जैनाश्रम
हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस-५.

इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम० ए०
—सम्पादक, श्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे समाज निर्माता—

—प्रश्नावली

नाम—

जन्मतिथि— जन्मस्थान—

पिता का नाम और व्यवसाय

पैतृक आर्थिक स्थिति

शिक्षा कहाँ तक किस के पास प्राप्त की

घर छोड़ कर बाहर जाने की प्रेरणा कहाँ से मिली

प्रस्थान कब किया

उस समय की कोई उल्लेखनीय घटना

कितने दिनों में पहुँचे

मार्ग की घटनाएँ

यात्रा कैसे पूर्ण की

उस समय के यातायात के साधन

विदेश में किस स्थान पर कारोबार प्रारम्भ किया

क्या कारोबार था

आर्थिक आय कब बढ़ी

आय में चढ़ाव उतार

किसी प्रकार का प्रलोभन और उन से बचने की कथा

दूसरों को सहायता किस प्रकार दी

उन के सहारे से कितने व्यक्ति धनवान् बने

अन्तिम अवस्था

धर्म में श्रद्धा

मृत्यु

अन्य उल्लेखनीय घटनाएँ

सन्तान

फर्म की वर्तमान अवस्था

इस समय के मालिक का नाम

सम्भव हो तो उन का फोटो या ब्लाक भी भेजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत जैन महामण्डल—

—मद्रास अधिवेशन के प्रस्ताव

प्रस्ताव नं० १

यह सम्मेलन भारत के समस्त विश्वविद्यालयों से प्रार्थना करता है कि वे अपने पाठ्यक्रम में जैनदर्शन व साहित्य को भी—जो भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है—ध्यान दें। एतद्विषयक प्रयत्न करने के लिए नीचे लिखे सज्जनों की एक उपसमिति बनाई जाती है—

१. श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया
२. " चिमनलाल चक्कुभाई शाह
३. " डॉ० हीरालाल जी
४. " रिषभ दास जी रांका
५. " श्वेतांबर कान्फरेन्स के मंत्री
६. " " " " अध्यक्ष
७. " दिगंबर जैन परिषद के सभापति
८. " " " " " मंत्री
९. " श्रीचन्द्र जी रामपुरीया
१०. " छोगमल जी चौपड़ा
११. " इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम० ए० (संयोजक)

प्रस्तावक—दलसुख भाई
अनु०—भाबुद्ध
समर्थक—इन्द्रचन्द्र शास्त्री

प्रस्ताव नं० २

भारत की वर्तमान प्रजातंत्रात्मक सरकार के शासन में जैन संस्कृति और तत्त्वज्ञान के प्रसार के लिए विभिन्न संप्रदायों को संगठित होकर एक भूमिका पर रहना आवश्यक है।

जैनों के सभी संप्रदायों का तत्त्वज्ञान और धार्मिक सिद्धान्त एक से ही हैं—भूलभूत सिद्धान्त और संस्कृति में कोई अन्तर नहीं है। हमारा दृढ़ मन्तव्य है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि अपने अपने क्रियाकाण्डों का पालन करते हुए भी धर्म व संस्कृति के नाते हमसब एक हैं।

उक्त मन्तव्य की पूर्ति के लिए भारत जैन महामण्डल का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि ब्यावर के २७ वें अधिवेशन के प्रस्ताव नं० ३ को लक्ष में रख भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के प्रभावशाली व्यक्तियों की एक सभा यथाशीघ्र यथास्थान बुलाकर जैन धर्म और संस्कृति की रक्षा तथा प्रचार करने और सामाजिक क्षेत्र में प्रगति करने तथा सरकार के सामने जैन संस्कृति की आवाज बुलन्द करने का निर्णय किया जाय और उसे कार्यान्वित करने की योजना का विचार किया जाय। यह कार्य छः मास के भीतर भीतर किया जाय।

प्र० श्री चिम्मन सिंह जी लोढा
" नथमल जी लूँकड़
अनु० श्री सूरजचंद्र जी सत्यप्रेमी श्री मल्लीनाथ शास्त्री
" कोठारीमल जैन श्री पारसमल जी लोढा

प्रस्ताव नं० ३

महामण्डल के इस अधिवेशन को यह जानकर प्रसन्नता है कि मद्रास प्रान्त की धारासभा में मन्दिरों में होनेवाली यज्ञ-हिंसा का निवारण बिल आ गया है। यह अधिवेशन इस प्रस्ताव द्वारा मद्रास सरकार से अनुरोध करता है कि जल्दी से जल्दी इस बिल को कानून के रूप में जारी करे।

प्रस्ता० आर. एन. शाह
अनु० सेठ रिषभ दास जी जैन
मद्रास

प्रस्ताव नं० ४

मण्डल की यह राय है कि निकट भविष्य में एक 'श्रमण संस्कृति सम्मेलन' किया जाय। जिसमें अहिंसा और सत्य को प्रधानता देनेवाले सभी सम्प्रदायों को आमंत्रित किया जाय और बाह्य भेदों को मिटाकर शुद्ध मानवता के आधार पर संगठन का प्रयत्न किया जाय।

प्रस्ता० इन्द्रचन्द्र शास्त्री,
अनु० सूरजचंद सत्यप्रेमी
श्री भरत चक्रवर्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनजगत (मासिक)

गत तीन वर्षों से जैनजगत मासिक भारत जैन महामण्डल की ओर से प्रकाशित हो रहा है। गत १½ वर्ष में उसके रूप और गुण में जो परिवर्तन हुआ है, वह पाठकों के सम्मुख है। लगभग ३५० पृष्ठ की सुरुचिपूर्ण और विचार पूर्ण सामग्री केवल दो रुपये शुल्क में दी जाती रही है। गत जनवरी का अंक प्रबास और अधिवेशन के कारण बंद था, उसके बदले आचार्य कि० घ० मशरूवाला की 'बुद्ध और महावीर' पुस्तक छपने पर ग्राहकों को दी जायगी।

आगामी वर्ष जैनजगत की पृष्ठ संख्या डयोढी बढ़ाई जा रही है। फिर भी अभी ग्राहक होनेवालों से शुल्क दो रुपया लिया जावेगा। कई शहरों में हमारे जैनजगत के अंक मिलने और ग्राहक बनाने की व्यवस्था भी की है।

मार्च के अन्त तक ग्राहक बनने वालों को 'बुद्ध और महावीर' पुस्तक भेंट जा सकेगी। उसकी कीमत १० आना होगी, और पृष्ठ संख्या १०० से अधिक है।

पन्नालाल जैन,
—व्यवस्थापक, जैनजगत, वर्धा

दौरे के सम्बन्ध में आवश्यक निवेदन

भारत जैन महामण्डल के अध्यक्ष श्री रिषभदास जी रांका ने निश्चय किया है कि वे अपने एक वर्ष के कार्यकाल में छः मास तक महामण्डल के लिए दौरा करेंगे। इस सिलसिले में वे बम्बई, पूना, जयपुर, उदयपुर, फालना, इन्दौर, भुसावल, जामनेर का दौरा कर चुके हैं। फरवरी के अन्त में या मार्च में यू० पी० देहली तथा अप्रैल में पुनः राजपूताना की ओर जाने का विचार है।

इसी प्रकार महामण्डल के कार्यकर्ता श्री राजमल जी ललवाणी, सूगनचन्दजी लुणावत, फकीरचन्द जी मेहता, चिरंजीलाल जी बड़जाते आदि भी भिन्न भिन्न क्षेत्रों में दौरा करनेवाले हैं।

इन सब का दौरा जैनों की समस्याओं को समझाने और पारस्परिक सम्पर्क साधने के लिए ही होगा। जनता से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मांगी जायगी। इसलिए जहां के लोगों को महामण्डल के सम्पर्क में आने और उसकी विचारधारा को समझने की जिज्ञासा हो वे कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचित करें ताकि दौरे के कार्यक्रम पर वैसा विचार किया जा सके।

मूलचन्द बड़जाते
सहायक मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचना

महावीर जयन्ती के अवसर पर जगह जगह सभाएँ करके नीचे लिखे आशय का प्रस्ताव पास कीजिए और उस की नक़ल भारत के सभी विश्व-विद्यालयों के कुलपतियों, सभी प्रान्तों के शिक्षामंत्रियों एवं प्रधानमत्रियों, केन्द्रीय सरकार के शिक्षामंत्री, प्रधानमन्त्री एवं राष्ट्रपति के पास भेजिए। साथ ही इस की सूचना समाचार पत्रों में भी दीजिए।

"भारतीय संस्कृति के विकास में जैन साहित्य एवं तत्त्वज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। काव्य, व्याकरण, कोश, ज्यौतिष, दर्शन आदि ऐसा एक भी विषय नहीं है जिस पर जैन आचार्यों के लिखे उच्चकोटि के ग्रन्थ न हों। जैन-मन्दिर और जैन मूर्तियाँ भारतीय स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण हैं। प्राकृत तथा अर्धमागधी आदि भाषाओं में लिखा हुआ विशाल जैन साहित्य भाषाविज्ञान का आवश्यक अंग है। वही प्राचीन भारत का जनसाहित्य है और ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्व रखता है। अहिंसा, जो कि जैन आचार-शास्त्र का मूल है, भारतीय जनतन्त्र की आधार शिला है।

विश्वविद्यालय बिना किसी भेदभाव के सभी सांस्कृतिक धाराओं के विकास का केन्द्र होते हैं। फिर भी भारतीय विश्वविद्यालयों का ध्यान जैनसाहित्य एवं तत्त्वज्ञान की ओर नहीं गया है।

हम भारतीय सरकार और सभी विश्वविद्यालयों से अनुरोध करते हैं कि वे अपने शिक्षाक्रम में भारतीय संस्कृति की इस महत्वपूर्ण धारा को भी उचित स्थान दें।"

आशा है, महावीर जयन्ती के अवसर पर यह प्रस्ताव सभी जगह पास किया जाएगा।

निवेदक–
इन्द्र एम० ए०
संयोजक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक वी० पी० से

प्रिय महोदय,

'श्रमण' अपने नए संदेश को लेकर आपके पास प्रतिमास पहुँच रहा है। आशा है इसकी विचारधारा पसंद आई होगी और आप इसके ग्राहक बनना पसंद करेंगे।

इसका वार्षिक मूल्य ४) रु० यदि आप मनीआर्डर से भेज देवें तो ।) की बचत हो जाएगी। वी० पी० से ४।=) खर्च पड़ जाता है।

जिन सज्जनों का वार्षिक मूल्य हमें नहीं मिला उनके पास एप्रिल का अंक वी० पी० द्वारा भेजा जायगा।

यदि आप किसी कारण 'श्रमण' के ग्राहक नहीं बनना चाहते तो पत्र द्वारा सूचित करने की कृपा करें। जिससे वी० पी० का व्यर्थ नुकसान न उठाना पड़े।

मई में 'श्रमण' का संस्कृति अंक निकल रहा है। जिसमें पढ़ने लायक ठोस सामग्री रहेगी। आशा है, आप इसका अधिक से अधिक प्रचार करके हमारे सहयोगी बनेंगे।

भवदीय,

व्यवस्थापक—'श्रमण'

श्रमण का अभिनन्दन

'श्रमण' के तीन अंक प्राप्त कर हृदय की चिर-संचित आशा पूर्ण हुई। 'श्रमण' स्वयं धर्मोन्नति, देशसेवा व सदभावना का प्रतीक है। 'श्रमण' की अपनी विशेषता है, जो कि जनता के लिए अवश्य रुचिकर होगी और विज्ञजन भी प्रशंसा करेंगे। यह उत्तरोत्तर अपने लक्ष्य को सुदीप्त व सुदृढ़ बनाने में अग्रसर हो—यही भावना है।

लखनऊ खरतर गच्छ के

श्रीपूज्य श्री जिनविजय सेन सूरि जी महाराज, देहली

श्रमण संस्कृति का प्रचारक यह पत्र भारत की संस्कृति के प्रश्न को हल करने में अत्यन्त सहायक होगा। इसकी नीति—श्रमणों के आदर्श को आम जनता तक पहुँचाना—अत्यन्त आवश्यक और वांछनीय है। इसकी असाम्प्रदायिक विचार धारा जैनत्व के स्तर को बढाने में अत्यन्त सहायक होगी। संपादक जी की 'अपनी बात' वैयक्तिक दृष्टिकोण को लेते हुए भी सार्वजनिक है। जैन समाज में यह पत्र अपने ढंग का अनूठा है।

प्रो० विमलदास कोंदिया जैन,
एम० ए० (दर्शन) एम० ए० (संस्कृत)
एल० एल० बी०, न्यायतीर्थ, शास्त्री,
दर्शन विभाग, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

वर्ष १ अंक ६

महावीर का धर्म

सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता न हंतव्वा, न अज्ञावेयव्वा, न परिघेत्तव्वा, न परियावेयव्वा न उद्दवेयव्वा। एस धम्मे सुद्धे, नितिए, सासए, समेच्च लोगं खेयन्नेहिं पवेइए।

किसी प्राणी, किसी भूत, किसी जीव, किसी सत्त्व को न मारना चाहिए, न सताना चाहिए, न कैद करना चाहिए, न कष्ट पहुँचाना चाहिए, न डराना ही चाहिए। यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है, अनुभवी व्यक्तियों द्वारा संसार का स्वरूप समझ कर बताया गया है।

—आचारांग

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी
बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक—श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम० ए०,
शास्त्राचार्य, वेदान्तवारिधि, न्यायती

इस अंक में—

१. वीर के प्रति (कविता)—इन्द्र एम० ए०
२. अपनी बात (संपादकीय)—इन्द्र एम० ए०
३. आत्मदान (गद्य काव्य)—श्री मोहन लाल मेहता
४. भगवान् महावीर और जाति भेद—श्री पृथ्वीराज जैन, एम० ए०
५. बुनियादी सुधार—श्री उमाशंकर त्रिपाठी
६. चरित्र के मापदण्ड—इन्द्र एम० ए०
७. स्त्री-शिक्षा—कुमारी कान्ता जैन
८. हमारे समाज-निर्माता—
सेठ भैरोदान जी सेठिया, बीकानेर—इन्द्र एम० ए०
९. सफलता का मंत्र—रवीन्द्र
१०. साहित्य सत्कार—मोहन लाल मेहता

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनीऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) **एक प्रति ।=)**

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष १   अप्रैल १९५०   अंक ६

वीर के प्रति

वीर ! तेरे मार्ग को यदि विश्व सारा जान जाता ।
मिट गए होते कलह सब, शान्ति का वरदान पाता ॥
जब मनुज निज कल्पनाओं के पिशाचों से घिरा था ,
भूल महती शक्ति निज, भयत्रस्त चरणों में गिरा था ।
छोड़ कर अपना परिश्रम माँगता था वर उन्हीं से,
तब कहा तूने, मनुज ! क्या ढूँढ़ता बाहर कहीं से ?
तू अकेला ही स्वयं निज भाग्य का है संविधाता । वीर० ॥
धर्म के उस दिव्य पथ में देह का अभिमान कैसा !
एक सी आत्मा सभी में जाति, कुल, धन, ज्ञान कैसा !
रंक राजा, शूद्र ब्राह्मण, एक थे तेरी दृगों में ,
आदमी की बात क्या, थी एकता सिंहों मृगों में ॥
वेश, जाती, लिंग का कुछ धर्म से होता न नाता । वीर० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो अभय का दान सबको यदि अभयता चाहते हो,
दुःख मत दो दूसरों को यदि स्वयं सुख चाहते हो।
मित्र बन जाओ सभी के चाहते यदि अरि मिटाना,
स्वार्थ सारे त्याग दो यदि चाहते परमार्थ पाना॥
है स्वयं मानव अकेला एक अपना त्राणदाता। वीर०॥

सिर मुँड़ाने से न मिलता है श्रमण का पद किसी को,
राम की माला रटे कहते नहीं ब्राह्मण किसी को।
बन न जाता है मुनी नर जंगलों की खाक छाने,
औ तपस्वी भी न बनता देह पर धूली रमाने॥
ये सभी छल छन्द हैं, इनसे न नर निज लक्ष्य पाता। वीर०॥

है श्रमण बनता हृदय में साम्य का मृदुभाव लाए,
और ब्राह्मण है वही जो ब्रह्म में मन को लगाए।
ज्ञान से बनता मुनी उस तत्त्व को जो खोजता है,
हैं तपस्वी त्याग पथ से जो न मुँह को मोड़ता है॥
छोड़ता जो कामनाएँ है वही निज लक्ष्य पाता। वीर०॥

किन्तु तेरे ही उपासक आज तुझको भूलते हैं,
निष्परिग्रह के उपासक ही परिग्रह पूजते हैं।
जूझते हैं वे परस्पर भूल कर उपदेश तेरा,
चल रहे विपरीत पथ पर कह रहे हैं वीर मेरा॥
वह समन्वय दृष्टि तजकर हाय लड़ना ही सुहाता। वीर०॥

तू परस्पर प्रेम का था दे गया संदेश घर घर,
आपसी विद्वेष हरने दे गया स्याद्वाद का वर।
आश्रयण एकान्त का तूने सदा मिथ्यात्व माना,
ले अपेक्षावाद का अवलम्ब सबको सत्य जाना॥
हाय! जीवन में इसे यदि आज मनुज उतार पाता। वीर०॥

—इन्द्र एम०ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात—

—इन्द्र एम० ए०

महावीर जयन्ती और भारतीय गणतन्त्र

इस ३१ मार्च को हम भारतीय गणतन्त्र की पहली महावीर जयन्ती मना रहे हैं। राजनीतिक परतन्त्रता नीति और धर्म को भी नहीं पनपने देती। इस लिए परतन्त्र भारत में हमारे लिए एक बहाना था। किन्तु अब तो राज्य व्यवस्था ऐसी हो गई है जिस की आधार शिला भगवान् महावीर की अहिंसा है। संकुचित क्षेत्र में सीमित होने पर भी लिच्छवि गणतन्त्र की जिस शासनप्रणाली ने महावीर और बुद्ध को जन्म दिया, अशोक के समय जिस का आश्रय प्राप्त करके श्रमण संस्कृति ने भारत को विश्वगुरु बनाया, अब वही शासन-प्रणाली सारे भारत में स्थापित हो चुकी है। अब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और काठियावाड़ से आसाम तक धर्मचक्र फहरा रहा है, जो अहिंसा और सत्य का प्रतीक है। महात्मा गांधी ने अपने जीवन और अपनी मृत्यु द्वारा जो पावन सन्देश दिया वह अब भी कानों में गूंज रहा है। दूसरी ओर संसार में महाकाल की प्रचण्ड लपटें उठ रही हैं। भयंकर संहार करने वाले अस्त्रों की दौड़ लगी हुई है। मानव मानवता को भूल कर पिशाच बनता जा रहा है।

यह समय श्रमण संस्कृति के लिए आगे आने का है। इस समय दुनिया को भगवान् महावीर के सन्देश की आवश्यकता है। किन्तु इस सन्देश को कौन सुनाए!

हम तो स्वयं महावीर के सिद्धान्तों को कुचलने के प्रयत्न कर रहे हैं। अब भी हम मनुष्य को मनुष्य समझने के लिए तैयार नहीं हैं। महावीर का हृदय पददलितों को गले लगाने के लिए तड़फ उठा था किन्तु हम चाहते हैं वे उन की मूर्ति से भी दूर रहें। सरकार कहती है हरिजनों को मनुष्य समझो और उनके लिए अपने अपने देवता के द्वार खोल दो। वह महावीर के सिद्धान्त का प्रचार करना चाहती है किन्तु हम कहते हैं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता और साथ में यह भी घोषणा करते हैं कि हम महावीर के प्रतिनिधि हैं। हम कहते हैं भगवान् महावीर के सिद्धान्त विश्व में शान्ति स्थापन कर सकते हैं किन्तु स्वयं घड़ी भर के लिए भी इकट्ठे नहीं बैठ सकते। दिगम्बरों के महावीर दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और श्वेताम्बरों के दूसरे। जिसने प्राणिमात्र से मित्रता का उपदेश दिया उसी का नाम लेकर झगड़ते हैं। जिसने त्याग और तपस्या का उपदेश दिया उसे जेवर पहनाते हैं, घी चढ़ाते हैं। जिसने भयंकर वनों में अकेले रह कर साधना की और इन्द्र की सहायता को भी ठुकरा दिया उसे बड़े बड़े मकानों में बन्द करते हैं और बन्दूकों के पहरे में रखते हैं।

हमने महावीर और उन के नाम को रुपए पैसे की तरह जड़ सम्पत्ति बना लिया है। उन्हें प्रकाश के रूप में नहीं देखना चाहते। उस से आँखें चौंधियाती हैं। हम अँधेरे में ही पड़े रहना चाहते हैं। स्वयं अँधेरे में खड़े रह कर दूसरों को चिल्ला कर कहते हैं, आओ, प्रकाश में आओ! जो हमें भगवान् महावीर ने दिया है। भला, इस प्रकार कोई क्यों आने लगा!

महात्मा गांधी उस प्रकाश में पहुँच कर स्वयं एक प्रकाश बन गए। आज उन का दीपक दुनिया के अँधेरे कोनों में टिमटिमा रहा है। किन्तु हम ने कहाँ तक प्रकाश प्राप्त किया, यह विचारणीय है।

यदि हम महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहते हैं तो पहले स्वयं उन के सच्चे अनुयायी बनना होगा। उपदेश देने से पहले स्वयं आदर्श उपस्थित करना होगा। श्रमण संस्कृति का प्रचार करने से पहले हमें यह बताना होगा कि सच्चा श्रमण और श्रमणोपासक कैसा होता है।

अब भारत में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना हो गई है। किसी पर कोई धर्म लादा नहीं जाएगा। किसी मत या सम्प्रदाय को राज्याश्रय नहीं मिलेगा। ऐसे समय में स्वाभाविक रूप से वह धर्म आगे आएगा जो जनता का वास्तविक हित साध सकता है। जो उस के सामने उच्च आदर्श उपस्थित कर सकता है। जो सम्प्रदाय वर्गविद्वेष तथा स्वार्थसंघर्ष की भीषण लपटों को शान्त कर सकता हैं। हम यह मानते हैं कि जैनधर्म में वे तत्त्व मौजूद हैं किन्तु उन का प्रचार जीवन में उतारने से होगा।

हमारी हार्दिक कामना है कि भारतीय गणतन्त्र की यह पहली महावीर जयन्ती महावीर के तथाकथित अनुयायियों की दृष्टि खोलने तथा उन का हृदय बदलने में समर्थ हो।

सम्यक्त्व और मिथ्यात्व

धर्म जब अपने असली आदर्श को छोड़ कर केवल रूढ़ियों पर आश्रित हो जाता है तो अनुयायिओं की मनोवृत्ति उत्तरोत्तर संकुचित होती चली जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उस समय धर्म की कसौटी कर्तव्य न होकर केवल नाम रह जाता है। अपने को राम का अनुयायी कहने वाला एक व्यक्ति राम के आदर्श से उतना ही दूर है जितना कोई अन्य, फिर भी वह अपने को आस्तिक और धर्मात्मा मानता है और दूसरे को नास्तिक तथा पापी। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि एक राम का नाम लेकर झगड़ा कर रहा है और दूसरा कृष्ण का नाम लेकर। गंगा के एक घाट पर कृष्ण का पुजारी बैठ जाता है और दूसरे पर राम का। दोनों में गालियों की प्रतिस्पर्धा चलती है। वास्तव में देखा जाय तो दोनों ही अपने अपने देवता से बहुत दूर हैं।

भगवान् महावीर का ध्यान इस मतान्धता की ओर गया। उन्होंने नाम के स्थान पर त्याग और तप पर जोर दिया। उन्होंने कहा—स्त्री हो या पुरुष, ब्राह्मण हो या शूद्र, जैन साधु के वेश में हो या अन्य किसी वेश में—प्रत्येक व्यक्ति कल्याण प्राप्त कर सकता है। मोक्ष का आधार भावों की शुद्धि है। लिंग जाति, वेश या नाम का कोई महत्त्व नहीं है।

किन्तु हम देख रहे हैं भगवान महावीर के अनुयायिओं में भी वही संकुचित मनोवृत्ति घुस गई है। हम गुणपूजा छोड़ कर व्यक्तिपूजा की ओर झुके जा रहे हैं। यदि कोई विद्वान् बौद्ध या वैदिक परम्परा की किसी बात के लिए प्रशंसा करता है तो झट उसे मिथ्यात्वी कह दिया जाता है। दूसरी ओर स्वयं एकान्तवादी होने पर भी अपने को सच्चा माना जाता है।

स्थानांग सूत्र में मिथ्यात्व के दस बोल आए हैं। उस में कहा है—असाधु को साधु समझे तो मिथ्यात्व, अधर्म को धर्म समझे तो मिथ्यात्व। दूसरों को मिथ्यात्वी कहने वाले भाइओं से हम पूछते हैं—वे कहीं असाधु को साधु तो नहीं समझ रहे हैं; समिति, गुप्ति, महाव्रत, तप आदि धर्म के लक्षण हैं, वे उन्हें छोड़ कर वेशभूषा को तो धर्म नहीं समझ रहे हैं?

किसी बौद्ध भिक्षु की प्रशंसा करने पर वे समझते हैं यह 'परपासंड-पसंसा' हो गई जो समकित का अतिचार है। उन्हें समझना चाहिए कि जैनदर्शन में स्व और पर का आधार वेशभूषा या नाम नहीं है। यहाँ 'पर' का अर्थ है जो धर्म मार्ग के विपरीत चलता है। जैन शास्त्रों में अहिंसा, संयम और तप को धर्म का मार्ग बताया है। यदि कोई बौद्धभिक्षु के वेश में भी उपरोक्त मार्ग पर चलता है तो वह हमारा वन्दनीय है, पूजनीय है। मिथ्यात्व तो तब है जब ऐसे व्यक्ति की पूजा की जाय जो हिंसा में धर्म मानता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू मुस्लिम झगड़े के दिनों में हिन्दू जब मुसलमान को मारते थे तो कहते थे 'महात्मा गांधी की जय' और जब मुसलमान हिन्दुओं को मारते थे तो कहते थे 'अल्ला हो अकबर।' हिन्दू समझते थे हम महात्मा गांधी के भक्त हैं और मुसलमान समझते थे हम अल्लाह की बंदगी कर रहे हैं। वास्तव में देखा जाय तो दोनों शैतान की उपासना कर रहे थे। न वे गांधी जी के भक्त थे और न ये अल्लाह के। दोनों ही पवित्र नाम लेकर अपने अन्दर रहे हुए शैतान का पोषण कर रहे थे। जैनदर्शन और अनेकान्तवाद की उपयोगिता इसी में है कि वह जनता का ध्यान कर्तव्य की ओर खींचे। परस्पर खींचातानी को दूर करे।

स्वयं एकान्त का अवलम्बन लेना तो जैनत्व से दूर भागना है।

विचारों का बलिदान

कुछ दिन पहले फालना (मारवाड़) में श्री श्वे० मूर्तिपूजक कान्फरेंस का अधिवेशन हुआ। सुधारक वर्ग ने बालदीक्षा पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए प्रस्ताव उपस्थित किया। बहुमत उनके साथ था। किन्तु रुढ़िवादियों को जब कोई दूसरा मार्ग नहीं सूझा तो लब्धप्रतिष्ठ आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि जी को खड़ा किया। उन्होंने नवयुवक समाज से अपील की—"सामाजिक एकता के नाम पर मैं आप लोगों से विचारों का बलिदान माँगता हूँ।" प्रस्ताव उचित तथा सामयिक होने पर भी आचार्यश्री की बात रखने के लिए वापिस ले लिया गया। इस प्रकार के बलिदान का अर्थ है सुधारों का बलिदान और समाज की उन्नति का बलिदान। समाज के सर्वमान्य आचार्य से ऐसे बलिदान की माँग सुन कर आश्चर्य होता है और दुख भी। यदि हमारा पूजनीय वर्ग ऐसे बातों के लिए अपना वैयक्तिक प्रभाव बरतने लगे तो समाज का कल्याण हो चुका। यदि आचार्यश्री बालदीक्षा के समर्थक हैं तो उचित युक्तियों द्वारा सभी को समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। गुणदोषों का विवेचन करना चाहिए। ऐसा न करके व्यक्तिगत प्रभाव को बरतना और नवयुवकों को चुप करना उचित नहीं है। उचित विचारों का बलिदान करके स्वस्थ समाज का निर्माण कैसे किया जा सकता है? आचार्यश्री को किसी महान् उद्देश्य के लिए बलिदान की माँग करनी चाहिए, उचित सुधारों को रोकने के लिए नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मदान

जल रहा अग्नि से वन सारा
तप रहे ताप से सब प्राणी
सब भाग रहे हैं इधर उधर
जीवन की रक्षा करने को
प्राणों से नाता बना रहे
यह सोच सोच चिल्लाते हैं
कोई भी रक्षक नहीं अरे !
भय से वे यों कँप जाते हैं
उनके अन्तर की दशा अरे !
उनका अन्तर ही जान रहा
है कौन सिंह, मृग, कौन शशक
अहि, नकुल, नहीं यह भान रहा
केवल निज तन का ज्ञान रहा
सब त्रस्त हुए, भय-ग्रस्त हुए
मिल सकी कहीं भी नहीं शरण !

* * *

गजराज एक निज यूथ सहित
भागा जाता था उसी ओर
देखा था उसने एक छोर
उस ज्वाल-ज्वलित सारे वन में
वह जला नहीं, था अभी दूर—
लपटों की जलती गोदी से ।
जुट गया झुण्ड, गजराज स्वयं—
लग गया; और कुछ ही क्षण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया एक वनछोर साफ
सहसा आशा की किरणों से
सब के मुख-मण्डल दीप्त हुए
वन के सब प्राणी एक साथ
खिल उठे नया जीवन पाकर
बैठे कुछ मण्डल में आकर
कुछ खड़े रहे, कुछ लेट गए
कुछ चढ़ कर सहसा अपने से—
जो बड़ा उसी पर बैठ गए
वह जीवन का सम्मेलन था !

*   *   *

गजराज खड़ा था देख रहा
विस्मित नयनों से इस जग को
जगती की जीवन-धारा को
इतने में कण्डु चली सिर में
मुक्ता के स्थल गण्डस्थल में
उठ गया पाद निज स्थान छोड़
होगया मिटाने में तत्पर
अंगों का यह सहयोग धन्य !
मिट गई कण्डु सिर की सत्वर

*   *   *

'क्यों कोमल तन का स्पर्श यहां !
क्या हुआ अरे इस धरती पर !
जिसका तन था इतना कठोर
क्यों मृदुता का आभास वहां !
कंकड़-पत्थर वाली भू में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना सुख कर मृदु घास कहां !
कोमल कुसुमों का वास कहां !
अमरों का वह आवास कहां !'
यूथप यों निज मन ही मन में—
कुछ लगा सोचने सा मानो
ज्यों ही डाला निज चरण पुनः—
नीचे वाली उस धरणी पर

*   *   *

वह कोमलता कुछ नहीं, किन्तु
था शशशावक का ही शरीर
ज्यों ही करिपति का पाद उठा
चट नीचे आकर बैठ गया—
था एक त्रस्त शश का शावक
देखा ज्योंही वह रिक्त स्थान
'यह तो शश का जीवित शावक !
बैठा यों हो निर्भीक अचल
मानो, मैं ही हूँ अभिभावक !
कितना भोला, कितना चञ्चल !
पर आज बना कैसा निश्चल !
क्या इस पर अपना पाद धरूँ
अपने सुख की चिन्ता कर मैं !
क्या अपने तन को याद करूँ !
अनुकम्पा को विस्मृत कर मैं !
मेरा जीवन अनुकंपामय !
अपने तन की परवाह नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणागत की रक्षा हो तो
निज जीवन की भी चाह नहीं !'

*　　　　*　　　　*

यों सोचा गजपति ने, सहसा
अपने मन में संकल्प किया
निश्चल हो अपने तीन चरण—
पर तब तक खड़ा रहा, जब तक
तन में प्राणों का वास रहा
तन, जीवन का आवास रहा
दावानल ज्योंही शान्त हुआ
वन के सब प्राणी बिखर गए।
गजराज गिरा सहसा भू पर
गिरता वह क्यों न, अरे! जब यों
निज तीन पाद पर खड़ा रहा
यों तीन दिवस तक अड़ा रहा
अनुकम्पा की पूजा करने
अनुकम्पा की सेवा करने

*　　　　*　　　　*

होगया शान्त, मिल गई शान्ति
जीवन की अनुपम दिव्य शान्ति!
निज प्राणों की बाज़ी पर भी
पर की रक्षा, यह एक दान
जीवन का सब से बड़ा दान!
गज का अति अद्भुत आत्मदान!!

—मोहन लाल मेहता सिद्धान्त-प्रभाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् महावीर और जातिभेद—

—श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री

संसार के सभी देशों में धन, पद, व्यवसाय, विचारधारा आदि के भेद के कारण मानव-समाज भिन्न भिन्न वर्गों में विभक्त होता रहा है। हरेक वर्ग का जीवन-स्तर अपनी अपनी परिस्थिति के अनुसार दूसरे वर्गों से भिन्न होता था। परिणामस्वरूप एक विशेष वर्ग के सदस्य अपने जीवन व्यवहार को प्रायः उसी वर्ग की सीमा में मर्यादित रखते थे। आजकल भी बहुत सी बातों में यही परिस्थिति है। किन्तु ऐसे वर्गों के निर्माण के विषय में किसी प्रकार के दृढ़ व ध्रुव नियम न थे। कोई भी व्यक्ति अपने परिश्रम तथा प्रतिभा के बल पर किसी भी वर्ग का सदस्य बन सकता था। भारतीय आर्यों की इस विषय में जो परंपरा रही है, वह विश्व के इतिहास में अद्वितीय है। यहाँ वर्णों का प्रारंभ तो व्यवसाय विभाग के साधारण नियमों के अनुसार ही हुआ। परन्तु धीरे धीरे उनमें ऐसी दृढ़ता और कट्टरता आ गई कि वर्णव्यवस्था का आधार जन्मना बन गया। धर्मशास्त्रों के आधार पर इसका समर्थन किया गया और यह व्यवस्था कर दी गई कि एक व्यक्ति जिस कुल में जन्म लेता है, वह उसी कुल का परंपरागत धंधा करने का अधिकारी है। इस तरह अलग अलग जातियों का विकास हुआ। जातिविषयक कट्टरता ने उग्र रूप धारण किया और खानपान, वैवाहिक संबंध तथा अन्य पारस्परिक व्यवहार अपनी अपनी जाति की नियत सीमा में ही होने लगे। इस पृथग्-भावना का एक परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक जाति अपने को दूसरी जातियों से श्रेष्ठ समझने लगी। श्रेष्ठता सिद्ध करने का सबसे बड़ा प्रमाण-पत्र प्राचीनता का था। अतः सब जातियों ने अपना संबंध आदि पुरुष से जोड़ना शुरू किया। प्रायः हरेक का दावा था कि वह इस पृथ्वीतल पर सर्व प्रथम अवतरित हुई।

जैसे जैसे समय बीतता गया, जातियों की संख्या में भी आश्चर्यजनक वृद्धि होने लगी। प्रारंभ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातियां थीं। उसके बाद अन्त्यजों या चाण्डालों की अलग जाति बन गई। मानव-स्वभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना विचित्र और विविधताशाली है कि एक जाति से दूसरी जाति के सम्मिश्रण को रोकने के लिए पक्की व मजबूत दीवारों के अस्तित्व के बावजूद वह इन हदबन्दियों को पार कर गया। वर्ण-संकर का प्रवाह रुक न सका। फलतः अनेक प्रकार की अन्य जातियां और उपजातियां बनती ही गईं। आज इनकी संख्या हजारों में हैं।

जातिभेद का सबसे कटु-परिणाम शूद्रों व चाण्डालों के प्रति किए जाने वाला व्यवहार था। उनके विषय में जो नियम बनाए गए, वे मानवता को लज्जित करने वाले हैं। धर्म-शास्त्रों को पढ़ने या सुनने का उन्हें अधिकार न था। समाज के दूसरे लोगों के लिए वे अस्पृश्य, घृणित और तिरस्कृत थे। उनका एक मात्र काम तथाकथित उच्चवर्ण वाले लोगों की सेवा करना और बदले में दासता, शोषण, गाली और दुतकार पाना था। उनसे किया जाने वाला व्यवहार कई बातों में पशुओं के प्रति किए जाने वाले व्यवहार से भी तुच्छ था। श्रौत सूत्र इस बात के साक्षी हैं। एक शूद्र योग्यता, शक्ति और बुद्धि के होने पर भी अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर दूसरा धंधा न कर सकता था। वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि महाराज रामचन्द्र ने अपने राजगुरु के कथन से एक शूद्र का वध इस लिए कर डाला कि उसने संन्यास-मार्ग को अपनाने की धृष्टता की थी। वैखानस धर्म प्रश्न में उल्लेख है कि 'शूद्र द्वारा ब्राह्मणी से उत्पन्न व्यक्ति चाण्डाल है। उसे चाहिए कि बग़ल में झल्लरी (एक वाद्य विशेष) लिए हुए सुबह के समय नगर में आए, मल, मूत्र, कूड़ाकरकट साफ़ कर शहर के बाहर अपने जाति-बन्धुओं के साथ रहे। मध्याह्न के बाद वह नगर में प्रविष्ट न हो। यदि वह उस समय शहर आ जाए तो राजा का कर्त्तव्य है कि उसका वध कर दे। अन्यथा राजा स्वयं भ्रूण-हत्या का अपराधी होगा।'

भगवान् महावीर के जन्म से पूर्व यज्ञों में पशुबलि तथा शूद्रों के प्रति अमानुषिक व्यवहार का बोलबाला था। भगवान् महावीर का आदर्श मनुष्यों में ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र में समता की भावना का था। अतः वे यह कैसे सहन कर सकते थे कि विशाल मानव समाज का एक अंग सदा के लिए दासता की कड़ियों में जकड़ा रहे, वह भी बिना किसी अपराध के। क्या कारण है कि शूद्र या अस्पृश्य के लिए सांसारिक और आध्यात्मिक उन्नति के दरवाजे बन्द रखे जाएँ? योग्यता और शक्ति होने पर, विकास करने पर उस का वही पद क्यों न हो जो अन्य वर्ण वालों को प्राप्त होता है? इस अन्याय को दूर करने के लिए भगवान् ने घोषणा की कि कोई भी व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या शूद्र नहीं होता। इस के निर्णय का एक मात्र आधार उस व्यक्ति के कार्य और नित्यप्रति का व्यवहार है। प्रकृति में ये भेद नहीं हैं। जन्म, यौवन, बुढ़ापा मृत्यु, सुखदुःख आदि सब को समान रूप से ही होते हैं। संस्कार करना हो तो आत्मा का संस्कार करो, उस में रहे हुए राग, द्वेष, कषाय आदि दोषों को धो डालो। बाह्य लिंग और बाह्य संस्कार कुछ भी महत्त्व नहीं रखते। गुण, आचार और कर्म ही मनुष्य को सच्चा सम्मान प्रदान करते हैं। आत्म-विकास में जाति, देश, वर्ण, लिंग और भेष के बंधनों का क्या प्रयोजन? चांडाल जाति में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति भी आन्तरिक गुणों की दृष्टि से पवित्र और स्फटिक समान निर्मल हो सकता है।

भगवान् के विशाल संघ में सभी जातियों का प्रवेश अनुमोदित था। उत्तराध्ययन सूत्र के १२ वें अध्ययन में हरिकेश मुनि का वर्णन है। उन का जन्म चाण्डाल कुल में हुआ था। फिर भी वे गुणों के आगार थे। निमित्त पाकर उन्हों ने संन्यास मार्ग ग्रहण किया। कठिन से कठिन परीक्षा में भी वे तपे हुए सोने के समान खरे उतरे। एक बार वे भिक्षा के लिए ऐसे स्थान में पहुँचे जहाँ एक महान् यज्ञ का अनुष्ठान हो रहा था। जातिमद के नशे में चूर ब्राह्मणों ने उनका तिरस्कार किया। हरिकेश मुनि ने समता का त्याग नहीं किया। अन्त में ब्राह्मण उन से प्रभावित हो नतमस्तक हुए। उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि "दिव्यतप का ही यह सब प्रभाव है, जाति की कुछ भी विशेषता नहीं है, धन्य हैं प्रभावशालिनी समृद्धि के धारक चाण्डाल-पुत्र हरिकेश मुनि।" तब हरिकेश मुनि ने उन्हें समझाया, "हे ब्राह्मणो! अग्नि का आरम्भ (हिंसा) करके पानी द्वारा बाह्य शुद्धि को क्यों खोज रहे हो? क्योंकि बाहर की सफ़ाई आत्मशुद्धि का मार्ग नहीं है"। उन्होंने उन ब्राह्मणों को सच्चे यज्ञ का स्वरूप भी बताया। उस यज्ञ में तप अग्नि है, जीवात्मा उस अग्नि का स्थान है, मन, वचन, काय का योग कड़छी है, शरीर अग्नि को प्रदीप्त करने का साधन है, कर्म रूपी ईंधन है, संयम शांतिमन्त्र है।

इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र के २५ वें अध्ययन में जयघोष मुनि—जो जन्मना ब्राह्मण कुल के थे, तथा कुल-परंपरागत यज्ञ करने में व्यस्त विजयघोष ब्राह्मण का संवाद हैं। जयघोष मुनि भिक्षा के लिए विजयघोष की यज्ञशाला में पहुँचे। विजयघोष का कहना था कि उन का भोजन वेदों के पारगामी ब्राह्मणों के लिए ही बनाया गया है। तब जयघोष ने किसी पदार्थ की इच्छा से नहीं किन्तु विजयघोष का अज्ञान दूर करने के लिए कहा, "इस लोक में जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध अग्नि की तरह पापरहित होने से पूज्य हुआ है उसी को कुशल पुरुष 'ब्राह्मण' मानते हैं। जो मल तथा पाप से रहित है, राग, द्वेष, भय आदि दोषों से परे है उसी को हम ब्राह्मण कहते हैं। जो सदाचारी, तपस्वी तथा दमितेन्द्रिय है तथा जिसने उग्रतपस्या द्वारा अपने शरीर के रक्त मांस सुखा डाले हों, कृशगात्र हो, कषायों के शांत होने से जिसका हृदय शांति का सागर हो रहा हो, उसी को हम ब्राह्मण कहते हैं। माथा मूँडा लेने से कोई साधु नहीं बन जाता, ओंकार का जाप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, जंगल में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं बन जाता, भगवा वस्त्र धारण करने से कोई तापस नहीं बन जाता। समता से साधु, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तपस्या से तपस्वी होता है। वस्तुत: वर्णव्यवस्था जन्मगत नहीं है किन्तु कर्मगत है। कर्म से ही ब्राह्मण, कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।"

भगवान् के भिक्षु संघ में प्रवेश पाते ही जाति का बंधन दूर हो जाता था और सब को समान दृष्टि से देखा जाता था। भगवान् के श्रावक भी सभी जातियों के थे। कुम्भकार सद्दालपुत्त ने श्रावक के व्रत अंगीकार किए थे। वह पहले गोशालक का अनुयायी था। सुदर्शन सेठ की समता तथा सहनशीलता की भावना से प्रेरित हो अर्जुनमाली की नृशंस क्रूरता हवा हो गई थी और उसने भगवान् के पास आकर दीक्षा ग्रहण की। जन्मना जातिभेद के विरुद्ध भगवान् ने जो आन्दोलन किया, उससे पददलित और निम्न वर्ग के लोगों को आश्वासन मिला और वे अपनी अपनी योग्यता के अनुसार उन्नति करने लगे। भगवान् महावीर के बाद होने वाले आचार्यों ने भी जन्मना जाति का विरोध किया और गुण-कर्म को प्रधानता दी। प्रमेय-कमल-मार्तण्ड में श्री प्रभाचन्द्र ने जातिवाद का युक्तिपुरस्सर खण्डन किया है।

भगवान् महावीर के इस आन्दोलन में उन के समकालीन महात्मा बुद्ध ने भी पूरा योग दिया। मज्झिमनिकाय में वर्णन है कि आश्वलायन माणवक ने गौतम बुद्ध से ब्राह्मण वर्ण की श्रेष्ठता के विषय में प्रश्न किया। उन्होंने उत्तर दिया, "अन्य वर्णों की तरह ब्राह्मण भी रज और वीर्य के संयोग से उत्पन्न होते हैं, फिर इस वर्ण को अन्य वर्णों की अपेक्षा कैसे उत्तम कहा जा सकता है ?....पंडित और अपंडित दोनों भाइयों में श्राद्ध आदि के अवसर पर पहले पंडित को ही भोजनादि कराया जाता है, इस से भी सिद्ध है कि जाति से ब्राह्मण नहीं होता।" वासेट्ठ सुत्त में भी कहा है, "माता की योनि में उत्पन्न होने के कारण कोई ब्राह्मण नहीं होता। जिस के गुण-कर्म जैसे होते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह वैसा कहा जाता है।......सच्चा ब्राह्मण वह है जो अपरिग्रही है, निर्भय है तथा संग और आसक्ति से रहित है।" धम्मपद में सच्चे ब्राह्मण का विस्तार से स्वरूप बताते हुए कहा है, "जिस के मन, वचन और काय से पाप नहीं होते उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है, जिस में सत्य और धर्म है वही पवित्र और वही ब्राह्मण है। क्षमा-बल ही जिस की सेना का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। जो विरोधियों के बीच विरोध रहित रहता है, जो दंडधारियों के बीच दण्ड रहित है, संग्रहकर्त्ताओं में जो संग्रहरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"

उपनिषद् में भी जन्मना जातिवाद का विरोध पाया जाता है। वज्र सूचिका उपनिषद् में वर्णन है कि जीव ब्राह्मण नहीं, वह नाना जातीय देहों में एक रूप से है। देह भी ब्राह्मण नहीं, वह पंचभूत निर्मित है और सब एक तरह के हैं। देह को ब्राह्मण माना जाय तो पिता की मृत देह का दाह ब्रह्म-हत्या होगा। जाति भी ब्राह्मण नहीं, मनुष्यभिन्न अन्य जातियों में भी महर्षि हुए हैं। जैसे कि-मृगी से ऋष्यश्रृंग हुए, कुश से कौशिक, जम्बूक से जाम्बूक, शशपृष्ठ से गौतम, उर्वशी से वशिष्ठ, कलश से अगस्त्य। ज्ञान भी ब्राह्मण नहीं, अनेक क्षत्रिय परमार्थदर्शी हो गए हैं। धर्म भी ब्राह्मण नहीं, अन्य वर्ण वाले भी सुवर्ण दान करते हैं। अतः ब्राह्मण वही है जो जाति, गुण, क्रिया विहीन आत्मा का साक्षात्कार करता हो।"

महावीर और बुद्ध के उपदेश का प्रभाव वैदिक धर्म के माननेवालों पर भी पड़ा और बहुत से विचारक यह मानने लगे कि जन्म से जाति का निर्णय नहीं किया जा सकता। महाभारत के वनपर्व में युधिष्ठिर सर्पयोनि में आए हुए महाराज नहुष को बताते हैं कि गुण ही ब्राह्मणत्व का आधार है। जाति तो दुःपरीक्ष्य है। सभी नर सभी नारियों में सन्तानोत्पत्ति करते हैं। अतः वृत्त या आचार ही द्विजत्व का कारण है। इसी प्रकार बौद्ध तत्त्ववेत्ता आर्यरक्षित ने 'तत्त्वसंग्रह' में जन्म के आधार पर जातियों के निर्णय की अशक्यता बताते हुए कहा है, "बहुत समय बीत चुका, स्त्रियों के स्वभाव की चञ्चलता ज्ञात ही है, अतः आप में भी ब्राह्मणत्व विद्यमान है, यह निश्चय करना संभव नहीं।"

इस से यही निष्कर्ष निकलता है कि भगवान् महावीर ने जातिभेद के विरुद्ध जो विचार प्रगट किए उन पर मनीषियों ने गहराई से विचार किया। किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं हो सकता कि महावीर और बुद्ध भिक्षुसंघ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही इस अन्याय को दूर कर सके। व्यवहार में जातिभेद की जड़ें मज़बूत जमी रहीं। बौद्ध तो भारत में रहे नहीं, जैनों ने अपने जीवन में इस के सामने घुटने टेक दिए। हमारा सौभाग्य है कि महात्मा गांधी ने सामाजिक जीवन से इस कोढ़ को दूर करने का प्रण किया। आज भारत के संविधान के अनुसार जातिगत भेद और अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया गया है। 'सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य' भारत में प्रथम महावीर जयन्ती के मनाने का सब से श्रेष्ठ उपाय यही है कि उस दिन महावीर के नामलेवा अपने अपने धार्मिक स्थानों को सब के लिए खोल दें; महावीर के विश्वहितकारी सन्देश के सुनने से किसी को वंचित न किया जाय और यह प्रतिज्ञा की जाय कि हम अपने व्यवहार में अस्पृश्यता और जातिभेद को स्थान न देंगे। 'श्रमण' के मार्च के अंक में श्री इन्द्र एम०ए० ने उस दिन के लिए समाज के सामने कुछ सुझाव रखे हैं। वे अभिनन्दनीय हैं और उन्हें अमल में लाना ही श्रेयस्कर है।

मनुष्य अपनी शक्ति से अपरचित रह कर ही निर्बल बना है। जब वह अपनी शक्ति को पहचान लेगा, तब उसे अपनी गहरी भूल का पता लगेगा। उस समय वह सहज ही समझ लेगा कि तमाम दुनिया और देवताओं का बल एक ओर है और मेरा बल दूसरी ओर है। फिर भी मैं अधिक सबल हूँ।

आचार्य जवाहर

जनता की सेवा करना और निरहंकार होना ये दो बातें नहीं हैं। अगर सेवा निरहंकार नहीं होती है, उसमें अभिमान है तो सेवा करने वाला अपने हाथों से ही उसें शून्यवत् बना देता है। अगर हमने ढोरों को चराने के लिए घास इकट्ठा कर लिया और अपने हाथों से उसमें आग लगा दी तो जैसे वह सारा घास निकम्मा हो जाता है और उससे इष्ट कार्य नहीं होता है, बल्कि आग लगाने में ही उसकी मदद हुई। वैसे ही अगर हम सेवा करते हैं और अहंकार भी रखते हैं तो उस सारी सेवा को आग लगा देते हैं। उससे सेवा नष्ट होती है और दूसरों को भी तकलीफ़ होने की एक सम्भावना पैदा होती है।

आचार्य विनोबा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुनियादी सुधार–

–श्री उमाशङ्कर त्रिपाठी, आचार्य–बाल निकेतन, जोधपुर

आज दुनियाँ के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक बेचैनी और परेशानी फैली हुई है। धनी और निर्धन, विद्वान् और अनपढ़, बली और निर्बल सभी आज की विषम तथा जटिल परिस्थितियों से बेज़ार हो रहे हैं। कहीं शान्ति का नाम नहीं। कहीं सुख का निशान नहीं। उलझनें कुछ ऐसी हैं कि ज्यों ज्यों सुलझाई जाती हैं त्यों त्यों और उलझती ही चली जाती हैं। गहराई से सोचने पर ऐसा लगता है कि इन सब ख़ुराफ़ातों का एक ही कारण हो सकता है। वह है मानव के अज्ञात मन की जटिलता।

आज का मानव जीवन उलझनों और समस्याओं का केन्द्र बना हुआ है। मानव इतना जटिल बन गया है कि आज वह ख़ुद अपने आप को ही नहीं समझ पा रहा है। वह अपने आप को ही अपने वश में नहीं रखने पा रहा है। वह बिलकुल असहाय बन गया है। दीन बन गया है। वह आज हवा को अपने वश में कर सकता है। बिजली को अपने इशारे पर नचा सकता है; लेकिन वह ख़ुद हीनतम शक्तियों के इशारे पर नाचता है। बुरी तरह नाचता है। जो स्वयं ही जटिल है, दीन है वह दूसरों की जटिलता को, दीनता को किस प्रकार दूर कर सकता है? अगर मानव मन की गुत्थियों को किसी तरह सुलझाया जा सके तो संसार की गुत्थियाँ अपने आप ही सुलझ जाएँगी। समस्त समस्याओं को पैदा करने वाला तो मानव का जटिल मन ही है। अतः समस्याओं का असली हल मानव के अंदर खोजना है। देशों की सीमाओं पर नहीं।

अभी तक मानव मन की जटिलता को समझने का कम ही प्रयत्न किया गया है। विश्व के नव निर्माण के जितने भी आन्दोलन हुए हैं उन में से अधिक बाहरी जज़्बातों को लेकर ही हुए हैं। बापू जी ने अपना सारा जोर हृदय-मंथन और हृदय-परिवर्तन पर लगाया था। पर अन्य बड़ी बड़ी उलझनों के कारण वे इसकी सीमा को अधिक विस्तार न दे सके। बापू जी के पहले भी कितने ही महामानवों ने संसार को बदलने का प्रयत्न किया था। जनता एक बार हिली, आगे बढ़ी। उसने संयम सीखा। उसके अंदर दया और भाईचारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भावना बढ़ी। जिस आन्दोलन ने जितना ही अधिक हृदय-परिवर्तन किया वह उतना ही अधिक टिकाऊ बन सका। लेकिन चूँकि इन आन्दोलनों की आत्मा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कोई बुनियादी कदम नहीं उठाया गया था; अतः मानव का अज्ञात और उलझा हुआ मन उसको फिर उसी पुरानी रट में घसीट ले गया। और दुनियाँ में फिर वही मारकाट और लूटखसोट शुरू हो गई। हार कर आदमी ने यह मानना शुरू कर दिया कि यह तो प्रकृति का नियम ही है। संसार इसी प्रकार चलता है।

अगर हम जरा गहराई से सोचें तो यह बात बिलकुल गलत लगेगी। जब मानव की आत्मा को हम परम पवित्र मानते हैं, परम शुद्ध मानते हैं तब लूटखसोट प्रकृति का आम नियम कैसे कबूल किया जा सकता है। थोड़ा विचार करने से मालूम होगा कि हम सुधार के मूल तत्त्वों में ही भारी भूल कर जाते हैं। सुधार का कार्य बुनियाद से न शुरू करके दीवारों से शुरू होगा तो इमारत खड़ी ही कैसे हो सकेगी। संसार की शान्ति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए मानवमात्र की विचार धारा को, उसके अज्ञात मन को बदलना होगा। सुशिक्षित करना होगा। यह कार्य जितनी मजबूती से किया जायगा। उतनी ही मज़बत विश्वशान्ति की नींव होगी। अगर संसार का प्रत्येक मनुष्य दूसरों के कल्याण की बात सोचने की आदत डाल ले तो कटुता और हिंसा की भावनाएँ अपनी मौत मर जाएँ। यह काम प्रचार अथवा भाषणों और मीटिंगों से नहीं किया जा सकता है। इन साधनों से केवल ऊपरी, काम चलाऊ हल निकल सकता है पर वह स्थायी नहीं रह सकता।

इसके लिए हमको शक्तियों के महापुंज, जीवन के केन्द्र 'बालक' की ओर जाना होगा। बालक को विश्व कल्याण तथा विश्व शान्ति का माध्यम बनाना होगा। यह बात अगर लोगों की समझ में ठीक ठीक आ जाय तो देखते ही देखते विश्व की कायापलट हो जाय। संसार में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाय। मारकाट तथा एटम बम की समस्या अपने आप ही हल हो जाय। यह स्थिति उस समय तक कायम रह सकती है जबतक जान बूझ कर इसके मूल स्रोत में फिर से ज़हर न घोल दिया जाय।

बालक की महान् शक्तियों के बारे में मुझे कुछ नहीं लिखना है। वे सब विदित हैं। विज्ञान की तरह बालक की इन महान् शक्तियों का भी अब तक दुरुपयोग ही किया गया है। परिणाम स्वरूप इसकी विकृत शक्तियों ने संसार में तबाही फैला दी है। हिटलर ने जर्मनी के बालकों के अंदर संकुचित राष्ट्रीयता का ज़हर भरा। मुसोलिनी ने इटली के बालकों के अंदर भी वही ज़हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरा। इसके फलस्वरूप दुनियाँ में दूसरे महायुद्ध की तबाही फैली। यह दृष्टिकोण अब भी बदला नहीं है। अब भी विभिन्न देशों के बालकों को उसी देश के संकुचित दायरे में बन्द करने की कोशिश की जाती है। आज अपने देश में भी बालकों के अन्दर प्रान्तीयता, जातीयता के कड़वे बीज बोए जाते हैं। परिणाम-स्वरूप बालकों का साफ और स्वच्छ हृदय दूषित और विषाक्त हो जाता है। यह विष सारे संसार के सुख और शान्ति को ख़तम कर देता है। आश्चर्य तो इस बात का है कि एटम बम के कन्ट्रोल की चर्चाएँ होती हैं। अन्य सुरक्षा संबन्धी चर्चाएँ भी होती हैं। परन्तु इस ज़हरबन्दी की चर्चा कोई नहीं करता है। यह ज़हर जो मानवता की आत्मा को ही विषाक्त बना देता है।

जब तक इस परम सत्य की ओर, इस बुनियादी उसूल की ओर संसार का ध्यान नहीं जाएगा तब तक इन समस्याओं का कोई भी स्थायी हल नहीं निकल सकेगा। स्थायी हल के लिए हमको दुनियाँ में सच्ची शिक्षा, जीवन की शिक्षा, मानव मात्र के विकास की शिक्षा का प्रचार करना होगा। अभी तक शिक्षा का अर्थ केवल दिमाग़ी ज्ञान-भण्डार को ही बढ़ाना था। इस शिक्षा का हृदय से, जीवन के विकास से कोई संबन्ध नहीं था। फलस्वरूप शिक्षा और जीवन के बीच एक गहरी खाई पड़ गई। जीवन के प्रति शिक्षा का उत्तरदायित्व समाप्त हो गया। इस से जीवन का प्रवाह विषैला हो गया। मानव के शिक्षित दिमाग़ नें, ज्ञानी दिमाग़ ने, मानव की बुद्धि ने—ख़ुद अपनी ही तबाही के साधन जुटाए। मानव अपनी संस्कृति, अपने विकास को जड़मूल से खोद फेंकने की तैयारियों में जुट गया। मनुष्य की दूषित बुद्धि ने इस को सभ्यता की सीढ़ी माना। वह इस पर तेज़ी से चढ़ती गई-चढ़ती ही गई।

जिन लोगों की बुद्धि को आज की शिक्षा ने दूषित नहीं किया था वे ठहर गए। तबाही का विशाल गर्त उन को दिखाई पड़ा। वे रुके। उन्होंने वास्तविकता को देखा। सोचा-समझा। तब बताया कि आज की शिक्षा व्यर्थ ही नहीं, हमारे लिए यह विषैली भी है। इस से आदमी का दिमाग़ ख़राब किया जा सकता है। वह बड़ी आसानी से पशु बन जाता है। शिक्षा ऐसी हो जो आदमी को आदमी बनाए। उसके सुन्दर गुणों का विकास करे। और अगर आदमी के सुन्दर गुणों का विकास हो तो फिर जानवरों की तरह एक दूसरे को काटने कौन दौड़ेगा? ऐटम बम बना कर संसार में तबाही फैलाने की बात कौन सोचेगा? कुछ लोगों की समझ में आ गया कि शिक्षा मनुष्य के समग्र जीवन के विकास के लिए ही होनी चाहिए केवल दिमाग़ के लिए नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब दूसरा सवाल यह उठता है कि शिक्षा कितनी उम्र के बालकों से शुरू करनी चाहिए। अभी तक आम तौर पर जब बालक चलने फिरने, अच्छी तरह बातचीत करने लायक हो जाता था; तभी उसकी पढ़ाई शुरू की जाती थी। पर अब तो दुनियाँ के समस्त शिक्षाशास्त्रियों ने यह बात एक मत से स्वीकार कर ली है कि ५–६ वर्ष तक संस्कारों की दृष्टि से बालक का समस्त विकास पूरा हो जाता है। यानी ५–६ वर्ष की आयु तक बालक को जो कुछ बनना होता है बन जाता है। और जब हम बालक की पढ़ाई शुरू करते हैं तब पके पकाए घड़े के ऊपर चित्रकारी मात्र का काम करते हैं। तो जीवन की शिक्षा का कार्य तो उसी समय से शुरू हो जाना चाहिए जब बच्चा पहले पहल पृथ्वी माँ की गोद में आता है। बच्चा जितना ही छोटा होगा उस के अंदर भले-बुरे संस्कार उतनी ही आसानी से बैठ सकेंगे। बचपन में बैठे हुए ये संस्कार जीवन पर्यन्त नष्ट नहीं किए जा सकते हैं। अगर बचपन में ही बच्चे के अन्दर विश्व बन्धुत्व के सुन्दर बीज बो दिए जाएँ तो संसार में हजारों वर्षों तक युद्ध तथा परेशानियों का नाम तक न सुनाई दे। अगर बचपन से ही बच्चों के अंदर सत्य और अहिंसा के लिए मर मिटने की भावना भरी जाय तो करोड़ों हिटलर भी संसार को युद्ध की ज्वालाओं में झोंकने के प्रयत्न में सफल नहीं हो सकेंगे।

अगर सारे संसार में इस प्रकार की जीवन शिक्षा का प्रचार हो तो हज़ारों सालों तक संसार की शान्ति क़ायम रह सकती है। राष्ट्रसंघ का स्थान विश्व शिक्षा-समिति ले लेगी। वहाँ सारे संसार के लिए शिक्षा के नियम बनाए जाएँगे। सारे संसार में जीवन शिक्षा का एक ही मधुर स्रोत बहेगा। तब न बड़ी बड़ी सेनाओं की आवश्यकता होगी न संहारक हथियारों की। सारे विश्व के बालक एक होंगे। तब विश्व में सुख और शान्ति की वर्षा होगी। न कोई शोषक होगा न कोई शोषित होगा। सब में भाईचारे की भावना होगी। प्रत्येक व्यक्ति मानव कल्याण के बारे में ही सोचेगा, आत्मानुशासन का उदय होगा। सभी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार आगे बढ़ेंगे। बचपन से ही अगर विश्व कल्याण की भावना बच्चों के रग रग में समा जाएगी तो संघातक हथियार बनाने की बात भी किसी के दिमाग़ में नहीं आएगी। आज की समस्त ख़राबियों को हल करने का यही एक स्थायी तरीका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्र के मापदण्ड—

—इन्द्र एम० ए०

क्या आप जैन हैं ?

यदि हाँ, तो ध्यान रखिए, जैन वही हो सकता है जिस के अनन्तानुबन्धी कषाय नहीं है। यदि किसी के साथ आप का वैर एक वर्ष तक चलता रहता है तो इसका अर्थ है आपके अनन्तानुबन्धी कषाय है। उस पर विजय प्राप्त करके ही आप जैन बन सकते हैं। अप्रत्याख्यानावरण की उत्कृष्ट अवधि एक वर्ष है। जब आपका क्रोध; आपका अभिमान, आप की कपटभावना और आप का लोभ इस सीमा के भीतर आजाएगा तभी आप कह सकते हैं कि मैं जैन हूँ। इस के बिना कोई वेशभूषा या बाह्यक्रिया आपको जैन नहीं बना सकती।

क्या आप श्रावक हैं ?

यदि हाँ, तो ध्यान रखिए, श्रावक वही हो सकता है जिस के अप्रत्याख्यानावरण कषाय नहीं है। यदि किसी के साथ आपका वैर विरोध चार महीने से अधिक चलता है तो समझ लीजिए आपके अप्रत्याख्यातावरण कषाय है। उस पर विजय प्राप्त करके ही आप श्रावक बन सकते हैं। प्रत्याख्यानावरण की उत्कृष्ट अवधि चार मास है। जब आपका क्रोध, आप का अभिमान, आपकी कपटभावना और आपका लोभ इस सीमा के भीतर आ जाएगा तभी आप कह सकते हैं कि 'मैं श्रावक हूँ।' इसके बिना कोई बाह्यक्रिया आप को श्रावक नहीं बना सकती। अपनी आत्मा से पूछ कर निर्णय कीजिए।

क्या आप साधु हैं ?

यदि हाँ, तो ध्यान रखिए, साधु वही हो सकता है जिस के प्रत्याख्यानावरण कषाय नहीं है। यदि आप का वैरविरोध या कलह—वह सांप्रदायिक हो या वैयक्तिक, पन्द्रह दिन से अधिक चलता है तो समझ लीजिए आप के प्रत्याख्यानावरण कषाय विद्यमान है। इसका अर्थ है आप साधु नहीं हैं। संज्वलन कषाय की उत्कृष्ट अवधि पन्द्रह दिन है। क्या आप का क्रोध पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में खींची गई लकीर के समान उत्पत्ति के साथ ही मिटता जाता है ? क्या आप ने अभिमान पर विजय प्राप्त कर ली है ? क्या आप कपट से दूर रहते हैं, आप के मन और वाणी में किसी प्रकार का अन्तर तो नहीं रहता ? आप वस्त्र, पात्र तथा शिष्यों का लोभ तो नहीं करते ? अपनी कीर्ति और मान प्रतिष्ठा के लिए आप प्रपञ्च तो नहीं रचते ? शासन प्रभावना के नाम से आप अपनी वैयक्तिक अस्मिता को पोषण तो नहीं देते ?

याद रखिए, यदि आप में ये बातें विद्यमान हैं तो अपने को-साधु मत कहिए। साधु न होने पर भी अपने को साधु कहना मिथ्यात्व है। दुगुना पाप है। अपनी आत्मा से पूछकर निर्णय कीजिए।

भगवान् महावीर ने चरित्र के विषय में जो मापदण्ड (measurements) बनाए हैं उनसे अपनी आत्मा को नापिए और फिर समझिए, आप किस स्तर पर हैं। ऊँचे स्तर पर चढ़ने का प्रयत्न कीजिए किन्तु तब तक अपने को उस स्तर पर आरूढ़ मत मानिए जब तक नापदण्ड के अनुसार आप खरे न उतरें। जैन के स्तर पर बिना पहुँचे अपने को जैन मानना आत्मवञ्चना है। श्रावक के गुण बिना प्राप्त किये अपने को श्रावक मानना आत्मवञ्चना है। साधुत्व को विना प्राप्त किए अपने को साधु मानना आत्मवञ्चना है। उस स्तर को प्राप्त किए बिना दूसरों के सामनें वैसी घोषणा करना या प्रदर्शन करना तो आत्मवञ्चना के साथ साथ लोकवञ्चना भी है।

अपने आप विचार कीजिए और सरल हृदय से निश्चय कीजिए।

मनौती

एक आदमी का बैल खो गया। जंगल में बहुत ढूँढा किन्तु कहीं पता न लगा। थक कर उसने एक देवी की मनौती की। उसने कहा—"हे खोड़िया माई ! यदि मेरा बैल मिल गया तो तुझे एक बकरा चढ़ाऊँगा।" जंगल में गहरे घुसने पर उसने झरने के किनारे देखा कि एक शेर ने उसके प्यारे बैल को दबा रखा है। वह डर गया और अपनी जान बचाने की चिन्ता करने लगा।

उसने उसी समय दूसरी मनौती की—"हे खोड़िया माई ! यदि मैं शेर के पंजों से बच गया, तो इसी बैल को तुझे चढ़ा दूंगा।"

—ईसप बोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री-शिक्षा—

—कुमारी कान्ता जैन, पट्टी

सैकड़ों वर्षों की पराधीनता के बंधनों से मुक्त होकर आज हमारा देश आज़ादी की हवा में साँस ले रहा है। अब हमें अपनी चौमुखी उन्नति के स्वर्ण अवसर प्राप्त हुए हैं। हमें अपने भविष्य का निर्माण स्वयं करना है। यह बात प्रत्येक भारतीय नरनारी में अनुपम उत्साह का सञ्चार करती है। भविष्य को समुन्नत बनाने के लिए हमें भूत काल से शिक्षा लेनी है और अपनी वर्तमान परिस्थिति का अवलोकन करना है। हमें यह तो स्वीकार करना होगा कि आज हमारा नैतिक जीवन भ्रष्ट हो चुका है, दरिद्रता और भूख ने हमें निर्बल कर दिया है। बहुत सी बातों के लिए हम दूसरे देशों के मुहताज हैं। अपनी कमज़ोरियों को दूर करने तथा बुराइयों से बचने का एक मुख्य उपाय सच्ची व समुचित शिक्षा का प्रचार है। शिक्षा के अभाव में उन्नति की आशा व्यर्थ है। दूसरे राष्ट्रों की अपेक्षा हमारे देश में तो शिक्षा की बहुत कमी पाई जाती है। यहाँ पर अगर देखा जाए तो दश प्रतिशत मनुष्य और केवल दो या तीन प्रतिशत औरतें हमें पढ़ी लिखी मिलेंगी। जिस देश के असंख्य नरनारी घोर अज्ञानान्धकार के वातावरण में साँस ले रहे हों तो वह देश सबसे पिछड़ा हुआ क्यों न होगा? धीरे धीरे पुरुष समाज तो अपनी कुंभकरणी निद्रा से करवट ले रहा है परन्तु स्त्री समाज में अभी यह कमी ज्यों की त्यों बनी हुई है। तिस पर भी दूसरी स्त्रियों की अपेक्षा जैन समाज की स्त्रियों का स्टैन्डर्ड तो बहुत ही न्यून है। अगर यही कहा जाए कि जैनी अपनी स्त्रियों व लड़कियों को उच्चशिक्षा प्रायः देते ही नहीं तो कोई अत्युक्ति न होगी। लड़कों के लिए तो आपको गुरुकुल, स्कूल व कालेज मिल जाएँगे, परन्तु लड़कियों के लिए बहुत ही कम। अगर पुरुष को पढ़ने का अधिकार प्राप्त है तो क्या स्त्रियों को पशु बनकर ही जीने का दुर्भाग्य प्राप्त है? मनुष्य ज्ञानबल से विकसित होना चाहता है तो क्या स्त्रियाँ सुशिक्षिता होकर उन्नत बनना नहीं चाहतीं?

आज कल समानता का युग है। चारों तरफ़ से आज अपने खोए हुए अधिकारों को प्राप्त करने के लिए बड़े बड़े आन्दोलन चल रहे हैं। कोई भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य अपने अधिकारों से वंचित रह कर नीचता का जीवन व्यतीत नहीं करना चाहता। स्त्री भी मानव है और पुरुष भी मानव। दोनों को ही मानव बनकर सच्ची मानवता के अनुरूप जीवन बिताने का अधिकार है। गृहस्थ जीवन एक गाड़ी है जिसके स्त्री और पुरुष दो पहिये हैं। दो समान पहियों वाली गाड़ी अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कर लेती है। जब तक जगत में स्त्री और पुरुष का यथोचित समान अधिकार रहा तब तक जगत का कार्य सुचारु रूप से चलता रहा। समय समय पर पैदा होने वाली असमानता को दूर करने के लिए महापुरुषों ने अनेक सफल प्रयत्न किए। आज की स्त्री को भी अपनी अधम दशा से जागरित करने का श्रेय महात्मा गांधी जी को है, जिन्होंने स्त्री को अपने शुद्ध स्वरूप तथा वास्तविक गुणों को पहचानने के लिए प्रेरित किया, सम्मान तथा अधिकारों से वंचित स्त्री को उठने के लिए आत्म शक्ति दी। आज राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में काम करती हुई जो चन्द एक महिलाएँ हमें दृष्टिगोचर होती हैं, वह उन्हीं की मेहनत का मीठा फल । हमें भारत का स्वर्णाक्षरों में अंकित प्राचीन इतिहास स्पष्ट रूप से यह बतलाता है कि उस समय की सती शिरोमणि चन्दनबाला, सीता तथा सावित्री आज की स्त्रियों से विलक्षण थीं। उन्हें अपने कर्त्तव्य पथ, धर्म व कर्म का पूरा पूरा ज्ञान था। उनकी सच्ची शिक्षा पुरुषों से किसी भी प्रकार कम न थी। वे वीरांगनाएँ थीं। अगर आज की दशा में वे अपने आप को पातीं तो शायद इतिहासकार की लेखनी को अपनी तरफ़ न खींच सकतीं।

हमारा अधःपतन कब से आरम्भ हुआ, हम कब उस दिव्य युग से इस अधोयुग में आ गिरे, इसकी थाह पाना तो शायद दुष्कर होगा। हाँ, इतना मैं अवश्य कह सकती हूँ कि जब तक पुरुष स्त्री को सच्चे अर्थों में अपनी अर्धाङ्गिनी समझता रहा तथा यथेष्ट सम्मान व आदर से उसे सुशोभित करता रहा, उस समय तक पुरुष समाज उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था। उस समय का युग सचमुच स्वर्ण युग था।

आज का अनुदार मनुष्य स्त्री को अपने पाओं की जूती तथा दासी समझता है। वह इसे अपनी जायदाद समझ कर पेटी तथा चार दीवारी में बन्द रखना चाहता है ताकि इसे भी कहीं चोर उड़ा कर न ले जायँ। पुरुष ने रक्षण की जगह स्त्री के वास्तविक गुणों का भक्षण किया है। वह इसे एक सच्चे मित्र तथा जीवन साथी के रूप में नहीं देखता बल्कि उसे विलासिता की मशीनरी समझता है। उसने उसे अज्ञान के अंधेरे कुएँ में ढकेल कर सबला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अवला बना दिया है। ऐसे कई अमानुषिक अत्याचार पुरुष ने मदान्ध होकर स्त्री के साथ किए जिनका भयंकर परिणाम आज वह चकित होकर देख रहा है। आज समाज की जड़ में बहुत सी बुरी कुरीतियाँ घर कर चुकी हैं जो समाज की नींव को दिन प्रतिदिन खोखला कर रही हैं। क्या कभी पुरुष समाज ने इस पर गौर किया? अगर किया होता तो आज हमारी दशा कुछ और ही होती। सब बुराइयों का मूल है अज्ञान। अगर मूल को ही नष्ट कर दिया जाए तो वृक्ष के पनपने की कोई आशा ही नहीं रह जाती। मैं पुरुषों को चेतावनी देना चाहती हूँ अगर अब भी उन्होंने स्त्री शिक्षा की ओर कोई विशेष पग न उठाया तो वह दिन दूर नहीं है जब कि समाज का बहुत देर से कमजोर हुआ यह ढांचा शीघ्र ही गिर जाएगा।

किसी देश, किसी कौम अथवा समाज की उन्नति करना हो तो सबसे पहले उस देश, कौम व समाज की स्त्रियों को उन्नत बनाना होगा। उन्हें उच्च से उच्च शिक्षा देनी होगी। हर तरह से उन्हें उठने के लिए स्वतन्त्रता देनी होगी। किसी भी अधिकार से उन्हें वंचित नहीं रखना होगा। क्योंकि स्त्रियाँ ही देश व कौम की निर्माण करने वाली होती हैं Woman is the foundation of a nation. देश का उज्ज्वल भविष्य इनकी गोद में छुपा हुआ होता है। अगर स्त्रियाँ सुशिक्षिता, बुद्धिमती, विदुषी, वीर तथा धीर होंगी तो वे ही वीर अभिमन्यु, अर्जुन, भीम, गांधी, महावीर व जवाहर और पटेल जैसे लाल पैदा करेंगी। क्योंकि जैसा बीज व भूमि होती है वैसा ही फल लगता है। कहा भी है 'माताएँ गर वीर बनें तो बच्चे भी रणधीर बनें।'

प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव जिन्होंने उस काल में असि, मसि, व कृषि की सर्व प्रथम शिक्षा दी थी, स्त्री शिक्षा के महत्त्व को भली भांति समझते थे। इसीलिए उन्होंने सब से पहले अपनी दोनों लड़कियों ब्राह्मी और सुन्दरी को शिक्षा दी थी।

कई बड़े बूढ़ों का विचार है कि पढ़ने लिखने से लड़कियाँ अच्छी नहीं रहतीं या आम धारणा यह है कि क्या पढ लिखकर लड़कियों ने नौकरी का पेशा करना है। उन लोगों को भी भली प्रकार से जान लेना चाहिए कि एक अनपढ़ और अशिक्षित पुरुष समाज और देश के लिए इतना हानिकर नहीं हो सकता, जितनी एक अशिक्षिता औरत। आप देख सकते हैं कि एक पढ़ी लिखी सभ्य बहू जब अपने सुसराल जाती है, कैसे उसे अपने सास ससुर तथा बड़े बूढ़ों की सेवा भक्ति, विनय आदर का ख़याल रहता है। कैसे वह अपनी घर गृहस्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सुयोग्य रीति और सुचारु रूप से चलाती है। बच्चों को कितने सुन्दर ढं से उत्तम से उत्तम शिक्षा देती है। जबकि अनपढ़ औरतें किसी की निन्दा, चुगली कलह और बच्चों को बुरी से बुरी बातें सिखाने में अपना कीमती समय गँवाती हैं। ऐसी स्त्रियाँ देश की उन्नति की बजाय उसके लिए भार स्वरूप तथा अन कारिणी होती हैं। किसी भी चीज़ के संस्कार जो बाल्यावस्था में पड़ सकते हैं बड़े होने पर नहीं। बालकों का अधिकतर समय माता के साथ व्यतीत होता है आज जैन समाज क्यों सबसे पिछड़ा हुआ है ? समुचित शिक्षा का अभाव ही इसका कारण है। अगर हमें भी जमाने की दौड़ के साथ मिलना है तो सबसे पहले इस शोचनीय अवस्था से ऊपर उठना होगा । ताकि उन वीरस्त्रियों के वी बच्चे हों जो देश के भविष्य के रंगमंच पर वीरता से पूर्ण खेल खेल सकें।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर तथा महात्मा बुद्ध ने शू और स्त्रियों की पुकार को सुना था। उन्होंने उनके लिए समानता की घोषणा की थी। वर्तमान युग में महात्मा गांधी ने उसी नाद को बजाया है। क्या पु समाज इन महापुरुषों के सन्देश पर श्रद्धा के फूल न चढ़ाएगा ? नारी जाति को भी इन महापुरुषों की जीवनी से यह शिक्षा लेनी है कि वह दूसरों के सहारे की आशा छोड़कर स्वावलम्बिनी बनने का प्रण करें। समान अधिकार और शिक्षा के अवसर प्राप्त कर ही वे राष्ट्र की सच्ची नागरिक बन सकती हैं।

शरीर का उपयोग

शरीर के जरिए तुमने आत्मा को प्यार करना सीखा, लेकिन उस प्यार को क़ायम रखने के लिए अब तुम्हें शरीर की जरूरत नहीं है। यह ठीक है कि जब तक शरीर का उपयोग है, तब तक वह बना रहे। यह भी उतना ही ठीक है कि उपयोग न रहने पर उस का नाश हो जाय। और चूंकि हम नहीं जानते कि शरीर का उपयोग कब ख़तम हो जाएगा, इसलिए हम इस नतीजे पर आते हैं कि किसी भी कारण से होने वाली मौत यह बताती है कि शरीर का उपयोग ख़तम हो चुका।

—महात्मा गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे समाज-निर्माता

सेठ भैरोदान जी सेठिया, बीकानेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेठ भैरोदानजी सेठिया-

—इन्द्र एम० ए०

व्यक्तित्व

मानवदेह में देवता

देवों के लिए कहा जाता है कि वे बूढ़े नहीं होते। जन्म लेते हैं, जवान होते हैं और शरीर को छोड़ देते हैं। इसी लिए उन्हें निर्जर या त्रिदश कहा जाता है। हम एक ऐसे व्यक्ति का परिचय दे रहे हैं जो मानव है, स्थूल देहधारी है किन्तु बुढ़ापे को जीत चुका है। जो नौ वर्ष की आयु में अपने पैरों पर खड़ा हुआ और ८५ वर्ष बीतने पर भी ज्यों का त्यों खड़ा है। विपत्तियों के बादल आए और बिखर गए। तूफान आए और चले गए। वह अपने पथ अडिग होकर चलता रहा और अब भी चल रहा है। विपत्ति ने उसे दृढ़ बनाया, बाधाओं ने नया उत्साह दिया, उलझनों ने नई दृष्टि दी। अब भी उस में नवयुवक सा उत्साह है, सैनिक सी दृढ़ता है और बालक सी सरलता है।

जीवन का सिद्धान्त

आप किसी समय पहुँच जाइए वे विश्राम करते हुए न मिलेंगे। वे कहते हैं—"परिश्रम मेरे जीवन का सहारा है। मैं इसी के बल पर जी रहा हूँ। मैं नहीं चाहता जीवन में खाली बैठने की घड़ी आए।" यही कारण है जब लोग अपनी पुरानी योजनाओं को समेटने में लगे होते हैं, सेठिया जी नई नई योजनाएँ बनाने में संलग्न हैं। केवल बनाते ही नहीं उन्हें कार्यरूप में भी परिणत करते हैं और नई सन्तति चकित होकर देखती रह जाती है।

अपने सेवक आप

उनके पास नौकर हैं, विशाल परिवार है, आज्ञा पर आग में कूदने वाले पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र हैं। किन्तु फिर भी प्यास लगने पर वे किसी को पानी लाने के लिए नहीं कहते। दूसरे को कहने की अपेक्षा उन्हें स्वयं उठने में अधिक आनन्द आता है। वे इस के लिए कभी आलस्य या अशक्ति का अनुभव नहीं करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान नहीं, समर्पण

उन्होंने अपने हाथ से लाखों रुपए कमाए और लाखों दान दिए, नहीं अर्पित किए। किसी को दे कर आपने यह नहीं माना कि मैंने उपकार कि है किन्तु उसे अपने ही कर्तव्य पालन का एक अंग समझा। लोकसेवा के लि केवल धन देकर छुट्टी नहीं ली, धन के साथ तन दिया और मन दिया। अप जीवन भी उसी के लिए अर्पित कर दिया और वह भी उसी निष्ठा और लग के साथ जो लाखों रुपए कमाने में थी।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति

संसार में लोग प्रतिक्षण मर रहे हैं। संचित प्राण शक्ति को भोग रहे हैं किन्तु सेठिया जी प्रतिक्षण नया जीवन प्राप्त कर रहे हैं। प्रत्येक नया क्षण उ के लिए नया सन्देश और नई प्रेरणा लेकर आता है।

उल्लास

आप मिलने जाएंगे तो उनका हृदय हर्ष से उछलने लगेगा। वे अपने आप भूल जाएँगे। स्वयं खड़े होकर स्वागत करेंगे, रसोइए को भोजन के लिए कह जाएँगे। इस बात का कभी ध्यान नहीं रहता कि आगन्तुक छोटा है या बड़ा।

समयज्ञ

सेठिया जी ने समय की आवश्यकता को देख कर विविध प्रकार की संस्थाएं स्थापित कीं। समाज के लिए विद्वान् तैयार किए, अच्छे लेखक बनाए, साधु समाज में शिक्षा का प्रचार किया, ठोस साहित्य प्रकाशित किया और सैकड़ों व्यक्तियों को अपने पैरों पर खड़ा किया।

स्वतन्त्र व्यक्तित्व

प्रायः धनवानों का व्यक्तित्व उन की सम्पत्ति और दान पर निर्भर रहता है किन्तु सेठिया जी का अपना भी व्यक्तित्व है। यदि संस्थाओं और सम्पत्ति से अलग करके उनके जीवन का अध्ययन किया जाय तो वह स्वयं एक संस्था है। उन के जीवन से कितने प्रेरणा प्राप्त करते हैं, कितनों में नए बल का संचार होता है और कितने ही निराशा के जीवन को छोड़ कर समर्थ नागरिक तथा समाज सेवक बन चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युगनिर्माता

स्थानकवासी समाज में उन्होंने नए युग का निर्माण किया है। जिस समय हमारा साधुसमाज और श्रावक वर्ग थोकड़ों और सूत्रों के टब्बे से आगे नहीं बढ़ना चाहता, था सेठिया जी ने समाज में ठोस पाण्डित्य एवं प्रामाणिक साहित्य की प्राणप्रतिष्ठा की।

विशाल दृष्टि

आप अपनी श्रद्धा में दृढ़ हैं किन्तु दृष्टि विशाल है। किसी सम्प्रदाय का साधु या श्रावक विद्याध्ययन करना चाहे तो आप का द्वार सदा खुला है। शास्त्रीय बातों के संग्रह के लिए आप ने कभी स्थानकवासी और मूर्तिपूजक या अन्य सम्प्रदाय का भेदभाव नहीं रखा। उन की संस्था विद्या का वह सरोवर है जहाँ प्रत्येक प्राणी अपनी प्यास बुझा सकता है। आप का जीवन वह कल्प वृक्ष है जिस के नीचे हर एक को शान्ति मिलती है।

जीवन परिचय

बीकानेर से कुछ दूर कस्तूरिया नाम का गाँव है। यहीं विक्रम संवत् १९२३ की विजया दशमी को सेठिया जी का जन्म हुआ। पिता का नाम था धर्मचन्द जी। वे साधारण परिस्थिति के श्रद्धालु गृहस्थ थे। बालक भैरोदान को पिता का आश्रय अधिक दिनों तक नहीं मिला। जन्म के दो वर्ष बाद ही उनका देहान्त हो गया। प्रकृति ने तभी से स्वावलम्बन का पाठ सिखाना प्रारम्भ कर दिया। आपके तीन भाई थे। प्रतापमल जी तथा अगरचन्द जी बड़े थे और हजारी मल जी छोटे।

सात वर्ष की आयु में शिक्षा प्रारम्भ हुई और नौ वर्ष की आयु में समाप्त हो गई। उन दिनों बीकानेर में सरकारी स्कूल या कालेज नहीं थे। यतियों के उपाश्रय और महाजनी सिखाने वाले माड़ज्या की पोसाल ही शिक्षा के बड़े से बड़े केन्द्र थे। सेठिया जी ने बड़े उपाश्रय में साधु जी नाम के एक यति के पास हिन्दी और महाजनी की प्रारम्भिक शिक्षा ली। वस्तुतः देखा जाय तो मनुष्य को जीवन की शिक्षा पाठशाला में नहीं किन्तु कार्यक्षेत्र में उतरने पर मिलती है। यही कारण है कि विश्वविद्यालयों के स्नातक आधी उमर पुस्तकें रटने में बिता देने पर भी जीवन में सफल नहीं हो पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवें वर्ष में ही आपने कार्यक्षेत्र में पदार्पण कर दिया और कलकत्ते की यात्रा की। वहाँ की हलचल, व्यस्त जीवन और मानवीय सफलता के भौतिक उत्कर्ष को देखा। उस चकाचौंध का विचित्र प्रभाव पड़ा। बालहृदय स्वप्न देखने लगा। वह अपने भविष्य की कल्पना करने लगा। किन्तु कौन जानता था कि वे स्वप्न और वे कल्पनाएं इतनी दृढ़ निष्ठा को लिए हुए हैं कि एक दिन साकार बन जाएँगी। कलकत्ते की यात्रा ने सेठिया जी के सामने एक ध्येय उपस्थित कर दिया। वे उसी की साधना में लग गए।

वहाँ से लौटकर शिवबाड़ी में अपने बड़े भाई श्री प्रतापमल जी के साथ व्यापार धँधा सीखने लगे। शिवबाड़ी बीकानेर से तीन मील एक मनोरम स्थान है। उन दिनों वहाँ वाणिज्य की अच्छी मण्डी थी।

संवत १९३६ में आप बम्बई पहुँचे और श्री अगरचन्द जी के साथ काम करने लगे। उसी समय उच्च व्यापारिक शिक्षा के साथ साथ गुजराती और अंग्रेजी भाषाओं का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त किया। १९४१ में बम्बई के एक फर्म में मुनीम हो गए। यह फर्म चालानी का काम करता था। अगरचन्द जी इस में साझीदार थे।

बम्बई में आठ वर्ष रहे। पाँच सौ रुपए वार्षिक वेतन मिलता था किन्तु परिश्रम एवं प्रतिभा के बल पर और भी आय कर लेते थे। एक बड़ा मकान किराए पर लिया। कुछ हिस्सा अपने रहने के लिए रखा और शेष किराए पर दे दिया। परिणामस्वरूप अपने रहने के लिए स्थान निकल आया। कुछ बच भी जाता। सपरिवार निर्वाह करते हुए १९४८ जब बम्बई छोड़ी तो पास में ३०००) हजार रु० थे।

बम्बई से कलकत्ता चले आए और मणियारी व रंग की दुकान खोल ली। साथ में गोली सूत का कारखाना भी प्रारम्भ कर दिया। कुछ ही दिनों में व्यापार बढ़ गया। बेल्जियम, स्विज़रलैंड आदि के रंग के कारखानों व आस्ट्रिया, गेबलंज आदि के मणियारी के कारखानों की सोलह एजेंसियाँ मिल गईं। कारोबार विस्तृत होता गया। श्री अगरचन्द जी भी आप के साथ सम्मिलित हो गए। फर्म का नाम 'ए० सी० बी० सेठिया एण्ड कम्पनी' हो गया। सेठिया जी ने विदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाने के लिए एक अंग्रेज को असिस्टेंट मैनेजर बनाया। दूसरे कर्मचारियों की भी संख्या बढ़ा दी।

कुछ ही दिनों बाद हावड़ा में 'दी सेठिया कलर एण्ड केमिकल वर्क्स लिमिटेड' के नाम से एक रंग का कारखाना खोला। भारत वर्ष में रंग तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाला यह पहला कारखाना था। माल की खपत के लिए कलकत्ता, मद्रास, कराची, कानपुर, देहली, अमृतसर और अहमदाबाद में शाखाएँ खोलीं। जापान के ओसाका नगर में भी एक आफिस शुरू किया।

संवत १९७१ (सन् १९१४) में प्रथम महायुद्ध प्रारंभ हुआ। जर्मनी से रंग आना बन्द हो गया। उस में सेठिया जी को आशातीत लाभ हुआ।

संवत् १९६५ में आप को एक भयङ्कर रोग ने आ घेरा। डाक्टर और वैद्यों का इलाज चला किन्तु लाभ न हुआ। अन्त में कलकत्ते में होमियोपैथी के प्रसिद्ध डाक्टर प्रतापचन्द्र मजूमदार से इलाज कराया और स्वास्थ्यलाभ किया। उसी समय से होमियोपैथी में श्रद्धा हो गई और उसे स्वयं सीख लिया। तब से बराबर होमियोपैथी की चिकित्सा करते रहते हैं। इस विषय में आपने गहरा अनुभव प्राप्त कर लिया है।

संवत् १९६९ में आपने 'बी० सेठिया एण्ड संस' के नाम से बीकानेर में एक दुकान खोली। उस में नई सभ्यता के लिए आवश्यक प्रायः सारा सामान रहता था। बीकानेर में इस से पहले इस ढंग की कोई दुकान न थी। यह दुकान उन दिनों तो प्रसिद्ध थी ही अब भी इस प्रकार के सामान की सब से बड़ी दुकान है। इस समय उसे आप के द्वितीय पुत्र श्री पानमल जी चला रहे हैं।

बीकानेर में ऊन के व्यवसाय को आप ने इतना ऊँचा उठाया कि वह भारत की सब से बड़ी मण्डी बन गई। सन् १९३० में जब ऊन प्रेस खरीदा, तो प्रश्न यह था कि गाँठें बाँधने के लिए ऊन कहाँ से आय। आपने छोटे मोटे व्यापारियों को संगठित किया। उन्हें प्रत्येक प्रकार से प्रोत्साहन एवं सहायता दी। परिणाम स्वरूप व्यापारियों को मुनाफा होने लगा और वे लगन के साथ ऊन का धँधा करने लगे। धीरे धीरे इतनी उन्नति हुई कि वर्ष में चौदह हजार गाँठे बँधने लगीं।

समाज सेवा की ओर

संवत् १९७० में आप ने एक प्राइमरी स्कूल की स्थापना की। १९७८ में बड़े भाई श्री अगरचन्द्र जी से मिल कर 'सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था' की नींव डाली। नकद और मकानों को मिला कर लगभग पाँच लाख रुपए का एक ट्रस्ट स्थापित किया। उस के द्वारा विद्यालय, साहित्य प्रकाशन तथा अन्य कार्य चलने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार व्यापार के क्षेत्र में आप का ध्यान नए नए कार्यों की ओर जाता रहा है उसी प्रकार समाज सेवा की प्रवृत्तियों में भी नए नए कदम उठाते चले जा रहे हैं। स्थानक वासी समाज में संस्कृत प्राकृत के योग्य विद्वान् तैयार करने के लिए आपने सर्व प्रथम उच्चकोटि का विद्यालय स्थापित किया। साधु साध्वियों के अध्ययन के लिए अब भी बीकानेर सर्वोत्तम क्षेत्र है। सेठिया विद्यालय के कारण ही कान्फरेंस ने जैन ट्रेनिंग कालेज को भी बीकानेर में प्रारम्भ किया। उस सस्ते जमाने में भी आप की संस्थाओं का वार्षिक खर्च तीस हजार से अधिक था। ट्रस्ट की आय के बाद जो कमी रहती उसे आप स्वयं पूरी कर देते। संस्था का बहुत सा खर्च घरेलू खर्च में डाल लेते थे। विद्यालय के विद्यार्थी कई वर्षों तक आप के तथा आप के ज्येष्ठ पुत्र श्री जेठमल जी के (जो अगरचन्द्र जी की गोद चले गए थे) चौके में भोजन करते रहे। उन के भोजन का खर्च एक पैसा भी संस्था पर नहीं पड़ा। जब विद्यार्थियों की संख्या काफी बढ़ गई और अलग चौका रखना आवश्यक प्रतीत हुआ तभी अलग रसोई बनने लगी।

आप की संस्था में उच्च कोटि के विद्वान रहते थे और उन्हें पर्याप्त वेतन दिया जाता था। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि इस समय भी स्थानक-वासी समाज में जो मूर्धन्य विद्वान हैं वे प्रायः सेठिया विद्यालय के स्नातक हैं।

एक और आप को खयाल आया कि जो लोग दिन में किसी आफिस या अन्य जगह कार्य करते हैं और साथ में अपनी योग्यता भी बढ़ाना चाहते हैं उन के लिए भी कोई सुविधा होनी चाहिए। परिणाम स्वरूप 'नाइट कालेज' की स्थापना हुई। इस में पढ़कर बहुत से विद्यार्थियों ने मैट्रिक, एफ़० ए०, बी० ए० एवं एम० ए० की परीक्षाएँ पास कीं। बहुत से साहित्यरत्न और हिन्दीप्रभाकर बने।

साहित्य संग्रह एवं प्रकाशन का आप को प्रारम्भ से ही शौक रहा है। सेठिया पुस्तकालय में प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। छपी हुई पुस्तकों की भी उतनी संख्या बीकानेर में शायद ही और कहीं हो।

आप ने कई थोकड़े तथा स्तवनों के संग्रह प्रकाशित किए। शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की कर्तव्य कौमुदी, अर्धमागधी व्याकरण, कई आगम, स्याद्वादमञ्जरी तथा बहुत से अन्य ग्रन्थ छपाए। नए ग्रन्थ के लिखवाने के लिए आप मुनिराज तथा अन्य विद्वानों से प्रेरणा करते ही रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप की संस्था ने 'छत्तीस बोल संग्रह' नाम के एकथोकड़ा संग्रह के दो भाग प्रकाशित किए थे। धीरे धीरे उसकी प्रतियां समाप्त हो गईं। सेठिया जी ने दुबारा छपाने का विचार किया। इस के लिए कुछ विद्वानों का लेखक मण्डल बनाया। जब ग्रन्थ लिखा जाने लगा तो ऐसा प्रतीत हुआ, यदि कुछ विस्तार के साथ शास्त्रों का प्रमाण देते हुए इसे लिखा जाय तो अधिक उपयोगी हो सकेगा। सभी आगम तथा अन्य ग्रन्थों से खोज खोज कर बोल निकाले गए। स्थानांग, समवायांग तथा अनुयोगद्वार तो प्रायः पूरे के पूरे ले लिए गए। परिणाम स्वरूप 'श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह' के नाम से आठ भागों वाला महाग्रन्थ बन गया। आज यह ग्रन्थ 'जैन विश्वकोष' का काम दे रहा है। इस का गुजराती अनुवाद भी हो चुका है। इस समय तक सेठिया ग्रन्थमाला से १११ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सार्वजनिक सम्मान

सन् १९२६ में आप श्री श्वे० स्था० जैन कान्फरेंस के अध्यक्ष चुने गए। आप के सभापतित्व में बम्बई का वह अधिवेशन आज तक के सभी अधिवेशनों से अधिक सफल रहा। उसी समय कान्फरेंस को जो शक्ति प्राप्त हुई उस से कई प्रकार के ठोस कार्य हुए।

आप दस वर्ष तक बीकानेर में म्युनिसिपल कमिश्नर रहे। १९२९ में बोर्ड के वाइस प्रेज़िडेण्ट चुने गए। जनता की ओर से इस पद पर आने वाले आप प्रथम नागरिक थे। बीकानेर में राजा और प्रजा सभी के हृदय में आप के प्रति श्रद्धा है। कैसा ही महत्त्वपूर्ण पद क्यों न हो, सेठिया जी का नाम आने के बाद किसी को विरोध करने का साहस नहीं होता। १९३१ में आप आनरेरी मजिस्ट्रेट चुने गए। कहना न होगा कि सरकार को यदि इस प्रकार के आनरेरी मजिस्ट्रेट मिल जायँ तो कोर्टों के लम्बे चौड़े खर्च बहुत कम हो जायँ। आप की इच्छा सदा यही रहती थी कि दोनों पार्टियों में प्रेम स्थापित हो। आप के फैसले से किसी पार्टी को असन्तोष नहीं रहता था। इस लिए उस पर प्रायः अपील नहीं होती थी। यदि कभी अपील हुई भी तो उच्च न्यायालय में आप ही के फैसले का समर्थन हुआ। जाति बिरादरी के लोग भी आपसी झगड़ों में प्रायः आप को ही सरपंच बनाते थे। १९३८ में आप म्युनिसिपल बोर्ड की ओर से बीकानेर धारासभा के सदस्य चुने गए।

३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता के रहस्य

बाबू जी

कर्मचारियों को आप अपने ही परिवार का अंग मानते हैं। उनके सुख-दुख तथा सुविधा का पूरा ध्यान रखते हैं। यह नहीं मानते कि उनके साथ केवल नौकरी का नाता है। उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई हो तो आपका द्वार खुला है। एक समय की बात है, आपने एक कार्यकर्ता का विवाह किया। हृदय में इतनी उत्सुकता और उमंग थी जैसे अपने ही पुत्र की शादी हो। जब तक अन्तिम रस्म पूरी नहीं हो ली आपने चैन नहीं लिया। पास रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति आप को अपना पिता मानता है और आप उसे पुत्र से कम नहीं समझते। सेठिया संस्था तथा ऊन प्रेस में जितने व्यक्ति रहते हैं आप सभी के 'बाबू जी' हैं। चाहे वह बच्चा हो, जवान हो या बूढ़ा हो। आप की आत्मीयता के कारण कोई व्यक्ति आप को छोड़ना नहीं चाहता।

मनोयोग

सेठिया जी की सफलता का सब से बड़ा कारण उन का मनोयोग है। वे जिस कार्य को हाथ में लेते हैं, पूरी तरह जुट जाते हैं और तब तक चैन नहीं लेते जब तक उसे पूरा न कर लें। काम छोटा हो या बड़ा, उत्तरदायित्व लेने के बाद उस में पूरा मनोयोग लगा देते हैं। आधे मन से काम करना आप को पसन्द नहीं है। जब म्युनिसिपल कमिश्नर बने तो इस से सम्बन्ध रखने वाला विपुल साहित्य पढ़ डाला और दिनरात इसी चिन्ता में रहने लगे कि नगर का सुधार कैसे किया जाय। जब मजिस्ट्रेट बने तो एक अच्छे वकील को रख कर कानून की बारीकियाँ समझने लगे। घर में बैठ कर भी आप मुकद्दमों पर विचार करते और बढ़िया से बढ़िया फैसला देने का प्रयत्न करते। आप का वह समय आनरेरी मजिस्ट्रेटों के सामने एक आदर्श उपस्थित करता है। आप ने बता दिया कि आनरेरी मजिस्ट्रेट केवल रोब गांठने के लिए नहीं होता किन्तु जनता की वास्तविक सेवा कर सकता है। धारा सभा के सदस्य बने तो उसी में लग गए। इस प्रकार आपने जो भी पद संभाला उसे पूरी योग्यता के साथ निभाया।

स्थितप्रज्ञ

एक बार आप के सब से छोटे पुत्र अस्वस्थ हो गए। चिकित्सा हो रही थी किन्तु रोग काबू में नहीं आ रहा था। उन्हीं दिनों 'बोल संग्रह' भी छप रहा था लिखने का काम मेरे हाथ में था। जिस कमरे में ही मैं बैठता था उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपाल जी का पलंग था। एक दिन उन की अवस्था कुछ बिगड़ी हुई थी। भाई तथा माँ पलंग के चारों ओर बैठे थे। सभी की आँखें डबडबाई हुई थीं। मुझे कुछ अनुचित सा प्रतीत हुआ कि सभी इस प्रकार चिन्तित बैठे रहें और मैं लिखने में लगा रहूँ। मैं भी उन्हीं में सम्मिलित हो गया। इतने में सेठ जी आए और पूछने लगे—आगे का मैटर कहाँ है। मैं आश्चर्य में पड़ गया। उस समय मालूम पड़ा कि कर्तव्यनिष्ठा किसे कहते हैं। कुछ दिन पहले गांधी जी तथा तिलक के जीवन में भी इसी प्रकार की घटनाएँ पढ़ चुका था। उस समय मुझे याद आया कि महापुरुषों के हृदय कैसे होते हैं। काम के समय वे पारिवारिक मोह या अन्य सांसारिक भावों को बीच में नहीं आने देते।

स्थिरता और साहस

मैंने अपने दीर्घ कालीन सहवास में देखा कि छोटी मोटी घटनाएँ सेठिया जी को विचलित नहीं कर पातीं। कठिनाइयाँ उन में नया साहस उत्पन्न करती हैं। यह पहले बताया जा चुका है कि बीकानेर में ऊन के बहुत से व्यापारियों को आपने ही बनाया है। वे व्यापार के लिए रुपया आप से ही लेते थे। उन के पास न तो गिरवी रखने के लिए कोई जेवर था न मकान और न सरकारी लिखा पढ़ी। सारा मामला विश्वास पर चलता था। एक बार व्यापारियों ने बहुत सा माल विलायत भेजा किन्तु वहाँ पहुँचने के पहले ही भाव गिर गए। रुपए के छह आने रह गए। सेठिया जी के कई लाख रुपए अटक गए। व्यापारियों के पास न कुछ देने को रहा न धँधा करने को, सभी लोग बुरी तरह घबरा गए। किन्तु सेठिया जी हारने वाले व्यक्ति न थे। उन्होंने व्यापारियों को लगभग उतना ही रुपया और दिया। फिर व्यापार प्रारम्भ हो गया। धीरे धीरे पहला और पिछला सारा रुपया व्याज के साथ वसूल हो गया। व्यापारियों के पास भी पूंजी हो गई। अब वे लाखों का व्यापार अपनी रकम से करने लगे हैं।

स्वभाव की मृदुता

कर्तव्य पथ में सेठिया जी जितने कठोर हैं हृदय के उतने ही कोमल हैं। आप किसी के कष्ट को नहीं देख सकते। आप के यहां से कोई निराश नहीं लौटता। किसी विद्यार्थी के पास पुस्तकें नहीं हैं तो पुस्तकें मिल जाएंगी और फीस नहीं है तो फीस। इस के लिए वे मुनीम या और किसी को नहीं कहते। ना ही किसी धर्मादे खाते में लिखते हैं। अपने खर्च के लिए हज़ार पाँच सौ रुपए मंगवा लेते हैं और जो आता है चुप के से पकड़ा देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव सर्जन शक्ति

आप ने जिस क्षेत्र में पदार्पण किया सदा नई बात को सोचा और उ कार्यरूप से परिणत किया। गतानुगतिक को कभी नहीं अपनाया। व्यापार क्षेत्र में रग का कारखाना, बीकानेर में फैन्सी माल की दुकान और ऊन व्यापार आप ही की नई सूझ के परिणाम हैं। स्थानकवासी समाज में साहि प्रकाशन और संस्कृत प्राकृत की उच्च शिक्षण-संस्था चलाने वाले आप सर्वप्रथ दानवीर हैं। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी आप ने हमेशा अग्रणी का का किया है।

योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति

सेठिया जी योग्य व्यक्ति की नियुक्ति के लिए रुपए की चिन्ता न करते। अधिक से अधिक वेतन देकर भी अच्छे से अच्छा व्यक्ति नियु करते हैं। व्यापार के समय रंगों की विधियाँ जानने के लिए आपने तीन रुपए मासिक पर एक जर्मन विशेषज्ञ को नियुक्त किया जो प्रतिदिन केव पाँच मिनट देता था। दूसरे कर्मचारी भी अपने अपने विषय में सिद्धहस्त थे सेठिया संस्थाएँ उच्चकोटि के विद्वानों के लिए जैन समाज में ही नहीं बीका के शिक्षा विभाग में भी विख्यात रही हैं।

स्वयं अनुभव

आप ने जो काम शुरू किया उस में स्वयं अनुभव प्राप्त किया। स्व अँधेरे में रह कर दूसरों से काम लेना आप को पसन्द नहीं है। व्यापार समय रंगों का परीक्षण अपनी प्रयोगशाला में स्वयं किया करते थे जब साहि प्रकाशन में पड़े तो शास्त्रीय बातों की स्वयं छानबीन करने लगे। संस्कृत औ प्राकृत का ज्ञान न होने पर भी उन्होंने साधु तथा विद्वानों के सम्पर्क में र कर बहुत कुछ जान लिया है।

शारीरिक परिश्रम

यह पहले बताया जा चुका है कि सेठिया जी अपना काम अपने हाथ करते हैं। बैठे बैठे आज्ञा नहीं देते। जब बोलसंग्रह छप रहा था तो ह लिखते रहते थे और वे प्रेस तथा कार्यालय में चक्कर लगाते रहते थे। जानते हैं कि किस व्यक्ति से काम किस प्रकार लिया जा सकता है कर्मचारियों से अधिक परिश्रम स्वयं करते हैं।

समाज के ऐसे भाग्य-विधाता चिरकाल तक जीवित रहें और उन आदर्श एवं त्याग का लाभ सभी को मिलता रहे, यही हार्दिक कामना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता का मंत्र–

-रवीन्द्र

अरे ओ मन !
सदा विश्वास रख कि काम होकर ही रहेगा ।
यदि तूने प्रण ठान लिया है,
तो निश्चय ही तेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी ।
यह जो तेरे सामने पाषाण की तरह पड़ा हुआ है,
वह प्राण पाकर हिल उठेगा ।
जो गूंगों की भाँति पड़े हुए हैं ।
वे भी बोलने लगेंगे ।
समय हो गया है ।
जिसके पास जो बोझ है, उठा लो !
मेरे मन !
यदि तूने दुःख को सिर-माथे ले लिया है ।
तो वह दुःख जरूर सह जाएगा ।
जब घंटा बज उठेगा,
तो तू देखेगा कि सभी यात्री तैयार हैं
और सभी यात्री एक साथ
एक ही रास्ते पर निकल पड़ेंगे ।
मेरे मन !
विश्वास रख !
काम होकर ही रहेगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सत्कार

काँटों के राही—

लेखक—इन्द्रचन्द्र एम०ए०, प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी आगरा, मूल्य—१॥) रु० पृष्ठ—१३५।

प्रो० इन्द्र एम० ए से 'श्रमण' के पाठक सुपरिचित हैं। उनकी कहानियाँ 'श्रमण' की पाठकों की सेवा में बराबर पहुंचती रहती हैं। 'काँटों के राही' इन्द्र जी की कहानियों का एक सरस-संग्रह है! इस संग्रह में १९ कहानियाँ हैं और प्रत्येक कहानी में एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। इसके नायक वे कर्मठ हैं जिन्होंने काँटों के पथ पर चल कर जीवन में सफलता प्राप्त की है। साहित्य के क्षेत्र में यह माना जाता है कि कहानी का निर्माण चार तत्त्वों पर अवलम्बित है। वे चार तत्त्व हैं—१ घटना २ भाव ३ विचार ४ वर्णन। कहानी में इन चारों तत्त्व में से एक न एक तत्त्व तो अवश्य रहता है। कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनमें दो तत्त्व रहते हैं। कुछ में तीन तत्त्वों की सत्ता रहती है। चारों तत्त्व जिनमें हों, इस प्रकार की कहानियाँ बहुत कम देखी जाती हैं। प्रो० इन्द्र की कहानियों में किसी न किसी रूप में ये चारों तत्त्व विद्यमान हैं। घटना की तो स्पष्ट प्रतीति होती ही है पर साथ में भाव, विचार तथा वर्णन का भी सुन्दर समन्वय है। इस प्रकार से कहानी-कला की दृष्टि से उपरोक्त कहानी संग्रह सफल है, ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं।

कहानियों का सामाजिक दृष्टि से कितना मूल्य है, यह बहुत स्पष्ट है। किसी भी समाज में जाकर देखिए तो मालूम होगा कि वहाँ पर अन्य प्रकार के साहित्य का चाहे अभाव भी हो किन्तु कहानी साहित्य तो अवश्य मिलेगा। समाज का अस्तित्व ही कहानी पर अवलम्बित है। जीवन स्वयं ही एक कहानी है और वही कहानी लेखक की लेखनी से शब्दसंबद्ध होकर हमारे सामने आती है। भारतीय संस्कृति की दो धाराएँ हैं—एक ब्राह्मणधारा और दूसरी श्रमणधारा। दोनों धाराओं में कहानी-साहित्य प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। ब्राह्मण-संस्कृति की कहानियाँ तो समय समय पर प्रकाश में आती रही हैं और आती रहती हैं किन्तु श्रमण-संस्कृति की कहानियों-को-अभी तक उतना प्रकाश नहीं मिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना कि वे चाहती हैं। प्रकाश के बिना प्राणी जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार से कहानियाँ भी जीवित नहीं रह सकतीं। प्रो० इन्द्र ने इसी ओर सफल प्रयास किया है। जैनशास्त्रों तथा जैन-विचारों में दबी पड़ी हुई भारत की बहुमूल्य निधि को प्रकाश में लाने का प्रयत्न सराहनीय है। लेखक के अपने ही शब्दों में 'कथा का शरीर शास्त्रों से लिया है और कपड़े अपने पहनाए हैं।' विद्वान लेखक का यह सफल प्रयत्न अभिनन्दनीय है। जैन तथा बौद्ध परंपरा में अनेक कथाएं इस प्रकार की अभी भी अवशिष्ट हैं जिनका उद्धार करने की अत्यन्त आवश्यकता हैं। कहानीकार कहानियां लिखें और समाज उन कहानी लेखकों का उचित सम्मान करें तभी संस्कृति जीवित रह सकती है। सामाजिक संपत्ति का उपयोग करना स्वयं समाज पर ही निर्भर है। लेखक तो लिखेगा ही किन्तु लेखक की उस साधना का उपयोग करना तो समाज के हाथ में है। इन्द्रजी के इस नव-सुमन को हम सहर्ष सिर पर चढ़ाते हैं। काँटों में पड़ा हुआ यह फूल सचमुच सुन्दर है।

भारतीय संस्कृति की दो धाराएँ–

लेखक—श्री इन्द्रचन्द्र, एम०ए० प्रकाशक–श्री सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा लोहामण्डी मूल्य–५ आना पृष्ठ सं० ४८।

श्री इन्द्रचन्द्र जी के दो लेखों को पुस्तकाकार में प्रकट करके पाठकों की माँग को पूरी करने का श्रेय श्री सन्मतिज्ञान पीठ को है। 'भारतीय संस्कृति की दो धाराएँ' और 'भारतीय संस्कृति की आत्म कथा' ये दोनों लेख हमारे सहयोगी 'ज्ञानोदय' में प्रकाशित हुए थे। इन लेखों का विद्वत्समाज में बहुत सम्मान हुआ। कुछ लोगों की ओर से यह सुझाव रखा गया कि ये दोनों लेख पुस्तक में प्रकाशित किये जायँ तो बहुत अच्छा हो। प्रस्तुत पुस्तक का यही इतिहास है।

सांस्कृतिक निबन्धों के लिए संस्कृति की धाराओं का ठोस ज्ञान आवश्यक होता है। प्रस्तुत पुस्तक का विषय इस ढंग का है कि बिना भारतीय संस्कृति के पूर्ण अध्ययन के उसका प्रतिपादन नहीं हो सकता। श्रमण संस्कृति और ब्राह्मण-संस्कृति की तुलना करना उतना सरल कार्य नहीं जितना कि समझा जाता है। इस प्रकार का कार्य तो कुछ चुने हुए विद्वान् ही कर सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में दोनों संस्कृतियों की सफल तुलना है। श्रमण और ब्राह्मण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों का अर्थ बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। सम, शम और श्रम से श्रमण शब्द की उत्पत्ति मान कर श्रमण-संस्कृति को वास्तव में गौरव प्रदान किया है। इस गौरव को बनाए रखना श्रमण-संस्कृति के स्तम्भभूत साधुओं पर निर्भर है। गुणपूजा और व्यक्तिपूजा का दृष्टिकोण भी बहुत स्पष्ट है किन्तु आज के इस युग में तो दोनों ही संस्कृतियाँ एक ही ढर्रे पर चल रही हैं और वह ढर्रा है व्यक्तिपूजा का। क्या श्रमण-संस्कृति के उपासक फिर से गुणपूजा की ओर बढ़ेंगे? उपाध्याय नामधारी साधु को ही उपाध्याय समझकर विद्वान समाज-सेवकों की हँसी उड़ाने वाले तथाकथित धर्मोद्धारक गुण-पूजा का दृष्टिकोण रखें तो क्या ही अच्छा हो? छुआछूत की बीमारी का भी दृष्टिकोण स्पष्ट है। श्रमण-संस्कृति में छुआछूत का कोई महत्त्व नहीं, ऐसा लेखक का विश्वास है। हमारे कुछ जैनबन्धु तथा अन्य कट्टर लोग इस बात को समझने का प्रयत्न करें तो बड़ा ही अच्छा हो! पुस्तक में कुछ प्रकरण ऐसे हैं जिनको और स्पष्ट किया जाता तो ठीक रहता। शायद विस्तार भय से ऐसा न हो सका हो। अस्तु, इन्द्र जी की इस नव-कृति का सत्कार करते हुए हर्ष होता है।

—मोहन मेहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति, अमृतसर के

आय व्यय का विवरण

१६४५—१६४८

समिति के उद्देश्य

१—जैन समाज में आगम, दर्शन, साहित्य, इतिहास, पुरातत्व तथा अन्य विषयों के गम्भीर विद्वान् एवं लेखक तैयार करना।

२—जैन संस्कृति और तत्त्वज्ञान सम्बन्धी प्रामाणिक साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन।

३—योग्य विद्वानों को श्रमणसंस्कृति का संदेश वाहक बनाकर देश तथा विदेश में भेजना।

४—भारतीय तथा विदेशी विद्वानों का ध्यान जैन संस्कृति की ओर खींचना।

५—श्रमण संस्कृति के वास्तविक रूप को प्रकाश में लाने के लिए प्रोत्साहन देना एवं अन्य प्रयत्न करना।

प्रकाशक

हरजसराय जैन बी० ए०

मंत्री, श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति

गुरु बाजार, अमृतसर (पंजाब)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल जैनधर्म

के

आय-व्यय का हिसाब

व्यय

	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस,		५६०५ १ ०
सफ़र—		१४६ ० ०
स्टेशनरी—		१०७ १० ०
प्रचार		१३५ ० ०
बैंक कमिशन		६ ४ ६
डाक-तार		३६ १ ६
फुटकर खर्च (विविध)—		१६४ ३ ०
घिसाई—		
(१) फर्नीचर—	२६६ ४ ०	
(२) लाइब्रेरी—	५४८ १५ ०	
(३) मकानादि—	२५६ १२ १०	१०७७ १५ १०
पिछले वर्ष का फर्क—		० १ ०
शेष-व्यय से अधिक आय-बचत—		१३३६ ८ ८
योग		८६२६ १३ ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारक समिति, अमृतसर

तारीख ३१ दिसम्बर १९४५ को

आय

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
मेम्बरशिप और दान --						
(१) मेम्बरशिप	२६००	०	०			
(२) लाइब्रेरी	१३०८	०	०			
(३ विविधदान	३१२३	४	०	७०३१	४	०
मुनाफ़ा (डिविडैंड)				११२७	८	०
ब्याज—				४०४	९	६
विविध आय—				७	८	०
सर्विस चार्ज—				५६	०	०
योग				८६२६	१३	६

हस्ताक्षर—
प्रधान – त्रिभुवननाथ
मन्त्री – हरजसराय जैन
खजांची–मुन्नीलाल जैनी

Certified Correct.
Sd/ N. D. Kapur & Co.
Registered accountants
Lahore, 30-4-1946

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल जैनधर्म

की

लेन-देन अवस्था —

Balance sheet.

देना—Liabilities:—	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
आय फण्ड :—		
गत शेष ता० ३१-१२-१९४४	१२३२६ १४ ४	
आय-व्यय खाते का शेष (बचत)	१३३९ ८ ८	१३६६६ ७ ०
साधारण कोष,(General Reserve) गत शेष		४०००० ० ०
जगन्नाथ जैनाश्रम फण्ड:—		
गत शेष ता० ३१-१२-१९४४ को	६२१७ ३ ०	
ब्याज	४४ ५ ६	६२६१ ८ ६
रतनचन्द स्मारक फण्ड:—		
ता० ३१-१२-१९४४ को —	१७१९२ ० ०	
इस वर्ष का आय—	५८०५ ० ०	
ब्याज—	८६९ १३ ०	२३८६६ १३ ०
भावना शतक—उधार खाते		५८ ८ ०
जमानत खाता,(विद्यार्थियों का) Security Diposits		६४३ ० ०
भावना शतक, पुस्तक खाता		१५८ १ ९
विविध लेनदार—		३[illegible]३ २ ०
योग		८७९६७ ८ ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारक समिति, अमृतसर

तारीख ३१ दिसम्बर १९४५ को।

लेना—Assets:—	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
फर्नीचर (सामान) ता० ३१-१२-१९४४ को	६१० २ ०	
और शामिल किया —	७३६ २ ०	
	१३४६ ४ ०	
घिसाई	२६९ ४ ०	१०७७ ० ०
शतावधानी रत्नचन्द्र लाइब्रेरी		
ता० ३१-१२-१९४४ तक—	२३२६ ८ ६	
इस वर्ष का खर्च	४१८ २ ९	
	२७४४ ११ ३	
घिसाई—	५४८ १५ ०	२१९५ १२ ३
जैनाश्रम मकानादि सम्पत्ति :—		
ता० ३१-१२-१९४४ तक—	५१९६ २ ३	
घिसाई	२५९ १२ १०	४९३६ ५ ५
भोजन सामग्री		२१ १५ ०
अम्बाला सम्पत्ति रहन (Mortgage)		७०० ० ०
विविध देनदार		२२८८ ० ०
इन्कम टेक्स वापसी, प्राप्तव्य		९१३ १० ०
ब्याज, हिन्द सरकार से प्राप्तव्य		३५० ० ०
Investments.		४८९२३ १२ ०
नेशनल सेविंगबैंक लि० में जमा— Fixed Deposit		१०२५९ ७ ०
नक़द और बैंक में		९९०४ १० ७
योग		८७,९९७ ८ ३

हस्ताक्षरः—
प्रधानः—त्रिभुवननाथ
मन्त्रीः—हरजसराय जैन
खजांचीः-मुन्नीलाल जैनी

Certified Correct.
Sd/ N. D. Kapur & Co.
Registered Accountants
Lahore, 30-4-1946

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल जैनधर्म

के

आय-व्यय का हिसाब

व्यय

	रु०	आ. पा	रु०	आ. पा
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस—			६१०४	८ ६
सफ़र—			१६३	१४ ६
स्टेशनरी—			२६	४ ०
प्रचार—			११	० ०
बैंक कमिशन—			११	६ ०
डाक-तार			३६	१३ ६
विविध खर्च—			१	१ ०
घिसाई—				
(१) फर्नीचर—	२८२	० ०		
(२) लाइब्रेरी—	८१४	१४ ०		
(३) मकानादि—	२४६	१३ ०	१३४३	११ ०
आल इंडिया न्यूज पेपर-प्रदर्शिनी—			२६८	१५ ६
वार्षिकोत्सव—			६६	७ ०
जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी की सदस्यता—			५००	० ०
योग—			८५७०	४ ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारक समिति, अमृतसर

तारीख ३१ दिसम्बर, १६४६ को

आय

	रु०	आ.	पा	रु०	आ.	पा
मेम्बरशिप दान—				१३००	0	0
दान—लाइब्रेरी—				५००	0	0
दान—विविध—				२५८३	१५	६
दान मिति—				२५००	0	0
डिविडैंड—मुनाफ़ा—				८८०	0	0
ब्याज—				४५५	0	0
विविध—आय—				५३	१०	0
किराया—सम्पत्ति—				११	0	0
शेष, आय से अधिक खर्च, हानि—				२८६	१०	६
योग—				८५७०	४	६

हस्ताक्षर—

प्रधान—त्रिभुवननाथ

मन्त्री—हरजसराय जैन

खजाञ्ची—मुन्नीलाल जैन

Certified Correct,
Sd/ Dass & Co.
Registered accountant
Gwalior
20-1-1949

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल जैनधर्म

लेन-देन अवस्था

Balance sheet

देना—Liabilities—

	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
(१) आयफण्ड :—		
गत शेष ता० ३१-१२-१९४५ को	१३६६६ ७ ०	
आय-व्यय खाते का शेष, हानि—	२८६ १० ९	१३३७९ १२ ३
(२) साधारण कोष (General Reserve), गत शेष—		४०००० ० ०
(३) जगन्नाथ जैनाश्रम फण्ड,		
ता० ३१-१२-१९४५ को	६२६१ ८ ६	
ब्याज—	११४ १४ ०	६३७६ ६ ६
(४) रतनचन्द स्मारक फण्ड —		
गत शेष	२२९९७ ० ०	
आय—	२०० ० ०	
ब्याज—	१६३१ ६ ०	२४८२८ ६ ०
(५) जमानत खाता		५३७ ० ०
(६) विविध लेनदार		१६१३ २ ३
योग		८९८०४ ११ ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारक समिति—

तारीख ३१ दिसम्बर १९४६ को

लेना Assets—

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
(१) फर्नीचर :—						
शेष ता० ३१-१२-४५	१०७७	०	०			
बढ़ाया—	३३३	०	३			
	१४१०	०	३			
घिसाई—	२८२	०	०	११२८	०	३
(२) शतावधानी रत्नचन्द्र लाईब्रेरी—						
शेष ता० ३१-१२-४५	२१९५	१२	३			
बढ़ाया—	१८७८	१०	०			
	४०७४	६	३			
घिसाई—	८१४	१४	०	३२५९	८	३
(३) जैनाश्रम मकानादि सम्पत्ति—						
शेष ता० ३१-१२-४५	४९३६	५	५			
घिसाई—	२४६	१३	०	४६८९	८	५
(४) अम्बाला सम्पत्ति रहन				७००	०	०
(५) विविध देनदार				१९९५	५	०
(६) इन्कम टैक्स (लेना				६६२	१६	०
(७) ब्याज (लेना)				३२२	१२	०
(८) Investments				४८६२३	१२	०
(९) बैंक में जमा (Fixed deposit)				२०६१५	२	०
(१०) नक़द तथा बैंक में				७२०७	१३	१
योग				८६८०४	११	०

ह० त्रिभुवननाथ, प्रधान
हरजसराय जैन, मन्त्री
मुनीलाल जैनी, खजांची

हिसाब ठीक है—.
ह० दास एण्ड कम्पनी
दि: अकौन्टैन्ट
गवालियर २०-१-१९४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल जैनधर्म

के

आय-व्यय का हिसाब

व्यय

	रु०	आ.	पा.	रु०	आ.	पा
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस, विविध				५४७५	१०	३
स्टेशनरी				६८	४	०
बैंक कमिशन				१५	१०	०
डाक—तार				१९	६	६
विविध खर्च				१	२	०
आल इंडिया न्यूज पेपर प्रदर्शिनी				३०	०	०
योग				५६१०	०	९

श्री सोहनलाल जैनधर्म,

की

लेन-देन अवस्था—

Balance sheet.

देना—Liabilities:—	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
आय फण्ड—						
(१) गत शेष सन् १९४६ का	१३३७९	१२	३			
(२) आय-व्यय खाते का शेष, हानि—	११५८	२	६	१२२२१	९	९
जनरल रिजर्व—				४००००	०	०
जगन्नाथ जैनाश्रम फण्ड				९३७६	६	६
रतनचन्द स्मारक फण्ड :—						
(१) शेष	२३१९७	०	०			
(२) ब्याज	१६३१	६	०	२४८२८	६	०
जमानत खाता, Security खाता				५९७	०	०
विविध लेनदार—इसमें भावना शतक शामिल है				१००५	९	९
योग				८८०२९	०	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारक समिति, अमृतसर

तारीख ३१ दिसम्बर, १९४७ को

आय	रु०	आ.	पा	रु०	आ.	पा
मेम्बरशिप दान				१०००	०	०
लाइब्रेरी दान				५५१	०	०
विविध दान				८२६	१४	३
मिति दान				१८०	०	०
डिविडेंड				८८०	०	०
ब्याज				७०६	०	०
वार्षिकोत्सव वापिसी				८	०	०
शेष व्यय आय से अधिक—हानि				१४५८	२	६
योग				५६१०	०	६

हस्ताक्षर—
प्रधान—त्रिभुवननाथ
मंत्री—हरजसराय जैन
खजांची—मुन्नीलाल जैन

Certified Correct
Sd/ Dass & Co.
Registered Accountants.
Gwalior, 20-1-1949.

प्रचारक समिति, अमृतसर

तारीख ३१ दिसम्बर १९४७ को

लेना—Assets :—	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
फर्नीचर—				११२८	०	३
शतावधानी रत्नचन्द्र लाइब्रेरी, बनारस						
गत शेष	३२५९	८	३			
बढ़ाया	६६८	१४	९	३९२८	७	०
जैनाश्रम मकानादि सम्पत्ति				४६८६	८	५
अम्बाला की रहन				७००	०	०
विविध देनदार आदि				१४२३६	१३	६
इंकम टैक्स (लेना)				१२८४	२	०
ब्याज (लेना)				७७५	०	०
Investments.				४८६२३	१२	०
नक़द और बैंक में				१२६६३	४	१०
योग				८८०२९	०	०

ह० :—
त्रिभुवननाथ, प्रधान
हरजसराय जैन, मन्त्री
मुन्नीलाल, खजांची

हिसाब ठीक है—
ह० दास एण्ड कम्पनी
दि अकौन्टैन्ट
ग्वालियर–२०-१-१९४९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल जैनधर्म
के
आय व्यय का हिसाब

व्यय

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
(क) श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम बनारस :--						
रत्नचन्द्र स्मारक रिसर्च स्कालरशिप	४९०	०	०			
अन्य छात्रवृत्तियाँ	१३५७	०	०			
वेतन	२९८८	०	९			
भोजन विशेष खर्च	१६३	७	६			
डाक व तार	१८	१०	६			
वाचनालय	१७१	७	०			
किराया	४८०	०	०			
बर्तन आदि	९	१०	६			
खेल आदि का सामान	१०	४	०			
स्टेशनरी	०	१५	०			
मरम्मत, सफेदी	७९	७	९			
विविध	१०८	४	९	५८७७	३	९
(ख) सफर खर्च				२१८	१४	०
(ग) कानूनी खर्च				४[illegible]	१२	०
(घ) डाक, तार आदि				४२	४	३
(च) स्टेशनरी				९	[illegible]३	०
(छ) प्रचार				३२८	८	०
(ज) बैंक कमिशन				७	११	०
(झ) विविध खर्च				७	१	०
(ट) बट्टा खाता				८	२	९
(ठ) घिसाई :--						
फर्नीचर	११२	१३	०			
पुस्तकालय	४२३	१	०			
भूमि मकानादि	२३४	७	६	७८०	५	६
योग				७३२४	१४	३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारक समिति, अमृतसर ।

तारीख ३१ दिसम्बर, १९४८ को

आय

	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
(क) भावना शतक		२५६ १३ ९
(ख) व्यवस्था खाते		१३६ ० ०
(ग) मिति दान		१२० ० ०
(घ) विविध दानादि		२०४७ ० ०
(च) विविध आय, रद्दी आदि से		१७ ० ०
(छ) डिविडेन्ड Dividends		१२८० ० ०
(ज) ब्याज		९६३ ५ ३
(झ) रत्नचन्द्र स्मारक रिसर्च स्कालरशिप खाते		४९० ० ०
(ट) शेष, अर्थात् आय से खर्च की अधिकता		२०१४ ११ ३
योग		७३२४ १४ ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल जैनधर्म,

आर्थिक अवस्था

देन—Liabilities	रु० आ. पा	रु० आ. पा
आय फंड,		
ता० ३१-१२-१९४७ को	१२२२१ ९ ९	
कम किया, खर्च की आय पर अधिकता	२०१४ ११ ३	१०२०६ १४ ६
साधारण कोष		४०००० ० ०
जगन्नाथ जैनाश्रम फंड		९३७६ ६ ६
पूज्य काशीराम स्मारक फंड		९४०० ० ०
रत्नचन्द स्मारक फंड		
ता० ३१-१२-१९४७ को	२३१९७ ० ०	
ब्याज	१४४१ ६ ०	२४६३८ ६ ०
सिक्यूरिटी डिपाजिट		४३१ ० ०
रिसर्च स्कालरशिप खाता, बम्बई से प्राप्त		३४३३ ० ०
विविध लेनदार		९८९ १५ ९
योग		९८४७५ १० ९

ह० त्रिभुवननाथ, प्रधान

ह० हरजसराय जैन, मंत्री

ह० मुन्नीलाल जैनी, खजांची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारक समिति, अमृतसर

तारीख ३१ दिसम्बर, १९४८ को

लेन—Assets	रु०	आ.	पा	रु०	आ.	पा
फर्नीचर,						
ता० ३१-१२-१९४७ को	११८८	०	३			
घिसाई कम की	११२	१३	०	१०१५	३	३
शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय, बनारस,						
ता० ३१-१२-१९४७ को	३९२८	७	०			
पुस्तकें ~~बम्बई~~ बढ़ाई	४०२	२	६			
	४३३०	९	६			
घिसाई कम की	४३३	१	०	३८९७	८	६
जैनाश्रम भूमि मकानादि सम्पत्ति बनारस में						
ता० ३१-१२-१९४७ को	४६८९	८	५			
घिसाई कम की	२३४	७	६	४४५५	०	११
अम्बाला रहन सम्पत्ति				७००	०	०
इनकम टैक्स प्राप्तव्य				९०८	१२	०
व्याज प्राप्तव्य				७७५	०	०
लगाया हुआ धन (Investments),						
रिजर्व बैंक आफ इंडिया के ३२० हिस्से	४०६५५	०	०			
३ परसेन्ट सरकारी कागज	१९५६८	१२	०	६०२२३	१२	०
विविध देनदार				२६१०	११	३
नकद हाथ में				२००१	४	४
बैंक में				२१८८८	६	६
योग				९८४७५	१०	९

जालंधर नगर
२८ फरवरी १९५० }

Certified correct.
Sd/ Dass & Co.
Chartered accountants.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति, अमृतसर द्वारा संचालित

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

का वर्तमान परिवार

१— प्रो० दलसुख मालवणिया, जैनदर्शनाध्यापक, काशी विश्वविद्यालय, निरीक्षक एवं परामर्श दाता।

२—श्री कृष्णचन्द्राचार्य, जैनदर्शनाचार्य—अधिष्ठाता, सुपरिटेंडेंट एवं व्यवस्थापक, **श्रमण**।

३ श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम. ए. शास्त्राचार्य वेदान्तवारिधि, न्यायतीर्थ। प्रो० वैश्य कालेज, भिवानी (अवकाश पर)—लाला रतनचन्द जैन रिसर्च स्कालर; विषय—Jain Theory of knowledge, संपादक **'श्रमण'** १—भारतीय संस्कृति की दो धाराएँ। २—काँटों के राही आदि पुस्तकों के रचयिता।

४—श्री पृथ्वीराज जैन एम. ए. शास्त्री—कोटावाला रिसर्च स्कालर, जैन संस्कृति संशोधन मंडल बनारस; विषय—Some problems in visesa vasyaka Bhasya. 'हिन्दू, जैन और हरिजन मन्दिर प्रवेश' के लेखक।

५—श्री गुलाब चन्द चौधरी, व्याकरणाचार्य, एम. ए.—सिंघी रिसर्च स्कालर; विषय—जैन पुराण और प्रबन्ध कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति।

६—प्रो० विमलदास जैन एम ए. (दर्शन) एम. ए. (संस्कृत) एल. एल. बी; न्यायतीर्थ, शास्त्री सेठ छोटेलाल केशव जी शाह रिसर्च स्कालर, विषय—Relativity of knowledge 'तर्कशास्त्र' आदि पुस्तकों के लेखक।

७—श्री संतोष कुमार मुणोत - जैनदर्शनाचार्य और आयुर्वेदाचार्य का अन्तिम वर्ष।

८—श्री मोहनलाल मेहता—बी. ए. तथा जैनदर्शनशास्त्री का अन्तिम वर्ष।

९—श्री कान्तिलाल दोशी—बी. ए. तथा जैनदर्शनशास्त्री का अन्तिम वर्ष।

१०—श्री ज्ञानचन्द भारिल्ल—बी. ए. का अन्तिम वर्ष।

११—श्री मोहनलाल खारीवाल—बी. काम. का अन्तिम वर्ष।

१२—श्री चमनलाल जैन—आई. एससी (प्रथम वर्ष)।

समाज और राष्ट्र की सेवा के लिए विद्याश्रम की नई प्रवृत्ति

'श्रमण'

भारतीय गणतन्त्र की आधार शिला अहिंसा, संयम और तप का संदेशवाहक मासिक। **वार्षिक मूल्य ४)।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण का 'संस्कृति अंक'

मई के प्रारम्भ में

१. क्या आप जानना चाहते हैं कि जैन, बौद्ध, वैदिक, मुसलमान, ईसाई आदि परम्पराओं ने मानव समाज को ऊँचा उठाने के लिए क्या किया ?

२. क्या आप जानना चाहते हैं कि सभी विचार धाराओं के मूल में मानव कल्याण का एक ही स्रोत किस प्रकार बह रहा है ?

३. क्या आप जानना चाहते हैं कि विविधता और एकता एक दूसरे की पूरक हैं और उनका सुन्दर समन्वय कैसे होता है ?

४. क्या आप जानना चाहते हैं कि नवीन मानवता के भव्य प्रासाद की आधार शिला कैसी हो ?

५. क्या आप जानना चाहते हैं कि विश्व शान्ति का मूलमन्त्र क्या है ?

यदि हाँ, तो श्रमण का 'संस्कृति अंक' पढ़िए जो मई के प्रारम्भ में प्रकाशित हो रहा है। इसमें आपको अधिकारी, विद्वान् एवं सांस्कृतिक साधक तथा तपस्वियों की चिरकालीन साधना का निचोड़ मिलेगा। उनकी प्रातिभ स्फूर्तियों का प्रकाश मिलेगा।

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि 'श्रमण' किस प्रकार स्वस्थ मानसिक भोजन दे रहा है। मानवता के प्रत्येक उपासक ने उस के ध्येय तथा उसकी सूझ को पसन्द किया है। आप इसे पढ़िए और अनुभव कीजिए कि सम्प्रदायवाद के काले बादलों के पीछे किस प्रकार मानवता का अरुणोदय हो रहा है। अपने नए तथा भव्य संदेश को लेकर यह प्रत्येक महीने के प्रथम सप्ताह में आप के पास पहुंचता रहेगा। हम चाहते हैं, इस का प्रेरणाप्रद संदेश प्रत्येक घर में पहुँचे, प्रत्येक नर तथा नारी के हृदय में उतरे, उदीयमान संतति का पथ प्रदर्शक बने और नवीन मानवता के निर्माण में सहयोग दे।

यदि आप अभी तक इसे नहीं पढ़ रहे हैं तो आज से ही प्रारम्भ कर दीजिए।

वार्षिक मूल्य ४) **सौ पृष्ठों का सचित्र संस्कृति अंक १)**

ग्राहक बनने के लिए लिखिए

व्यवस्थापक—'श्रमण' जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'SANMATI' PUBLICATIONS

	World Problems and Jain Ethics by Dr. Beni Prasad	6 An
	Lord Mahavira by Dr. Bool Chand, M.A., Ph.D.	Rs. 4/8
3.	विश्व-समस्या और व्रत-विचार—डॉ० बेनीप्रसाद	चार आने
4.	Constitution	4 Ans
5.	अहिंसा की साधना —श्री काका कालेलकर	चार आने
6.	परिचयपत्र और वार्षिक कार्यविवरण	चार आने
7.	Jainism in Kalingadesa—Dr. Bool Chand	4 Ans
8.	भगवान् महावीर—श्रीदलसुखभाई मालवणिया	चार-आने
9.	Mantra Shastra and Jainism—Dr. A. S. Altekar	4 Ans
10.	जैन-संस्कृति का हृदय—पं० श्री सुखलालजी संघवी	चार आने
11.	भ० महावीरका जीवन–पं० श्री सुखलालजी संघवी	" "
12.	जैन तत्त्वज्ञान, जैनधर्म और नीतिवाद लें०–पं० श्री सुखलालजी तथा डॉ० राजबलि पाण्डेय	" "
13.	आगमयुग का अनेकान्तवाद—श्री दलसुखभाई मालवणिया	आठ आने
14--15.	निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय—श्री सुखलालजी संघवी	एक रुपया
16.	वस्तुपाल का विद्यामण्डल—प्रो० भोगीलाल सांडेसरा	आठ आने
17.	जैन आगम—श्री दलसुखभाई मालवणिया	दस आने
18.	कार्यप्रवृत्ति और कार्यदिशा	आठ आने
19.	गांधीजी और धर्म लें० पं० श्री सुखलालजी और दलसुख मालवणिया	दस आने
20.	अनेकान्तवाद—पं० श्री सुखलाल जी संघवी	बारह आने
21.	जैन दार्शनिक साहित्य का सिंहावलोकन पं० दलसुखभाई मालवणिया	दस आने
22.	राजर्षि कुमारपाल–मुनि श्री जिनविजयजी	आठ आने
23.	जैनधर्म का प्राण–श्री सुखलालजी संघवी	छः आने
24.	हिन्दू, जैन और हरिजन मंदिर प्रवेश लें० श्री पृथ्वीराज जैन M.A.	सात आने

Write to :—

The Secretary,
JAIN CULTURAL RESEARCH SOCIETY
BENARES HINDU UNIVERSITY.

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

एयं खु नाणिणो सारं जं न हिंसइ कंचण ।
अहिंसा समयं चेव एतावन्तं वियाणिया ॥

ज्ञानी या समझदार होने का अर्थ है—किसी को कष्ट न पहुँचाना । अहिंसा ही असली सिद्धान्त है, तुम इसी को समझो ।

—महावीर

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥

वैर करने से वैर कभी शान्त नहीं होते । अवैर-मित्रता करने से ही वैर शान्त होते हैं । यही सदा का नियम है ।

—बुद्ध

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी
बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

इन्द्र, एम० ए० — दलसुख मालवणिया

पृथ्वीराज जैन — मोहन लाल मेहता

इस अंक में—

१. आप बन अपनी शरण (कविता)—श्री श्यामसुन्दर खत्री — १
२. अपनी बात (संपादकीय)— — ३
३. अहिंसा की साधना—काका कालेलकर — ११
४. मृत्युंजय (कहानी)—मोहन लाल मेहता — १४
५. काल का प्रभाव—मुनि सन्तबाल — १८
६. बौद्धधर्म—प्रो० दलसुख मालवणिया — १९
७. संस्कृति का प्रश्न—प्रो० विमल दास जैन — २३
८. विश्वास लिए आया हूँ (कविता)—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल — २८
९. पारिवारिक जीवन सुखी कैसे हो—श्रीमती यमुना देवी पाठक — २९
१०. ईर्यापथ-प्रतिक्रमण—श्री धीरज लाल टो० शाह — ३४
११. साहित्य-सत्कार— — ३७
१२. विद्याश्रम समाचार— — ४०

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनीऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) — एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस—५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-पुस्तकालय, गुरुकुल काँगड़ी

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू युनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष १ मई १९५० अंक ७

आप बन अपनी शरण—

—श्री श्यामसुन्दर खत्री

मन्दिरों की देहली पर भक्ति से नित प्रणत होकर,
हृदय-द्रावी आर्तस्वर से माँगता तू मुक्तिका वर,
लौटना पड़ता तुझे पर विफलता का भार लेकर,
सुन नहीं पड़ता तुझे यह देवता का मौन उत्तर—
'मूढ़! तेरे हाथ में हैं मुक्ति के सब उपकरण;
ज्योति अपनी आप बन तू, आप बन अपनी शरण।'

क्यों भटकता फिर रहा तू, अन्ध-सा क्या टो रहा है?
स्वीय निधि की सुधि न तुझको, जागता भी सो रहा है!
एक दाने को तरसता दीन बनकर रो रहा है!
बीज तेरे पास है, तू क्यों न उसको बो रहा है?
ललकती प्रतिपल सफलता चूमने को तव चरण,
ज्योति अपनी आप बन तू, आप बन अपनी शरण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियति के वे ही पुजारी आत्मबल से हीन हैं जो,
दैव करुणा के भिखारी निपट निष्क्रिय दीन हैं जो,
काल-गति से वे विवश हैं कापुरुष हैं क्षीण हैं जो,
और भाग्याधीन वे ही नर, नहीं स्वाधीन हैं जो।
धीर वीर पराक्रमी का भाग्य करता अनुसरण;
ज्योति अपनी आप बन तू, आप बन अपनी शरण।

विश्व से कुछ माँगने को हाथ क्यों तूने बढ़ाया?
यह भिखारी आप, इससे कब किसीने माँग पाया?
दे सका जितना इसे जो, वह महत् उतना कहाया।
दे अरे, सर्वस्व तू भी, तू यहाँ लेने न आया।
तू महादानी, न भिक्षा-वृत्ति हे नर, कर ग्रहण;
ज्योति अपनी आप बन तू, आप बन अपनी शरण।

तृण समझना संकटों की विकट सेना, काम तेरा,
समय का क्या बल, समय को फेर देना काम तेरा,
इस महातम में स्वपथ को खोज लेना काम तेरा,
आँधियों में डगमगाती नाव खेना काम तेरा।
आत्मबल तेरा बढ़ाते संकटों के आक्रमण;
ज्योति अपनी आप बन तू, आप बन अपनी शरण।

तू मनुज है, तू चराचर सृष्टि का है रत्न अतुलित,
प्रसव कर तुझको प्रकृति की कोख सार्थक और गर्वित,
बुद्धि तेरी है असीमित, शक्ति तेरी है अपरिमित,
हृदय तेरा देव-वन्दित सिन्धु-गुण-गरिमा-तरंगित।
तू विकासोन्मुख सदा है, पूर्णता पथ में प्रवण;
ज्योति अपनी आप बन तू, आप बन अपनी शरण।

'विशाल भारत'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय-गुरुकुल, गुरुकुल काँगड़ी.

अपनी बात

संस्कृति की पुकार

आज चारों ओर से संस्कृति और धर्म की पुकार आ रही है। 'इसलाम खतरे में' का नारा लगाकर जिन्हा ने पाकिस्तान बना लिया। इधर 'हिन्दू धर्म खतरे में' का नारा लगाकर साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाया जा रहा है। पाकिस्तान में यदि कोई मन्दिर तोड़ दिया जाता है तो हिन्दू अखबार चिल्लाते हैं—हिन्दू संस्कृति नष्ट हो गई। यदि कोई मस्जिद तोड़ दी जाती है मुसलमान चिल्ला उठते हैं। हम यह मानते हैं कि न मस्जिद टूटनी चाहिए और न मन्दिर। किन्तु यह विचारने की बात है कि मन्दिर और मस्जिद को वास्तव में तोड़ने वाले कौन हैं ? ईंट और पत्थरों का नाम मन्दिर नहीं है। मन्दिर का अर्थ है देवालय। वह तो उस देव का घर है जिसे भक्त जगत्पिता, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर तथा सर्वहितङ्कर मानते हैं। वह हिन्दुओं का भी पिता है और मुसलमानों का भी। उस पर हिन्दुओं का जितना अधिकार है उतना ही मुसलमानों का। ऐसी दशा में यदि एक मुसलमान वहाँ आकर उसकी स्तुति करना चाहता है तो हिन्दू को प्रसन्नता होनी चाहिए। यह ठीक है कि वह पत्थर या धातु के बने हुए उस आकार को हाथ नहीं जोड़ता जिसे हिन्दू परमात्मा का प्रतीक मानते हैं। किन्तु प्रतीक तो भावनाओं पर निर्भर है। मानो तो सब कुछ, नहीं तो कुछ नहीं। इसके लिए दूसरे को भी बाध्य नहीं किया जा सकता। वह चाहे तो दूसरा प्रतीक रखे या बिना प्रतीक के ही उपासना करे। स्तुति के स्थान पर इबादत कहे। संस्कृत भाषा के स्थान पर अरबी या फारसी का प्रयोग करे तो इसमें आग्रह न होना चाहिए। प्रतीक और भाषा तो उसी परमात्मा या अल्लाह के पास पहुँचने के साधन हैं। साधनों के भेद से संस्कृति में भेद नहीं होता। संस्कृति में भेद होता है लक्ष्य के भेद होने पर।

संस्कृति का अर्थ है संस्कार या सफाई। घर की सफाई बाँस के झाड़ू से की जाय या खजूर के झाड़ू से इसका कोई महत्व नहीं है। कपड़ों की सफाई सन्लाइट से की जाय या पाँच सौ एक से। हमें सफाई से मतलब है। घर, कपड़े, शरीर आदि बाह्य वस्तुओं की सफाई को सभ्यता कहते हैं। संस्कृति का अर्थ है आत्मा की सफाई। वह इबादत से हो, पूजा से हो, प्रतिक्रमण से हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[stamp]

या अन्य किसी मार्ग से। इसके लिए झगड़ा करना नासमझी है। जगत्पिता के मन्दिर में संसार के किसी प्राणी को न आने देना या किसी का बुरा सोचना जगत्पिता का द्रोह करना है। मन्दिर को अपवित्र करना है। संस्कृति का संहार करना है। संस्कृति ईंट और पत्थरों में नहीं रहती, वह तो आत्मा में रहती है। आत्मा विश्वमैत्री की ओर जितनी बढ़ती है उतनी ही संस्कृति की दृष्टि से उन्नति करती है। उसमें जितने बुरे विचार आते हैं उतना ही सांस्कृतिक पतन होता है।

हमें ईंट और पत्थर के बने मन्दिरों से पहले अपने हृदय के मन्दिरों की चिन्ता करनी चाहिए और यह ध्यान रखना चाहिए कि हृदयरूपी देवालय न टूटने पावें। यदि ये देवालय अक्षुण्य रहे तो हमारी संस्कृति को कोई धक्का नहीं लगा सकता। हम हृदयरूपी देवालयों को तोड़कर ईंट और पत्थरों के पीछे पड़े हैं। उन्हें ही संस्कृति मान बैठे हैं।

इसी प्रकार ईंट गिरने से मस्जिद नहीं टूटती। अल्लाह की औलाद का खून करने के लिए यदि मस्जिद में विचार किया जाता है, हथियारों का संग्रह किया जाता है, बुरी बरी योजनाएं बनाई जाती हैं तो इसीसे मस्जिद का अपमान होता है और इसलाम को धक्का लगता है।

हम लोग संस्कृति का नाम लेकर संस्कृति की हत्या कर रहे हैं। धर्म रक्षा की पुकार लगाकर धर्म का गला घोंट रहे हैं। सभ्यता की दुहाई देकर असभ्य और जंगली बनते जा रहे हैं। इस समय ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो बहाव में न बहकर तटस्थ दृष्टि से विचार करें और बहकी हुई दुनियां को ठीक रास्ता दिखाएं। क्या अनेकान्त के सच्चे अनुयायी इस समय आगे आएँगे?

नए पैगम्बर की अनोखी सूझ

ब्रह्मचर्य साधु संस्था का प्राण है। भारतीय धार्मिक परम्पराओं में इसे सबसे अधिक महत्व दिया गया है। यदि कोई साधु झूठ बोलता है या चरित्र के अन्य किसी प्रकार के दोष लगाता है तो प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो सकता है किन्तु ब्रह्मचर्य भंग करने वाला नहीं। वह साधु नहीं रह सकता। इस विषय में कोई भी धार्मिक सम्प्रदाय छूट नहीं देता। इतना ही नहीं, गृहस्थ के लिए भी इस विषय में मर्यादाएं निश्चित हैं। जो उन्हें तोड़ता है वह पतित माना जाता है। इस बात को कोई विचारशील मानने के लिए तैयार नहीं है कि साधु संस्था के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य का आदर्श केवल सन्ततिपालन के झंझट

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बचने के लिए है। जो व्यक्ति जीवन में किसी महान् लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए मन को विषयवासना और सांसारिक भोगों से हटाना आवश्यक है इसके बिना साधना नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य भंग करने वाला पूर्ण साधक नहीं बन सकता। साधु को इस बात की छूट देने का अर्थ है साधु-संस्था को अपने आदर्श से गिरा देना।

नए पैगम्बर स्वामी सत्यभक्त जी 'संगम' के एप्रिल अंक में साधुओं को सलाह देते हैं कि उन्हें सन्तति-नियमन के लिए अपना आपरेशन करवा लेना चाहिए। इससे वे अपनी इच्छा तृप्ति कर सकेंगे और सन्तान के झंझट से भी बच जाएंगे। हम सत्यभक्त जी से पूछते हैं कि जो व्यक्ति अपनी वासनाओं का निरोध नहीं कर सकता उसे साधु बनने की क्या आवश्यकता है? उसे गृहस्थ की मर्यादा में रहना चाहिए। साधु का पद तो उसे ही मिलना चाहिए जो उस आदर्श पर पहुँच चुका है। व्यक्ति की दुर्बलताओं के लिए ऊँचे आदर्श को गिराना सर्वथा अनुचित है। दूसरी बात यह है कि इससे गृहस्थ और साधु में कोई भेद नहीं रह जाता। साधु न होने पर भी किसी को साधु मानना और उसे सुविधा देने के लिए चारित्र सम्बन्धी नियमों में शिथिलता करना उच्च आदर्शों को नष्ट करना है।

संतति-नियमन के लिए कृत्रिम उपायों का उपयोग करना चाहिए या नहीं यह एक दूसरा प्रश्न है। इसका निर्णय व्यक्ति अपनी शक्ति और सुविधाओं के अनुसार स्वयं कर सकता है किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि संयम सर्वश्रेष्ठ उपाय है। जो उसका पालन नहीं कर सकता उसके लिए लाचारी है। साधु वही हो सकता है जो संयम का पालन कर सकता है; यहाँ लाचारी का प्रश्न नहीं है। फिर भी उसे भोगेच्छा को तृप्त करने की छूट देना और उत्तरदायित्व से बचने के लिए सन्तति-नियमन के कृत्रिम उपाय बताना नैतिक आदर्श को तिलांजलि देना है। बाह्य आचार की छोटी छोटी बातों में मतभेद हो सकता है किन्तु ब्रह्मचर्य तो साधुसंस्था की नींव है। इसकी उपेक्षा नहीं हो सकती।

महावीर और बुद्ध के समय सन्तान की समस्या न थी। उस समय तो आर्य अपनी संस्था को बढ़ाना चाहते थे और इसीलिए विवाह के समय दस पुत्र उत्पन्न करना कर्तव्य के रूप में बताया जाता था। किन्तु फिर भी महावीर और बुद्ध ने अब्रह्मचर्य को आत्मविकास में बाधक माना और साधु-संस्था के लिए उसे सर्वथा वर्जित किया। यदि कोई पत्नी के साथ रहना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तो उसके लिए श्रावक की मर्यादाएं बताईं। ब्राह्मण परम्परा में भी स्त्रीप्रसंग का ध्येय केवल सन्तानोत्पत्ति बताया गया। इन सब बातों की उपेक्षा करके सपत्नीक साधु-संस्था और सन्तति-नियमन के लिए साधुओं को आपरेशन की सलाह देकर स्वामी सत्यभक्त जी समाज तथा देश का कौन सा भला करना चाहते हैं, यह समझ में नहीं आया।

नेहरू-लियाकत समझौता

पूर्वी पाकिस्तान में उपद्रवों के कारण भारत सरकार के सामने एक विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी। हम यह नहीं कह सकते कि यह परिस्थिति भारतीय गणतन्त्र की दुर्बलता या कायरता से उत्पन्न हुई। पाकिस्तान की ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए भारत के पास पर्याप्त साधन हैं। भारतीय सेना और भारतीय जनता के पास पाकिस्तानी इरादों को कुचलने के लिए पर्याप्त बल है। इस विकट परिस्थिति का असली कारण धर्मसंकट है। एक ओर वे सब सिद्धान्त और आदर्श हैं जिन के लिए भारतीय गणतन्त्र का निर्माण हुआ है, और जिन की आधार शिला पर नया संविधान बनाया गया है। दूसरी ओर उन लोगों की रक्षा का प्रश्न है जो भारतीय स्वाधीनता के लिए हमारे साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर लड़े हैं, जो हमारे ही भाई हैं, जिन के लिए भारत के अतिरिक्त कोई आशा का चिह्न नहीं है, जो हमारे ही भरोसे जी रहे हैं। एक ओर सिद्धान्त हानि है, दूसरी ओर विश्वासघात। ऐसे समय में हमारे विचारशील राजनीतिज्ञों ने विविध प्रकार के सुझाव दिए हैं। हमें उन पर तटस्थ दृष्टि से विचार करना है।

पहला सुझाव है आबादी का परिवर्तन। इसका अर्थ है बंगाल से सवा करोड़ हिन्दू यहाँ आजायें और उनके बदले में उतने ही या सब के सब मुसलमान यहाँ से निकाल दिए जायें। इस सुझाव में यह प्रश्न उठता है कि जब भारतीय गणतन्त्र धर्मनिरपेक्ष राज्य है तो उसे भारतीय मुसलमानों को केवल मुसलमान होने के कारण दण्ड देने का क्या अधिकार है? जब तक यह नहीं माना जाता कि हिन्दू और मुसलमान दो जातियाँ हैं और वे इकट्ठी नहीं रह सकतीं तब तक भारतीय मुसलमानों को किस आधार पर निकाला जा सकता है। इस का उत्तर यही हो सकता है कि पाकिस्तान से आने वाले हिन्दुओं को जगह देने के लिए मुसलमानों को निकालना आवश्यक है। यह भी ठीक नहीं है, भारत और पाकिस्तान के नाम से दो देश बन जाने के बाद राष्ट्रीयता की दृष्टि से पाकिस्तानी हिन्दुओं की अपेक्षा भारतीय मुसलमान हमारे अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकट हैं। भारतीय मुसलमानों के सुख दुःख का उत्तरदायित्व पूर्णतया भारत सरकार पर है। पाकिस्तानी हिन्दुओं के साथ सिद्धान्तरूप से भारत का नाता उतना ही है जितना पाकिस्तानी मुसलमानों के साथ। उनके साथ हमारी सहानुभूति के दो आधार हो सकते हैं। पहला, क्योंकि वे पीड़ित हैं; संसार के किसी कोने में जो भी पीड़ित वर्ग है, उसके साथ हमारी सहानुभूति है। यदि पीड़ित मुसलमान होते तब भी हमारी उतनी ही सहानुभूति होती। हमारा अहिंसा का सिद्धान्त हमें पीड़ितों की सहायता करने के लिए बाध्य करता है। किन्तु उसका रूप यह नहीं हो सकता कि उसके लिए दूसरे वर्ग को तंग किया जाय। सहानुभूति का दूसरा आधार यह है कि भारत में जो बहुसंख्यक जाति है उसका धार्मिक सम्बन्ध उन हिन्दुओं के साथ है। उन पर होने वाले अत्याचारों से भारत में क्षोभ उत्पन्न होता है और यहाँ के हिन्दू अपना क्रोध भारतीय मुसलमानों पर उतारने के लिए व्यग्र हो उठते हैं। किन्तु प्रश्न यह है क्या इस उत्तेजना से डर कर अपना सिद्धान्त छोड़ देना चाहिए ?

पीड़ितों के साथ सहानुभूति के लिए भारत सरकार इतना कर सकती है कि जो वहां से आना चाहें उन्हें सुरक्षित रूप से ले आए और अपने यहाँ बसा ले। इसके बाद पाकिस्तान सरकार पर दबाव डाले कि या तो वह जितनी भूमि हिन्दू वहाँ छोड़ आए हैं उतनी भारत को देने के लिए तैयार हो या ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करे कि निकले हुए हिन्दू वापिस अपने अपने घरों में रहने के लिए तैयार हो जायँ। उन की क्षतिपूर्ति करे और भविष्य में रक्षा के लिए पूरा प्रबन्ध करे।

इस सुझाव के उत्तर में एक ही बात कही जा सकती है कि पाकिस्तान का विश्वास नहीं है। वह कहता कुछ है और करता कुछ है। वह भारत के साथ की गई सभी शर्तों को तोड़ चुका है। ऐसी दशा में नई शर्तों द्वारा उस पर विश्वास करके सवा करोड़ व्यक्तियों की जान को खतरे में डालना उचित नहीं है। इसका उत्तर तो यही हो सकता है कि भारत सरकार पाकिस्तान के साथ सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद कर दे और उसके द्वारा सीमाओं पर होने वाले हमलों को युद्ध की चुनौती समझे।

यह निश्चित है कि भारत और पाकिस्तान का युद्ध केवल दो भाइयों का युद्ध नहीं होगा। उस में दूसरी शक्तियाँ आएँगी और वह चिनगारी विश्व-व्यापी युद्ध का भयंकर रूप धारण कर लेगी। इस का परिणाम दोनों देशों के लिए भयंकर हो सकता है यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वी पाकिस्तान में बचे हुए सवा करोड़ हिन्दुओं को बचाने की दृष्टि से भी युद्ध कभी उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। इससे तो उनका संकट और बढ़ जाएगा। हम यह मान सकते हैं कि पाकिस्तान में हिन्दुओं का जितना नुकसान होगा हम उतना ही या उससे भी अधिक भारत में मुसलमानों का कर सकते हैं। किन्तु दूसरे के नुक्सान से अपने नुक्सान की पूर्ति तो नहीं हो सकती। इस प्रकार का आसुरी सन्तोष किसी भी सभ्य जाति के लिए लज्जा की बात होगी।

इन सब बातों को देखते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने जो मार्ग अपनाया है वह पूर्णतया अभिनन्दनीय है। सभी प्रकार के उत्तेजन तथा आघात होने पर भी उन्होंने जिस धैर्य और शान्ति का परिचय दिया है, उससे सिद्ध होता है कि उनमें महात्मा गांधी की आत्मा बोल रही है। उन्हों ने जो कदम उठाया है वह बताता है कि वे सच्चे वीर हैं, गम्भीर राजनीतिज्ञ हैं, महामानव हैं और विश्वकल्याण के परम उपासक हैं।

इस समझौते से भारत का भला हुआ है, पाकिस्तान का हित हुआ है और विश्व महायुद्ध की एक चिनगारी से बच गया कहा जाता है। पाकिस्तान शर्तों को नहीं मानता। नेहरूजी तथा हमारे दूसरे नेता इस बात को भलीभांति जानते हैं किन्तु फिर भी हमें यह मानना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति में आसुरी और दैवी दोनों प्रकार की वृत्तियां विद्यमान हैं। सौ बार बुराई करने के बाद भी एक सौ एकवीं बार मनुष्य भला बन सकता है। सारी उमर पापी रहने पर भी अन्तिम अवस्था में एक व्यक्ति सच्चा धार्मिक बन सकता है। ऐसी दशा में यदि मियाँ लियाकत अली समझौते की बात करने आते हैं तो हमें उन पर विश्वास करना चाहिए। फिर भी यदि वे शर्तों का पालन नहीं करते तो दूसरा उपाय सोचा जा सकता है किन्तु पहले यह मान कर बैठ जाना कि वे धोखा देंगे, ठीक नहीं है। विशेषतया ऐसी परिस्थिति में जब कि शान्ति में ही, चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी—लाभ है, नुक्सान कुछ नहीं।

युद्ध या प्रतिहिंसा की भावना रखने वाले व्यक्तियों में प्रायः ऐसे हैं जो पाकिस्तान के अत्याचारों की आड़ लेकर अपनी स्वार्थपूर्ति करना चाहते हैं। पश्चिमी पंजाब की प्रतिक्रिया पूर्वी पंजाब में हुई। बहुत से मुसलमान लूटे गए। किन्तु किसी लूटने वाले ने अपनी इच्छा से लूट का माल आने वाले शरणार्थी को नहीं दिया। यदि हमें पूर्वी बंगाल के पीड़ितों के साथ वास्तविक सहानुभूति है तो उनके लिए कुछ त्याग करना चाहिए। उन्हें बसाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए । सच बात यह है भारतीय मुसलमानों को मारकर हम सहानुभूति की आड़ में अपनी राक्षसी वृत्तियों का ही पोषण करना चाहते हैं ।

—इन्द्र

सिनेमा का दूषित प्रभाव

आज के मनुष्य जीवन पर विज्ञान के जिन चमत्कारों का गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा है, उनमें सिनेमा का स्थान बड़ा महत्त्व रखता है। हमारे दिलबहलाव का यह एक मुख्य साधन है। सिनेमा से मनुष्य के दिमाग़ में हर रोज़ किसी न किसी प्रकार के रस या ज़हर का संचार होता रहता है। हमारा दुर्भाग्य है कि भारत में इस साधन से ज़हर ही अधिक मात्रा में दिया गया है। चित्रपटों के बनाने वालों का प्रधान उद्देश्य जनता की मानसिक कमज़ोरियों और विकृत रुचि का अनुचित लाभ उठाकर पैसे बटोरना ही रह गया है। इस धंधे से आम लोगों का जीवन उन्नत बनाया जाए, इस तरफ़ जैसा चाहिए, वैसा ध्यान नहीं दिया जाता।

हमारे देश में जो चित्रपट तैयार किए जाते हैं, वे अकसर प्रेम, युद्ध और सनसनी आदि विषयों पर ही होते हैं। उनसे दर्शकों की कामभावना उत्तेजित होकर ग़लत दिशा की ओर बढ़ने लगती है। नाच और गाने के दृश्यों में कला की दृष्टि से शायद ही कोई विशेषता होती है। घटनाओं से उनका मेल भी स्वाभाविक नहीं होता; ऐसा मालूम होता है कि उन्हें हर चित्रपट का ज़रूरी भाग समझ कर जैसे तैसे कहीं न कहीं जोड़ दिया जाता है। कथानक का संबंध भी हमारे रोज़मर्रा के जीवन से बहुत कम रहता है। नायक-नायिका में परस्पर प्रेम और आकर्षण का श्रीगणेश काल्पनिक भी होता है और प्रायः भद्दा भी। इन सब बातों का परिणाम यह है कि जीवन में विलासिता बढ़ती ही जाती है। युवक और युवतियों में विवेक रहित उच्छृंखल प्रेम की वृद्धि हो रही है। विनय, बड़े बूढ़ों के प्रति आदरभाव और शिष्ट व्यवहार बीते हुए ज़माने की स्मृतियां रह गई हैं। व्यक्ति की अधिक से अधिक स्वतंत्रता, जीवन-साथी के चुनाव की पूरी आज़ादी और प्रेम करने के जन्मसिद्ध अधिकार के नाम पर स्वच्छंदता, अनैतिकता और व्यभिचार को पोषण मिल रहा है। गली गली में छोटी उमर के नादान बच्चे भी कामवासना से भरे हुए प्रेम के तराने गाते दिखाई देते हैं। चित्रपटों में दिखाए गए रहन सहन, आहार विहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आचार विचार आदि के ढंग आम लोगों में घर करते जाते हैं। वहाँ देखे गए बनावटी और आवेशपूर्ण प्रेम के दृश्यों से प्रभावित होकर आज कल के लैला मजनुओं पर उन दृश्यों को अपने जीवन में असली जामा पहनाने की धुन सवार हो जाती है। नतीजा हमारे सामने है। हम आए दिन अखबारों में आत्मघात, बेहोशी, पागल हो जानें, घर से भाग जाने और छिपे छिपे विवाह कर लेने आदि के विचित्र परन्तु दुःखद समाचार पढ़ा करते हैं। सिनेमा संबंधी बहुत से पत्रों में पाठकों के प्रश्न और संपादक की ओर से दिए गए उत्तर छपा करते हैं। उन प्रश्नों को पढ़ कर आश्चर्य भी होता है और नैतिक पतन की इतनी जबरदस्त भयंकरता देख कर अफ़सोस भी।

कहा जाता है कि भारत का फिल्म व्यवसाय संसार में दूसरे नम्बर का है। हर साल लगभग ढाई तीन सौ नए चित्र तैयार होते हैं। अनुमानतः तीस करोड़ की पूँजी इस धँधे में लगी हुई है और एक लाख के करीब व्यक्ति इसमें काम करते हैं। ऐसे विशाल और प्रभावशाली उद्योग को ठीक दिशा की ओर मोड़ना हमारी सरकार का प्रधान कर्तव्य है। इस बात की बड़ी ज़रूरत है कि सेंसर ऐसे तरीके से हो कि एक प्रान्त के बोर्ड द्वारा सेंसर की गई फिल्म दूसरे प्रान्त में सरलता से स्वीकृत न हो सके, शिक्षा और संस्कृति संबंधी फिल्में भी तैयार कराई जाएँ, कथानक के विषय वास्तविक जीवन को स्पर्श भी करें और उसे उन्नत बनाने की प्रेरणा भी। आज विद्यार्थी समाज में सिनेमा देखने का शौक़ तेज़ी से बढ़ रहा है। मगर उनके जीवन के अनुकूल चित्रपट बनते ही नहीं। आश्चर्य है कि भारत में विदेशों के स्तर की फिल्में तैयार नहीं हो पातीं। शिक्षासंबंधी फिल्मों की आयात से ही काम नहीं चलेगा। भारत सरकार ने ऐसी फिल्में देश में बनवाने के लिए कुछ समय पूर्व कदम उठाया था किन्तु प्रगति नहीं हो सकी। इस परिस्थिति में तत्काल सुधार होना चाहिए, नहीं तो फैलाए जानें वाले विष का असर इतना भयंकर हो जाएगा कि उसे दूर करना आसान न होगा।

—पृथ्वीराज जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसा की साधना–

–काका कालेलकर

अहिंसा का जन्म कब हुआ ? यह एक प्रश्न है। मैं मानता हूँ कि जब मनुष्य ने माता के पेट में जन्म लिया तब से अहिंसा का जन्म हुआ है। बलिदान तथा स्वार्पण के बिना अहिंसा जीवित नहीं रह सकती। यदि माता अपनी हिंसा का बलिदान देकर अहिंसा को प्रकट न करे तो स्नेहपूर्ण वात्सल्य का आविर्भाव कैसे हो सकता है ? खुद की हिंसा का बलिदान न करके हिंसा का विरोध हो और अहिंसा जीवित रहे यह बनियावृत्ति है, क्षात्रवृत्ति नहीं। बलिदान अर्थात् अपनी हिंसा स्वेच्छा से होने देना और स्वार्पण के द्वारा दूसरों की रक्षा करते जाना यह अहिंसक दृष्टि है, वीरवृत्ति है। इससे विपरीत मैं बच जाऊँ और अहिंसा की ओट में अपने बचाव के सब साधन जुटा दूँ—यह हिंसा का तरीका है, अहिंसा का नहीं।

अहिंसा का विधान सभी जगह है। अभी तो उसका सर्वांगीण विकास भी हो रहा है। पहले उसे केवल तपस्विओं का धर्म माना जाता था, बाद में लोगों ने उसे सामाजिक जीवन में अपनाया और युगधर्म का रूप दिया। मनुष्य को जीना है तो उसे अद्रोहवृत्ति से जीना चाहिए। इसी में सुख और शान्ति सन्निहित है। यदि सम्पूर्ण अद्रोहवृत्ति से जीवन चला नहीं सकते तो अल्पद्रोह से ही जीवन-व्यवहार चलाना चाहिए। यही आदर्श और व्यवहार का मध्यम मार्ग है। इस कथन की कसौटी का एक प्रसङ्ग भी मेरे सामने आगया है। पाण्डेचरी में अरविन्दाश्रम में पोल रिशार ने Scourge of Christ नामक एक सुन्दर पुस्तक लिखी है, उसमें बहुत ही सुन्दर वचनामृत भी दिए हैं। एक जगह उसमें लिखा था कि Living is Killing अर्थात् हिंसा के बिना जीवन सम्भव नहीं है। मुझे यह कथन ठीक नहीं जँचा, मैंने उनसे आक्षेप किया कि 'Living is Killing' is a fact of life but not a law of life जीवन में हिंसा अनिवार्य है यह ठीक है, लेकिन यह जीवन का नियम नहीं है। इसलिए मेरी दृष्टि में जीवन का नियम तो यह होना चाहिए कि Killing the least is Living the best कम से कम हिंसा ही सर्वोच्च जीवन है। मेरा यह सुझाव पोल रिशार को बहुत पसन्द आया और उसीका उन्होंने प्रचार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनधर्म का प्राण अहिंसा तो है ही, उसमें अपरिग्रह, अस्तेय और निर्भयता (डरूँ नहीं, डराऊँ नहीं) का समावेश भी हो जाता है। जो धर्म अहिंसा पर प्रतिष्ठित है आज उसीका अनुगामी जैन समाज हिंसा और परिग्रह का भागी हो रहा है यह दु:ख की बात है। मैं रामटेक (नागपुर) गया था। वहाँ जैन मन्दिर के द्वार पर बन्दूक और तलवार लेकर पहरेदार बैठे थे। उस समय मेरे मन में विचार आया कि सोने-चाँदी, हीरे-माणिक आदि से अहिंसा-मूर्ति भगवान को लाद कर, दरवाज़ा बन्दकर, ताला लगाकर और बन्दूक तलवार सहित पहरेदार बैठाकर भगवान के द्वारा प्ररूपित अहिंसा और अपरिग्रहादि धर्म का अपमान और उपहास किया जाता है! यह किसी भी अहिंसाप्रेमी व्यक्ति के लिए सह्य नहीं है।

अहिंसा पहले तपस्विधर्म ही माना जाता था लेकिन बाद में यतिधर्म में भी अहिंसा मुख्य अंग बन गई है। अहिंसा के द्वारा ही जीवन बिताना यह परम सत्य है। मृत्यु हो या जीवन, उत्थान हो या पतन, विजय हो या पराजय, नाश हो या विकास; लेकिन अहिंसा-साधना ही मेरे जीवन का मूलमन्त्र है, ऐसी सच्ची निष्ठा ही परम सत्य है। आध्यात्मिक दृष्टि से सत्य का विजय निश्चित है। लेकिन 'सत्यमेव जयते' यह एक आश्वासन-वाक्य है, इसीलिए तो जब मैंने यह ध्येय-वाक्य Truth alone matters देखा तो वह मुझे भा गया और जब मैंने 'सच्चं लोगम्मि सारभूयं' ऐसा सूत्र का प्राचीन वाक्य देखा तो पुलकित हो उठा। सत्य की ही विजय है, उसके स्थान पर 'सत्य ही सारभूत है' यह प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ व सुन्दर मालूम पड़ता है।

अहिंसा में जीवन की कृतार्थता है लेकिन इसके लिए बलिदान और जीवन-त्याग अभीष्ट है। जीवन-त्याग के सदुपयोग में ही अहिंसा की सार्थकता है।

तपस्वि-धर्म और मर्यादित गृहस्थधर्म में जीवनसमर्पण के द्वारा अहिंसा का निरूपण बहुत किया गया है लेकिन अहिंसा क्षात्रधर्म है यह तो गांधीजी का नूतन निरूपण है। सौ फ़ी सदी अहिंसा में रहकर अन्याय, अनाचार का वीरतापूर्वक प्रतिकार करना यह गांधीजी का जीवनसन्देश है। इस अहिंसक क्षात्रधर्म के पीछे मानवता के विकास की पूर्ण दृष्टि रही हुई है। गांधीजी को अहिंसा प्रचारक के बदले 'हिंसा, अन्याय और अनाचार के प्रतिकारक ऋषि' कहना में ज्यादा पसंद करूंगा। अहिंसा के पालन के द्वारा अन्याय-अत्याचार का प्रतिकार करने की शक्ति पैदा करना यह गांधीजी की विश्व को बड़ी देन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी

अहिंसा यह जीवनकला है उसका पूर्ण दर्शन महावीर स्वामी ने कराया है। वे भविष्य की मानवता के महान् निर्माता थे। भावी प्रजा के सुख के लिए बीज बोने वाला आदमी आस्तिक है, लेकिन हजारों वर्षों के बाद आनेवाली भावी पीढ़ी की सुख-शान्ति के लिए, भविष्य का दर्शन करके, अहिंसा जैसे सूक्ष्म बीज के बोने वाले श्री महावीर स्वामी परम आस्तिक थे। सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों की हिंसा करने का अधिकार किसी को नहीं है—उसका उपदेश देना, उसके अनुरूप पालन करना और भावी प्रजा के लिए मार्गदर्शन कराना यह युगद्रष्टा महावीर के मनुष्यहृदय पर अटल विश्वास, बंधुधर्म, मित्रधर्म और जीवन-बलिदान आदि को प्रगट करता है। महावीर स्वामी की पैनी कल्पना, उनकी आस्तिकता और जीवनकला पर बड़ी श्रद्धा उत्पन्न होती है। यों तो आजकल जिसे आस्तिकता कहा जाता है उससे मेरा कोई वास्ता नहीं है। महावीर स्वामी का भविष्य का दर्शन कितना स्पष्ट था और मनुष्य हृदय पर उनका अटल विश्वास कितना था यही उनका परमास्तिक्य समझना चाहिए।

जिस अहिंसा में स्याद्वादरूप बौद्धिक अहिंसा, तपस्यारूप आत्मिक अहिंसा और जीवदयारूप नैतिक अहिंसा का सुन्दर समन्वय हो गया हो वहां सर्वधर्म-समभाव की वृत्ति पैदा हो यह स्वाभाविक है। अहिंसा-प्रधान भारतीय संस्कृति तो पवित्र संगमसंस्कृति है।

जीवन का उपयोग जब अहिंसा-साधना में ठीक होता है तब अहिंसा में जिन्दादिली आ ही जाती है। इसलिए बलिदान यह अहिंसा का जीवन प्राण है। अहिंसा के द्वारा मुर्दापन दूर हो और बलिदान की भावना पैदा हो इसके लिए श्री गांधीजी की कोशिश चालू रही है। गांधीजी के इस महान प्रयत्न में एक साथी भी मिल गया है। वह है 'एटम् बम'। यह एटम् बम हिंसा की प्रतिमूर्त्ति है, उसमें सत्यानाश करने की शक्ति कूट-कूट करके भरी हुई है। देवासुर संग्राम की तरह आज आसुरी व दैवी शक्ति के बीच द्वन्द्व चल रहा है। एक ओर है अपने बलिदान–स्वार्पण के द्वारा सुख-शान्ति स्थापित करने का अहिंसा का मार्ग और दूसरी ओर है दूसरों का बलिदान लेकर अपना स्वार्थ साधने का एटम् बम—हिंसा का मार्ग। इसप्रकार एटम् और आत्मन्–हिंसा और अहिंसा में कौनसा मार्ग कल्याणकारी है इसका निर्णय जगत् को स्वयं करना है। महावीर स्वामी और महात्माजी ने तो विश्वहितंकर और कल्याणकर अहिंसा का निश्चित मार्ग जगत् को बतला ही दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युञ्जय—

—मोहनलाल मेहता, सिद्धान्त-प्रभाकर

"जाओ शिष्य ! जाओ, भिक्षा का समय हो गया है । नगर में जाकर निर्दोष आहार ले आओ ।" आचार्य श्री ने अपने प्रिय शिष्य धर्मरुचि को संबोधित करते हुए कहा ।

"जो आज्ञा गुरुवर ! जो आदेश आचार्य-प्रवर !!" कहते हुए धर्मरुचि भिक्षा के लिए चल पड़े । ईर्या-समिति का पूर्णरूप से पालन करते हुए नगर के बीचमें यत्र तत्र आहार का अन्वेषण करने लगे । कभी किसी घर के द्वार को बन्द देखकर वापिस लौट जाते तो कभी निर्दोष आहार के अभाव में उन्हें दूसरे घर की खोज करनी पड़ती । इस तरह भ्रमण करते करते भ्रमर-वृत्तिधारी मुनिवर ने एक घण्टा तो यों ही व्यतीत कर दिया । किसी भी स्थान पर निर्दोष आहार का संयोग न मिला ।

अन्त में एक घर ऐसा खोज निकाला जहां पर मुनि-मार्ग के अनुकूल आहार का संयोग दिखाई दिया । मुनिराज ने गृहिणी के समक्ष अपने पात्रों को अनावृत कर दिया । गृहिणी ने कहा—"मुनिवर ! आज मेरा अहोभाग्य है कि आप जैसे त्यागी—तपस्वी ने मेरा घर पवित्र कर दिया । मैं बहुत दिनों से ऐसे समय की प्रतीक्षा कर रही थी । आज आपने मेरी अभिलाषा पूर्ण कर दी ।" मुनि धर्मरुचि चुपचाप सुनते रहे । गृहिणी ने मुनि के पात्र में आहार डाल दिया । मुनि के रोकने पर भी उस भद्र गृहिणी ने उनका सारा पात्र अपने ही यहाँ से भर दिया । मुनि को कुछ आश्चर्य हुआ किन्तु वे क्या कर सकते थे । पात्र में आ जाने पर तो आहार वापिस लौटाया नहीं जा सकता। मुनि चुपचाप अपने पात्रों को उठाकर उपाश्रय की ओर चल दिये । वे मार्ग में यही सोचते रहे कि आज मेरा पूरा पात्र उस एक गृहिणी ने ही क्यों भर दिया ? क्या उसके इस कार्य में कुछ रहस्य था ? नाना भाँति के ऊहापोह करते करते धर्मरुचि अपने स्थान पर पहुँच गए । गुरुजी के समक्ष भिक्षा से भरे हुए पात्र को रखकर बोले—

"गुरुवर ! भिक्षा का आहार लेकर लौट आया हूँ । आप इस आहार को देख कर उचित आज्ञा प्रदान कीजिए ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य श्री ने भरे हुए पात्र की ओर अपनी दृष्टि डाली। उन्हें कुछ संशय हुआ। वे मन ही मन सोचने लगे—'आज धर्म के पात्र में एक ही भाँति का इतना आहार क्यों! किसने आज एक साथ इतना सारा आहार इसके पात्र में डाल दिया! हो न हो, इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। आज तक इसका पात्र कभी एक ही प्रकार के आहार से भरा हुआ नहीं पाया गया और आज ऐसा क्यों? मुनि तो भ्रमर-वृत्ति वाला होता है। वह भिन्न भिन्न स्थानों से भिन्न भिन्न प्रकार का आहार लेकर अपनी उदर-पूर्ति करता है। भ्रमर किसी पुष्प को पीड़ा न पहुँचाता हुआ अपना जीवन यापन करता है। यदि उसके रस-पान से किसी पुष्प को कष्ट हो जाय तो वह भ्रमर ही क्या? भ्रमर की वृत्ति ही इतनी सुकोमल व मधुर होती है कि उसके आचरण से किसी भी कुसुम को कष्ट नहीं होता। मुनि का मार्ग भी ठीक इसी प्रकार का है। मुनि अपनी उदर-पूर्ति के लिए आहार ग्रहण करता है किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखता है कि उसकी इस प्रक्रिया से किसी प्राणी को कष्ट तो नहीं हो रहा है। यदि मुनि को यह विश्वास हो जाता है कि वास्तव में उसका आहार-ग्रहण सात्त्विक है तभी वह उसकी ओर बढ़ता है। आज धर्म के पात्र में एक ही प्रकार का आहार देखकर मुझे इस विषय में कुछ सन्देह होता है। क्या उसके इस आचरण से किसी गृहस्थ को कुछ पीड़ा तो नहीं पहुँची है? क्या किसी गृहिणी का हृदय कष्ट से पीड़ित तो नहीं हुआ है? यदि नहीं तो फिर यह एक ही प्रकार का आहार यहाँ क्यों? घर का पूरा भोजन इसके पात्र में क्यों? कुछ भी तो अन्तर नहीं है। सारा भोजन एक ही व्यक्ति के हाथ का बनाया हुआ तथा एक ही समय में एक ही स्थान पर तैयार किया गया हो ऐसा स्पष्ट प्रतीत हो रहा है।'

वे और समीप आए और पात्र की ओर देखते हुए बोले—"क्यों धर्म! आज यह क्या बात है? यह सारा भोजन किसके यहाँ से लाए हो? आज क्या एक ही घर में फँस गए? क्या मुनि-व्रत का कुछ ध्यान न रहा? क्या कारण है कि आज तुम्हारा पात्र एक ही व्यक्ति ने भर दिया? कुछ स्पष्टीकरण करोगे?"

"हाँ, गुरुदेव! स्पष्टीकरण क्यों नहीं करूँगा! सारे नगर में घूमते घूमते मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ मुझे मुनि-व्रतोचित आहार मिला। मैंने अपने पात्र को उस घर की गृहिणी के सामने रख दिया। मुझे यह मालूम न था कि वह भद्रा मेरा सारा पात्र ही भर देगी और अपना सारा पात्र खाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर डालेगी। मैंने सोचा कि जब वह थोड़ा सा आहार मेरे पात्र में डालेगी तब मैं मना कर दूंगा किन्तु हुआ इसके विपरीत ही। उसने तो एक ही साथ अपना सारा पात्र मेरे पात्र में उंडेल दिया। मैं तो देखता ही रह गया। मेरी समझ में न आया कि उसने ऐसा क्यों किया? गुरुदेव! इस रहस्य का अनावरण आप ही करें तो अच्छा हो।"

गुरुदेव की दशा कुछ विचित्र सी हो गई। वे इसी उलझन में पड़ गए कि आखिर बात क्या है? उस गृहिणी ने ऐसा क्यों किया? धर्म के साथ इस प्रकार की घटना क्यों घटित हुई? उन्होंने उस पात्र में से थोड़ा सा आहार लेकर अपने मुंह में रखा। वे तुरन्त समझ गए कि वास्तविक रहस्य क्या है?

"धर्म! उस गृहिणी ने तुमको धोखा दिया। प्रियशिष्य! यह आहार दिखने में जितना सुन्दर तथा मनोहर है, खाने में उतना ही कठोर तथा हानिप्रद है। उस गृहिणी ने तुम्हारे त्याग की ईर्ष्या से तुम्हारे साथ यह व्यवहार किया है। मेरे शिष्य! इस आहार में विष मिलाया गया है। जगत् त्याग और भोग दोनों को सहन नहीं कर सकता। त्यागी से द्वेष करने वाले भी उसी प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं जिस प्रकार कि भोगी से ईर्ष्या करने वाले। जगत् का नियम न जाने कौन से सिद्धान्त का आश्रय लेकर पनपता है? धर्मरुचि! यह संसार बड़ा विचित्र है। इसकी कार्य-शैली का कोई नियामक नहीं। आज उस गृहिणी ने छल से तुम्हारे प्राणों का अन्त करना चाहा। तुम्हारे त्याग को वह सहन न कर सकी और तुमको भोग में फँसा भी न सकी। इन दोनों वृत्तियों का परिणाम ही आज की इस घटना का रहस्य है।' आचार्य के मुख से यह सुन कर धर्मरुचि समझ गए कि जगत् में क्या क्या प्रपंच हो सकते हैं? मानव-समाज का एक सदस्य अपनी इच्छापूर्ति के लिए क्या क्या कर सकता है? अपने प्रतिपक्षी को पराजित करने के लिए वह क्या क्या षड्यंत्र रच सकता है?

"अच्छा तो धर्म! यह आहार हमारे काम में नहीं आ सकता। तुम जाओ और इसे ऐसे स्थान पर फेंक आओ जहां पर किसी प्रकार की हिंसा की संभावना न हो निर्दोष भूमि का निश्चय करके मुनि किसी वस्तु का त्याग करता है तो उसके आचरण में किसी प्रकार का दोष नहीं आता।" गुरुदेव ने शिष्य को आदेश दिया।

× × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मरुचि गुरुदेव की आज्ञा पा कर वन की ओर चल पड़े। मार्ग में संसार के स्वरूप का चिन्तन करते रहे। जगत् की सारी वृत्तियाँ उनके सामने साकार अवस्था में खड़ी होने लगीं। इस प्रकार से वे बहुत दूर चले गए। वन का प्रान्त निर्जन सा प्रतीत होने लगा। चारों ओर निस्तब्ध शान्ति का साम्राज्य था। कहीं से भी किसी प्रकार का स्वर नहीं आता था। धर्मरुचि ने आहार-त्याग का अच्छा अवसर पाया। वे इसके लिए तैयारी करने लगे। सहसा उनके कानों में एक गीत की झंकार पड़ी—

तुमको करना उत्सर्ग !
भूमि को, तज प्रमाद–
देखो पहले
निर्दोष भूमि का निश्चय कर
जो चाहो उसका त्याग करो
कोई उससे संतप्त न हो
मन में हो उदित न घृणा भाव
यों तुम विवेकमय होकर ही
हां,
त्याज्य-वस्तु का त्याग करो !

'अरे, यह क्या ? शायद कोई मुझे सचेत कर रहा हैं। पृथ्वी का अच्छी तरह से अवलोकन करके ही त्याज्य-वस्तु का त्याग करना चाहिए।' यों सोचकर मुनिवर ने रजोहरण से भूमि को साफ किया। जब उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि इस भूमि में किसी प्रकार की हिंसा की संभावना नहीं है तब उन्होंने थोड़ा सा आहार उस स्थान पर रखा। दो मिनट तक देखते रहे। देखते देखते उस आहार के आसपास अनेक चींटियां इकट्ठी हो गईं। ज्यों ही वे उस आहार तक पहुंचतीं, थोड़ा सा आहार चखतीं त्योंही तुरन्त समाप्त हो जातीं—मर कर वहीं गिर जातीं। मुनि के मन में एकदम अनुकम्पा का भाव उदित हुआ। वे सोचने लगे–'अरे यह क्या ? इतना विष इस आहार में, जिसको कि में यहाँ फेंकना चाहता हूँ। इस आहार से इतनी हत्या ! लाखों जीवों का नाश ! प्राणिमात्र से मैत्री रखने वाला मुनि इस हत्या का भागी बनेगा ! सत्त्वमात्र से प्रेम करने वाला विवेकी इतना स्वार्थी बनेगा ! केवल अपनी रक्षा के लिए लाखों जीवों की निर्मम हत्या ! केवल आत्मरक्षा के लिए इतना बड़ा बलिदान ! विषका पान करके भी तो व्यक्ति अमर बन सकता है। अरे ! केवल आहार की दो बूंदों से इतने जीवों की हत्या हो गई तो न जाने इस सम्पूर्ण आहार से कितने प्राणियों का नाश हो जायगा ! नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल अपनी रक्षा के लिए इतने जीवों की हत्या नहीं कर सकता। दूसरे प्राणियों के प्राण इतने सस्ते नहीं कि मैं अपने प्राणों की रक्षा के लिए उनसे खेल खेलूँ। मुनि-जीवन का उपयोग प्राणिरक्षा है, जीव-हत्या नहीं। सभी को अपने प्राणप्रिय होते हैं इसीलिए तो हम कहते हैं कि 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति.........' कहते कहते महामुनिवर ने सारा आहार अपने उदर में पहुँचा दिया। धन्य मुनिवर! धन्य महामहिम मुनिराज! धन्य धरा के ध्रुव-आदर्श! तुम्हारी जीवन-लीला समाप्त हो गई किन्तु जगत् को जीवन-दान मिल गया। संसार को एक जीवित-आदर्श प्राप्त हो गया। सत्त्व-मैत्री के अनन्य उपासक! तुमने जगत् को 'सत्त्वेषु मैत्रीं.........' का वास्तविक रहस्य समझा दिया। जगत् को एक चिरस्थायी निधि दान में दे गए! मृत्यु तुमको न जीत सकी किन्तु तुमने तो देखते ही देखते मृत्यु को जीत लिया!! तुम सचमुच मृत्युञ्जय हो गए!

काल का प्रभाव और मानव का पुरुषार्थ—

—ले० मुनि संतबाल

काल मनुष्य को बनाता है या मनुष्य काल का सर्जन करता है, यह एक समस्या है। व्यवहार में तो बहुधा काल परिवर्तन के अनुसार मानव को भी बदलना पड़ता है लेकिन अगर हम गहराई में जायँ तो प्रतीत होगा कि व्यक्त या अव्यक्त रूप से काल का निर्माता मनुष्य ही है। मनुष्य जब चिंतक और सक्रिय बनता है और आगे कदम उठाता है तब काल स्वयं उसके अधीन हो जाता है। हमारे यहाँ यह प्रचलित है कि अमुक पुरुष अमर है उसका अर्थ इतना ही है कि काल उस पुरुष को निगलने में असमर्थ है। सच पूछिये तो मृत्यु वास्तव में मृत्यु नहीं है लेकिन काल की कूच में पीछे रहना ही मृत्यु है। ईसामसीह के विषय में यह कहा जाता है कि मृत्यु के पश्चात् उनका पुनः प्रकटीकरण हुआ था। आनंदघन योगीश्वर मस्ती में झूमते हुए यह कह सकते हैं कि 'अब हम अमर भये' ना मरेंगे'। सच्चे पुरुषार्थी का 'मृत्युञ्जय' विशेषण भी यही सिद्ध करता है। सम्पूर्ण मानव समाज मृत्युञ्जय बने यह आशा करना जरा ठीक नहीं होगा, लेकिन सबकी निष्ठा तो उसकी तरफ रहनी ही चाहिए। ऐसा करने पर ही मनुष्यजाति प्रगतिशील बनती है और आसपास के वातावरण के सामने सिर ऊँचा उठाकर जिन्दा रह सकती है।

—अनु० मोहनलाल खारीवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धधर्म–

–प्रो० दलसुख मालवणिया

अब विद्वानों ने इस बात को मान लिया है कि प्राचीन काल में श्रमण और ब्राह्मण नाम से संस्कृति की दो धाराएं भारतवर्ष में विद्यमान थीं। ब्राह्मण परंपरा का मूलाधार वेद था और तदनुसार उस परंपरा में हिंसक यज्ञादिका अनुष्ठान होता था। श्रमण परंपरा का मूलाधार वेद नहीं किन्तु स्वानुभव था, इसी लिए उसमें वेद प्रतिपादित हिंसक यज्ञों को कोई स्थान नहीं था। भगवान् बुद्ध श्रमण परंपरा में हुए हैं। उन्होंने आचार के विषय में श्रमण परंपरा के जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म से बहुत कुछ सीखा है। इस बात को बौद्ध विद्वान धर्मानन्द कौसंबी ने सिद्ध किया है। तत्कालीन अन्य आलार कालाम आदि श्रमणों के मार्गों को पहले अपना कर भी जब भगवान् बुद्ध ने अपने लक्ष्य की सिद्धि होती न देखी तब उन्होंने अपने स्वतन्त्र साधना-मार्ग का अनुष्ठान किया और प्रज्ञा का लाभ किया। प्रज्ञा-प्राप्ति के बाद स्वानुभूत सत्यों का उपदेश दिया और संघ का संगठन करके बौद्ध धर्म की स्थापना की।

पौराणिक ब्राह्मणों ने बौद्धधर्म की उत्पत्ति के विषय में कल्पना की है कि दैत्यों को विपरीत मार्ग का उपदेश देने के लिए ही स्वयं विष्णुभगवान् बुद्ध-रूप से अवतीर्ण हुए थे। इस कल्पना से यह तो सिद्ध हो जाता है कि भारतवर्ष में बौद्धधर्म का इतना महत्त्व बढ़ गया था कि ब्राह्मण भगवान् बुद्ध को स्वयं विष्णु का अवतार मानने के लिए बाध्य हुए। दूसरा यह कि उनका जो उपदेश था वह वैदिक मार्ग से सर्वथा प्रतिकूल था। अर्थात् भगवान् बुद्ध का महत्त्व मानते हुए भी लोगों को उनके मार्ग से विचलित करने के लिए यह तरकीब की गई जिससे बुद्ध की पूजा करते हुए भी लोग उनके बताए हुए मार्ग पर न चलें। इसलिए यह विचारना आवश्यक है कि उनका ऐसा कौन सा उपदेश था जो ब्राह्मणधर्म के अनुकूल नहीं था।

ब्राह्मण धर्म के अनुसार ईश्वर की सत्ता सर्वोपरि समझी जाती थी। भगवान् बुद्ध ने उस ईश्वर को ही स्थानभ्रष्ट किया और उसके स्थान में मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रतिष्ठा करके उसके मन में से दासता का भाव दूर किया। ईश्वर के स्थान में जैनों के समान कर्मवाद का उपदेश देकर भगवान् बुद्ध ने मनुष्य को ही अपने भाग्य का निर्माता घोषित किया। स्वावलम्बन के इस सिद्धान्त के बल पर मनुष्य की कई प्रकार की गुलामी–खास कर विचार की गुलामी–दूर हुई और स्वतन्त्र रूप से विचार विकास को अवकाश मिला। आज से ढाई हजार वर्ष पहले स्वयं भगवान् बुद्ध ने कालामों को जो कहा था वैसा उनसे पहले और उनके बाद भी कहने वाला भारत में दूसरा कोई हुआ हो तो उसका पता नहीं चलता; उन्होंने कहा था कि "तुम किसी बात पर केवल इसलिए विश्वास मत करो कि तुमने उसे किसी से सुना है, केवल इसलिए विश्वास मत करो कि वह बात बापदादा से चली आई है, केवल इसलिए विश्वास मत करो कि उसके कहने वाले अनेक लोग हैं, केवल इसलिए विश्वास मत करो कि वह तुम्हारे धार्मिक ग्रन्थों में लिखी है, केवल इसलिए विश्वास मत करो कि उसके कहने वाले तुम्हारे आदरणीय गुरुजन हैं; बल्कि हर एक बात को बुद्धिपूर्वक विचार कर देखो कि वह तुम्हारे तथा औरों के लिए कल्याणकर है या नहीं, यदि कल्याणकर प्रतीत हो तो उसे स्वीकार करो और उसके अनुसार आचरण करो।"

इसीलिए बुद्ध नें स्वयं अपनें धर्म को 'आओ और देखो' कहा है। उनके मार्ग का अवलम्बन लो और देखो कि बताया हुआ फल यहीं प्रत्यक्ष होता है या नहीं? उनका दावा था कि सदाचरण का फल परलोक में नहीं किन्तु यहीं-इसी जन्म में–प्रत्यक्ष होता है, होना चाहिए। उनका मार्ग आचार और विचार दोनों बातों में मध्यम मार्ग हैं। भौतिकवादियों की अत्यधिक भोगपरायणता और श्रमणों का अत्यधिक देह दमन, इन दोनों मार्गों के बीच का उनका मार्ग है। अर्थात् शरीर के निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं का भोग संयमपूर्वक करने की आज्ञा भगवान् बुद्ध ने दी है। इसी प्रकार विचार क्षेत्र में भी उनका मध्यम मार्ग है कि एकान्त नित्य और एकान्त उच्छेद ये दोनों मार्ग अयुक्त हैं। वस्तु एकान्तरूप से नष्ट भी नहीं होती और सर्वथा एकरूप भी नहीं रहती इसीलिए उन्होंने ब्रह्मवादियों के एकान्तनित्य आत्मा का निषेध किया और चार्वाकों के आत्मोच्छेद वाद का भी निषेध करके चित्तसंतति को माना है।

भगवान् बुद्ध ने तत्त्वज्ञान की रूक्ष चर्चाओं में जैसे कि निर्वाण में तथागत का क्या होता है, मृत्यु के बाद जीव का क्या होता है, परलोक कैसे है और कहाँ हैं, आत्मा क्या है? इत्यादि बातों में अपना और दूसरों का समय व्यतीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना व्यर्थ समझकर लोगों के नैतिक जीवन का स्तर ऊँचा उठे इसी के लिए प्रयत्न किया, और परलोककी अपेक्षा यहीं पर लोगों को सुख कैसे मिले, इसी संसार को स्वर्ग कैसे बनाया जाय, इसी की चिन्ता की। इसीलिए उनका उपदेश सरल और सर्वप्रिय हुआ।

वेदानुयायी ब्राह्मण अपनें को ही श्रेष्ठ बताते थे और उनकी मध्यस्थता के बिना यागादि धर्मानुष्ठान हो नहीं सकते थे। ब्राह्मणों के इस जातिवाद को भगवान् बुद्ध नें कोई स्थान नहीं दिया, बल्कि जिन अनुष्ठानों को वे धार्मिक कहते थे उन्हें अधार्मिक और अनावश्यक घोषित किया, और कहा कि इन्द्रादि देवों को तुष्ट करने की आवश्यकता नहीं, वे तो तुम्हारे दास होकर रह सकते हैं यदि तुम अपना मन निर्दोष बनाकर आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अवलम्बन लो। बुद्धके उपदेश का सार एक ही गाथा में आ जाता है—

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त–परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥

सभी पापों से विरत हो जाओ, कुशल कर्म का संचय करो, अपनें चित्त को परिशुद्ध करो यही भगवान बुद्ध का शासन है।

भगवान् बुद्ध ने अहिंसा को विधिरूप दिया और सिर्फ हमारे हितैषी के लिए ही नहीं, किन्तु वैरी के लिए भी शुभ कामना करने को कहा—

सुखी भवेय्यं निदुक्खो अहं निच्चं अहं विय।
हिता च मे सुखी होन्तु मज्झत्था चथ वेरिनो॥

मैं सदा सुखी होऊं, मैं दुःखरहित हो जाऊं, मेरी तरह मेरे मित्र भी सुखी हो जाएं, मध्यस्थ भी सुखी हो जाएं और मेरे शत्रु भी सुख प्राप्त करें।

ऐसे सीधे और उदात्त भावना से ओत प्रोत भगवान बुद्ध के उपदेश होते थे। और उन्होंने—

"नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन।"

'वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता'—जैसे शाश्वत सत्यों का प्रकाश किया जो कभी भी मिथ्या सिद्ध नहीं हो सकते। जब अशोक ने हिंसक युद्धों की भयंकरता देखी तब उन्होंने युद्ध–विजय की अपेक्षा धर्म–विजय का महत्त्व समझा और समस्त भारतवर्ष में भगवान् बुद्ध के अहिंसाधर्म–मैत्रीधर्म का प्रचार किया और सिंहल–लंका जैसे समुद्र के पार के देशों में भी अपने पुत्र और पुत्री को भेज कर भगवान् के संदेश का प्रचार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे धीरे बौद्धधर्म का प्रचार बर्मा, स्याम, तिब्बत, चीन, जापान जैसे दूर देशों में भी हुआ। किन्तु दुर्भाग्य से स्वयं बौद्ध भिक्षुओं की शिथिलता और शैवधर्म की क्रूरता जैसे कारणों से यहाँ बौद्धधर्म का लोप हो गया। जिस समय बौद्धधर्म का प्रचार समस्त भारतवर्ष में था, निःसंदेह उस समय यहाँ सर्वांगीण उन्नति हुई थी, क्या चित्र और मूर्ति कला के क्षेत्रों में और क्या स्थापत्य के क्षेत्र में भारत की उन्नति अभूतपूर्व हुई थी। आज जो अवशेष उपलब्ध हैं सचमुच उन्हीं से विश्व में भारत का गौरव बढ़ा है उन्हीं अवशेषों से हम यह भी पता लगा सकते हैं कि भारतवर्ष के कोने कोने में किस तरह बौद्ध संस्कृतिका का प्रसार हुआ था।

भारत से बौद्धधर्म का लोप हुआ, जब यह बात कही जाती है, उसका मतलब इतना ही है कि उसके बाह्य रूपका अर्थात् अपने को बुद्ध भगवान् का अनुयायी मानने वालों का लोप हुआ। किन्तु भगवान् बुद्ध की शिक्षा को मानने वालों का या बौद्ध उपदेशों का तो लोप नहीं हुआ है। क्योंकि उनके उपदेशों को स्वयं ब्राह्मणों ने जो बौद्धधर्म के कट्टर विरोधी थे, बहुत अंशों में अपना लिया है। यही कारण है कि आज धर्म के नाम पर हिंसक यज्ञ लुप्तप्राय हैं। आज गांधीजी ने अहिंसा के बल पर सकल युद्धों का अन्त करने की जो बात बीसवीं सदी में कही है, और जो अस्पृश्यता निवारण और जातिवाद का विरोध किया है उसके मूल में भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर के उपदेश ही तो हैं। ऐसी स्थिति में हम यह कैसे कह सकते हैं कि बुद्धधर्म लुप्त हो गया। भारतवर्ष के दार्शनिकों को बौद्ध दार्शनिकों ने जो नई प्रेरणा दी तथा स्वतन्त्र विचार करने को बाधित किया और अन्ततः शंकर जैसे प्रसिद्ध वैदिक दार्शनिकों ने ब्रह्मवाद के नामसे बौद्ध विज्ञानवाद को अपने ढंग से जो अपना लिया तथा अन्य वैदिक दार्शनिकों ने बौद्ध दार्शनिकों के अनेक तर्कों को अपने ग्रन्थों में यथास्थान हजम कर लिया यह सब होते हुए भी हम यह कैसे कहें कि बौद्धधर्म भारत से लुप्त हो गया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति का प्रश्न—

—प्रो० विमलदास कोंदिया जैन, एम० ए०, एल० एल० बी०

भारत के स्वतंत्र होने के बाद विद्वानों के चित्त में सांस्कृतिक गौरव की भावना उत्पन्न हुई है। इसमें संशय नहीं कि कोई भी देश अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए केवल राजनैतिक बल ही को प्रयोग में लाकर जनता पर प्रभुत्व स्थापित नहीं करना चाहता, किन्तु वह चाहता है कि जनता के हृदय में अपनी सांस्कृतिक और सभ्यता की छाप भी जमाई जाय जिससे वह अधिक काल तक उसके ऊपर अपना प्रभुत्व कायम रखने में सफल बना रहे। संस्कृति के प्रश्न को लेकर आज विद्वद्वर्ग में अनेक विवाद खड़े हो गए हैं। कितने ही विद्वानों का मत है कि भारतीय संस्कृति वैदिक या हिन्दू संस्कृति है। किन्हीं का कहना है कि बौद्ध संस्कृति का भी इस देश के उत्थान में कम हाथ नहीं है। जैनों का कहना है कि हमारा भी भारत के उत्थान में उतना ही हाथ है जितना अन्य किसी का। मुस्लिम और क्रिश्चियन भी भारत के उत्थान में अपना भाग कम करने को तैयार नहीं हैं। यथार्थ में परिस्थिति क्या है?

जिन विद्वानों ने भारतवर्ष के साहित्य, दर्शन और उसकी परंपरा का निष्पक्ष-भाव से अध्ययन किया है वे जानते हैं कि भारतवर्ष किसी एक विशिष्ट संस्कृति का कभी पोषक नहीं रहा है। विचार-स्वातंत्र्य इस देश का सर्वथा लक्ष्य रहा है। इसी भावना से प्रेरित होकर यहाँ पर अनेक प्रकार की विचार धाराएँ उत्पन्न हुईं। उनमें से कितनी ही काल कवलित हो गईं और कितनी ही अबतक जीवितरूप में विद्यमान हैं। इनकी अवधि शताब्दियों से नहीं, सहस्राब्दियों से गिनी जा सकती है। मुस्लिम और क्रिश्चियन, जिनका इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है, वे भी यहां उसी प्रकार फलते फूलते रहे हैं जैसे अन्य लोग। धर्म और दार्शनिक क्षेत्र में यहां अनीश्वर-वादी से लेकर ईश्वर-वादी तक रहे हैं। आत्मवादी, अनात्मवादी, द्वैतवादी, अद्वैतवादी, भौतिकवादी, अभौतिकवादी, व्यक्तिवादी, समष्टिवादी, प्रायः सभी लोग यहां अपने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे हैं। धर्म और संस्कृति के नाम पर अन्याय और अत्याचारों की संख्या भी कम नहीं रही है। किन्तु अब ऐसा प्रतीत होता है कि लोग फिर से सांस्कृतिक युद्ध छेड़ना चाहते हैं। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि 'सांस्कृतिक युद्ध ही राजनैतिक युद्ध का जन्मदाता होता है'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी वर्ग के लोग सांस्कृतिक युद्ध के लिए सर्व प्रथम भाषा के प्रश्न को लेना चाहते हैं। किसी देश की भाषा क्या होनी चाहिए, यह प्रश्न किसी वर्ग विशेष के व्यक्तियों के निर्णय करने का नहीं है। भाषा केवल भावों की व्यंजक होती है। जनता जिस भाषा में अपने भाव स्पष्ट और सरल रूप से प्रकट कर सके उसे उसी भाषा का व्यवहार और प्रयोग करनें का उत्तराधिकार है, भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहाँ सुदूर अतीत काल से अनेक भाषाएं बोली जाती रही हैं। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, तामिल, तेलुगू आदि अनेक भाषाएँ यहाँ की ऐतिहासिक भाषाएँ हैं। इस समय भारत के अनेक प्रान्तों में भिन्न भिन्न भाषाओं का व्यवहार और प्रयोग होता है। वहां के लोग उन भाषाओं को सैकड़ों वर्षों से बोलते चले आ रहे हैं। कोई भी प्रांत अपनी अपनी भाषा को छोड़ने को तैयार नहीं है। छोड़े भी कैसे? यह अप्राकृतिक है। भाषा किसी देश या प्रान्त के लिए बनाई नहीं जाती उसका विकास होता रहा है। रहा राष्ट्र का प्रश्न, उसे उन सभी भाषाओं को मान्य करना चाहिए जो जनता में प्रचलित हैं और जिनका साहित्य प्रचुर है। अन्त:प्रान्तीय व्यवहार के लिए सब प्रान्तों के प्रतिनिधि बहुमत से निर्णय कर सकते हैं कि उसकी रूपरेखा क्या होनी चाहिए। मेरे विचार से यदि 'एस्पेरेन्तो' (Esperanto) सदृश एक भाषा का निर्माण किया जाय तो हमारी भाषा-विषयक गुत्थी बहुत हद तक सुलझ सकती है।

दूसरा शस्त्र जो सांस्कृतिक विजय के लिए प्रयोग किया जाता है वह है साहित्यसर्जन। साहित्य जब किसी विशेष उद्देश्य को लेकर रचा जाता है तब उससे बड़े बड़े अनर्थ होने की सम्भावना हो जाती है। इतिहास और समाज शास्त्र की पुस्तकों की रचना के विषय में हमें सब से अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है यद्यपि अन्य विज्ञान और कला की पुस्तकों की रचना के विषय में इतनी अधिक चिन्ता करनें की आवश्यकता नहीं। लोग किस प्रकार अपने अपने धर्मों को जन-साधारण के साहित्य में लिखकर उन पर अपना प्रभुत्व कायम करना चाहते है यह अगले कथन से स्पष्ट हो जायगा।

हमें स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की कुछ पुस्तकों के देखने का मौका मिला है। पुस्तकों के पन्ने उलटने पर हमने प्रथम ही 'ईश्वर की महिमा' का पाठ देखा। मैं नहीं समझता कि बच्चों के मस्तिष्क में आरंभ से ही अज्ञात ईश्वर संबंधी विचारों को भरने की क्या आवश्यकता है? वह एक काल्पनिक वस्तु है या कि सत्य वस्तु—यह तो बाद में समझने की बात है। इसके अतिरिक्त जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरवादी नहीं हैं उन्हें एक कल्पित वस्तु की शिक्षा देना, बड़ा अन्याय है। इस प्रकार के अन्य भी उदाहरण लिये जा सकते हैं। अतः हमारा साहित्य-सर्जन सर्वथा जीवनोपयोगी और यथार्थता से परिपूर्ण होना चाहिए। धार्मिक शिक्षण, हम एक खास जीवन के स्तर पर, सब धर्मों की उत्तम उत्तम बातें लेकर समरूप से दे सकते हैं। उसके बाद वे अपना अपना विश्वास बना सकते हैं।

तीसरा प्रश्न आचार-विचार का है। आचार-विचार किसी भी वर्ग के दूसरे वर्ग से नहीं मिलते हैं। दैशिक आचार—समय, अवस्था, वातावरण, प्राचीन परंपरा आदि कारणों से मिल कर बना करता है। उसमें एकदम परिवर्तन करना या किसी वर्ग विशेष के आचारों-विचारों को दूसरों पर लादना—यह समाज शास्त्र के विरुद्ध है। इसलिए जहां तक हो सके आचार-विचार की स्वतन्त्रता मनुष्य मात्र को होनी चाहिए। हाँ, कुछ नैतिक आचार ऐसे अवश्य होते हैं जिनमें किसी भी वर्ग-विशेष को आपत्ति नहीं होती; जैसे, सत्य, अहिंसा अपरिग्रह, जन-सेवा इत्यादि। इन नियमों का परिपालन प्रत्येक व्यक्ति करना चाहता है। अतः इसके लिए हम एक साधारण विधान (Code) तैयार कर सकते हैं जिससे मनुष्य जाति का स्तर ऊँचा उठ सके। मनुष्य के बुद्धिजीवी होने के कारण हमें उसके लिए बुद्धिसंगत नियमों को ही बनाना होगा। जिस समाज का जितना बौद्धिक स्तर ऊंचा होता है वह समाज उतना ही उन्नतिशील, सभ्य और संस्कृत गिना जाता है। अतः मनुष्य समाज के स्तर को उन्नत करने के लिए हमें सबसे पहले आचार-विचार विषयक सावधानी की अत्यन्त आवश्यकता है। वस्तुतः मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए ही हमारे आचार का उपयोग होना चाहिए। इसके न होने से मनुष्य और पशु में अधिक अन्तर नहीं रहता, सदाचार की सृष्टि और उसका परिपालन ही मनुष्यता की कसौटी है। इसके लिए हमें अत्यधिक प्रयत्नशील होना चाहिए।

प्रगतिशील जीवन के लिए यह आवश्यक है कि हम भाषा, संस्कृति और आचार-विचार के मामलों में जनता को अत्यधिक स्वतंत्रता प्रदान करें। इस के लिए हमारी वर्तमान सरकार ने अपने आपको धर्म-निरपेक्ष सरकार (Secular State) घोषित कर अनेकों के हृदयों में से नाना तरह की आशंकाओं को दूर करने का प्रयत्न किया है। वास्तव में हमारे नेताओं ने इस विषय में बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया है। कम से कम वैधानिक दृष्टि से जनता के हृदयों में से हठधर्मी को तो सर्वथा निर्मूल कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति गांधी जी के शब्दों में अहिंसा और सत्य पर अवलंबित हो सकती है। ये सिद्धान्त ऐसे हैं जो किसी भी व्यक्ति के लिए आपत्ति जनक नहीं कहे जा सकते। हमारा लक्ष्य सत्य होना चाहिए। हमारे सत्य के रूप में किसी एकान्त या हठ धर्म के लिए स्थान नहीं हो सकता। हम सत्य के अनुरूप ही अहिंसा के आधार पर समाज का निर्माण कर सकते हैं 'योग्यतम का अवशेष' (Survival of the fittest) के सिद्धान्त पर समाज का निर्माण सर्वथा युद्ध की प्रवृत्ति को पुष्ट करेगा। हमारा सिद्धान्त होना चाहिए 'निर्बलतम की रक्षा' (Protection of the weakest)। समाज का निर्माण इसी आधार पर बना हुआ अधिक काल तक चल सकता है। इसमें किसी प्रकार के भेद की गुंजाइश नहीं। भारत का समग्र इतिहास सुदूरकाल से इसी तथ्य की प्रति ध्वनि करता रहा है। यद्यपि मध्यकाल में कुछ विदेशी-संस्कृतियों के आक्रमण के कारण हिंसा और कपटमय जीवन का भी प्रचार हुआ है और उस के कारण इस देश ने एक हज़ार वर्ष तक दासता का अनुभव किया है किन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। आज हमारा देश स्वतंत्र है। इस समय प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी धर्म, संस्कृति, आचार-विचार का पोषक क्यों न हो—वह स्वतंत्र रूप से अपने अनुरूप विचारों का प्रचार कर सकता है। उसके व्यक्तिगत जीवन के विकास के लिए सरकार की ओर से कोई रुकावट नहीं। व्यक्तिगत उत्थान के लिए सब को अवसर दिया जाता है। यह बड़ी उदारता है।

इन सब बातों के रहने पर भी हमारे देश में कुछ व्यक्ति हठधर्मवादी हैं जो अपने विचारों और आचारों को दूसरों पर जबरदस्ती लादना चाहते हैं। इन बातों का हमें उनकी कृतियों से ज्ञान होता है। हमारी बहुत सी पठन-पाठन की पुस्तकें इसी भावना से लिखी गई हैं। कई संस्थाओं के कार्य भी इन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। हमारे विचार से यह देश के प्रति बड़ा बौद्धिक अन्याय है। हमारी सरकार को चाहिए कि कम से कम पठनक्रम के लिए पुस्तकों का चुनाव करते समय और अपनी संस्थाओं की स्थापना के समय वह उदारनीति से काम ले और उसमें इस बात का अवश्य ध्यान रक्खे कि हमारी भविष्य की सन्तान के मस्तिष्क पर कोई ऐसी छाप न पड़ने पावे जिससे वे प्रतिक्रियावादी बनकर देश का सर्वनाश करें।

देश के भविष्य के निर्माण के लिए हमें दो बातों की बड़ी आवश्यकता है धार्मिक-सहनशीलता और व्यक्ति-स्वातंत्र्य। जहाँ तक धार्मिक-सहनशीलता का संबन्ध है, हम देखेंगे कि जब तक इसको हम अपने जीवन का अंग न बनाएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा जीवन शान्ति और सुखमय नहीं हो सकता। 'धार्मिक असहिष्णुता, के कारण मनुष्य जाति का जितना अपकार हुआ है, शायद उतना धर्म से उपकार नहीं हुआ है'। इसके लिए हमें स्याद्वाद सिद्धान्त को अपनाना चाहिए जो हमारे पारमार्थिक और व्यावहारिक दोनों जीवनों की समस्या की कुञ्जी है। स्याद्वाद जीवनमें से कदाग्रह को निकाल कर समंजसता को स्थापित करता है, आचार्य हेमचन्द्र ने बिलकुल ठीक कहा है 'सिद्धिः स्याद्वादात्;' यद्यपि यह सूत्र उन्होंने व्याकरण की आदि में शब्दसिद्धि के लिए प्रयोग किया है किन्तु यथार्थ में इस सूत्र की महत्ता और उपयोगिता सर्व व्यापक है। इस सापेक्ष संसार में कौन व्यक्ति है जो निरपेक्ष रहकर अपने जीवन के अन्दर सुषमा, आनन्द और उत्थान ला सकता है। अतः हमें यह मानना पड़ेगा कि जीवन का सौंदर्य धार्मिक सहनशीलता में है न कि कदाग्रह में।

व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न तो मनुष्य के जन्मसिद्ध-अधिकार से संबन्ध रखता है। अपने जीवन के उत्थान और पतन के विषय में प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्र है। इसमें सामाजिक नियंत्रण जितना कम हो उतना अच्छा है। मनुष्य जीवन का विकास व्यक्तिगत आदर्श से अधिक संबन्ध रखता है। सामाजिक, दैशिक और जातीय वातावरण व्यक्तिगत के जीवन का सहकारी होना चाहिए न कि बाधक। जिस देश में समाज का आवरण अत्यधिक प्रबल होता है वहां व्यक्ति का विकास नहीं हो पाता। व्यक्ति के विकास के रुकने से समाज की भी प्रगति रुक जाती है। हमें पुरुषोत्तम (Superman) के सिद्धान्त में व्यक्ति के परम उत्कर्ष का रूप देखना चाहिए। प्रत्येक समाज में पुरुषोत्तम की आवश्यकता है जिसके आदर्श को सामने रखकर व्यक्ति और समाज का निर्माण हो सकता है। श्रमणों की परिभाषा में पुरुषोत्तम को अर्हन्त भी कहते हैं। अर्हन्तशब्द व्यक्ति के आदर्श को बतलाता है। जीवन में हमें अर्हन्त के गुणों के विकास की ओर लक्ष्य रखना चाहिए। इसके अभाव में जीवन सफल नहीं बन सकता। यह हम मानते हैं कि व्यक्ति की स्वतंत्रता ही किसी राष्ट्र की उच्च भावना का प्रतीक है। प्रगति इसी में दृष्टि-गोचर होती है। महात्मा गांधी का व्यक्तित्व और उसके जीवन का क्रमिक विकास ही भारत के युवकों के लिए इस युग में पथ प्रदर्शक हो सकता है, हमें उसे अपनाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास लिए आया हूँ

जग-जीवन में परिवर्तन का विश्वास लिए आया हूँ।
हैं टूट चुके कितने सपने
मानव के बन बन कर सुन्दर
हैं बिखर चुकी कितनी आशाएं
बुद्‌बुद सी क्षण में मिटकर
उस बीते युग की बीती घड़ियों
की सब याद भुलाकर मैं—
अन्तर में अभिलाषाओं का आवास लिए आया हूँ।
उस नील गगन में मुक्त विहग के
गान गूँजते हैं जब जब
देखा करता हूँ धरती पर
चलते फिरते मानव को तब
गा सकता है यह भी निश्चित
उन्मुक्त गान उस पँछी सा—
नीरव वाणी में गायन का आभास लिए आया हूँ।
क्यों रक्तहीन तन मानव का
क्यों कान्तिहीन मुख मुरझाया
सूखी आँखों के गड्ढों में
यह अन्धकार कैसा छाया!
यह शिथिल देह, दुर्बल पंजर
चिर शान्त, शुष्क रे मौन अधर—
इन अधरों पर अस्फुट सा कोमल हास लिए आया हूँ।
रजनी तारों के अश्रु लिए
आती, पर मुसकाती भी है
वाणी मानव की इसी तरह
रोती है, पर गाती भी है
होता है महाप्रलय लेकिन
निर्माण उसी से होता है
बस इसी लिए कहता हूँ —"मैं विश्वास लिए आया हूँ"।
जग-जीवन में नूतनता की
मैं प्यास लिए आया हूँ।

—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिवारिक जीवन सुखी कैसे हो ?

श्रीमती यमुनादेवी पाठक, वाइस प्रिंसिपल महिला विद्यालय,
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

आज भारत में ऐसे भाग्यशाली कितने परिवार हैं, जो वास्तव में अपने आपको सुखी मानते हों। दूसरे लोग हमारे सम्बन्ध में कुछ भी धारणा रखते हों, परन्तु प्रश्न तो यह है कि हम स्वयं अपनी स्थिति से सन्तुष्ट हैं या नहीं ?

मानव एकान्त जीवन में सच्चे सुख का अनुभव नहीं करता, यही उसकी नैसर्गिक प्रवृत्ति है। इसी कारण तो वह किसी साथी को खोजता है। उसको एक ऐसे जीवन सहचर की आवश्यकता होती है जो उसकी प्रत्येक क्रिया में भाग ले सके। वह अपनी सुख-दुःखानुभूति को अपने साथी में प्रतिबिम्बित देखकर एक विशेष प्रकार के आनन्द का अनुभव करता है, ऐसे अवलम्ब को पाकर वह घोर दुःखाभिभूत होते हुए भी, अपने आपको अकथनीय विश्राम में देखता है।

सृष्टि के आदिकाल में ही पुरुष व्यक्ति को एकाकी जीवन अप्रिय मालूम हुआ, उसको कुछ शून्य सा, कुछ अपूर्णता का सा भान हुआ, उसने सहायक की खोज की, नारी शक्ति को जीवन सहचरी के रूप में प्राप्त कर अपने को कृत कृत्य तथा पूर्ण माना।

सरल से सरल एवं छोटे से कार्य को भी मनुष्य अकेला नहीं कर सकता, अतएव उसको सहायक की आवश्यकता होती है। मानव के व्यक्तिगत अथवा सामाजिक सभी कार्यों को सुगमता पूर्वक निर्वाह करने के लिए पुरुष को स्त्री, एव स्त्री को पुरुष के समान दूसरा कोई साधन नहीं हो सकता, विश्व के समस्त व्यवहारों में दोनों के पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता है। इस सहयोग का नाम ही 'गृहस्थाश्रम' है। अनुभवी महापुरुषों का कथन है कि—'जैसे नदी, नद आदि समस्त जल राशियाँ सब ओर से भटक कर समुद्र में ही स्थिति लाभ करती हैं इसी प्रकार तीनों ही आश्रमी—ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी गृहस्थ से ही आश्रय पाते हैं''। "जैसे माता के द्वारा प्राणिमात्र का भरण पोषण होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी प्रकार गृहस्थ के द्वारा सबका पालन होता है।" "जैसे वायु के आ से समस्त जन्तुओं की प्राणरक्षा होती है, वैसे ही गृहस्थ के द्वारा विश्व कल्याण साधन होता है।"

यहाँ पर तीन वस्तुओं का निर्देश करके, उनसे गृहस्थ की तुलना गई है:–समुद्र, माता और वायु। जैसे कि—

गृही को अगाध जलराशि समुद्र के समान गम्भीर होना चाहिए, जो न असंख्य रत्नराशि को पाकर हर्ष से उद्वेलित होता है और न घोर जल ग्राहादि के कारण उद्विग्न ही होता है।

गृहस्थ को माता के समान होना चाहिए। माता प्रेम की सजीव प्रति होती है। उसका स्नेह, वात्सल्य निष्काम होता है, निःस्वार्थ होता है, अपनी उदारता का मूल्य नहीं चाहती। उसके कर्त्तव्य पालन में, 'क्यों' स्थान नहीं होता। उसकी दृष्टि भेदभाव से अपरिचित होती है। जननी समान, सम्मान और प्रीति का भाजन कौन हो सकता है। गृहस्थ का कर्त्त है कि अपने आश्रितों पर सदैव अकृत्रिम प्रेम की वर्षा करता रहे।

विश्व के जीवन, वायु से गृहस्थ की तुलना की गई है, यदि क्षणमात्र लिए वायुदेव अपना संचरण रोक दे तो इस दीन जगत् की क्या गति हो गृहस्थ का उत्तरदायित्व बहुत कठिन है। जैसे वायु की प्रगति, दूसरों प्राण सञ्चार के लिए है, वैसे ही उसकी सत्ता अपने लिए नहीं है। गृह को इतना गौरव कैसे प्राप्त हुआ! दो शक्तियों के संयुक्त हो जाने से! तक अकेला रहा, आश्रित रहा, किसी न किसी पर निर्भर रहा! जब हुए अनेकों का आश्रय बन गया! कितना अन्तर है, आश्रय देना और लेना

सुख और दुःख की एक सरल सी परिभाषा है, अपने लिए अधिक अधिक और दूसरों के लिए कम से कम विचार करो तो तुम्हारा जीव दुःखमय बन जाएगा। यदि इसके प्रतिकूल अपने लिए कम से कम और दूसरों के लिए अधिक से अधिक ध्यान तुमने दिया तो तुम सुख पराकाष्ठा तक पहुँच जाओगे, सदैव आनन्द निमग्न रहोगे।

जब तक हमारा जीवन कर्त्तव्य और प्रेम से ओत प्रोत रहता है तब उसमें दुःख का प्रवेश असम्भव है, परन्तु ज्योंही कर्त्तव्य का स्थान स्वार्थ एवं प्रेम का स्थान लोभ वासनाओं ने लिया कि सुख शान्ति के साम्राज्य घोर विप्लव मच गया और दुःख का ऐकाधिपत्य हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु जिसके पवित्र वात्सल्यरस से परिप्लावित होकर यह समस्त विश्व, सब ओर से हरा भरा रहता था 'आज' उसी गृहस्थ को स्वयं कैसी 'नीरस' दशा है। जिसके आश्रय से क्रूर पशु पक्षी तक परम शान्ति और आनन्द प्राप्त करते थे वह आज कितना अशान्त और घृणास्पद जीवन व्यतीत कर रहा है। जो अनेकों का आश्रयदाता था, आज अपने ही निर्वाह की घोर चिन्ता में निमग्न जीवन के क्षण पूरे कर रहा है।

मातृप्रेम शैशव के साथ ही हमसे बिदा हो गया। पिता नाम का व्यक्ति यदि घर में अनावश्यक नहीं तो कुछ आवश्यक भी नहीं प्रतीत होता। भ्रातृप्रेम तो कहानियों और स्वप्न का विषय रह गया है। दाम्पत्य प्रेम का गला भी समय समय पर घोटा ही जाता है। अब रह गए सन्तान, सो वे तो हमारे असंयम के अयाचित फल हैं ही। वे दाम्पत्य जीवन के ही स्पष्ट चित्र हैं, घुणाक्षर न्याय से संसार में आ गए, और आगे भी जो कुछ बन जाएं! उनके अभ्युदय का चिन्तन ही क्या ?

युवा पुत्र जैसी अक्षय निधि को पाकर भी माता पिता सन्तुष्ट नहीं हैं। भाई को भाई प्रसन्न नहीं कर सकता, पत्नी पति को और पति पत्नी को सन्तुष्ट रखने में असमर्थ है, भाई बहिन की रक्षा नहीं कर पाता, स्वर्ग धाम में यह सब नारकी लीला क्यों हो रही है! पारिवारिक जीवन को एक अभिशाप के रूप में भोगते भोगते अब हम ऊब उठे हैं। उससे त्राण पाने के लिए नित्य नये उपाय सोच रहे हैं। सम्मिलित परिवार-प्रथा हमारे सुख शान्ति के मार्ग में कण्टक है उसे उखाड़कर फेंक देंगे। माता पिता तथा भाइयों के कष्टदायक बन्धन से गला छुड़ावेंगे। यदि दम्पति के व्यवहार परस्पर की रुचि के प्रतिकूल हैं तो इस बन्धन को भी क्षण भर में तोड़ डालेंगे। यह तो स्वाधीनता का युग है, फिर हम किसी 'बन्धन' के वशवर्ती क्यों रहें ? ये हैं हमारी विचारधाराएँ! और यह है हमारी सुखाशा! परन्तु क्या इन युक्तियों से हमारी अभीष्ट सिद्धि होगी ? कभी नहीं, प्रत्युत यह मार्ग तो और भी भयंकर स्थिति में पहुँचा देगा। एक तृषातुर प्राणी सुधा का समुद्र समीप ही छोड़कर, यदि सुनहली मृगतृष्णा की चमक में बहक जावे तो फिर ठगनी दुराशा उसे कहीं का भी न रहने देगी, पीछे लौटना तो असम्भव हो ही जायगा, विश्राम और शान्ति की खोज में दौड़ते दौड़ते शक्ति तथा प्राणों की भी आहुति दे देनी पड़ेगी। भोग लालसा का मिथ्या प्रलोभन ही हमें पवित्र कर्त्तव्य मार्ग से हटा कर पारिवारिक सुखों से वञ्चित रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने साथियों की भावनाओं को कुचल कर, उनके व्यक्तिगत सुखों की अवहेलना कर के जब हम स्वयं सुखी बनना चाहते हैं तभी तो घर में अशान्ति का पदार्पण होता है। जब हम अपने व्यवहारों के स्वार्थ-कीचड़ को स्वच्छ प्रेम-जल से धो डालेंगे, तब दुखों को अवसर कहाँ है? जब एक व्यक्ति दूसरे के सुख और अभ्युदय के लिए प्रयत्नशील होगा, तब ईर्ष्या का प्रादुर्भाव क्यों कर सम्भव है। यदि पारिवारिक जीवन में सच्चे सुख का अनुभव करना चाहते हो, तो किसी भी काम में 'मैं' और 'मेरा' को प्राधान्य मत दो, यही दो भावनाएँ गृह-कलह का मूल कारण हैं। मातापिता असन्तुष्ट क्यों रहते हैं? इसीलिए कि तुम अपने को उन से कुछ भिन्न समझते हो, उनके शासन में नहीं रहना चाहते। तुम्हारे विचार उनके विचारों से नहीं मिलते। भाई की भाई से नहीं निभती, क्यों, इसलिए कि एक अपने आप को परिश्रमशील और कमाऊ समझ कर अधिक से अधिक सुख सुविधाओं का अधिकारी मानता है, दूसरा भाई उतना द्रव्योपार्जन नहीं कर सकता, इसी कारण परिवार में अनादर की दृष्टि से देखा जाता है। कमाऊ पति की पत्नी का घर भर में साम्राज्य है, उसके बच्चों की उचित देखरेख, पालन-पोषण और शिक्षण पर आवश्यकता से भी अधिक ध्यान दिया जाता है। इसके विपरीत दूसरे भाई की पत्नी को सेविका—दासी के समान बाध्य होकर, प्रेम अथवा कर्तव्य के अनुरोधवश नहीं, अपने स्वास्थ्य तक का लक्ष्य न रखते हुए सदैव सब की सेवा करनी पड़ती है और बच्चों को अनाथों के समान अपना जीवन बिताना पड़ता है। उनके भविष्य का उत्तरदायित्व भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता है। उपयुक्त साधनों के अभाव में उनकी शक्तियां विकास न पाकर कुण्ठित हो जाती हैं। पति की पत्नी से नहीं पटती, क्यों? इसलिए कि पुरुष अपने को सर्वशक्ति सम्पन्न और स्वामी मानता है एवं पत्नी को—अपनी गृहदेवी को अबला, आश्रित तथा अपनी पशु वासना तृप्ति का तुच्छ साधन मात्र मानकर पद दलित रखना चाहता है। पत्नी की पति से नहीं निभती, क्यों? वह अब धर्म, परलोक, कर्तव्य के फेर में न पड़कर जीवन क्षेत्र में समान अधिकार चाहती है। वह अब "नासाध्यं मृदुर्ना किञ्चित्" के सिद्धान्त को भूल गई है और "शठे शाठ्यं समाचरेत्" की नीति का अवलम्बन कर रही है।

ये ही सब कारण हमारे पारिवारिक जीवन को अशान्तिमय बना रहे हैं। जब परिवार के प्रत्येक सदस्य पर भिन्न भिन्न उत्तरदायित्व रहता था, वे लोग कर्तव्य के बन्धन में प्रेमसूत्र से बंधे रहते थे, तब उनके सुख की छाया में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रों प्राणियों को विश्राम मिलता था। आधिभौतिक सुखों की चमक ने, आज हमारे नेत्रों की ज्योति का अपहरण कर लिया है इसीलिए हम पथ-भ्रष्ट होकर अन्धकार में भटक रहे हैं।

महाराज श्री कृष्णचन्द्र की पट्टमहिषी सत्यभामा जब वन में पाण्डव पत्नी द्रौपदी से मिलीं तो वे इस निर्वासित राजपरिवार को पूर्ववत् ही सुखी एवं सन्तुष्ट देख कर चकित रह गईं और अपनी बातचीत के सिलसिले में द्रौपदी से पूछ ही बैठीं कि राज्य का अपहरण हो जाने पर भी तुम सब इतने सुखी कैसे हो? द्रौपदी ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था:—

"सुखं सुखेनेह न जातु लभ्यं, दुःखेन साध्वी लभते सुखानि"।

"सुख से सुख की प्राप्ति असम्भव है, सुखमार्ग से चल कर सुख कभी न मिल सकेगा, यदि सुख की खोज करनी है तो दुःखों का अवगाहन करो, 'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठि,' त्याग और तपस्या का ही दूसरा नाम सुख है।"

द्रौपदी ने बतलाया कि "हम सब, घर और वन में, माता कुन्ती के आदेश का सदैव पालन करते हैं। एक दूसरे के प्रति, अपने कर्तव्य में कभी प्रमाद नहीं करते; वन की तो बात ही क्या, राज्य में रह कर, सुखोपभोग की समस्त सामग्री पाकर भी मैंने अपना जीवन सादा ही रखा था। अन्तःपुर के सेवकों से लेकर साईस और ग्वालों तक के काम की देखभाल मैं स्वयं ही किया करती थी। महाराज युधिष्ठिर का समुद्र के समान अधृष्य कोष बहुत बड़ा था, उसका आय और व्यय मैं ही सम्हालती थी, इन सब कार्यों को सम्हालते हुए, कई बार मुझे रात्रि और दिन एक कर देने पड़ते थे। ऐश्वर्य, वैभव को हम लोग, सदैव दूसरों के लिए समझते थे। निरलस रह कर अब भी मैं पाण्डवों की आज्ञा प्रतीक्षिणी रहती हूँ। जो आचरण उनको अप्रिय है उससे मैं दूर रहती हूँ और वे सभी प्रत्येक कार्य में मेरे मुखापेक्षी हैं। मेरी इच्छा के प्रतिकूल स्वर्ग का साम्राज्य भी उनको अभीष्ट नहीं है। इसी से हमारा पारिवारिक जीवन सुखी है।"

स्वार्थ त्याग और कर्तव्य पालन के द्वारा ही जीवन सुखमय बन सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईर्यापथ-प्रतिक्रमण—

—शतावधानी श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

जैन साहित्य विकास मण्डल, बम्बई की ओर से अष्टांग विवरण युक्त प्रतिक्रमण-प्रबोध नाम का एक संशोधनात्मक ग्रन्थ बड़े परिश्रम से तैयार किया जा रहा है, उसीमें से संकलित किया हुआ एक लेख हम यहाँ पर दे रहे हैं। जिस पर से पाठकों को उसकी शैली, विवेचन तथा तुलना आदि का कुछ खयाल आ सकेगा।

—संपादक

भूलों को सुधारने की कला का सारा दारोमदार है—भूल का भान होजाना। भूल का भान ही न हो तो सुधारने का प्रयत्न भी कैसे हो सकता है। इसलिए भूल का भान होना पहले जरूरी है। और यह जितनी जल्दी होगा, उतना ही अच्छा है जिससे भूलों के बुरे परिणाम से भी बचा जा सकता है।

भूल का भान किसे कहते हैं और उस स्थिति में मनोदशा कैसी होती है—हमें यही देखना है। जब न करने योग्य कार्य हो जाय, अथवा करने योग्य कार्य भी न किया जा सके—तब 'भूल हुई' ऐसा समझना चाहिए। जैसे कि हाथ से आग को छूना और अलमारी को ताला न लगाना। यहाँ पर पहली क्रिया न करने योग्य होने पर भी की गई है, और दूसरी क्रिया करने योग्य होने पर भी नहीं की गई। इसीलिए ये दोनों भूलें हैं।

और लीजिए, सत्-प्रवृत्ति और असत्-निवृत्ति ये दोनों बातें भूल रहित गिनी जाती हैं। इसके विपरीत सत्-निवृत्ति और असत्-प्रवृत्ति भूल वाली स्थिति को बतलाती हैं। जिसका अर्थ है सत्-प्रवृत्ति और असत्-निवृत्ति ही वास्तव में भूल को सुधारने का असली रास्ता है।

जैन शास्त्रकारों ने सत्-प्रवृत्तिरूप से और असत्-निवृत्ति रूप से छ क्रियाओं का विधान किया है—

१. सामायिक—समभाव लाना, समता रखना, राग व द्वेष नहीं करना।

२. चतुर्विंशतिस्तव—धर्मतीर्थ को प्रवर्तन करने वाले चौबीस तीर्थंकरों तथा उन के कार्यों का गुणगान करना। उनके प्रति पूरा पूरा पूज्य भाव रखना। मिथ्यादृष्टि नहीं होना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. वन्दन—गुरु को वन्दन करना, गुरु का बहुमान करना। उनके समागम से आत्मा को जागृत रखना। सुस्ती लापरवाही या विपरीतपन से उनकी उपेक्षा न करना।

४. प्रतिक्रमण—अतिचार से दूषित आत्मा को शुद्ध करके गुणों का विकास करना, अतिचारों का पुनः सेवन नहीं करना।

५. कायोत्सर्ग—आत्मचिन्तन में लीन होना। हलन-चलन, वाणी-व्यवहारादि क्रियाओं को न करना, तथा चित्तवृत्ति के व्यापार को यथासंभव कम करना।

६. प्रत्याख्यान—पाप स्थानकों को छोड़ने के लिए व्रत-नियमों को धारण करना। स्वच्छंद या अनियंत्रित प्रवृत्ति नहीं करना।

'असत्' से सत् की ओर जाने के लिए, अथवा अन्धकार से प्रकाश में जाने के लिए, किंवा मृत्यु से अमृतावस्था को प्राप्त करने के लिए उपरोक्त क्रियाएँ परम 'आवश्यक' हैं। इसीलिए उन्हें 'आवश्यक' के नाम से कहा जाता है।

उक्त छहों आवश्यक एक सरीखे सात्त्विक हैं, और एक सरीखे ही उपयोगी भी हैं। फिर भी व्यवहार की दृष्टि से उनका विस्तृत और संक्षिप्त स्वरूप बताया गया है। पाँच महाव्रतों को स्वीकार करके शुद्ध, संयमी जीवन बिताना यह तो विस्तृत स्वरूप है, जीवन में यथासंभव अहिंसा का आचरण करना यह संक्षिप्त स्वरूप है। विशुद्ध जीवन बिताने के लिए यह एक छोटी से छोटी शर्त है, जिसका सावधानी के साथ पालन करना किसी भी मुमुक्षु का परम कर्तव्य है।

इसी बात को ध्यान में रखकर ईर्यापथ-प्रतिक्रमण की योजना की गई है। जिसका तात्पर्य है—रास्ते में चलने से होने वाली जीव विराधना का मैं अन्तःकरण की भावना पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूं। जैसे कि—

१. जाने व आने में मुझसे त्रसजीव, बीज, वनस्पति, ओस, चींटियों के स्थान, शैवाल, कच्चा पानी, मिट्टी, व मकड़ी के जाल आदि का मर्दन हुआ हो।

२. जाने व आने में मुझसे एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, व पंचेन्द्रिय जीवों की विराधना हुई हो।

३. जाने व आने में मुझसे किसी जीव को ठोकर लगी हो, धूलि से दबाया गया हो, कुचला गया हो, आपस में मिला दिए हों, उन्हें छुआ हो, कष्ट पहुंचाया हो, परेशान किया हो, डराया हो, एक जगह से दूसरी जगह डाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया हो, प्राणों से रहित कर दिया हो—इस प्रकार किसी तरह की भी विराधना हुई हो, तो मेरा वह सब दुष्कृत मिथ्या हो।

किसी भी जीव को दुःख पहुँचाने के बारे में पश्चात्ताप करने की ऐसी ही विधि दूसरे धर्मों में भी पाई जाती है। जैसे कि पारसी धर्म को ही लीजिए, उसमें 'पतेत पशेमानी' यानी गुनाहों से छूटने की एक खास विधि है, जिस के बारे में यह पाठ बोला जाता है—

"अज हमोईन् हर् आईन् गुनाह्, हर् आईन् मर्गर् जन् हर् आईन्, फरो मान्द् हर् आईन् मानीद् हर् आईन् गुनाह् अज् गुनाह् ओएम् अंदर शेहेरेवर् अयोख्शस्त्, अयोख्शस्त् सर्दगांन् जस्त् प पतेत होम्।" अर्थात् सब तरह के और सब भाँति के गुनाह, सब तरह के विशेष गुनाह, सब तरह के साबित हो चुके गुनाह, सब तरह के रह गए गुनाह जो स्वीकार करने से छूट गए हों, सब तरह के गुनाहों से होने वाले गुनाह—जो कि मुझसे धातु या दूसरी दूसरी धातुओं के साथ हो गए हों—सभी गुनाहों का पश्चात्ताप कर के मैं निर्मल होता हूँ।

इसी तरह जमीन, पानी, अग्नि और वनस्पति के प्रति होने वाले गुनाहों के बारे में भी नीचे लिखे अनुसार पश्चात्ताप किया गया है।

"अज्·· ·····अंदर्* संपदार्मद्, जमीन् जमीन् सर्दगांन् जस्त् प पतेत् होम्।"

सब तरह के गुनाह ·······जो कि ज़मीन या अलग अलग तरह की ज़मीन के साथ हुए हों, उन सब गुनाहों का पश्चात्ताप कर के मैं निर्मल बनता हूँ।

"अज्······अंदर् खोर्दाद् आव्, आव् तोखमगांन् जस्त् प पतेत् होम्।"

हर तरह के गुनाह······जो कि मुझ से पानी या अलग अलग तरह के पानी के साथ हुए हों, उन सब गुनाहों का पश्चात्ताप कर के मैं निर्मल बनता हूँ।

"अज्·····अंदर् अर्दी बेहेश्त, आतश् सर्दगांन् जश्त प पतेत् होम्।"

हर तरह के गुनाह·····जो कि मुझसे अग्नि या अग्नि के सब प्रकारों के साथ हुए हों, उन सब गुनाहों का पश्चात्ताप करके मैं निर्मल बनता हूँ।

"अज्·····अंदर् अमर्दाद, ओर्वर् ओर्वर् सर्दगांन् जस्त प पतेत् होम्।"

(देखिए पृष्ठ ३९)

* यहाँ तक का पाठ ऊपर लिखे अनुसार ही समझें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सत्कार

जागरण–

सम्पादक—मुनि मधुकर जैन, प्रकाशक–श्री गुरुकुल प्रि० प्रेस, जोधपुर (राजस्थान) मूल्य ।।।) पृष्ठ ९७।

मुनि श्री मधुकर जी द्वारा संगृहीत और संपादित 'जागरण' को देखते ही विचार हुआ कि—यदि सभी आगमों के जनोपयोगी स्थल इसी रूप में प्रकाशित किये जाएँ, तो महावीर वाणी का जनता में अच्छा प्रचार हो सकता है। विश्व को स्वयं भगवान् के वचनों में अहिंसा, शान्ति और सत्य का संदेश मिल सकता है। आज इस संदेश को घर घर तक पहुँचाने की बड़ी आवश्यकता भी है।

आगमों को मूलरूप में प्रकाशित करने से वे साधारण जनता की पहुँच के बाहर की चीज बन जाते हैं। कुछ लंबे भी पड़ जाते हैं। इसी से उनका यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाता। जनता तक पहुँचाने के लिए दो बातों की जरूरत है—मूल आगमवाक्य बहुत छोटे रूप में, दिलचस्प ढंग से, सीधी सादी भाषा में रखे जाएँ; दूसरे उनको विश्व की अधिक से अधिक भाषाओं में उपस्थित किया जाए।

'जागरण' की यही विशेषता है। शास्त्र के मूल वाक्यों को हिन्दी के साथ दिया गया है। जिससे वह हिन्दी भाषाभाषी जनता के काम की चीज़ बन गई है। इसे कोई भी उठा कर पढ़-समझ सकता है। 'जागरण' से पहले पं० बेचर दास जी ने आगमों में से पद्यभाग का 'महावीर वाणी' के नाम से एक संग्रह निकाला था। जो काफ़ी आकर्षक और जन रुचिकर सिद्ध हुआ। 'जागरण' भी उसी दिशा में एक प्रयत्न है। इस में 'आचारांग' के कुछ ही भाग का संकलन है, पर है बिलकुल नए रूप में। प्रकरणों की कल्पना भी सुंदर रूप में की गई है। जिससे यह संकलन और भी अच्छा लगता है।

'जागरण' तो एक नमूना है। इसी तरह सभी आगमों में से जनोपयोगी स्थलों का संकलन किया जा सकता है। जिससे जनता के सामने ऐसा साहित्य आएगा, जो सत्य और पथ्य होनें से बहुत कुछ जनहित साधन कर सकेगा।

'जागरण' जैसे सुंदर संकलन, संपादन एवं प्रकाशन के लिए इसके सभी सहयोगी धन्यवाद के पात्र हैं।

—कृष्णचन्द्राचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री तन्दुल वैचारिक-प्रकीर्णम्–

अनुवादक—पं० अम्बिकादत्त ओझा व्याकरणाचार्य, सम्पादक और संशोधक—पं० घेवरचन्द्र बाँठिया 'वीरपुत्र' जैनसिद्धान्तशास्त्री, न्याय व्याकरणतीर्थ, प्रकाशक—श्री श्वे० साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर मूल्य—१।।।) रु०

जैन दृष्टि से गर्भशास्त्र का प्रतिपादन करने में यह ग्रंथ सफल माना जा सकता है। मनुष्य की दश अवस्थाओं को लेकर प्रत्येक अवस्था पर गणित के ढंग से विचार करना, यही इस ग्रंथ का प्रमुख लक्ष्य है। कितने दिन तक जीव गर्भ में रहता है, कितने समय तक स्त्री और पुरुष में गर्भ धारण करने तथा गर्भ धारण कराने की योग्यता रहती है; स्त्रीलिंग, पुंल्लिग तथा नपुंसक लिंग का निर्माण किस पद्धति से होता है, गर्भस्थ जीव का किस ढंग से विकास होता है इत्यादि बातों पर ग्रंथ में संक्षिप्त किन्तु तथ्यपूर्ण प्रकाश डाला गया है। '५५ वर्ष के बाद स्त्री की योनि गर्भधारण करने योग्य नहीं रहती तथा ७५ वर्ष के बाद पुरुष भी वीर्यहीन हो जाता है।' इस विषय में हमें संशय है क्योंकि हम आजकल के समाचार पत्रों में ऐसे समाचार भी पाते रहते हैं जिनमें इन दोनों बातों का पूर्ण खण्डन मिलता है। १०० वर्ष की आयु मानकर चलने पर भी यह बात सर्वथा सत्य सिद्ध नहीं हो सकती। गर्भ का विवेचन करते करते आचार्य के मन में अकस्मात् गतियों का ध्यान आ गया, ऐसा प्रतीत होता है; क्योंकि बीच ही में 'कौनसा जीव मरकर नरक में उत्पन्न होता है किस जीव की उत्पत्ति मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग में होती है,' इत्यादि बातें अप्रासंगिक ढंग से छेड़ी गई हैं। शरीर-रचना का वर्णन भी नाड़ियाँ आदि गिनाकर स्पष्ट रूप से किया गया है।

अन्त में समाप्त करते करते ग्रन्थकार ने स्त्रीजाति की अच्छी तरह से खबर ली है। 'वे मधुर वचन बोलती हैं किन्तु उनका हृदय मधुर नहीं होता। स्त्रियां पुरुषों के बल को नष्ट करने वाली हैं और पुरुष वध के लिए वध्यशाला के समान हैं। स्त्रियां प्रत्यक्ष ही राक्षसी हैं। वे साक्षात् कपट की राशि हैं। मृत्यु में और स्त्री में कोई भेद नहीं है। विष्ठा भक्षण करने वाले गर्दभ के समान स्त्रियों का आचरण दुष्ट होता है।' इत्यादि महावाक्यों में नारी-समाज का हृदय विदारक चित्र देखकर सहसा यह विचार उत्पन्न होता है कि क्या सचमुच भारतीय संस्कृति में और विशेषरूप से हमारी जगद्वन्दनीय श्रमण-संस्कृति में नारी का यही स्थान है? आज का नव-मानस इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की निन्दा गर्भित वाक्यावली से सहसा क्षुब्ध हो उठता है। नारी की व्याख्या करते हुए आगे कहा गया है—'पुरुषाणां नान्य ईदृशोऽरिरस्तीति नार्यः, नारी-समाः न नराणामरयः सन्तीति नार्यः' इत्यादि। जो नारी जगद्वंद्य मातृत्व की प्रतीक है, जीवन संगिनी जाया की जीवित प्रतिमा है, सहोदरत्व का रस प्रवाहित करने वाली साक्षात् सुरसरी है उस नारी को 'पुरुषाणामरिः' कहना कहाँ तक युक्तियुक्त है, इसका निर्णय कोई भी सहृदय व्यक्ति कर सकता है। अस्तु, ग्रंथ की छपाई सफाई ठीक है। पत्राकार की अपेक्षा पुस्तकाकार के रूप में ग्रंथों का प्रकाशन विशेष सुविधा जनक होता है, ऐसा समझकर आगे से इस प्रकार के अन्य ग्रंथों का प्रकाशन पुस्तकाकार हो तो अच्छा है।

—मोहन मेहता

(पृष्ठ ३६ से आगे)

हर तरह के गुनाह·······जोकि मुझ से झाड़ पत्ते या नाना तरह के झाड़ पत्तों के साथ हुए हों। उन सब गुनाहों का मैं पश्चात्ताप करके शुद्ध बनता हूँ।*

'मिच्छामि दुक्कडं' यह प्रतिक्रमण की भावना का बीज है। जब तक हृदय में असत् कार्यों के प्रति अफ़सोस या पश्चात्ताप नहीं होता, तब तक उनसे छुटकारा पाना या निवृत्त होना संभव नहीं। ज्यों ही यह विचार आया कि—अमुक काम अच्छा नहीं, और वह आत्म-कल्याण की भावना के विरुद्ध है, बस, फिर उसमें गाढ़ आसक्ति हो ही नहीं सकती। किन्हीं संयोगों की परवशता के कारण या प्रमादवश किसी बुरे काम को करने का प्रसंग दोबारा पड़ भी जाय, तो मन में इतना ज़रूर आएगा कि—मैं अच्छा नहीं कर रहा हूँ। यह बात छोड़ने लायक है और उसे जल्द ही छोड़ देना चाहिए।

जो इस रहस्य को समझ कर उपरोक्त सूत्र का मनन करेगा, उसका आत्मा निर्मल होकर, अन्त में परमज्ञान को प्राप्त कर लेगा।

—अनु० कृष्णचन्द्राचार्य

---

* खोरदेह अवस्ता—आवृत्ति ११ वीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याश्रम समाचार

नए रिसर्च स्कालर

श्री गुलाबचन्द चौधरी, व्याकरणाचार्य, एम० ए० 'सिंघी रिसर्च स्कालर' नियुक्त हुए हैं। आप के महानिबंध का विषय होगा—'जैन पुराण और प्र... कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति'।

प्रो० विमलदास जैन, एम० ए० (दर्शन तथा संस्कृत) एल० एल० बी० शास्त्री, न्यायतीर्थ 'सेठ छोटे लाल केशव जी शाह रिसर्च स्कालर' नियुक्त हुए हैं। आप 'Relativity of Knowledge' पर अपना महानिबन्ध लिखेंगे।

महावीर जयंती में भाग

श्री इन्द्र चन्द्र जी एम० ए० इस अवसर पर बंबई निमंत्रित थे। पायधुनी में तीनों सम्प्रदायों की सम्मिलित सभा में आप का भाषण हुआ। पंजाब जैन भ्रातृसभा की ओर से विलेपार्ले में आयोजित सभा में भी आप का भाषण हुआ। ४ अप्रैल को बंबई जैन युवक संघ की ओर से बुलाई गई एक सभा में आप का अभिनन्दन किया गया।

प्रो० विमल दास जी इलाहाबाद गए। वहां आपने आम सभा में भाषण दिया। रात को इलाहाबाद रेडियो स्टेशन से ब्राडकास्ट किया।

बनारस टाउन हाल में आयोजित सभा में प्रो० दलसुख मालवणिया तथा श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए० के भाषण हुए। रामघाट में की गई सभा में श्रीकृष्णचन्द्राचार्य जी का भाषण, श्री शिवकुमार जी के भजन तथा श्री मोहन लाल मेहता की कविताएँ हुईं।

शोक समाचार

श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर के आजीवन सदस्य लाला नत्थूमल जी का १३ अप्रैल को ८० वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। आप अमृतसर जैन समाज के वयोवृद्ध कार्यकर्ता थे। कई वर्षों तक अमृतसर जैन सभा के प्रमुख तथा पंजाब प्रान्तीय श्वे० स्था० जैन सभा के कोषाध्यक्ष व प्रमुख रहे। अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फरेंस के भी आप आजीवन सदस्य थे। धार्मिक क्रियाओं में विशेष रुचि रखते थे। कपड़े के व्यापारियों में आप अच्छे पारखी माने जाते थे। जीवन काल में आप को अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री देशराज, पुत्रवधू तथा दो नवयुवक पौत्रों का वियोग सहना पड़ा।

समिति तथा श्रमण परिवार दिवंगत आत्मा के लिए शान्ति की कामना करते हैं तथा उनके परिवार के साथ सहानुभूति प्रकट करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों से—

'श्रमण' के छठे अंक में यह सूचना दी गई थी कि मई महीने का अंक 'संस्कृति अंक' होगा। हमें खेद है कि ऐसा संभव नहीं हो सका। मार्च और अप्रैल के महीनों में बनारस हिन्दू यनिवर्सिटी प्रेस में परीक्षाओं के कारण काम बहुत बढ़ जाता है। अतः विशेषांक का प्रकाशित करना कठिन था। मई और जून में यूनिवर्सिटी ग्रीष्मावकाश के कारण बंद रहती है। इन सब कठिनाइयों को देखते हुए 'संस्कृति अंक' का प्रकाशन अभी स्थगित करना पड़ा है। इसके प्रकाशित होने के समय की सूचना बाद में दी जायगी। प्रेस में कार्य की अधिकता होते हुए भी मई का साधारण अंक समय पर प्रकाशित हो रहा है, इसके लिए हम प्रेस के मैनेजर साहब तथा स्टाफ़ को धन्यवाद देते हैं।

संस्थाओं से—

हमारे पास हर महीने कई संस्थाओं और सभाओं की रिपोर्ट आदि प्रकाशन के लिए आती हैं। इस विषय में निवेदन है कि 'श्रमण' का निश्चित ध्येय संस्कृति का प्रचार है, उसकी पृष्ठ संख्या भी सीमित है। अतः हम विद्याश्रम की विशेष प्रवृत्तियों के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं की रिपोर्ट आदि छापने में असमर्थ हैं। सांस्कृतिक और सामाजिक उन्नति की दृष्टि से यदि कोई खास बात होगी तो उस पर सम्पादकीय टिप्पणी में प्रकाश डाला जा सकता है। हां, यदि कोई संस्था क्रोड़पत्र के रूप में कुछ प्रकाशित करवाना चाहे तो 'श्रमण' यह सेवा कर सकेगा। उसकी छपाई आदि का खर्च उस संस्था के जिम्मे होगा।

सहयोगियों से—

हमारे बहुत से सहयोगी पत्र 'श्रमण' में दी गई कविताओं, कहानियों या लेखों को उद्धृत करते हैं परन्तु 'श्रमण' का नाम नहीं देते। यह उचित नहीं। हम आशा करते हैं कि हमारे सहयोगी पत्र भविष्य में 'श्रमण' में प्रकाशित किसी भी चीज़ को उद्धृत करते हुए 'श्रमण' का उल्लेख अवश्य करेंगे। पत्रकारिता की नीति का यह एक विशेष नियम है।

व्यवस्थापक—**'श्रमण' जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस–५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय, गुरुकुल काँगड़ी

'SANMATI' PUBLICATIONS

1. Lord Mahavira by Dr. Bool Chand, M.A., Ph.D. — Rs. 4/8/
2. गुजरात का जैन धर्म—मुनि श्री जिनविजय जी — बारह आने
3. विश्व-समस्या और व्रत-विचार—डॉ० बेनीप्रसाद — चार आने
4. Constitution — 4 Ans.
5. अहिंसा की साधना —श्री काका कालेलकर — चार आने
6. परिचयपत्र और वार्षिक कार्यविवरण — चार आने
7. Jainism in Kalingadesa—Dr. Bool Chand — 4 Ans.
8. भगवान् महावीर—श्रीदलसुखभाई मालवणिया — चार आने
9. Mantra Shastra and Jainism—Dr. A. S. Altekar — 4 Ans.
10. जैन-संस्कृति का हृदय—पं० श्री सुखलालजी संघवी — चार आने
11. भ० महावीरका जीवन—पं० श्री सुखलालजी संघवी — " "
12. जैन तत्त्वज्ञान, जैनधर्म और नीतिवाद लें०—पं० श्री सुखलालजी तथा डॉ० राजबलि पाण्डेय — " "
13. आगमयुग का अनेकान्तवाद—श्री दलसुखभाई मालवणिया — आठ आने
14--15. निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय—श्री सुखलालजी संघवी — एक रुपया
16. वस्तुपाल का विद्यामण्डल—प्रो० भोगीलाल सांडेसरा — आठ आने
17. जैन आगम—श्री दलसुखभाई मालवणिया — दस आने
18. कार्यप्रवृत्ति और कार्यदिशा — आठ आने
19. गांधीजी और धर्म लें० पं० श्री सुखलालजी और दलसुख मालवणिया — दस आने
20. अनेकान्तवाद—पं० श्री सुखलाल जी संघवी — बारह आने
21. जैन दार्शनिक साहित्य का सिंहावलोकन पं० दलसुखभाई मालवणिया — दस आने
22. राजर्षि कुमारपाल—मुनि श्री जिनविजयजी — आठ आने
23. जैनधर्म का प्राण—श्री सुखलालजी संघवी — छः आने
24. हिन्दू, जैन और हरिजन मंदिर प्रवेश लें० श्री पृथ्वीराज जैन M.A. — सात आने
25. Pacifism & Jainism—Pt Sukhlalji — 8 Ans.

The Secretary,
JAIN CULTURAL RESEARCH SOCIETY
BENARES HINDU UNIVERSITY.

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

गुरुकुल-पत्रिका
गुरुकुल काँगड़ी

अत्थि सत्थं परेण परं ;
नत्थि असत्थं परेण परं ।

दुनिया में घातक हथियार एक से एक बढ़ चढ़ कर हैं ; किन्तु अशस्त्र—शस्त्ररहित शान्ति का मार्ग तो एक ही है ।

सव्वओ पमत्तस्स भयं ;
सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भयं ।

प्रमादी–ग़ाफ़िल, असावधान को चहुँओर से डर ही डर है । जो अप्रमादी–सावधान है उसे कुछ भी डर नहीं ।

–आचारांग

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी
बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

इन्द्र, एम० ए० — दलसुख मालवणिया
पृथ्वीराज जैन — मोहन लाल मेहता

इस अंक में—

१. नग़्म-ए-ज़िंदगी (कविता)—श्री अख़्तर लखनवी १
२. अपनी बात (संपादकीय)— ३
३. जैन-साधना—पं० सुखलाल जी संघवी ९
४. कह रहा जगत कि हम स्वतंत्र हैं (कविता)—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल १२
५. आर्यों से पहले की संस्कृति—श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम०ए० १३
६. व्यक्ति और समाज (कहानी)—श्री रतन पहाड़ी २०
७. हज़रत मुहम्मद और इस्लाम—श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए० २५
८. ब्रह्मचर्य पालन के सरल उपाय—महात्मा गाँधी ३२
९. संस्कृति का अर्थ—पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री ३३
१०. रत्न किसके ?—इन्द्र एम० ए० ३५
११. साहित्य सत्कार— ३८

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनीऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) — एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष १ | जून १९५० | अंक ८

नग़म-ए-ज़िंदगी–

–अख़्तर लखनवी

ज़िंदगी को इब्ते-ज़िंदगी बनाये जा,
रंजो-ग़म हज़ार हों, फिर भी मुस्कराये जा।
प्यार की मंज़िल को चल
पाँव क्या आँखों के बल
दूर ये मंज़िल न देख
हौसला बढ़ाये जा,
हिम्मत आज़माये जा।
साज़ इन्क़लाब से
चंग ले, रूबाब ले
जिन से बज़्म झूम उठे
ऐसे गीत गाये जा,
रंजो-ग़म मिटाये जा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख आफ़ताब को
और माहताब को
इनसे ले दरसे-अमल
औ, क़दम बढ़ाये जा,
महफ़िलें सजाये जा।
ज़िंदगी का ग़म नहीं
ज़ोर तुझ में कम नहीं
मौत सामने भी हो
फिर भी मुस्कराये जा,
मस्तियाँ लुटाये जा।
शान्ती के काल को
मुश्किलों के जाल को
भुखमरी के साथ साथ
इनको भी मिटाये जा,
ज़िंदगी बनाये जा।
आज के समाज में
काम और काज में
ग़फ़लतें हराम हैं
ग़फ़लतें मिटाये जा,
ख़्वाब से जगाये जा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-पत्रिका, गुरुकुल काँगड़ी.

अपनी बात

अनुकरण योग्य आदर्श

मई के पहले सप्ताह में समाचार पत्रों में एक उत्साह वर्धक और आशा-जनक समाचार प्रकाशित हुआ था। हमें यह पढ़कर बड़ी खुशी हुई कि भारत की राजधानी दिल्ली में श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य श्री तुलसी गणी जी के नेतृत्व में अणुव्रती संघ का एक अधिवेशन हुआ। उसमें छः सौ से भी अधिक व्यापारियों ने अपने धर्मगुरु के सामने यह प्रतिज्ञा की कि वे चोरबाज़ारी नहीं करेंगे, रिश्वत नहीं लेंगे, जाली राशन कार्ड नहीं बनवाएँगे। इसके अतिरिक्त झूठे विज्ञापन छपवाने, बिना टिकट रेलयात्रा करने जूआ खेलने, आदमी द्वारा चलाए गए रिक्शे पर बैठने, जाली हस्ताक्षर करने, व्यापार में बेइमानी करने तथा ४५ वर्ष की आयु के बाद विवाह करने आदि का भी त्याग किया गया। इन व्यापारियों में ज़्यादातर संख्या करोड़पति और लखपति व्यापारियों की ही थी। वे इस बात को भलीभांति समझते थे कि उनमें से बहुत से व्यक्तियों ने इन दिनों व्यापार-कौशल के नाम पर क्या क्या न करने योग्य काम किए हैं। उनकी अन्तरात्मा नैतिक पतन से तड़प उठी और आत्मा में विद्यमान स्वाभाविक सद्वृत्ति की भावना जागृत हुई। इसके साथ साथ उन्हें कंचन कामिनी के स्पर्श तक के भी त्यागी और परमार्थ को ही स्वार्थ समझने वाले एक जैन आचार्य की प्रेरणा पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। नतीजा हमारे सामने है।

आज दुनिया के प्रायः सभी देशों में नैतिक आदर्शों को तिलांजलि दे दी गई है। लोभ, रिश्वत, धोकेबाजी, स्वार्थसाधना, अविश्वास, एक दूसरे को लूट लेने की भावना, खोटे और झूठे नाप तोल और लगभग हरेक चीज़ में मिलावट आदि बुराइयों का सब जगह बोलबाला है। दूसरे देशों में परिस्थिति का सच्चा रूप क्या है, इस बारे में न तो हम अधिकारपूर्वक कह सकते हैं और न अपनी वर्तमान दशा को देखते हुए इस बात का हक़ ही रखते हैं। जिन बुराइयों और अपराधों के कारण हमारा अपना सर ही लज्जावश झुका हुआ है, उन्हें हम अपना मस्तक ऊँचा करके दूसरी जगह देख भी कैसे सकते हैं? भारत की शोचनीय दशा हमारी आँखों से ओझल हो नहीं सकती। सामुदायिक या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक भावना का लोप हो गया है। खाने पीने की कोई भी चीज़ शुद्ध नहीं मिलती। कांग्रेस के अध्यक्ष डा० पट्टाभि का कहना है कि हमारे देश में अनाज की जितनी कमी बताई जाती है, वह जाली राशन कार्डों के रद्द हो जाने से ही दूर हो जाएगी। तेल और घी में न मालूम किन किन पदार्थों की मिलावट कर गरीब और निर्बल जनता के स्वास्थ्य से राक्षसी खिलवाड़ किया जा रहा है। जीरे के स्थान पर घास और बजरी दी जा रही है। बाहर के देशों में हमारा सम्मान गिर गया है। असली रूई की जगह गीली रूई, मूँगफली की बोरियों में कंकर तथा काजू में पत्थर मिलाकर हमने नैतिक पतन की सीमा को पार कर दिया है। बिना टिकट यात्रा कर हम अपने ही राष्ट्र को लाखों रुपए का नुकसान पहुंचा रहे हैं। ऊपर की आमदनी और रिश्वतखोरी ने इतना व्यापक रूप धारण कर लिया है कि आज कोई भी व्यक्ति बड़े बड़े नेताओं और राज्य कर्मचारियों को बदनाम कर जनता में यह विश्वास पैदा कर सकता है कि हमारे परखे हुए नेता भी इन प्रलोभनों के जाल में फँसे हुए हैं। कभी जमाना था जब कुछ लोग युद्ध और प्रेम की घटनाओं में ही झूठ और कूटनीति को क्षम्य समझते थे। अब व्यापार और बेईमानी आपस में दूधपानी की भांति घुल मिल गई हैं। उनका पृथक्करण कवियों द्वारा कल्पित कोई हंस भी कर सके या नहीं, इसमें सन्देह है। जबतक राज्य की सत्ता अंग्रेजों के हाथ में थी हम अपनी बुराइयों का सारा जिम्मा उनके मत्थे मढ़कर सन्तोष कर लेते थे। अपने ही दिलों में छिपी हुई आसुरी प्रवृत्ति की ओर हमारा ध्यान ही न जाता था। अब हमारे राष्ट्र की बागडोर हमारे ही हाथों में है। भीतर बैठी हुई आसुरी प्रवृत्ति सहसा नाच करने लग गई है और कोई भी उस ओर से अपनी आँखें मूँद नहीं सकता।

ऐसी अवस्था में यह आवश्यक था कि कुछ ऐसे नेता और प्रभावशाली व्यक्ति आगे आएँ जो इन बुराइयों को दूर कर जनसाधारण को आशा और विश्वास की प्रकाशमय किरणों का दर्शन करा सकें। सरकार का कहना है कि उसके सामने ऐसी ऐसी विकट समस्याएँ उपस्थित हैं जो राष्ट्र के अस्तित्व को ही खतरा पहुँचाने वाली हैं। वह उनमें उलझी हुई है। उनमें किस समस्या का सन्तोषजनक हल हो पाया है, यह एक अलग प्रश्न है। हाँ, हमें यह तो मानना ही होगा कि सरकार कानून बना कर भी तब तक उसे अमली जामा नहीं पहना सकती जबतक जनता का हार्दिक सहयोग न मिले। जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा करने का बीड़ा सरकारी क्षेत्र के बाहर के लोग ही उठा सकते हैं। हर्ष का विषय है कि इस ओर सक्रिय क़दम उठने लगा है। सर्वोदय समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संचालक प्रयत्न कर रहे हैं। श्री केदार नाथ जी के नेतृत्व में व्यवहार-शुद्धि-मंडल की स्थापना हुई है। उनका यह कहना सर्वथा ठीक है कि 'जब चोर बाज़ार वाले स्वार्थ सिद्धि के लिए संगठन कर सकते हैं तो सज्जन प्रकृति के क्यों नहीं ? कारण यही है कि ईमानदार बनने की तीव्र भावना बहुत कम लोगों में है।" आचार्य श्री तुलसी गणी जी का सत् प्रयत्न भी इसी दिशा का सूचक है। एक सच्चा जैन कभी यह शिकायत नहीं करता कि जब ज़माने की हवा ही बिगड़ी हुई है तो वह अकेला क्या करे ? जैनधर्म व्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्ति के सुधार में पूरा विश्वास रखता है। उसकी धारणा है कि व्यक्ति के सुधार से ही समाज का सुधार हो सकता है। जैनधर्म ने निवृत्ति और संयम पर जो जोर दिया है, उसका आशय भी यही है कि व्यक्ति दोषों से बचता हुआ अपनी आत्मा को शुद्ध कर सत्कार्यों में प्रवृत्त हो। दोष निवृत्ति के बिना सत् प्रवृत्ति संभव ही नहीं। इस विषय में श्रद्धेय पं० सुखलाल जी ने Pacifism & Jainism में बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है। हम पाठकों से उस ट्रैकट के मनन का अनुरोध करते हैं।

हमें पूरा विश्वास है कि जिन सद्गृहस्थों ने दिल्ली में अपने सामाजिक और व्यापारिक व्यवहार को नैतिक दृष्टि से शुद्ध बनाने की प्रतिज्ञा की है, वे अपने कर्तव्य को पूरी तरह समझते हैं। वे जानते हैं कि जैन गृहस्थ जब अपने धर्मगुरु के सामने कोई नियम या पच्चक्खान लेता है तो उसका क्या महत्त्व है। कोई भी जैन प्रतिज्ञा लेने से पहले हजार बार सोचेगा, आने वाली कठिनाइयों को समझेगा, मानव हृदय की कमज़ोरी और उसके उतार चढ़ाव का मनन करेगा। किंतु प्रतिज्ञा लेकर, व्रत ग्रहण कर, नियम को अंगीकार कर उससे विचलित नहीं होगा। वह जानता है कि जैन श्रावक का सर्व प्रथम लक्षण आचार्य हेमचन्द्र के कथनानुसार 'न्यायसम्पन्न-विभवः' है। जब तक उसकी कमाई न्याय और सत्य की आधारशिला पर नहीं, वह अणुव्रती या श्रावक कहलाने का अधिकारी नहीं। अतः वह अणुव्रत धारण करते समय आने वाली जिम्मेवारी को निभाने के लिए पूरा प्रयत्नशील रहेगा। सच्चा श्रावक बनने से पहले वह भगवान् महावीर के दस मुख्य उपासकों की जीवनी को अपने सामने आदर्श रूप में रखेगा। हम जानते हैं कि विघ्न और बाधाएं उन्हें लक्ष्य से मुँह मोड़ लेने की प्रेरणा करेंगी, सांसारिक प्रलोभन चीन की दीवार बन कर उन्हें आगे बढ़ने से रोकेंगे परन्तु वे इन सब को पार कर ध्येय की ओर बढ़ते जाएंगे। वे अपनी शक्ति का कम अनुमान न लगाएं। डूबते हुए सूरज ने एक दीपक से पूछा था कि अब मेरे बाद दुनिया में उजाला कौन करेगा ? दीपक ने नम्रता पूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर दिया, 'जितना मुझसे बन सकेगा, मैं आप का काम करता रहूंगा' इसी दृष्टि से हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

आचार्य श्री तुलसी गणी जी की सेवा में हम निवेदन करेंगे कि उन्हों अणुव्रती संघ की स्थापना कर जैन साधुओं के सामने एक अनुकरणीय आद रखा है। परन्तु आज जनता नए संगठन के प्रारम्भ मात्र से ही सन्तुष्ट न होती। वह कई संस्थाओं के इतिहास से सुपरिचित है अतः आवश्यकता संग को सजीव करने की है, उस में अर्थक्रियाकारित्व लाने की है। आचार्य हो के नाते उन्होंने एक महत्त्व पूर्ण उत्तरदायित्व उठाया है। हमारी प्रार्थना कि वे अपने त्याग और पूरे सामर्थ्य से इसको निभाएँ। आचार्य पद, जैन और नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा को बट्टा न लगे, ऐसी कोशिश करना ह सब का फर्ज है। इसके साथ ही हम जैन समाज के मूर्त्तिपूजक, स्थानकवासी दिगम्बर आदि सभी अंगों के आचार्यों, साधुओं, ब्रह्मचारियों, भट्टारकों, पंडि विद्वानों तथा नेताओं से नम्र अनुरोध करते हैं कि वे सब अपने अपने क्षेत्र ऐसे कार्यों का आयोजन कर जनता के नैतिक जीवन को ऊँचा बनाएँ और इ नाजुक समय में मानवता की रक्षा करें।

आगमोद्धारक श्री सागरानन्द सूरि जी

जैन समाज और जैन साहित्य के प्रेमियों को यह समाचार सुनकर अत्य दुःख हुआ कि सूरत में ६ मई, १९५० को बाद दोपहर ४–३२ मिनट प जैनागम साहित्य सेवी आचार्य श्रीमत् सागरानन्द सूरि जी का ७५ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। आपके साधु जीवन का एक एक क्षण जै साहित्य के उद्धार और प्रचार में खर्च हुआ था। आप जन्म से गुजराती थे और १६–१७ वर्ष की तरुण अवस्था में ही आप ने संयम मार्ग को स्वीकार किया था। प्राचीन परम्परा में आप की पूरी श्रद्धा थी और उसे सुधार के प्रवाह से खंडित न होने देने के आप प्रबल समर्थक थे।

अपने जीवन काल में उन्होंने जो महत्त्व पूर्ण काम किए, उनमें साहित्य सेवा का कार्य आपकी पुण्य स्मृति को चिरकाल तक सुरक्षित रखेगा, इसमें संदेह नहीं। जैन भण्डारों में पड़े हुए ग्रंथरत्नों को प्रकाश में लाने तथा उन्हें छपवा कर प्रकाशित करने में आप ने अनथक परिश्रम किया था। इस क्षेत्र में काम करने वाले इने गिने व्यक्तियों में आपका नाम मुख्य है। आपके शुभ प्रयत्न से स्थापित आगमोदय-समिति ने जैन साहित्य का प्रकाशन कर जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म की अनुपम सेवा की है । शत्रुँजय पर्वत की तलहटी में बना हुआ संगमर्मर का श्री वर्धमान आगम मन्दिर और सूरत में बना हुआ ताम्रपत्र आगम मन्दिर आपके साहित्य सेवी मस्तिष्क की सूझ है । वर्तमान और आने वाली पीढ़ियाँ साहित्य की रक्षा के इस शुभ प्रयत्न के लिए सैकड़ों वर्षों तक आप के प्रति कृतज्ञ रहेंगी । श्री जैनधर्म सत्य प्रकाशक समिति की स्थापना में भी आपका महत्त्वपूर्ण भाग था ।

उनके शिष्य प्रशिष्यों की संख्या लगभग एक सौ है। हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि स्वर्गीय आचार्य श्री जी की आत्मा को शाश्वत शान्ति प्राप्त हो तथा उनके शिष्य प्रशिष्य अपने गुरु द्वारा दिखाए गए मार्ग से सत् प्रेरणा प्राप्त कर समय की आवश्यकता के अनुसार जैन साहित्य की ठोस सेवा करते रहें ।

हमारे विश्वविद्यालय और जैन साहित्य

'श्रमण' के पहले और पांचवें अंक में यह दिखाया जा चुका है कि आज कल हमारे अधिकतर विश्वविद्यालयों में. जैनदर्शन, धर्म और इतिहास के अध्ययन का कोई भी प्रबन्ध नहीं है । इस विषय में अब तक जिस मनोवृत्ति से काम लिया गया है, वह खेद जनक है। जैन और बौद्ध साहित्य की उपेक्षा कर भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति का सच्चा चित्र हमारी आँखों के सामने आ ही नहीं सकता। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास लेखक जर्मन प्रो० विन्टरनीट्ज़ का कहना है कि 'जैनों ने प्राचीन भारत के धार्मिक, नैतिक, काव्य और वैज्ञानिक साहित्य में पूरा योग दिया है।' सर षण्मुखम् चेट्टी कहते हैं "जैनधर्म की महत्ता के विषय में कुछ कहना मेरे सामर्थ्य से बाहर की बात है। मैं अपने अध्ययन के आधार पर अधिकार पूर्वक यह कह सकता हूँ कि भारतीय संस्कृति के विकास में जैनों ने असाधारण योग दिया है। मेरा निजी विश्वास है कि यदि भारत में जैनधर्म का प्रभाव दृढ़ रहता तो संभवतः हम आज की अपेक्षा अधिक संगठित और निश्चयपूर्वक महत्तर भारतवर्ष का दिग्दर्शन करते।" अर्थशास्त्र, व्याकरण, कोश, भूगोल, खगोल, अलंकार, दर्शन, न्याय, गणित, राजनीति आदि कोई भी ऐसा विषय नहीं जिस पर जैनाचार्यों ने ग्रंथ न लिखे हों। ऐसी दशा में शिक्षा के प्रधान केन्द्रों में इस साहित्य के अध्ययन का प्रबंध न होना खटकने वाली त्रुटि है।

पाठकों को मालूम होगा कि कुछ दिन पहले ही हमारे प्रधानमंत्री जी ने यह शिकायत की है कि आई० ए० एस० की परीक्षाओं में बैठने वाले युवक भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारनाथ, कबीर, मीरा बाई, फीरोज़शाह मेहता आदि के विषय में कुछ जानते। हम समझते हैं कि ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर, सिद्धसेन, चन्द्र, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र आदि के विषय में तो परीक्षकों को प्रश्न करने विचार तक न आता होगा। भारतीय इतिहास के विविध अंगों की जानका के बिना राज्याधिकारी कैसे शासन चला सकते हैं।

भारत जैन महामंडल ने इस विषय में प्रस्ताव पास किया था। बनारस वाइस चाँसलरों के नाम पत्र भी भेजे गए कि जैनदर्शन व धर्म को पाठ्यक्रम स्थान दिया जाय। कहीं से संतोषजनक उत्तर नहीं आया। केवल विश्वविद्यालय के दफ़्तर से पत्र की पहुँच आई जिस में लिखा था कि यदि समाज आर्थिक सहायता दे तो हम चेअर क़ायम कर देंगे। आश्चर्य है केवल जैन साहित्य के अध्यापन के लिए ऐसा क्यों? बाकी विश्वविद्यालयों ओर से पत्र की पहुँच तक भी न मिलना प्रगट करता है कि इस ओर कित उपेक्षा है। महामण्डल द्वारा आयोजित समिति को शीघ्र इस विषय में सक्रि आन्दोलन करना चाहिए। जैन पत्रों का भी कर्त्तव्य है कि इस बारे में जनम तैयार करें। जैन विद्यार्थियों से हमारा अनुरोध है कि वे जहाँ जहाँ अध्य करते हैं, वहाँ संस्थाओं के अधिकारियों से माँग करें कि पाठ्यक्रम में साहित्य को समुचित स्थान मिले। चारों ओर से प्रयत्न करने पर ही हो सकेगा।

—पृथ्वीराज जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन-साधना–

पं० सुखलाल जी संघवी

व्यावहारिक या आध्यात्मिक, कोई भी साधना हो उसमें मुख्य रूप से चार बातों का समावेश अवश्य होता है—१–दोष, २–उसका नाश, ३–नाश का उपाय, ४–सद्गुण का प्रकर्ष ।

भारतीय आध्यात्मिक साधना के सभी सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में उक्त चार बातों का अपनी शैली से वर्णन किया है, जो चतुर्व्यूह कहलाता है। अविद्या, मिथ्याज्ञान, विवेकाख्याति और मिथ्यादृष्टि आदि शब्द मूलभूत दोष के ही सूचक हैं। सम्यग्ज्ञान, विवेकख्याति और सम्यग्दृष्टि आदि शब्दों से उक्त दोष के निराकरण का उपाय सूचित किया जाता है। दोष का नाश होते ही नाश के तरतम-भावानुसार सद्गुण के प्रकर्ष का भी तरतमभाव सिद्ध होता है।

यद्यपि साधना आचार या क्रिया प्रधान ही होती है तथापि उसमें तात्त्विक विचार का भी अनिवार्य रूप से सम्बन्ध है। प्रकृति, परिस्थिति, रुचि, संस्कार, शक्ति और भाषा आदि भेद के कारण तात्त्विक विचार की प्रणालियों में बहुत कुछ भेद देखा जाता है, पर साधक के वास्ते वह भेद कोई महत्त्व की वस्तु नहीं है। किसी भी एक विचार प्रणाली का अवलम्बन करके सच्चा साधक अनुष्ठान करने लगेगा, तो वह दूसरी विचार प्रणाली के सच्चे साधक से परिणाम में अलग रह नहीं सकता; क्योंकि अन्तिम सत्य जुदा नहीं और उसके साधन की विचार प्रणालियाँ साधक अवस्था में कभी एक नहीं ।

कोई आत्मा को एक माने या अनेक, व्यापक माने या अणु या मध्यम परिमाण, मोक्षावस्था में दुःख का अभाव मात्र माने या सुख-साक्षात्कार, कोई उपाय रूप से ज्ञान ही को माने या क्रिया व चारित्र को; पर इतनी बात निर्विवाद है कि सच्चे साधक की आन्तरिक चर्या और उसके तज्जन्य विकास की अनुभूति में कोई फर्क नहीं पड़ता। इस दृष्टि से किसी भी सम्प्रदाय की साधना से जैन साधना को अलग करके बतलाना मानों आध्यात्मिकता को न समझने के बराबर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ जो जैन साधना का निरूपण अति संक्षेप में करता हूँ वह सिर्फ जै परिभाषा, जैन शास्त्रीय वर्गीकरण और जैन विचार प्रणाली को किसी अंश व्यक्त करने के लिए, जिससे वाचक सम्प्रदायान्तर की परिभाषा आदि से तु तुलना कर सके।

जैन साधना के शुरू से अन्त तक के क्रमिक विकास की चौदह भूमिका हैं जो गुणस्थान कहलाती हैं। 'योग वाशिष्ठ' में जैसे अज्ञान की सात और ज्ञान की सात चौदह भूमिकाएँ हैं वैसे ही कुछ भेद के साथ चौदह गुणस्थानों का वर्णन जैन परंपरा में है। 'योगभाष्य' में संक्षेप से चित्तकी क्षिप्त, विक्षि आदि पाँच अवस्थाओं का विभाग है। जैन परंपरा में संक्षेप से वैसे ही आत्मा की तीन अवस्थाओं का वर्णन हैं—बहिरात्मभाव, अन्तरात्मभाव, और परमात्मभाव।

साधक की जब तक प्राकृतिक भोग रुचि हो तब तक वह बहिरात्मा अर्थात् संसारी या प्राकृत जन हैं। जब उसकी रसवृत्ति प्राकृतिक भोग से हट कर अर्थात् बहिर्मुख न रह कर आत्मगुणाभिमुख या अन्तर्मुख होती है तब वह अन्तरात्मा, यह वह भूमिका है जिसमें आकर साधक अपने में स्थित पूर्ण विशुद्धि का दर्शन और प्रत्यय कर लेता है। मानों वह अपने में परमातमभाव की छिपी अवस्था को निःशंक रूप से जान पाता है; और अब वह उसकी पूरी अभिव्यक्ति बिना किए आराम ले ही नहीं सकता इसी के पुरुषार्थ के फल स्वरूप आत्मगत पूर्ण विशुद्धि या परमात्मभाव अभिव्यक्त हो ही जाता है, जो साधना की चरम सीमा है।

जैन परंपरा के अनुसार प्रत्येक जीव परमात्मा है। शांकर वेदान्त के अनुसार एक ही ब्रह्म उपाधिवशात् नानाजीव कहलाता है। जैन शास्त्र उस भाव को अपने ढंग से यों कहता है कि प्रत्येक जीव में, जो तत्त्वत: भिन्न भिन्न हैं परमात्म शक्ति एक सी है, जो आवरण के अभाव में व्यक्त होती है। एक के अनुसार एक ही परमात्मा नाना बनता है या भासित होता है, जब कि दूसरे के अनुसार नाना ही जीव समान रूप से परमातमभाव या ब्रह्मभाव धारण किए हुए हैं और उसे व्यक्त भी कर सकते हैं। सम्प्रदाय कोई भी हो सबके विचार में यह भाव सन्निहित है।

जैन परंपरा के गुणस्थान ही बौद्ध परंपरा में सोतापत्ति आदि अवस्था रूप से वर्णित हैं। गोशालक के आजीवक सम्प्रदाय में भी वैसा ही भूमिकाएँ वर्णित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन शास्त्र कहता है कि क्लिष्ट या अशुद्ध वृत्ति का—जो आर्त और रौद्र-ध्यान भी कहलाती है, नाश आवश्यक है। इसके वास्ते वह शुद्ध वृत्ति का अभ्यास करने का संकेत करता है, और उसी का वर्णन उसने धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान रूप से किया है।

बहुत से लोग और खुद जैन भी यह सामान्य रूप से समझते हैं कि जैन साधना में तप का मुख्य स्थान है, और तप का अर्थ है देहदमन; पर जैन साधना वास्तव में वैसी नहीं है। जैन परंपरा म तपका अर्थ अत्यन्त विस्तृत है उसमें शुद्ध ज्ञान और विशुद्ध ध्यान का भी समावेश है, बल्कि यों कहना चाहिए कि शुद्धज्ञान और विशुद्ध ध्यान ही वास्तविक व प्रधान तप माना गया है। देहदमन या बाह्यक्रिया तभी तप के नाम के योग्य बन सकते हैं; यदि वे शुद्धज्ञान तथा विशुद्ध ध्यान के उपकारक होते हों। उसमें उपकारक न होनें वाले किसी भी अनुष्ठान का जैन परंपरा में वही स्थान है जो चित्तशुद्धि में उपकारक न होने वाले तरह तरह के हठयोग का योगपरंपरा में है।

यह ध्यान रहे कि मौजूदा जैन साधना के स्वरूप में भगवान् महावीर का खास हिस्सा है फिर भी उसका स्रोत उनसे भी तथा उनके पूर्ववर्ती भगवान पार्श्वनाथ से भी बहुत पुराना है। जैसे मूल में कभी और कहीं एक ही आर्य संस्कृति व भाषा धीरे धीरे अनेक जुदे जुदे रूपों में प्रवाहित हुई हैं वैसे ही जैन, बौद्ध और वैदिक साधनाओं का मूल भी वस्तुतः कभी और कहीं एक ही है।

यहां विस्तृत चर्चा का अवकाश न होनें से सब कुछ सूचन रूप से लिखा है, पर इससे सम्बन्ध रखनें वाले विषयों पर तुलनात्मक दृष्टि से मैंने अन्यत्र विस्तार से लिखा है। जिज्ञासु चौथे हिन्दी कर्मग्रन्थ तथा योगदर्शन की भूमिकाएँ देख लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह रहा जगत कि हम स्वतंत्र हैं—

विराम मिल गया, निराश वेदना बिखर गई
कि व्योम हिल गया, उठी पुकार कर लहर नई
कि कोटि कोटि कंठ आज कह उठे, महान पर्व पर महान मंत्र है
कह रहा जगत कि हम स्वतंत्र हैं।

मचल पड़े नवीन स्वर, कि बीन मुखर हो उठी
कि चल पड़े थकित चरण, नवीन चेतना जुटी
कि लक्ष्य पास आगया, कि फिर प्रशस्त पंथ है—
कह रहा जगत कि हम स्वतंत्र हैं।

किरण प्रखर प्रकाश की, बढ़ी कि व्योम धुल गया
सिहर उठे कमल कि कोष, फिर सुरम्य खुल गया
'विजय मनुष्य की हुई महानतम' पुकारते ये गूँजकर दिगन्त है—
कह रहा जगत कि हम स्वतंत्र हैं।

अशान्त जग सुने पुनः, संदेश दिव्य प्यार का
सुने कि मनुज मनुज है, न जीत का न हार का
सुने कि कह रहा विकास मनुज का, 'महान सत्य एक चिर-ज्वलन्त है'
कह रहा जगत कि हम स्वतंत्र हैं।

—श्री ज्ञानचंद्र भारि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यों से पहले की संस्कृति–

–श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम० ए०, व्याकरणाचार्य

जब से सिन्धु घाटी की खुदाई हुई है और पुरातत्व विभाग ने एक विशिष्ट सभ्यता की सामग्री उपस्थित की है; तब से हमें आर्यों के आगमन से पूर्व की भारतीय स्थिति जानने की परम जिज्ञासा उत्पन्न हुई है और लगभग चार पीढ़ियों से विद्वान उस सुदूर अतीत को जाननें के लिए प्रयत्नशील हैं। भारतीय इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन जब शिशु अवस्था में था, तभी विद्वानों ने इसके विवेचन का कुछ गलत तरीका अपना लिया था। वे धरातल पर डार्विन के प्राणि-विकासवाद के अनुसार बन्दर से मनुष्य की उत्पत्ति तथा भारत में आदि सभ्यता का दर्शन वेदकाल से मानते थे। यह सच था कि तब उनके पास इतिहास जानने के साधन ही कम थे तथा विश्व के सर्व प्रथम साहित्य के रूप में वेद ही उनके सामनें था। आज भारतवर्ष के वेदकालीन और उसके पश्चात्युग के सांस्कृतिक इतिहास को जानने के लिए प्रचुर लिखित साहित्य ही नहीं बल्कि विशाल पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध है, तथा आर्यों से आने के पहले प्राग्वैदिक संस्कृति के ज्ञान के लिए भी विद्वानों ने साधन जुटा लिए हैं।

तीन साधन

आज विद्वान् लोग जिन साधनों का आश्रय ले उस सुदूर अतीत का चित्र उपस्थित करते हैं वे मुख्यतः तीन हैः—१ मानववंश विज्ञान (Anthropology) २ भाषा विज्ञान (Philology) तथा ३ पुरातत्त्व (Archaeology) १ मानववंश-विज्ञान द्वारा मनुष्य के शरीर का निर्माण तथा विशेषकर चेहरे के निर्माण का अध्ययन कर विविध मानव शाखाओं की पहचान की गई है। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि आज ही नहीं बल्कि सुदूर अतीत में भारत की जातियों का निर्माण अनेक मानव शाखाओं के संमिश्रण से हुआ है। यह संमिश्रण वेदकाल से ही नहीं बल्कि सिन्धु घाटी की सभ्यता से भी प्राचीन काल से है। २ भाषाविज्ञान ने भाषा के अंगों के विकास के अध्ययन के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध संस्कृतियों के प्रतिनिधि स्वरूप शब्दों को खोज निकाला है और उ संस्कृतियों के आदान प्रदान तथा संमिश्रण के इतिहास जानने की भूमिका उपस्थित की है। भाषाविज्ञान से तत्कालीन समाज की विचारधारा तथा मानसिक स्थिति का भी पता चला है । ३ पुरातत्त्व सामग्री इतिहास का एक प्रबल आधार है, जहां अन्य ऐतिहासिक साधन मौन रह जाते हैं वहां इस पुरातत्व की गति है । इस पुरातत्त्व की प्रेरणा से हम भारतीय संस्कृति के आर्येतर आधारों को खोजने में समर्थ हुए हैं।

वेद और आर्य

भारतीय इतिहास को जब हम विश्व इतिहास का एक भाग मान कर अध्ययन करते हैं तथा विशेष कर निकटपूर्व (Near East) से सम्बंधित कर वेद का अध्ययन करते है तो मानव इतिहास की अनेक समस्याएँ सहज में सुलझ जाती हैं। वेदों में वर्णित घटनाओं का मतलब निकट पूर्व (Near East) की घटनाओं से मालूम होता है। इन घटनाओं से विद्वानों ने सिद्ध किया है कि आर्य लोग भारत में बाहर से आए हैं। उन्हें बाहर से आने में दो प्रकार के शत्रुओं से सामना करना पड़ा, एक तो व्रात्य कहलाते थे जो कि सभ्य जाति के थे। दूसरे थे दास और दस्यु जो कि आर्येतर जाति के थे । ये नगरों में रहने वाले लोग थे। वेदों में इनके बड़े बड़े नगरों (पुरों) उल्लेख है। इनमें से जो व्यापारी थे वे पणि कहलाते थे; जिनसे आर्यों को अनेक अवसरों पर युद्ध करना पड़ा था। ऋग्वेद में दिवोदास और पुरुकुत्स का उन पुरों के स्वामियों से युद्ध का वर्णन है। ऋग्वेद में ७–१८ में दिवोदास के पौत्र सुदास द्वारा एक शत्रुदल के पराजय का वर्णन है। उसमें निम्न लिखित जातियों का उल्लेख है—तुर्वसु, मत्स्य, भृगु, द्रुह्यु, पक्थ, मलानस्, अलिनस्, शिव, विषाणिन्, वैकर्ण, अनु, अज, शिग्रु और यक्षु। इन जातियों के सम्बंध में विद्वानों को बहुत कम मालूम है। श्री हरित कृष्ण देव ने इनमें से बहुत कुछ जातियों की पहचान मिश्रदेशीय रिकार्डों से की है। उनके कथनानुसार ये १२ वीं ई० पूर्व की मध्य एशिया की जातियां हैं तथा कुछ द्रविड़ों की सजातीय तथा कुछ आर्यों की सजातीय हैं।

वेदरचना की पूर्ववर्ती तिथि यदि इन घटनाओं के आसपास मानी जाय तथा उत्तरवर्ती तिथि अवेस्ता के प्राचीन भागों की रचना ७ वीं ई० पूर्व, व अखेमेनियन राजाओं के प्राचीन फारसी में लिखे गए अभिलेखों की तिथि छठी ई० पूर्व—जिनसे वैदिक भाषा का बहुत कुछ मिलान होता है—मानी जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो हम वेदरचना का समय १० वीं ईसा पूर्व कह सकते हैं। इसी समय आर्य लोग समूहों में भारत आए थे। मिश्र और चाल्डिया के प्रागितिहास और इतिहास की घटना की तुलना में आर्यों के आने की घटना कोई बहुत प्राचीन नहीं बैठती। कुछ विद्वान् आर्यों के आगमन की बात ज्योतिष गणना के अनुसार बहुत सुदूर प्राचीन काल में ले जाते हैं पर यदि उस ज्योतिष गणना की व्याख्या वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर की जाय तो आर्यों के आने का समय बहुत बाद बैठता है। इसलिए वैदिक काल की तिथि के निर्णय के लिए हमारे पास सुरक्षित पक्ष भाषा विज्ञान और पुरातत्व ही हैं। कुछ विद्वान् आर्यों का भारत में आना नहीं मानते। वे इन्हें यहीं का निवासी मानते हैं। पर उनका यह कथन आनुमानिक है। मानववंशविज्ञान और भाषाविज्ञान के अध्ययन से उनका यह मत पुष्ट नहीं होता।

आर्यों से पूर्व के भारतीय

आर्यों के बाहर से आने की घटना कोई कल्पित नहीं है तथा उसका उल्लेख भी वेदों तक ही सीमित नहीं। वह ऐसी घटना है जिसकी ध्वनि बाद के साहित्य में भी मिलती है। संस्कृत पुराणों में असुरों की उन्नत भौतिक सभ्यता का तथा बड़े बड़े प्रासाद और नगर बनाने की कला का उल्लेख है। ब्राह्मण, उपनिषद और महाभारत आदि परवर्ती साहित्य में इन असुरों की अनेक जातियों का उल्लेख है जैसे कालेय, नाग आदि। ये सारे भारत में फैले थे। इनके अनेक स्थानों पर बड़े बड़े किले थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का मण्डप इसी असुर जाति के मय नामक व्यक्ति ने बनाया था। महाभारत और पुराणों में ब्राह्मण क्षत्रियों के साथ अनार्य नाग और दासों की शादी के अनेक उल्लेख मिलते हैं। ये शान्तिप्रिय, उन्नतिशील तथा व्यापारी थे। अपने इन उपायों से ये भौतिक सभ्यता में बढ़े चढ़े थे।

आर्य और अनार्य संस्कृतियों का संमिश्रण

इन पर भौतिक सभ्यता से पिछड़ी पर युद्धप्रिय एवं उद्यमशील तथा समृद्ध भाषा से सम्पन्न आर्य जाति ने आक्रमण प्रारम्भ किया। उन्हें भौतिक सभ्यता के वैभव सुख में पली सुकुमार अनार्य जाति को जीतना कठिन मालूम नहीं हुआ और बड़ी सरलता से उसे उन्होंने वश में कर लिया। आर्यों के भारत में दो प्रबल आक्रमण हुए ऐसा विद्वानों का कहना है। आर्य लोग प्राय: झुंडों (ग्रामों) में आये थे तथा अपने साथ बड़ा पशुधन तथा आशुगामी घोड़ों के रथ लाये थे। वे प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजक थे तथा उन्हें होम और यज्ञ के रूप में पशुबलि, यव, दु मक्खन और सोम चढ़ाते थे। वे अपनी पूर्व निवास भूमि—लघु एशिया (Asia minor) और असीरिया बाबुल से कुछ धार्मिक मान्यताएँ कुछ कथा इतिहास (प्रलय कालीन जलप्लावन) आदि भी साथ में लाये थे। उनका जातीय देवता इन्द्र था जो कि बाबुल के देवता मर्दुक से मिलता जुलता है। उन्होंने अपनी समृद्ध भाषा से अनार्यों को विशेष प्रभावित किया।

आर्यों ने यहाँ बस कर यहाँ के निवासियों को ही अपने में परिवर्तित नहीं किया बल्कि स्वयं बहुत हदतक उनमें परिवर्तित हो गए। आर्य संस्कृति के निर्माण में आर्यों की अपेक्षा अनार्यों का बड़ा भाग है। जब अनार्य, आर्यों में सम्मिलित हुए तो उस जाति के समृद्ध कवियों ने आर्यभाषा में अपने भी भाव व्यक्त किये, पद रचना की। उन्होंने अपने दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक ऐतिहासिक कथानक, आख्यान आदि सामग्री को आर्यभाषा में प्रकट करना शुरू किया जैसे कि आज का भारतीय अपने साहित्य को अंग्रेजी में प्रकट करता है। इससे आर्य साहित्य में अनार्य संस्कृति का बहुत बड़ा भाग आ गया। अनार्य साहित्यिकों ने आर्यों की भाषा को भी सुधारा। दो प्रबल संस्कृतियों के संघर्ष का परिणाम ही यह होता है।

डा० सुनीति कुमार चटर्जी का कहना है कि—"आज की नूतन सामग्री और नवीन उद्धार कार्य बतलाते है कि भारतीय सभ्यता के निर्माण में न केवल आर्यों को श्रेय है बल्कि उनसे पहले रहने वाले अनार्यों को भी है। अनार्यों का इस सभ्यता के निर्माण में बहुत बड़ा हिस्सा है। अनार्यों के पास आर्यों से बहुत बढ़ी चढ़ी भौतिक सभ्यता थी। जब आर्य बे घरबार के लुटेरे थे तब अनार्य बड़े बड़े नगरों में रहते थे। भारतीय धर्म और संस्कृति की अनेक परम्पराएं रीतिरिवाज प्राचीन पुराण और इतिहास अनार्यों से आर्य भाषा में अनूदित किये हैं क्यों कि आर्य भाषा ऐसी थी जो सर्वत्र छा गई थी। तथापि उसकी शुद्धि कायम न रह सकी क्योंकि उस में अनेक अनार्य शब्द मिल गए।"

ये अनार्य कौन हैं?

मानववंश-विज्ञान के अध्ययन से भारत के धरातल पर जिस अनार्य जाति का पता लगा है वह है कृष्णांग (Negrito)। बन्दर से विकसित हो उत्पन्न होने वाली किसी जाति का यहाँ पता नहीं चला। कृष्णांगों की सन्तान आज भी अन्दमान द्वीपों में पाई जाती है। उनकी भाषा का विश्व की किसी भाषा शाखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से संबंध नहीं। पहले ये अरब सागर से चीन तक रहते थे पर अब वे या तो खतम कर दिये गये या दूसरी मानव शाखा के लोगों नें उन्हें अपने में पचा लिया। शेष बचे हुए लोगों से उनकी सुदूर अतीत की संस्कृति का अनुमान लगाना संभव नहीं। कहा जाता है कि उनके उत्तराधिकारी बलोचिस्तान में पाये जाते हैं तथा दक्षिण भारत की मुख्य जंगली जातियों में उनका जातीय गुण मिलता है। तिब्बत, बर्मा की नागा जाति के रूप में भी उनका अस्तित्व है। चूंकि यह जाति बहुत प्राचीन युग की है इसलिए बाद की सभ्यता में इसकी क्या देन रही है, यह कहना बड़ा कठिन है। यह जाति अपने पीछे आने वाली शक्तिशालिनी मानव शाखाओं से अपनी संस्कृति को बहुत कम बचा सकी। अजन्ता के एक चित्र में कृष्णांग जाति का चिह्न मिलता है।

कृष्णांग जाति के बाद पूर्व की ओर से आग्नेय (Austric) जाति आई। इनकी भाषा, धर्म और संस्कृति का रूप हिन्दचीन में मिलता है। इस जाति की सन्तानें और भाषा प्रशान्त महासागर के द्वीपपुंजों में मिलती हैं। ये आसाम से भारत भूमि पर आए और यहां आकर कुछ तो कृष्णांग जाति में मिल गए और कुछ भारत के समृद्ध प्रदेशों में अपने से पीछे आने वाली जातियों द्वारा पचा लिए गए। इस जाति का अवशेषरूप खासी, कोल, मुण्डा सन्थाल, मुन्दरी, कुर्कु और शबर आदि जातियाँ हैं। एक समय था जब कि इस जाति के लोग सारे उत्तर भारत, पंजाब और मध्य भारत तक फैल गये थे तथा दक्षिण भारत में भी घुस गये थे। उत्तर भारत के विशाल नदियों के कछारों में बस जाने में इन्हें बड़ी सुविधा हुई। गंगा शब्द की उत्पत्ति आग्नेयभाषा के खांग कांग आदि नदी वाचक शब्दों से कही जाती है। आर्यों की पदरचना, ध्वनि और मुहावरों पर इनकी भाषा का बड़ा प्रभाव है। आर्यों ने इनके सम्पर्क में आकर अपनी भाषा के रूप को बदला है। ये भौतिक सभ्यता में बहुत बढ़ कर थे। इनकी संस्कृति के अनेक स्तर हैं। जो मध्यभारत की उच्च विषम भूमियों में रहते थे या जो आर्यों के दबाव के फल स्वरूप भागे थे वे अब भी अविकसित हालत में हैं पर जो उत्तर भारत के मैदानों में रहते थे उनकी संस्कृति का अवशेष परिवर्तित आर्यो करण के रूप अब भी विद्यमान है। आर्य संस्कृति और आग्नेय संस्कृति का आदान प्रदान विशेषतः भारत के पूर्वीय प्रान्तों में हुआ है। आर्यों ने इनसे चावल की खेती करना सीखा। नारियल, केला, ताम्बूल, सुपाड़ी, हलदी, अदरक, बैंगन लौंकी, आदि का उपयोग आग्नेयों की देन है। कोरी अर्थात् बीसी की गणना तथा चन्द्रमा से तिथि की गणना आग्नेय है। वे अपने मृतकों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाषाण समाधि बनाते थे। उनके यहां परलोक की मान्यता थी तथा वे विश्वास करते थे कि आत्मा अनेक पर्यायों में जाती है। उनकी इस विचारधारा से आर्यों को पुनर्जन्म का सिद्धान्त मिला। डा० सुनीति कुमार चटर्जी लिखते, हैं कि "आर्यों ने अनार्यों से कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म और योगाभ्यास की नकल की अपनी होमविधि के मुकाबले में उनकी पूजाविधि अपनाई।"

ईसा के हजारों वर्ष पूर्व, आर्यों के आने से अवश्य ही बहुत प्राचीन काल में पश्चिम भारत से द्रविड़ लोग आए। यह जाति आज कल दक्षिण भारत के बड़े भाग में है पर आधुनिक खोजों से सिद्ध है कि द्रविड़ों का मूल निवासस्थान पूरवी भूमध्य सागर के प्रदेश हैं। लघु एशिया के अभिलेख में वहां की जाति का नाम 'त्रमिल्ली" लिखा है जो तामिल का पूर्व रूप मालूम होता है। द्रविड़ों का पुराना नाम द्रामिल भी है जो तामिल और त्रमिल्ली का मूलरूप है। ये नगर सभ्यता वाले लोग हैं। इनकी प्राचीन सभ्यता के अवशेष दजला फुरात नदियों की घाटी से सिन्धु घाटी तक मिलते हैं। द्रविड़ लोग व्यापार में समृद्ध थे तथा आदान प्रदान की वस्तुओं का निर्माण करते थे। जौ, गेहूँ और कपास की खेती करते थे; कताई और बुनाई की कला का विकास चरमसीमा पर था। हाथी, ऊँट, बैल और भैंस को रखते। वे घोड़े की सवारी जानते थे पर वाहन के रूप में घोड़े के रथ की जगह बैलगाड़ी का विशेष प्रयोग करते थे। उपलब्ध मिट्टी के खिलौनों और मूर्तियों से मालूम होता है कि उस समय दुर्गा, शिव और लिंग की पूजा प्रचलित थी, कितनी कार्योत्सर्ग जैन मूर्तियाँ भी उस काल की पुरातत्व सामग्री से निकली हैं। वे अपने देवता की पूजा, फल, फूल, चन्दन आदि से करते थे। बलि नहीं चढ़ाते थे।

जब कि आर्य बड़ी बड़ी संख्या में आकर पंजाब में व्यवस्थित हो रहे थे तब द्रविड़ भारत में छोटे बड़े राज्यों में विभक्त थे। आग्नेयों को पराक्रान्त कर इन्होंने मगध और कामरूप में राज्य जमाये तथा दक्षिण में कलिंग, केरल, चोल और पाण्ड्य देशों में। द्रविड़ों ने बहुत पहले अपने जहाजी बेड़े का विकास किया था तथा दक्षिण भारत, लंका और हिन्द द्वीपपुंजों में उपनिवेश स्थापित किये थे। डा० कर्न का कहना है सुमात्रा को सबसे पहले उपनिवेश बनाने वाले द्रविड़ ही थे। सिन्धु घाटी की खुदाई से जिस सभ्यता के अवशेष मिले हैं उसके विधाता द्रविड़ थे ऐसा विद्वानों का मत है।

आर्यों से ठीक पहले की जाति होने से वेदों में इनकी विविध जातियों का उल्लेख मिलता है सो कह चुके हैं। इनसे ही सीधे संघर्ष होने की घटनाएं वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पश्चात् कालीन साहित्य में है। आर्यों ने वेदों में दस्यु, अनास. मृध्रवाक् अयज्वन्, अकर्मन्, अन्यव्रत आदि घृणा पूर्ण शब्दों से इन्हीं अनार्यों का उल्लेख किया है। आर्यों ने इनसे पृथक् बने रहने के लिए 'वर्णभेद' बनाया।

एक सुझाव

वैदिक साहित्य सारे भारत के सांस्कृतिक इतिहास का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, क्योंकि वह एक देशीय अर्थात् विशेषकर पंजाब, दिल्ली के आस पास का साहित्य है। तथा वह उस याज्ञिक संस्कृति के उपासकों की कृति है जो दूसरी संस्कृति के उत्कर्ष के प्रति अति असहिष्णु थे। उन्होंने भारत के मध्यभाग और पूर्वभाग में प्रचलित अहिंसक संस्कृति—श्रमण संस्कृति को धक्का दिया। श्रमण और याज्ञिक संस्कृति के संघर्ष के प्रकीर्णक उल्लेख ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों में मिलते हैं। श्रमण संस्कृति के सूचक अर्हन्, श्रमण, मुनयः, वातवसनाः, व्रात्य, महाव्रात्य आदि शब्द वैदिक साहित्य में पाये जाते हैं। श्रमणों के प्रतिनिधि ऋषभदेव, अजितनाथ, अरिष्टनेमि का उल्लेख भी वेदों में है। मालूम होता है कि इस श्रमण संस्कृति के उपासक द्रविड़जाति और उसके पूर्व की जाति के लोग रहे हैं जिनकी पूजा, उपासना, दार्शनिक मान्यता–कर्मसिद्धान्त, पुनर्जन्म, आत्मा की पर्यायें होना, सभ्यता आदि श्रमण संस्कृति के अनुरूप ही हैं। यह संस्कृति चारों तरफ भारत में फैली थी। तामिल भाषा के प्राचीन से प्राचीन साहित्य इससे प्रभावित थे। अब तक उस संस्कृति की परिचायक पुरातत्वादि सामग्री का ठीक ठीक अनुसन्धान नहीं हुआ है। सिन्धु घाटी की खुदाई से जो कुछ प्रकाश पड़ा है तथा गंगाघाटी की खुदाई से जो प्रकाश पड़ेगा, ये दोनों अवश्य ही आग्नेय द्रविड़ आदि द्वारा उपास्य श्रमण संस्कृति पर प्रकाश डालेंगे।

रामराज्य का अर्थ है आत्माराम का राज्य। हमारे हृदयमें बैठकर हमें धर्म की प्रेरणा करने वाले अंतरात्मा का—आत्माराम का—राज्य सब दुनिया में स्थापित हो यही हमारी मन्शा है। मनुष्य के हृदय में जो स्वार्थी संकुचित और असामाजिक वासनाएं रहती हैं, उन्हें हटाकर वह केवल धर्म बुद्धि से प्रेरित हो, सबको अपने ही जैसा समझे और इस तरह सब लोग सारी मनुष्य जाति को एक विशाल परिवार समझ कर सभी के हित के लिए कोशिश करें, यही इस समाज–व्यवस्था का अंतिम उद्देश्य है। यही रामराज्य है।

काका कालेलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति और समाज–

—रतन पहाड़ि

मूसलाधार वर्षा हो रही है। जंगल अत्यन्त बीहड़ है, मनुष्य नाम मात्र के लिए भी दृष्टिगोचर नहीं होता। मालूम पड़ता हैं, मानव का अभी तक उस जंगल में पदार्पण ही न हुआ हो। बिजली की कड़कन धरा को सिहरा देती और पानी की अनवरत धारा उसे प्रज्वलित करने में योग देती। जंगली जानवरों का स्वर बादल की गर्जन को चुनौती दे रहा था।

पथिक भटकता-भटकता उस बीहड़ वन में पहुँच गया है। आंधी पानी के झकोरों ने उसे स्वपथ का भान न होने दिया। निकला था ध्येय प्राप्ति के पथ पर, किन्तु असह परीषह का भार मार्ग में सहना पड़ेगा ऐसी उसने आशा न की थी। उसने न जाना था, जीवन भी एक संघर्ष का नाम है। उसे पगपग पर संघर्षमय बनना पड़ेगा तथा तपा और खरा जीवन ही जीवन कहलाएगा ऐसा उसे आज भान हुआ। मार्ग के रोड़े रौंदना ध्येयमार्ग-प्राप्ति का कारण होगा। जीवन की सलोनी आशा भी तो आखिर दुःखमय वातावरण में पलती है; पनपती है; उसके चाँद सितारे भी तो घोर तमिस्रा में ही दृष्टिगोचर होते हैं—भटकने में ही तो अनन्य जीवन-दर्शन की प्राप्ति होती है। लगन की सत्ता का जहाँ तक सम्बन्ध है—प्रगति की धारा को प्रवाहित करने में यह योग देती है। किन्तु व्यक्ति का ध्येय था बढ़ना–बढ़ता ही गया। बिजली की चकाचौंध उसे रास्ता दिखाती, व्यक्ति भी उसे अपना सम्बल बनाए अलक्ष्य की ओर बढ़ा चला जा रहा था। पथदर्शक वह स्वयं था, निर्धारक भी स्वयं ही, और था उसका अलक्ष्य लक्ष्य विविध बाधाओं से परिपूर्ण।

व्यक्ति ने चकाचौंध में देखा–प्रतीत हुआ क्षितिज के उस पार टीला है। उस पार कुछ सदन सा प्रतीत हो रहा है। शायद बस्ती हो, यह भी तो हो सकता है किसी संन्यासी की कुटी हो। आशा का संचार हुआ। पैर द्रुतगति से अग्रसर होने लगे।

पास जाकर देखा निर्जन पहाड़ी प्रदेश है। बीहड़ घने वृक्षों का समूह पहाड़ी की परिक्रमा के रूप में स्थित है। पगडंडी सा एक मार्ग है जो अधिक चला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ प्रतीत नहीं होता। घास-पत्तों की एक झोंपड़ी थी। जीर्णशीर्ण कृश-काय, अस्त व्यस्त। किसी प्रकार की न तो सजावट थी और न कृत्रिमता ही। व्यक्ति का साहस काठ मार गया। कैसे उसके अन्दर प्रवेश करे। ध्येय के मार्ग में पथिक को पाथेय मिला किन्तु पाथेय का भोक्ता उसे ग्रहण करने में हिचकता था। अत्यन्त साहस से पुकारा, कोई अन्दर है—कोई उत्तर न मिला। कोई है—फिर भी उत्तर न मिला। सोचा–शायद कुटी निर्जन है, पैर बढ़ाये सशंक हृदय से प्रवेश किया—देखा, कोने में एक तरुणी बिखरे केश–विस्फारित चक्षु बैठी एकटक किसी को देखसी रही है। पथिक ने आहट से उसे सचेत किया।

कौन ?

एक पथिक !

पथिक ?

हाँ, पथिक !

तुम्हारा यहाँ आने का मतलब ?

आश्रय !

आश्रय ! मैं निराश्रय तुम्हें क्या आश्रय दे सकूँगी ? मेरे गृह में इतना स्थान कहाँ जो तुम्हें मैं आश्रय दे सकूं। जाओ पथिक ! अपने पथ पर। मैं तुम्हें आश्रय न दे सकूँगी। मैं एकाकी हूँ। फिर तुम अनजान हो। जाओ, विवश हूँ—

आर्ये ! विवश होने की बात नहीं। मार्ग भयावह है। आँधी-पानी का जोर है। हाथ को हाथ नहीं सूझता—क्या तुम्हें यह उचित जान पड़ता है कि इस समय तुम किसी पथिक को आश्रय न दो। मानवता का ध्यान रखते हुए बस दोपग भूमि, आर्ये !

नहीं, मैं अनजान पथिक को अपनी कुटिया का आश्रित नहीं बना सकती—पथिक ! जा सकते हो।

जो आज्ञा !

पथिक एक क्षण रुका—सोचा—गुनगुनाया—खिन्न हो लौट चला—अच्छा चलता हूँ—और वह दरवाज़े के बाहर था।

तरुणी सोचती रह गई। क्या करे, क्या न करे ? उसने किसी निराश्रित को आश्रय देने से इन्कार कर दिया है। कितनी नीच है वह। नहीं, चाहे कुछ भी हो, वह पथिक को आश्रय देगी अवश्य ! दरवाज़े पर जाकर आवाज़ दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथिक, पथिक ! पर कोई उत्तर नहीं मिला—हारी थकी—अन्यमनस्क मुद्रा में गृहान्तर में प्रविष्ट हुई। आज उसने मानवता को तिलांजलि दे कर पथिक को—अतिथि को आश्रय देने से इन्कार कर दिया है। वह पथिक ही था, भला मानुष था—सहसा द्वार खुला।

आर्ये ! क्या आपने मुझे पुकारा था ?

हाँ—पथिक ! मैंने तुम्हें पुकारा था—अच्छा किया आगए। आओ आज रात के लिए मैं तुम्हें आश्रय दूँगी। देखो तुम्हारे कपड़े भीग रहे हैं—शरीर सिहर रहा है—ठंड भी तो लग रही है—लो यह कम्बल, भीगे कपड़े उतार दो और इस कम्बल से अपने को गर्म करो तब तक मैं आग ले आती हूँ।

धन्यवाद—पथिक ने साभार उत्तर दिया। तरुणी एक मिट्टी के पात्र में अग्नि ले आई और उसे पथिक के संमुख रखती हुई स्वयं बैठ गई—बोली—

तो पथिक—तुम किस देश के रहने वाले हो ?

मैं जीवन पुर का रहने वाला हूँ। यों ही अलक्ष्य की ओर पैर बढ़ाता इधर निकल आया—झंझा से ऊब उठा था, तब तुम्हारे यहाँ आश्रय खोजने आया !

तुम्हारा नाम क्या है ?

मेरा नाम है—व्यक्ति

व्यक्ति !

हाँ—व्यक्ति—क्यों कौतूहल क्यों ?

तो व्यक्ति ! तुम जीवन पथ पर लक्ष्य की सिद्धि के लिए अलक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे हो। व्यक्ति का जीवन तो समष्टिगत भावों से ओतप्रोत होता है और फिर उसी का अनुगामी इस निर्जन प्रदेश में कैसे ?

व्यक्ति को कुछ अनुभव सा हुआ—कौतूहल भी। तरुणी की बातों की उपेक्षा करता हुआ पूछ बैठा—

तुम यहाँ अकेली कैसे रहती हो तरुणि ? क्या तुम्हारा और कोई नहीं है ?

मेरा कोई है भी और नहीं भी।

मैं तुम्हारे कहने का आशय नहीं समझा—कृपया स्पष्टतया प्रकट करो !

मेरी एक माँ थी—सप्ताह हुआ वह भी मुझे इस जगत् में एकाकी छोड़ गई। एक सप्ताह से मैं उसी की नींद सोती हूँ और उसी की नींद जागती हूँ और उसी की याद में मेरे रात और दिन एक हो अश्रु की अविरल धारा में एकाकार हो जाते हैं। बस ! अब तो जीवन ऊब चुका। जंगल भयानक है—अकेले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा नहीं जाता। इस जगती में मेरा ऐसा कोई भी तो नहीं जो मुझे अपना कह कर पुकारे। तुम्हीं सर्व प्रथम व्यक्ति हो जिसके सामने मैंने जीवन के दुःखद क्षणों को प्रकट किया वरन् तारों में अपने भावों को संजोया करती हूँ। माँ संन्यासिनी थी। बेटी भी क्या संन्यासिनी होकर रहेगी—क्या पथिक तुम···।

हाँ तुम्हारा नाम क्या है ?

समाज

समाज ! तुम्हारा नाम समाज है ! मेरा नाम व्यक्ति····हाँ, व्यक्ति और समाज का सामंजस्य। पथिक की आँखें चमक उठीं। मौन मूक—ऊपर दृष्टि उठाई तो दो तारे आपस में टकराये आभामयी आभा में आभा की दीप्ति द्विगुणित हो गई। क्या व्यक्ति और समाज आधार-आधेय नहीं हैं ? व्यक्ति ही से तो समाज का निर्माण होता है, नहीं नहीं, समाज ही तो व्यक्ति को आश्रय देती है। वह बोलता ही गया। तरुणि ! समाज ही तो व्यक्ति की आश्रय दात्री है और व्यक्ति भी तो समाज का एक अंग है।

हाँ पथिक, ठीक कहते हो ! किन्तु व्यक्ति समाज की परवाह कब करता है। उसे तो अपने जीवन से मतलब है—स्वार्थ से मतलब है—उसे अपनी आवश्यक चिन्ताओं से अवकाश ही नहीं मिलता। फिर व्यक्ति समाज होकर कैसे रह सकेगा ?

क्या तुम मानते हो ?

हाँ बेशक मानता हूँ ! पर व्यक्ति समाज का सम्बल है। व्यक्ति के लिए समाज है और समाज के लिए व्यक्ति। और दोनों जब एकाकार हो जाते हैं तो व्यक्ति का क्षेत्र समाजगत हो जाता है और समाज व्यक्ति को सदा के लिए अपनी परम्परा का साधन बना लेती है।

तो क्या तुम ठीक कहते हो—कि व्यक्ति समाज का अंग है। समाज की गाड़ी क्या व्यक्ति बिना नहीं चल सकती ? जीवन धारा क्या व्यक्ति को समाज में और समाज को व्यक्ति में व्याप्त किये बिना नहीं बह सकती ?

अवश्य !

लेकिन तुम व्यक्ति हो, मैं समाज। तुम भिन्न पथ के पथिक हो, मैं भिन्न पथ की। जीवन गाड़ी चल तो रही है। कैसा योग मिला है ? तरुणी की आँखें पथिक पर कुछ सुनने की उत्कण्ठा से जा लगीं।

हाँ योग तो मिला है। व्यक्ति आज समाज पर आश्रित है। तुमने आज मुझे अपनी कुटिया में आश्रय दिया है न ! देखो न—है न व्यक्ति समाज पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रित। स्वच्छन्द गति से बहने वाली कलकल धारा जब अगाध पयोनिधि में विलीन हो जाती है तब उसकी जीवन धारा गंभीरत्व को प्राप्त होती है।

तरुणी की आँखें ऊपर को उठी थीं—उठी ही रह गईं—कुछ सोच रही थीं—शायद व्यक्ति को आत्मसात् करने के लिए ?

अग्नि धधक धधक कर जल रही थी। उसमें तरुणी का चेहरा तपे स्वर्ण के समान कान्तिमय प्रतीत हो रहा था और व्यक्ति उसका अवलोकन कर रहा था—शायद समाज की भावभंगिमा का अर्थ लगा रहा था।

पथिक निस्तब्धता भंग करते हुए बोला। देखो व्यक्ति समाज का अंग है और समाज व्यक्ति का पूरक। अनेक इकाई जब एकाकार हो समष्टिगत हो जाती हैं तभी तो समाज का निर्माण होता है।

कहने का आशय ! तरुणी ने कहा—

यही कि समाज व्यक्ति को छोड़कर नहीं जा सकता और न व्यक्ति समाज को ही छोड़ सकता है। दोनों दोनों के तब तक रहेंगे जब तक सूर्य में ताप है, चन्द्रमा में शीतलता है। यह प्रकृति का नियम है जिसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। ऐसा हुआ है—होगा और होता है। विधाता का विधान एक बार पल्टा खा सकता है। किन्तु यह विश्व सत्य कदापि परिवर्तित नहीं हो सकता।

तरुणी ने सहमति सूचक सिर हिला दिया। व्यक्ति ने भी उस सहमति को सिहरन–कम्पन और हृदय के अज्ञात आन्दोलन से स्वीकार किया। अग्नि के प्रकाश में उन दोनों की पुतलियाँ जा मिलीं—टकटकी क्षणानन्तर टूटी—तरुणी व्रीड़ानत थी–पुरुष आन्दोलित।

दोनों के कण्ठ रुँध गए-मौन-मूक निस्पन्दन में व्यक्ति ने अग्नि के समक्ष समाज में अपने को मिला दिया और समाज ने व्यक्ति को सदा के लिए अपने में अन्तर्हित कर आत्मसात् किया।

दोनों ने दोनों को देखा—और हृदय की धड़कन में ही दोनों ने कह सुन लिया कि व्यक्ति समाज के लिए है—समाज व्यक्ति के लिए।

फिर परिरम्भण के साथ दोनों दोनों के थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़रत मुहम्मद और इस्लाम–

–श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री

हज़रत मुहम्मद के जन्म के पूर्व अरब देश के निवासी जिस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे थे, उसे सभ्य अथवा संस्कृत नहीं कहा जा सकता। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अरब एक अलग और पिछड़ा हुआ देश था। उष्ण जलवायु, मरुभूमि, तथा नदियों झरनों और नगरों के अभाव के कारण कोई भी देश या विजेता इस पर आक्रमण करने का विचार तक न करता था। अरब के चहुँओर विशाल साम्राज्य थे परन्तु यह नाममात्र ही उनके अधीन था। इसके व्यापारी और नाविक दूरस्थ देशों में जाया करते थे। अरब की जनता जहालत—अज्ञान में डूबी हुई थी। वह पारस्परिक कलह, द्वेष, चोरी, डाका, शराबखोरी, हत्या, कन्याओं को जीवित ही गाड़ देना, जूआ, मेलों के अवसर पर निर्लज्ज व्यवहार आदि बुराइयों की शिकार थी। अरब निवासी सैंकड़ों देवी देवताओं में विश्वास रखते थे और उनकी मूर्त्तियों की पूजा करते थे। मक्का के संगे असवद की पूजा का विशेष प्रचार था। भिन्न भिन्न कबीलों के लोगों में सदा वैर रहता और एक दूसरे के खून की होली चला करती। विवाह, व्यभिचार और बलात्कार के विषय में माता, पुत्री, बहिन आदि का विवेक भी अरब निवासियों में नहीं था। ऐसी बर्बर जाति को संगठन के एक सूत्र में बांधना कोई सरल काम न था। यह हज़रत मुहम्मद के धैर्य, साहस, कष्टसहिष्णुता, दूसरे व्यक्तियों को परखने तथा साथियों के चुनाव की अनुपम योग्यता और अवसर की देवी को सामने की ओर से पकड़ने की विवेकबुद्धि का चमत्कार था कि अरब निवासी सहसा जाग उठे। मरुस्थल और पहाड़ी प्रदेश ऐसे सामर्थ्यशाली मनुष्यों को जन्म देते हैं जो अपने प्राणों की आहुति देकर भी स्वतंत्रता की रक्षा किया करते हैं। अरब निवासियों में बल और साहस की कमी न थी। किन्तु वे इनका उपयोग पारस्परिक संहार के लिए ही कर रहे थे। प्रचलित धार्मिक मान्यताओं के प्रति उन में श्रद्धा का अभाव भी न था। लगातार झगड़े और फ़साद में रत रहने पर भी वर्ष में एक दिन वे वैर-विरोध भूल जाते और तीर्थ-यात्रा के निमित्त मक्का जाते। हज़रत मुहम्मद ने सारी परिस्थिति का अध्ययन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया और अरब के लोगों में नयी रूह फूँककर उन्हें इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया। आज इस्लाम संसार के महान् धर्मों में एक जीवित धर्म है और इसके मानने वालों की संख्या करोड़ों में है जो विश्व में सर्वत्र फैले हुए हैं।

हज़रत मुहम्मद का जन्म ५७० ई० में एक प्रतिष्ठित कबीले में हुआ था। वे बाल्यावस्था से ही कठिनाइयों में पले। पिता का स्वर्गवास तो उनके जन्म से पहले ही हो गया। छ वर्ष की आयु में माता का आश्रय भी न रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति उन्हें भावी संघर्ष में सफल होने के लिए प्रारंभ से ही तैयार करना चाहती थी। कष्टों का सामना करने से उनमें उत्कृष्ट धैर्य और बल का विकास हुआ। अभाव और कठिनाई के जीवन ने उनके हृदय में सहानुभूति, सहनशीलता तथा देशवासियों की सेवा की भावना का विकास किया। आठ वर्ष की आयु से ही वे अकेले बाहर भ्रमण किया करते। मक्का शहर के पास एक गुफा थी। कहते हैं हज़रत मुहम्मद अपना अधिक समय उसी में व्यतीत करते और चिन्तन में व्यस्त रहते। सचाई और प्रामाणिकता के लिए वे बाल्यकाल से ही प्रसिद्ध थे। लोग उन्हें 'सादिक' और 'अमीन' कहा करते थे।

उनकी युवावस्था की घटनाओं के विषय में लेखकों का एक मत नहीं है। कुछ का कहना है कि वे बचपन से ही काफिलों के साथ जाया करते थे। इससे उनकी यथेष्ट ज्ञान-वृद्धि भी हुई। अन्य लेखक मानते हैं कि खदीजा ने उन्हें यह काम सौंपा था। यद्यपि उन्हें अक्षर-बोध था किन्तु वह पर्याप्त न था। 'इल्हाम' के समय फरिश्ता ने सर्व प्रथम उन्हें पढ़ने का आदेश दिया था। खदीजा एक सम्पन्न विधवा थी। हज़रत मुहम्मद की सत्य-परायणता के विषय में उसने लोगों से सुना और उन्हें अपने यहाँ काम पर लगा लिया। वह उनकी कार्यकुशलता, अनुभवशीलता तथा प्रतिभा से इतनी प्रभावित हुई कि उसने उनसे विवाह कर लिया। विवाह के समय खदीजा की आयु ४० वर्ष की थी और हज़रत मुहम्मद की केवल २५ वर्ष। इस संबंध का सबसे मधुर परिणाम यह हुआ कि अब हज़रत मुहम्मद कई बातों में निश्चिन्त हो गए। खदीजा के जीवन काल में उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। उनका दाम्पत्य-जीवन सुखी और प्रेममय था। कहते हैं कि एक बार उनकी पत्नी आइशा ने उन से पूछा, "ऐ रसूले अल्लाह! क्या खदीजा बूढ़ी न थी और क्या अल्लाह ने आपको उस की अपेक्षा कोई अच्छी स्त्री नहीं दी?" उत्तर मिला, 'हरगिज़ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी

में निर्धन था, उसने मुझ से विवाह कर मुझे सम्पन्न बनाया, सब के झूठा कहने पर भी मुझे सच्चा जाना, सब के विरोधी होने पर भी उसने हमेशा मेरा साथ दिया।"

हज़रत मुहम्मद अपने देश की दुरवस्था देख कर सदैव दुःखी रहते थे। उन की यह उत्कट भावना थी कि अपने देशवासियों को अज्ञानान्धकार से निकाला जाए। जवानी में भ्रमण करने से उन्हें कई प्रकार के अनुभव हुए। यहूदी व ईसाई धर्म के अनुयायी भी अरब में बसते थे। यह स्वाभाविक है कि हज़रत मुहम्मद ने उन धर्मों का भी परिचय प्राप्त किया हो। वे ऐसे मार्ग की खोज में थे जो उन्हें अपनी जाति की सेवा का अवसर प्रदान करता। निरन्तर विचारों में मग्न रहने के फलस्वरूप निदान एक दिन ऐसा आया कि उन का आत्मा दिव्य प्रकाश से आलोकित हो गया। खुदा की ओर से फ़रिश्ता प्रगट हुआ और उसने हज़रत मुहम्मद को अल्लाह का सन्देश सुनाया। दूसरे शब्दों में उन्हें 'इल्हामे इलाही' हुआ। उस समय उनकी अवस्था ४० वर्ष की थी।

इल्हाम के बाद तीन वर्ष तक वे अपने परिजनों में ही प्रचार करते रहे। फ़रिश्ते के प्रगट होने की घटना उन्होंने सर्वप्रथम अपनी धर्मपत्नी को ही सुनाई। उसने कहा, "आप खुदा के पैगम्बर हैं, मैं आप पर ईमान लाती हूं।" इस प्रकार वह सबसे पहले इस्लाम धर्म में दीक्षित हुई। उस के पश्चात् उन के और संबंधी तथा मित्र भी धीरे धीरे उन के अनुयायी बनने लगे। इन तीन वर्षों में उन्होंने अपनी जाति के पीड़ित तथा पददलित लोगों को भी अपना दिव्य सन्देश सुनाया। प्रचार का कार्य अब तक शान्तिपूर्वक चलता रहा। एक दिन उन्होंने सब संबंधियों तथा कबीले के लोगों की सभा की और सब को इस्लाम स्वीकार करने का निमंत्रण दिया। प्रचलित रूढ़ि और मान्यता का त्याग आसान नहीं होता। बहुत से लोग हज़रत मुहम्मद से रुष्ट हो गए। जैसे जैसे वे बुतपरस्ती का विरोध करते, उन के शत्रुओं की संख्या बढ़ती जाती। उन्हें कई प्रकार के कष्ट दिए गए। उन पर पत्थर फेंके जाने लगे। उन के साथियों को भी असह्य वेदनाएँ पहुँचाई गईं। उन्हें गरम गरम रेत पर नंगे लिटा दिया जाता और उन की छाती पर भारी भरकम पत्थर रख दिए जाते। मुहम्मद साहिब का करुण हृदय भर आता। उनके परामर्श से कुछ लोग एबीसीनिया चले गए जहां उन्हें अस्थायी शरण मिली। हज़रत मुहम्मद के वध के लिए एक सौ ऊंटों के इनाम की घोषणा की गई। उमर ने उन के वध का बीड़ा उठाया, परन्तु उनका उपदेश सुन कर चकित हुआ और मुसलमान हो गया। इसी समय उन की पत्नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा चचा का स्वर्गवास हो गया। मक्का में उन के विरोध की आग और भी भड़क उठी। निदान उन्हें मक्का छोड़ कर मदीना जाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

हज़रत मुहम्मद ६२२ ई० में मक्का से मदीना गए। यह एक ऐसी घटना है जिसे इतिहास की दिशा को परिवर्तन कर देने वाली माना जाता है। इसका पारिभाषिक नाम 'हिजरत' है। यथार्थ में इस्लाम धर्म का आविर्भाव हिजरत के दिन ही हुआ। इसकी स्मृति में मुसलमानों में हिजरी संवत् प्रचलित है। मदीना शहर का नाम पहले यथरीब था। हज़रत मुहम्मद के आगमन पर उसे लोग 'मदीनत उन् नबी' या नबी का शहर कहने लगे। आज कल इसे मदीना कहते हैं। एक इतिहासकार का कथन है कि हिजरत से पहले हज़रत मुहम्मद एक उपदेशक और शिक्षक थे। "उसके बाद वे एक राज्य के शासक बन गए जो प्रारंभ में बहुत छोटा था किन्तु दस वर्ष की अवधि में वह अरब के साम्राज्य के रूप में परिवर्तित हो गया।"

मदीना पहुँचने पर उन्होंने अपने अनुयायिओं का सैनिक संगठन किया। वे मानने लगे कि इस्लाम के प्रचार के लिए सैनिक बल के बिना काम न चलेगा। विरोधियों द्वारा दी गई यातनाओं ने उन्हें संभवतः कठोर बना दिया। श्रीनिवासाचारी और एम० एस० रामास्वामी आयंगर A History of India Part II में लिखते हैं, "मदीना आने के बाद हज़रत मुहम्मद पहले की तरह शान्त और नम्र उपदेष्टा नहीं रहे। वे एक ज़बरदस्त योद्धा बन गए जो तलवार के बल पर अपने धर्म का प्रचार करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे।" Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol: VIII पृष्ठ ८७३ पर उल्लेख है, "इस्लाम के प्रचार में सब से महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह आन्दोलन उस समय प्रसिद्धि में आया जब कि इसके प्रवर्तक ने तलवार उठाई और सफलतापूर्वक उसका प्रयोग किया।" परिस्थितियों की मजबूरी समझें या कुछ और कारण, परिणाम यह हुआ कि 'समस्त पृथ्वी पर एक ईश्वर का शासन' क़ाफ़िलों पर आक्रमण से शुरू हुआ। मक्का से जाने वाले व्यापारियों को हज़रत मुहम्मद के अनुयायी लूटते। विरोधियों का दमन किया जाता। कई अरबी कबीलों से विभिन्न युक्तियों द्वारा संधि की गई। कुछ लोग मानते हैं कि मक्का वाले मदीना पर आक्रमण करना चाहते थे। अतः मुसलमानों ने भी साहस किया। मक्के पर धावा बोल दिया गया। वहाँ के निवासी पराजित हुए। कुछ का वध किया गया, बाकी सब छोड़ दिए गए। यह घटना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिजरत के आठवें वर्ष में हुई। नवें वर्ष समस्त अरब के कबीलों के प्रतिनिधि मदीना आए और क़ुरान सुन कर मुसलमान बन गए।

हज़रत मुहम्मद का व्यक्तिगत जीवन कई बातों में हमारे सामने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करता है। सादगी और स्वावलम्बन उनके जीवन-मन्त्र थे। उनका भोजन भी साधारण होता था। वे स्वयं झाड़ू देते, आग जलाते, कपड़े सीते, अपने जूते मरम्मत करते और बकरियों का दूध दोहते। मदीना में जब मस्जिद का निर्माण शुरू हुआ तो वे भी साधारण मज़दूर की भांति ईंटें ढोते और तामीर के काम में भी मदद करते। कहा जाता है कि निर्धनों के साथ सहानुभूति दिखाने के लिए वे कभी पूरा भोजन भी नहीं करते थे। एक लेखक के कथनानुसार वे पर्दानशीन कुमारी कन्या से भी अधिक लज्जाशील थे। सैनिक संगठन के नेता होने पर भी क़ैदियों से उनका शिष्ट व्यवहार अद्वितीय था। वे स्वयं पैदल चलते और क़ैदियों को सवारी दे देते; खुद खजूर खा कर भी गुज़र कर लेते मगर उन्हें गेहूँ की रोटी दी जाती। दासों और नौकरों के प्रति भी उनका व्यवहार सहृदयता का था। वे छोटे से छोटे नौकर को भी नहीं डाँटते थे। उनके एक नौकर का कथन है कि "मैं उनके पास दस वर्ष रहा, उन्होंने मुझे कभी उफ़ तक नहीं कहा; यह भी कभी नहीं कहा तुम ने ऐसा क्यों किया या क्यों नहीं किया?" वे रोगियों की सेवा कर बहुत प्रसन्न होते थे। भोजन के लिए दासों का निमन्त्रण भी स्वीकार कर लेते थे। जैद नामक एक दास को उन्होंने मुक्त किया और अपनी फूफी की लड़की से उस की शादी कर दी। काम व श्रम से वे कभी नहीं घबराते थे।

हज़रत मुहम्मद के चरित्र के संबंध में कुछ बातें तटस्थ पाठकों को अवश्य खटकती हैं। अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने कई विवाह किए और उपपत्नियाँ भी रखीं। उस समय उनकी आयु ५० वर्ष से ऊपर थी। प्रसिद्ध इतिहासकार H. G. Wells के शब्दों में खदीजा की मृत्यु तक वे एक ही पत्नी के वफ़ादार पति प्रतीत होते हैं। लेकिन उसके बाद अन्य बहुत से व्यक्तियों की भाँति बुढ़ापे में वे स्त्रियों में बहुत रुचि रखने लगे। वे कामी थे और अस्थिर चित्त वाले नेता थे।" हज़रत मुहम्मद की जीवनी लिखने वाले कुछ विद्वानों का मत है कि इन वैवाहिक संबंधों का उद्देश्य अधिकतर राजनैतिक था। हज़रत मुहम्मद की अभिलाषा थी कि अधिक से अधिक कबीलों के साथ दृढ़तर संबंध स्थापित किए जाएं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H. G. Wells का यह भी कथन है कि हज़रत मुहम्मद के जीवन के अंतिम ग्यारह वर्षों में कोई ऐसी विशेष बात नहीं है जो उन्हें दूसरे ऐसे व्यक्तियों से पृथक् करती हो जिन्होंने जनता को एक सूत्र में बाँध कर एक तंत्र राज्य प्रणाली की स्थापना की। मुख्य भेद यही कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने ध्येय की सिद्धि में अपने द्वारा ही स्थापित किए गए धर्म का उपयोग किया। उनके राजत्व के आदर्श में आध्यात्मिकता का अभाव था और अवसर तथा परिस्थिति के अनुसार वे अपनी नीति को बदलते रहते थे।

हज़रत मुहम्मद की जो शिक्षाएँ कुरान में संगृहीत हैं, उनसे ऐसा मालूम होता है कि वे बहुत सी बातों पर दृढ़ न थे। राजनैतिक दबाव के कारण उन्हें कई बातों में समझौता करना पड़ता था, अपने सिद्धान्तों को किसी रूप में छोड़ना पड़ता था। यही कारण है कि कुरान में परस्पर विरोधी कथन भी देखने में आते हैं। एक ओर कहा गया है कि 'धर्म के विषय में कोई जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए,' 'सच्चा मुसलमान वह है जिसके हाथ और वाणी से मानव समाज सुरक्षित है,' 'ऐसी कोई जाति नहीं जिसमें पैगम्बर नहीं भेजे गए,' 'मुसलमानों के लिए अनिवार्य है कि वे दूसरों के धार्मिक स्थानों की उसी प्रकार रक्षा करें जैसे वे अपने स्थानों की करते हैं,' 'ऐ अल्लाह, मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह एक और सब आदमी भाई भाई हैं,' 'सब इन्सान एक ही कौम हैं।' दूसरी ओर कुरान की नवीं सुरा में लिखा है, "जहाँ कहीं मूर्ति-पूजक मिलें उन्हें मार डालो, कैद कर लो, उनके चहुँओर घेरा डाल दो तथा प्रत्येक सुरक्षित स्थान में उनकी प्रतीक्षा करो।" "मूर्त्तिपूजक नापाक हैं अतः उन्हें पवित्र मन्दिर के निकट मत आने दो"। हज़रत मुहम्मद ने मूर्तिपूजा का उग्र विरोध किया, फिर भी मक्का के संगे असवद की प्रतिष्ठा कायम रही। आज भी हज करने वाले उसका बोसा (चुम्बन) लेते हैं।

समाज सुधार के मामले में हज़रत मुहम्मद बालहत्या को दूर कर पाए। उन्हें बहुविवाह, उपपत्नियों तथा दासता की प्रथा को मान्यता देनी पड़ी। विजित राज्य पर उनका अधिकार समझा जाता था। जब अरब के बाहर के देशों में धर्म प्रचार का समय आया तो बहुत से राजाओं के पास हज़रत मुहम्मद के पत्र की नकलें देकर दूत भेजे गए। उन नक़लों में आक्रमण की धमकी देकर राजाओं को इस्लाम स्वीकार करने का आदेश दिया गया था। सन्देशवाहकों को विदेशी राजाओं को समझा बुझाकर क़ायल करने का अवसर संभवतः नहीं दिया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हजरत मुहम्मद की शिक्षाओं का सार यह है कि खुदा एक है, सब उसकी सन्तान हैं; अतः सब भाई भाई हैं। अनेक देवी देवताओं को मानने की आवश्यकता नहीं। इससे समाज में वैमनस्य और परस्पर विरोध बढ़ता है। खैरात करना हरेक का धर्म है और प्रत्येक परोपकार का काम खैरात है। दिन में पाँच बार नमाज पढ़ना, रमज़ान के महीने में रोजे रखना तथा हज करना हर एक मुसलमान के कर्त्तव्य हैं। सूद खोरी, शराब का पीना आदि हराम हैं। इस में सन्देह नहीं कि हज़रत मुहम्मद तथा उनके मानने वालों ने अपने धर्म का प्रचार प्रायः तलवार के हिंसक बल से ही किया है। भारत में तो इस्लाम का और भी विकृत रूप आया। मध्य एशिया की अर्ध सभ्य जातियों ने अभी इस्लाम स्वीकार ही किया था कि वे भारत पर टूट पड़ीं। वस्तुतः वे इस्लाम से काफ़ी दूर थीं। महमूद गज़नवी के आक्रमणों की निर्दयता के साथ इस्लाम का संबंध जुड़ गया और हिन्दू मुसलिम संघर्ष बढ़ने लगा।

हज़रत मुहम्मद के जीवन में जो विषमताएँ प्रतीत होती हैं, उनका यथार्थ समाधान हम अरब की तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए ही कर सकते हैं। अरब देश और वहाँ के लोगों की उस समय की हालत तथा पतितावस्था को देखते हुए यह स्वीकार करना पड़ता है कि हजरत मुहम्मद ने उन्हें एक झण्डे के नीचे ले आने का अद्भुत कार्य किया। इससे अधिक शायद उनके जीवन में संभव न था। धीरे धीरे खलीफ़ा निरंकुश बनकर धन, साम्राज्य तथा भोग विलास की दलदल में फँस गए। यदि वे हजरत मुहम्मद की ऐसी शिक्षाओं पर अमल करते जो उनके नैतिक स्तर को ऊँचा उठाकर इस्लाम के दायरे से बाहर भी उन्हें मानवता का रूप दिखातीं तो आज इस्लाम का इतिहास और ही होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य पालन के सरल उपाय—

—महात्मा गांधी

१—लड़के लड़कियों का सादे और प्राकृतिक ढंग से, वे जीवन भर निर्मल रहेंगे—इस विश्वास से पालन-पोषण करना।

२—सब को मिर्च-मसाले, उत्तेजक पदार्थ, चरबी-चिकनाई वाली भारी खुराक, दुष्पाच्य मिष्टान्न, मिठाइयाँ और तली हुई चीजों का खाना छोड़ देना चाहिए।

३—पति-पत्नी का अलग अलग कमरे में सोना और एकान्त से बचाना।

४—शरीर और मन दोनों को सदा सत्कार्यों में लगाए रखना।

५—रात को जल्दी सो कर सुबह जल्दी उठने के नियम का कड़ाई से पालन करना।

६—किसी भी प्रकार का बीभत्स और हलका साहित्य न पढ़ना।

७—थियेटर, सिनेमा आदि मनोविकारों को जगाने वाले तमाशे न देखना।

८—स्वप्नदोष हो तो घबरा न जाना चाहिए। तन्दुरुस्त आदमी के लिए इसका अच्छे से अच्छा इलाज है उसी समय ठंडे पानी से नहा लेना। कभी कभी स्त्री-संग कर लेना स्वप्न दोष का इलाज है, यह ख़याल ग़लत है।

९—सब से महत्त्व की बात तो यह है कि किसी भी व्यक्ति के लिए—पति-पत्नी तक में—संयम कठिन है, या शरीर और मन के लिए हानिकारक है, अथवा विषयभोग आरोग्य की दृष्टि से आवश्यक है, ऐसी रायों पर तनिक भी विश्वास नहीं रखना चाहिए। उलटा सबको चाहिए कि संयम को जीवन की स्वाभाविक और साधारण स्थिति की भांति मान कर चलें।

१०—नित्य उठ कर पवित्रता और निर्मलता के लिए एकाग्र चित्त से प्रभु की प्रार्थना करना, राम नाम या ऐसे किसी मंत्र का सहारा लेना विषय वासना को जीतने का सुनहरा नियम है।

—गांधी विचार-दोहन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति का अर्थ–

–पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री

इधर जिस अर्थ में संस्कृति शब्द का प्रयोग होने लगा है वह बहुत पुराना नहीं है। संस्कृति से सभ्यता में क्या अन्तर है इसका ठीक तरह से विवेक अभी तक नहीं हो सका है और ऐसे समय में जब कि हम अपने देश की आचार-परम्परा और विचार परम्परा का सम्यक् रूप से ज्ञान कराने के लिए भारतीय सभ्यता या भारतीय संस्कृति जैसे समानार्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं तब इनमें अन्तर करना और भी कठिन हो जाता है।

मुख्य प्रश्न यह है कि जिस संस्कृति शब्द का हम इतना अधिक उद्घोष करते हैं वह क्या वस्तु है ? अभी तक इस पर जो कुछ भी लिखा गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति शब्द से वे सब सत्कार्य लिये जाते हैं जिनसे वहाँ की सभ्यता फूलती फलती है। संस्कृति के मुख्य पहलू दो हैं—आचार और विचार, इसलिए जिस देश का दर्शन और चारित्र जितना अधिक उन्नत होता है वहाँ की संस्कृति उतनी ही अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है। विश्व का प्रत्येक प्राणी सुखी कैसे हो सकता है और विश्व में सब प्रकार की बुराइयों को दूर कर शान्ति का साम्राज्य कैसे स्थापित किया जा सकता है इस उदात्त भावना से प्रेरित हो कर जिस आचार परम्परा और विचार परम्परा की नींव डाली जाती है उसे ही हम संस्कृति शब्द से पुकारते हैं। साधारणतः धर्म का भी यही काम होता है, पर धर्म से संस्कृति में मौलिक अन्तर है। जब कि धर्म का सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से होता है, ऐसी हालत में संस्कृति व्यक्ति और समाज दोनों के आचार और विचार पर समान दृष्टि रखती है। संस्कृति आत्मा है और सभ्यता उसका बाह्यरूप है।

सामान्यत: संस्कृति एक है। मुख्य विवाद आचार और विचार की व्याख्या में है। आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करके भी साधारणत: हमें विश्व में दो प्रकार की विचार धाराएँ अनुभव में आती हैं। इससे आचार भेद हो कर हम संस्कृति को दो भागों में विभाजित होते हुए देखते हैं। भारतवर्ष में इन दोनों प्रकार की संस्कृतियों का पर्याप्त विकास हुआ है। यद्यपि वर्तमान समय में इनमें भेदक रेखा खींचना कठिन है, क्यों कि इन दोनों ने एक दूसरे के तत्त्व को बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अंश में स्वीकार कर लिया है, पर अपने प्रारम्भ काल में इन में पर्याप्त संघर्ष रहा है। साधारणतः इन दोनों संस्कृतियों को हम श्रमण संस्कृति और वैदिक संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। श्रमण संस्कृति का मुख्य आधार श्रम है जब कि वैदिक सस्कृति की आत्मा प्रभुसत्ता है। श्रम स्वावलम्बन का प्रतीक है और प्रभुसत्ता परावलम्बनका, इसलिए इन्हें हम क्रमशः स्वावलम्बन और परावलम्बन की संस्कृति कहना ठीक समझते हैं।

जैसा कि जनता की साधारण जीवन प्रणाली के अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उसने चार्वाक दर्शन की आचार परम्परा और विचार परम्परा को इसलिए स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि उसके द्वारा 'स्व' की प्रतिष्ठा की सर्वथा अवहेलना की गई थी। चार्वाक दर्शन का मुख्य काम भौतिकवाद की प्रतिष्ठा करना रहा है। कुछ काल से पश्चिमीय देशों में धर्मका विकास हुआ है अवश्य पर उनसे हमारा मुख्य झगड़ा यह है कि वे जिसके लिए शान्ति और सुव्यवस्था की बात करते हैं उसकी स्वतन्त्र सत्ता पर थोड़ा भी ध्यान नहीं देते। इधर कुछ विचारक ऐसे अवश्य हुए हैं जिनका झुकाव आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करने की ओर दिखाई देता है पर वहाँ के साधारण जीवन में इस तत्त्व की प्रतिष्ठा होने में अभी देर है इसलिए यह कह सकना तो कठिन है कि वहाँ की संस्कृति क्या है। किन्तु जब हम सांस्कृतिक दृष्टि से वैदिक संस्कृति का अध्ययन करते हैं तब हमें निराश ही होना पड़ता है, क्योंकि वह आत्मा की सत्ता को मान कर भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर कठोर प्रहार करती है। इसकी शिक्षा है—

> अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
> ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥

अर्थात् यह प्राणी अज्ञ होने से अपने सुख दुःख का स्वामी नहीं है। इसका स्वर्ग या नरक जाना ईश्वर की इच्छा पर अवलम्बित है।

इसलिए प्रश्न होता है कि जिससे परावलम्बन की शिक्षा मिलती है उसे क्या संस्कृति शब्द से पुकारना ठीक होगा? वास्तव में देखा जाय तो संस्कृति एक है और वह है स्वालम्बन की। जिससे व्यक्तिका व्यक्तित्व प्रतिष्ठित होकर वह अपनी चिरसंचित स्वतन्त्रता की रक्षा करने में समर्थ होता है, संस्कृति वह है। यह जो भी हो उसी का हम आदर करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत किस के ?

–इन्द्र एम० ए०

ब्रह्मदत्त राजा के समय किसी गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। उसे वेदर्भ नाम का एक मन्त्र सिद्ध था। एक खास नक्षत्र का उदय होने पर उसे पढ़ कर आकाश की ओर देखने से सात महामूल्य रत्न बरस पड़ते थे। ब्राह्मण का एक शिष्य था जो बड़ा बुद्धिमान् था। वह अपने गुरु के पास ही रहकर विद्याध्ययन करता था।

एक बार ब्राह्मण अपने शिष्य के साथ यात्रा करने निकला। रास्ते में एक घना जंगल आया। उसमें लुटेरों के बड़े बड़े गिरोह रहते थे। पांच सौ डाकुओं के एक दल ने गुरु और शिष्य को पकड़ लिया। उनका यह ढंग था कि दो आदमियों में से एक को धरोहर के रूप में रख लेते और दूसरे को रकम लाने के लिए भेज देते। यदि बाप और बेटा मिल जाते तो बाप को धरोहर के रूप में रख कर बेटे को भेज देते, यदि दो भाई होते तो बड़े को रख लेते। उन्होंने गुरु को अपने पास रख लिया और शिष्य को रकम लाने के लिए भेज दिया।

शिष्य ने जाते समय गुरु के कान में कहा—"मैं जाता हूँ। आज ही उन नक्षत्रों का योग है। लुटेरे तुम्हें तंग करेंगे, किन्तु मार के डर से रत्न मत बरसाने लगना। इस से तुम्हारा नाश हो जाएगा और लुटेरों का भी। मैं कहीं न कहीं से रकम ले आऊँगा। आप मार के डर से मन्त्र मत पढ़िएगा।'

शिष्य गया। सन्ध्या हो गई। चोरों ने गुरु को बाँध कर एक कोने में डाल दिया। थोड़ी देर में चन्द्रोदय हुआ। उसे और आसपास के तारों को देखते हुए ब्राह्मण के मन में अनायास ही आया—"मेरे पास ऐसा प्रभावशाली मन्त्र है, नक्षत्रों का योग है, फिर भी इस प्रकार कष्ट क्यों भोगूं ? तपस्या और मन्त्र कब काम आएँगे ?"

उसने पहरा देने वाले डाकुओं से कहा—"भाई ! मुझे क्यों बाँध रखा है ?"

'धन के लिए' डाकुओं ने उत्तर दिया।

अगर धन ही चाहिए तो मुझे खोल दो। न्हा धोकर कपड़े पहनने दो। एक फूलों की माला ला दो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोरों को यह डर तो था ही नहीं कि ब्राह्मण कहीं भाग जाएगा। ... के कारण उसके कहे अनुसार करने लगे।

ब्राह्मण ने नक्षत्रों का ठीक योग होने पर मन्त्र का जाप किया और ... की ओर देखा। उसी समय तेज से चमकते हुए सात रत्न पृथ्वी पर गिरे। ... ने उन्हें उठा कर कपड़े में बाँध लिया और भागना शुरू किया। ब्राह्मण उनके पीछे पीछे चल पड़ा।

उसी जंगल में लुटेरों की एक और टुकड़ी रहती थी। वह पहले से ... अधिक बलवान् थी। पहले लुटेरों को भागते देखकर उसे बहम हो गया ... इनके पास लूट का माल है। उसने उन्हें ललकार कर पूछाः—"अरे ठहरो, ... माल ले जा रहे हो?"

उन्होंने रत्नों वाले चोरों को घेर लिया। घिरे हुए चोरों ने बला टा... के लिए कहा—इस ब्राह्मण के पास बहुत बड़ी विद्या है। इसने हमें रत्न दि... इसे पकड़ लो तुम्हें भी रत्न मिल जाएंगे।

ब्राह्मण फिर पकड़ लिया गया। दूसरी टुकड़ी ने भी उसे रत्न देने के लि... कहा। ब्राह्मण गिड़गिड़ाने लगा—"मैं मानता हूँ, मेरे पास रत्न प्राप्त करने ... विद्या है। किन्तु वे तो आकाश में अमुक नक्षत्रों का योग होने पर ही बरस... हैं। वह योग अभी अभी गया है। अब एक साल बाद इसी समय आएगा। ... समय में मन्त्र पढ़कर तुम्हारे लिए भी रत्न प्राप्त कर लूँगा।"

चोरों ने कहा—"इस टोली को तो उसी समय दे दिए। जब हमारी बा... आई तो टालमटोल कर रहा है। जल्दी से सीधी तरह दे दो नहीं तो समझ ... मौत आ गई।"

ब्राह्मण बोला—"मैं ठीक कहता हूँ। अब वह योग अगले साल आएगा। ... मेरे हाथ की बात नहीं हैं।"

चोरों का सरदार रत्न प्राप्त करने के लिए अधीर हो रहा था। एक ओर ब्राह्मण ने इन्कार कर दिया, दूसरी ओर पहली टोली हाथ से निकल रही थी। उसने क्रोध में आकर एक प्रहार किया और ब्राह्मण वहीं ढेर हो गया।

भागती हुई टोली को पकड़ लिया गया। दूसरी टुकड़ी के बलवान् योद्धाओं ने उसे मार गिराया। उसके सभी चोर समाप्त कर दिए गए। रत्न जमीन पर गिर पड़े। किन्तु उन्हें प्राप्त करने के लिए दूसरी टुकड़ी के डाकुओं में आपस में झगड़ा हो गया। एक दल सरदार के विरुद्ध खड़ा हो गया। दोनों में जमकर भयंकर युद्ध हुआ। प्रायः सभी योद्धा मारे गए। केवल दो बाकी बच गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५०]

उन दोनों ने निश्चय किया कि हमें आपस में लड़ना नहीं चाहिए। किसी बड़े नगर में जाकर इन रत्नों को बेच डालें और उससे जो धन मिले उसे आधा आधा बाँट लेवें।

दोनों नगर की ओर चल पड़ें। रास्ते में एक गाँव के पास विश्राम लेने के लिए बैठे। भूख लगी हुई थी। एक आदमी कुछ लेने के लिए गाँव में गया। दूसरा रत्नों की रखवाली के लिए बाहर बैठा रहा। हाथ में नंगी तलवार थी।

उसके मनमें आया—'रत्नों से प्राप्त धन का बँटवारा करते समय फिर तकरार होगी। पता नहीं मुझे कितना मिलेगा। अच्छा हो, यदि कोई हिस्सा बँटाने वाला न रहे।' उसने अचानक हमला करके उसे मार डालने का निश्चय कर लिया।

गाँव में जाने वाले के मन में भी इसी प्रकार के विचार उठ रहे थे। वह अपने हिस्सेदार को समाप्त करने का उपाय सोच रहा था। थोड़ा सा जहर खरीदा और भोजन में मिला दिया।

वह भोजन लेकर आया। पहला अपनी योजना के अनुसार तैयार बैठा था। समीप आते ही उसने तलवार के एक झटके से उसका सिर उतार दिया। अपने को सारे रत्नों का स्वामी समझ कर हर्षित हो उठा और जल्दी जल्दी उस के लाए हुए भोजन को खाने लगा। खाते ही जहर ने असर किया। वह भी वहीं ढेर हो गया।

रत्न वहीं पड़े रह गए।

'जातक' से

चंचल लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए लालायित रहना और उसमें विश्वास रखना अहंकार है। सन्मान पाने की अभिलाषा रखना और ऊँचे पदों पर आरूढ़ होना भी अहंकार है। विषयों का अनुकरण करना और परिणाम में कटु फल देनें वाले पदार्थों को लेने के लिए श्रम करना अहंकार है। अधिक जीनें की इच्छा रखना और सात्विक जीवन बिताने की उपेक्षा करना अहंकार है। केवल इस जीवन का ही ध्यान रखना और भविष्य की ओर से आँखें मूंदना अहंकार है। नश्वर चीजों से प्रेम करना और शाश्वत सुख के स्थान की ओर तेजी से कदम न बढ़ाना भी अहंकार है।

—इमिटेशन आफ़ क्राइस्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सत्कार

कल्याण–हिन्दू संस्कृति अंक

प्रकाशक–गीता प्रेस, गोरखपुर। मूल्य ६॥)

'कल्याण' के विशेषांक अपने ढंग के निराले होते हैं। उसका अंतिम विशे[षांक] 'हिन्दू संस्कृति अंक' है। ९०० पृष्ठों के इस विशेषांक का पूरा स्वाध्याय कि[या] जाय तो कई मास लग जायँ, अतएव यह संभव नहीं कि उसको अक्षरशः पढ़[कर] शीघ्र समालोचना की जा सके। इससे यही उचित समझा गया कि उसके कु[छ] महत्त्व-पूर्ण लेखों को पढ़कर अपना अभिप्राय बना लिया जाय। किन्तु य[ह] कार्य भी सरल नहीं। इस विशेषांक में विद्वानों ने शास्त्रों की दृष्टि से, सन्[तों] ने अपने अनुभवों के आधार पर, शंकराचार्यों ने अपनी परंपरा के आधा[र] पर, सुधारवादिओं ने राष्ट्रीय और सामाजिक दृष्टि से और कई प्रचारकों [ने] प्रचार की दृष्टि से हिन्दू संस्कृति की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। कि[न्तु] इन सभी का समन्वय करके हिन्दू संस्कृति का सर्वसंमत रूप क्या हो सकता [है] यह कार्य संपादक महोदय करते तो बड़ा उपकार होता। कदाचित् यह का[र्य] असंभव सा भी है। हिन्दू संस्कृति एक और अखंड संस्कृतिधारा होने पर [भी] किसी एक संप्रदाय, धर्म या दर्शन में वह परिपूर्ण नहीं किन्तु उन सभी [का] कालिक और दैशिक समन्वय ही हिन्दू संस्कृति है। जैसे नाना प्रकार की नदि[यों] का जल समुद्र में जा मिलता है और अपने नामरूप को छोड़ देता है उ[सी] प्रकार भारत में आजतक जो संस्कार व परंपराएँ चलीं उनका सुमेल हिन्[दू] संस्कृति में हो गया है। नाना धर्म, नाना पंथ, नाना दर्शन, नाना विचार ये स[ब] जहाँ मिलकर एक हो जाते हैं, अपना वैशिष्ट्य छोड़कर सभी के साथ एक[-] रूपता का अनुभव करते हैं उसी का नाम हिन्दू संस्कृति है—भारती[य] संस्कृति है।

हिन्दू संस्कृति का अर्थ सामान्यरूप से वैदिक संस्कृति इतना ही सम[झा] जाता है किन्तु हिन्दू संस्कृति की यह अतीव संकुचित व्याख्या है। यदि हिन्[दू] संस्कृति का इतना ही अर्थ हो तो हिन्दू दर्शनों में से चार्वाक दर्शन को निका[ल] देना होगा, और वेदविरोधी भगवान् बुद्ध को जो अवतार माना गया है व[ह] भी असंगत हो जायगा। इसी प्रकार भारत में ही उत्पन्न परंतु वेद के विरोधी जैनधर्म को भी हिन्दू-संस्कृति में स्थान नहीं मिल सकता। तब भागवत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो ऋषभदेव की कथा है वह असंगत हो जायगी। भारतीय मुसलमान धर्म भी कई बातों में भारतीय धर्म और संस्कृति से प्रभावित है और वह संपूर्णरूप से अरब के मुसलमानों का अन्धानुकरण नहीं करता। इसी प्रकार भारतीय ईसाई को भी हम पूरा ईसाई नहीं कह सकते वह तो हिन्दू ईसाई है। इसी प्रकार मुसलमान के लिए भी हम कह सकते हैं वह हिन्दू मुसलमान है। इस तरह सभी संस्कारों का समन्वय करने वाली यह संस्कृति हिन्दू संस्कृति है। इसीलिए उसका कोई एक रूप बताना कठिन है।

वस्तुतः हिन्दू शब्द का अर्थ क्या लिया जाय इसी का पहले निर्णय हो जाय तो हिन्दू संस्कृति की भी व्याप्ति बनाई जा सकती है। बनारस में आचार्य श्री नरेन्द्रदेव जी ने इसी वर्ष महावीर जयन्ती के अवसर पर व्याख्यान देते हुए कहा था कि हिन्दू शब्द का अर्थ 'भारतीय' इतना ही करना चाहिए। ऐसा होने पर जैन, बौद्ध, सिक्ख तो क्या, ईसाई, और मुसलमान भी हिन्दू कहे जाएंगे। हिन्दू शब्द का तात्पर्य किसी खास धर्म से नहीं है। वह तो भौगोलिक शब्द है। और उसका प्रयोग भारत का निवासी इसी अर्थ में करना चाहिए। तब हिन्दू संस्कृति का अर्थ होगा—भारतीय संस्कृति।

प्राचीन काल में भारत में बहुत सी जातियाँ आईं और हिन्दू बन गईं। इसी प्रकार एक मुसलमान धर्मसे मुसलमान रह कर भी सर्वथा हिन्दू बन जाता और अपने पृथक् धर्म और जात्यभिमान को पुष्ट न करता और आज पाकिस्तान को पृथक् होने का अवसर भी न मिलता। किन्तु मध्यकाल में ब्राह्मणों ने वर्णधर्म और जातिवाद को पुष्ट करके हिन्दू संस्कृति की आत्मा को छिन्न भिन्न किया और उसकी हजम करने की शक्ति को कुंठित कर दिया। दूसरी ओर मुसलमान धर्म भी कट्टर था और शासकों का धर्म होने से उत्पीड़क भी था, अतएव दोनों का मध्यकाल में सम्पूर्ण समन्वय न हो सका। फिर भी कालक्रम से जैसे जैसे भारतीय मुसलमानों की संख्या बढ़ती गई वैसे वैसे उस धर्म का अंशतः भारतीय रूपान्तर हो गया और हिन्दुओं ने भी बहुत सी बातें मुसलमान धर्म से सीखीं। एक दिन ऐसा आता कि भारतीय मुसलमान धर्म का भी सर्वथा हिन्दीकरण हो जाता। किन्तु दुर्भाग्य से अंग्रेज आये और उन्होंने फूट की नीति का अवलम्बन लेकर 'हिन्दू और मुसलमान सर्वथा पृथक् हैं' यह पाठ हमें पढ़ाया। अब हमें उस पाठ को भूलना होगा और हिन्दू संस्कृति की सर्व समन्वय की शक्ति को पुनरुज्जीवित करना होगा। तब भारतीय मुसलमान और ईसाई धर्म भी हिन्दू संस्कृति के अंगरूप प्रतीत होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बात और है। हिन्दू संस्कृति की जब हम विवेचना करते हैं तब वे[द] से लेकर आज तक का कालक्रम से विवेचन होना चाहिए, और यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि अमुक बात अमुक काल में हमारी संस्कृति के अनुकूल थी किन्तु आज वह प्रतिकूल है। संस्कृति तो एक प्रवाह है। वह तो उत्तरोत्तर निर्मल होता जाता है, नया होता जाता है। वह तालाब का पानी नहीं, जो उत्तरोत्तर गंदा होता जाय। अतएव आज हम वैदिक संस्कृति या ब्राह्मण संस्कृति का सर्वथा अनुगमन नहीं कर सकते, यह स्पष्ट कर देना होगा, आज हिन्दू संस्कृति या भारतीय संस्कृति का वही रूप अनुगमनीय है जो इस समय स्वतः सिद्ध हो। पुरानी संस्कृति का राग आलाप कर आज हम वैदिक जीवन को अपनाएंगे तो फिर हमें गोरक्षा की नहीं किन्तु गोवध की बात करनी होगी जो कभी मान्य नहीं हो सकती। इसी प्रकार महाभारत के मान्य पाण्डवों का भी हम आज अनुगमन नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में हमें रामचन्द्र जी की देन–एकपत्नी-व्रत और एकपतिव्रत को छोड़ना होगा। हम आज गांधीयुग में जीते हैं तो हमें गीता के भाई भाई के बीच युद्ध के समर्थन को भी छोड़ना होगा। किन्तु उसके अनासक्त कर्मयोग को, जिससे मानव का कल्याण होता है, मानना होगा।

हिन्दू संस्कृति के अतीत इतिहास के अध्ययन की विशाल सामग्री हिन्दीभाषा में एकत्र करने का सर्वप्रथम श्रेय 'कल्याण' के संपादकों को है और यह इन्हीं की शक्ति है कि वे इतना बड़ा अंक दे सके हैं। बारह मास के अंकों में जो सामग्री नहीं दी जा सकती वह उन्होंने एक ही बृहत्काय विशेषांक में दी है। इसके लिए हिन्दी जगत् उनका बहुत दिन तक ऋणी रहेगा। अन्य विशेषांकों की तरह चित्रों का होना भी इस विशेषांक की विशेषता है।

—दलसुख मालवणिया

प्राप्ति-स्वीकार

१. गागर में सागर　　　　स्वामी सत्यभक्त जी वर्धा
२. मानव भाषा　　　　"　　"
३. नया संसार　　　　"　　"
४. क्या ससार दुःखमय है ?　　　　"　　"
५. भगवान् महावीर की अहिंसा और महात्मा गांधी—पृथ्वीराज जैन M. A.
६. हिन्दी समाचार पत्र सूची भाग १ (१८२६—१९२५)—बंकट लाल ओझा

इनकी समालोचना अगले अंकों में यथास्थान की जाएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री जैनाश्रम 'सुभाष चौक' बार्शी (शोलापुर)

[स्थापना—वसन्त पञ्चमी २४७३]

खुश खबरी

सूचित करते हुए आनन्द होता है कि जैनाश्रम बार्शी की ओर से चलने वाले श्री वर्धमान छात्रालय में संप्रदाय और प्रान्त के भेद को छोड़कर सभी छात्र प्रविष्ट किए जाते हैं। बार्शी में मैट्रिक परीक्षा तक के शिक्षण की बहुत सुन्दर व्यवस्था है। बोर्डिंगमें धर्म शिक्षण का भी ऐसा प्रबन्ध है जिसमें किसी भी मत का विरोध नहीं रहता। बोर्डिंग की प्रथम श्रेणी २५) रु० मासिक और असमर्थ प्रमाणित होने पर द्वितीय श्रेणी १२॥) रु० मासिक।

नगराज पुनमिया
चांदमल गुगलिया
मंत्री, जैनाश्रम
बार्शी (शोलापुर)

जल्दी कीजिए

जैनधर्म का समन्वयात्मक अध्ययन करने के लिए जो 'धर्मप्रवेश' पुस्तक प्रकाशित की गई थी, वह समाप्त होने जा रही है। बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं मूल्य १) रु० है। पर्यूषण पर्व में प्रभावना बांटने के लिए 'आवश्यक सूत्र' का सरल सगीतों में अनुवाद किया गया है। ५००० पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। मूल्य प्रति पुस्तक ।।) है। ४०) की सौ, १७५) की पांच सौ और ३००) की एक हजार। मंगाने के लिए जल्दी कीजिए। पुस्तकें धड़ाधड़ बिक रही हैं।

सूरजचंद सत्यप्रेमी,
कुलपति, जैनाश्रम
बार्शी (शोलापुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-पुस्तकालय, गुरुकुल काँगड़ी

'SANMATI' PUBLICATIONS

	Lord Mahavira by Dr. Bool Chand, M.A., Ph.D.	Rs. 4/8/
	गुजरात का जैन धर्म—मुनि श्री जिनविजय जी	बारह आने
3.	विश्व-समस्या और व्रत-विचार—डॉ० बेनीप्रसाद	चार आने
4.	Constitution	4 Ans.
5.	अहिंसा की साधना —श्री काका कालेलकर	चार आने
6.	परिचयपत्र और वार्षिक कार्यविवरण	चार आने
7.	Jainism in Kalingadesa—Dr. Bool Chand	4 Ans.
8.	भगवान् महावीर—श्रीदलसुखभाई मालवणिया	चार आने
9.	Mantra Shastra and Jainism—Dr. A. S. Altekar	4 Ans.
10.	जैन-संस्कृति का हृदय—पं० श्री सुखलालजी संघवी	चार आने
11.	भ० महावीरका जीवन—पं० श्री सुखलालजी संघवी	" "
12.	जैन तत्त्वज्ञान, जैनधर्म और नीतिवाद लें०—पं० श्री सुखलालजी तथा डॉ० राजबलि पाण्डेय	" "
13.	आगमयुग का अनेकान्तवाद—श्री दलसुखभाई मालवणिया	आठ आने
14--15.	निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय—श्री सुखलालजी संघवी	एक रुपया
16.	वस्तुपाल का विद्यामण्डल—प्रो० भोगीलाल सांडेसरा	आठ आने
17.	जैन आगम—श्री दलसुखभाई मालवणिया	दस आने
18.	कार्यप्रवृत्ति और कार्यदिशा	आठ आने
19.	गांधीजी और धर्म लें० पं० श्री सुखलालजी और दलसुख मालवणिया	दस आने
20.	अनेकान्तवाद—पं० श्री सुखलाल जी संघवी	बारह आने
21.	जैन दार्शनिक साहित्य का सिंहावलोकन पं० दलसुखभाई मालवणिया	दस आने
22.	राजर्षि कुमारपाल—मुनि श्री जिनविजयजी	आठ आने
23.	जैनधर्म का प्राण—श्री सुखलालजी संघवी	छ: आने
24.	हिन्दू, जैन और हरिजन मंदिर प्रवेश लें० श्री पृथ्वीराज जैन M.A.	सात आने
25.	Pacifism & Jainism—Pt Sukhlalji	8 Ans.

The Secretary,
JAIN CULTURAL RESEARCH SOCIETY
BENARES HINDU UNIVERSITY.

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी

श्रमण

२०-६-५०

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविणासणो ॥
उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायमज्जभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥

क्रोध से प्रीति का, मान से विनय का, कपट से मित्रता का नाश होता है । लोभ सब कुछ नष्ट करने वाला है ।

शान्ति से क्रोध पर, नम्रता से मान पर, सरलता से कपट पर और सन्तोष से लोभ पर विजय प्राप्त करो ।

—दशवैकालिक

वर्ष १ अंक ९

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी
बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

इन्द्र एम० ए० — दलसुख मालवणिया

पृथ्वीराज जैन — मोहन लाल मेहता

इस अंक में—

१. इन्सान (कविता)—श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल' १
२. अपनी बात (संपादकीय)— ३
३. श्रमण तत्त्व (कविता) —श्री रामकुमार जैन स्नातक ८
४. जैनागमों का महत्त्व और हमारा कर्तव्य—श्री अगरचंद जी नाहटा ९
५. सच्चा सुख—महात्मा भगवान् दीन जी १५
६. सेठ की सूझ (कहानी)—श्री मोहन लाल मेहता १८
७. एक समस्या—श्री कैलाश चन्द्र जी शास्त्री २१
८. सारनाथ के भग्नावशेष—श्री चन्द्रिका सिंह जी एम० ए० २६
९. एक प्रश्न (गद्यगीत)—कुमारी सत्यवती ३२
१०. संस्कृति का आधार व्यक्ति स्वातंत्र्य—
प्रो० महेन्द्र कुमार जी न्ययाचार्य ३३
११. साहित्य-सत्कार— ३७
१२. विद्याश्रम समाचार—— ३९

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेजी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनीऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) — एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-पत्रिका
गुरुकुल काँगड़ी

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष १ जुलाई १९५० अंक ९

इन्सान

मैं न रुकता
मैं न झुकता
मैं मनुज हूँ
बढ़ चलूँगा
पंथ में चाहे मिलें फिर सैकड़ों तूफान !!
चरण ने चलना पढ़ा हैं,
आग में बढ़ना पढ़ा है,
हिमालय क्या आसमाँ पर-
यह बढ़ा है, यह चढ़ा है,
यह न फिरता
यह न मुड़ता
जो दनुज हैं
रौंद देगा
जुल्म का, अन्याय का उनका निकृष्ट जहान !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौत की परवाह क्या है,
ज़िन्दगी की चाह क्या है,
मैं अगर इन्सान हूँ-
सूली चढ़ूँ पर आह क्या है,
मैं न गिरता
मैं न मुड़ता
मैं अटल
निज लक्ष्य में
इन्सानियत के लिये ही मेरा लिखा बलिदान !!
आकाश के नीचे जमीं,
नव सृष्टि लेकर जब थमी,
खूँरेज हिंसा कर रही-
तब से अहिंसा की गर्मी,
इन्सान के
इन्साफ के
प्रतिकूल यह
मैं रोक दूँ
इन्सान में, इन्सानियत की चाहिए पहिचान !!
इस भूपर न मुझको चाहिये देवत्व का वरदान !!

—श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

एक जैन मुनि की राष्ट्रपति से भेंट

दिल्ली से समाचार मिला है कि ५ जून १९५० के दिन प्रातः ८ बजे अपनी शिष्य मण्डली के साथ विख्यात वक्ता और कवि उपाध्याय श्री अमर चन्द्र जी महाराज भारत गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद जी से नई दिल्ली के सरकारी भवन में मिले। लगभग पौने दो घण्टे तक आज कल की धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक समस्याओं पर विचार-विनिमय होता रहा।

बंबई सरकार के हरिजन मन्दिर प्रवेश बिल को स्वीकृत करने तथा उसे जैनों पर भी लागू किए जाने के बाद जैन समाज में इस विषय पर जोरदार चर्चा चली कि जैन हिन्दू हैं या नहीं और जैनधर्म का तथाकथित अछूत जातियों या हरिजनों के प्रति क्या दृष्टिकोण है। इस के पक्ष विपक्ष में विद्वानों ने जैन पत्रों में काफ़ी लेख लिखे। 'श्रमण' के प्रथम अंक में भी इस पर कुछ प्रकाश डाला गया था। भारत सरकार के पास परस्पर विरोधी विचारों को प्रगट करने वाले कई पत्र व तार पहुँचे और शिष्टमंडल भी मिले। यह स्वाभाविक था कि इस भेंट के अवसर पर इस विषय में भी कुछ बात चीत होती। उपाध्याय जी ने कहा, "जैनधर्म में जातपाँत और छुआछूत के लिए जरा भी स्थान नहीं है। जैनधर्म का द्वार मानव मात्र के लिए खुला हुआ है। जैनधर्म जाति या व्यक्ति पूजा को नहीं, गुण पूजा को महत्त्व देता आया है।" 'जैन हिन्दू हैं या नहीं' इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा प्रश्न किए जाने पर उपाध्याय जी ने कहा, "इस विवाद के मूल में भूल यह है कि 'हिन्दू' शब्द को जाति वाचक न रख कर धर्मबोधक मान लिया गया। सत्य यह है कि जैन जातीय दृष्टिकोण से महान् हिन्दू जाति के अंग ही हैं। परन्तु जैनधर्म और जैन संस्कृति वैदिक धर्म तथा संस्कृति से भिन्न एवं पूर्ण रूपेण स्वतंत्र है।"

यह हर्ष का विषय है कि कुछ जैन साधु समय की गति को पहिचानते हुए अपनी प्रवृत्तियों को उपाश्रय और स्थानक तक ही सीमित न रख जनसाधारण के सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन के लिए हितकारी जीवित प्रश्नों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हल में भाग लेने लगे हैं और समाज का यथाशक्ति मार्ग प्रदर्शन कर रहे हैं। हमारे लिए इस भेंट का महत्त्व इस बात में नहीं कि एक जैन साधु एक राष्ट्र के प्रमुख से मिले। हम इस भेंट की उपयोगिता यही समझते हैं कि एक सामयिक प्रश्न पर जैनधर्म के मर्मज्ञ उपाध्याय जी ने अपने विचार प्रगट किए। हमारे मत के अनुसार ये विचार जैनधर्म के यथार्थ दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं। 'श्रमण' का विश्वास है कि भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भावना का मूलमंत्र छुआछूत जैसे अमानुषिक व्यवहार से कोई समझौता नहीं कर सकता। जैनों का छुआछूत में विश्वास करना जैनधर्म के प्राणों के घात के समान है।

किन्तु हम नम्रतापूर्वक उपाध्याय जी से एक निवेदन करना चाहते हैं। किसी भी विचार का वास्तविक महत्त्व उसके आचरण में ही है। जैनधर्म जातिभेद में विश्वास नहीं रखता। नए विधान में अस्पृश्यता ग़ैरकानूनी क़रार दे दी गई है। मगर इतने से ही कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। आम लोगों में इसकी जड़ें अब भी मजबूत हैं। उसे दूर करने के लिये पूरा प्रयत्न होना चाहिए। संसार त्यागी और परोपकारी जैन साधु इसमें बहुत सहायक हो सकते हैं। महात्मा गांधी ने इसे अपने जीवन का मिशन बनाया था। वे बड़े बड़े शहरों में भी हरिजन बस्ती में रहा करते थे जिस से दूसरे लोग भी वहाँ जाने लगे। गांधी जी के दुखद निधन के बाद इस ओर कुछ उपेक्षा सी होगई है। क्या हम आशा करें कि अहिंसा और समता के प्रचारक जैनसाधु इस मार्ग को अपनाएँगे? उनके हरिजन बस्तियों में ठहरने से अनेक उपकार होंगे। हरिजनों के जीवन में क्रान्ति आजाएगी। वन्दनीय साधुओं के दर्शनों के लिए लोगों के वहाँ जाने आने से हरिजनों के प्रति फैली हुई घृणा दूर होगी। धीरे धीरे संपर्क बढ़ेगा। जैनसाधुओं के उपदेश से हरिजन मांस, शराब, जूआ आदि कुटेवों से भी छुटकारा पा सकेंगे। शिक्षा का प्रचार होगा, वे सफ़ाई से रहना सीखेंगे और आत्मकल्याण भी कर सकेंगे। उनका जीवन व्यवहार सात्विक होजाने पर वे लोग निरुत्तर हो जाएँगे जो उनकी अस्वच्छता और बुरी आदतों की दुहाई देकर प्रकारान्तर से छुआछूत को जिन्दा रखना चाहते हैं।

हमें विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि उपाध्याय जी उदार विचारों के महात्मा हैं। वे मुसलिम घरानों में भी गोचरी के लिए जाते हैं। ऐसी दशा में हम समझते हैं कि वे इस बारे में दूसरे साधुओं के सामने अच्छा आदर्श रख सकते हैं। गुजरात काठियावाड़ में मुनि सन्तबाल जी अद्भुत कार्य कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब, यू. पी. आदि में भी यह लोकोपकारी काम शुरू हो जाए तो बहुत अच्छा हो। बहुत से ऐसे लोग हैं जो हृदय से छूआछूत में विश्वास नहीं रखते किन्तु प्रचलित रूढ़ियों के कारण आगे आने से संकोच करते हैं। जैन साधु अपने उदाहरण से ऐसे व्यक्तियों का संकोच भी दूर कर सकेंगे।

'जैन हिन्दू हैं या नहीं' इस विषय पर उपाध्याय जी ने जो विचार प्रगट किए हैं, वे भी मननीय हैं। हिन्दू शब्द का मूल अर्थ लिया जाए तो जैन निश्चयपूर्वक हिन्दू हैं परन्तु प्रचलित संकुचित अर्थ में उन्हें हिन्दू नहीं कहा जा सकता। भारत सरकार का कर्तव्य है कि हिन्दू शब्द की अधिकृत परिभाषा घोषित करे।[१]

जैनधर्म द्वारा मान्य अहिंसा की एकांगी व्याख्या को मान कर कुछ लोग इसे निषेधात्मक रूप ही देते हैं। यह धारणा भी भ्रांत है। अहिंसा के विषय में उपाध्याय जी नें कहा, "भारतीय संस्कृति के अणु अणु में अहिंसा परिव्याप्त है और जैन संस्कृति का तो वह प्राण ही है। अहिंसा के दो रूप हैं—निषेधात्मक और विधेयात्मक। अहिंसा की पूर्णता दोनों रूपों के संतुलन से होती है। केवल नकारात्मक पक्ष को ग्रहण करने से नहीं।" हमारा इतिहास हमें बताता है कि जैन समाज लोकहितकारी कार्यों में बढ़ चढ़ कर भाग लेता रहा है। हमें उन प्रवृत्तियों को जारी रखना चाहिए। धर्म के वे सिद्धान्त जो व्यवहार में दुखी जीवों की सहायता करने में सहायक न हो सकते हों, अपना वास्तविक मूल्य खो बैठते हैं।

एक विचारणीय प्रश्न—

'श्रमण' के इसी अंक में पं० श्री कैलाश चन्द्र जी शास्त्री का लिखा हुआ 'एक समस्या' लेख प्रकाशित हुआ है। उस विषय पर प्रत्येक व्यक्ति को विचार करना चाहिए। समस्या बड़ी जटिल है और जल्दी में हम एक पक्षीय निर्णय नहीं कर सकते। इसके लिए गहरे पानी में उतरना होगा। एक ओर ऐसे प्राणियों की प्राणरक्षा का प्रश्न है जो मनुष्य की सामूहिक शक्ति का मुकाबिला नहीं कर सकते। दूसरी ओर उनके द्वारा की जाने वाली अन्न तथा कभी कभी मनुष्य के प्राणों की हानि के प्रति भी उदासीन नहीं रहा जा सकता। इस बात को सब जानते हैं कि आज दुनिया के कई देश

१. इस विषय के ऐतिहासिक विवेचन के लिए देखें-जैन संस्कृति संशोधन मंडल द्वारा प्रकाशित 'हिन्दू, जैन और हरिजन मन्दिर प्रवेश'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न संकट में ग्रस्त हैं। हमारे देश के सामने भी यह समस्या विकट रूप में उपस्थित है। जब मनुष्य के लिए अनाज के दाने दानें की कीमत हो तब फ़सल को बरबाद करने वाले जानवरों के प्रति हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए, यह एक प्रश्न है।

जैसा कि पंडित जी ने अपने लेख में लिखा है, लोग सरल उपाय तो यही समझते हैं कि उन्हें मार दिया जाए। परन्तु इस प्रवृत्ति को यदि अनियंत्रित रूप में बढ़ने दिया जाए तो इसकी सीमा का अन्त आना कठिन है। जो व्यक्ति या समाज किसी दूसरे व्यक्ति या समाज को अपनी प्रगति अथवा जीवित रहने की अभिलाषा में बाधक समझेगा वह उसके नाश के साधन जुटाने में प्रयत्नशील रहेगा। परिणाम स्वरूप हमारा जीवन बर्बरता पूर्ण हो जाएगा और हम पुनः जंगल की अवस्था में पहुँच जाएँगे। केवल हमें ही जीने का अधिकार है, इस स्वार्थ मूलक भावना के कारण संसार में विनाशकारी युद्ध होते आए हैं। यद्यपि सारे विश्व को एक राष्ट्र समझने तथा सबके जीवित रहने के अधिकार के विषय में राजनीतिज्ञ सहमत हो रहे हैं, तथापि नए युद्ध की संभावना दूर नहीं हो पाई है। यह कोई नहीं चाहता कि मनुष्य मनुष्य के ख़ून का प्यासा बने। हमें नुकसान पहुंचाने वाले प्राणियों को मार डालने की प्रवृत्ति पर कोई रोक न हो तो उसके बढ़ते हुए बुरे परिणाम से हम बच भी नहीं सकेंगे।

इस चित्र का दूसरा पहलू भी विचारणीय है। यह ठीक है कि सब जीना चाहते हैं अतः हमें किसी को मारना नहीं चाहिए। मगर जीवन संघर्ष का रूप ही ऐसा है कि हम हिंसा से सर्वथा बच नहीं सकते। किसी न किसी रूप में हमें हिंसा का भागी या अपराधी बनना ही पड़ता है। जब वनस्पति, पानी, हवा, आग और पृथ्वी तक में भी जीव है तो इनका घात भी क्यों किया जाए? अनिवार्य अवस्था में इसे अपरिहार्य माना जाए तो इस अवस्था की सीमा क्या है? क्या इस विवशता का नियम अधिक इन्द्रियों वाले प्राणियों और मनुष्यों पर भी लागू नहीं होता? जीना सब चाहते हैं और किसी न किसी अंश में चाहे वह कितना ही कम या सूक्ष्म क्यों न हो, हिंसा किए बिना जीवित रहना संभव नहीं। यह आवश्यक हिंसा कितनी हो, इसका निर्णय हर एक जीव की परिस्थिति, विकास और बुद्धि आदि पर निर्भर है। इसके लिए कोई एक सार्वभौम नियम बनाना कठिन है। अधिक से अधिक हम महात्मा गांधी के शब्दों में यही कह सकते हैं कि 'हिंसा करने से जिस अंश तक बचना संभव हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस अंश तक बचना सबका धर्म है' "यह कोई तीसरा आदमी नहीं बतला सकता कि किस हद तक किसी को हिंसा करनी चाहिए।"

हाँ, एक बात अवश्य है। किसी भी प्राणी का घात करने से पहले हमें यह देख लेना चाहिए कि क्या हम उस हिंसा से बचने के लिए दूसरी सब युक्तियाँ आज़मा चुके हैं? क्या कोई दूसरा मार्ग संभव ही नहीं? अन्न की बरबादी को ही लीजिए। पंडित जी का कहना सर्वथा ठीक है कि सरकारी कर्मचारियों की असावधानी और मूर्खता के कारण जो हजारों टन अनाज नष्ट होता है, उसे बचाने के लिए क्या किया गया है? जाली राशन कार्डों को ही रद्द किया जाए तो अनाज का दिखाई देने वाला अभाव काफ़ी हद तक दूर हो जाए। नौकरशाही के ज़माने को भी मात करने वाले सरकारी सहभोजों पर प्रतिबंध लगाने का कोई विचार ही नहीं करता।

ऐसी और भी बातों को कार्यरूप में परिणत करने के बाद यदि यह महसूस हो कि गीदड़ों, बन्दरों आदि से फ़सल की रक्षा किए बिना मानव जाति भूखों मर जाएगी तो उन्हें मारने की बजाय जंगलों में भगाया जा सकता है या उनके नर मादा अलग अलग रख कर उनकी वृद्धि को रोका जासकता है। हम यह नहीं कहते कि ये उपाय सर्वथा उपयुक्त या दोषरहित हैं। हमारा उद्देश्य यह है कि पाठक तथा विचारक इस विषय पर मनन करें और जनता तथा सरकार के सामने ऐसी ठोस तजवीज़ें रखें जिन पर सरलता से अमल किया जा सके। जहाँ तक संभव हो, हिंसा से बचा जाए। साथ ही कोरी भावुकता में बह कर इस विकट समय में अन्न का नाश भी न होने पाए। विद्वानों से प्रार्थना है कि वे अपने विचार 'श्रमण' में या अन्यपत्रों में प्रकाशनार्थ भेजें ताकि इस जटिल समस्या को सुलझाया जा सके।

—पृथ्वीराज जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण-तत्व

(१)

यौवन, वैभव अथिर चंचला चंचल है भोले नादान।
इसी सुनहरे रंग महल में नर्तन करता है श्मशान॥
धोखा है इस मधु प्याली में भरा हुआ है गरल महान।
अमर धनी बनना यदि तुझको श्रमण-तत्व की कर पहिचान॥

(२)

भौतिकता की सुरा पान कर क्यों इतना इतराता है?
इस पत्थर के टुकड़े पर तू मोती व्यर्थ लुटाता है॥
क्यों चुगता कंकर जब सन्मुख खुली पड़ी हीरों की खान।
अमर धनी यदि बनना तुझको श्रमण-तत्व की कर पहिचान॥

(३)

पशुता के कारागृह में क्यों भरता है दुख के निश्वास।
उठ साहस कर, ऊँचा मुख कर मानवता का देख प्रकाश॥
लख, तेरे हित सजा हुआ है पुण्यरूप यह स्वर्ग-विमान।
अमर धनी बनना यदि तुझको श्रमण-तत्व की कर पहिचान॥

(४)

जड़ता की रजनी बीती, होगया अज्ञता का तम नाश।
पापरूपतस्कर भागे तज शीघ्र आत्म नगरी का वास॥
विश्व क्षितिज पर फैला फिर से मनोविमोहक स्वर्ण-विहान।
अमर धनी बनना यदि तुझको श्रमण-तत्व की कर पहिचान॥

—श्री रामकुमार जी जैन स्नातक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनागमों का महत्त्व और हमारा कर्त्तव्य–

–श्री अगरचन्द जी नाहटा

उपलब्ध जैन साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ अंग उपाङ्गादि संज्ञक आगम ग्रन्थ हैं। भगवान् महावीर की दीर्घ तपश्चर्या व चिन्तन के पश्चात् जो अनुपम केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था और उससे वस्तुतत्व का जो ज्ञान व दर्शन हुआ उसे जनता के लिए वाणी द्वारा प्रकाशित किया गया। वही कल्याणकारी वाणी इन आगमों में ग्रन्थित है अतः इनका महत्त्व सर्वाधिक निर्विवाद है। परवर्ती समस्त जैन वाङमय की जड़ इन्हीं आगमों में एवं अनुपलब्ध "पूर्व" संज्ञक ग्रन्थों में सन्निहित है। असाधारण पांडित्य सम्पन्न जैनाचार्यों ने इन पर निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, वृत्ति, टबा, अवचूरि व बालावबोध आदि अनेक विवरणात्मक टीकाएँ रचकर इन्हें अधिकाधिक सुबोध बनाने का महान् प्रयत्न किया है और आज भी वह क्रम चालू है। इनके आधार से रचित विशाल साहित्य की तो बात ही न पूछिए। छोटे बड़े सैकड़ों प्रकरण व कथादि ग्रन्थ इन्हीं आगमरूपी वृक्षों की शाखाएँ प्रतिशाखाएँ फल फूल पत्ते समझने चाहिएँ। विद्वान् मुनियों ने विवरणात्मक साहित्य रचकर व हजारों प्रतियाँ लिखकर इनकी भक्ति की तो श्रावकों ने भी इनकी सुन्दर अक्षरों में प्रतिलिपि करवाने में एवं भगवती उत्तराध्ययनादि की तो स्वर्णाक्षरी एवं उत्तराध्ययन, ज्ञातादि सूत्रों की सचित्र प्रतियाँ लिखवाने में हजारों रुपये खर्च किये। कल्पसूत्रादि की सैकड़ों सचित्र एवं पचासों स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी प्रतियाँ लिखवाने का हिसाब सम्मिलित करने पर उनका द्रव्य व्यय लाखों की संख्या में पहुँच जायगा। भगवतीसूत्र को सुनते हुए प्रत्येक प्रश्नोत्तर पर रौप्य मुद्रा ही नहीं स्वर्ण मुद्रा व मौक्तिक चढ़ाने वाले भक्त श्रावकों की भक्ति भुलाई नहीं जा सकती।

मुद्रण युग के प्रारंभ से आज तक का हिसाब लगाया जाय तो लक्षाधिक रुपये इनके प्रकाशन में खरच हो चुके हैं व अब भी यह क्रम चालू है। सर्व प्रथम अजीमगंज-मुर्शिदाबाद के बाबू धनपतसिहजी ने इनको टीका एवं बालावबोधसहित प्रकाशित करवाया। इनके पश्चात् आगमोदय समिति ने निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, एवं वृत्ति के साथ व अमोलक ऋषिजी ने हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद सहित प्रकाशित किये। इसके पश्चात स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य आत्मारामजी, मुनि हस्तिमल्लजी, पूज्य जवाहरलालजी व घासीलालजी के सानुवाद व संतवालजी ने गुजराती अनुवाद वाले कई फुटकर आगम प्रकाशित किये हैं और स्थानकवासी जैन कॉन्फरेन्स के द्वारा उन सूत्रों का सम्पादन व अनुवाद पुनः प्रकाशनार्थ तैयार हुआ है, वह भी शीघ्रही प्रकाशित होगा। इधर मूर्त्तिपूजक सम्प्रदाय के आचार्य मणिसागर सूरिजी के प्रयत्न से कई आगम हिन्दी अनुवाद सहित सुमति कार्यालय कोटा से प्रकाशित हुए हैं। श्री सागरानन्द सूरिजी ने कई आगमों की चूर्णियाँ प्रकाशित करवाई हैं और मुनि पुण्य विजयजी ने आगमों के विशिष्ट सम्पादन का महत्वपूर्ण कार्य हाथ में ले रखा है। यही नहीं आचार्य सागरानंद सूरिजी ने पालीताणे में जैनागम मंदिर बनवाकर आगमों का मूल पाठ संगमरमर पत्थर की पट्टिकाओं पर खुदवा के दीवारों में लगवाया एवं सूरत में ताम्रपत्र पर खुदवा कर आगम मंदिर स्थापित कर अपनी अपूर्व श्रुतभक्ति का परिचय दिया है।

कई आगमों का सम्पादन पाश्चात्य विद्वानों ने भी किया है एवं कइयों के अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। इतना सब होते हुए भी इनका महत्व अभी बहुत ही सीमित व्यक्ति समझ पाये हैं, यह बहुत ही खेद एवं आश्चर्य की बात है। लाखों रुपये खर्च हुए, कई व्यक्तियों ने अपना जीवन लगाया फिर भी इनके सम्बन्ध में जैनेतर जनता की तो कौन कहे, विद्वानों तक में भी इतनी कम जानकारी है कि कोई विद्वान् अपने किसी लेख या ग्रन्थ में इनका नाम निर्देश तक नहीं करता जब कि बौद्ध साहित्य के सम्बन्ध में आये दिन पत्र-पत्रिकाओं में ग्रन्थों एवं भाषणों में प्रचुर उल्लेख व चर्चा देखने में आती हैं। जैन समाज को इस समस्या पर गंभीरता से विचार कर इसके कारणों को ढूँढकर उचित मार्ग शीघ्र ही ग्रहण करना चाहिए अन्यथा आप का लाखों रुपयों का व्यय व श्रम विशेष फलप्रद नहीं होगा एवं जनता भी इन आगमों में जो महद् ज्ञान भरा पड़ा है उससे वंचित ही रहेगी।

बाईस वर्ष हुए आ० कृपाचंद्र सूरि जी नें हमारी कोटड़ी में चातुर्मास किया था और करीब २॥। वर्ष बीकानेर रहे तब तक मैंनें बहुत से आगमों का व्याख्यान श्रवण किया। तभी से जैनागमों का पठन व श्रवण का सुयोग बराबर मिलता रहा है। इसके द्वारा मेरे हृदय में इनकी महत्ता दिनोदिन बढ़ती चली जा रही है। जब जब इनके महत्त्व पर विचार करता हूँ तो जैन समाज के इस अमूल्य धरोहर के अनधिकारित्व पर बड़ा विचार होता है। वास्तव में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम इन रत्नों के कुशल पारखी नहीं हैं। इसीलिए इनका वास्तविक मूल्याङ्कन न स्वयं कर पाते हैं और न दूसरों से करवाने की हममें विनम्रता ही है। जैनागम रूपी जवाहरात के ठेकेदार व मालिक तो बन बैठे पर इसके महत्व को प्रकाश में लाने की हममें जरा भी योग्यता नहीं है। हमारे मुनियों व विद्वानों को देखिए–उपाश्रय की चार दीवारी में तो वे आगमों के लम्बे लम्बे व्याख्यान देते रहते हैं पर किसी जैन व जैनेतर पत्र--पत्रिकाओं में उनके सम्बन्ध में एक भी लेख प्रकाशित नहीं करते, इनमें पाई जानेवाली सर्वजनोपयोगी बातों को जनता के समक्ष नहीं रखते। उनके ऐतिहासिक, साहित्यिक व सांस्कृतिक महत्व को विद्वानों तक प्रसारित नहीं करते। बौद्ध एवं वैदिक साहित्य से उसका तुलानात्मक अध्ययन करनें की ओर तो हमारा ध्यान ही नहीं गया। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास जो बहुत कुछ अंधकार में पड़ा है उसको प्रकाशित करने वाली कई किरणें जैनागमों व उनकी निर्युक्ति चूर्णि व टीकाओं में पाई जाती हैं, उन्हें प्रकाश में नहीं लाते। कई बंगाली विद्वानों से मेरी बातचीत हुई तो वे जैन समाज को बड़ा गहरा उपालंभ देते हैं कि वे धन एवं विद्वानों से सम्पन्न होते हुए भी इस भारतीय सांस्कृतिक निधि को छुपाए क्यों बैठे हैं ? इन्हें जैन ग्रन्थ पढ़ने को नहीं मिलते जब कि कई जैन पुस्तकालयों व मुनियों के पास उनकी एक एक ग्रन्थ के पांच पांच दस दस यावत् १००–५० प्रतियें तक संचित की हुई पड़ी है और उनका पठन पाठनादि उपयोग कुछ भी नहीं हो रहा है।

बंगाली विद्वानों में से डा० विमल चरण ला ने तो जैनागमों का गहरा अध्ययन कर अपने ग्रन्थों में उनका यथेष्ट उपयोग किया है। आपका हाल ही में एक ग्रन्थ भी जैनागमों के सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ है। भारतीय दर्शन शास्त्र के गंभीर विद्वान् हरिसत्य भट्टाचार्य ने जैन तत्त्वज्ञानादि पर एक थीसिस लिखकर डाक्टरेट प्राप्त किया, है पर वह जैन समाज की उदासीनता के कारण अब तक अप्रकाशित है। कई वर्ष पूर्व पाश्चात्य विद्वानों ने विशेषकर डा० हर्मन जेकोबी ने जैनागमों के महत्व पर वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला था। डा० हर्मन आदि के प्रयास के फल स्वरूप ही बौद्ध धर्म से जैन धर्म स्वतंत्र एवं प्राचीन है, विद्वद् मान्य हुआ था।

जैनागमों का परिचायक पं० दलसुख मालवाणिया का एक टैक्ट जैन संस्कृति संशोधक मंडल द्वारा हिन्दी में एवं आर्हत आगमोनु अवलोकन नामक ग्रन्थ गुजराती में और A History of the canonical literature of Jains ग्रन्थ अंग्रेजी में प्रो० हीरालाल रसिकलाल कापड़िया का प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है। डा० जगदीशचन्द्र जैन ने Life in Ancient India as depicted in the Jain canons शीर्षक महत्व पूर्ण थीसिस लिखकर Ph.D. प्राप्त किया है, यह ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है पर इसका मूल्य ३५) होने से जैन समाज में इसका प्रचार नहीं हो पाया। ऐसे ही आधुनिक ढंग से जैनागमों के सम्बन्ध में कई ग्रन्थ तैयार करवाके सुलभ मूल्य में प्रचारित किये जायें तो उनका महत्व विश्व विदित हो सकता है। [1]बौद्धकालीन भारत की भाँति जैन कालीन भारत भी ग्रन्थ प्रकाशित होना चाहिए। "पुराणों में [2]गुजरात" ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसी प्रकार 'जैनागमों में गुजरात' या ऐसा ही कुछ नाम वाले ग्रन्थ की तैयारी प्रो० भोगीलाल सांडेसरा कर रहे हैं।

जैनागम विविध विषयक ज्ञान के भंडार है पर उनके विषयों की सूची प्रकाशित नहीं होनें से उनके महत्व की ओर विद्वानों का ध्यान ही नहीं जाता। प्रो० हीरालाल कापड़िया के निर्देशानुसार आ० सागरानन्द सूरि जी नें एक ऐसी सूची भी तैयार की है जिसमें किस किस विषय का वर्णन किस किस आगम में कहाँ कहाँ आता है इसका निर्देश है। इस विषय सूची को शीघ्र ही प्रकाशित करने का सूरि जी से अनुरोध है।

यद्यपि बहुत से व्यक्ति मेरी इस राय से सहमत नहीं होंगे फिर भी मुझे अपने विचार प्रगट करने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं है कि जैनागमों के अब ऐसे संस्करण तैयार करवाके प्रकाशित करने चाहिएँजिनमें विविध आगमों में एक एक विषय की जो सामग्री विखरी पड़ी है उन सब पाठों का संकलन एक ही जगह उन आगमों के नाम व स्थान का निर्देश सहित हो जाना आवश्यक है जिससे किसी विषय का गहरा अध्ययन करने के लिए सुगमता उपस्थित हो जाय। कहा जाता है कि आर्य रक्षित सूरि के समय तक प्रत्येक आगम में चारों अनुयोग सम्मिलित थे पर उन्होंने उन्हें पृथक् पृथक् कर दिए। पता नहीं इस प्रवाद का सही आशय क्या है। पर आज तो आगमों के विषयवर्गीकरण की दृष्टि से नये ढंग के संस्करण तैयार कर प्रकाशित किये जाने बहुत ही आवश्यक हैं।

बीकानेर के परम धर्मनिष्ठ श्री भैरोंदान जी सेठिया ने एक अन्य ढंग का संकलन जैन बोल संग्रह के नाम से हिन्दी में प्रकाशित किया है। वह प्रशंसनीय होते हुए भी मेरे नम्र मतानुसार यदि उपर्युक्त ढंग का कोई प्रयत्न कियाजाता तो ज्यादा उपयोगी व महत्व का होता।

१—ले० जनादन भट्ट। २—गुजरात विद्यासभा अहमदाबाद से प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्तिपूजक संम्प्रदाय के आगम मर्मज्ञ आ० सागरानंद सूरिजी जो अब वृद्ध हो चुके हैं अतः अब वे स्वयं ऐसा कोई ठोस काम कर सकें यह कम संभव है।[१] पर उनकी बनाई हुई सूची का उपयोग किया जा सकता है। मुनि पुण्य विजयजी आदि संवेगी सम्प्रदाय के आगम भक्त मुनिगण और स्थानकवासी सम्प्रदाय के आ० आत्माराम जी आदि तथा पं० बेचरदास व हीरालाल रसिकलाल कापड़िया आदि विद्वान् श्रावकों का सामूहिक रूप से प्रयत्न हो तो यह भगीरथ काम पार पड़ सकता है। जैन समाज में संगठित हो मिलजुल कर काम करने की बहुत ही कमी है। अतः आशा तो नहीं की जा सकती पर जितने भी व्यक्तियों का सहयोग मिलना संभव हो प्रयत्न करके इस काम को हाथ में लिया जाय तो जैन साहित्य के इतिहास में लिखने योग्य चिरस्मरणीय महत् कार्य होगा, यह निसंशय है।

सब आगमों का व सब विषयों का ऐसा संस्करण जहाँ तक संभव न हो फुटकर रूप से भी ऐसा प्रयत्न किया जा सकता है। जैसे १—जैनागमों में आई हुई कथाओं, ऐतिहासिक व्यक्तियों, स्थानों, का एक कोष[१] तैयार किया जाय जिसमें जिस व्यक्ति व स्थान के जहाँ जहाँ जो उल्लेख हों उन्हें संग्रह कर या स्थल निर्देश के साथ हिन्दी में सार दे दिया जाय। २—इसी प्रकार पारिभाषिक शब्दों का एक कोष तैयार किया जाय। ३—ज्योतिष व द्वीप समुद्रादि सम्बन्धी जैनागमों में जहाँ जहाँ जो उल्लेख हों उनका संग्रह कर जैनेतर ग्रन्थ से तुलनात्मक अध्ययन कर प्रकाश डाला जाय। कम से कम कई छोटे छोटे ग्रन्थ व निबन्ध ही ऐसे तैयार किये जायें जिनमें जैनागमों में प्रयुक्त विशेष शब्दों, छंद व शैली, तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक, सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति, संगीत, नाट्य, व्याकरणादि विविध विषयक जो जो उल्लेख प्राप्त हों उन पर प्रकाश डाला जाय। कई ऐतिहासिक व पौराणिक व्यक्तियों के सम्बन्ध में जो जो उल्लेख मिलते हैं उनके सम्बन्ध में स्वतंत्र लेख प्रकाशित किये जाँय तो भी अच्छा हो। जैनागम ठाणांग, समवायांग, नंदी, अनुयोग द्वार आदि में कई सर्वोजनोपयोगी विषयों का बड़ा सुन्दर संग्रह मिलता है। जंबू द्वीप पन्नति आदि में द्वीप समुद्रादि व[२] भारतीय सभ्यता के विकाश की कहानी बड़े सुन्दर ढंग से पाई जाती है। सूर्यप्रज्ञप्ति चंद्रप्रज्ञप्ति एवं ठाणांग, समवायांगादि के ज्योतिष विषयसे तत्कालीन ज्योतिष विषयक मान्यताओं का

१—गत ६ मई को उन का स्वर्गवास हो गया।—संपादक

२—जिस प्रकार मराठी एवं गुजराती में पौराणिक कोशादि प्रकाशित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर परिचय मिलता है। इन सब विषयों पर तुलनात्मक ढंग से अध्ययन कर प्रकाश डाला जाय तो जैनेतर विद्वानों का जैनागमों के महत्त्व की ओर अतिशीघ्र ध्यान आकर्षित होगा।[१]

प्राकृत, संस्कृत भाषा का मुझे विशेष ज्ञान नहीं फिर भी मैंने इस सम्बन्ध में दिशासूचक कुछ प्रयास किया है। जैनसाहित्य के भौगोलिक महत्व के सम्बन्ध में जैनागमों में जिन जिन स्थानों के नाम मिलते हैं उनका यथाज्ञात उल्लेख प्रेमी अभिनंदन ग्रन्थ में प्रकाशित अपने लेख में किया है। जैनागमों में कृष्ण चरित, जैनागमों में द्रौपदी चरित, प्राचीन जैनग्रन्थों में जैनेतर ग्रन्थों का उल्लेख आदि कुछ लेख तैयार किये गये इनमें दो प्रकाशित हो चुके हैं तीसरा शीघ्र होने वाला है। व जैनागमों में संगीत व नाटच सम्बन्धी उल्लेख, जैनागमों मे श्रेणिक चरित, ठाणांग समवायांग नंदी एवं अनुयोग द्वार का विविध दृष्टियों से महत्वादि पर प्रकाश डालने का विचार कर रहा हूँ। पर अधिकारी विद्वान् लिखें तो और भी सुन्दर हो। आशा है अधिकारी विद्वान् व मुनिगण शीघ्र ध्यान देगें।

गांधी जी के मार्ग और मार्क्सवाद में बड़ा फ़र्क है। लेकिन उससे भी ज्यादा फ़र्क गांधीवाद तथा अनियंत्रित पूँजीवादी, सामन्तशाही और जातिशाही व्यवस्थाओं में है। जब तक वे, जो आजकी अवस्था में धन या जाति आदि के रूप में विशेष अधिकारों की स्थिति का सुख भोग रहे हैं, उसका त्याग नहीं कर देते, अपनी सम्पत्ति के ईमानदार ट्रस्टी नहीं बन जाते, ऊँच नीच के भेद भाव छोड़कर जनता में घुल मिल नहीं जाते, देश की गरीबी के अनुसार अपनी शान शौक़त कम नहीं कर लेते, तब तक साम्यवाद और उसके साथ चलने वाली हिंसा आयेगी ही।

—कि० घ० मशरूवाला

१—महावीर स्मृति ग्रन्थ में डॉ० वासुदेव शरण जी अग्रवाल का लेख द्रष्टव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चा सुख—

—महात्मा भगवान्दीन जी

'काम के घंटे कम करो'——यह शोर मच रहा है और यह प्रलय के दिन तक मचता रहेगा। काम आठ घंटे की बजाय आध घंटे का भी कर दिया जाय तब भी सुख न मिलेगा। ऊपर नीचे हाथ किये जाने में आध घंटे में तबियत ऊब जायगी। पांच मिनट को भी मशीन बनने में सुख नहीं। एक मिनट की गुलामी दिन भर का खून चूस लेती है। काम के घंटे कम करने से काम न चलेगा। काम को बदलना होगा। काम अभी तक साधन बना हुआ है। उसे साधन और साध्य दोनों बनाना होगा।

चार मील सिर पर दूध रख, बाजार पहुंच हलवाई को बेच और बदले में रबड़ी खाने में वह सुख नहीं है, जो घर पर उसी दूध की रबड़ी बनाकर खाने में है। साधन को साध्य में बदलते ही सुख मिल सकेगा और वही सच्चा सुख होगा।

बिना सोचे-समझे पहिया घुमाये जाना, हथौड़ा चलाए जाना, तार काटे जाना, कागज उठाए जाना, उजड्डपन के काम हैं। इनको मिल मालिक भला और समझदारी का काम बताते हैं और अनाज तरकारी और फल उगाने के शानदार काम को बेअकली और नासमझी का बताते हैं। खूब! किया उन्होंने दोनों में से एक नहीं।

पेट भरने के लिये मेहनत की जाती है, यह सच है। पर इसमें एक चौथाई सचाई है। तीन-चौथाई इसमें है कि हम मेहनत इस लिए करते हैं कि हम जीते रहें और आनंद के साथ जिंदगी बिता सकें और गुलामी का गलीज धब्बा अपनी जिंदगी की चादर पर न लगने दें। हम पेट भरने के लिये हलवा बनाएं, यह ठीक है, पर हम ही उसको खाएँ-खिलाएँ यह सवा ठीक है, और हमही उसके बनाने का आनंद लें, यह डेढ़ ठीक है। मेहनत हमारी, उपज हमारी, तजुरबा हमारा। तब सच्चा सुख भी हमारा।

जानवर रस्सी से बंधता है, यानी जगह से बंधता है। शेर भी मांद में रह कर जगह से बंधता है। और आदमी? वह घर में रह कर जगह से बंधता है और दस बजे दफ्तर में जा कर वक्त से बंधता है। वाह रे प्राणी श्रेष्ठ! चिड़िया फुदकती फिरती है और खाती फिरती है। उसे ९-१०-११ बजने से कोई सरोकार नहीं। आदमी के अद्धे—पौवे बजते हैं, मिनटों का हिसाब रखा जाता है, सिकंडों की कीमत आंकी जाती है और कहा यह जाता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने जगह और वक्त दोनों पर काबू पा लिया है । हमें तो ऐसा जचता है कि वह दोनों के काबू में आ गया है ।

और लीजिये । हमें बाप-दादों की इज्जत रखनी है और नाती-पोतों के लिए धन छोड़ जाना है यानी स्वर्गवासियों को सुख पहुंचाना है और उनको जिन्होंने अभी जन्म भी नहीं लिया । तब हम बीच वालों को कैसे सुख मिल सकता है ?

अगले-पिछलों को भूल जाना, जानवर बनना नहीं है, सच्चा आदमी बनना है । हमारे सुखी रहने में, हमारे पिछले सुखी, और हमारे अगले सुखी । सुखी ही सुखी संतान छोड़ जाते हैं और सुखी देख कर ही स्वर्गीय सुखी होते हैं। बेमतलब की मेहनत में समय खर्च करना गुनाह है । वक्त पूँजी है उसे काम में खर्च करना चाहिए और ऐसे काम में जो अपने काम का हो ।

सुख भोगने की ताकत को जाया करने वाले कामों में लगा कर जो वक्त जाता है, उस कमी को न गाना पूरा कर सकता है न तमाशा और न कोई और चीज ।

कपड़ा खतम कर धब्बा छुड़ाना, धब्बा छुड़ाना नहीं कहलाता । ठीक इसी तरह आदमी को निकाल कर वक्त बचाना वक्त बचाना नहीं हो सकता। मिलें यही कर रही हैं । सौ आदमी की जगह दस और दस की जगह एक से काम लेकर निन्यानवे को बेकार कर रही हैं । काम में लगे एक को भी सुख से वंचित कर रही हैं, यों सौ के सौ का सुख हड़प करती जा रही हैं ।

मिल और मशीन एक चीज नहीं । मिल आदमी के सुख को खाती है और मशीन आदमी को सुख पहुंचाती है ।

मशीन सुख से जनमी है, मिल शरारत से । चर्खा मशीन है, कोल्हू मशीन है, चाक मशीन है, सीने की मशीन मशीन है । मशीन घर को आबाद करती हैं, मिलें बरबाद करती हैं । मशीन कुछ सिखाती है, मिल कुछ भुलाती है । मशीन सेवा करती है, मिल सेवा लेती है । मशीन पैदा करती है, मिल पैदा करवाती है । मशीन समाज का ढांचा बनाती हैं, मिल उसी को ढाती है । मशीन चरित्र बनाती है, मिल उसको धूल में मिलाती है । मशीन गाती है, मिल चिल्लाती है । मशीन धर्मपत्नी की तरह घर में आकर बसती है, मिलें वेश्या की तरह अपने घर बुलाती हैं और खून चूस कर निकाल बाहर करती हैं । मशीन चलाने में मन हिलोरें लेता है, मिल में काम करने में मन चकराने लगता है, जी घबराने लगता है । मशीनें पुरानी हैं । हमसे हिल मिल गई हैं । मिलें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ई हैं और कर्कश स्वभाव की हैं। मशीन हमारे कहने में रहती हैं, मिलें हमारी एक नहीं सुनतीं। मतलब यह कि मशीन और मिल का कोई मुकाबला नहीं। एक देवी दूसरी राक्षसी।

मशीनों की पैदावार का ठीक-ठीक बटवारा होता है। मिलों का न होता है, और न हो सकता है और अगर मार-पीट कर ठीक कर दिया जाय तो तरह-तरह की दुर्गंध फैलेगी, बेकारी फैलेगी, बदकारी फैलेगी, बीमारी फैलेगी, और न जाने क्या-क्या।

मशीन पर लगाया हुआ पैसा घी दूध में बदल जाता है, मिलों पर लगाया हुआ पैसा लाठी, तलवार बंदूक, बम बन जाता है।

एक का सुख जिसमें है, सब का सुख उसमें है। एक को भुलाकर सब के सुख की सोचना सब के दुख की सोचना है। मिलें सैकड़ों का जी दुखा कर शायद ही किसी एक को झूठा सुख दे सकती हों। झूठा सुख यूँ कि वे मुफ्त का रुपया देती हैं और काफी से ज़्यादा धन से ऊबा देती हैं। ऊबने में सुख कहाँ।

ऊपर बताए तरीकों से सुख मिल सकता है पर उस सुख को बुद्धि के ज़रिये बहुत बढ़ाया जा सकता है। ज्ञानी बाहरी आराम को अन्दर ले जाकर कोने-कोने में पहुँचा देता है। अनुभव, विद्या, हिम्मत वगैरह से ज्ञान कुछ ऊँची चीज़ है, वही अपनी चीज है। और चीजें उस से बहुत नीची हैं। ज्ञानी आत्म सुख खो कर जिस्मानी आराम नहीं चाहेगा। भेड़िये की तरह कुत्ते के पट्टे पर उसकी नज़र फौरन पहुँचती है। उसको यह पता रहता है कि आदमी को कहाँ, किस तरह, किस रास्ते पहुँचना है। जो यह नहीं जानता वह आदमियत को नहीं जानता और फिर वह आदमी कैसा? समझ में नहीं आता, दुनिया धन कमाने में धीरज खो कर अपने को धीमान कैसे जाने हुए हैं। वह धन की धुन में पागल बनी हुई है और उसी पागलपन का नाम उसने बुद्धिमानी रख छोड़ा है। खूब! उसने सारे सन्त-महन्तों को महलों में ला बिठाया है। गंदी गलियों में मन्दिर बना कर न जाने वे उनको क्या सिद्ध करना चाहते हैं! ज्ञान से दुनिया इतनी दूर हट गई कि उसके हमेशा साथ रहने वाला सुख उसकी पहचान में नहीं आता। सुख का रूप बनाए असन्तोष उसे लुभाए फिरता है और घुमाए फिरता है। हिरन की तरह लू की लपटों को पानी मान कर दुनिया उसके पीछे-पीछे दौड़ी चली जा रही है। तुम बुद्धिमानी के साथ सुख कमाने में लगो। उसे असंतोष के पीछे दौड़ने दो।

—'जीवन साहित्य' जनवरी १९४८ ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेठ जी की सूझ–

–श्री मोहनलाल मेहता, सिद्धान्त प्रभाकर

"मोहन ! तुम लोग आखिर चाहते क्या हो ? क्या समाज और धर्म को सर्वथा नष्ट करना है ? जो बातें आज तक हमारे इतिहास में नहीं घटीं, उन बातों को घटा करके क्या इतिहास पर धब्बा लगाना चाहते हो ? जिन करतूतों का सेवन आज तक हमारे पूर्वजों ने नहीं किया, उनका सेवन करके क्या पूर्वजों को मूर्ख और बुद्धू सिद्ध करना चाहते हो ? हमने अपने जीवन के ५० वर्ष व्यतीत कर दिये किन्तु आज तक इस ग्राम के जीवन में इसप्रकार की कलंक जनक घटना घटित नहीं हुई। तुम लोग पढ़ते क्या हो, नये नये उत्पातों की खोज किया करते हो। अरे हम लोग भी तो कभी पढ़ते थे किन्तु हमारे मस्तिष्क में तो कभी इस प्रकार की कल्पना तक नहीं आती थी। अंग्रेजी की शिक्षा क्या आई, धर्म का नाश ही होगया। और ये संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित पूर्णचन्द्र जी ! मैं तो इन्हें बहुत धर्मनिष्ठ समझता था। सोचता था कि यह बीमारी अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों में ही है, संस्कृत के विद्वान् तो इससे सर्वथा परे हैं किन्तु यहाँ तो माजरा कुछ और ही है। जैसे ये अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबू लोग हैं वैसे ही ये शास्त्र के तथाकथित मर्मज्ञ भी ! पता नहीं, सभी की बुद्धि में कौन सी विकृति आगई है ? किसी की बात भी तो नहीं मानते ! जो कुछ करते हैं, अपनी इच्छा से ! न किसी को पूछना और न किसी की सच्ची सलाह मानना ! इस प्रकार की बातें अब अपनी सीमा का उल्लंघन कर चुकी हैं। अब तुम लोगों को पूर्ण रूप से सावधान हो जाना चाहिए। इसप्रकार से समाज की व्यवस्था को बिगाड़ना और धर्म की पवित्रता पर कलङ्क लगाना ठीक नहीं। याद रखो, इस प्रकार की हरकते नहीं छोड़ी तो पश्चात्ताप करना पड़ेगा।" संघ के तथाकथित अध्यक्ष सेठ ········जी ने क्रोध से अपने वदन को विवर्ण करते हुए कहा।

"आखिर बात क्या है ? क्या हम से संघ की कोई आशातना होगई है ? क्या धर्म का कोई अपराध हो गया है ? क्या समाज के किसी नियम का भङ्ग हो गया है ? कोई असभ्य अपराध तो नहीं हुआ ? आप के इस क्रोध से भय लगता है। कृपया यह तो कहिए कि आप किस घटना से इतने क्षुब्ध हैं ? कुछ मालूम तो हो ! केवल क्रोध से हम लोग वास्तविक स्थिति का पता नहीं लगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते। शान्त होकर बताइये कि हम लोगों से क्या भूल हुई ?" मैंने सेठजी की क्रोधाग्नि पर थोड़ा सा शीतल जल छींटते हुए प्रश्न किया। सेठजी की क्रोधाग्नि तो और भड़क उठी। ऐसा होना स्वाभाविक ही था क्योंकि अग्नि पर जब तक पूरा पानी नहीं पड़ता, वह बढ़ती ही रहती है। थोड़ा पानी उसकी उष्णता की वृद्धि ही करता है।

"लज्जा नहीं आती ? ऊँची नाक से पूछते हो कि क्या अपराध हुआ है ? जैसे मालूम ही न हो ! तुम लोग ऊपर से तो इतने सीधे सादे दीखते हो किन्तु अन्दर न जाने क्या भरा हुआ है ? इतने भोले बन जाते हो कि सामने वाला भ्रम में पड़ जाय ! कहते हो—क्या हुआ ? कल भंगियों के घरों में जाकर सफ़ाई किसने की ? हरिजनों के साथ मिलकर गाँव की गलियों में झाड़ किसने लगाया ? मेहतरों की टोकरियों में कूड़ा कचरा भर भर कर गाँव के बाहर किसने फेंका ? मैंने या तुम लोगों ने ? चले हैं गाँव की सफाई करने ! कहते हैं—हैजा फैल रहा है। क्या तुम लोग सफ़ाई न करते तो गांव के सभी निवासी मर ही जाते ? न मालूम बैठे बैठे क्या सूझा करता है !"

मैं बैठा बैठा सेठ साहब का सारगर्भित प्रवचन सुनता रहा। न जाने वे क्या क्या कह गये ! धर्म और समाज की रक्षा के कितने ही सूत्र पढ़ गये ! मैं थोड़ी देर तक कुछ न बोला। संघ-प्रमुख का क्रोध कुछ शान्त हुआ। मैं मन ही मन सोचता रहा—क्या विचित्र दशा है ? 'सत्त्वेषु मैत्री' का आचरण करने वाले भगवान् महावीर के अनुयायियों की यह दशा ! उनके संघ के नेताओं का यह हाल ! महावीर ने शायद ही कभी सोचा होगा कि मेरे वीर अनुयायी मानव-जाति के सच्चे सेवकों का इतना अपमान करेंगे—संज्ञी पंचेन्द्रिय का स्पर्श भी घणित मानेंगे। 'मित्ति मे सव्वभूएसु' का पाठ पढ़ने वाले धर्माधिकारियों के इस आचरण पर दया आती थी।

"सेठ साहब ! भगवान् महावीर का धर्म तो यह नहीं सिखाता कि किसी से घृणा करनी चाहिये। आपने हरिकेशी का नाम तो सुना ही होगा। वे चाण्डाल थे और ऐसा होते हुए भी अपनी साधु-मण्डली में समानभाव से रहते थे। आप कैसे कह सकते हैं कि हम लोगों ने हरिजनों के साथ समानता का व्यवहार करके धर्म का नाश कर दिया ?" मैंने जरा कड़े शब्दों का व्यवहार किया।

'तुम लोग इतने वर्षों तक पढ़ते रहते हो फिर भी इन बातों की वास्तविकता से सर्वथा दूर रहते हो। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि हरिकेशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनि के पात्र तथा शयनादि का सारा सामान अलग रहता था जिसको उनके अतिरिक्त और कोई भी काम में नहीं लाता था। भोजन के समय उनको एक कोने में बैठा दिया जाता था और अलग आहार—पानी दे दिया जाता था। भगवान् महावीर इतने मूर्ख नहीं थे कि एक चाण्डाल को दूसरे सवर्ण साधुओं की कोटि में रखते। अब कभी हरिकेशि मुनि का नाम लेने का साहस न करना।" सेठ साहब ने अभिमान के साथ उत्तर दिया।

"और रामचन्द्र ने शबरी के जूठे बेर क्यों खाये थे, यह भी पूछो न! अरे! वे तो भगवान् थे भगवान्! भगवान् को किसी प्रकार का दोष नहीं लगता। वे तो भक्त की भावना से सब कुछ कर सकते हैं। तुम लोग सामान्य मनुष्य होकर भगवान् की बराबरी नहीं कर सकते। पहाड़ का भार पृथ्वी ही उठा सकती है—सहन कर सकती है, तुम और हम नहीं। जो काम रामचन्द्र ने किया उसको तुम और हम नहीं कर सकते। राम ने तो बन्दरों की सेना से लंका को जीता किन्तु हम लोगों की शक्ति से ऐसा नहीं हो सकता। समझे हो कुछ? अब रामचन्द्र का शबरी के बेर के साथ कभी नाम न लेना!" मैं आश्चर्य पूर्वक सुनता रहा।

"और तुम्हारे हृदय में महात्मा गांधी का स्मरण भी आ रहा होगा। तुम लोग यह समझते होगे कि गांधी जी तो हरिजन बस्ती में ही रहा करते थे। उनके आश्रम में भी कई हरिजन छात्र और छात्राएं थीं। अक्सर करके भोजन सम्बन्धी कार्य वे हरिजनों से ही करवाते थे। किन्तु तुम्हें मालूम है कि तुलसी दास जी ने अपने महाकाव्य 'रामचरितमानस' में क्या लिखा है? यही कि 'समरथ को नहि दोस गुसाईं' अर्थात् जो समर्थ पुरुष होता है उसके सभी कार्य अच्छे हो जाते हैं। गांधी जी की हरिजन सम्बन्धी ये प्रवृत्तियां अच्छी नहीं थीं किन्तु वे एक समर्थ पुरुष थे इसलिए उनको किसी प्रकार का दोष नहीं लगता था। तुम और हम भी इस प्रकार से करने लगें तो भयङ्कर अनर्थ हो जाय।" सेठ जी ने आत्म-प्रवञ्चना भरे शब्दों में उत्तर दिया।

मैं सोचने लगा—वाह री सूझ! तेरी खोज! मनुष्य अपने आपको धोखा देने के लिए क्या क्या नहीं सोच सकता! अपनी अस्मिता तथा जमे हुए संस्कारों की पुष्टि के लिए महापुरुष के निर्दोष चरित्र में भी क्या क्या दोष नहीं ढूंढ सकता! सात्त्विक-पुरुषों के सरल-वचनों को भी किस ढंग से विकृत बना देता है! ऐसी अनोखी सूझ से ही हमारा पतन हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समस्या—

—पं० कैलाश चन्द्र जी शास्त्री

यों तो अहिंसा की चर्चा शुरु हुई नहीं कि लोग बाघ, भेड़िया, सांप, बिच्छु, मच्छर, खटमल, जूं, कुत्ता, बन्दर आदि को मारने न मारने की ही बात छेड़ते हैं। किन्तु आज भारत में अन्न संकट होने के कारण खेती को हानि पहुंचाने वाले पशुओं को मार डालने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। पंजाब राज्य की सरकार ने तो इसके लिये पारितोषिक देने तक की घोषणा कर रक्खी है। अतः आज कल यह प्रश्न जोरों से उठा हुआ है। एक पक्ष इसे अमानवीय समझकर रोकना चाहता है तो दूसरा पक्ष इसके किये बिना अन्न की सुरक्षा को संभव नहीं मानता। सारांश यह है कि उक्त पक्ष को लेकर चिरकाल से दो पक्ष चले आते हैं, एक पक्ष इन जीवों की सुरक्षा को मानवीय दृष्टि से उचित मानता है और दूसरा पक्ष ऐसे जन्तुओं के विनाश को आवश्यक मान कर प्रकारान्तर से अहिंसा को ही अनावश्यक समझता है। दूसरे पक्षवादी कुछ लोग देश विशेष, काल विशेष और परिस्थिति विशेष में अहिंसा को भले ही व्यवहार्य और आवश्यक मानें, किन्तु उसके सार्वत्रिक उपयोग को स्वीकार नहीं करते। अधिकांश जन तो इस प्रश्न की ओटमें अहिंसा की ही खिल्ली उड़ा कर उससे बचकर निकल जाना चाहते हैं। ऐसे मनुष्यों के विषय में एक बार गान्धी जी ने लिखा था—'जान पड़ता है कि इस फेर में पड़कर कि मनुष्येतर प्राणियों को मारना चाहिये या नहीं, हम अपने सामने पड़े हुए रोज के धर्म को भूल जाते हुए से लगते हैं। सर्पादि को मारने के प्रसंग सबको नहीं पड़ते हैं। उन्हें न मारने योग्य दया या हिम्मत हमने नहीं पैदा की है। अपने में रहने वाले क्रोधादि सर्पों को हमने दया से, प्रेम से नहीं जीता है मगर तौ भी हम सर्पादि की हिंसा की बात छेड़कर उभय भ्रष्ट होते हैं। क्रोधादि को तो जीतते नहीं और सर्पादि को न मारने की शक्ति से वंचित रह कर आत्मवंचना करते हैं। अहिंसा धर्म का पालन करने की इच्छा रखने वालों को सांप आदि को भूल जाने की जरूरत है। उन्हें मारने से हाल में न छूट सकें तो इसका दुख न मानते हुए सार्वभौम प्रेम पैदा करने की पहली सीढ़ी के रूप मनुष्यों के क्रोध द्वेषादि को सहन कर उन्हें जीतने का प्रयत्न करें।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा जी की सीख उन मनुष्यों के लिये है जो अहिंसा धर्म का पालन करने की इच्छा रखते हैं। किन्तु आज तो विरले मनुष्य ही ऐसे मिलेंगे जो सचमुच में अहिंसा धर्म का पालन करने की इच्छा रखते हैं। आज तो 'प्राणस्यान्नमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत् ।' संसार में जो कुछ है वह प्राणों के लिये अन्न है—अर्थात् भक्ष्य है, इसी स्मृति वाक्य के मानने वाले देखे जाते हैं। आज का मनुष्य स्वयं अपने पर कोई पाबन्दी लगाना नहीं चाहता किन्तु दूसरे के प्राण लेने के लिये उतारू हैं। आजका मनुष्य मनुष्येतर प्राणियों के लिये तो अभिशाप रूप है ही, धीरे धीरे वह अपने से इतर मनुष्यों के लिये भी अभिशाप रूप होता जाता है। यदि मनुष्य की इस स्वार्थमूलक प्रवृत्ति पर नियंत्रण नहीं लगाया गया तो पशुओं का स्थान मनुष्य ले लेगा और फिर मनुष्य मनुष्य को मारकर स्वयं निष्कंटक होना चाहेगा जैसा कि आज वह अपने को हानिकारक पशुओं को मारकर उनसे अपने प्राण बचाना चाहते हैं। असल में निकृष्ट स्वार्थी मनुष्यों का 'स्व' बहुत सीमित होता है। स्वयं आप और अपने से सम्बन्ध रखने वाले स्त्री पुत्र वगैरह तक ही उनकी मनोवृत्ति सीमित रहती है। इसके बाहर वालों के सम्बन्ध में वे तभी उदार हो सकते हैं जब उससे उनके स्वार्थ में कोई बाधा न आती हो। जो बात मनुष्य के सम्बन्ध में लागू है वही बात मनुष्य समाज के सम्बन्ध में भी लागू हो सकती है—क्योंकि व्यक्तियों का समूह ही तो समाज है। जिस समाज के व्यक्ति जैसे होंगे वह समाज भी वैसा ही होगा। आज का व्यक्ति नैतिक दृष्टि से जितना गिरता जाता है समाज का भी पतन होता जाता है।

यह सत्य है कि व्यक्ति की समस्याओं से समष्टि की समस्याएँ कुछ जुदा हो सकती हैं और इस लिये जो समाज के व्यवस्थापक होते हैं उन्हें व्यक्ति की समस्याओं के साथ साथ समष्टि की समस्याओं पर विशेष ध्यान देना होता है, अथवा समाज व्यवस्था खतरे में पड़ सकती है। अहिंसा के सम्बन्ध में भी यही बात है। व्यक्तिगत अहिंसा और समष्टिगत अहिंसा में थोड़ा पार्थक्य तो होगा ही। अतः जिन खतरनाक जन्तुओं के विषय में यह कहा जाता है कि चूंकि वे खतरनाक हैं इसलिये उन्हें मार डालना चाहिये, अन्यथा समाज पर संकट उपस्थित होगा, उनको लेकर भी व्यक्तिगत और सामूहिक प्रश्न कुछ थोड़ा सा जुदा पड़ता है। उदाहरण के लिये पागल कुत्तों और उपद्रवी बन्दरों को ले लीजिये। व्यक्ति उनसे अपना बचाव कर सकता है किन्तु जिनके ऊपर समष्टि की रक्षा का उत्तरदायित्व है उनका तो यह कर्त्तव्य हो जाता है कि समाज से उन्हें पृथक् कर दें। अब प्रश्न यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह जाता है कि कैसे उन्हें पृथक् करें ? सरल उपाय तो वही है जिसे राज्य सरकारें अपनाती हैं । किन्तु इससे मनुष्य की जिघांसा वृत्ति को प्रोत्साहन मिलता हैं । यह हमें नहीं भूलना चाहिये कि आज हम अपने किसी विरोधी तत्त्व के विषय में, चाहे वह क्षुद्र प्राणी ही क्यों न हो, जो मार्ग सार्वजनिक रूप से स्वीकार करते हैं वह मार्ग मनुष्य समाज की मनोवृत्ति पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता । जैसे आज हम मनुष्य समाज के लिये खेती की रक्षा करने के उद्देश्य से खेती को हानि पहुंचाने वाले हिरन आदि पशुओं को वध्य करार देते हैं । इसका मनुष्य के मन पर यह प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता कि जिससे तुझे हानि पहुंचने की आशंका हो उसे किसी भी तरह अपने मार्ग से दूर करदे । और यह प्रभाव ही उस अशान्ति के के लिये बहुत कुछ उत्तरदायी है, जिसे दूर करने के लिये राष्ट्र परेशान हैं ।

खेद है कि इस भौतिक युग में आत्म नाम के तत्त्वों को तो कब्र में ही दफ़ना दिया गया है अतः सब उसकी ओर से निश्चिन्त होकर केवल भौतिकता के आधार पर सुख शान्ति लाभ करने की तैयारी में व्यस्त हैं । प्राचीन अध्यात्म-प्रेमी ऋषियों का तो यह कहना है कि मनुष्य की प्रत्येक विपत्ति उसके अपने दुष्कर्मों का परिणाम है और प्रत्येक संपत्ति उसके अपने सत्कर्मों का परिणाम है अतः मनुष्य को सदा सत्कर्म करना चाहिये । खेद है कि लोगों ने इस तथ्य को भुला दिया और सत्कर्म का मतलब केवल पूजा पाठ या देवता की चापलूसी मात्र रह गया । परस्पर के व्यवहार की सचाई बिल्कुल जाती रही । 'दुनिया ठगिये मक्कर से रोटी खाइये गुड़ शक्कर से, बस यही मूल मंत्र सब का हो गया है । बेईमानी, खुदगर्जी, लोभ-लालच, आदि जितनी भी बुराइयाँ सब धर्मों में बतलाई हैं, उनसे कोई बचना नहीं चाहता । फलतः मनुष्य समाज पर विपत्तियों का पहाड़ टूटा पड़ता है, कहीं खेती को कीड़े खाते हैं । कहीं हिरन वगैरह चर जाते हैं, कहीं चूहे अन्न खाते हैं, कहीं अतिवृष्टि और कहीं अनावृष्टि से फसल को हानि पहुँचती है । बस टिड्डियों को मारो, कीड़ों को मारो, चूहों को संखिया दो, हिरनों का शिकार करो और इनाम ऊपर से पाओ । सरकारी आदमियों की बेवकूफी, लापरवाही से जो प्रतिवर्ष हजारों टन अन्न सड़ जाता है, गल जाता है और चोरी चला जाता है, उसका कुछ हिसाब नहीं, उन्हें गोली मारना तो दूर, जेल खाने भी कोई नहीं भेजता । कैसा अच्छा न्याय है ? पशु बिचारा पेट भरने के लिए अन्न खाए तो वह वध्य है और सरकारी आदमी बेकार खराब करे तो कुछ भी नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पुरानी कहावत है कि नियत की बरकत होती है । जो मनुष्य में नियत है उसकी थोड़ी सी आमदनी में भी गुजर हो जाती है । यह बात बिल्कुल ठीक है । आज मनुष्य की नियत खराब हो गई है—क्या किसान, क्या मजदूर, क्या व्यापारी और सेठ साहूकार, सब की नियत खराब है । किसान अपने अन्न को छटांकों में ही बेचना चाहता है, चाहे अन्न कितना ही क्यों न पैदा हो, व्यापारी और साहूकार अन्न को गुदामों में रख कर प्रभूत धन कमा लेना चाहते हैं, भले ही वह धन उनके किसी काम में न आये । सारांश यह है कि सब को—भरे पेट वालों को भी—अपना पेट भरने की ही चिन्ता है । खाली पेट वालों का ध्यान किसी को भी नहीं है । ऐसी स्थिति में मनुष्य के मन का यह पाप चूहों, हिरनों वगैरह को मार कर भी उसे खाये बिना नहीं छोड़ सकता ।

यहाँ गांधी जी के एक लेख का उद्धरण देना उचित होगा । यहां यह बतला देना जरूरी है कि एक बार गांधी जी नें बन्दरों के उपद्रव से परेशान होकर उनको मारने की बात कही थी जिससे उस समय खूब वावैला मचा था । उसी समय एक किसान भाई ने उन्हें लिखा—

'हमारे गांव के नजदीक ढोरों का चरागाह है । उसमें पांच सात हजार हरिण हैं, वे हमारे कपास के अंकुर खा जाते हैं । हम बहुत हैरान हैं । ठाकुर लोगों को रक्खें तो वे इन्हें मार सकते हैं । मगर वे तो इनका मांस भी खाते हैं । हमारे जैसे लोगों को आप क्या सलाह दीजियेगा । इसके अलावा एक जाति का कीड़ा हमारे बीज और अनाज खा जाता है । खेत में आग जलावें तो उसमें ये आ पड़ते हैं । यों हमारे अनाज की रक्षा होती हो तो हमें आग जलानी चाहिए या नहीं ?'

गांधी जी का उत्तर

"यह कोई तीसरा आदमी नहीं बतला सकता कि किस हद तक किसी को हिंसा करनी चाहिए । किन्तु सभी को अपनी अपनी शक्ति के अनुसार अपना रास्ता ढूंढना चाहिए । सामान्य रीति से यों कहा जाता है कि मैं बन्दर को मारना शायद अनिवार्य मानूं तो इससे दूसरों का भी हरिण को मारने के लिये तैयार होना न्यायबुद्धि नहीं किन्तु अज्ञानमय अनुकरण है । फिर बन्दर को मारने का निर्णय मैं कर ही नहीं सका हूँ और यह भी नहीं देखता हूँ कि मैं इस निर्णय पर जल्दी आसकूंगा । ऐसे निर्णय से जहाँ तक दूर रहा जा सके, रहने का मेरा प्रयत्न आज है और हमेशा रहेगा । इसके सिवा हरिण को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर रखने के उपाय मिल सकते हैं। यह तो हर एक किसान क्षण क्षण में अनुभव करता है कि खेती के लिए छोटे छोटे कीड़ों का नाश अनिवार्य है। इससे आगे इस वस्तु को ले जाना मेरी शक्ति से बाहर है। हिंसा करने से जिस अंश तक बचना संभव हो, उस अंश तक बचना सबका धर्म है, यह अवश्य कहा जा सकता है।"

प्रकृत समस्या पर महात्मा जी का उत्तर बहुत स्पष्ट है। उस पर किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। यदि मनुष्य समाज और उसके व्यवस्थापक महानुभाव उनकी अन्तिम पंक्तियों का ईमानदारी के साथ पालन करें तो इस तरह की समस्याएँ अनायास सुलझ सकती हैं और इस रूप में सुलझ सकती हैं कि फिर कभी उनका सामना न करना पड़े। किन्तु मनुष्यों ने तो जान ले लेने का ही सरल तरीका अपना रक्खा है। यह तरीका आगे जाकर स्वयं उनके लिये ही खतरनाक प्रमाणित होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि मानव समाज और उसके प्रबन्धक समय रहते सचेत होजायें और अपने लिये दूसरों की जान लेलेने की बढ़ती हुई बीमारी पर कन्ट्रोल लगायें।

[पृष्ठ ४० का शेष]

परीक्षा-परिणाम

विद्याश्रम के विद्यार्थी श्री मोहन लाल खारीवाल बी० काम० (द्वितीय श्रेणी) में, श्री सन्तोष कुमार मुनोत जैनदर्शनाचार्य और आयुर्वेदाचार्य (द्वितीय श्रेणी) में, श्री मोहन लाल मेहता जैन दर्शन शास्त्री (प्रथम श्रेणी) में तथा श्री कांतीलाल दोशी जैनदर्शन शास्त्री (तृतीय श्रेणी) में सफल हुए हैं। बी० ए० की परीक्षा में श्री मोहनलाल मेहता और श्री ज्ञानचंद भारिल्ल द्वितीय श्रेणी में तथा श्री कांतिलाल दोशी भी उत्तीर्ण हुए हैं। इस प्रकार विद्याश्रम का परिणाम शतप्रतिशत है। सबको बधाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिपत्तन के भग्नावशेष

—श्री चन्द्रिका सिंह उपासक एम० ए०

ऋषिपत्तन सारनाथ इस समय खण्डहरों का अवशेष मात्र है। अतीत का गौरव बिखरी हुई ईंटों और पत्थरों से झाँक रहा है। यहाँ के ऊँचे स्तूप, भग्न स्तम्भ, छिन्न भिन्न जर्जर दीवारें सभी दो हजार वर्षों के प्राचीन इतिहास को छिपाये पड़ी हुई हैं। इतनी लम्बी अवधि में इतिहास में अनेक उत्थान पतन हुए; कितने ही समृद्धशाली राज्य अंकुरित हुए, बढ़े और अन्त में काल के गर्भ में समा गये। हमारी संस्कृति और सभ्यता पर न जाने कितनी बार आघात हुए और न जाने उसका स्रोत किन किन दिशाओं की ओर बहा; लेकिन उत्तरी भारत के इतिहास में ही क्या संसार के इतिहास में सारनाथ का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है। उत्तरी भारत का शायद ही कोई ऐसा राज्य रहा होगा जिसका आकर्षण किसी न किसी प्रकार सारनाथ की ओर न रहा हो। भगवान् बुद्ध के धर्म चक्र प्रवर्तन के उपरान्त इसका महत्व अबतक उसी प्रकार अक्षुण्ण बना है।

सारनाथ के उत्खनन से हमें इतिहास की कुछ कड़ियाँ जोड़ने को मिलती हैं। यों तो भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री बड़ी ही अल्प है लेकिन हमारे सौभाग्य से पश्चिमी विद्वानों के प्रयत्न के फलस्वरूप ऐसे उत्खनन बड़े ही सहायक हुए हैं। पश्चिमी विद्वानों के इन उपकारों को हम कभी भी नहीं भूल सकते हैं। इन विद्वानों में जेम्स प्रिन्सेप का नाम तो स्वर्णाक्षरों में अंकित है जिसने भारत की प्राचीन ब्राह्मी लिपि तथा वर्णमाला का सर्व प्रथम पता लगाया। भारतवर्ष के इतिहास की सामग्री को अंधकार से प्रकाश में लाने का वास्तविक श्रेय इसी विद्वान् को है। यदि इस विद्वान् का सौभाग्य हमें न प्राप्त होता तो न जाने अभी भी हम अपने इतिहास को जानने एवं समझने से कितने दूर रहते।

सारनाथ के उत्खनन के फल स्वरूप जो हमें अवशेष प्राप्त हुए हैं उनमें बौद्ध मन्दिर, मठ, स्तूप एवं कुछ थोड़े शिलालेख मिले हैं। कोई सार्वजनिक अथवा राजकीय भवन या अन्य वस्तुएँ प्राप्त नहीं हुई हैं। कारण स्पष्ट है। सारनाथ वास्तव में बौद्धधर्म का एक केन्द्र रहा है। यहाँ पर केवल बौद्ध भिक्षुओं का ही निवास रहा। इसके चारों तरफ प्रायः कोई वस्ती नहीं थीं बल्कि वन जैसा था। यह यथार्थ में मिगदाय' (मृगदावं) था। अभी हाल तक यहाँ मृगों का निवास था। इसलिये यह स्थान कभी भी साधारण गृहस्थ के अनुकूल रहा ही नहीं, केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनागारिक भिक्षुगण ही इस पवित्र स्थान की अपेक्षा करते थे । अवशेषों में प्राप्त सबसे प्राचीनतम वस्तु 'देवानंपिय पियदासिराजा' अशोक का धर्मलेख है। यह शिलालेख सम्भवतः अशोक ने तब प्रतिष्ठापित कराया, जब वह अपनी तीर्थ यात्रा के निमित्त यहाँ आया था । इस शिलालेख में अशोक भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों को सचेत करते हुए कहता है "केनपि संघे भेतवे । ए चुँ खो भिखू वा भिखुनि वा संघं भखति से ओदातानि दुसानि संनंधापयिया आनावाससि आवासयिये । हेवं इयं सासने भिखुसंघसि च भिखुनि-संघसि च विनपयितविये" अर्थात् "यदि कोई संघ में 'भेद' करेगा, चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी सफेद वस्त्र पहनाकर (संघ से) बाहर कर दिया जावेगा । यह शासन भिक्षु-संघ और भिक्षुणी-संघ ऐसा ही जाने" । उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि अशोक ने अपना समय सद्धर्म (बौद्धधर्म) को अनुप्राणित करने में लगाया था । साथ ही यह भी पता चलता है कि वह धार्मिक मामलों में भी उसी प्रकार प्रधान था जिस प्रकार राजनैतिक विभाग में, भले ही औपचारिक रूप से प्रधान न रहा हो । अशोक के इस शिलालेख के अतिरिक्त एक शिलालेख कुषाण सम्राट कनिष्क (७८ ई० स०) काल का प्राप्त हुआ है । इसमें कनिष्क सम्वत् ३ (८१ ई० सन्) का उल्लेख है । और भिक्षु पुष्यबुद्धि के बोधिसत्व की मूर्ति, छत्र और दण्ड के दान का विवरण हैं । इन शिलालेखों के अतिरिक्त छोटे मोटे कई और भी शिलालेख प्राप्त हुए हैं । जिनमें दो गुप्तकालीन, एक पालवंशीय और एक चेदिवंशीय राजा कर्णदेव का शिलालेख हैं । एक शिलालेख प्रसिद्ध गहड़वाड़ वंशीय राजा गोविन्दचन्द्र (ई० स० १११४–११५४) की महिषी कुमारदेवी द्वारा लिखवाया हुआ प्राप्त हुआ है। इस शिलालेख से गोविन्दचन्द्र का वंश-परिचय तथा कुमारदेवी के बौद्ध धर्मावलम्बी होने का पता चलता हैं। इसी शिलालेख में 'धर्मचक्र जिन विहार' नामक बौद्ध मठ के दान का भी उल्लेख है। ये सभी शिलालेख सारनाथ के म्यूजियम में सुरक्षित हैं। एक शिलालेख मुगल सम्राट अकबर महान् का भी प्राप्त हुआ है जो चौखंडी स्तूप के ऊपर अभी ज्यों का त्यों लगा हुआ है ।

खंडहरों से प्राप्त भवन या तो बौद्धमन्दिर हैं या बौद्धमठ । मन्दिरों में एक मन्दिर बहुत ही विशाल मालूम पड़ता है । मन्दिर के पश्चिम दिशा के अन्त में मूर्ति का प्रकोष्ठ था । यहीं मूर्ति स्थापित थी । दीवारों की चौड़ाई (जो कहीं कहीं १० फीट से भी अधिक है) देखने से स्पष्ट जान पड़ता है कि मन्दिर का शिखर गगन–चुम्बी था । मन्दिर के सामने प्रॉंगण है । इस प्रांगण में अनेक छोटे बड़े स्तूप हैं । ये स्तूप श्रद्धालु भक्तों द्वारा बनवाये गये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन स्तूपों की ऊँचाई इस समय ४ फीट से ८ फीट तक है। इस मन्दिर के मूर्तिवाले प्रकोष्ठ के दक्षिण पार्श्व में एक स्तूप है जो कि कभी छत्रयुक्त था (यद्यपि अब नहीं है लेकिन चिन्ह शेष है) यह स्तूप चारों तरफ ऊंची ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है और एक तरफ उसका द्वार है। स्तूप के नीचे का भाग मौर्य कालीन प्रस्तर के एक प्राचीर से जो करीब ४ फीट ऊंचा होगा, घिरा हुआ है। इस प्राचीर के पत्थर भी उसी प्रकार चमकीले पालिस से युक्त हैं जैसे अशोक स्तम्भ। यह स्थल सम्भवतः भगवान् बुद्ध के उपदेश करने का था। भगवान् बुद्ध जहाँ कहीं भी निवास करते थे और जिस स्थान पर बैठ कर वे उपदेश करते थे उस स्थल को बौद्ध ग्रन्थों में गन्धकुटी कहा गया है। सम्भवतः यह स्थल भी इसी प्रकार की एक गन्धकुटी था। इस मन्दिर के अतिरिक्त छोटे छोटे अनेक मन्दिर यत्र तत्र थे। इन मन्दिरों की सीमा के बाहर हमें मठों के अवशेष मिले हैं। अभी तक हमें ६ मठ मिले हैं। कुछ मठ तो गुप्त-कालीन या उससे भी प्राचीन हैं और कुछ बारहवीं सदी के उपरान्त के भी हैं। सबसे विशाल मठ 'धर्म चक्र जिन विहार' है जो गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी द्वारा निर्मित था। इस विहार का निर्माण गुप्त कालीन अथवा उससे भी पहले के मठों के खंडहरों पर ही हुआ था, उत्खनन से यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है। मठों में भिक्षुओं के रहने के छोटे छोटे कमरे जो कि प्रायः एक कतार में हैं इन कमरों के सामने बरामदे, आँगन, आँगन में कुएँ और किसी किसी में बुद्ध प्रतिमा के लिये स्थान आदि प्राप्त हुए हैं। इन्हीं मठों में बौद्ध भिक्षु निवास करते हुए अध्ययन अध्यापन तथा चिन्तन किया करते थे।

मीलों दूर से ही आपको यहाँ के दो विशाल स्तूपों के उच्च शिखर दिखाई पड़ने लगते हैं। यदि आप उनके समीप भी जायँ तो भी आप को दो ही बड़े स्तूप मालूम पड़ेंगे लेकिन वास्तव में यहाँ तीन विशाल स्तूप थे। तीसरा स्तूप अब केवल अपनी नींव तथा विदेशी यात्रियों के उल्लेखों से ही ज्ञात होता है।

सारनाथ जाते समय सबसे पहले चौखंडी स्तूप के दर्शन होते हैं। इस स्तूप के दो भाग हैं। इतिहास की दृष्टि से भी और कला की भी दृष्टि से इसका निचला हिस्सा जिसकी ईंटें जर्जर होकर यत्र तत्र बिखरी हुई गिर रही है, अति प्राचीन हैं। सम्भवतः मौर्यकालीन या उसके बाद का। इसके शिखर की इमारत, तथा कला नीचे के हिस्से से भिन्न, मुगलकालीन है। सौभाग्य से इसके निर्माण की तिथि आदि का ब्योरा हमें इसी में लगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए मुगलसम्राट अकबर के शिलालेख से भली भाँति प्राप्त हो जाता है। इस शिलालेख का सारांश यों है "अल्लाह अकबर। सातों देश के भूपाल स्वर्गवासी हुमायूँ एक दिन इस स्थान पर आकर बैठे थे और इस प्रकार उन्होंने सूर्य के प्रकाश में वृद्धि की थी, इसी से उनके पुत्र और 'दीन' के नौकर अकबर ने आकाश छूने वाला एक ऊँचा स्थान बनवाने का संकल्प किया था। ९९६ हिजरी (सन् १५८८) में यह सुन्दर भवन बना।" यह लेख फारसी भाषा में है। स्तूप काफी ऊँचा है अतः जब हम स्तूप के एक दम ऊपरी सिरे पर पहुँच जाते हैं तो काशी तो धुँधली अस्पष्ट दिखाई ही देती है लेकिन सारनाथ की अनुपम छटा निहार कृतकृत्य होते हैं। अकबर ने यह ऊपर का भाग अपने पिता हुमायूँ की स्मृति में बनवाया था। शेरशाह से पराजित होकर हुमायूँ फारस भाग रहा था तो उसने एक रात छिपकर इसी स्थल पर बिताई थी। इसी कारण यह भवन बना। स्तूप के नीचे का भाग सम्भवतः उसी स्थल पर बना हुआ है जहाँ भगवान् बुद्ध की उनके पंचवर्गीय भिक्षुओं से सर्वप्रथम भेंट हुई थी। इस स्तूप का उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण में भी मिलता है। इस स्तूप की खुदाई ऊपरी भाग से नीचे तक प्रारम्भ में पुरातत्व विभाग द्वारा हुई थी। लेकिन कोई वस्तु प्राप्त नहीं हुई थी। ऊपर से ऐसा प्रतीत होता है कि नीचे कुआँ है। चूँकि खुदाई ऊपर से नीचे आकर एक तरफ निकाल दी गई है और उसका ऐसा आकार होगया है जैसे चूल्हा। अतः यही कारण है कि आजकल इसके आसपास के जन साधारण में इस चौखंडी स्तूप का नाम "सीताजी की रसोईं" से प्रसिद्ध है। यद्यपि स्तूप के इस उत्खनन की घटना सौ वर्षों के ही लगभग होगी लेकिन जन साधारण में चीजें किस प्रकार विकृत अवस्था में बदल जाती हैं और किस प्रकार मूल सर्वथा बदल जाता है इसका अनुमान हम इससे अच्छी तरह लगा सकते हैं। हमारा इतिहास हमारी संस्कृति इसी प्रकार यत्र तत्र छद्म वेष में हमारे बीच बिखरी पड़ी है। स्वतंत्रता के उपरान्त हमारा यह कर्त्तव्य है कि अपने इतिहास का पुनरुद्धार कर अपने को पहचानें।

दूसरा स्तूप जो हमें खण्डहरों के मध्य दिखाई पड़ता है वह है 'धम्मेख स्तूप'। यह स्तूप कब बना और किसने बनवाया यह अभी अनिश्चित ही है। कोई कोई इसे मौर्य कालीन बताते हैं तो कोई इसे गुप्तकाल में रखने की चेष्टा करते हैं। जो हो यह तो निश्चित ही है कि यह स्तूप बुद्ध के 'धर्म-चक्रप्रवर्त्तन' अर्थात् 'सर्वप्रथम धर्मोपदेश' के स्थल पर ही बना हुआ है। सर्व प्रथम भगवान् बुद्ध ने अपना उपदेश यहीं बैठ कर अपने पंचवर्गीय भिक्षुओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था। स्तूप बड़ा ही विशाल है। भग्न होने पर भी इसकी विशालता अभी भी है। यह ईंटों और पत्थरों का बना हुआ है। पत्थरों पर सुन्दर कमल के फूल, कलापूर्ण रेखाएँ आदि बड़े ही सुन्दर ढंग से रचे हुए हैं।

तीसरा स्तूप जो 'धम्मेख स्तूप' के ठीक पश्चिम दिशा की ओर प्रायः सौ गज की दूरी पर है, अब धरातल के ही बराबर है। यह है सम्राट अशोक निर्मित 'धम्मराजिक' स्तूप। इसका विवरण ह्वेनसांग ने किया है। इस समय स्तूप की केवल नींव ही बची हुई है। इस स्तूप में सम्भवतः भगवान बुद्ध की पवित्र 'धातु' (अस्थि) संस्थापित की गई थी। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमें कुछ भी प्राप्त नहीं है। प्राचीन इमारतों अथवा खंडहरों को विनष्ट करने के प्रथमतः उत्तरदायी मुसलमान आक्रमणकारी तो हैं ही, लेकिन बहुत अंशों में हम लोग भी हैं। पुरातत्व विभाग की स्थापना के पूर्व जब किसी को ईंटों, पत्थरों तथा इमारत की अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता होती थी तो वह सीधे ऐसे खंडहरों में जाकर इच्छानुसार सामान उठा लाता था। यह धम्मराजिक स्तूप भी बनारस के राजा चेतसिंह के दीवान जगतसिंह की कोठी बनवाने में लग गया। सन् १७९४ ई० में वे इसको तुड़वा कर उसकी सभी सामग्री उठा लेगये और तब से यह स्तूप अपना नाम भी बचाने में असमर्थ हो रहा है। यही नहीं, सारनाथ के खंडहरों के पत्थर बनारस के वरुणा के पुल को बनवाने के लिये काम में लाये गये थे। अभी हाल में सन् १९४३ ई० में जब पुराना बना हुआ यह पुल बाढ़ में क्षतिग्रस्त हो गया तो ऐसे अनेक अवशेष प्राप्त हुए। ये सभी अब सारनाथ म्युजियम में हैं।

सारनाथ प्राचीन तक्षण कला की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। यहां प्राप्त मूर्तियां अपने अपने युग की उच्च कोटि की हैं। संसार की मूर्तियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान पाने वाला अशोक स्तम्भ का सिंह-शिखर यहीं पर प्राप्त हुआ है। इस शिखर के चार सिंह, उनकी भाव-भंगी, उनके अवयवों का गठन, इसके चित्तीदार पत्थर की काँच जैसी पालिस सभी अद्वितीय हैं। इसकी समता कोई भी मूर्ति नहीं कर सकती है। इसकी अद्भुत कला का पता इसी से चलता है कि आज स्वतंत्र भारत ने भी इसी को अपना राजकीय चिन्ह माना है। इस स्तम्भ शिखर से इस बात का भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि मौर्य्य कालीन तक्षण कला कितनी विकसित और उन्नत थी। पत्थर पर जो पालिश है उसका पता अभी तक नहीं लग सका है। इस विज्ञान के युग में भी जब कि हम प्रत्येक बातों में विकसित हुए हैं फिर, भी इस प्रकार की पालिश अभी तक नहीं बन पाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारनाथ में एक बुद्ध की मूर्ति 'धर्म चक्र प्रवर्त्तन मुद्रा' में प्राप्त हुई है। यह गुप्त कालीन है। गुप्त काल की प्राप्त सभी मूर्तियों में यह श्रेष्ठतम है। गान्धार शैली जो कि कनिष्क काल से प्रारम्भ हुई वह गुप्त काल में इस मूर्त्ति के रूप में अपनी चरम सीमा पर पहुँची है। विदेशी गान्धार शैली अब पूर्ण रूप से भारतीय होकर सामने आती है। इस मूर्ति के अतिरिक्त अनेक बोधिसत्वों, बुद्धों, यक्षों तथा कुछ हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। पत्थर की अनेक पट्टियों पर बुद्धचरित निर्मित है। ये सभी मूर्तियां सारनाथ म्युजियम में सुरक्षित हैं जो कि अवश्य दर्शनीय हैं।

आधुनिक सारनाथ में भी मन्दिर, मठ और धर्मशाला हैं। यहाँ पत्थरों का बना हुआ एक विशाल बौद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर को मूलगंध कुटी विहार" के नाम से पुकारते हैं। इस मन्दिर का निर्माण महाबोधि सभा के संस्थापक स्व० अनागारिक धर्मपाल जी द्वारा हुआ था। इसमें बुद्ध की प्रतिमा गुप्तकालीन उस प्रतिमा की प्रतिरूप है जो म्युजियम में रखी हुई हैं। मन्दिर की दीवारों पर जापानी चित्रकार कोसेट्सु नोसु द्वारा भगवान् बुद्ध का जीवन चरित चित्रित है। ये चित्र बड़े ही आकर्षक एवं सजीव हैं। आधुनिक चित्र कला के ये सुन्दर नमूने हैं। चित्रकार का यह कार्य वास्तव में सराहनीय है। यहाँ एक चीनी भिक्षुओं तथा एक बर्मी भिक्षुओं का भी मन्दिर है। एक विशाल धर्मशाला भी है जिसका निर्माण राजा बिड़ला ने किया है। सारनाथ के इस पवित्र क्षेत्र में एक विशाल वट वृक्ष की छाया में धम्मेख स्तूप के पास एक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर भी विद्यमान है। इस मन्दिर का निर्माण सन् १८२४ ई० में हुआ था और इसमें ग्यारहवें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ् जी की प्रतिमा विराजमान है। यह मन्दिर भी दर्शनीय है।

सारनाथ में यद्यपि अब मृगों का वास नहीं, वन खंड का कहीं दर्शन नहीं, आधुनिक साधनों की अप्राप्यता भी नहीं फिर भी इसकी भूमि में इसके क्षेत्र में जो शान्ति, शुचिता और सौन्दर्य व्याप्त है वह काशी के किसी भी क्षेत्र में दुर्लभ है। इस खुले हुए वातावरण में जहाँ एक ओर 'मूलग्रन्ध कुटी विहार' अपनी उच्च शृंगों से युक्त खड़ा है, दूसरी ओर भग्न 'धम्मेख स्तूप' अपनी अनित्यता को प्रदर्शित करता हुआ अपना सिर ऊँचा किये स्थित है, वह शोभा, शान्ति और शुचिता सचमुच वर्णनातीत और परम पुनीत है। धन्य है यह तपोमय पुण्य भूमि! धन्य ह तथागत का अनुपम प्रताप!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रश्न—(गद्य काव्य)

मेघ !

तुम आये,

खेत को हरा भरा देखने के इच्छुक किसान ने समझा—तुम मेरे लिए आये। उष्णता से व्याकुल मयूर ने समझा—तुम मेरे लिए आये।

मेघ !

उद्यान में झूलती हुई सुकुमारियों के मृदुगान की तान ढीली पड़ चुकी थी, झूले की गति मन्द पड़ गई थी, तुम्हारा स्वरूप देख कर वे स्फुरित हो उठीं, उन्होंने समझा—तुम हमारे लिए आये।

मेघ !

कवि की हृदय-गति की धारा मन्द हो कर कुछ सूखने का प्रयास कर रही थी, सहस्रों लहरों से फेनेच्छल उमड़ता हुआ समुद्र लहरों की सुन्दर मुस्काहट को—खो बैठा था, उसे देख कर कवि का हृदय व्याकुल हो उठा था।

तुम आये !

मन्द धारा फिर से प्रवाहित हो उठी, कवि का सूखा संसार फिर से खिल उठा; तुम्हारी अमृतमयी बूँदों को पाकर, और उसी आनन्द में पूर्ण-निमग्न होते हुए कवि ने समझा—तुम मेरे लिए आये।

परन्तु ! मेरा एक प्रश्न है—

मेघ ! तुम किसके लिए आये हो ?

कुमारी सत्यवती जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति का आधार-व्यक्ति स्वातन्त्र्य-

–प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य,

संस्कृति द्वन्द्व—

आजसे करीब २६०० वर्ष पूर्व की विचारधाराओं में जो संघर्ष चल रहा था वह भी आज की ही तरह एक प्रकार का वर्ग संघर्ष ही था। वैदिकसंस्कृति का उपासकवर्ग जन्मना जातिव्यवस्था, ब्राह्मणवर्ग का विशेष धर्माधिकार, आदि विशेषाधिकारों की रक्षा में सन्नद्ध था। इस वर्ग ने यह घोषणा की कि–ब्राह्मण ब्रह्मा के सर्वोच्च स्थान मुखसे उत्पन्न हुआ, सृष्टि का ब्रह्म नियुक्त स्वामी है। एक ईश्वर की कल्पना भी उसी वर्ग के हित संरक्षण के लिए थी। ईश्वर के एजेन्ट यही ब्रह्ममुख थे। क्षत्रिय और वैश्य वर्ग रक्षा करे और धन कमावे पर नकेल पुरोहित वर्ग के हाथ में रहे। तात्पर्य यह कि वैदिक संस्कृति एकेश्वरवादी संस्कृति थी जो स्वभावत: एक वर्ग विशेष के द्वारा अपनी हित सुरक्षा के लिए प्रचारित की जाती थी। ईश्वर का सृष्टि के ऊपर निर्बाध अधिकार है, उसके बिना पत्ता भी नहीं हिलता। ईश्वर ही अज्ञ प्राणियों को स्वर्ग और नरक भेजनेवाला था। इसी ईश्वर की वाणी वेद हैं जिनमें ब्राह्मण के वर्चस्व और उच्चत्व की विविधप्रकार से घोषणाएँ मौजूद हैं। उन वेदानुसारी स्मृतियों में तो स्त्री की तुच्छता, शूद्र की अस्पृश्यता आदि की व्यवस्थाएँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। इनमें तो यह भी लिख दिया है कि—" "ब्राह्मण यदि किसी के धनको लूट लेता है तो वह अपना ही धन वापिस लेता है और उस व्यक्ति का उद्धार करता है, क्यों कि ब्रह्मा ने सृष्टि को उत्पन्न करके ब्राह्मण को सौंप दिया था। ब्राह्मण की असावधानी में ही दूसरे लोग आज तक उसे भोगते रहे हैं।" जन्मना जाति व्यवस्था का अर्थ है गुणकर्म की अवहेलना। इस तरह ईश्वरवादी संस्कृति में ईश्वर के नाम से वर्ग विशेष के भोगविलास, शासन और उच्चत्व का बोलबाला था। मानव जाति का बड़ा भाग इस वर्ग के सुखसाधन के लिए ही उद्घोषित था। राजा सामन्त आदि इसी ईश्वर के छुट भैया थे। इनमें ईश्वरांश का समर्थन विप्रवर्ग के द्वारा बराबर होता था। मानवजाति का पददलन दु:ख, दरिद्रता, हीनता, भुखमरी, दासप्रथा आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मों के फलों के द्वारा हो रहा था। धर्म के नाम पर हजारों संस्कार इस वर्ग की आजीविका के साधन बनाए गए। गर्भ से लेकर मरण तक अनन्त संस्कारों के जाल में यह नरतनधारी यन्त्रारूढ पशु की तरह परिचालित होता रहता था। बुद्धि और विवेक का काम ही नहीं था। आज का वर्गसंघर्ष आर्थिक आधारों से है। क्वचित् रंग भेद भी इसके मूल में हैं। तात्पर्य यह कि जब कोई वर्ग अपने लिए विशेष अधिकार और व्यवस्थाएँ चाहता है तब यह स्वाभाविक है कि शेष लोगों में असन्तोष उत्पन्न हो और उसी का स्वाभाविक फल है संघर्ष, युद्ध और हिंसा। स्त्री और दासों की दशा पशुओं से भी गई गुजरी थी। दासी और दास धनादि की तरह परिग्रह में शामिल थे। उच्चवर्ग द्वारा मानवजाति का बहुभाग दासता दीनता और पतित दशा में जानबूझ कर रखा जा रहा था। भारतवर्ष धर्मप्राण भूमि कही जाती रही है। इसलिए धर्म और धर्मग्रन्थ के नाम पर धर्माचार्यों द्वारा ही इस परम विषम दशा का समर्थन किया जाता था। स्त्री वेद न पढ़ सके। शूद्र यदि वेद को सुन ले तो उसके कानों में सीसा पिघला कर डाल दिया जाय। ये दारुण व्यवस्थाएँ धर्म के नाम पर प्रचारित थीं। जिसवर्ग को यह विश्वास हो कि ब्रह्मा ने हमें शासन करने के लिए उत्पन्न किया है, सारी सृष्टि के मालिक हम हैं, उस वर्ग के द्वारा सत्ता और फिर धर्मसत्ता के अहङ्कार से कितना निर्दलन अपर वर्ग का न होता होगा? धर्म के और ईश्वर के अहङ्कार ने जगत में जितना खून बहाया है उतना प्लेग मरी दुर्भिक्ष आदि अन्य कारणों ने नहीं। मानवाधिकार की कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं थी।

इसकी एक अपनी भाषा थी। उस भाषा का उच्चारण पुण्य माना जाता था और अन्य लोकभाषा या जन भाषा का उच्चारण पाप। इनने तो यहाँ तक व्याख्या की कि प्राकृत भाषा के लट्ठि शब्द से लाठी अर्थ का बोध नहीं होता किन्तु लट्ठि से संस्कृत यष्टि का स्मरण होता है और उससे अर्थ बोध होता है। अर्थात् अर्थ बोधन शक्ति संस्कृत शब्दों में मानी गई प्राकृत शब्दों में नहीं। भाषा पर भी वर्ग का ही अधिकार था। नाटकों में स्त्री और शूद्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग कराना इस भाषा प्रयुक्त वैषम्य का साक्षी है। और इस सबका मूल आधार था जन्मना वर्ण व्यवस्था का स्वीकार करना। फिर राज करण में उच्च स्थान, सर्वोच्च नौकरी आदि इसी वर्ग के लोगों के लिए ही सुनिश्चित से हो गए थे। जब चारों ओर से संस्कृति, धर्म, ईश्वर, स्मृति आदि का ऐसा चक्रव्यूह बनाया गया तब उसमें अन्य के प्रवेश की कोई आशा ही नहीं थी। स्मृतियों में कर्मनाशा नदी के उस पार विहार और मगध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश में जाने पर प्रायश्चित्त का विधान था। आस्तिकता की दीवाल इतनी मजबूत उठाई गई कि जिसने भी प्रचलित तत्त्वों में शंका का सर्वोच्च अधिकार न मानकर बीतराग पुरुष के तत्त्वज्ञान की प्रमाणता की आवाज उठाई, वही उसके बाहिर कर दिया गया।

आज संसार में अशान्ति का कारण रंग भेद ही हो रहा है। गोरे रंग ने ईश्वर के नाम पर यह व्यवस्था घोषित की कि वह एशियाई काले रंग पर शासन करेगा। उसमें भी रक्त के उच्चत्त्व की भावना ने जोर पकड़ा। हिटलर ने जर्मन युवकों को यह समझाया कि जर्मन रक्त आर्य रक्त है और पवित्र है। यहूदियों आदि को कोई हक जर्मन भूमि पर रहने का नहीं है। और इसका परिणाम द्वितीय महायुद्ध के रूप में मानव जाति को भोगना पड़ा। तात्पर्य यह कि आजतक के संघर्षों का विभाजन दो श्रेणियों में हो जाता है। एक श्रेणी वह जो जाति, ईश्वर, शास्त्र, रंग आदि के नाम पर अपनी उच्चता और विशेषाधिकारों की रक्षा करना चाहती और दूसरी वह जो मानव मात्र ही नहीं प्राणिमात्र में समानाधिकार चाहती है।

मानवाधिकार की दार्शनिक घोषणा—

उस विषम युग में श्रमण सन्त भगवान् महावीर ने सर्व प्रथम वेद की गुलामी को मानव बुद्धि से हटाकर पुरुषानुभव की प्रतिष्ठा बढ़ाई। उनने कहा कि वीतरागी तत्त्वज्ञानियों की वाणी प्रमाण है। वह भी जब बुद्धि में जँच जाय, परीक्षा कसौटी पर अच्छी तरह कस ली जाय। साथ ही साथ यह घोषणा की कि संसार का प्रत्येक चेतन और अचेतन द्रव्य स्वतन्त्र है। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर कोई नैसर्गिक अधिकार नहीं है। इस परम व्यक्ति स्वातन्त्र्य की घोषणा ने वर्गसत्तावादियों की नींव को हिला दिया। प्रत्येक द्रव्य के स्वातन्त्र्य का अर्थ है परम अहिंसा। अर्थात् किसी दूसरे पदार्थ पर या प्राणी पर अधिकार जमाना या उसे अपने अधीन रखना अनधिकार चेष्टा है, दूसरे के हक को हड़पना है, दूसरे के स्वतन्त्र स्वरूप की हत्या है। परम आध्यात्मिक आचार्य कुन्द कुन्द ने इसी तत्त्व को लिखा है—

"अण्णदवियेण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणुप्पादो।
तम्हा दु सव्वदव्वा उपज्जंते सहावेण ॥ [समयसार गा० ३८५]

कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य में गुणोत्पाद नहीं कर सकता। सभी द्रव्य अपने अपने स्वभाव से उत्पन्न होते हैं, परिणमन करते हैं। तात्पर्य यह कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व में अनन्त आत्माएँ और अनन्त ही पुद्गल परमाणु आदि अचेतन द्रव्य प्रत्येक अपने में परिपूर्ण हैं अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं। जहाँ तक अचेतन द्रव्यों का प्रश्न है उनसे समाज व्यवस्था आदिमें स्वयं कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे चेतन के अधीन रहकर परिणति करते हैं। जिसके अधीन जितने पदार्थों का समुदाय है वह उसे अपने से प्रभावित करता है। इतना होने पर भी वह उसकी सत्ता का अपहरण नहीं कर सकता। चेतनों में भी वृक्ष, कीड़ा, मकोड़ा, पशु, पक्षी आदि जिनकी आत्माएँ अविकसित हैं मानवीय साधनों से इतनी परतन्त्र बना दी गई हैं कि इनका न अपना कोई समाज है और न कोई समाज व्यवस्था ही। देवों और नारकियों का समुदाय प्रकृत्या परिचालित है। उसकी व्यवस्था हमारी कर्त्तव्य बुद्धि के बाहर की है। मात्र मनुष्य समाज ऐसा बचता है जिनके नव निर्माण के लिये हम कुछ कर सकते हैं। इसमें जाति वर्ण रंग देश प्रान्त सम्प्रदाय आदि के सैंकड़ों भेद पड़े हुए हैं जिनके अहंकार सहस्रमुख भाषा होकर फूटते हैं। जब स्थिर स्वार्थी गुट देश जाति वर्ण आदि किसी भी नाम से अपने लिये संरक्षण चाहता है तब जनता के मन में यह सहज प्रश्न उठता है कि 'मानव मानव में भेद कैसा ?' इस विचारधारा को ईश्वर कर्म धर्म शास्त्र आदि के नाम से बराबर दबाने का प्रयत्न किया गया। पर देखा जाय तो यह है खरा आर्थिक और राजनीतिक प्रश्न। अतः जब तक व्यक्ति मात्र की अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार नहीं की जाती और सब में समानाधिकार की घोषणा नहीं की जाती तब तक संघर्ष हिंसा और युद्धों का अन्त नहीं आ सकता। व्यक्ति स्वातन्त्र्य और समानाधिकार स्वीकृत होजाने पर सब में नियमतः सहयोग मूलक व्यवस्थाओं का निर्माण होने लगेगा। क्योंकि प्रत्येक की स्वतन्त्रता दूसरे की स्वतन्त्रता की रक्षा के ऊपर ही पनप सकती है। संसार में समग्री यदि कम है तो मिल बाँटकर भोगना होगा। कुछ के पास अनावश्यक संग्रह और शेष का अभाव में तड़प तड़प कर मरजाना व्यक्ति स्वातन्त्र्य की हत्या है। अपरिग्रह और विकेन्द्रीकरण इस व्यक्ति स्वातन्त्र्य की अनिवार्य शर्तें हैं। बिना इनके सच्चे अर्थों में व्यक्ति स्वातन्त्र्य नहीं आसकता। व्यक्ति स्वातन्त्र्य के पुण्य प्रकाश में महा सम्राट् ईश्वर, वर्णव्यवस्था और उसके विशेषाधिकार रंग भेद की समस्या आदि समस्त तमस्तोम अपने आप हटकर नवजीवन का युग जागरण होगा। तभी मानवता अंगड़ाई लेकर विश्व में शान्ति का सूत्रपात करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सत्कार

१. नया संसार पृष्ठ १४४ मूल्य १।)
(खादी के कागज पर पुस्तक की छपाई हुई है।)
२. मानव भाषा पृष्ठ १९६ मूल्य २)
३. गागर में सागर पृष्ठ ७० मूल्य ।।।)
४. क्या संसार दुखमय है पृष्ठ ३० मूल्य ।)

समालोचनार्थ प्राप्त इन चार पुस्तकों के प्रणेता हैं प्रसिद्ध साहित्यकार, सत्य समाज के संस्थापक "स्वामी सत्यभक्त जी।" प्रकाशक हैं—सत्याश्रम वर्धा।

छपाई आदि की दृष्टि से पुस्तकें आकर्षक तो नहीं हैं पर विषय की दृष्टि से पुस्तकें पठनीय हैं। सत्यभक्त जी की प्रत्येक पुस्तक सत्यजगत् की एक सूझ होती है इसलिए पुस्तकें विशेष रीति से उपादेय हैं।

१. बीसवीं शताब्दी बहुधा जिस साहित्य की सृष्टि की ओर प्रेरणा देती है उसी की कल्पना से भरा हुआ "नया संसार" है। यह पुस्तक एक यात्री के भ्रमण वृत्तान्त के रूप में लिखी गई है। इसे पढ़कर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखी गई सोवियत भूमि की याद आ जाती है, जिसमें उस विद्वान् ने हमारे युग के नये संसार—सोवियत भूमि रूस के अपनी आँखों से दर्शन कर भ्रमण वृत्तान्त लिखे हैं। उसमें कल्पना का पुट कम, यथार्थ बातें अधिक हैं जो पूँजीवाद और साम्राज्यवाद से पीड़ित राष्ट्रों के लिए स्पृहणीय हैं। संभव है सत्यभक्त जी उस सोवियत भूखण्ड के आधार पर एक नये संसार के दर्शन करना चाहते हैं, और सत्य समाज के द्वारा ऐसे ही नये संसार की तरफ इस संसार को ले जाना चाहते हैं। पुस्तक में नये संसार के आवश्यक तत्त्वों पर सुलझे दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। कहानी के ढंग पर इस पुस्तक में की गई कल्पनाएँ असंभव नहीं मालूम होतीं क्योंकि उनका बहुत कुछ प्रयोग रूप सोवियत भूमि रूस में विद्यमान है। यदि इस पुस्तक में कल्पित सामाजिक तत्त्व ही सत्य समाज का रूप है तो कहना पड़ेगा कि साम्यवाद (Socialism) और सत्य समाज में कोई विशेष अन्तर नहीं और बीसवीं शताब्दी ने सत्यभक्त जी की कल्पनाधारा को पोषण करने के लिए अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलभ सामग्री दी है। पुस्तक में बहुत सुलझे विचार हैं जो कि सत्यभक्त जी का विशेष गुण है। नये संसार के यात्रियों के लिए यह पुस्तक पाथेय है।

२. आज राष्ट्रीयता के बाँध टूट चुके हैं। वैज्ञानिक साधनों से संसार के एक कोनें का मनुष्य दूसरे कोने के मनुष्य के समीप आगया है। एक जगह की हलचल का थोड़े क्षणों में दूसरी जगह पता लग जाता है। एक देश की अपरिचित बहुत सी चीजें दूसरे देशवासियों के परिचय में आ रही हैं। विभिन्न जातियों के लोग एक दूसरे की भावनाओं का परिचय पाने लगे हैं। पर "मनुष्य मनुष्य में सहयोग और एकता का सब से मुख्य व्यापक साधन भाषा है। भाषा के एक होने पर ही मनुष्य मनुष्य के पास आता है। उस में एक जातीयता और एक राष्ट्रीयता की भावना पैदा होती है, जो कि विश्वशान्ति और मानवता के विकास के लिए जरूरी है" (प्रणेता के शब्द)। इन भावनाओं से प्रेरित हो सत्यभक्त जी ने एक मानव भाषा की सृष्टि की है। उनके शब्दों में यह पुस्तक पूरी मानव भाषा नहीं है किन्तु उसका एक छोटा नमूना है। हिन्दी भाषा में इसकी रचना कर सत्यभक्त जी ने इससे हिन्दी भाषा की श्रीवृद्धि की है। मेरी समझ में मानव भाषा निर्माण की ओर सत्यभक्त जी का ही यह प्रथम प्रयत्न है।

भाषा के सम्बन्ध में कहा जाता है कि भाषा किसी वर्ग विशेष की कृति नहीं बल्कि सभी वर्गों के सकल समाज की सैकड़ों पीढ़ियों के प्रयत्न का फल है। भाषाओं के विकास क्रम का इतिहास भी बड़ा मनोरञ्जक है। भाषाओं के मूल शब्दों और धातुओं की, तथा व्याकरण के ढांचे की—अर्थात् संज्ञाओं और धातुओं के रूप परिवर्तन के, उपसर्गों और प्रत्ययों की योजना के और वाक्य-विन्यास आदि के नियमों की—परस्पर तुलना करने से बड़े महत्त्व के परिणाम निकले हैं। साधारण तौर पर भाषाओं से मानववंशों या नस्लों की पहचान होती है। इस कथन के प्रकाश में पृष्ठ ३१ पर लिखी सत्यभक्त जी की इन पंक्तियों से हम सहमत नहीं "आज की भाषाएं व्यवस्थित विचार से तो बनाई नहीं गई हैं। यें तो मानव समुदायों का उबड़ खाबड़ संग्रह है" आदि। भाषा विज्ञानियों ने भाषाओं के क्रमिक विकास को टटोलकर सिद्ध किया है वे उबड़ खाबड़ संग्रह नहीं अपितु व्यवस्थित क्रम का विकास है। भाषाओं के निर्माण, परिवर्तन में वैसा ही प्रादेशिक (Geographical) असर है जैसा कि हमारे शरीर और नस्लों के निर्माण में। एक कहावत है "कोसे कोसे वानी बदले और दस बिगहा में पानी" अर्थात् प्रादेशिक असर से एक एक कोस में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी बदल जाती है और दस बीघा में पानी भी बदल जाता है। प्रादेशिक असर ऐसा जबरदस्त है कि उसे सहसा टाला नहीं जा सकता। ऐसी हालत में विश्व के समस्त मानव समाज की एक भाषा हो सकेगी यह एक सन्देह का विषय है। सत्यभक्त जी लिखते हैं कि "संस्कृति की अन्धता के कारण मनुष्य कैसी बेहूदी भाषाओं से चिपटा हुआ है।" हमारा तो कहना है संस्कृति जीवन का अनिवार्य अंग है और उसे त्यागनें पर मनुष्य अपने आप में कुछ नहीं रह जाता। भाव संस्कृति के प्रतिनिधि हैं और उनका वहन भाषा करती है। इस दृष्टि से मानव भाषा किस विशाल मानव संस्कृति की वाहिका होगी यह एक प्रयोग का विषय है।

पुस्तक में मानवभाषा के तत्त्वों में विभक्ति चिह्न, सर्वनाम और क्रियाओं का ढंग अटपटा सा मालूम होता है। बहुत ही हल्के परिवर्तन वाले प्रत्ययों से धारणा शक्ति में गड़बड़ी पैदा होनें की संभावना है। उच्चारण या ध्वनि भेद सहसा पहचाने नहीं जा सकते। अस्तु। मानव भाषा का नमूना जिन उदात्त भावनाओं को लेकर रखा गया वे प्रशंसनीय हैं और सत्यभक्त जी इसके लिए विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

३. 'गागर में सागर' पुस्तक छोटी छोटी कहानियों का संग्रह है। अंधविश्वासों को हटाने वाली अनेक सुन्दर कहानियाँ हैं। परीक्षा प्रधानता के अनेक चुटकुले हैं। 'काल मोह' ऐसा ही सुन्दर चुटकुला है। ये चुटकुले सत्यभक्त जी के पत्र नई दुनियाँ, संगम आदि से संग्रह कर प्रकाशित किये गये हैं। संग्रह अच्छा है।

४. इसमें 'क्या संसार दुखमय है ?' प्रश्नात्मक समस्या का संभाषण के ढंग से थोड़े में निरूपण है। सत्यभक्त जी जीवन को आशामय और इस भूतल पर ही अपने कर्तव्यों से स्वर्ग नर्क की रचना मानते हैं। अकर्मण्यों और संसार को दुखमय मानकर भागने वालों को इस छोटी पुस्तक से अच्छी शिक्षा मिलती है। इस पुस्तक में पीछे "क्यों यह दुनियां नरक बनायें" कविता तथा २४ जीवनसूत्र भी दिये हैं। मानवभाषा में "समाज सुखी होगा" एक गीत भी है।

गुलाबचन्द्र चौधरी एम० ए०,
व्याकरणाचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याश्रम समाचार

आदर्श विवाह-शुद्ध खद्दर का वेष, परदे का बहिष्कार

हमें यह समाचार लिखते हुए बड़ा हर्ष होता है कि विद्याश्रम के विद्यार्थी तथा 'श्रमण' के संपादक मंडल के सदस्य कानोड़ (राजस्थान) निवासी श्री मोहन लाल मेहता बी० ए०, शास्त्री, सिद्धान्त प्रभाकर का शुभ विवाह सरवानिया निवासी श्री सुजान लाल जी मेहर की सुपुत्री सुश्री मनोरमा के साथ १ जून को सम्पन्न हुआ। वर और वधू दोनों ने शुद्ध खद्दर के वेष में ही विधान पूर्ण किया। घूंघट का व्यवहार बिलकुल नहीं हुआ। श्री अम्बा लाल जी जैन शास्त्री ने विवाह संस्कार संपन्न किया। इस क्रांतिकारी विवाहोत्सव को देखने के लिए आस पास के गावों से हज़ारों लोग पहुँचे। राजस्थान के ओसवाल समाज में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। इस अवसर पर पं० 'उदय' जैन, पं० महेश चन्द्र न्याय तीर्थ, आदि आठ विद्वानों के समयानुकूल भाषण हुए। वर और वधू के भाषणों पर जनता चकित भी हुई और हर्षित भी। प्रो० महेन्द्र कुमार जी संपादक 'ज्ञानोदय', प्रो० दलसुख मालवणिया तथा श्री पृथ्वीराज जैन, एम० ए०, शास्त्री संपादक 'श्रमण', श्री गजेन्द्र कुमार जैन संपादक 'वीर-राजस्थान', श्री गुलाबचन्द्र जी चौधरी एम० ए०, श्री पूनम चन्द जी रांका नागपुर, श्री हरजसराय जी जैन बी० ए०, अमृतसर, श्री सवाई सिंह नागोरी बी० ए०, एल एल० बी० आदि महानुभावों ने शुभ कामना के संदेश भेजे।

हम इस क्रान्तिकारी क़दम का स्वागत करते हैं। आशा है समाज के तरुण इस आदर्श को अपनाएँगे। दम्पती सुखी, समृद्ध और दीर्घायु हों तथा समाज और राष्ट्र की सेवा करें, यही कामना है।

हार्दिक बधाई

श्री गुलाबचन्द्र जी चौधरी तथा श्री ज्ञानचन्द जी भारिल्ल के शुभ विवाह सम्पन्न होने पर हम उन्हें हार्दिक बधाई देते है तथा उनके दाम्पत्य जीवन की सफलता की शुभेच्छा प्रगट करते है।

[शेष समाचार पृष्ठ २५ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर

दानी महाशयों की सूची

सन् १९४५

	रु०	आ०	पा०
(क) लाइब्रेरी दान—			
१. श्री बेहूमल जुंपरसेन, कान्धला	५१	०	०
२. श्री चन्दगीराम सूरजभान, दिल्ली	५	०	०
३. ला० दुनीचन्द प्यारेलाल, अमृतसर	५००	०	०
४. ला० फग्गमल भगवानदास, अमृतसर	५०१	०	०
५. श्री दवेली एस० जैन संघ, सारंगपुर, अहमदाबाद	२५१	०	०
योग	१३०८	०	०
(ख) प्रतिष्ठित आजीवन सदस्य फीस—			
१. ला० धनीराम भगवानदास, सुलतानपुर लोदी	७००	०	०
२. ला० हुकमचन्द जसवन्तमल, अमृतसर	२००	०	०
३. ला० बन्सीलाल जैन, होशियारपुर	५००	०	०
४. ला० हीरालाल जैन, एडवोकेट, स्यालकोट	५००	०	०
५. ला० सालगराम बनारसीदास, अमृतसर	२००	०	०
६. जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी	५००	०	०
योग	२६००	०	०
(ग) फुटकल दान—			
१. ला० बूटामल मनोहरलाल, स्यालकोट	२१	०	०
२. ला० गौरीशंकर अमरनाथ, कसूर	२०५	०	०
३. ला० वीरभान जैन, जाखलमन्डी	७	०	०
४. ला० ताराचन्द विलायतीराम, अमृतसर	८	०	०
५. ला० लालशाह पंजूशाह, स्यालकोट	४	०	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	रु०	आ०	पा०
६. ला० हीरालाल जैन, स्यालकोट,	४	०	०
७. ला० ज्ञानचन्द्र गिरधारीलाल, लुध्याना,	१०५	०	०
८. ला० हंसराज नरोत्तमलाल, अमृतसर,	१०१	०	०
९. ला० ताराचन्द विलायतीराम, अमृतसर,	१०१	०	०
१०. ला० मुन्नीलाल चरणदास, अम्बाला,	५	०	०
११. ला० दयाप्रकाश बचनकुमार, अम्बाला,	५	०	०
१२. ला० रामलाल शोरीलाल, अमृतसर, दरी १,	७५	१२	०
१३. ला० शादीलाल दरी १, (ला० रत्नचन्द हरजसराय) अमृतसर,	७५	१२	०
१४. ला० कन्हैयालाल चम्बालाल, अमृतसर,	३१	०	०
१५. ला० मिलखीराम जैनी, अम्बाला,	५	०	०
१६. ला० सिवीचन्द जैन, अम्बाला,	५	०	०
१७. ला० गोकलचन्द कस्तूरीलाल, जण्डयाला,	१५	०	०
१८. सेठ तोलाराम शामदास वाँठिया, भीनासर	२१	०	०
१९. ला० देवराज जैन, कसूर,	५१	०	०
२०. ला० रतनचन्द हरजसराय, अमृतसर	२०१	०	०
२१. सेठ० श्रीकरनदास महादेव प्रसाद, मकलोडपुर रोड,	५००	०	०
२२. अ० भा० श्वे० स्था० जैन कन्फरेन्स, बम्बई,	२५१	०	०
२३. ला० ताराचन्द विलायती राम अमृतसर दरी १,	७५	०	०
२४. ला० उत्तमचन्द दीवानचन्द, स्यालकोट,	५१	०	०
२५. ला० मुंशीराम प्यारेलाल, जम्मू,	३५	०	०
२६. ला० दीवानचन्द राजकुमार, स्यालकोट,	४	०	०
२७. ला० मुन्नीलाल जैन, अम्बाला,	२३	१२	०
२८. ला० प्यारेलाल अमरकुमार, अम्बाला,	५	०	०
२९. ला० बाबूराम क्षमनकुमार, अम्बाला,	२३	१२	०
३०. ला० लालचन्द केशोदास, अम्बाला,	५	०	०
३१. ला० प्रेमनाथ जैन, अमृतसर, दरी १,	७६	०	०
३२. ला० गैंदामल हेमराज, न्यू दिल्ली	११	०	०
३३. ला० शादीलाल, दिल्ली (ला० रतनचन्द हरजसराय)	१४०	०	०
३४. ला० चिरंजीत लाल रोशनलाल, स्यालकोट,	१०५	०	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	रु०	आ०	पा०
३५. श्वे० स्था० जैन सकल संघ, बम्बई,	२५०	०	०
३६. जैन गुरुकुल पाठशाला, राजकोट	५४०	०	०
योग	३१२३	४	०

(घ) **रतनचन्द मेमोरियल फण्ड—**

१. ला० जगन्नाथ जैनी, खार, बम्बई	२५१	०	०
२. ला० ताराचन्द विलायती राम अमृतसर	१०१	०	०
३. ल० शादीलाल जैन, बी० काम० अमृतसर	१०१	०	०
४. ला० तिलकचन्द जैन,	१०१	०	०
५. ला० हरजसराय हंसराज, अमृतसर,	२०००	०	०
६. ला० मस्तराम जैनी, अमृतसर	१०१	०	०
७. ला० मुन्नीलाल मोतीलाल जैन, अमृतसर,	२०००	०	०
८. ला० रत्नलाल इन्द्रलाल पारख, दिल्ली,	५००	०	०
९. ला० देवराज, कसूर	५००	०	०
१०. ला० त्रिभुवननाथ, कपूरथला,	५००	०	०
योग	६१०५	०	०

सन् १९४६

(क) लाइब्रेरी दान,—

	रु०	आ०	पा०
श्रीमती अतरदेवी हंसराज, अमृतसर	५००	०	०

(ख) प्रतिष्ठित आजीवन सदस्य फीस,—

श्री आनन्दराज सुराना, दिल्ली,	५००	०	०
श्री जगन्नाथ जैनी, खार (बम्बई)	२५०	०	०
श्री शादीलाल प्यारेलाल स्यालकोटी, अमृतसर	५०	०	०
श्री मुन्नीलाल भगवानदास, अमृतसर—	५००	०	०
योग रु०	१३००	०	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) मिति दान,—अमृतसर

	रु०	आ०	पा०
ला० मुन्नीलाल मोतीलाल,	१२०	०	०
ला० रामलाल शोरीलाल	६०	०	०
ला० फग्गूमल भगवानदास	६०	०	०
ला० पन्नालाल सुपु० ला० भगवानदास,	६०	०	०
ला० राजकुमार सुपु० ला० पन्नालाल	३०	०	०
ला० प्रेमनाथ जैन	९०	०	०
श्रीमती राजकुमारी विलायतीराम	९०	०	०
ला० नत्थूमल लालूमल	१२०	०	०
ला० मिल्खीमल हंसराज	६०	०	०
ला० ताराचन्द विलायतीराम	३०	०	०
ला० हरदयाल रोशनलाल	३०	०	०
ला० हुकमचन्द जसवन्तमल	६०	०	०
ला० मिल्खीराम वैशनोदास	३०	०	०
ला० शादीलाल प्यारेलाल	३०	०	०
ला० खुशीराम बनारसीदास	६०	०	०
ला० शोरीलाल ओसवाल	३०	०	०
ला० हरनामदास सन्तराम	६०	०	०
रा० सा० टेकचन्द जैनी	३०	०	०
ला० दीवानचंद ज्ञानचंद	३०	०	०
ला० रलयाराम कस्तूरीलाल	३०	०	०
ला० बेलीराम ताराचन्द	३०	०	०
ला० सुमति प्रकाश, विलायतीराम, मदनलाल, विजयकुमार,	४५०	०	०
ला० मुन्नीलाल भगवानदास	६०	०	०
ला० रोशनलाल सुपु० ला० मुन्नीलाल	३०	०	०
श्रीमती लाभदेवी हरजसराय	३०	०	०
ला० हंसराज नरोत्तमलाल,	९०	०	०
ला० शादीलाल नृपराज	९०	०	०
ला० कन्हैयालाल चम्बालाल	३०	०	०
श्रीमती शकुन्तला शादीलाल	३०	०	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	रु॰	आ॰	पा॰
ला॰ रलेशाह पन्नालाल	३०	०	०
ला॰ जसवन्त राय जैन	३०	०	०
ला॰ विलायतीराम टेकचन्द	१२०	०	०
ला॰ नत्थूमल उमराव सिंह	३०	०	०
श्रीमती सुन्दरी मनोहरलाल	९०	०	०
ला॰ ज्ञानचन्द मदनलाल	३०	०	०
ला॰ देवराज, कसूर	१००	०	०
ला॰ हीरालाल नौराताराम अम्बाला शहर	३०	०	०
ला॰ छज्जूमल लक्ष्मीराम ,,	३०	०	०
ला॰ रामलाल चिरंजीव लाल ,,	३०	०	०
ला॰ सुशीलकुमार, एडवोकेट ,,	३०	०	०
योग रु॰	२५००	०	०

(घ) फुटकल दान,—

ला॰ गेंदामल वकीलचन्द, कान्धला	५०	०	०
सेठ मोहनलाल जैन, दिल्ली	५१	०	०
ला॰ नत्थुमल चिरंजीवलाल, खान्काडोगरां	५३	०	२
ला॰ जमीतेशाह पन्नालाल, स्यालकोट	१३१	०	०
ला॰ नत्थूमल लालूमल, अमृतसर	३००	०	०
ला॰ त्रिभुवननाथ, कपूरथला	५०	०	०
ला॰ लालशाह राजपाल अमृतसर	३६	०	०
ला॰ साधुराम जैन ,,	५	०	०
ला॰ कर्मचन्द दीनानाथ, जालन्धर शहर	२००	०	०
ला॰ दुनीचन्द प्यारेलाल, अमृतसर	११६	०	०
ला॰ रतनचन्द हरजसराय अमृतसर	१३	१५	०
ला॰ मुन्नीलाल मोतीलाल ,,	१३	१५	०
ला॰ दुनीचन्द प्यारेलाल ,,	२७	१३	९
ला॰ हुकुमचन्द जसवन्तमल अमृतसर	२१	०	०
स्व॰ श्रीमती महेशचन्द, होशियारपुर	११	०	०
ला॰ चेतराम मुन्नालाल, अम्बाला	५	०	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	रु०	आ०	पा०
ला० विद्याप्रकाश पवनकुमार अम्बाला	५	०	०
ला० अमींचन्द नानकचन्द अम्बाला	५	०	०
हकीम शादीराम अम्बाला	५	०	०
अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फरेन्स	५०१	०	०
श्वे० स्था० जैनसंघ, रायपुर (मारवाड़)	२००	०	०
श्री श्वे० स्था० जैन सकल संघ, बम्बई,	२५०	०	०
ला० मुन्शीराम किशोरीलाल	२१	०	०
,, वनारसीदास तिलकचन्द, जण्डयाला	२१	०	०
श्वे० स्था० जैन संघ, घाटकोपर,	१५२	०	०
जैन गुरुकुल पाठशाला, राजकोट	२८८	०	०
ला० दुनीचन्द प्यारेलाल, अमृतसर	७५	०	०
	२६०७	११	[illegible]
सन् १९४५ में यह रकम गलती से इस दान खाते में ला० मुन्नीलाल से प्राप्त जमा हो गई थी—से कम की	२३	१२	०
योग रू०	२५८३	१५	[illegible]

(च) रतनचन्द मेमोरियल फ़ण्ड=

	रु०	आ०	पा०
ला० रामनारायण, Retd. Judge, दरियागंज, दिल्ली—	२००	०	०

सन् १९४७

(क) लायब्रेरी दान—

	रु०	आ०	पा०
ला० हंसराज नरोत्तमलाल, अमृतसर	५००	०	०
श्री जगजीवन दास अजमेर, माटुंगा	५१	०	०
योग	५५१	०	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) प्रतिष्ठित आजीवन सदस्य फीस—

	रु०	आ०	पा०
ला० बद्रीशाह सोहनलाल, गुजरांवाला,	१०००	०	०

(ग) मिति दान—

		रु०	आ०	पा०
श्रीमती भागवन्ती ताराचन्द, होशियारपुर,		३०	०	०
श्रीमती लाभदेवी हरजसराय, अमृतसर		३०	०	०
ला० हीरालाल नौराताराम		३०	०	०
ला० छज्जूमल लच्छमीचन्द	अम्बाला	३०	०	०
ला० रामलाल चिरंजीवलाल,	,,	३०	०	०
ला० सुशीलकुमार एडवोकेट,	,,	३०	०	०
	योग	१८०	०	०

(घ) फुटकल दान—

	रु०	आ०	पा०
ला० विलायतीराम (ला० दुनीचन्द प्यारेलाल) अमृतसर,	२१	०	०
ला० बद्रीशाह सोहनलाल, गुजरांवाला,	५५	०	०
ला० सुबुद्धिनाथ जैन, दिल्ली	३०	०	०
ला० विद्यासागर, अमृतसर	११	०	०
श्रीमती भागवन्ती ताराचन्द, होशियारपुर	१००	०	०
गुप्त दान	७	४	३
श्वे० स्था० जैन संघ, जालना	३०	०	०
अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फरेंन्स, बम्बई	५००	०	०
जैन गुरुकुल पाठशाला, राजकोट	७२	०	०
श्री कृष्णचन्द्राचार्य	०	१०	०
योग	८२६	१४	३

नोट—इस वर्ष में अमृतसर मार्च से ही साम्प्रदायिक दंगों से और पश्चात् सर्व पंजाब ही विभाजन (Partition) के कारण घोर आपत्ति और दुविधा में रहा। रास्ते, आना जाना, पत्र व्यवहार घोर अव्यवस्था में रहा। एवं आय अत्यधिक कम रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९४८

(क) मिति दान—

	रु०	आ०	पा०
श्रीमती लाभदेवी हरजसराय, अमृतसर	३०	०	०
ला० हीरालाल नौराताराम, अम्बाला	३०	०	०
ला० छज्जूमल लच्छमीचन्द ,,	३०	०	०
ला० रामलाल चिरंजीवलाल ,,	३०	०	०
योग	१२०	०	०

(ख) फुटकल दान—

	रु०	आ०	पा०
ला० रत्नचन्द हरजसराय, दिल्ली	१०१	०	०
,, कर्मचन्द बनारसीदास, जम्मू	२५	०	०
,, जीवामल मेघकुमार, पट्टी	११	०	०
रा० ब० कन्हैयालाल भण्डारी, छात्रवृत्ति मांगीलाल भण्डारी—	३०	०	०
ला० शादीलाल नृपराज, बम्बई	१५१	०	०
आर० सी० एच० बरड़ एण्ड को० बम्बई	४३४	०	०
श्रीमती लाभदेवी हरजसराय, अमृतसर	१०	०	०
गुप्त दान	५	०	०
गुप्त दान	३६०	०	०
मद्रास से श्री सन्तोषकुमार मुनोत द्वारा—	९००	०	०
रा० ब० कन्हैयालाल भण्डारी, छात्रवृत्ति सन्तोषकुमार मुनोत	२०	०	०
योग रू०	२०४७	०	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय, बनारस

सैकशन

११००) जीवनदेवी, अमृतसर

५००) विद्यावती मुन्नीलाल, होशियारपुर

५००) चन्दनदेवी शोरीलाल, अमृतसर

५००) महतावशाह (ला० मुन्नीलाल मोतीलाल, अमृतसर)

५००) चाचा नन्दलाल (ला० शादीलाल, अमृतसर)

५००) दुनीचन्द (ला० दुनीचन्द प्यारेलाल, अमृतसर)

५०१) भगवानदास (ला० फग्गूमल भगवानदास, अमतसर)

५००) अतरदेवी हंसराज, अमृतसर

५००) नरोत्तमलाल (ला० हंसराज, अमृतसर)

उपरोक्त सज्जनों ने या उनके सम्बन्धियों ने समय समय पर यह दान दिए हैं और उनकी इच्छानुसार इस लायब्रेरी में उपरोक्त सैंकशन नियत किए गए। जो सज्जन इस विषय में ५००) या अधिक दान देते हैं, उनके नाम से एक Section पुस्तकालय में खोल दिया जाता है।

आप भी अपने स्नेही की स्मृति को स्थायी बनाने के वास्ते इस पुण्यकार्य मे दान दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"श्रमण" का अभिनन्दन

"श्रमण" की विचार धारा साम्प्रदायिकता से अस्पृष्ट एवं प्रशस्त है। सादा लिबास में उत्कृष्ट विचारों को पाकर विज्ञ तथा साधारण-जन समान रूप से पत्र का स्वागत करेंगे।

यमुनादेवी पाठक
महिला विद्यालय, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय

पत्र बहुत अच्छा निकल रहा है। नाम भी श्रेष्ठ है। आशा करता हूं जैन समाज इसको अपनावेगा और अधिक से अधिक भाई बहन इसे मंगाकर लाभ उठायेंगे।

कीर्तिप्रसाद जैन बी० ए०, एल० एल० बी०
बनौली (मेरठ)

'श्रमण' सभी दृष्टि से सुन्दर है। इसकी पाठ्य-सामग्री मुझे बहुत पसन्द आयी।

के० भुजबली शास्त्री

भारत में हिन्दू संस्कृति के आदर्शों की रक्षा करने वाले जितने पत्र निकलते हैं उनमें "श्रमण" का प्रमुख स्थान है। इसके लेख मनुष्य के हृदय को विश्व मैत्री के लिए बल देकर आत्मा को महानता के गुण प्रदान करते हैं। भविष्य में भारतीय मानव इससे पुनः महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध, ईसा और गांधी जी के द्वारा निर्मित प्रेम पथ का अनुसरण करने में समर्थ हो सकेगा, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं हैं।

राजयोगी वर्मा, हिन्दी साहित्याचार्य
जोधपुर

मैंने "श्रमण" में निकले हुए प्रत्येक लेख को बड़े ध्यान से पढ़ा है। प्रत्येक अंक में दी गई सामग्री उच्चकोटि की है। मैं आपको ऐसा सुन्दर और समयानुकूल पत्र निकालने पर बधाई देता हूँ।

राम स्वरूप जैन
मैनेजर, जैन गर्ल्स हाई स्कूल लुधियाना

'श्रमण' पढ़कर अत्यानन्द तथा शांति प्राप्त होती है। आशा है, इस पत्र द्वारा देशोन्नति तथा कल्याण का सुगम मार्ग प्रदर्शन जनसाधारण के लिए उत्तम रहेगा।

पूज्य मंगल ऋषि
लुधियाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'SANMATI' PUBLICATIONS

	Lord Mahavira by Dr. Bool Chand, M.A., Ph.D.	Rs. 4/8/
	गुजरात का जैन धर्म—मुनि श्री जिनविजय जी	बारह आने
3.	विश्व-समस्या और व्रत-विचार—डॉ० बेनीप्रसाद	चार आने
4.	Constitution	4 Ans.
5.	अहिंसा की साधना —श्री काका कालेलकर	चार आने
6.	परिचयपत्र और वार्षिक कार्यविवरण	चार आने
7.	Jainism in Kalingadesa--Dr. Bool Chand	4 Ans.
8.	भगवान् महावीर—श्रीदलसुखभाई मालवणिया	चार आने
9.	Mantra Shastra and Jainism—Dr. A. S. Altekar	4 Ans.
10.	जैन-संस्कृति का हृदय—पं० श्री सुखलालजी संघवी	चार आने
11.	भ० महावीरका जीवन—पं० श्री सुखलालजी संघवी	" "
12.	जैन तत्त्वज्ञान, जैनधर्म और नीतिवाद लें०—पं० श्री सुखलालजी तथा डॉ० राजबलि पाण्डेय	" "
13.	आगमयुग का अनेकान्तवाद—श्री दलसुखभाई मालवणिया	आठ आने
14--15.	निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय—श्री सुखलालजी संघवी	एक रुपया
16.	वस्तुपाल का विद्यामण्डल—प्रो० भोगीलाल सांडेसरा	आठ आने
17.	जैन आगम—श्री दलसुखभाई मालवणिया	दस आने
18.	कार्यप्रवृत्ति और कार्यदिशा	आठ आने
19.	गांधीजी और धर्म लें० पं० श्री सुखलालजी और दलसुख मालवणिया	दस आने
20.	अनेकान्तवाद—पं० श्री सुखलाल जी संघवी	बारह आने
21.	जैन दार्शनिक साहित्य का सिंहावलोकन पं० दलसुखभाई मालवणिया	दस आने
22.	राजर्षि कुमारपाल—मुनि श्री जिनविजयजी	आठ आने
23.	जैनधर्म का प्राण—श्री सुखलालजी संघवी	छः आने
24.	हिन्दू, जैन और हरिजन मंदिर प्रवेश लें० श्री पृथ्वीराज जैन M.A.	सात आने
25.	Pacifism & Jainism—Pt Sukhlalji	8 Ans.

The Secretary,
JAIN CULTURAL RESEARCH SOCIETY
BENARES HINDU UNIVERSITY.

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

क्षमापणा

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणई॥

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें। सब जीवों से मेरी मित्रता है, किसी के साथ मेरा वैर नहीं है।

प्रतिक्रमण

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः,
प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता–
स्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा॥

हे जिनेन्द्र! इधर उधर प्रमाद से चलते-फिरते मेरे से यदि एकेन्द्रिय आदि प्राणी क्षत हुए हों—उन्हें चोट पहुँची हो, टुकड़े किये गए हों, निर्दयता से आपस में मिला दिये हों, किं बहुना, किसी भी प्रकार से पीड़ित किये हों तो वह सब दुष्ट आचरण मिथ्या हो।

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी
बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

इन्द्र एम० ए० | दलसुख मालवणिया
पृथ्वीराज जैन | मोहन लाल मेहता

इस अंक में—

१. नया युग (कविता)—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल, बी० ए० १
२. अपनी बात (संपादकीय)— ३
३. कल्पना—कुमारी सत्यवती जैन ९
४. विकास का मुख्य साधन—पं० सुखलाल जी संघवी ११
५. युवक से (कविता)—रामकुमार जैन 'स्नातक' १४
६. जैन और हिन्दू—प्रो० दलसुख मालवणिया १६
७. उपकार का बदला (कहानी)—श्री मोहन लाल मेहता बी० ए० १८
८. पैंतालीस व बत्तीस सूत्रों की मान्यता पर विचार—
श्री अगर चन्द नाहटा २४
९. तुम सदा तरुण हो—जनरल मेकार्थर ३०
१०. पर्युषण पर्व—प्रो० विमल दास जैन, एम० ए०एल० एल० बी० ३१

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे ।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा ।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें ।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें ।
६. वार्षिक मूल्य मनीऑर्डर से भेजना ठीक होगा ।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) | **एक प्रति ।=)**

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष १ सितम्बर १९५० अंक ११

नया युग

मनुज कहता है कि–
आया है नया युग;
हो नया संसार नूतनता संजोए
स्वप्न जागें फिर मिले जो धूल में थे
और गाएँ गीत हम नूतन सृजन के

है नया आह्वान
उनको जो न जागे,
जो पिसे दिन रात
शोषण में अभागे;
उठ रही ललकार उसकी
जो न पाया बोल अबतक
अब जगा है वह जगाने विश्व में
आँधी प्रलय की;
अब उठा तूफान है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोषित हृदय की आग ले,
जलने लगी दीवार महलों की
मिला है स्वर्ग भू से;
हो खड़ा ज्वालामुखी के ढेर पर
कहता मनुज है—
तोड़ दो दीवार,
आया है नया युग।
देखता जग है कि—
मिटती जा रही है रेख
कुटिया औ महल की;
मिट रहा है भेद
मानव का परस्पर
जग रहे हैं भाव मैत्री के मनुज में।
हो अमर यह ज्वाल
जिसमें जला पुरातन,
नव जगत् के बीज बो दे;
प्रेम के अंकुर हृदय में
फिर लगाकर आग मानव
भूत की कटु स्मृति डुबो दे।
कोटि कंठों से उठे यह गीत—
'जागो मीत,
आया है नया युग।'

—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल बी० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

श्रमण संस्कृति और हरिजनोद्धार

वर्ण व्यवस्था का संबन्ध ब्राह्मण संस्कृति से हैं । श्रमण परंपरा में इस व्यवस्था का कोई महत्त्व नहीं रहा हैं । व्यक्तिवाद के स्थान पर गुणवाद की पूजा ही श्रमण संस्कृति का चरम लक्ष्य रहा है । श्रमण संस्कृति का पक्का पुजारी यह कभी नहीं देखता कि मैं जिस व्यक्ति के गुणों से आकर्षित होकर उसकी पूजा करने जा रहा हूँ वह कौन है ? वह यह भी नहीं देखता कि गुणों का आश्रय तथाकथित उच्चवर्ण का है या नीचवर्ण का ? उसकी दृष्टि एक ही दिशा में जाती है और वह दिशा है गुण-ग्राहकता । गुण जहाँ कहीं भी हो, वह तुरन्त ग्रहण करेगा और उस गुणी का बहुमान करनें में गौरव का अनुभव करेगा । व्यक्ति पूजा के स्थान पर गुणपूजा को प्रतिष्ठित करनें वाला श्रमण संस्कृति का उपासक प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपना द्वार खुला रखेगा । जिस प्रकार से वह दूसरों के गुणों को ग्रहण करने में किसी प्रकार का भेद भाव नहीं रखता उसी प्रकार से अपनी सेवा का लाभ भी प्रत्येक प्राणी को मिल सके, ऐसी भावना रखता है और समय आने पर उस भावना को कार्य-रूप में परिणत करता है । वर्णभेद, लिङ्गभेद, जातिभेद, संप्रदायभेद, अवस्थाभेद, देशभेद, समाजभेद आदि सभी संकीर्णताओं से परे रहकर अपना जीवन यापन करता है। यही श्रमण-संस्कृति के सच्चे उपासक का स्वरूप है ।

आज देश में हरिजनों के प्रश्न को लेकर काफी वाद-विवाद चल रहा है । यद्यपि भारत के नए संविधान में छुआछूत का सर्वथा नाश कर दिया गया है। भारत के इस सांस्कृतिक कलंक को अति दृढ़ता से समाप्त कर दिया गया है । ऐसा होते हुए भी कुछ लोग छुआछूत की परंपरा के पोषण को ही अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझ कर अनेक प्रकार के झूठे बहाने बना रहे हैं । धर्म और संस्कृति के नाम पर अपने भीतर रहे हुए झूठे अभिमान को पालनें में ही अपना गौरव समझ रहे हैं । हरिजनों के मंदिर-प्रवेश के प्रश्न को लेकर कुछ लोगों ने समाज में तूफान मचा रखा हैं । श्रमण-संस्कृति के उपासक होते हुए भी उपासना के नाम पर उसकी हत्या करने पर तुले हुए हैं । ऐसे लोगों के पीछे साधुओं का कितना हाथ है यह तो निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना जरूर जाना जा सकता है कि बहुत कम साधु ऐसे हैं जो हरिजनों के भीतर पहुंच कर छुआछूत को प्रत्यक्ष रूप से नाश करने के लिए तैयार हों। जब तक साधु-समाज हरिजन बस्तिओं में जाकर आहार नहीं लाता है, अपने व्याख्यान में हरिजनों को समान स्थान नहीं देता है, अपने अनुयायियों और हरिजनों को धर्मस्थान में इस ढंग से बैठने की प्रेरणा नहीं देता है कि किसी नवागन्तुक को यह मालूम न हो कि कौन तो हरिजन है और कौन श्रावकजन तब तक हम तो यही समझेंगे कि अभी श्रमण-संस्कृति के जिम्मेवारों में कुछ कमजोरी है। श्रमण संस्कृति के रहस्य को या तो वे समझते नहीं हैं या समझ कर अपने आपको धोखा देते हैं। 'श्रमण' के पिछले कई अंकों में इस विषय पर काफी प्रकाश डाला जा चुका है। कई बार साधु-समाज को निर्भयता पूर्वक यह प्रेरणा दी जा चुकी है कि छुआछूत का श्रमण संस्कृति में कोई महत्त्व नहीं है। यह ब्राह्मण संस्कृति की देन है और ब्राह्मण संस्कृति के उपासकों द्वारा ही पाली-पोसी गई है। हमारे मुनिराजों को चाहिए कि वे निर्भयता पूर्वक हरिजनों के घरों में जावें, उनको अहिंसा का मर्म समझावें, धर्म का वास्तविक स्वरूप उनके सामने रखें, उनके हृदय को श्रमण संस्कृति की उदारता से जीतने का प्रयत्न करें प्रेमपूर्वक दिया हुआ निर्दोष आहार ग्रहण करें और उन करोड़ों मानवों को श्रमण संस्कृति की दीक्षा देकर सच्चे मार्ग पर लावें।

हमें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि काशी के एक जैन मुनि रंगविजय जी हरिजनोद्धार के लिए शीघ्र ही आगे आने वाले हैं। उन्होंने कुछ प्रतिज्ञाएं की हैं और उन प्रतिज्ञाओं के समाप्त होते ही कार्तिक शुक्ला १५ से कार्यक्षेत्र में आजाएंगे। उन्होंने समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को स्पष्टरूप से चेतावनी दी है कि यदि वे चाहें तो उनका बहिष्कार कर सकते हैं। साधु समाज के लिए यह एक उदाहरण हैं। हम चाहते हैं कि प्रत्येक मुनि इस प्रकार का सक्रिय कदम उठाएं। अब बहिष्कार के दिन बीत चुके। यदि कोई बहिष्कार करता भी है तो उसका बहिष्कार उसी तक सीमित रह जाता है। किसी भी मानव-सेवक को बहिष्कार से तनिक भी नहीं घबराना चाहिए। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए सब कुछ सहन करता हुआ जो व्यक्ति आगे बढ़ता चला जाता है वह अवश्य सफल होता है, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास व अनुभव है। आज का हमारा समाज इतना आगे बढ़ चुका है कि सच्चा आत्म विश्वास रखने वाला समाज को अवश्य अपने साथ खींच लेता है। इस समय समाज को नेतृत्व की आवश्यकता है। कुछ विरोधी भले ही विरोध करते रहें किन्तु विजय आखिर उसी की होती है जो समाज को एक नई दिशा की ओर ले जाता है। मुनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगविजय जी का यह प्रयत्न सराहनीय है। वे दृढ़ता से आगे बढ़ते रहेंगे तो सफलता अवश्य मिलेगी। समाज का कोई भी व्यक्ति उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। सच्चे पथ पर चलने वाले व्यक्ति की अन्त में विजय अवश्य होती है, ऐसा समझ कर अपने पथ पर बढ़ते रहें, यही कामना है। हमारी संस्कृति की विजय इसी में है।

आस्तिक और नास्तिक

भारतीय दर्शनशास्त्र की मुख्य दो विचार धाराएँ हैं—१ आस्तिक (Orthodox) २ नास्तिक (Heterodox)। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसक और वेदान्त—आस्तिकों के भेद कहलाते हैं। नास्तिकों में चार्वाक, जैन और बौद्ध गिने जाते हैं। इन दो मुख्य विभागों का आधार क्या है, यह बिना जाने शायद कुछ लोगों को यह अच्छा न लगेगा कि उन्हें नास्तिक कहा जाय। आस्तिक और नास्तिक ये दोनों शब्द परस्परापेक्ष (Co-relative) हैं। न तो आस्तिक का अर्थ कोई अच्छा ही है और न नास्तिक का तात्पर्य कोई बुरा ही। कुछ जैन इस नास्तिक शब्द से विशेष चिढ़ रखते हैं। वे यह नहीं चाहते कि उन्हें नास्तिक कहा जाय किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि भारतीय दर्शनशास्त्र दो विभागों में बँटा हुआ है। एक विभाग वह है जो वेदों को प्रमाण मानता है—वेदवाणी को ही ग्राह्य एवं आचरणीय मानता है। उसकी दृष्टि में दुनिया में वेद से बढ़कर प्रामाणिक कोई ग्रंथ नहीं हैं। वेद के आदेश (Commandments) ही जगत् में सबसे ऊँचे व निर्दोष हैं। इस प्रकार का वर्ग यद्यपि वेद-वाक्यों की व्याख्या में भिन्न भिन्न मत रखता है और उसी मत-भेद के आधार पर वह पुनः छ भागों में विभक्त हो जाता है किन्तु जहाँ तक आगम-प्रमाण का प्रश्न है—सभी वेदों को ही प्रमाण मानते हैं। इसी वेद-प्रमाण की दृष्टि को लेकर प्रथम वर्ग को आस्तिक कहा गया है। जो लोग वेदों को प्रमाण नहीं मानते, वेदों को पूर्ण नहीं मानते, वेदों को भी सामान्य पुस्तकों की श्रेणी में रखते हैं, वे लोग नास्तिक विभाग के अन्तर्गत आते हैं। ईश्वर, स्वर्ग-नरक, इहलोक-परलोक, पुण्य-पाप इत्यादि की दृष्टि से आस्तिक और नास्तिक विभाग नहीं है। यदि ऐसा होता तो शायद मीमांसा, सांख्य आदि भी नास्तिक ही कहे जाते, क्योंकि ये व्यक्तिगत ईश्वर (Personal God) की सत्ता में विश्वास नहीं रखते। ऐसी अवस्था में यदि जैनियों को नास्तिक कहा जाता है तो कोई भय या लज्जा की बात नहीं। नास्तिक शब्द कोई गाली नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिससे कि लज्जा या भय उत्पन्न हो। वेदों को मानने वाले यदि आस्तिक हैं तो उनसे विपरीत जो विचार धारा है वह नास्तिक होगी ही।

नास्तिक शब्द से यह समझना कि हम हीन हो गए या धर्म से च्युत हो गए—सर्वथा अज्ञान व भ्रम है। नास्तिकता का ऐसा अर्थ कहीं नहीं मिलता कि धर्म-हीन या कर्म-हीन। आजकल जिस अर्थ में देशी और विदेशी शब्दों का प्रयोग होता है—दार्शनिक युग में उसी अर्थ में अपने से भिन्न विचार धारा के व्यक्तियों के लिए नास्तिक शब्द का प्रयोग होता था और अपनी विचारधारा के अनुयायियों के लिए आस्तिक शब्द का व्यवहार होता था। एक दूसरे के संकेत के लिए इन शब्दों का निर्माण हुआ है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस प्रकार वेदानुयायी वर्ग तद्विरोधी वर्ग को नास्तिक कह सकता है उसी प्रकार से विरोधीवर्ग भी तो वेदानुयायियों को अपनी अपेक्षा से नास्तिक कह सकता हैं। तर्क की दृष्टि से इसमें कोई दोष नहीं है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि आस्तिक और नास्तिक ये दोनों शब्द सापेक्ष हैं ऐसी अवस्था में दोनों वर्ग दोनों को नास्तिक शब्द से सम्बोधित कर सकते हैं किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ; इसका कारण यह है कि वेदानुयायियों की संख्या अधिक रही है और अधिक संख्या होने से उन लोगों ने जिन लोगों के लिए नास्तिक शब्द का प्रयोग किया वही विशेष रूप से प्रचलित हो गया। धीरे धीरे वह शब्द रूढ़ हो गया। वास्तव में आज के प्रचलित अर्थ में जो लोग आस्तिक कहे जाते हैं वे भी नास्तिक हैं और जो लोग नास्तिक कहे जाते हैं वे भी आस्तिक हैं। प्रत्येक दर्शन आस्तिक भी है और नास्तिक भी। वेदान्त भी उतना ही नास्तिक है जितना कि चार्वाक; और बौद्धदर्शन भी उतना ही आस्तिक है जितना मीमांसा-दर्शन। आस्तिकता और नास्तिकता के अर्थ की दृष्टि से कोई भी दर्शन किसी से न तो बढ़कर है न घटकर। ऐसा होते हुए भी आस्तिक और नास्तिक शब्दों का जो अर्थ रूढ़ हो गया है उससे हमें चिढ़ना नहीं चाहिए। उसका अर्थ केवल इतना ही है कि जो दर्शन नास्तिक के नाम से प्रसिद्ध हैं वे वेदों को प्रमाण नहीं मानते। वेदों को प्रमाण न मानना जैन, बौद्ध और चार्वाक सभी को इष्ट ही है फिर भय किस बात का।

पर्युषण पर्व की सार्थकता

प्रतिवर्ष पर्युषण पर्व आता है इसलिए इस वर्ष भी आया है। पर्वों का महत्व मानव समाज के लिए लंबे काल से रहा है और बहुत लंबे काल तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा। प्रत्येक पर्व किसी न किसी विशेष उद्देश्य को लेकर आता है। कुछ पर्व मनोरंजन के साधन मात्र होते हैं। कुछ पर्व जीवन के साथ नवीनता जोड़ने वाले होते हैं। उनका ज़ीवन की सत्ता से सीधा सम्बन्ध होता है। इस प्रकार के पर्वों में पर्युषण पर्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह पर्व जैन समाज के जीवन में एक विशिष्ट विकास व नवीनता पैदा करने के लिए प्रतिवर्ष आता है। समय की दृष्टि से कुछ लोग इसकी आराधना अमुक समय से अमुक समय तक करते हैं तो कुछ लोग अमुक तिथि से अमुक तिथि तक करते हैं। एक सम्प्रदाय की आराधना जब समाप्त हो जाती है तब दूसरा वर्ग उसका प्रारंभ करता है। हम चाहते हैं कि यदि इन दोनों मार्गों का समन्वय करके एक मध्यम मार्ग का अवलम्बन लिया जाय तो बहुत अच्छा हो। सारा जैन समाज बिना किसी भेद भाव के समय की एक ही अवधि के अन्दर इस पर्व को उत्साहपूर्वक मनावे तो हमें आगे बढ़ने में अधिक सहायता मिल सकती है। दोनों वर्गों के विशिष्ट विद्वान्, मुनिराज व पत्रकार एकत्र होकर एक ऐसे समय का निर्धारण करें जो सब की सुविधा के अनुकूल हो। उनके निर्णय को सारा जैन समाज बिना किसी विरोध के मान कर उसी पर अमल करे। ऐसा होने पर ही हमारी पर्युषण पर्व की आराधना पूर्ण रूप से सफल हो सकती है। समय जैसे एक जड़द्रव्य पर अधिक ममता रखना श्रमण-संस्कृति के प्रेमियों के लिए शोभा की बात नहीं है। सब को अपनी ममता छोड़ कर एक सामान्य मार्ग ग्रहण करना चाहिए। ऐसी छोटी छोटी बातों में भी यदि हम एकता नहीं कर सके तो पता नहीं हमारा उत्थान होगा या और कुछ। एक ही संस्कृति की धारा को मानने वालों में कम से कम इतनी त्याग-भावना व सहनशीलता तो होनी ही चाहिए। यदि हम इतना भी नहीं कर सकते तो समझिए कि हम अभी बहुत पीछे हैं।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य जो हमें करना है वह है पर्युषण का क्रियात्मक पहलू। शारीरिक तपश्चर्या के साथ ही साथ आत्मिक शुद्धि अवश्यक है, ऐसा तो हम मानते ही हैं और यही कारण है कि प्रतिदिन प्रतिक्रमण आदि करते हैं। यह सब होते हुए भी पर्युषण पर्व की सार्थकता के लिए यह आवश्यक है कि ज्ञान की आराधना के लिए कुछ सक्रिय प्रयत्न करें। ज्ञान प्राप्ति का मुख्य साधन साहित्य व संस्थाएँ हैं। सांस्कृतिक दृष्टि को सामने रख कर काम करने वाली संस्थाओं को जब तक धन का पूर्ण सहयोग नहीं मिलता तब तक वे अपने उद्देश्य में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पातीं। विद्वानों, लेखकों, कवियों, कहानीकारों व पत्रकारों को जब तक मानसिक संतोष नहीं होता तब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज, संस्कृति, राष्ट्र व विश्व की उन्नति नहीं हो सकती। रूस के साहित्यकारों का वहाँ की जनता व सरकार कितना सम्मान करती है, यह जान कर आपको आश्चर्य होगा। उनकी प्रत्येक रचना पर उन्हें पारिश्रमिक—पुरस्कार तो मिलता ही है साथ ही साथ जिस प्रकार सरकार अपने कर्मचारियों को पेन्शन (Pension) देती है, ठीक उसी प्रकार उन साहित्यकारों को भी ६० वर्ष की अवस्था के बाद एक निश्चित रकम प्रतिमास पेन्शन के रूप में देती है, किसी भी साहित्यकार की कोई भी रचना, किसी भी पत्र में, किसी भी समय, कहीं पर भी बिना मूल्य में प्रकाशित नहीं होती। इसी का परिणाम है कि आज रूस का साहित्य दुनिया के किसी भी साहित्य से टक्कर ले सकता है। थोड़े समय बाद रूसी साहित्य संसार का सर्वश्रेष्ठ व समृद्ध साहित्य हो जायगा, इसमें शंका नहीं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को इस पर्व के अवसर पर अपनी सम्पत्ति का कुछ हिस्सा ज्ञान पूजा के लिए अवश्य निकालना चाहिए। केवल व्याख्यानों व बातों में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझना चाहिए। सांस्कृतिक चेतना को जीवित रखने के लिए सक्रिय प्रयत्न अत्यावश्यक है। इसी में पर्युषण पर्व की सार्थकता है।

—मोहन लाल मेहता बी० ए०, शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना—

शशी की सुन्दर किरणें पृथ्वी तल पर सुख का सुन्दर संदेश लाई। दिवाकर की उष्णता से व्याकुल हुए प्राणियों ने प्रफुल्ल हृदय से उनका स्वागत किया। सुन्दरता के प्रतीक चन्द्रदेव अपनी भव्य भावना को लिए अपनी यात्रा को परिपूर्ण करने के लिए बढ़ रहे थे।

सरोवर के किनारे असीम जलराशि से अठखेलियाँ कर रहा था कवि का हृदय—

इतने में शशी की शीतल किरणें शीतल जलराशि पर पड़ीं।। शीतल से शीतल का मिलन ! अहा, यह मधुर मिलन है ! कवि के मुख से अकस्मात् निकल पड़ा, क्या ही अच्छा हो यदि इस समय की सुन्दरता को बढ़ाने के लिए शीतल स्वभावी राजहंस यहाँ विराजित हों........ !

दूसरे ही क्षण कवि की दृष्टि उन तैरते हुए राजहंसों पर पड़ी जो अपनी नुकीली चोचों से मोती बीन रहे थे, कवि प्रफुल्ल हो उठा— क्या ही अनुपम छवि है, क्या ही सुहावना समय है ! इस समय मधुरता का साम्राज्य है, कटुता के लिए कहीं भी स्थान नहीं !

परन्तु मधुरता क्षण भंगुर है कवि ! किसी ने गंभीर स्वर में निस्तब्धता को चीरते हुए कहा।

कवि ने मुड़ कर देखा—श्वेत वस्त्रधारी एक दिव्य पुरुष खड़े थे जिनके चन्द्रमुख पर ज्योति झलक रही थी।

आप कौन भगवन् ! कवि ने प्रश्न किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं चर्म शरीर धारी एक साधारण पुरुष हूँ कवि ! तुम कल्पना के पंखों से अपनी भावना को उच्च शिखिर पर पहुँचाना चाहते हो परन्तु याद रखो—कल्पना, कल्पना ही होती है, उधर देखो सरोवर में हंस कहाँ हैं ?

कवि ने दृष्टि उठा कर देखा—केवल चाँद की किरणें जल से अठखेलियाँ कर रही थीं।

"कवि ! उठो, क्रिया करो। तुम ज्ञान के सरोवर में तैरते हुए राजहंस हो, मोक्ष पाने की अभिलाषा से पानी में मोती बीन रहे हो। तुम पाओगे, अवश्य पाओगे परन्तु क्रिया करो।"

कवि सत्य के स्वरूप को पहचान कर झूम उठा, आप देवता हैं भगवंन् ! कवि ने चरणों में गिर कर कहा।

तुम कवि हो, मैं तुम्हारी कल्पना हूँ। तुम उपवन हो मैं तुम्हारा पुष्प हूँ। तुम्हारी अमर साधना परिपूर्ण हो इसी में मेरी सफलता है।

—कुमारी सत्यवती जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास का मुख्य साधन–

–पं० सुखलाल जी संघवी

(गतांक से आगे)

जीवन शक्ति का यथार्थ अनुभव ही दूसरे प्रकार का भाव है जो न तो उदय होने पर चलित या नष्ट होता है न मर्यादित या संकुचित होता है और न मलिन ही होता है। प्रश्न हो सकता है कि जीवन-शक्ति के यथार्थ अनुभव में क्या ऐसा तत्त्व है कि जिससे वह सदा स्थिर, व्यापक और शुद्ध ही बना रहता है। इसका उत्तर पाने के लिए हमें जीवन शक्ति के स्वरूप पर थोड़ा सा विचार करना होगा।

जीवन शक्ति का स्वरूप

हम अपने आप में सोचें व देखें कि जीवन शक्ति क्या वस्तु है? कोई समझदार श्वासोच्छ्वास या प्राण को जीवन की मूलाधार शक्ति नहीं मान सकता, क्योंकि कभी कभी ध्यान की विशिष्ट अवस्था में प्राण संचार के चालू न रहने पर भी जीवन बना रहता है। इससे मानना पड़ता है कि प्राण संचार रूप जीवन की प्रेरक या आधार भूत शक्ति और ही है अभी तक के सभी आध्यात्मिक सूक्ष्म अनुभवियों ने उस आधारभूत शक्ति को चेतना कहा है; चेतना एक ऐसी स्थिर व प्रकाशमान शक्ति है जो दैहिक, मानसिक और ऐंद्रियिक आदि सभी कार्यों पर ज्ञान का--समझ का--परिज्ञान का प्रकाश अनवरत डालती रहती है। इन्द्रियाँ कुछ भी प्रवृत्ति क्यों न करें, मन कहीं भी गति क्यों न करे, देह किसी व्यापार का क्यों न आचरण करे पर उन सबका सततभान किसी एक शक्ति को थोड़ा बहुत होता ही रहता है। हम हर एक अवस्था में अपनी दैहिक, ऐन्द्रियिक और मानसिक क्रिया से जो थोड़े बहुत परिचित रहा करते हैं सो किस कारण से? जिस कारण से हमें अपनी क्रियाओं का संवेदन होता है वही है चेतना शक्ति। हम इससे अधिक या कम कुछ भी नहीं है। और वस्तु हो या न हो पर हम चेतना शून्य कभी नहीं होते। चेतना के साथ ही साथ दूसरी एक शक्ति ओतप्रोत है जिसे संकल्प शक्ति कहते हैं। चेतना जो कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझे-सोचे, उसको क्रियाकारी बनाने या उसे मूर्तरूप में लाने का चेतना के साथ अन्य कोई बल न होता तो उसकी सारी समझ बेकार होती और हम जहाँ के तहाँ रहते । हम अनुभव करते है कि समझ, जानकारी या दर्शन के अनुसार एक बार संकल्प हुआ तो चेतना पूर्णतया कार्याभिमुख हो जाती है। जैसे कूदनेवाला संकल्प करता है तो सारा बल संचित हो कर उसे कुदा देती है। संकल्प शक्ति का कार्य है बल को बिखेरने से रोकना । संकल्प से संचित बल संचित भाफ के बल के बराबर होता है । संकल्प शक्ति की मदद मिलने से चेतना गतिशील होती है और अपना साध्य सिद्ध करके ही संतुष्ट होती है । इस गतिशीलता को चेतना का वीर्य समझना चाहिए । इस तरह जीवन शक्ति के प्रधान तीन अंश हैं—चेतना, संकल्प और वीर्य या बल । इस त्रिअंशी शक्ति को ही जीवन शक्ति समझिए । जिसका अनुभव हमें प्रत्येक छोटे बड़े सर्जन कार्य में होता है । अगर समझ न हो, संकल्प न हो और पुरुषार्थ—वीर्यगति न हो तो कोई भी सर्जन हो ही नहीं सकता । ध्यान में रहे कि जगत में ऐसा कोई छोटा बड़ा जीवनधारी नहीं है जो किसी न किसी प्रकार का सर्जन न करता हो । इससे प्राणीमात्र में ऊपर कही हुई त्रिअंशी जीवन शक्ति का पता चल जाता है । यों तो ऐसी शक्ति का जैसे हम अपने आप में प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं वैसे ही अन्य प्राणियों में भी उनके सर्जन कार्य से उस शक्ति का अनुमान कर सकते हैं । फिर भी उसका अनुभव, और वह भी यथार्थ अनुभव एक अलग वस्तु है ।

सामने खड़ी दीवार को कोई अस्वीकार करे तो हम नहीं मान सकते । हम तो सामने वाली दीवार का अस्तित्व ही अनुभव करेंगे । अपने में और दूसरों में मौजूद उस त्रिअंशी शक्ति के अस्तित्व और उसके सामर्थ्य का अनुभव करना वैसा ही है जैसा की सामने स्थित दीवार का । वही अनुभव जीवन व शक्ति का यथार्थ अनुभव है ।

जब ऐसा अनुभव होता है तब अपने आपके प्रति और दूसरों के प्रति जीवन दृष्टि बदल जाती है, फिर तो ऐसा भाव पैदा होता है कि सर्वत्र त्रिअंशी जीवन-शक्ति–सच्चिदानन्द या तो अखण्ड व एक है या सर्वत्र समान है । किसी को संस्कारानुसार अभेदानुभव हो या किसी को साम्यानुभव, पर परिणाम में कुछ भी फर्क नहीं होता । अभेददृष्टि धारण करने वाला दूसरों के प्रति वही जवाबदेही समझेगा जो अपने प्रति । वास्तव में उसकी जवाबदेही या कर्तव्यदृष्टि अपने पराये के भेद से भिन्न नहीं होती, इसी तरह साम्यदृष्टि धारण करने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपने पराये के भेद से कर्तव्यदृष्टि या जवाबदेही में तारतम्य नहीं कर सकता।

मोह कोटि में आने वाले भावों से प्रेरित उत्तरदायित्व या कर्तव्य दृष्टि एक सी अखंड या निरावरण नहीं होती जबकि जीवन शक्ति के यथार्थ अनुभव से प्रेरित उत्तरदायित्व या कर्तव्य दृष्टि सदा एक सी और निरावरण होती है क्योंकि वह भाव न तो राजस अंश से आया हैं और न तामस अंश से अभिभूत हो सकता है। वह भाव साहजिक जीवन शक्ति का यथार्थ अनुभव है, सात्विक है ।

मानव जाति को सबसे बड़ी भारी और कीमती जो कुदरती देन मिली है—वह है उस सहज भाव को धारण करने या पैदा करनें का सामर्थ्य व योग्यता, जो कि विकास–असाधारण विकास का मुख्य साधन है । मानव जाति के इतिहास में बुद्ध और महावीर आदि अनेक सन्त-महन्त हो गए हैं जिन्होंने हजार विघ्नबाधाओं के होते हुए भी मानवता के उद्धार की जवाबदेही से कभी मुंह न मोड़ा । अपनें शिष्य के प्रलोभन पर सुकरात मृत्यु मुख से बच सकता था पर उसने शारीरिक जीवन की अपेक्षा आध्यत्मिक सत्य के जीवन को पसन्द किया और मृत्यु उसे डरा न सकी । उसने अपना नया प्रेम-सन्देश देनें की जवाबदेही को अदा करने में शूली को सिंहासन माना । ऐसे पुराने ऐतिहासिक उदाहरणों की सचाई के सन्देह को दूर करने के लिए ही मानो गांधी जी ने अभी अभी जो चमत्कार दिखाया है वह सर्वविदित है। उनको हिन्दुत्व–आर्यत्व के नाम पर प्रतिष्ठा प्राप्त ब्राह्मण व श्रमण की सैकड़ों कुरूढ़ि पिशाचियां चलित न कर सकीं और न हिन्दु-मुसलमान की दण्डादण्डी या शस्त्राशस्त्री ने उन्हें कर्तव्य-चलित किया और न उन्हें मृत्यु डरा सकी । वे ऐसे ही मनुष्य थे जैसे हम । फिर क्या कारण है कि उनकी कर्तव्यदृष्टि या जवाबदेही ऐसी स्थिर, व्यपक और शुद्ध थी और हमारी उसके विपरीत । जवाब सीधा है कि ऐसे पुरुषों में उत्तरदायित्व या कर्तव्य दृष्टि का प्रेरक भाव जीवन शक्ति के यथार्थ अनुभव से आया हुआ होता है, जो हम में नहीं है ।

ऐसे पुरुषों को जीवन शक्ति का जो यथार्थ अनुभव हुआ उसी को जुदे जुदे दार्शनिक जुदी जुदी परिभाषा में वर्णन करते हैं । कोई आत्म साक्षात्कार कहता है तो कोई ब्रह्म साक्षात्कार या ईश्वर दर्शन कहता है । पर इससे वस्तु में अन्तर नहीं पड़ता । हमनें ऊपर के वर्णन से यह बतलाने की चेष्टा की कि मोहजनित भावों की अपेक्षा जीवन शक्ति के यथार्थ अनुभव का भाव कितना

(शेष पृष्ठ १५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवक से

विकृति–

है कैसा यह पागलपन !
यौवन की इस मदिरा को नाली में ढुलकाता है ।
कोमल मृणाल से तन को शूलों से बिंधवाता है ॥
तू क्रान्ति क्रान्ति रटता है अरु व्यर्थ शान्ति खोता है ।
पगले ! वैभव के पथ में क्यों काँटे तू बोता है ॥
उन्मत्त हुआ तेरा मन
है कैसा यह पागलपन !
कितने टकराये हारे इन दुर्गम पाषाणों से ।
बिँध सका न लक्ष्य किसी भी यह धन्वी के बाणों से ॥
जीवन कुसुमों को प्यारे मत बुरी तरह बिखरा तू ।
तू अनुभवहीन युवक है इतना न अधिक इतरा तू ॥
यह महादुखद संघर्षण
है कैसा यह पागलपन !

प्रकृति–

टूटे न युवक तेरा प्रण ।
हे आत्मशक्ति के पुतले ! तू व्यर्थ मृत्यु से डरता ।
बिन बने भला निर्मोही, है कौन मुक्ति को वरता ॥
निज लय में लय होजाना क्या यही न जय कहलाती ।
चल आगे क़दम बढ़ा दे, मज़बूत बनाले छाती ॥
कर दुखदावानल मर्दन
टूटे न युवक तेरा प्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुँकार एक बस तेरी टूटेंगे नभ के तारे ।
निज शक्ति भुला मत, तू ही है इस जगती को धारे ॥
उठ ! रूढ़ि-दुर्ग को ढादे, प्रगटा शुचिता की झाँकी ।
मर कर ही बलिदानी ने जीवन की कीमत आँकी ॥
कर नव जगती का सर्जन
टूटे न युवक तेरा प्रण

—रामकुमार जैन 'स्नातक'

(पृष्ठ १३ से आगे)

श्रेष्ठ है और उससे प्रेरित कर्तव्य दृष्टि या उत्तरदायित्व कितना प्रधान है। जो वसुधा को कुटुम्ब समझता है वह भी उसी श्रेष्ठभाव के कारण। ऐसा भाव केवल शब्दों से नहीं आसकता। वह भीतर से उगता है, और वही मानव के पूर्ण विकास का मुख्य साधन है। उसी के लाभ के निमित्त अध्यात्म शास्त्र है, योग मार्ग है और उसी की साधना में मानव जीवन की कृतार्थता है।

—श्री सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ से साभार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन और हिन्दू—

प्रो० दलसुख मालवणिया

भारत वर्ष में धार्मिक दृष्टि से दो विचार धाराएँ प्राचीन काल से चली आ रही हैं। एक त्याग प्रधान और दूसरी भोग प्रधान। त्याग प्रधान धारा को हम श्रमण धर्म कहते हैं जिसमें मोक्षपुरुषार्थ का प्राधान्य है। उस धारा में प्राचीन काल में जैन धर्म और बौद्ध धर्म तथा मध्य काल में संत-महात्माओं का मार्ग प्रधान है। दूसरी भोग प्रधान धारा प्राचीनकाल में यज्ञयाग का प्रतिपादन करने वाली और मोक्षपुरुषार्थ का नहीं किन्तु धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ का प्रतिपादन करने वाली विचार धारा थी। उसमें वैदिक धर्म और ब्राह्मण धर्म को मुख्यत: स्थान है। आज जो हिन्दूधर्म कहा जाता है वह उसी वैदिकधर्म का रूपान्तर है। किन्तु उस रूपान्तर में वेद का प्राधान्य होने पर भी वैदिक क्रिया काण्डों की हिंसा गौण होगई है और उसके स्थान में प्राय: श्रमणों की अहिंसा ने स्थान पाया है। इतना ही नहीं किन्तु पुरुषार्थों में भी मोक्षपुरुषार्थ प्रधान हो गया है। ऐसी स्थिति में हिन्दूधर्म को श्रमण और ब्राह्मण—दोनों के समन्वय में से निष्पन्न एक धर्म समझना चाहिए जो सर्वथा वैदिक भी नहीं और सर्वथा श्रमण भी नहीं।

यही हाल विद्यमान जैन और बौद्ध धर्म का भी है। केवल आध्यात्मिक दृष्टि का प्राधान्य प्राचीन काल में इन दोनों धर्मों में था। किन्तु आज के धार्मिक कहे जानेवाले बहुत से आचार व्यवहार ऐसे हो गए हैं जिनका सम्बन्ध मूल जैन या बौद्धधर्म से नहीं था। तब कहना पड़ता है कि आज का जैनधर्म भी हिन्दू धर्म की तरह समन्वयात्मक ही है, उसमें भी काल बल से ऐसी बहुत सी बातें आगई हैं जो वैदिक, ब्राह्मण और हिन्दू धर्म के अनुकूल हैं। प्राचीन जैनधर्म के अनुकूल नहीं।

ऐसी स्थिति में किसी को यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि जैनधर्म हिन्दूधर्म ही है।

आर्य लोगों के धर्म से जैनधर्म का मूलस्रोत भिन्न ही था किन्तु जब आर्य लोगों ने जैनधर्म को अपनाया तब वह धर्म भी आर्य होगया। उसके महापुरुष आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ कहे जाने लगे । आर्यों के प्राबल्य के साथ ही अनार्य लोगों का अस्तित्व खतरे में था और हर कोई अपने को आर्य कहलाने में गौरव का अनुभव करता था। तब ऐसा कौन हो सकता है जो अपने को अनार्य या अनार्यधर्मी कहलवा कर गौरवहीन बने । वैदिकधर्म ब्राह्मणप्रधान था और श्रमणधर्म क्षत्रियप्रधान। क्षत्रियों की नेतृत्व लालसा में से उनकी रुचि ब्राह्मण या वैदिकधर्म की ओर से हटी और उन्होंने भारत के संभवतः मूलनिवासियों के आत्मधर्म को अपनाया। इसी के फलस्वरूप कुछ क्षत्रिय श्रेष्ठ आर्यजाति में तीर्थंकर या बुद्ध बन गए। फिर भी उनके गणधर या प्रधान शिष्य प्रायः ब्राह्मण हुए, जिन्होंने उन क्षत्रिय महापुरुषों को क्षत्रियश्रेष्ठ कह कर प्रसिद्ध नहीं किया किन्तु वे ही सच्चे और श्रेष्ठ ब्राह्मण थे ऐसा प्रतिपादन किया। इस प्रकार क्षत्रियों की भी श्रेष्ठता ब्राह्मण बन कर ही हुई। सचमुच श्रमणधर्म को नये रूप में ब्राह्मणधर्म ही बना डाला। एक ओर वैदिकधर्म का श्रमणीकरण हो रहा था तो दूसरी ओर श्रमणधर्म का ब्राह्मणीकरण किया जा रहा था। अतएव आगे जाकर हम देखते हैं कि जैनों में भी वेद बनते हैं और नष्ट होते हैं। जैनों में चातुर्वर्ण्य की सृष्टि की बात जैन पुराणों में भी आती है और आज हिन्दुओं की ही तरह जैनों को भी हरिजन मंदिर प्रवेश का प्रश्न सताता है। इससे समझना चाहिए कि अधिकांश में हमारा ब्राह्मणीकरण हो चुका है। हम हिन्दूधर्मी बन चुके हैं।

जैनधर्म हिन्दूधर्म नहीं है, और न था–यह सच है किन्तु हमारा आचार और व्यवहार ऐसा होगया है कि वर्तमान में यह विवेक करना कठिन है कि जैनधर्म और हिन्दूधर्म की सीमारेखा कहाँ रखी जाय ? हमारा जैनधर्म वेदमूलक नहीं है यह हम कहते हैं। हिन्दुओं के धर्म का भी विश्लेषण किया जाय तो पता लगेगा कि वे अपने आचार विचार वेदमूलक बताते तो हैं किन्तु वेद में खोजा जाय तो अधिकांश वेदमूलक सिद्ध नहीं होते। इसलिए उनके अधिकांश आचार और विचारों की भी वेदमूलकता असिद्ध ही है। ऐसी स्थिति में यह कठिन हो जाता है कि किसे जैन कहा जाय और किसे हिन्दू। इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि यदि हमें हिन्दू या हिन्दूधर्मी कहलवाना इष्ट न हो तो हमारा आचार और विचार अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण से हो अर्थात् भगवान् महावीर के मूलमार्ग का अनुसरण करना होगा। उसकी प्रथम शर्त यही है कि हममें जातिपाँति का भेद न हो और हिंसाको पोषण देनेवाले परिग्रह का आग्रह न हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपकार का बदला !

—मोहन लाल मेहता बी० ए०

प्रातःकाल ९ बजे रामू ने जंगल की राह ली। लकड़ी काट कर बाजार में बेचना और जो पैसा मिले उससे अपना तथा कुटुम्ब का पेट भरना, यही रामू का प्रतिदिन का कार्यक्रम था। उसने अपनी गृहस्थी की सुविधा के लिए कुछ गाएँ भी रख छोड़ी थीं। गाँव के बाहर एक टूटा फूटा मकान बना रखा था जहाँ पर गायों के लिए घास आदि का प्रबन्ध था तथा दूध दुहने का कार्य भी वहीं पूरा होता था।

रामू चलते चलते बीहड़ वन में पहुँच चुका था। चारों ओर चट्टानें खड़ी थीं। उसके अतिरिक्त उस प्रदेश में अन्य कोई भी व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता था, किन्तु रामू इस भयंकर एकान्त से भयभीत होने वाला न था। वह तो इस प्रकार की परिस्थिति में पला ही था उसे डर किस बातका, निर्भय होकर बढ़ता जारहा था। जाते जाते उसे कहीं से कुछ आवाज सी सुनाई दी। वह एक दम रुक गया और कान लगा कर सुनने लगा। वह यह निश्चय न कर सका कि आवाज़ किसकी थी। आवाज के सहारे बढ़ता गया और एक चट्टान के पास जाकर रुक गया।

'अरे, वह तो सर्प है ? बेचारा कितना दुःखी है ? न जाने कितने समय से इस चट्टान के नीचे दबा पड़ा है'। रामू के मन में तरह तरह के विचार उठने लगे।

"अरे पथिक ! आज का दिवस धन्य है कि तुम जैसा एक महान् उद्धारक यहाँ आ पहुँचा। मुझे आशा न थी कि मेरा उद्धार करने वाला कोई मानव इस धरती पर जीवित है। देखो, कितना दुःखी हूँ ! सौ वर्ष का काल व्यतीत हो चुका किन्तु मुझे इस दुःख से मुक्त करने वाला कोई न मिला। आज मेरी प्रार्थना तुमने सुन ली। लोग कहते हैं कि भगवान् सब की प्रार्थना सुनता है किन्तु न जाने इतने वर्षों से भगवान् कहाँ पर सो रहा है। मेरे लिए तो तुम ही भगवान् हो। तुम जैसे एक सच्चे मानव के अतिरिक्त और भगवान् क्या होता है ? पथिक ! मेरा उद्धार करो। मुझे इस भयंकर कष्ट से मुक्त करो। तुम्हारा बड़ा आभारी हूँगा। जीवन भर तुम्हारा यश न भूलूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१९५०]

जब तक इस जगत् में रहूँगा, तुम्हें याद रखूँगा। मानवरत्न ? मुझे मुक्त करो!" साँप ने पथिक से प्रार्थना की और मुक्ति की आशा की प्रसन्नता से फूल उठा।

"क्या तुम सौ वर्ष से इसी दशा में पड़े हुए हो, कोई भी तुम्हें मुक्त न कर सका ?"

"हाँ, नररत्न ! मुझे इसी दशा में पड़े पड़े सौ साल होगए। कौन मुक्त करता ? किसी का पदार्पण भी तो नहीं हुआ।"

"कोई चिन्ता नहीं। आज तुम्हारी मुक्ति आ पहुँची। मैं तुम्हें मुक्त करूँगा।"

रामू ने अपने शारीरिक बल का प्रयोग कर उस चट्टान को दूर हटाया। चट्टान के हटते ही साँप फुत्कार करता हुआ बाहर निकल गया।

"पथिक ! तुमने मुझे मुक्त किया। तुमने मेरी रक्षा की किन्तु तुम्हें मालूम है कि मैं सौ साल से बिलकुल भूखा हूँ। यदि मुझे इसी समय कुछ भोजन न मिला तो मैं मर जाऊँगा। मुझे इसी समय खाना चाहिए। तुम्हें छोड़कर और किसे ढूँढूँ ? पथिक ! मैं तुम्हें काटूँगा और अपनी भूख को शान्त करूँगा।" साँप ने कृतघ्नता दिखाते हुए कहा।

रामू के सिर पर पहाड़ गिर पड़ा। वह सोचने लगा—'अरे, क्या यही उपकार का प्रतिदान है ! क्या मैंने इसीलिए इसे बचाया था ! अपनी मृत्यु को आमन्त्रित करने के लिए इसकी रक्षा की थी ! वाह रे जगत् ! उपकार का बदला क्या इसी रूप में मिलता है' ?

रामू ने कहा—"देखो भाई ! मैंने तुम्हें बचाया। तुम्हारी प्राण रक्षा की। क्या उसका यही बदला है ? मुझे छोड़ दो—बस इतना ही चाहता हूँ। अधिक उपकार की तो आशा ही क्या !"

"नहीं ! नहीं !! ऐसा नहीं हो सकता। मैं तो तुम्हीं को खाऊँगा। संसार का यही नियम है कि उपकार का बदला अपकार से दिया जाता है।" साँप ने उत्तर दिया।

"अच्छा ! यदि ऐसा ही है तो चलो, किसी से न्याय करवा लें।" रामू ने एक नया सुझाव रखा।

सर्प रामू की बात से सहमत हो गया। दोनों न्यायी की खोज में निकले। चलते चलते उन्हें एक वृद्ध कुत्ता आता हुआ दिखाई दिया। वे दोनों उस कुत्ते के पास जाकर ठहर गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देखो, श्वानराज! हमारा एक झगड़ा निपटा दो। मुझे इसने बचाया, एक चट्टान को दूर हटा कर मेरी रक्षा की। मैं सौ वर्ष से भूखा हूँ। मैं इसे खाना चाहता हूँ किन्तु यह मना करता है। तुम्हीं कह दो, क्या करना चाहिए?" साँप ने कुत्ते के सामने सारा मामला रख दिया।

"हाँ, श्वानराज! देखो, बराबर न्याय होना चाहिए। यह मुझे खाना चाहता है, यह ठीक है?" रामू ने भी अपना पक्ष उपस्थित किया।

कुत्ते ने अपना निर्णय देते हुए कहा—"मैंने अपनी युवावस्था में अपने स्वामी की खूब सेवा की। रात दिन जगता रहता था। कभी भी भरपेट नींद नहीं ली। कोई भी अपरिचित व्यक्ति द्वार पर आता कि तुरन्त स्वामी को सूचना दे देता। सारा जीवन स्वामी की सेवा में व्यतीत किया। आज जब मैं वृद्ध होगया, मेरे स्वामी ने मुझे घर से बाहर निकाल दिया। मैं आज उसके लिए भारभूत होगया! इतनी सेवा करने पर भी स्वामी ने मेरे साथ यह व्यवहार किया! संसार का यही नियम है कि उपकार का बदला अपकार से दिया जाता है।"

रामू और साँप आगे बढ़े।

सामने ही एक वृद्ध घोड़ा आरहा था। दोनों ने उस घोड़े के सामने अपना मामला पेश किया। घोड़े ने सारा विवरण ध्यान से सुना। अन्त में अपना निर्णय दिया—

"मेरा अपने स्वामी पर अपार प्रेम था। स्वामी भी मुझे प्राणों से अधिक प्रिय समझता था। मैंने अपनी सारी जिन्दगी स्वामी की सेवा में समर्पित की, स्वामी के सुख में अपना सुख और उसके दुःख में अपना दुःख माना। जिस समय मालिक कहीं जाना चाहता, मैं प्रसन्नता से अपनी पीठ पर चढ़ा कर वहाँ पहुँचा देता। न कभी शीत की परवाह की, न कभी उष्णता की चिन्ता। न वर्षा से भय था न आँधी से डर। मैंने स्वामी की सेवा के लिए प्रकृति पर पूर्ण अधिकार कर लिया था। आखिर इसी प्रकार की अवस्था कब तक रहती। उस समय मैं यह न जानता था कि जीवन प्रतिक्षण परिवर्तित होरहा है। संसार प्रतिपल बदलता जारहा है। जगत् के सारे पदार्थ क्षणिक हैं—अस्थायी हैं—विनाशी हैं। मेरा यौवन ढलने लगा। अन्त में वृद्धावस्था आ पहुँची। आज मेरा शरीर इस योग्य नहीं रहा कि मैं उस मानव-स्वामी की सेवा कर सकूँ—उसी प्रकार अपने जीवन को उसके लिए बलिवेदी पर चढ़ा सकूँ। मनुष्य का स्वार्थ कितना भयंकर होता है! उसने मुझे अपने घर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल दिया। आज मैं गली गली में भटकता फिरता हूँ, वन वन की खाक छानता फिरता हूँ, न वह खाना और न वह आश्रय ! भूत की याद आते ही आँखों में चक्कर आने लगते हैं। मन न जानें किस दिशा में भागने लगता है ! स्वार्थी दुनिया ! संसार का यही नियम है कि उपकार का बदला अपकार से दिया जाता है।"

अश्व का निर्णय भी साँप के पक्ष में ही था। वे दोनों और आगे बढ़े। थोड़ी दूर पर एक वृद्ध गाय आ रही थी। दोनों ने अपना झगड़ा उसके सम्मुख रखा।

गाय थोड़ी देर तक सोचती रही और फिर बोली—

"मेरा निर्णय चाहते हो ? मेरी जीवन-गाथा सुन लो; वही मेरा निर्णय है। मैं अपने मालिक को प्रतिसमय दस सेर दूध देती थी। दूध भी सामान्य गाय सरीखा नहीं कि दो सेर पीने पर भी तृप्ति न हो। मेरा दूध! किसी की हिम्मत नहीं कि आध सेर से अधिक एक समय पी लेता। जब तक दूध देती रही, खूब माल मिलता रहा। स्वामी दोनों समय मेरी खबर लेता रहता—चिन्ता करता। कभी किसी बात की कमी न रहने देता। जरा सी कमी होते ही तुरन्त नौकरों पर डाँट पड़ती। बेचारे नौकर भागे भागे जाते और उसकी पूर्ति करते। नौकर लोग अपनी स्वामिनी की उतनी चिन्ता न रखते जितनी मेरी रखते। मेरा पद किसी रानी या सेठानी से कम न था। इतना सम्मान था मेरा ! किन्तु कब तक ? जब तक कि मैं दूध देती रही—स्वार्थी मानव की पेट पूर्ति करती रही—अपना बलिदान करके मानव का पोषण करती रही ! ज्यों ही जरा आई, सब बातें हवा में उड़ गईं। न कोई घास की चिन्ता करता था न पानी की पूछ। तुलसीदासजी की उपेक्षिता उर्मिला की भाँति मेरी भी उपेक्षा की जाने लगी। जीवन भर तक जिस व्यक्ति ने मेरा दूध पिया—मेरे जीवन से अपने जीवन का निर्माण किया वही व्यक्ति वृद्धावस्था में मेरा मुँह तक नहीं देखता। मैं घर से निकाल दी गई। आज जंगल के पत्थरों की ठोकरें खाती फिरती हूँ। वाह रे स्वार्थी मानव ! दूध तो तेने पिया और ठोकरें मैं खाती हूँ ? अमृत तो तेने पिया और विष का आस्वादन मैं करती हूँ ? उस समय तो मैं तेरी माँ थी और आज डायन बन गई ? हत्यारा अपने स्वार्थ के लिए सबकी हत्या कर सकता है। संसार का यही नियम है कि उपकार का बदला अपकार से दिया जाता है।"

रामू का कलेजा फटता जा रहा था। साँप और रामू और आगे बढ़े। सामने ही एक बिल्ली आती हुई दिखाई दी। दोनों ने अपना पक्ष उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए निर्णय की मांग की । बिल्ली बड़ी चतुर थी । उसने अपना स्वार्थ सिद्ध करने की भावना से रामू को एकान्त में बुला कर कहा—"देखो रामू ! मैं चाहूँ तो अभी तुम्हारे विपक्ष में निर्णय दे सकती हूँ और मेरी इच्छा हो तो तुम्हें बचा भी सकती हूँ । यदि मैं तुम्हें बचा दूँ तो तुम मुझे क्या दोगे ?"

रामू ने अवसर से लाभ उठाते हुए कहा—"बिल्ली रानी ! तुम्हारी और तो क्या सेवा कर सकता हूँ, तुम्हें खूब दूध पिलाऊँगा—मेरे घर पर कई गायें हैं उनका मीठा मीठा मक्खन खिलाऊँगा । रामू का घर जीवन भर याद न करो तो मुझे कहना !"

बिल्ली और रामू में गुप्त समझौता हो गया । साँप को कुछ भी पता न लगा ।

बिल्ली ने कहा—"आप लोग मेरा निर्णय चाहते हैं किन्तु मैं इतनी मूर्ख नहीं हूँ कि पूरी स्थिति जाने बिना अपना निर्णय दे दूँ । आप लोग कृपया मुझे वह स्थान दिखलाइए जहाँ पर यह घटना घटी है । उसी के आधार पर मैं अपना निर्णय दे सकती हूँ । बिना स्थान का पता लगाए घटना की वास्तविकता कैसे मालूम हो सकती है ?"

तीनों वापिस लौटे और वहाँ पहुँचे जहाँ पहले सर्प पड़ा हुआ था।

बिल्ली ने पूछा—"सर्पराज ! तुम कैसे लेट रहे थे ? यह तो बताओ !"

सर्प ने सोचा कि यह भी जांच का एक अंग है और वह उसी समय वहीं पर लेट गया जहाँ कि रामू के आने के समय पड़ा हुआ था ।

बिल्ली ने चुपके से रामू को संकेत किया कि इस चट्टान को वापिस खिसका दो । रामू ने तुरन्त वह चट्टान सर्प पर रख दी । सर्प पुनः उसी दशा में आ गया । रामू अत्यन्त प्रसन्न हुआ । सर्प के क्रोध का कोई ठिकाना न रहा किन्तु वह अब क्या कर सकता था । बिल्ली ने कहा—"संसार का यही नियम है कि उपकार का बदला अपकार से दिया जाता है ।"

रामू प्रसन्न होता हुआ अपने घर पहुंचा । रात्रि में आराम से सोया। प्रातःकाल उठते ही गायों को दुहने के लिए गौशाला की ओर गया। ज्यों ही उसने गाएँ दुहनी प्रारंभ की कि वह बिल्ली भी वहाँ पहुंच गई। दूध का बर्तन भरते ही उसमें मुँह डालकर पीने लगी । रामू ने देखा कि उसका दूध तो बिल्ली पी रही है। एक डंडा उठाया और लगा बिल्ली को पीटने।

बिल्ली ने कहा—"रामू ! मैंने तुम्हारी रक्षा की—तुम्हारे प्राण बचाए तुमने मुझे आश्वासन दिया था कि मेरे घर पर आना; खूब दूध पिलाऊँगा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खूब मक्खन खिलाऊँगा किन्तु तुम तो मुझे पीटने लग गए—डंडों का पुरस्कार देने लग गए ?"

रामू ने इतना ही कहा—"संसार का यही नियम है कि उपकार का बदला अपकार से दिया जाता है ।"

—एक जर्मन कहानी के आधार पर

हमारे शास्त्रकार हमें बहुत समझाते हैं कि मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। बड़े पुण्य से मिलता है। मनुष्य देह को भाग्य और पुण्य का फल इस लिए माना जाता है कि दूसरे प्राणी स्वार्थी होते हैं। उन्हें अपने सिवाय दूसरे की सेवा नहीं सूझती, मनुष्य जन्म में यह सम्भव है। भूख लगने पर खाने की इच्छा प्रत्येक प्राणी को होती है। इसी प्रकार मनुष्य को भी होती है। मनुष्य की विशेषता यह है कि दूसरों को खिलाकर स्वयं भूखा रह सकता है। वह भूखे को खिलाकर स्वयं भूखा रहने में आनन्द का अनुभव करता है। यह अनुभव पशुओं को नहीं होता। पशुजन्म पाप भोगने के लिए है और देवजन्म पुण्य भोगने के लिए है। दोनों में पुरुषार्थ नहीं होता। मनुष्य जन्म पुरुषार्थ के लिए है। वह पाप या पुण्य भोगने के लिए नहीं है किन्तु सेवा के लिए है। इसलिए मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ माना जाता है। देव भी इसकी इच्छा करते हैं। ऐसा मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी हम अपना ही स्वार्थ देखते रहें और दूसरे की चिन्ता न करें तो शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। हमें सभी का ध्यान रखना चाहिए।

—आचार्य विनोबा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैंतालीस व बत्तीस सूत्रों की मान्यता पर विचार-

-श्री अगरचंद नाहटा

इस लेख में श्रीयुत नाहटाजी ने ४५ व ३२ आगमों की मान्यता का निर्णय करने का प्रयत्न किया है। इस विषय पर अन्य अन्वेषक भी अपने विचार 'श्रमण' में अवश्य भेजें। हम उनका स्वागत करेंगे।

-सम्पादक

श्वेताम्बर जैन समाज के मान्य प्राचीन धर्मग्रन्थ, उपलब्ध आगम साहित्य है जिनमें से ग्यारह अंगसूत्र भगवान् महावीर प्रणीत तथा गणधर ग्रन्थित हैं। बारहवाँ अंग विच्छेद होगया। 'द्वादशांगी गणि पिटक' इनकी प्राचीन संज्ञा है। एकादश अंगों के अतिरिक्त चौदह पूर्व का ज्ञान भी आचार्य भद्रबाहु व स्थूलिभद्र तक रहा। आचार्य वज्रस्वामी दश पूर्वधर थे तत्पश्चात् क्रमशः पूर्वों का लोप होता गया और विक्रम की द्वितीय-तृतीय शताब्दी में मूलरूप में एक भी पूर्व का ज्ञान न रह कर फुटकर बातों की आम्नाय मात्र रह गई प्रतीत होती है। साधारणतया भगवान् महावीर के समय से ही एकादश अंगों का पठन पाठन साधु संघ करता रहा, पर वह ज्ञान स्मृति पर आश्रित होने से स्मृति की क्षीणता के कारण एकादश अंग भी त्रुटित से हो गए। बारह वर्षीय दुष्कालों का भी इस स्मृति व श्रुत की कमी में बड़ा हाथ था। विक्रम की पाँचवी सदी के प्रारंभ में आचार्य देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने उपलब्ध श्रुत को लिपिबद्ध कर लेना आवश्यक समझा और एकादश अंगों के अतिरिक्त हजार वर्षों में जो कुछ श्रुत स्थविरों ने बनाया उसे भी लिख लिया गया जिनकी नामावली नंदी एवं पाक्षिक सूत्र में पाई जाती है। इनमें से नंदी सूत्र में ३१ कालिक व २९ उत्कालिक कुल ६० आगमों की और पाक्षिक सूत्र में ३७ कालिक एवं २८ उत्कालिक कुल६५ सूत्रों की नामावली प्राप्त[१] है।

१—देखें-प्रो० हीरालाल रसिक लाल कापड़िया का "आर्हत आगमों नुं अवलोकन" एवं मेरा "जैनागम साहित्य" शीर्षक लेख जो कि 'जैन सत्यप्रकाश' वर्ष ४ अं० १ में प्रकाशित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन आगमों का प्राचीन वर्गीकरण अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य के रूप में मिलता है। अंगप्रविष्ट में एकादश अंगोंका और अवशिष्ट सभी आगमों का अंगबाह्य में समावेश होता है। अंगबाह्य के आवश्यक और आवश्यक-व्यतिरिक्त ये दो भेद हैं। उनमें से आवश्यक में सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग एवं प्रत्याख्यान—ये छ भेद हैं तथा आवश्यक व्यतिरिक्त के कालिक एवं उत्कालिक दो भेद पठनकाल के भेद की अपेक्षा से किये गए हैं। जो सूत्र दिन एवं रात्रि की प्रथम एव अन्तिम पौरुषी में पढ़े जाते हैं उनकी संज्ञा कालिक, एवं जो सूत्र सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त, मध्यरात्रि इन चारों समय की प्रथम एक एक घड़ी (२४ मिनट) व पीछे की एक एक घड़ी कुल ८ घड़ी कालवेला को छोड़ हरएक समय में पढ़े जा सकें उनकी संज्ञा उत्कालिक सूत्र है। एकादश अंग कालिकसूत्र कहे जाते हैं। अन्य आगमों में कालिक एवं उत्कालिक दोनों प्रकार के हैं जिनका वर्गीकरण नंदी एवं पाक्षिक सूत्र में पाये जाने का ऊपर निर्देश किया जा चुका है।

आगमों का वर्तमान वर्गीकरण उपांग, छेद, मूल, पयन्ना आदि के नाम से बाद में किया गया है। इनमें से उपांग शब्द का उल्लेख तो निरयावलि सूत्र में मिलता है एवं तत्त्वार्थ भाष्य में भी निर्देश हैं पर निरयावलि में उपांग के पांच वर्ग (निरयावलिया, कप्पवडिंसिया; पुप्फिया, पुप्फचूलिया और वण्हिदसा) बतलाए हैं। इससे उपांगों की संख्या १२ जो वर्तमान में मानी जाती है वह परवर्ती सिद्ध है। आचार्य हरिभद्रसूरि एवं सिद्धसेनगणि ने राजप्रश्नीय एवं औपपातिक को उपांग की संज्ञा से संबोधित किया हं। इससे ८ वीं सदी से पूर्व ही निरयावलि में कहे गए उपांग के पांच वर्गों के अतिरिक्त अन्य आगमों को भी उपांग संज्ञा दे दी गई थी ऐसा सिद्ध होता है। विक्रम की १२ वीं शताब्दी में वर्तमान में माने जाने वाले १२ सूत्रों को उपांग की संज्ञा प्राप्त हो चुकी थी तथा एकादश अंगों के साथ इनका सम्बन्ध स्थिर हो चुका था। यह बात आ० जिनदत्त सूरि के श्रुतस्तव एवं श्री चंद्रसूरि की सुबोहा समाचारी से स्पष्ट है। पर इस समय तक ६ छेद, १० पयन्ना व ४ मूलसूत्र तथा आगमों की संख्या ४५, संभवतः यह बात निश्चित नहीं हुई थी। आगमों की संख्या ४५ निश्चित होने का उल्लेख १४ वीं शताब्दी में मिलता है। खरतरगच्छ के आचार्य जिनप्रभसूरि जी के प्राकृत सिद्धान्त स्तव से इसकी पुष्टि होती है। अतः संभवतः १२-१३ वीं सदी में ये संख्याएँ निश्चित हुई होंगी पर इस सम्बन्ध में अभी और अन्वेषण करके मत स्थिर करना उचित होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रद्युम्न सूरि रचित विचार सार प्रकरण (पृ० ७८–७९) में अंग और उपांग के २३ नाम तो एक ही क्रम से है पर बाकी के ग्रन्थों को छेद, मूल-सूत्रादि संज्ञा नहीं दी एवं नामों में भी कहीं कहीं भिन्नता हैं। यहाँ अंग-उपांग के अतिरिक्त २२ सूत्रों को जिनप्रभसूरि व प्रद्युम्नसूरि जिस क्रम से जिन जिनको मानते हैं उनकी नामावली दी जा रही है—

जिनप्रभसूरिमान्य—१ चउसरण, २ चंदविज्जग, ३ आउर ४ महापुव्व-पञ्चक्खाणं, ५ भत्त पइण्णा, ६ तंदुल वेयालियं, ७ गणिविज्जा, ८ मरणसमाही, ९ देविंदथओ, १० संथार—ये दस पयन्ने हैं। वीरत्थय, गच्छाचार आदि इस संख्या से अतिरिक्त हैं। ११. दसवेयालिअ, १२. ओघनिज्जुत्ति, १३. पिंड-निज्जुत्ति, १४ उत्तरज्झयण–ये चार मूलसूत्र हैं १५ नंदी एवं १६ अनुयोगद्वार की कोई अलग संज्ञा न देकर साथ में ही निर्देश कर दिया है। १७ निसीह, १८ कप्पववहार, १९ पंचकप्प, २० दसासुअक्खंध, २१ महानिसीह, २२ जीअकप्प ये ६ छेद हैं। इस तरह ११ अंग १२ उपांग के साथ मिलाने से सब ४५ होते हैं। आवश्यक एवं विशेषावश्यकादि का भी केवल नाम निर्देश कर दिया गया है। पीछे से आवश्यक को ४५ में सम्मिलित किया गया प्रतीत होता है एवं कप्प तथा व्यवहार को एक मानना भी उचित नहीं लगता।

प्रद्युम्नसूरि के विचारसार के अनुसार—

१ दीवसागरपन्नति, २ कप्प, ३ निसीह, ४ दसासुय, ५ ववहार ६ उत्तरज्झयण, ७. रिसिभासिय, ८.दसयालिय, ९. आवस्सय, १०. तंदुलवेयालिय, ११. चंदाविज्झय, १२. गणिविज्जा, १३. निरयविभत्ति, १४. आउरपच्चक्खाण १५. गणधरवलय, १६. देविंदनरिंद, १७. मरण (विभत्ति), १८. झाण (वि) भत्ति १९. पक्खिय, २०. नंदी, २१. अणुओगदार, २२. देविंदसंथवण। पूर्वोक्त अंग उपांग २३ को मिलाकर ४५ बनते हैं। पंचकप्प, जियकप्प, पिंडनिज्जुत्ति, ओहनिज्जुति के नाम ४५ से पृथक् रूप में सूचित किये गए हैं।

उपर्युक्त दोनों सूचियों से स्पष्ट है कि आगमों की संख्या ४५ रूढ़ होजाने पर भी उसमें कौन से कौन से ग्रन्थों को लेना इस में एक मान्यता नहीं थी, और न अब तक है।

मेरी राय में आगमों को संख्या ४५ या ३२ दोनों ही विचारपूर्ण नहीं हैं अतः इनका आग्रह व्यर्थ है। वास्तव में नंदी सूत्रोक्त जो जो आगम उपलब्ध हों उनको जाँच कर उसमें से उपलब्ध प्राचीन आगमों को तीनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदायों को मान्य करना चाहिए। जो नंदीसूत्रोक्त आगम उसी नाम पर पीछे से बने हैं उनकी व पाठभेद आदि की जाँच करना आवश्यक है।

चौदहवीं शती से श्वे० मूर्तिपूजक समाज में तो आगमों की संख्या ४५ ही विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यद्यपि वे अन्य आगम प्रकरणादि को भी उनके समान ही मानते हैं। १६ वीं १७ वीं शती के प्रारंभिक ग्रन्थों से पता चलता है कि मूर्तिपूजा का सर्व प्रथम विरोध करने वाले लोंकाशाह व उनके अनुयायी भी मूल ४५ आगमों को मान्य करते थे पर अन्य प्रकरण ग्रन्थों एवं इन आगमों पर की टीकादि व्याख्याओं को तद्रूप से मान्य नहीं करते थे।

लोंकाशाह की मान्यता का मूर्तिपूजक समाज की ओर से प्रबल विरोध किया गया और उसी विरोधी साहित्य से ही लोंकाशाह व उनकी मान्यताओं के सम्बन्ध में यत्किंचित् पता चलता है क्योंकि लोंकाशाह व उनके मत के प्रचारक लखमी, भाणा, रूपर्षि आदि का बनाया हुआ कोई ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। विरोधी साहित्य में से धर्मसागर रचित (१६२९) प्रवचन परीक्षा भा० २ पृ० ३३१ से पता चलता है कि लोंकाशाह के अनुयायियों में उस समय कोई २७ सूत्रों को मान्य करते तो कोई २९ को। यद्यपि सं० १५४० के मत-पत्रानुसार पहले इन्हीं के पूर्वज ४५ मानते थे। इसके कारण पर विचार करने से यही ज्ञात होता है कि जब उन्होंने टीका व प्रकरणों को छोड़ ४५ मूल आगम मान्य किए तो विरोधी विद्वानों ने ४५ आगमों में से उनके मत के विरोधी मूर्तिपूजा की सिद्धि करने वाले उद्धरण सामने रखे। उनमें से सब ग्रंथों को तो वे अमान्य कह नहीं सकते थे अत: जिनको माने बिना काम नहीं चल सकता था इनमें जो उद्धरण मिले उनके लिए तो अर्थ भिन्नता, देवों की करणी, द्रौपदी के मिथ्यात्वी होने आदि के रूप में उत्तर दिया जाने लगा, पर जिनको नहीं मानने में कोई तर्क उपस्थित नहीं किया जा सकता था उन्हें अमान्य ठहरा दिया गया। इसी लिए कोई २७ मान्य बतलाते और कोई २९। सं० १६७२ में रचित समयसुन्दरोपाध्याय के समाचारी शतक ग्रन्थ से पता चलता है कि उस समय ३२ सूत्रों की मान्यता भी थी। वही संख्या आज स्थानकवासी व तेरापन्थी सम्प्रदाय को विशेष रूप से मान्य है। अर्थात् ३२ आगमों की मान्यता सं० १६२९ से १६७३ इन ४४ वर्षों के भीतर ही कभी निश्चित की गई होगी। किसके द्वारा निश्चित की गई यह अभी तक अन्वेषणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचारी शतक से ३२ सूत्र[1] की मान्यता का पता चलने पर भी एक अन्य विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है। उक्त ग्रन्थ के (पृ० ७६–७७) कथनानुसार ४५ आगमों में से निशीथ १ महा निशीथ २ दशप्रकीर्णक १२ एवं अनुयोग (द्वार) इन १३ आगमों को छद्मस्थ प्रणीत कहते हुए अवशिष्ट ३२ को मान्य किया गया था, पर वर्तमान में इनमें से निशीथ एवं अनुयोगद्वार को तो स्थानकवासी सम्प्रदाय मान्य करता है अतः इनको मान्य कर इनके बदले में अन्य कौन से दो ग्रंथों को कब और क्यों मानना छोड़ा गया यह प्रश्न विचारणीय उपस्थित होता है। आशा है स्थानकवासी समाज इसका सप्रमाण स्पष्टीकरण कर समाधान करने का प्रयत्न करेगा।

मेरे मन में कई वर्षों से यह जिज्ञासा थी कि स्थानकवासी समाज ३२ आगमों को ही क्यों मान्य करता है ? इसके पीछे वैज्ञानिक तथ्य एवं तर्क क्या है ? अन्य उपयोगी एवं महत्व पूर्ण आगमों—पयन्ना आदि को उन्होंने क्यों छोड़ दिया ? इस विषय में विचार विनिमय एवं ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जा सके इसी जिज्ञासा से अभी तक जो कुछ जानकारी प्राप्त हुई है पाठकों के सम्मुख उपस्थित की है। आशा है कि विशेषज्ञ विद्वान् इस सम्बन्ध में और अधिक प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

प्रस्तुत विचारणा द्वारा मेरा आशय सम्प्रदाय का पोषण व खंडन-मंडन का नहीं, पर विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्य के समीप पहुँचने का है। मेरे हृदय में एक प्रेरणा अवश्य होती है कि स्थानकवासी मुनि अमोलक ऋषिजी ने ३२ आगम सानुवाद छपवाये और स्थानकवासी समाज की ओर से अभी भी ३२ सूत्रों के ही पाठ संशोधन एवं प्रकाशन की योजना चालू है तो वे आगम ३२ ही क्यों मानते हैं ? इस पर भली भाँति विचार कर यदि अन्य आगमों को भी मान्य करना आवश्यक हो तो उन्हें भी सम्मिलित करने के लिए निष्पक्ष बुद्धि से पुनः विचार आवश्य करें।[2]

स्था० मुनि हस्तिमल्लजी ने दशवैकालिक सूत्रानुवाद के प्राक्कथन में ३२ आगममान्यता संबन्धी अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—

१—बत्तीस सूत्रों की मान्यता का जो कारण मुनि ज्ञान सुन्दरजी ने बतलाया वह भी युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। वास्तव में यह मान्यता गंभीर विचारणा से स्थिर न करके किसी एक व्यक्ति ने अपनी कल्पना से मान ली और पीछे से रूढ़िरूप से सबके लिए मान्य हो गई प्रतीत होती है।

२—समयसुन्दर जी के समाचारी शतकानुसार आगमों की संख्या ३२ मानने का कारण इनका गणधर रचित होना बतलाया है जिसका समयसुन्दर जी ने सप्रमाण खंडन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"साधु मार्गीय सम्प्रदाय में ३२ ही आगम शास्त्ररूप से माननीय हैं, यद्यपि नंदीसूत्र में प्रकीर्णक आदि में आए कुछ नाम अधिक दिये गये हैं तथापि उन नाम वाले ग्रन्थों में पूर्वापर-विरोधी और जिनवाणी के बाधक ऐसे वर्णनों के होने से उनकी मौलिक स्थिति विशुद्ध नहीं रही। इसलिए वे सम्पूर्ण माननीय नहीं हैं, अलबत्ता उन में भी जो अंश आगमों के पोषक या अबाधक हैं ऐसे अंश तो जैन व जैनेतर किसी भी ग्रन्थ के मान्य है। उन अंशों को छोड़ कर अन्य आगम अक्षरशः सम्पूर्ण वे ही मान्य हैं जो न्यायों से व युक्तियों से परिपूर्ण जिनवाणी रूप हैं।"

श्रीहस्तिमल्लजी के संपादित नन्दी सूत्रानुवाद में कतिपय पइन्ना आदि को परवर्ती होने का कहा गया है। वास्तव में तटस्थता पूर्वक प्राप्त सभी नन्दी सूत्रोक्त आगमसंज्ञक ग्रन्थों का अध्ययन व परीक्षण करके समालोचना प्रकाशित होनी चाहिए।

धर्म की चिन्ता—

कलकत्ते में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण ढाबा चलाता था। पड़ोस में पंजाब के एक सज्जन रहते थे। उसी ब्राह्मण के चौके में वे भोजन करते थे। एक दिन उन्हें सिगरेट जलाने के लिए दियासलाई की आवश्यकता हुई। महाराज से माँगने गए किन्तु वह वहाँ अनुपस्थित था। उन्होंने चौके में घुसकर दियासलाई उठा ली।

इतने में रसोइया आगया। पंजाबी सज्जन को चौके से निकलता देखकर आगबबूला होगया। कहने लगा—बाबूजी! आपने मेरा चौका भ्रष्ट कर दिया। मैंने चोरी की, दग़ाबाज़ी की, जुआ खेला, वेश्यागमन भी किया किन्तु कभी अपने धर्म को भ्रष्ट नहीं होने दिया। मैंने कभी दूसरे के हाथ का छूआ नहीं खाया। देखी उसकी धर्मचिन्ता?

—इन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम सदा तरुण हो–

—जनरल मेकार्थर

कुछ वर्ष बीत जाने मात्र से बुढ़ापा नहीं आता। लोग बूढ़े तभी होते हैं जब वे अपने आदर्श को छोड़ कर बैठ जाते हैं। वर्षों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है किन्तु उत्साह का परित्याग आत्मा को निर्बल बना देता है। चिन्ता, सन्देह, आत्मविश्वास की कमी, भय और निराशा ही वास्तव में बुढ़ापा लाते हैं। वे ही लम्बे लम्बे युग हैं जो तरुण को जर्जर बना डालते हैं। जो पौरुष के पुतले को दीन बना देते हैं, उसकी कमर तोड़ डालते हैं और बढ़ती हुई शक्ति को नष्ट कर देते हैं।

सत्तर वर्ष का बूढ़ा हो या सोलह वर्ष का किशोर जिस व्यक्ति के हृदय में नवीनता के प्रति आकर्षण विद्यमान है। घूमते हुए नक्षत्रों को देख कर जिस का हृदय कल्पना की उड़ान लगाता है और उस रहस्य के अन्ततक पहुंच जाना चाहता है। जो यह जानना चाहता है कि चन्द्रलोक के ऊपर क्या है और समुद्र की सतह में क्या छिपा हुआ है। कल कल करती हुई नदियाँ और तूफान से गरजता हुआ सागर जिसमें जीवन और उल्लास भर देते हैं। जो घटनाचक्र और परिस्थितिओं को चुनौती देना चाहता है। जिसमें अदम्य उत्साह, बाल-सुलभ सतत अतृप्त जिज्ञासा, कष्ट सहने में आनन्द तथा कठिनाइयों का स्वागत करने की वृत्ति सदा जागृत रहती है। उसके जीवन स्रोत में नित्य नवीन रसका संचार होता रहता है। वह कभी वृद्ध नहीं होता।

तुम्हारे मन में जितनी श्रद्धा है उतना ही यौवन है, जितना सन्देह है उतना ही वार्धक्य है, जितना आत्म विश्वास है उतना ही तारुण्य है, जितना भय है उतनी ही जरा है। जितनी आशा है उतना ही जीवन है जितनी निराशा है उतनी ही मृत्यु है।

तुम्हारे हृदय को जब तक विशाल सौन्दर्य, साहस, आनन्द, गरिमा तथा शक्ति का सन्देश मिल रहा है तब तक तुम तरुण हो, युवा हो, अमर हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्युषण पर्व—

प्रो० विमलदास जैन, एम० ए०, एल० एल० बी०

जैन पर्वों में पर्युषण पर्व का सर्वोत्तम स्थान है। यह पर्वों का राजा कहलाता है, इस्लाम में रमजान का, क्रिश्चियनों में क्रिस्टमास का तथा हिन्दुओं में दुर्गाष्टक का जो स्थान है, जैनों में वही स्थान उपर्युक्त पर्वाधिराज का है। इस पर्व के अन्दर जैनों की धार्मिक प्रवृत्ति अत्यन्त बढ़ जाती है इसका आगमन होने पर प्रत्येक जैन धार्मिक भावना से ओतप्रोत हो जाता है।

इस पर्वराज की उत्पत्ति के विषय में जैनों की मान्यता है कि यह अनादि-निधन है. जिस प्रकार जगत् के विषय में जैनों का विचार है कि यह जगत् अनादि-निधन है उसी प्रकार इस पर्व की न आदि है और न अन्त है। हाँ इतना अवश्य है कि इसका पुर्नविकास उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालों में होता रहता है। इस पर्वराज का मुख्य या मूल दिन भाद्रपद शुक्ला ५ मी है। यह दिन यथार्थ में संवत्सर प्रतिक्रमण का दिन है। यह वह पवित्र दिवस है जिस दिवस पर प्रत्येक जैन सामायिक में स्थित होकर भावना भाता है—

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु वेरं मज्भं ण केणई॥

मैं सब जीवों को क्षमा प्रदान करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमाप्रदान करें। सब जीवों के प्रति मेरे हृदय में मैत्री भाव है, मेरी शत्रुता किसी के साथ नहीं।

यह एक आदर्श भावना है जिसके ऊपर सर्वोत्कृष्ट साम्यवाद का ध्येय पल्लवित हो सकता है। भारत के जैन इसी पवित्र दिन पर पर्युषण पर्व का अन्त करते हैं या उसका आरम्भ करते हैं। इस महान् पर्व का इसी दिन आरम्भ क्यों होता है इस विषय में जैनों के एक सम्प्रदाय की यह मान्यता है—

जैन धर्म में वर्षारम्भ श्रावण कृष्ण १ म से होता है। एकम से लेकर ४९ दिन तक प्रलय काल होता है जिस में भयंकर अग्नि, जल, वायु आदि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकोप होते हैं। जीवों को इन दिनों में अनेक वर्णनातीत यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं वे 'त्राहि त्राहि' मचाते हैं। ४९ दिन के बीतने पर उस पवित्रतम ५ मी का अवतार होता है। लोगों को शान्ति और सुख के सूर्य का उदय दीखने लगता है लोग पुकारने लगते हैं "क्षमा करो, क्षमा करो'। पृथ्वी, जिसको संस्कृत में क्षमा कहते हैं निर्मल स्वच्छ होजाती है। संस्कृति और आचार का बीज-वपन होता है। धर्म की प्रवृत्ति के लिए यह दिन इसीलिए सर्वोत्तम माना गया है। इसी दिन से दश लाक्षण पर्व का आरम्भ होता है। इस दिन से आरम्भ कर अनन्त चतुर्दशी तक दश धर्मों का पालन करते हुए लोग अनन्त चतुष्टय के स्वरूप का अन्तर्दर्शन करने का प्रयत्न करते हैं। कहा भी है- "अर्हन् ध्यानाविष्टोऽर्हन्नेव भवति" जो व्यक्ति आर्हन्त्य गुणों का चिन्तवन करता है वह उस क्षणमें अर्हंत के समान होजाता है।

जैन धर्म का अन्य सप्रदाय इस दिन अष्टाह्निका पर्व को समाप्त कर सामायिक पोषध आदि में स्थित हो कर आत्म संशोधन करता है। मेरा विचार तो यहां तक है कि यथार्थ में सभ्यता, संस्कृति और धर्म का वर्षारम्भ इसी दिन होता है। इसीलिए जैनों के सब संप्रदायों में इसी दिन का अत्यन्त महत्व है।

पर्युषणों के दिनों में शास्त्र वाचन होता है। स्थानकवासी सम्प्रदाय में अंतगड़ सूत्र की वाचना होती है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में कल्पसूत्र की वाचना होती है तथा दिगम्बर सम्प्रदाय में तत्त्वार्थाधिगम सूत्र की वाचना होती है। श्रावक श्राविकाएँ बड़े उत्साहपूर्वक जिनमंदिरों या स्थानकों में जाकर उपर्युक्त धार्मिक ग्रन्थों के प्रवचन सुनकर आत्म-शुद्धि करते हैं। इन दिनों में तपस्या भी अधिक होती है। उपवास, बेला, चौला, अठाई आदि व्रत रखने की भी परंपरा है। दान की प्रवृत्ति का भी विशेषरूप देखा जाता है। गरीब से गरीब जैन भी कुछ न कुछ अवश्य दान करता है। श्रीमानों का तो कहना ही क्या है। शास्त्र भण्डारों का पुनरालोकन तथा सफ़ाई भी इन दिनों में की जाती है। कहीं कहीं विशेष स्थानों में रथयात्रा और स्वधर्मिवात्सल्य(भोज) का भी आयोजन किया जाता है। जैनों की आध्यात्मिक और बाह्य विभूति को देखने दिखाने का इससे उत्तम समय देखने में नहीं आता।

यह पर्वराज चातुर्मास के मध्य में आता है। चातुर्मास में जैन साधु और साध्वियाँ अपनें नियमानुसार विहार बंद कर देते हैं। वे एक स्थान में रहकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म ध्यान में समय व्यतीत करते हैं। एक समय था जब सैकड़ों की तादाद में जैन मुनि और आर्यिकाएं चातुर्मास में जनता को सुशिक्षित बनाने का कार्य किया करते थे। जैन धर्म के आचार्य एक चलती फिरती युनिवर्सिटियाँ हुआ करते थे। आचार्य वीरनन्दी और हेमचंन्द्र इसी प्रकार के प्रतिभाशाली चलते फिरते विश्व विद्यालय थे। नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती भी ऐसे ही व्यक्तियों में से एक थे। इन व्यक्तियों के ज्ञान को देखकर मनुष्य गणधरों और तीर्थंकरों के ज्ञान की इयत्ता का पता लगाते थे। जिस समय ऐसी महान् विभूतियां पर्युषण में प्रवचन करती होंगी तब यथार्थ में लोगों को स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता होगा।

चूंकि यह काल वर्षा का होता है इसलिए इसमें जीवोत्पत्ति अधिक होती है। हम कितना ही यत्नाचार क्यों न धारण करें फिर भी जीव हिंसा हो ही जाती है। चातुर्मास में भाव अहिंसा का पालन करना ही मनुष्य की निवृत्ति कर सकता है। इस हेतु से यह धार्मिक पर्व चातुर्मास में ही रक्खा गया है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी विचार किया जाय तो चातुर्मास के समय व्रत और उपवासों का करना अत्यन्त महत्त्व रखता है। अग्निमंद होने के कारण उसको उत्तेजित रखने के लिए, जिससे स्वास्थ्य न बिगड़े, यह आवश्यक है कि सब लोग व्रत और उपवास का आचरण करें। कहा भी है 'शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्' धर्म साधन का आदि कारण शरीर है। अतः शरीर की स्वस्थता और आध्यात्मिक जागृति के लिए पर्युषण से बढ़कर और कोई पर्व नहीं हो सकता।

अब यहाँ संक्षेप में १० धर्मों का विवेचन कर देना भी अनुपयुक्त नहीं होगा। इस पर्वाधिराज में दश धर्मों का पालन एक प्रकार से गृहस्थों के लिए, मुनिधर्म के लिए योग्य बनने के लिए अभ्यास मात्र है। गृहस्थों के लिए इस प्रकार की शिक्षा उनके जीवन को जैन धर्म के आदर्श के अनुसार बनाने की प्रथम सीढ़ी समझी जाती है। इसके अतिरिक्त दशधर्म आत्मधर्म हैं। मैं तो इनको सिद्ध स्वरूप मानता हूँ। सिद्धावस्था में आत्मा में अनन्त गुणों का विकास होता है। दशधर्म आत्मा के अनंत गुणों के प्रतीक हैं। कारण १० में एक और शून्य दो अंक हैं जिसका अर्थ है आत्मा में एक से लेकर अनन्त गुण विद्यमान हैं। एक शब्द एकत्व का वाचक है और शून्य अनन्त का वाचक है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा एकानेक गुणों का पुंज है जिनकी आविर्भूति अनेकान्तात्मक स्वरूप में होती है। आत्मा अनेकान्त स्वरूप है। कहा भी है 'तत्त्वमनेकान्तमशेषरूपम्' तत्त्व (Reality) अनेकान्त और अशेषरूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशधर्म सम्यक् आचरण के आदेश से अनेकान्त और अशेषरूप के प्रतिपादक हैं। इसलिए इनका पर्युषण पर्व में आह्वान, प्रतिष्ठान और सन्निधीकरण आत्मा के उत्थान के लिए परमावश्यक है। जो लोग इस प्रकार का आचरण करते हैं उनकी आत्मा का विकास अनिवार्य है। प्रतिदिन 'ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः' आदि मंत्रों की आराधना आत्मा में एक विशेष प्रकार की शक्ति उत्पन्न करती है जिसका केवल साधक ही अनुभव कर सकता है।

ये दश धर्म निम्नलिखित हैं:—

'उत्तम खममद्दवज्जव सच्चसउच्चं च संजमं चेव ।
तव-चाग-मकिंचण्हं बह्मा इदि दसविहं होदि' ।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य—ये दश धर्म हैं जिनकी पूजा, आराधना और परिपालना पर्युषण पर्व में की जाती है। इसी कारण से इस पर्वाधिराज को दशलाक्षण पर्व भी कहा जाता है।

१. इनमें सर्व प्रथम स्थान क्षमा का है। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' क्षमा वीर पुरुष का भूषण है। यह गुण वीरपुरुष में ही पाया जाता है। कमजोर व्यक्ति क्षमावान् नहीं हो सकता। गलती करना मनुष्य का स्वभाव है। यदि अपराधी को क्षमा न प्रदान की जाय तो संसार की व्यवस्था चल नहीं सकती। अंगरेजी भाषा की कहावत है क्षमा करना स्वर्गीय गुण है (To forgive is divine) क्रोधी व्यक्ति क्षमावान् नहीं हो सकता। क्षमा उसे कहते हैं जब क्रोध के कारण होने पर भी क्रोध नहीं किया जाय। इससे आत्मा में अहिंसा भाव की वृद्धि होती है। अहिंसा का दूसरा नाम क्षमा भी है। कुछ लोग क्षमा को कमजोर साधन समझते हैं। उनका सिद्धान्त है क्रोध का बदला क्रोध से देना चाहिए। यह उनकी भूल है। इससे तो अनवस्था हो जायगी। मनुष्य को कभी सुख शान्ति नहीं मिल सकेगी। हमारे विचार के अनुसार क्रोध से क्षमा शान्ति वगैरह अधिक बलवान् होते हैं। ऐसे लोगों को कल्याण मंदिर का यह सूक्त सदा स्मरण रखना चाहिए—

"क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा बत कथं किल कर्म चौराः ?
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ?

भक्त भगवान् से पूछता है—हे भगवन् ! यदि आपने सर्व प्रथम क्रोध को नष्ट कर दिया तो फिर आपने कर्म रूपी चोर कैसे नष्ट किये। उत्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है—क्या तुषार हरे भरे वृक्षों के वनों को नष्ट करने के लिये पर्याप्त नहीं होगा ? अतः क्षमा आत्मा का प्रथम स्वरूप है । आत्मा क्रोधी या हिंसक बन ही नहीं सकता। ये तो उसके विभाव परिणाम हैं।

२. द्वितीय धर्म मार्दव है। आत्मा का स्वभाव मृदु होता है, मार्दव धर्म का धारण करने वाला कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत, शील आदि का कभी गर्व नहीं करता। यह धर्म मान-कषाय के अभाव में उत्पन्न होता है। जब तक मनुष्य में मान कषाय कार्य करता रहता है तब तक उस आत्मा में मार्दव धर्म की अभिवृद्धि नहीं हो सकती। रावण का पतन मान से हुआ। उसका विवेक नष्ट हो गया था। मान में आकर ही उसने परस्त्री का हरण किया। पउम चरिउ में वर्णन है कि वह यह समझता था कि सीता सदृश स्त्री मेरे ही पास रहने योग्य हैं क्योंकि मैं अनेक विद्याओं का अधिपति हूँ और मेरी लंका सुवर्ण की बनी हुई है इत्यादि। किन्तु लौकिक कहावत है "घमंडी का सिर नीचा रहता है" (Pride goeth before fall) रावण का अधः पतन हुआ। अतः मनुष्य को मान नहीं करना चाहिए।

३. तृतीय धर्म आर्जव है। आर्जव का अर्थ है कि आत्मा ऋजु या सरल है। आत्मा में कुटिलता नहीं होती। कुटिल व्यक्ति की प्रवृत्ति सर्प तुल्य होती है। मायाको शास्त्रों में तिर्यञ्च जाति के बंध का कारण कहा है। मायाचार स्त्रियों में भी अधिक पाया जाता है। कहा भी है "मायाचारोव इत्थीणं"। यह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। श्वेताम्बरशास्त्रों में मल्लि का स्त्री होना पूर्वजन्म कृत माया का ही फल बतलाया जाता है। मायाचारी व्यक्ति के परिणामों का जानना अत्यन्त कठिन होता है। मायाचारी के भावों को केवल विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान का धारक व्यक्ति ही जान सकता है। इससे मायाचारी के परिणामों की जटिलता अच्छी तरह समझ में आ सकती है। नीति में भी उस मनुष्य को दुरात्मा कहा है जिसके मन में और, वचन में और, करने में कुछ और ही होता है। मायाचारी प्रायः करके द्विजिह्व होता है। ऐसे मनुष्यों से बचना चाहिए। ये बड़े भयंकर होते हैं। आत्मा सर्वदा इस प्रकार के आचरण से रहित होता है। अतः कुटिल भाव को छोड़कर सदा आर्जव धर्म धारण करना चाहिए।

४. चतुर्थ धर्म सत्य है। भगवान् ने स्वयं कहा है "सच्चं लोगम्मि सारभूयं" संसार में सत्य ही सार है। भगवान् केवली के वचन सदा सत्य और अनुभय रूप होते हैं। असत्य वचन से सदा अन्य पुरुषों को दुःख होता है। अतः मनुष्य को सदा स्वपर हितकारक सत्य वचन बोलना चाहिए। सत्य में सदा किसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विरोध नहीं होता। पर्वत और नारद के 'अजैर्यष्टव्यम्' के अर्थ पर विचार करने के समय राजा वसु ने झूठ बोला था । उसके फल रूप उसे नरक जाना पड़ा। आजकल भी झूठी गवाही देने से मनुष्य को जेल आदि में जाना पड़ता है । शास्त्रों में सत्यघोष की कहानी बड़ी रोचक है। मिथ्या भाषण करने से उसको कितने दुःख उठाने पड़े। सत्य दो प्रकार का होता है। प्रथम तो सत्य में अनुरूपता (Correspondence) पाई जाती है । द्वितीय सत्य आत्यन्तिक विरोध से रहित होता है जो पदार्थ विचार के अनुकूल तथा आत्यन्तिक विरोध से रहित हों वे सत्य होंगे। इस हेतु से ही सत्य को सम्बद्ध (Coherent) कहा जाता है। किन्तु सत्यभाषा अनेकान्त के आधार पर ही बन सकती है। स्याद्वाद में स्यात् शब्द सत्य का द्योतक है । अतः सत्यवक्ता की वाणी सदा स्याद्वादमयी होती है । सत्य आत्मा का दिव्य रूप है । सत्य भाषाभाषी इस लोक और परलोक में सदा सुखी रहता है । इसलिए असत्य भाषण को छोड़कर सत्य भाषी बनना हमारा कर्तव्य है।

५. पञ्चम धर्म शौच है । शौच लोभ कषाय के त्यागने से उत्पन्न होता है। लोभी मनुष्य के हृदय में पवित्रता कभी नहीं आ सकती। कहा भी है 'लोभ पाप का बाप बखाना' यथार्थ में लोभ ही सब पापों का मूल है। परिग्रह की वृद्धि लोभ से ही होती है। शास्त्रों में श्मश्रुनवनीत या शेखचिल्ली की कहानी लोभ की भावना का अच्छा उदाहरण है। लोभी मनुष्य न्याय अन्याय का विचार नहीं कर सकता । उसे तो द्रव्य या धन चाहिए । आज का काले बाज़ार का चोर लोभवश ही पाप करता है। भ्रष्टाचार का मूल भी लोभ है । जब लोग लोभ कषाय को दूर करेंगे तभी काले बाज़ार, भ्रष्टाचार आदि का अन्त होसकता है । बहुत से खद्दर या बाहर सफेद कपड़े पहन कर या स्नान वगैरह करके अपने को पवित्र बनाने का प्रयत्न करते हैं । किन्तु वे नहीं जानते कि आत्मा की शुद्धि लोभ के त्याग से होती है। तपस्वी तपस्या से शुद्ध होता है, स्त्री सतीत्व से शुद्ध होती है। शुद्धि और पवित्रता का आधार निर्लोभता है। अतः मनुष्य को सब प्रकार का लोभ त्याग करके आत्मा को शुद्ध और पवित्र बनाना चाहिए। सब से बड़ी शुद्धि का मार्ग निर्लोभता है। राज्य के लोभ से भरत ने बाहुबलि पर चक्र चलाया। दुर्योधन ने पाण्डवों के साथ कैसे कैसे अत्याचार किए । आज भी लोभवश अनेक पाप हो रहे हैं । आत्मा इन सब से रहित है । अतः निर्लोभी बनना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. षष्ठ धर्म संयम है। संयम का ध्यान आते ही कछुए का ध्यान आता है। कछुआ आक्रमण होने पर अपने सारे अंगों को सिकोड़ कर अपनी रक्षा करता है। संयमी पुरुष भी अपनी इन्द्रियों को वश में करके अपनी आत्मा की—रक्षा करता है। संयम दो प्रकार का होता है। (१) प्राणि संयम (२) और इन्द्रिय संयम—प्राणियों की रक्षा करना प्राणि संयम है तथा इन्द्रियों को वश में रखना इन्द्रिम संयम है। एक एक इन्द्रिय के वश में आकर हाथी, मीन, भौंरा, पतंग, हिरण आदि पशुओं की कैसी दुर्दशा होती है। यदि मनुष्य जो पांचों इन्द्रियों का अधिपति है, अपनी इन्द्रियों के घोड़ों की लगाम छोड़ दे तो वे उसे कहाँ ले जाकर पटकेंगी, कोई नहीं कह सकता। इन्द्रियलंपटी जितेन्द्रिय नहीं हो सकता। बिना जितेन्द्रिय हुए आत्मा का ओज नहीं बढ़ सकता। अत: मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह संयम करे। इसकी परिपुष्टि के लिए व्रत और उपवास बड़े साधक होते हैं। अत: हमें इन्द्रिय प्रवृत्ति को छोड़ कर संयम का मार्ग ग्रहण करना चाहिए। संयम के द्वारा मन वचन और काय पर पूरा संयमन करना पड़ता है। यह आत्मा का निजस्वरूप है।

७. सप्तम धर्म तप है। तपस्या के बिना जीवन निरर्थक है। जीवन-शोधन के लिए तपस्या के बराबर धर्म नहीं। अग्नि से जैसे सुवर्ण की शुद्धि होती है तपस्या द्वारा उसी प्रकार आत्म-शोधन होता है। कर्मों की निर्जरा तपस्या के बिना नहीं हो सकती। तप अंतरंग और बहिरंग दो प्रकार के होते हैं। दोनों ही प्रकार के तपों से आत्मा की निर्मलता प्रकट होती है। विषय और कषाय का तपस्या द्वारा ही निरोध हो सकता है। ध्यान का भी तपस्या द्वारा अच्छा परिवर्धन होता है। शास्त्रकार १२ प्रकार के तपों में स्वाध्याय को सर्वोत्तम तप गिनते हैं। जैनों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति बहुत कम है। इससे वे सबसे बड़ी तपस्या से वंचित रहते हैं। कहा भी है "सज्झायसमो तवो णत्थि" स्वाध्याय के समान कोई तप नहीं है। यहाँ इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि हमारा तप अज्ञानपूर्वक नहीं होना चाहिए। ज्ञानपूर्वक तप ही आत्मोत्थान का कारण होता है। पर्युषण में तपस्या की प्रधानता आत्म-संयम की परिचायिका है। जीवन को पवित्र और निर्मल बनाने के लिए तपस्या से उत्तम और कोई साधन नहीं।

८. अष्टम धर्म त्याग है। जीवन में त्याग की महत्ता सर्व विदित है। आज त्याग की भावना न होने के कारण मनुष्यों में अन्याय और अत्याचारों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धि हो रही है। त्याग भावना की उन्नति में सबसे अधिक बाधक मोह है। मोही जीव त्यागी नहीं हो सकता। सच्चा वैराग्य त्याग में है। जिन्होंने संसार में त्याग किया है उन्होंने कुछ प्राप्त किया है। अज्ञान के त्याग से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है। बिना विरोधी भाव के त्याग के अभीष्ट भाव पैदा नहीं हो सकता। शास्त्रकार चार प्रकार का त्याग बतलाते हैं। आहार, औषध, अभय और विद्या। इनमें सबसे बड़ा त्याग विद्यादान में है। हमें चाहिए कि विद्याश्रमों को दान देकर आत्मा की त्यागभावना को बढ़ावें। अपात्र में दिया हुआ दान व्यर्थ होता है। यह धर्म गृहस्थ और मुनियों के लिए बराबर है। यदि कहा जाय कि जैन-धर्म त्याग प्रधान है तो अत्युक्ति नहीं। यह हमें नहीं भूलना चाहिए कि विद्या के लिए दिया हुआ दान केवल ज्ञान की प्राप्ति कराता है। अन्य दानों का फल तो सांसारिक समृद्धि, स्वर्ग आदिक ही है। अतः त्याग के मार्ग को अपना कर हमें आत्मोन्नति करनी चाहिए।

९. नवम धर्म आकिंचन्य है। इसका अर्थ है 'मेरा कुछ नहीं'। किन्तु जीव संसार में इसी भावना को न बढ़ा कर मोह में फँसता है। राज्य के मोह में आकर या अन्य वस्तुओं के मोह के कारण क्या क्या अनर्थ संसार में नहीं हुए हैं। इसके उदाहरण से इतिहास और पुराण भरे पड़े हैं। भाई ने भाई को मारा है, पुत्र ने पिता को मारा है, स्त्रियों ने पतियों का घात किया है इत्यादि बातों से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। संसार में मनुष्य अकेला आता है, अकेला ही जाता है। इस संसार रूप सराय से लोग क्यों मोह करते हैं—यह समझ में नहीं आता। एकत्व भावना से प्रेरित आकिंचन्य धर्म को हमें बढ़ाना चाहिए। आकिंचन्य धर्म के पालन करने से मनुष्य निर्द्वंद्व हो जाता है। परिग्रहचिन्ता को सदा दुःखमय माना गया है। आकिंचन्य धर्म मनुष्य को निजरूप में प्रतिष्ठित कराकर आत्मा का दर्शन कराता है। इसकी भावना में शरीर तक का ममत्व छोड़ना पड़ता है। जब लंगोटी तक का ममत्व दुःखदायी होता है तब स्त्री पुत्र धन धान्यादि का मोह दुःखकर न होगा—ऐसा कौन विचार सकता है। अनगार संज्ञा इस धर्म के पालन करने से प्राप्त होती है। इस धर्मवाला विचार करता है—

एगो मे सासदो आदा णाण-दंसण-लक्खणो
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।
संजोगमूलं जीवस्स पत्ता दुक्खपरंपरा
तम्हा संजोग सम्भावं सव्वं तिविहेण वोच्छरे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ज्ञान दर्शन रूप आत्मा ही एक शाश्वत तत्त्व है। अन्य सब बाह्य भाव हैं और वे सब संयोग जन्य हैं। संसार की दुःख परंपरा का मूल संयोग है। अतः मैं इस संयोग की भावना का मन, वचन, काय से सर्वथा परित्याग करता हूँ।

यह आकिंचन्य धर्म की पराकाष्ठा है। इसमें स्थित मनुष्य योगी बन जाता है। वह फिर कर्मों से अवलिप्त नहीं होता। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम अधिक से अधिक ममत्व को त्याग कर आकिंचन्य भाव की वृद्धि करें।

१०. दशम धर्म ब्रह्मचर्य है। इसको अन्त में रखने का अभिप्राय यह है कि इसके पालने से सब धर्मों की स्थिरता रहती है। इसके अभाव में सर्व धर्म नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्म आत्मा का नाम है। अपने निज रूप में आचरण करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। ब्रह्मचर्य सब प्रकार की वैषयिक भावनाओं को त्यागने से उत्पन्न होता है। मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी विषय वासना है। इसके न रोकने से केवल शारीरिक हानि ही नहीं होती किन्तु समग्र आत्मिक विकास रुक जाता है। यह सम्यक् चारित्र की पराकाष्ठा है। भारत में मनुष्य की इस कमजोरी को बरदाश्त नहीं किया जाता। जैन साधुओं की प्रतिष्ठा इस धर्म के पालन करने से अधिक है।

ब्रह्मचर्य के भंग में स्त्री संसर्ग अधिक हेतु है। शास्त्रों में इसी हेतु से कहीं कहीं स्त्रियों की विचार धारा की अधिक चर्चा है। जैन धर्म वैषयिक भावना के दबाने (Suppression) में विश्वास नहीं करता बल्कि इसका सिद्धान्त तो यह है कि इसको पैदा ही न होने दिया जाय। और यदि पैदा हो भी जाय तो उसको पवित्रता के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय। ब्रह्मचारी सदा पवित्र होता है। शारीरिक अशुद्धि अब्रह्मचर्य से पैदा होती है। कहा भी है 'ब्रह्मचारी सदा शुचिः' ब्रह्मचारी सदा पवित्र रहता है। ब्रह्मचारी अनेक विद्याओं और मंत्रों को आसानी से सिद्ध कर सकता हैं। किसी ने ठीक कहा हैः—

विद्या मंत्राश्च न सिध्यन्ति किंकरन्ति अमरा अपि।
क्रूराः शाम्यन्ति नाम्नापि, निर्मलब्रह्मचारिणाम्॥

'निर्मल ब्रह्मचारी विद्याओं और मंत्रों को शीघ्र सिद्ध कर लेते हैं। देवता लोग उनके सामनें नौकरों के समान आचरण करते हैं। क्रूर दुष्ट पुरुष तो उनके नाममात्र से शान्त हो जाते हैं।

उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य है। बिना ब्रह्मचर्य के आत्मा में स्थिति नहीं हो सकती। महापुरुषों ने गृह त्याग कर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन किया तभी वे महान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए। शुद्धि और शक्ति का उदय ब्रह्मचर्य होने पर ही होता है। ब्रह्मचारी की गुण-गाथा संसार गाता है। आज संसार में वैषयिक प्रवृत्ति अधिक बढ़ रही हैं। इसको रोकने के लिए नैतिक प्रचार की आवश्यकता है। अतः सदाचार की वृद्धि के लिए ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए। गृहस्थ इसका आंशिक रूप से पालन कर सकते हैं।

इस प्रकार ये दशलाक्षण धर्म आत्मरूप गिने गए हैं। इनसे आत्मा के अनन्त गुणों की अभिवृद्धि होती है। ये तो केवल प्रतीक मात्र हैं। पर्युषण पर्व में इनकी आराधना करना आत्मगुणों का साक्षात्कार करना है। जिन जैन सम्प्रदायों में दशलाक्षण धर्म नहीं पालन किये जाते उनके यहां भी किसी न किसी रूप में इनकी ही पालना होती है। इस प्रकार धर्म की अभिवृद्धि पर्युषण पर्व में मनुष्य के लिए निवृत्ति के लिये रास्ता खोल देती है। मैंने पर्युषण को पर्वाधिराज कहा है। इसका यही हेतु है कि जितनी धार्मिक भावना का संचार इस समय होता है उतना कभी नहीं होता। पर्युषण में कमाया हुआ धर्म साल भर तक काम आता है[१]। अतः संवत्सर में एक बार ऐसा संयोग बड़े सौभाग्य से मिलता है। हमें चाहिए कि हम पर्युषण के आदर्श को जगत् में फैलावें और स्वयं उसके अनुसार आचरण करें।

१—इसका अर्थ कोई यह न समझें कि साल भर तक धर्म किया ही न जाय। 'साल भर' शब्द अत्यधिक महत्त्व का उपलक्षण मात्र है।

—संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामायिक-भावना—

भगवन् ! सामायिक करता हूँ समभाव,
पापरूप व्यापारों की कल्पना हटाता हूँ !
यावत नियम धर्म-ध्यान की उपासना है;
युगल करण तीन योग से निभाता हूँ !
पापकारी कर्म मन, वच और तन द्वारा,
स्वयं नहीं करता हूँ और न कराता हूँ !
करके प्रतिक्रमण, निन्दा तथा गर्हणा मैं,
पापात्मा को वोसिरा के विशुद्ध बनाता हूँ !

प्रतिक्रमण-भावना—

आज्ञा दीजे हे प्रभो ! प्रतिक्रमण की चाह है;
ईर्यापथ-आलोचना, करने का उत्साह है !
आज्ञा मिलने पर करूँ प्रतिक्रमण प्रारंभ मैं;
आते पथ गन्तव्य में, किया जीव आरंभ मैं !
प्राणी, बीज, तथा हरित, ओस, उतिंग, सेवाल का;
किया विमर्दन मृत्तिका, जल, मकड़ी के जाल का !
एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय तथा, त्रीन्द्रिय की सीमा नहीं;
चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, नष्ट हुए हों यदि कहीं !
सम्मुख आते जो हने, और ढके हों धूल से;
मसले हों यदि भूमि पर, व्यथित हुए हों भूल से !
आपस में टकरा दिये, छूकर पहुँचाई व्यथा;
पापों की गणना कहाँ, लंबी है अब भी कथा !
दी हो कटु परितापना, ग्लानि-मरण सम भी किये;
त्रास दिया, इक स्थान से अन्य स्थान हटा दिये !
अधिक कहूँ क्या प्राण भी, नष्ट किये निर्दय बना;
दुष्कृत हों मिथ्या सकल, 'अमर' सफल हो साधना !

—उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्युषणपर्व मनाते समय श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम को अवश्य ध्यान में रखिए

१. विद्याश्रम बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी से संबद्ध संस्था है। जिसकी स्थापना 'श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर' की ओर से सन् १९३७ में हुई थी। जहां से आज तक जैनदर्शन के शास्त्री व आचार्य बन कर कई विद्वान निकल चुके हैं। जैनदर्शन को लेकर एम० ए० भी बने हैं। इस समय जैनदर्शनाचार्य आदि के विद्यार्थियों के अलावा पाँच विद्वान जैनधर्म पर रिसर्च कार्य कर रहे हैं। जोकि Ph. D. के लिए महानिबन्ध तैयार करके बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को उपस्थित करेंगे।

२. हम चाहते हैं कम से कम दस विद्वानों के खर्च की पूरी व्यवस्था हो, जिससे वे निश्चिन्त होकर रिसर्च तथा साहित्य निर्माण के कार्य में लग सकें। प्रत्येक विद्वान के लिए कम से कम २००) रु० मासिक और दो साल के लिए कुल ५०००) रु० चाहिए। फिलहाल बम्बई श्री स्थानकवासी जैन संघ, सेठ छोटे लाल केशव जी शाह बम्बई, कलकत्तानिवासी श्री राजेन्द्रसिंह नरेन्द्रसिंह जी सिंघी और स्वर्गीय ला० रत्नचन्द्र स्मारक फन्ड अमृतसर की ओर से दो दो साल की व्यवस्था है।

३. हमें ५०) रु० मासिक की कम से कम बीस छात्रवृत्तियाँ चाहिए, जिससे विद्यार्थियों को जैनदर्शन का विद्वान बनने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके।

४. पुस्तकालय को अधिक समृद्ध तथा उपयोगी बनाने के लिए पुस्तकालय भवन और पुस्तकों की आवश्यकता है। 'शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जैन पुस्तकालय' चुने हुए उच्च कोटि के साहित्य का एक अच्छा संग्रह है। जिससे विद्यार्थियों और रिसर्च स्कालरों को काम करने के लिए विशेष सुविधा मिलती है।

'श्रमण' के प्रेमी पाठक ध्यान दें

'श्रमण' की रीति-नीति को अच्छे अच्छे विचारशीलों ने पसन्द किया है। हम चाहते हैं 'श्रमण' अपने पैरों पर खड़ा हो जाय। इसके लिए ३० दानी ऐसे चाहिए, जो एक मुश्त ५००) रु० अथवा पाँच साल तक १००) रु० वार्षिक दें। दूसरे दो हजार ग्राहक शीघ्र ही बनने बनाने की जरूरत है। 'श्रमण का हरएक पाठक यदि एक एक दो दो ग्राहक भी बना दे, तो यह संख्या जल्द ही पूरी हो सकती है। आशा है पर्युषणपर्व के शुभावसर पर आप महानुभाव हमारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे।

निवेदक

अधिष्ठाता, श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, पो० बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी.

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24-10-70

श्रमण

गुरुकुल-पत्रिका
गुरुकुल कांगड़ी

गुरुकुल कांगड़ी

"मैं एक ऐसे भारत का स्वप्न देखता हूँ, जिसमें निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी यह अनुभव कर सकेगा कि—यह उसका अपना देश है, जिस के निर्माण में उसकी भी सुनी जायगी, जिसमें ऊँच नीच का भेद भाव नहीं होगा, जिसमें सभी जातियाँ सामंजस्य के साथ जीवन-यापन करेंगी। ऐसे भारत में छूआ-छूत और मादक द्रव्यों का अभिशाप नहीं होगा, स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार होंगे।"

—महात्मा गांधी

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी
बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

इन्द्र एम० ए० — दलसुख मालवणिया

पृथ्वीराज जैन — मोहन लाल मेहता

इस अंक में—

१. नव प्रकाश (कविता)—श्री मोहनलाल मेहता बी० ए० १

२. अपनी बात (संपादकीय)— ३

३. एक पैसा—'रतन' पहाड़ी १२

४. संस्कृति—एक विश्लेषण—श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम० ए० १३

५. वैराग्य के पथ पर (कहानी)—श्री हज़ारीमल बाँठिया १७

६. सामायिक की सार्थकता—महासती उज्ज्वल कुमारी २६

७. भारतीय समाज का आध्यात्मिक दर्शन—श्री देवेन्द्र कुमार एम०ए० २७

८. यह हमारी जात है—श्री पृथ्वीराज जैन, एम० ए० ३०

९. जैनत्व की कसौटी—श्री कृष्णचन्द्राचार्य ३१

१०. निराकरण (कविता)—श्री आनन्द भैरव शाही बी० ए० ३३

११. सदाचार ही जीवन है—मुनि श्री रंगविजय जी ३५

१२. पंजाब में स्त्री शिक्षा—श्री रामस्वरूप जैन ३८

१३. विद्याश्रम-समाचार—

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनीऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) — **एक प्रति ।=)**

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष १ | अक्तूबर १९५० | अंक १२

नव प्रकाश

जग में होगा जब नव प्रकाश ।

सदियों का सारा अंधकार जगती-तल से मिट जावेगा
नव तप्त दिवाकर-आतप से दुख घन सहसा फट जावेगा
फैलेगा तब निर्मल प्रकाश, नव ज्योति प्राणदायी होकर—
डालेगी जग में नव जीवन, जीवन का कलुषित तन धोकर
तब होगा मानव का विकास ।
जग में होगा जब नव प्रकाश ।

मानव का सत्स्वरूप क्या है, क्या मानवता का स्वान्तरूप
सुख के स्वप्नों में कहीं छिपा तो नहीं अरे दुखदान्तरूप
कैसे होगा परिभेदन भी जब भेद-बुद्धि का ज्ञान नहीं
करता है जो निज का प्रकाश, है पर-प्रकाश का स्रोत वही
होगा परदे का सर्वनाश ।
जग में होगा जब नव प्रकाश ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तित होगी प्रलयशक्ति, सर्गस्थिति का नव वेष पहन
होंगे तब तो नर के नन्हे नन्हे गृह सहसा अमर-भवन
नर की गति अमर भावना से विप्लावित होकर झूमेगी
मृदुवाणी की मृदु स्वर-लहरी मृदुता का मृदु तन चूमेगी
कैसा होगा वह मधुर हास।
जग में होगा जब नव प्रकाश।

मानव की मंगल गाथाएँ मंगलमय मानव-वादों से—
गूँजेंगी धरणी पर, गूँजेगा नभ मंगलसंवादों से
फिर कहां कष्ट तब कहां वेदना कहां करुण स्वर कानों में
सर्वत्र शान्ति, अभिराम भाव, जनहित ही जन-अरमानों में
मानव स्वतन्त्र फिर कहाँ पाश।
जग में होगा जब नव प्रकाश।

—मोहन लाल मेहता बी० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

सिंहावलोकन

इस अंक के साथ 'श्रमण' का पहला वर्ष पूरा हो रहा है। 'श्रमण' का आयोजन एक निश्चित ध्येय को सामने रख कर किया गया था। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि आज मानवता पर दानवता का बड़े जोरों से आक्रमण हो रहा है। घटाटोप अंधकार को चीर कर प्रकाश की किरणें बाहर आने में अपने को असमर्थ पाती हैं। वर्ण, जाति, संप्रदाय और संकुचित राष्ट्रियता के प्रादेशिक बंधन संपूर्ण मानवजाति में ही मानवता के दैवीरूप का साक्षात्कार करने में बाधक हो रहे हैं। भगवान् महावीर का प्राणीमात्र के प्रति मैत्री और समता की भावना का संदेश तो अधिकतर लोगों को अटपटा मालूम होता है या केवल आदर्श मात्र। हजारों वर्षों से भिन्न भिन्न देशों में ऐसे महापुरुष जन्म लेते रहे हैं जिन्होंने सत्य और त्याग की ध्वजा हाथ में लेकर मनुष्य समाज को प्रतिगामी शक्तियों से सावधान रहने की प्रेरणा की। उन्होंने उसे चेतावनी दी कि वह आसुरी प्रवृत्तियों के हाथ का खिलौना बन कर सर्वनाश की ओर अग्रसर न हो। इसमें सन्देह नहीं कि बीसवीं शताब्दी का मानव विज्ञान और साहस के बल पर अनंत आकाश में उड़ता है, समुद्रों की अथाह अम्बुराशि में लहरों और चट्टानों से टक्कर लेता हुआ यात्रा करता है और देश और समय की दूरी को नगण्य बना चुका है। किंतु इस चित्र का अधिक घृणित और भयानक रूप यह है कि वह एक दूसरे के हृदय से कोसों दूर है. धरती तल पर पारस्परिक प्रेम और सौहार्द से उसे रहना नहीं आता। वह अपनी आँखों से दो संहारकारी विश्व युद्ध देख चुका है और फिर भी तीसरे के प्रवेश द्वार पर खड़ा है। अपने निष्काम सेवकों की आवाज़ को सुनकर भी अनसुना कर रहा है।

'श्रमण' की कामना थी कि वह भाषा और भावों की सरलता का पूरा ध्यान रखते हुए जनसाधारण को सत्य पथ के अनुगामी महापुरुषों के सन्देश पर आचरण करने की यथाशक्ति प्रेरणा करे। उसका विश्वास है कि 'श्रमण' शब्द में निहित सम, श्रम और शम के सिद्धान्त ही आज मानवता की रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं। हम यह मानते हैं कि जब तक हरेक मनुष्य को समान अधिकार और समान अवसर प्रदान नहीं किए जाते; प्रत्येक मनुष्य ऐसा कोई न कोई श्रम नहीं करता जिससे व्यक्तिगत हित के साथ साथ मानव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक या राजनैतिक जीवन को उन्नत होने में सहायता मिले; आपस के झगड़ों का फैसला शांति व अहिंसा की नीति से नहीं किया जाता, तब तक 'सर्वजनहिताय' के मार्ग का अवलम्बन संभव नहीं। हम इन विचारों का प्रचार करने में, अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने में कहाँ तक सफल हुए हैं इसका निर्णय पाठक ही कर सकते हैं। हमारा अपने पाठकों या ग्राहकों से केवल आर्थिक संबंध नहीं है। उस दृष्टि से तो 'श्रमण' घाटे में ही है किन्तु 'श्रमण' के सञ्चालकों को इस बात की विशेष चिंता नहीं। वे चाहते हैं कि जनसाधारण में विचारशक्ति और जिज्ञासा उत्पन्न की जाए; आज की विषम स्थिति में उन्हें अपने अमूल्य धार्मिक सिद्धांतों को यथार्थरूप से समझने में यथाशक्ति मदद दी जाए। यदि हम इस में सफल हुए तो घाटे का प्रश्न ही न रहेगा क्योंकि समाज ऐसी दशा में हमें पूर्ण सहयोग देगा ही। हमारे पास विचारशील पाठकों, विद्वानों, नेताओं और पत्रकारों की जो सम्मतियाँ आई हैं वे इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने 'श्रमण' का हृदय से अभिनन्दन किया है और वे यह मानते हैं कि 'श्रमण' के प्रादुर्भाव ने समाज के पत्रों में एक नया जीवन डालने का सराहनीय कार्य किया है।

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि 'श्रमण' कि नीति से कुछ लोग क्षुब्ध और उत्तेजित भी हुए हैं। उन्हें दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहली श्रेणी में वे महानुभाव हैं जो वेद, पुराण और वर्णाश्रम धर्म आदि को ही भारतीय या आर्य संस्कृति का प्रतीक मानते थे और समझते थे कि ब्राह्मण या वैदिक धर्म के संकुचित क्षेत्र में ही हम प्राचीन भारतीय संस्कृति के पूर्ण रूप का दर्शन कर कृतकृत्य होजाते हैं। जैनधर्म और बौद्ध धर्म की महान् देन उनके विचार में कुछ महत्व ही न रखती थी। उन से हमारा इतना ही निवेदन है कि वे अपनी दृष्टि को विशाल बनाकर और निष्पक्ष हो इतिहास के पन्ने उलटने का दोबारा प्रयत्न करें। उन्हें यह समझने में देर न लगेगी कि आज यह बात सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है कि एकरूप भारतीय संस्कृति की तीन विशिष्ट धाराएँ हैं— वैदिक, जैन और बौद्ध। जैन और बौद्ध संस्कृति को 'श्रमण संस्कृति' के नाम से याद किया जाता है और हमारे साहित्य या जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं जहाँ उसकी अमिट छाप न हो। इन तीनों धाराओं के प्रवाह का अध्ययन करके ही हम भारतीय इतिहास का वास्तविक निर्माण कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी श्रेणी में वे सज्जन हैं जो जैन धर्म के व्यापक स्वरूप की उपेक्षा कर, सत्य के अनन्तधर्मात्मक रूप को विस्मृत कर, विवेक से काम न लेते हुए संप्रदाय विशेष की प्रचलित मान्यताओं को ही सम्पूर्ण जैनधर्म समझ कर उसे ही सम्यग्दर्शन मान बैठे हैं और मतभेद रखने वालों को सहज ही मिथ्यादृष्टि घोषित करने में अपने सम्यग्दृष्टि होने का गौरव समझते हैं । उन का दावा है कि जैनधर्म का मर्म समझने में उन के अतिरिक्त बाकी सब असफल रहे हैं । उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता कि सत्य का प्रकाश केवल कुछ व्यक्तियों या ग्रन्थों तक ही सीमित नहीं किन्तु इसे अनेक मेधावी विविध देशों में और विभिन्न रूप व भाषाओं में देखने में सफल हुए हैं । सत्य सर्व व्यापक है, वह किसी एक व्यक्ति विशेष की बपौती नहीं । 'श्रमण' के प्रथम अंक में ही स्पष्ट कर दिया गया था कि वह किसी विशेष सम्प्रदाय या पंथ का मशालची नहीं । वह तो सत्य का ग्राहक है, उसकी दृष्टि केवल सत्य पर है । जहाँ कहीं सत्य की किरणें नजर आएँगी वह उन से प्रकाश लेगा । जिस किसी महापुरुष ने सत्य की उपासना की होगी, वह उसकी आराधना करेगा । जो बातें उसें भगवान् महावीर के समता और स्याद्वाद सिद्धांत के विरुद्ध प्रतीत होंगी, उनका वह खंडन करेगा । जो रूढ़ियाँ अहिंसा और प्राणी मात्र के प्रति समानता के भाव की घातक होंगी, वह उनके विरुद्ध आवाज़ उठाएगा । हमारा उद्देश्य सत्य की खोज है । हम नन्दीसूत्रके इस कथन पर विश्वास रखते हैं कि जिस की दृष्टि सम्यक् है, वह तथाकथित मिथ्या शास्त्रों से भी सत्य ही ग्रहण करेगा और जो संकुचित मिथ्या दृष्टि को लेकर चलता है वह अपने शास्त्रों का सत्य स्वरूप समझने में भी नाकाम रहता है ।

हमने प्रत्येक विषय पर सत्य व स्याद्वाद के प्रकाशस्तम्भों से पथप्रदर्शन पाने की चेष्टा की है । उसी दृष्टि से विभिन्न समस्याओं की आलोचना की है और अपने विचार निर्भीक हो प्रकट किए हैं । भविष्य में हम अपने इसी मार्ग पर दृढ़ रहेंगे । हाँ हम पूर्ण होने का दावा नहीं करते । भूल संभव है । जो महानुभाव युक्ति और प्रमाण सहित उस ओर हमारा ध्यान दिलाएँगे, हम उन का हृदय से आभार मानेंगे । हम पाठकों को यह विश्वास दिलाते हैं कि 'श्रमण' अपने निश्चित लक्ष्य की ओर शक्ति व साधनों के अनुसार बढ़ने का प्रयत्न जारी रखेगा । हम हर उस सुझाव का सदैव स्वागत करेंगे जो हमें अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में सहायक होगा ।

—पृथ्वीराज जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्यग्दर्शन की ओट में—

आज जैन समाज बहुत कुछ आगे बढ़ चुका है तथा और भी आगे बढ़ने का पूर्ण प्रयत्न कर रहा है। झूठी साम्प्रदायिकता की भावनाओं का परित्याग कर समाज के विवेकी एवं विचारशील व्यक्ति अब इस निर्णय पर पहुंच चुके हैं कि वास्तव में जैनत्व इतनी ऊँची एवं उदार भावना का द्योतक है कि सारी मानव जाति की विचार धारा का समावेश उसमें हो सकता है। जैनत्व का समर्थन करने वाला अथवा उसका व्यवहार में उपयोग करने वाला कभी यह नहीं सोच सकता कि मैं ही सच्चा हूँ अन्य सब झूठे हैं। हां, वह इतना अवश्य कह सकता है कि मैं भी सच्चा हूँ । इस 'भी' और 'ही' के भेद को भूलकर समाज के कुछ तथाकथित कट्टर जैन जैनत्व के नाम पर मिथ्या प्रचार कर रहे हैं। वास्तव में उनका दृष्टिकोण इतना संकुचित एवं अपूर्ण होता है कि जैनत्व का प्रचार तो एक कोने में पड़ा रह जाता है उलटी उनकी निर्मम हत्या ही होती है। कुछ व्यक्ति जैनत्व को वास्तविक दृष्टि को जनता के सम्मुख रखने का प्रयत्न करते हैं तो ये तथाकथित धर्मसंरक्षक उनको आगे बढ़ने से रोकते हैं, झूठे आरोप लगाकर समाज को भड़काते हैं और सम्यग्दर्शन के नाम पर मिथ्यादर्शन का प्रचार करते हैं। एक सम्प्रदाय विशेष को ही जैनत्व का प्रतीक मानकर समाज में घृणा का प्रचार करते हैं, आपस में फूट डालकर समाज का सत्यानाश करने की कोशिश करते हैं, वास्तविक दृष्टि वालों को मिथ्यादृष्टि कह कर मिथ्यात्व को ही फैलाते हैं और अपने मन में समझते हैं कि हम सम्यग्दृष्टि—ठीक दृष्टि वाले हैं। जिस मिथ्या भावना का भगवान् महावीर ने विरोध किया, जिस ऐकान्तिक भावना का जैनधर्म के स्तम्भों ने बहिष्कार किया उसी भावना को फिर से समाज के अन्दर फैलाकर यह सिद्ध करने का दुस्साहस करते हैं कि धर्म के ठेकेदार तो हमीं हैं---संस्कृति के सच्चे संरक्षक तो हमीं हैं---जैनत्व के आदर्श प्रतीक तो हमीं हैं—भगवान् महावीर के सच्चे धर्मानुयायी तो हमीं हैं--श्रमण धारा का वास्तविक प्रवाह तो हमारे हृदयों में ही बह रहा है--अनेकान्तदृष्टि के पुतले तो हमीं हैं। समाज के सच्चे सेवकों को पछाड़ने में अपनी वीरता समझते हैं--उदारदृष्टि वालों को गालियां देने में 'सत्त्वेषु मैत्री' की विजय समझते हैं।

पुराण पंथियों और नवविचारकों का यह संघर्ष सदैव से चलता आया है। ज्यों ही कुछ विचारक समाज को एक नई दिशा में ले जाने का प्रयत्न करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—अन्धश्रद्धा से हटाकर सम्यग्दृष्टि प्रदान करने की कोशिश करते हैं त्यों ही पुराणपंथी उनके सामने एक नया बवन्डर खड़ा कर देते हैं—एक ऐसा जाल बिछा देते हैं जिसमें स्वयं भी फँसते हैं और समाज को नई दृष्टि देने वाले मूक सेवकों को भी फँसाते हैं। उनका उद्देश्य होता है—जहाँ हो वहीं रहो—आगे मत बढ़ो। आगे बढ़ने में उन्हें अपने आप पर खतरा आता हुआ दिखाई देता है वे समझते हैं कि यदि समाज कुछ आगे बढ़ गया, समाज में विचारने और कार्य करने की एक नई शक्ति आगई तो हमें कौन पूछेगा ? जब अंधे ऑपरेशन के द्वारा अपनी आंखें ठीक कराना चाहते हैं तो काना कहता है कि 'अरे मूर्खो ! यह क्या कर रहे हो ? ऑपरेशन से भी कहीं आँखें अच्छी हो सकती है ? भगवान् ने जिसे अंधा बनाया है वह अंधा ही रहेगा'। इस प्रकार से वह काना केवल अपने स्वार्थ के लिए अंधों को बेवकूफ बनाता है। वह समझता है कि यदि ये अंधे ऑपरेशन के द्वारा अच्छे हो जाएँगे—इन्हें दोनों आंखों से दीखने लग जायगा तो फिर मुझे कौन पूछेगा—एक आँख वाले का कौन सम्मान करेगा ? इसीलिए तो कहते हैं कि 'अंधों में काना राजा' इन पुराणपंथियों की दशा भी ठीक इस काने जैसी ही है जो समाज के कुछ अंधों को अंधा ही रख कर स्वयं राजा बनना चाहते हैं।

इस समय जैन समाज में भी इसी प्रकार का एक संघर्ष चल रहा है यद्यपि समाज अब काफी आगे बढ़ चुका है—इन पुराणपंथियों के चंगुल से छुटकारा पाता जा रहा है फिर भी कुछ लोगों को बहका कर ये पुराणपंथी अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं और सीधे सादे भोले भाले निर्दोष व्यक्तियों का शोषण कर रहे हैं। जो संस्थाएँ समाज को वास्तविक दृष्टि दे रही हैं—अंधश्रद्धा के जाल को तोड़ कर नूतन विचारधारा का दर्शन करा रही हैं उन संस्थाओं के नामों का उल्लेख कर के—उन पर झूठे झूठे आरोप लगाकर—उनकी उदार दृष्टि का मिथ्या विवेचन (Wrong interpretation) कर साम्प्रदायिकता के नाम पर लोगों को भड़का कर ये तथाकथित सच्चे जैनत्व के प्रचारक समाज की प्रगति के मार्ग में तीखे काँटे बो रहे हैं। कुछ प्रतिक्रियावादी लोगों की सहायता से बड़े बड़े विद्वानों एवं विचारकों को चुप कराने पर तुले हुए हैं। 'श्रमण' की विचारधारा व नीति सदैव स्पष्ट रही है। उसका उद्देश्य सचाई का प्रचार करना है—मिथ्यादृष्टि को दूर कर के सम्यग्दृष्टि प्रदान करना है। सच्चे जैनत्व का तत्त्व भी इसी में है। जैनत्व हमेशा सचाई का पक्षपाती रहा है। सचाई जहाँ कहीं भी मिले, जिस किसी भी रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिले, जिस किसी के द्वारा मिले—सर्वदा ग्राह्य है। सचाई किसी संप्रदाय की बपौती नहीं है—पुराणपंथियों के पुराने ग्रंथों तक ही सीमित नहीं है। भगवान् महावीर ने यह कभी नहीं कहा कि जो कुछ मैंने कहा है मात्र उतना ही सत्य है उन्होंने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सत्य अनन्त है। जगत् के सब पदार्थों का वर्णन मुख से नहीं हो सकता। जगत् के ज्ञेय पदार्थों का अनन्तवाँ भाग अभिलाप्य है और उसमें भी असंख्यातवाँ भाग सूत्र निबद्ध है। ऐसी स्थिति में हम यह दावा कैसे कर सकते हैं कि जो कुछ हमारे आगमों है वही सत्य है। आगम से बाहर की कोई भी वस्तु सत्य नहीं। यदि ऐसा ही है तो फिर हम वेदानुयायियों पर यह आरोप क्यों लगाते हैं कि वेदों में सब कुछ नहीं आ सकता। सारा ज्ञान वेदों में ही आगया है ऐसा कहने वाले लोगों को तो हम मिथ्यात्वी कहते हैं और जब हम वही बात अपने मुख से कहते हैं कि जो कुछ है वह आगमों में ही है उस समय हम पक्के सम्यक्त्वी हो जाते हैं—यह कैसे? कोई यह दावा नहीं कर सकता कि ज्ञान इतना ही है या ज्ञेय इतना ही है। ऐसी स्थिति में यदि कोई सम्यग्दर्शन का दावा करने वाला यह कहे कि जो कुछ सच्चा है—ज्ञान है—ज्ञेय है वह सब हमारी संप्रदाय की ही बपौती है तो आप उसे क्या कहेंगे? हम तो उसे मिथ्यादृष्टि ही कह सकते हैं। चाहे फिर वह सम्यग्दर्शन के नाम का ढोल क्यों न बजाता फिरे।

कुछ लोग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए 'श्रमण' में प्रकाशित सामग्री के कुछ इधर उधर के अधूरे अंशों को लेकर उन्हीं पर उलटी सीधी टीका टिप्पणी किया करते हैं। संस्था व विद्वानों पर कीचड़ उछाला करते हैं। परस्पर सम्बन्ध वाक्यों के अभिप्राय को एक ओर रख कर केवल शब्दों पर सिर पटका करते हैं। भोजन करते समय 'सैन्धवमानय' सैन्धव लाओ, कहने पर नमक न लाकर घोड़ा ही लाया करते हैं और फिर अपनी मूर्खता को छिपाने के लिए मंगाने वाले को बदनाम करना प्रारंभ कर देते हैं कि अमुक व्यक्ति तो घोड़ा खाया करता है? ठीक यही हालत 'श्रमण' में प्रकाशित लेखों के कुछ अधूरे वाक्यों को लेकर, उस लेख के अभिप्राय को एक कोने में रख कर, 'श्रमण' और पार्श्वनाथ विद्याश्रम को बदनाम करने वालों की है। समाज के विचारक तथा प्रतिष्ठित साधु, सेवा भावी गृहस्थ तथा अन्य हितैषी इस प्रकार के मिथ्या आरोपों को वर्ग विशेष की स्वार्थ सिद्धि का साधन समझ कर दूर से ही नमस्कार करेंगे, ऐसी हमारी धारणा है।

मोहनलाल मेहता बी० ए०, शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा दृष्टि कोण—

पहले अंक में 'श्रमण' की नीति स्पष्ट करते हुए यह बता दिया गया है कि यह किसी सम्प्रदाय या संगठन का ढोल नहीं है। इसका अपना स्वतन्त्र राग है। किसी सम्प्रदाय विशेष के साथ नाता जोड़कर इसके विचारों को परखना भूल होगी। 'अपनी बात' स्तम्भ में आने वाले सम्पादकीय विचार इसके अपने हैं। बहुत से सज्जनों का उनसे मतभेद हो सकता है। यदि वे तत्त्वनिर्णय की दृष्टि से अपने युक्तिसंगत विचार लिखना चाहें तो 'श्रमण' उनका स्वागत करेगा। एक भाई ने श्रमण में प्रकट हुए विचारों पर कई प्रश्न किए हैं। उन्होंने बहुत लम्बा पत्र लिखा है। हम प्रश्नों का सारांश उत्तर के साथ प्रकट कर रहे हैं।

प्र० 'श्रमण' के पहले अंक में जैन धर्म और जैन समाज की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। जैनधर्म का वैदिक धर्म से पृथक अस्तित्व बताया गया है। इन दोनों में कोई पृथक्करण रेखा नहीं खींची जा सकती।

उ० समाज रचना में मुख्य ध्येय भौतिक उत्थान रहता है और धार्मिक संगठन में आध्यात्मिक। जन्म, विवाह, सन्तान पालन, द्रव्योपार्जन आदि भौतिक बातों में जैन और वैदिक परम्परा में कोई भेद नहीं है। भगवान् महावीर ने इन लौकिक बातों के लिए कोई आदेश भी नहीं दिया। उनका मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक उत्थान था। उसी के लिए उन्होंने व्रत, नियम आदि आचार नियम तथा स्याद्वाद, नय आदि विचार नियम बनाए। यह बात वैदिक परम्परा में नहीं है। इसी दृष्टि से हम मानते हैं कि जैन समाज और वैदिक समाज में कोई तात्त्विक भेद नहीं हैं किन्तु दोनों धर्म भिन्न भिन्न हैं।

प्र० यदि जैन समाज हिन्दू समाज से भिन्न नहीं है तो 'जैन समाज' शब्द का प्रयोग क्यों? हिन्दू समाज का ही क्यों नहीं?

शब्दों का प्रयोग अभिप्राय को समझाने के लिए होता है। जब हम जैन धर्म को मानने वाले वर्ग का निर्देश करना चाहते हैं तो 'जैन समाज' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वे हिन्दू समाज से अलग हैं। ब्राह्मण समाज, वैश्य समाज, आदि अवान्तर जातियों के साथ समाज शब्द का प्रयोग होने पर भी उन्हें हिन्दू समाज से अलग नहीं माना जाता। यही बात जैन समाज शब्द के साथ भी है।

प्र० आपने सरकार से आग्रह किया है कि वह धार्मिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करे। दूसरी ओर धर्मनिरपेक्ष राज्य की दुहाई दी जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ० धर्मनिरपेक्ष राज्य का इतना ही अर्थ है कि किसी सम्प्रदाय विशेष को राज्याश्रय नहीं मिलेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि धर्म के नाम पर यदि कोई बुराई चल रही है और वह राष्ट्रिय विकास में बाधक है तो सरकार उसे बन्द नहीं करेगी।

प्र० आप लिखते हैं कि "भारत और पाकिस्तान के नाम से दो देश बन जाने के बाद राष्ट्रियता की दृष्टि से पाकिस्तानी हिन्दुओं की अपेक्षा भारतीय मुसलमान हमारे अधिक निकट हैं।" किस मुँह से मैं आप के विचारों की प्रशंसा करूँ ?

उ० उपरोक्त विचारों में एक ऐसी भूल है जो व्यापक होजाने के कारण गुण मानी जाने लगी है। हमारे सामने दो व्यक्ति आते हैं एक समान धर्म वाला और दूसरा समान देश वाला। उस समय धर्माचार्य स्वधर्मी को अधिक महत्व देगा और देशनेता स्वदेशी को। किन्तु तटस्थ दृष्टि से देखा जाय तो दोनों विचारों में मोह है। एक में सम्प्रदाय का दूसरे में देश का। दोनों ही विचार त्याज्य हैं। तात्त्विक दृष्टि से दोनों का स्थान समान है। इसी प्रश्न पर जब उत्तरदायित्व की दृष्टि से विचार किया जाता है तो हमारी दृष्टि पड़ोसी पर पहले जाती है। सामने तड़फते हुए रोगी को छोड़ कर सौ कोस पर पड़े हुए रोगी को बचाने जाना नैतिक दृष्टि से उचित नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि दोनों प्राणों के मूल्यांकन में किसी प्रकार का अन्तर है। दोनों का मूल्य समान है फिर भी उत्तरदायित्व की दृष्टि से पड़ोसी की रक्षा करना पहला कर्तव्य है। जो लोग भारत में बस रहे हैं उनकी रक्षा तथा सुख-दुःख का उत्तरदायित्व भारत सरकार पर है। हिंदू या मुसलमान होने से उस में किसी प्रकार का अंतर नहीं पड़ता। इस दृष्टि से पाकिस्तानी हिन्दुओं की अपेक्षा भारतीय मुसलमान अधिक निकट हैं। पूर्वाग्रह के आवेश में न पड़ कर हमें तटस्थ दृष्टि से विचार करना चाहिए।

प्र० आपने जैनियों को हिन्दु धर्म से बचने की चेतावनी दी है, क्या ये वाक्य एक उत्तरदायी सम्पादक के लिखने योग्य हैं ?

उ० जैनधर्म एक स्वतन्त्र विचार धारा है। उस में बहुत से ऐसे तत्त्व विद्यमान हैं जो वैयक्तिक तथा सामाजिक विकास के लिए परम उपयोगी हैं। उदाहरण के रूप में जैन धर्म प्रत्येक प्राणी को विकास का समान अधिकार देता है। वह वर्णव्यवस्था को नहीं मानता, हालां कि हिन्दू धर्म—जिसका अर्थ वैदिक धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है—के प्रभाव के कारण जैनधर्म में भी छूआछूत घुस गई । यहाँ भी शूद्रों को मन्दिर प्रवेश से वञ्चित कर दिया गया । हम यही कहना चाहते हैं कि वैदिक परम्परा के प्रभाव में आकर जैन परम्परा अपने स्वस्थ तत्त्वों को खो रही है। उसे अपने उन तत्त्वों की रक्षा करनी चाहिए । इसमें हमारे देश और व्यक्ति सभी का कल्याण है। हमें जैन सम्प्रदाय से मोह नहीं है। हम तो यही चाहते हैं कि प्राचीन महापुरुषों ने अन्धकारपूर्ण पथ को आलोकित करने के लिए जो प्रकाश की किरणें दी हैं उन्हें छिपने नहीं देना चाहिए।

इन्द्र एम० ए०

आप किसी भी कला या विज्ञान के मर्मज्ञ हों, अपने मन में उसका गर्व न करें। आप को जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह आपके अधिक नम्र और विवेकशील बनने में सहायक होना चाहिए।

–Imitation of Christ

बहिनो! तुम जगत् की जननी हो, संसार की शक्ति हो, तुम्हारे सद्गुणों के सौरभ से जगत सुरभित है। तुम्हीं समाज की पवित्रता और उज्ज्वलता कायम रख सकती हो।

–आचार्य जवाहर

हमें यह विश्वास होना चाहिए कि सत्य ही सबसे बड़ी शक्ति है। इसी विश्वास के आधार पर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

–अब्राहम लिंकन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पैसा

आरा के पथ पर श्वेत केश श्वेतस्मश्रु वृद्ध काय मानव करीब नौ दस वर्ष के बच्चे के हाथ में अपनी लाठी घराये ट्रेन में व्यक्ति व्यक्ति के समक्ष जाकर खड़ा हो जाता। और कहता बाबू-एक पैसा? और क्षणान्तर में पैसा प्राप्त कर अथवा खाली हाथ आगे बढ़ जाता। क्रम क्रम से समस्त यात्री गुजर गए, बच्चे की हथेली में कुछ पैसे भी आ गए। मैं वृद्ध शरीर तथा कमसिन उम्र बचे को अपनी विचार तन्द्रा में उलझाये निमग्न बैठा था। उनकी अवस्था पर तरस, रोष और घृणा अलग हो रहे थे। सोच रहा था—भारत का वृद्ध सत्तर वर्ष की आयु में भी रोटी पाने के निमित्त घर घर भटकता फिरता है।

भारत का दस वर्ष का लाल शाला-शिक्षा तथा जीवन क्षेत्र को छोड़ भिक्षा को अपना सम्बल बनाकर घर घर का भिखारी बना फिरता है। और—वृद्ध तथा बालक मेरे समक्ष खड़े थे। मैंने अपनी तनी भृकुटी ऊपर की किन्तु भृकुटी पानी पानी हो गई सोचने का साहस किया कि इन्हें दुत्कार दूँ किन्तु कुछ न कर सका। क्या मेरे एक के भीख न देने से भिक्षावृत्ति बन्द हो जायगी।

नहीं, कभी नहीं! कि—

बच्चा बोल उठा—बाबू जी हमारा बाबा कल का भूखा है।

एक पैसा—और हथेली मेरे सोने के सामने थी, अनायास ही हाथ कमीज़ की बगल की जेब में पड़ गया, चमकता ताँबे का भगवान् हाथ में आ गया—जिसपर कितने हृदय बिक चुके हैं जिसपर कितने अरमान कुंठित हो चुके हैं।

बच्चे की उत्सुक ललचायी आँखें मुझसे और न देखी जा सकीं और पैसा उसकी हथेली पर घर दिया।

बच्चे की आँखों से मैंने प्रतिदान में कोटि कोटि आशीर्वाद भाँप लिये।

—रतन पहाड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति—एक विश्लेषण

—श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम० ए०, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न

वर्तमान जगत् में सर्वत्र संस्कृति और सभ्यता का बोलबाला है। कहीं संस्कृति के उत्थान के नाम पर तो कहीं सभ्यता के विकास के नाम पर तो कहीं दोनों के खतरे के नाम पर कुछ न कुछ अवश्य होता है। बहुत से वादों के समान ही इस संस्कृति के अनेक रूप होगए हैं। देशों के नाम से जैसे भारतीय संस्कृति, जापानी संस्कृति, चीनी संस्कृति आदि; धर्मों के नाम से जैन संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, हिन्दू संस्कृति आदि। ऐसी दशा में जब कि सब जगह संस्कृति शब्द घसीटा जा रहा है तो संस्कृति शब्द का वास्तविक अर्थ समझना मुश्किल हो रहा है।

संस्कृति शब्द की व्याख्या

संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से बना है और समवाय–समूह अर्थ मे 'सुट्' आगम हुआ है। संस्कृति का अर्थ व्यवहार, नीति, ज्ञान और विवेकों का समुदाय है। एक अंग्रेज विद्वान् टाइलर (Tylor) ने कहा है कि संस्कृति एक ऐसा संमिश्रण है जिसमें सामाजिक प्राणी मनुष्य के ज्ञान, श्रद्धा, कला, आचार, कानून, रीतिरिवाज तथा अन्य योग्यताएँ शामिल हैं। सस्कृति उन समस्त व्यवहारों का समुदाय है जो कि एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी से सीखती रही है।

संस्कृति का कुछ अंशों में पर्यायवाची संस्कार हो सकता है। ये वे ही संस्कार हैं जिनको पाकर प्राणहीन सामाजिक संस्थाएँ फिर से विकसित होने लगती और अपनी उन्नति में मदद पाती हैं। ये संस्कार नाना घात प्रतिघात सहते हुए भी किन्हीं रूपों में मानव समाज की धमनियों में बहते हैं और समय पाकर उद्बुद्ध हो अपनी मौलिकता की शृंखला बनाये रखते हैं।

अंग्रेजी में इसे कल्चर Culture कहते हैं जिसका अर्थ होता है मनुष्य की तालीम अर्थात् किसी भी मनुष्य के उन सब कारनामों के उस समूह को कल्चर या संस्कृति कहते हैं जिन कारनामों के द्वारा वह समाज उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ता है। जो संस्थाएँ किसी कौम को शुरू की प्राकृत अवस्था से ऊपर उठाती हैं वे उस कौम की संस्कृति की पैदावार समझी जाती हैं। जो मानव समुदाय शुरू की कुदरती या असभ्य अवस्था से जितना ऊपर उठ सकता है उतनी ही उसकी संस्कृति ऊँची मानी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति की आत्मा तथा कलेवर

आत्मा अंतरंग रूप है और कलेवर बाह्य रूप। आत्मा की संज्ञा आध्यात्मिक संस्कृति दी जा सकती है जिसे हम दूसरे शब्दों में व्यक्तिगत संस्कृति भी कह सकते हैं। इस संस्कृति का आशय यह है कि आत्मा की वह कोशिश जिससे कि भौतिक या बाहरी दुनियाँ के असर उसकी विशेषताओं को न बिगाड़ सकें या कम से कम बिगाड़ें अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, द्वेष, घृणा, स्वार्थ, घमण्ड और क्रूरता आदि सारी हिंसात्मक वृत्तियों को दबाना और मिटाना तथा उनके स्थान पर संयम, क्षमा, उदारता परोपकारिता, दया, प्रेम, निःस्वार्थता और नम्रता आदि अहिंसात्मकवृत्तियों को जगाना और बढ़ाना।

कलेवर को हम बहिरग संस्कृति तथा दूसरे शब्दों में समाज सम्पर्कजन्य संस्कृति कह सकते हैं, जिसके द्योतक हमारी भाषा, भौतिक सम्पत्ति, कला, पौराणिक और वैज्ञानिक ज्ञान, धार्मिक क्रियाकाण्ड, कुटुम्ब और समाज प्रथा, धनदौलत, शासन और युद्ध आदि हैं। ये द्रव्य, क्षेत्र, काल के अनुसार रूप बदलते रहते हैं। पर इन सब में हमें यही मिलता है कि मानव समाज की शैतान प्रवृत्तियों के स्थान मे दैवी प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठा है। जैन धर्म में बतलाए गए सम्यक्त्व के आठ अंगों में से निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सित और अमूढ़दृष्टि अगों में हमें व्यक्तिगत संस्कृति के तत्त्व तथा उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य तथा प्रभावना में सामाजिक संस्कृति के तत्त्वों का संकेत मिलता हैं।

संस्कृति के अग

संस्कृति के अंतरंग रूप को समझने के लिए हमें बाह्य रूपों पर अवलंबित होना पड़ता है। मनुष्य अपनी लैंगिक, उद्यम संबधी, भक्ति तथा प्रमोद संबधी अन्तः प्रवृत्तियों के अनुसार अपने जीवन को ढालता है और उसकी इन प्रवृत्तियों को हम उसकी पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक तथा आमोद प्रमोद की संस्थाओं से जान पाते हैं। ये सामाजिक संस्थाएँ ही संस्कृति का हृदय है। भाषा, साहित्य, भोजन, पहनावा आभूषण मनोविनोद, धार्मिक क्रियाकाण्ड, उत्पादन, शिल्प, कला आदि सभी संस्कृति के जमने के अंग हैं। इनकी सहायता से हम चीनी संस्कृति, भारतीय सस्कृति, यूरोपीय संस्कृति आदि को भली भाँति समझ सकते हैं। इनकी सहायता से उन उन संस्कृतियों के अन्तरंग का पता ले सकते हैं।

संस्कृति बनाम भाषा

भाषा को बोलने और समझने की दैवी देन ने मनुष्य को अपनी संस्कृति के निर्माण में बड़ी सहायता पहुँचाई है और इसी से वह अन्य तिर्यंच जगत् से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग हो सका है। भाषा की सहायता से वह अपने सुखदुःख के विचारों को दूसरों पर प्रकट कर सका है। इस तरह भाषा के माध्यम द्वारा वह नित अनुभव की असीम ज्ञानराशि का संकलन करता गया। भाषा ने संस्कृति के विकास के अनेक स्तरों को अपने अंचल में छिपा रखा है। आज प्रत्येक संस्कृति के मुद्दे के शब्द उस संस्कृति की आत्मा है, उसे बतलाने वाले दीपस्तम्भ है। संस्कृति की जानकारी में भाषा का बड़ा महत्त्व हैं।

संस्कृति बनाम प्रादेशिक प्रभाव (Geographical influence)

मनुष्य के शरीर निर्माण में उनके काले गोरे होने में जैसे प्रादेशिक असर होता है उसी तरह संस्कृति के निर्माण में प्रादेशिक असर हैं। उष्णता प्रधान देशों की शीतप्रधान देशों से संस्कृति में विभिन्नता में बहुत कुछ कारण प्रादेशिक असर है। उनका खाना पीना, पहनावा, धर्म, आचारविचार, भाषा, भावों पर प्रादेशिक असर मिलता है। संस्कृतियों के समुन्नत बनाने और उनके अधःपात में भी यही प्रादेशिक प्रभाव काम करता है। एक समय था जब कि प्रादेशिक प्रभाव के कारण दजला फुरात तथा सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृतियाँ पनपी थीं पर उसके परिवर्तन होते ही वे सब ध्वस्त हो गईं। महत्त्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति वाले अपने से हीन भौगोलिक स्थिति वालों पर अपना रोब जमाते हैं तथा उन पर अपना सांस्कृतिक असर डालते हुए देखे जाते हैं।

संस्कृति बनाम जातीय भावना

किसी विशिष्ट जाति (आर्य, द्रविड़, मंगोल अदि) के लोगों में जिस प्रकार की संस्कृति देखी जाती है उससे समझा जाता हैं कि यह संस्कृति जातिगत योग्यता की प्रतीक है। इस मान्यता में प्रायः वे विचार काम कर रहे हैं कि मानो संस्कृति का निर्माण उस जाति ने किया हो और जिस सभ्यता को वे सब ग्रहण किए हुए हैं वह मानो उन्हें वसीयत में मिली हुई हो। यद्यपि संस्कृति के निर्माण में जातीय भावना का कहाँ तक हाथ है यह विषय विवादास्पद है फिर भी प्राचीन जातीय गौरव ने अनेक देशों के उत्थान और उनकी संस्कृति के जगाने, सम्भालने में बड़ा ही महत्त्व का काम किया है। उदाहरण के लिए जर्मन जाति, भारतीय तथा चीनी लोगों को ले सकते हैं। भारत अपने अतीत गौरव की याद कर अपने आलस्य प्रमोद को छोड़ आगे बढ़ने के लिए कदम उठा रहा हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति बनाम व्यक्तित्व विकास

जन्मकाल से मनुष्य में वे गुण नहीं होते जो उसे मानव समाज में मिलने से प्राप्त होते हैं। वह उन गुणों को धीरे धीरे तभी पाता है जब वह मानव समाज में रहना सीखता है और अपनी सामाजिक वसीयत को जानने लगता है। इस तरह जन्मसे मरण तक व्यक्ति और संस्कृति के बीच अनवरत आदान प्रदान की प्रणाली चलती रहती है। उत्कर्षता और समर्पणशीलता, नेतृत्व और अनुगामिता अदि गुण संस्कृति के भीतर ही बनते बिगड़ते हैं। पूर्व ने यदि मानवता को औदार्य, गांभीर्य, सर्वजनहिताय-सर्वजनसुखाय भावनाएँ दी हैं आतिथ्य आदि महान् गुण दिये हैं तो पश्चिम की सामुद्रिक सभ्यता ने लूट, शोषण आतंक आदि दोष दिए हैं। इन पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के पर्यवेक्षण से सहज ही में व्यक्तित्व विकास की बात समझी जा सकती है।

संस्कृति और सभ्यता

संस्कृति का अनिवार्य परिणाम सभ्यता है और जहाँ जहाँ संस्कृति के दर्शन होते हैं वहाँ सभ्यता अवश्य किसी न किसी रूप में मिलती है। अन्तर इतना है कि यदि संस्कृति आविष्कारक शक्ति है तो सभ्यता आविष्कार या आविष्कृत वस्तु है यदि हम इन दोनों में पितापुत्र का संबन्ध कहें तो कोई अनुचित न होगा। पिता का जैसे पुत्र पर कुछ अक्स जरूर है इसी तरह संस्कृति का असर सभ्यता पर रहता है। समय समय की भारतीय सभ्यताओं को यदि हम देखेंगे तो हमें स्पष्ट मालूम होगा कि उन पर भारतीय संस्कृति का कैसा रंग था।

सांस्कृतिक अध्ययन और इतिहास

वैज्ञानिक इतिहास का आज जिस पद्धति से अध्ययन हो रहा है उसकी पृष्ठ भूमि संस्कृति ही है। यदि इतिहास ढांचा है तो सांस्कृतिक अध्ययन उस ढांचे का मांस मज्जा रक्त आदि सब कुछ है। यदि इतिहास में कुछ रस है तो इसी सांस्कृतिक अध्ययन का। मानव समाज के उत्थान, विकास और पतन का इतिहास संस्कृति से गुँथा हुआ है। आज इतिहास और संस्कृति के संयोग ने हमें उदारता, सहिष्णुता, विश्वबंधुता, समानता आदि के महान् पाठ पढ़ाए हैं। 'जिओ और जीने दो' का सबक दिया है।

संस्कृति का इस प्रकार अनेक दृष्टिकोणों से विश्लेषण एक रोचक विषय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैराग्य के पथ पर—

श्री हज़ारीमल जी बाँठिया, बीकानेर

अयोध्या के राजा महाराज पुंडरीक के छोटे भाई कुंडरीक की परम लावण्यमयी ललना यशोभद्रा अपने राजमहल के गवाक्ष में बैठी एक दिन केश-शृंगार कर रही थी। सावन के मदमस्त पवनके झकोरों से घुंघराली अलकें इधर उधर अनधिकार प्रयास कर रही थीं। एक सखी उन्हें संवार कर वेणी गूंथ रही थी, तो दूसरी रत्नजड़ित हार पहना रही थी और तीसरी भांति भांति के सुवासित पुष्पों के निर्मित हार और गजरे पहना रही थी। इस प्रकार कुछ सखियों ने मिल कर यशोभद्रा को शृंगार विभूषित किया। जब नख से शिख तक का शृंगार पूर्ण होगया तो यशोभद्रा गवाक्ष से उठी और अपने उस छलकते हुए यौवन की अंगड़ाई-युक्त मुद्रा को आईने में देखा।

इतने में ही सुनंदा ने आखेट से लौटते हुए अयोध्या नरेश महाराज पुंडरीक और उनके छोटे भाई कुंडरीक के घोड़ों की टाप सुनी और रानी से उमंग में आकर कहा, "रानी जी! महाराज पधार रहे हैं।" यशोभद्रा के गुलाबी कपोलों पर मुस्कान की रेखाएँ खिच आईं और हर्षोन्मादित हो गवाक्ष से झांककर देखा सचमुच उसके प्राणनाथ प्रासाद की ओर आरहे हैं। उसी क्षण अयोध्या नरेश महाराज पुंडरीक की दृष्टि भी रति के समान कमनीय यशोभद्रा पर जा पड़ी। इस प्रकार के मनोहर रूप लावण्य का देखना पुंडरीक के जीवन में पहला अवसर था। उसका कामातुर चित्त पुत्री के समान अपने छोटे भाई की स्त्री को अपनी कामवासना की तृप्ति का साधन बनाने के लिए बिना किसी प्रकार की ग्लानि के आकर्षित हुआ। यशोभद्रा तो महल अन्दर चली गई किन्तु महाराज पुंडरीक के अतृप्त नयन उसकी ओर निहारते ही रहे।

जिस दिन से महाराज पुंडरीक के नेत्रों ने रानी यशोभद्रा को लक्ष्य बनाया उस दिन से ही महाराज के मन में उसे प्राप्त करने की अभिलाषा उत्तरोत्तर बढ़ती गई। एक ओर मन-मर्याद को शान्त करना था और दूसरी ओर था उनका धर्म एवं कर्तव्य पालन। कुचेष्टा और कर्तव्य में द्वन्द्व हुआ। दिग्विजयी काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आगे कर्त्तव्य को पराजित होना पड़ा। मन काम-अश्व पर आरूढ़ हुआ और लगा सोचने यशोभद्रा को फुसलाने के शत-शत उपाय। दूतियों के हाथ बेश-कीमती वस्त्र, आभूषण और भांति भांति के शृंगार-प्रसाधन एवं नानाविध स्वादिष्ट भोज्यपदार्थ यशोभद्रा को उपहार स्वरूप भेजे गए। यशोभद्रा पहले तो इन्हें जेठ की ओर का उपहार समझ ग्रहण करती गई, बाद में जब इस परदे की ओट में पापलीला का आभास हुआ तो उसने भेजे जाने वाले उपहारों को लेने से इनकार कर दिया।

यह देख अयोध्या नरेश की आशाओं पर कुछ तुषारपात सा हुआ। काम अन्धा होता है। कामान्ध महाराज चुपचाप कहाँ बैठने वाले थे। एक दिन कामी मन ने उनके दिल की हिम्मत को बढ़ाया और वे जा पहुँचे यशोभद्रा के रणवास में। महाराज को अपनी ओर आते देख यशोभद्रा उठ खड़ी हुई और प्रणाम करती हुई बोली—"महाराज का आज मेरे रणवास में अकेले और वह भी विना सूचना दिए कैसे पधारना हुआ ?" महाराज पुंडरीक यशोभद्रा की सौन्दर्य आभा और सतीत्व के प्रभा के संमुख हतप्रभ हो गए और कोई उत्तर देते नहीं बना। खूब दृढ़ता धारण करके बोले "मेरी हृदय रानी ! तुम्हारे अनुपम रूप सौंदर्य के दर्शन करने और अधरामृत का पान करने आया हूँ।" अपने गुरुजन पुंडरीक के मुख से इस प्रकार की कुचेष्टा का उसे कभी स्वप्न में ध्यान नहीं था किन्तु आज उसके मुँह से ऐसी अधर्म कृत्य की बात सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

सती यशोभद्रा का सतीत्व जाग उठा। उनकी भौंहें तन गईं। मनमें आया अभी कटारी से इसका काम तमाम कर दूँ—किन्तु मानव हत्या एक महान् पाप है। ऐसा विचार कर शान्त भाव से पुंडरीक को समझाते हुए कहने लगी, "पिताजी आज आप यह क्या कह रहे हैं। मैं तो अनुज वधू होने के कारण आपकी पुत्री के समान हूँ। पुत्री पर कुदृष्टिपात करना आप जैसे धर्मनिष्ठ अयोध्या नरेश को शोभा नहीं देता। अपने हृदय में ऐसे नीच विचार को स्थान देते समय आपको अपने परलोक के बिगड़ने का किंचित् भी विचार नहीं हुआ ? यदि इस समय आप सचमुच इसी भावना को लेकर यहाँ आए हैं तो आप यहाँ से चले जाइए, इसी में आपका कल्याण है आप इस समय भारतीय नारी के सतीत्व प्रभाव को भूले हुए हैं। किसी भी प्रकार का प्रलोभन, भय और बलात्कार भारत की नारी को भ्रष्ट करने में सदैव निष्फल रहा है। यदि आप अपने हृदय के इन भावों में कोई परिवर्तन लाने का प्रयत्न नहीं करते हैं तो इसका परिणाम भुगतने के लिए तैयार हो जाइए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोभद्रा के तेजोमय सतीत्व के प्रभाव से राजा हतप्रभ हो गया और वह वहाँ से उस समय काँपता हुआ लौट पड़ा। किन्तु श्वान समान नीच हृदय में शान्ति और लज्जा कब तक ? यशोभद्रा की सौंदर्य-प्रभा के आगे सतीत्व प्रभाव को भूल गया। यशोभद्रा को प्राप्त करने के लिए जितनी बाधाएँ थीं उनमें सबसे अधिक खटकने वाली बाधा उसको अपना भाई कुंडरीक प्रतीत हुआ। अतः एक अनाचार को सिद्ध करने के लिए उसने एक दूसरा और अनाचार भ्रातृ-हत्या करके अपना मुँह कलंक कालिमा से पोत लिया। हत्या का रहस्य छिपा नहीं रह सका। नगर में हाहाकार मच गया। छोटे बड़े सभी राजा को धिक्कारने लगे किन्तु राजा के अत्याचार के भय से प्रजा विवश थी। दैव को यही करना था—ऐसी निराशा पूर्ण स्थिति में अपने को पाकर कुंडरीक जैसे दैवी-सम्पत्तियुक्त गुणज्ञ व्यक्ति के बारे में दो आँसू बहा रह गए। यशोभद्रा अनाथ हो गई कोई सहारा नहीं देख वह अपनी धर्म रक्षा के लिए भाग निकली। दुष्ट पुंडरीक ने उसकी बहुत खोज कराई किन्तु वह नहीं मिल सकी।

राजमहलों के अमित सुखों को भोगने वाली और निरंतर पुष्पशय्या पर शयन करने वाली यशोभद्रा—कंकड़, काँटों की परवाह न कर बीहड़ वन में एक वृक्ष के नीचे जा बैठी। थकान के कारण उसे नींद आ गई। जगने पर एक निर्ग्रंथ-साध्वी संघ को निकट के मार्ग से विहार करते हुए देखा। वह झट उठी और निर्ग्रंथ प्रवर्तिनी के चरणों में जा पड़ी। प्रवर्तिनी आर्या की ओर से 'धर्मलाभ' प्राप्त कर उसने अपनी व्यथा उन्हें सुनाई। प्रवर्तिनी धर्म कर्म की सुज्ञाता थी। उसने यशोभद्रा को ढाढस बँधाते हुए कहा—"लालने ! तू धन्य है। संकटों को झेलकर तूने अपने धर्म की रक्षा की। शील-सतीत्व ही आर्य नारी का भूषण है। संसार क्षण भंगुर है। कोई किसी का नहीं। अपनी आत्मा के कल्याण के लिए निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र के बताए हुए मार्ग का अनुसरण करो और प्रव्रज्या व्रत अंगीकार करो।" प्रवर्तिनी के बोध से यशोभद्रा के पूर्व संस्कार जागृत हो गए और वह साध्वी समुदाय के साथ होचली।

रानी यशोभद्रा—साध्वी यशोभद्रा बन गई। साध्वीसंघ की वैयावच्च क्रिया एवं धर्म पठन-पाठन ही अब उसका नित्यकर्म था। यशोभद्रा के बढ़ते हुए उदर से प्रवर्तिनी के मन में उसके गर्भ का आभास हुआ। प्रवर्तिनी ने उसे एकान्त में बुलाकर पूछा कि यह गर्भ उसके पति का है या दूसरे का। यशोभद्रा ने विनयपूर्वक अपने पति का ही स्वीकार किया। लोक लाज की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खातिर प्रवर्तिनी ने यशोभद्रा को आदेश दिया कि तुम स्थानक के बाहर मत जाना। गुरु और गुरुणी, माता-पिता के समान होते हैं और वे उसी प्रकार अपने शिष्य और शिष्याओं की प्रतिपालना करते हैं। समय पूर्ण होने पर साध्वी यशोभद्रा ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। नवजात शिशु को तत्काल ही शय्यातरी श्राविका के यहाँ पालन पोषणार्थ भिजवा दिया गया और यह सब बातें नितान्त गोपनीय रखी गईं।

शय्यातरी श्राविका, श्रावस्ती नगरी की परम धर्मनिष्ठ प्रमुख श्राविका थी। यशोभद्रा का दीक्षा संस्कारोत्सव भी प्रवर्तिनी जी के उपदेश से उसने ही कराया था। दीक्षा लेते वक्त यशोभद्रा ने अपना रत्नकंबल और अंगूठी भी उसी को सौंप दी थी।

"पूत के पैर पालने में दिख जाते हैं" यही उक्ति इस नवजात शिशु के साथ चरितार्थ हुई। उसका सुन्दर गौरवदन, चौड़ा भालस्थल, सुडौल शरीर राजवंशीय होने के अतिरिक्त एक 'महान्' व्यक्ति बनने के सूचक थे। ज्योतिषियों ने एक राय होकर इस बालक का नाम 'क्षुल्लक कुमार' रखा।

बालक क्षुल्लक माता शय्यातरी की सुख गोद में पल कर द्वितीया के चंद्र की तरह अग्रसर हो रहा था। इसे विद्याभ्यास भी कराया गया। ज्यों ज्यों यह वयस्क हो रहा था त्यों त्यों संसार के प्रति अनासक्त होता जा रहा था। अनासक्ति के विषय में गुरुओं से घंटों वाद विवाद करता रहता था।

एक दिन आचार्य श्री अजितसूरि का श्रावस्ती नगरी में पदार्पण हुआ। उनके धर्म-प्रवचन श्रवण करने नगरी की सारी जनता सावन की घटाओं की तरह उमड़ पड़ी। नव वर्षीय कुमार क्षुल्लक भी गया। आचार्य श्री के— संसार की अनित्यता और त्यागमय जीवन से मोक्ष साधन के उपदेश—कुमार क्षुल्लक के दिल में घर कर गए। कुमार क्षुल्लक अब ऋषि क्षुल्लक बनने के सुनहरे सपने देखने लगा। माँ से दीक्षा के लिए आग्रह किया किन्तु शय्यातरी ने आज्ञा का भार साध्वी यशोभद्रा के कंधे डाल दिया क्योंकि वह कुमार को बीती कहानी बता चुकी थी। यशोभद्रा ने कुमार के सम्मुख वैराग्य की कठिनताओं और यातनाओं का चित्रण किया। किन्तु उसके निश्चयात्मक आग्रह के सामने यशोभद्र की कुछ न चली और अंत में कुमार क्षुल्लक—ऋषि क्षुल्लक बन के ही रहा।

सूत्र सिद्धान्त का ज्ञाता युवक पंडित मुनि क्षुल्लक साधु जीवन के १२ वर्ष बिता चुका था और वह जीवन के इक्कीसवें वर्ष में प्रवेश कर रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समय युवकों की अग्निपरीक्षा का समय होता है। बड़े बड़े कंचन-कामिनी के त्यागी, वैरागी ऋषि मुनि भी कामवेग के आगे नत मस्तक हो जाते हैं। यौवन का छिपा अंकुर युवक क्षुल्लक के मन में प्रस्फुटित हो रहा था। संसार की गजब की मनमोहक उधड़े बुन देख उसका चंचल चित्त चलायमान होगया। एक ओर संसार का स्वर्ग समान सुख था तो दूसरी ओर वैराग्य का कठिन मार्ग। उसका मन डोल गया और साध्वी यशोभद्रा के पास जाकर बोला 'मैं अब वैराग्य पथ का पथिक नहीं रह सकता, यह अति कठिन मार्ग है। केश लुंचन, पैदल विहार और सयम से रहना तो बहुत ही दुष्कर है। मेरी तो गृहस्थ बन कर सांसारिक सुखों के भोगने की तीव्र अभिलाषा है।"

अनासक्त मुनि क्षुल्लक को आसक्त देख कर यशोभद्रा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई। यशोभद्रा ने क्षुल्लक को समझाते हुए कहा, 'तुम साधु होकर ऐसी पागलपन की बातें क्यों कर रहे हो? तुम इस काम-चक्कर में मत फँसो। इसी कामान्धता के कारण तुम्हारे बाबा ने तुम्हारे बाप की हत्या की। अब भी तुमको होश नहीं आया। लोक लाज, इस लोक और परलोक की खातिर इन बुरे विचारों का सर्वथा परित्याग करो। आओ, गुरु एवं प्रभु भक्ति में अपना शेष जीवन समर्पित करदो।"

यशोभद्रा के इन उपदेशों का चिकने घड़े की तरह मुनि क्षुल्लक पर कोई असर नहीं पड़ा और उसने आवेश में आकर कहा, "महामने! परलोक किसने देखा है? लोकलाज की मुझे चिन्ता नहीं। इसी लोक का तो प्रेम मधुर है।"

मुनि क्षुल्लक को ज्यादा जिद्द करते देख यशोभद्रा ने विनम्र भाव से कहा, "वत्स मुनि! मेरे कहने से एक युग—१२ वर्ष और ठहरो, चारित्रव्रत का पालन करो, पीछे तुम्हारी मर्जी।"

साध्वी की आज्ञा शिरोधार्य कर कामवेग से घायल मुनि वापिस स्थानक आगया। इसके पैर पीछे पड़ रहे थे किन्तु माँ की आज्ञा के कारण मजबूर था। क्षण बीते, पहर बीते, दिन बीते, मास बीते और १२ वर्ष भी बीत गए। समय को जाते देर नहीं लगती। मनुष्य माया चक्कर में पड़ कर उसकी कदर नहीं करता है और अन्त में यह होता है कि मनुष्य भी इस दुनियाँ से कूच कर जाता है और यहाँ छोड़ जाता है सिर्फ अपने कृत्यों की करुण कहानी, चाहे वह रुचिकर हो या अरुचिपूर्ण। मुनि क्षुल्लक का चंचल चित्त फिर चलायमान हो उठा और वह दौड़ा दौड़ा पुनः गया साध्वी यशोभद्रा के पास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोभद्रा क्षुल्लक को अपनी ओर आते देख असमंजस में पड़ गई। वह परेशान थी कि कैसे समझाए सुकुमार मुनि क्षुल्लक को। कैसे उसे गर्त में गिरने से रोके ? अपने को निरुत्तर समझ उसने क्षुल्लक को प्रवर्तिनी साध्वी कीर्तिमति के पास जानेको कहा। प्रवर्तिनी स्वयं हैरान थीं कि समझ वाले को कैसे समझाए? उसने सिर्फ इतना ही कहा, " तू यशोभद्रा के कहने से एक युग ठहरा है तो मेरे कहने से भी इतना समय और ठहर जा।"

संसार की चक्रगति है। एक युग और १२ का वर्ष का बीत गया। मुनि क्षुल्लक की सुप्त वासनाएँ फिर जागृत हो उठीं। वह साधुवृत्ति छोड़ने की आज्ञा माँगने के लिए प्रवर्तिनी जी के पास गया। इस बार प्रवर्तिनी भी मौन थी और उसने क्षुल्लक को गच्छनायक आचार्य के पास जाने को कहा। मरता क्या न करता। क्षुल्लक ने आचार्यश्री के पास जाकर अपनी प्रव्रज्या धर्म पालने में असमर्थता प्रकट की और लगा माँगने उनसे ओघे, मुँहपत्ति से छुट्टी।

पहले तो आचार्यश्री ने तर्क, सूत्र व सिद्धान्त से, पीछे परलोक की अदम्य यातनाओं की चर्चा से क्षुल्लक को प्रतिबोधित करने की चेष्टा की किन्तु अन्त में अपने निश्चय पर अडिग देखकर उन्होंने उपाध्याय के पास जाने को कहा।

उपाध्यायश्री ने अपनी वाक्चातुरी से दाक्षिण्यगुण निधि मुनि क्षुल्लक को १२ वर्ष और साधु अवस्था में रहने के लिए राजी कर वहाँ से बिदा किया।

घड़ी टक टक करती जाती है और समय बीतता जाता है। इस प्रकार मुनि क्षुल्लक अपने प्रव्रज्या व्रत के ४८ वर्ष बिता चुका था। अब उससे रहा नहीं गया, अपने पूर्व भव के अशुभ कर्मोदय वश—स्थानक को छोड़ वहाँ से बिना कहे सुने चल पड़ा साध्वी यशोभद्राके पास। यशोभद्रा का पूर्व मातृस्नेह उमड़ आया और मातृसुलभ कमजोरी वश इस बार वह अधिक कुछ न कह सकी केवल इतना ही कहा——

'दुनियाँ पैसे वालों की है। बिना पैसे के दुनियादारी में रहना बड़ा कठिन काम है। तेरे पास धन न होने से तुझे अनेक आफतों का सामना करना पड़ेगा। अतः तू अगर जाना ही चाहता है तो शय्यातरी के पास चला जा। उससे रत्न-कंबल और अंगूठी लेकर अयोध्या चले जाना। अंगूठी को दिखाकर राजा से अपने पैतृक अधिकारों की माँग करना।" क्षुल्लक साध्वी यशोभद्रा को नमस्कार कर चल पड़ा——ऋषि क्षुल्लक से राजकुमार क्षुल्लक बनने।

अयोध्या नगरी के राजमहल के सामने वाले मैदान में नट-नटी का नाटक हो रहा था। ८५ वर्षीय वृद्ध महाराज पुंडरीक मणि मानिक जड़ित सिंहासन पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसीन थे। आसपास सामन्त, सरदार, युवराज और मंत्रीश्वर आदि सब स्व-स्थानों की शोभा बढ़ा रहे थे। नगर की आधी जनता इस नाटक को देखने में तल्लीन थी। मैदान नर नारियों से ठसाठस भरा दृष्टिगोचर हो रहा था। मैदान के मध्य में नट ने अपना डेरा डंडा डाल रखा था। नट ढोल, मृदंग, वीणा बजा रहा था। नटी के पैर घुंघरू की ध्वनि से झम झम करते हुए ताल के साथ उठ रहे थे। अपने सुरीले कंठों एवं नृत्य के सुन्दर अभिनय से वह सबका चित्त चुरा रही थी। नटी का रूप सौन्दर्य भी लोगों की चर्चा का विषय था। राजकुमार बनने का सुन्दर स्वप्न देखता देखता क्षुल्लक भी वहां आ पहुँचा और लगा देखने नट नटी का नाच।

नृत्य करते करते बहुत रात बीत गई। नटी के कंठ सूखने लगे। वह प्यासे चातक की तरह--स्वाति बूँद की आशा में नाच रही थी--कब महाराज अयोध्या नरेश प्रसन्न हों और कब दें उसे उसकी कला का पुरस्कार। वृद्ध महाराज पुंडरीक के कामी नेत्र तो नटी के सौंदर्य पर आसक्त हो रहे थे। वे तो चाहते थे--नटी नाचती रहे ताकि उसका रूप-झरना निरन्तर बहता रहे।

नटी की आशा निराशा में परिवर्तित हो रही थी। उसका कंठ बैठ रहा था-आंखों में नींद की ऊँघ थी और हो रही थी धीमी घूंघरु की झनकार किन्तु नट ढोल पर जोर जोर से हाथ मार रहा था। उसने नटी की यह अवस्था देख जोर से कहा--

सुट्ठु गाइयं, सुट्ठु वाइयं, सुट्ठु नच्चिय सामि सुन्दरि !
अणुपालिय दीह राइयं, सुमिणं ते मा पमायए ॥

उषाकाल होने जा रहा था। अयोध्या नरेश नृत्य तो देख रहे थे किन्तु थे बिलकुल मौन। भीड़ नाच गान से प्रसन्न हो तालियाँ बजा रही थी। नटी ने होश संभाला और आखिर 'संसार की असारता' का अभिनय कर नाटक को समाप्त कर देना चाहा। उसके पैर उठे, घूंघरु बजे और गले ने गाया--

बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी छिन छिन जाये।
कह नटवी सुन नायके, टुक इक धीमी बजाय ॥

गाना बंद हुआ। दूर खड़ा क्षुल्लक नजदीक आया। इस अभिनय ने उसके 'कामी हृदय' में उथल पुथल मचा दी। इसके दिल ने पुनः संसार की असारता के मर्म को समझा। मन फिर आसक्त से अनासक्त होता देखा गया। दिल पर गहरी छाप पड़ी--प्रसन्न हो देने लगा नटी को उसकी अभिनयकला का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरस्कार । राजकुमार बनने के अपने सुन्दर सपनें के महल को अपने हाथों से ही नष्ट करना चाहा । क्षुल्लक मैदान के मध्य में आगे आया और उसने रत्न-कंबल और अंगूठी नटी को पुरस्कार स्वरूप दे डाली ।

युवराज यशोभद्र के दिल पर भी मार्मिक चोट लगी और उसने अपने कान के कुंडल नटी को इनाम में दे डाले । महामंत्री जरासंधि ने कर-कङ्कन दिये। फीलबान (महावत) ने स्वर्णरत्न जड़ित अंकुश दे डाला और सार्थवाही पत्नी श्रीकांता ने मोतियों की माला गले से निकाल कर नटी को पहना दी। पांचों प्रसन्न थे । जनता भी नटी पर प्रसन्न थी । उसने भी चंद मिनटों में हेम-रजत मुद्रा की वर्षा कर नटी को मालोमाल बना दिया। आज उसकी वर्षों की दरिद्रता दूर भागी और उसने अपनी कला का पूरा मूल्य पाया ।

नाटक को देख सभी प्रसन्न हुए केवल अप्रसन्न हुए अयोध्या नरेश । उनकी भृकुटि तन गई । झट सिंहासन से उठे और सीधे गए राजमहल । सेनापति को हुक्म दिया--पाँचों को सूर्योदय के पहले दरबार में हाजिर करो ।

दरबार--सरदार, सामन्तों एवं नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों से खचाखच भरा था । महाराज के सम्मुख पांचों हाजिर हुए । महाराज ने उन्हें हुक्म दिया कि वे उन्हें नटी को प्रथम इनाम देने का ठीक ठीक कारण बतलाएं अन्यथा उनकी हड्डी पसली तोड़कर उनके शरीर से खाल खींच ली जाएगी ।

पाँचों[1] ने एक स्वर में अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा--"महाराज!

---

[1]—क्षुल्लक का विचार पहले राजकुमार बनने का था क्यों कि वह दीक्षा के परिषहों से तंग आ चुका था । युवराज यशोभद्र का विचार पहले राजा को मारकर स्वयं राजगद्दी पर बैठने का था कारण कि राजा बहुत वृद्ध हो गया तो भी उसे राज देना नहीं चाहता था । महामंत्री जरासंधि को राज सेवा में रहते इतने वर्ष हो गए पर वृद्ध राजा ने उसकी सेवा भाव की कदर न की--न कभी उसे इनाम दिया । इसलिए उसने सोचा कि किसी दूसरे राजा को लाकर पुंडरीक को मरवादें । हाथी को राजा पूरा ग्रास नहीं देता था इसलिए महावत ने विचार किया कि हाथी को भगाकर कहीं अन्यत्र चला जाऊं। सार्थवाही की पत्नी श्रीकांता का पति १२ वर्ष हो गया विदेश भ्रमणार्थ गया था किन्तु वह अभी तक वापिस नहीं आया इसके लिए उसके मन में विचार आया सतीत्व भंग कर लूं । इस प्रकार पाँचों के पहले पाँच प्रकार के कुविचार थे किन्तु नटी के नाटक देखने से पाँचों के कुविचार स्वतः सुविचारों में परिवर्तित हो गए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार की असारता' के अभिनय से हमारे दिलों पर एक अमिट छाप पड़ी है । दुनियाँ में सब माया जाल हैं । मनुष्य की मृत्यु अवश्यम्भावी है । हम जो अपना और हमारा कहते हैं—वह भी हमारा नहीं है 'आप अकेला अवतेरे और मरे अकेला होय" हम लोगों की अधिकांश उम्र बीत चुकी है और जो थोड़ी है वह भी क्षण भर में चली जाएगी । इसीलिए हम अब अपना शेष जीवन सांसारिक झंझटों में न बिताकर वैरागी होकर बिताना चाहते हैं । प्रव्रज्या व्रत धारण कर प्रभु भक्ति में अपने आपको समर्पित करना चाहते हैं । अगर ऐसा विचार करने में भी आपको अपराध मालूम होता हो तो हम दंड के पात्र हैं ।"

वृद्ध और निष्ठुर महाराज पुंडरीक का पाँचों के मुख से यह संभाषण सुन कर दिल दहल गया और उसने भी असारता को समझा । पाँचों को अपनी इच्छित वस्तु प्रदान करने का आदेश दिया । किन्तु पाँचों तो हृदय से वैराग्य पथ के पथिक बन चुके थे । उन्होंने कुछ भी लेने से इनकार कर दिया । उन्होंने प्रव्रज्या व्रत धारण किया । राजकुमार क्षुल्लक पुनः ऋषि क्षुल्लक बना । त्याग संयम से आत्मार्थी बना । क्षुल्लक के बारे में लोगों को आश्चर्य हुआ । एक क्षण का शुभ परिणाम भी मनुष्य को भवसागर से तार सकता है । आज सभी प्रसन्न थे और यह समाचार सुनकर अति प्रसन्न थी साध्वी यशोभद्रा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामायिक की सार्थकता

घर में समभाव रखना घर की सामायिक है और दुकान में समभाव रखना दुकान की सामायिक है। आप उपाश्रय में सामायिक क्यों करते हैं ? समभाव की शिक्षा देने के लिए ही तो करते हैं न ? लेकिन उपाश्रय की सामायिक यदि जीवन व्यापी सामायिक न बने तो क्या वह पूर्ण फलदायी सामायिक कही जा सकेगी ? क्या उस सामायिक साधन से अभीप्सित साध्य–समभाव की प्राप्ति की जा सकेगी ? मकान को सजाने के लिए जैसे तरह तरह के फर्नीचर सजाए जाते हैं और शोभा का दिखावा किया जाता है वैसे ही हमारे जीवन में भी एक मुहूर्त की सामायिक का यदि उसे जीवन व्यापी सामायिक बनाने का प्रयत्न न किया जाय तो शोभा के फर्नीचर से अधिक मूल्य न होगा।

मेरी नज़रों में तो आपकी उपाश्रय की सामायिक की कसौटी इसी में है कि आपने अपने व्यावहारिक जीवन में समभाव रखना सीखा है या नहीं ? आप अपनी दुकान पर बैठते हैं तो ग्राहकों के साथ समभाव रखते हैं या नहीं; अमीर और गरीब के साथ समभाव रखते हैं या नहीं ? अगर नहीं रखते हैं तो समझ लीजिए अभी आप की सामायिक अधूरी है वह उपाश्रय तक ही बन्द है यानी उसमें गति नहीं है। अतः यदि आप सचमुच अपनी सामायिक को सच्ची सामायिक का रूप देना चाहते हैं तो उसे उपाश्रय तक ही सीमित मत रखिए, लेकिन जीवन व्यापी बनाइए।

द्रव्य सामायिक उपाश्रय तक सीमित हो सकती है पर भाव सामायिक तो जीवन-व्यापी हो सकती है—वह घर में या दुकान में भी हो सकती है. उसको कौन निषेध कर सकता है ?

जब हमारी सामायिक ऐसी जीवन व्यापी बनेगी तभी वह सार्थक कही जा सकेगी।

—महासती उज्ज्वल कुमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय समाज का आध्यात्मिक दर्शन–!

–श्री देवेन्द्र कुमार एम० ए०, साहित्याचार्य

"आत्मरक्षा और आत्मतुष्टि का भाव—प्राणिमात्र में सहज बुद्धियों और अनंत युक्तियों के रूप में पाया जाता है" मनुष्य भी इसका अपवाद नहीं है। शुद्ध व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के बदले मनुष्य में जो सामाजिक प्रवृत्ति जगी इसका बहुत कुछ श्रेय प्राणिमात्र की उक्त सहज सुलभ चेष्टा को है। इस दृष्टि से मनुष्य और साधारण पशुपक्षियों के जीवन में विशेष भेद नहीं, फिर भी अपनी विकास साधना में मनुष्य साधारण चेतनता के धरातल से बहुत ऊँचे उठा है. उसकी इस प्रगति का श्रेय उसके हाथों और वाणी को है। एक ने उसे भौतिक संघर्षमें आगे बढ़ाकर कला कौशल में दक्ष बना दिया और दूसरी ने सांस्कृतिक और मानसिक क्षेत्र में प्रगतिशील बनाया। यह बात सच है कि आदिम युग में जब मनुष्यों की समाज संस्था बनी होगी तब उसके आदर्श जीवन में ही आबद्ध रहे होंगे! धीरे धीरे जब मनुष्य ने असत् से सत्, अंधकार से प्रकाश और मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ़ने का प्रयास किया तो उसकी दृष्टि भी अन्तर्मुखी होती गई। और इस प्रकार आत्मा के दर्शन चिंतन और मनन के प्रकाश में उसने सामाजिकता का आध्यात्मिक आधार खोज निकाला. अब उसका ध्येय पशुवत् इन्द्रिय वृत्ति का पोषण नहीं था प्रत्युत आत्म वृत्ति का शोधन था। उसने अनुभव किया कि आत्मा ही परम तत्त्व है उसका चरम विकास ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य है इसके लिए सामाजिकता बाधक ही है, इस प्रकार आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा बढ़ी, अब अध्यात्मवादियों का मूल मंत्र था कि 'आत्म हित करना चाहिए और शक्य हो तो दूसरे का भी हित करना चाहिए' इस घोषणा से आत्मा संतुष्ट हुई और सामाजिक बंधन कुछ ढीले हुए।

संक्षेप में वैदिक युग से लेकर बुद्ध महावीर युग तक के भारतीय जीवन के विकास का सार उक्त विश्लेषण में आ जाता है। वैदिक आर्यों का प्रत्येक कृत्य समाज के लौकिक अभ्युदय के लिए था। 'यज्ञ' उनका सबसे बड़ा धार्मिक अनुष्ठान था, पर यह अपने यथार्थ रूप में अन्न और होम के लिए सामाजिक पूजन के सिवा कुछ नहीं था। 'जन' भी उस समय व्यक्ति नहीं, समाज था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन जब जनपद बने--अर्थात् आर्यों के पैर धरती पर जमें तब भी उनमें सामाजिक भावना बलवती थी; यहाँ तक कि उन्होंने जन्मगत और कट्टर संस्कारों के आधार पर समाज का विभाजन किया। अब बुद्ध और महावीर के समकालिक समाज का चित्र लीजिए--परम व्यक्तिवादी व्यक्ति समस्त वर्ग और समाजगत बंधनों को तोड़कर आत्माको पाने के लिए विकल हैं; एक दो नहीं, हजारोंकी संख्या में लोग आत्मविकास के लिए दीक्षित होने लगे, और इस प्रकार आध्यात्मिक संघों का संगठन हुआ। आज की शब्दावली में हम चाहें तो उन्हें आध्यात्मिक समाजवादी रचना कह सकते हैं। इसमें संदेह नहीं वह तत्कालीन परिस्थिति में विश्व की सबसे बड़ी क्रांति थी। पर यह भूलते नहीं बनता कि उसका लक्ष्य आध्यात्मिक था। गृहस्थ समाज का ढाँचा क्रांति की इन लपटों से अछूता रहा। वर्गगत व्यवस्था अवश्य शिथिल हुई--पर साम्प्रदायिक दृढ़ता ने इस शिथिलता को भी मिटा दिया। उसके बाद तो इस मह देश में विविध आध्यात्मिक आदर्शों और दार्शनिक विचारों के आधार पर नए संगठन बनाने का रोग लग गया। कहने को ये आध्यात्मिक संगठन थे, पर उनको सुदृढ़ बनाने में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का खुला आध्यात्मिक प्रयोग किया गया? जो लोग भारत की विशुद्ध आध्यात्मिकता का ढोल पीटते हैं वे यह नहीं देखते कि आध्यात्मिकता की यह बेल कितने भौतिक साधनों से लिपटी है और यदि यह भौतिक आधार हटा दिया जाय तो आधी से अधिक आध्यात्मिकता कर्म के क्षेत्र में आ जाय। कोई अर्थशास्त्री हिसाब लगाये--तो पता चलेगा कि इन आध्यात्मिक संगठनों के संरक्षण में जितना धनव्यय हुआ उसका आधा भी शायद राज्य संचालन में नहीं हुआ होगा। बुद्ध और महावीर के प्रयत्नों के बावजूद भी भारतीय समाज का ढाँचा पूरा नहीं बदला। आगे चलकर नवीन दर्शन और तर्कों का प्रयोग वर्णगत कुसंस्कारों की जड़ों के सींचनें में होने लगा। आध्यात्मिक व्यक्तिवाद के नवीन दर्शन का भौतिक स्वार्थों के संरक्षण में खूब उपयोग हुआ। लौकिक अभ्युदय की दृष्टि से ईश्वरवादी जिसप्रकार ईश्वर की ओट लेते हैं उसी प्रकार कर्मवादी कर्म की। दोनों के यहाँ सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विषमता के शमन का यही आध्यात्मिक उपचार है। और इसकी प्रशांत छाया में प्रत्येक भारतीय सभी प्रकार के अभावों को ढकेल कर सच्चिदानंद और सोऽहं की अनुभूति के लिए विकल है। यदि किसी में यह अनुभूति जगाने की लालसा उत्पन्न नहीं होती-तो आध्यात्मिक संस्थाएँ स्वयं खर्च उठाकर उसके आध्यात्मिक विकास का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबंध करती हैं। व्यक्ति को संसार का चाहे ज्ञान न हो, पर आत्मा का ज्ञान होना ही चाहिए और इसप्रकार मध्ययुगीन भारतीय इतिहास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्तिगत स्वार्थों के आध्यात्मिक प्रयोगों से भरा पड़ा है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद समाज व्यवस्था के परिवर्तन की आशा कांग्रेसी प्रयत्नों से धूल में मिल चुकी है। इसका मुख्य हेतु यह है कि हमने अभी तक अपने रोग का ठीक निदान ही नहीं किया। भारत का विभाजन किस रोग का फल है, गांधी हत्या में कौन सा सांस्कृतिक उन्माद है? इससे भी पहले, पिछले सातसौ वर्षों की गुलामी का कलंक किस सामाजिक विचार-जड़ता को है? हमारी, आध्यात्मिकता से लिप्त बुद्धि इन प्रश्नों का ठीक उत्तर नहीं दे सकती है। उसके लिए सामाजिक बुद्धि से सोचने की अपेक्षा है।

जिस प्रकार भौतिक शरीर के बिना आत्मा संसार में नहीं रह सकती— उसी प्रकार आध्यात्मिकता भी भौतिक आधारों के बिना जीवित नहीं रह सकती। शरीर में रोग होने पर डाक्टर उसका शारीरिक उपचार ही करता है, आध्यात्मिक नहीं। उसी प्रकार सामाजिक बुराइयों का अंत सामाजिक चिकित्सा द्वारा ही किया जा सकता है, न कि आध्यात्मिक आदर्शों से।

आज भारतीय समाज की अवस्था सन्निपात के रोगी जैसी है और जब तीन विकार एक साथ क्रुद्ध हो उठते हैं तब रोगी तो स्वयं विवेक खो ही बैठता है किन्तु चिकित्सक भी जल्दी से उसका निदान नहीं कर पाता। समाज रचना के मूलभूत तत्त्व हैं—संस्कृति, राजनीति और धर्म। यहाँ समाज का अर्थ राष्ट्र परक है, सम्प्रदाय परक नहीं। यह तो स्पष्ट है कि इस्लामी शासन के प्रारम्भ के पहले ही भारतीय समाज सांस्कृतिक दृष्टि से जड़ हो चुका था। राजनीतिक पराधीनता उसका ही अनिवार्य परिणाम था। यदि उस समय भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि से सचेत होते—तो वे कभी का मुसलमानों का समाहार कर लेते। उसके बाद अंग्रेजी युग में भारतीय जीवन के क्षीण और अशक्त सामाजिक कंधे पर आर्थिक पराधीनता का जुआ लाद दिया गया। उनका भार हम, अतीत गौरव की याद करके ढोते रहे। जब अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने देखा कि बैल काफी बूढ़ा हो चुका है और उससे काम लेना महात्मा ईसा की अहिंसकें दृष्टि में अपराधी बनना है तो अहिंसक ढंग से अपना भार उठाकर चलते बने। उनके स्थान पर भारतीय शासकों और पूँजीपतियों का भार है, जिसे वहन करना ही वृद्ध भारत की संतानों के भाग्य में ब्रह्मा ने लिख दिया है और जो ललाट मे लिख दिया

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह हमारी 'जात' है

श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री

मार्च का महीना था और सुबह का समय । मैं उन दिनों विश्वविद्यालय में एफ. ए. का विद्यार्थी था। परीक्षा निकट थी और हमें उसकी तैयारी करने के लिए एक महीने की छुट्टियाँ हो चुकी थीं। चार पांच साथियों का हमारा एक गुट था जो सहयोग समिति के सिद्धान्तों के आधार पर परीक्षा पिशाचिनी का मुकाबिला करने की तैयारी किया करता। एक दिन हम महाकवि शेक्सपीयर द्वारा लिखे गए 'जूलियस सीज़र' का परीक्षा की दृष्टि से विचार कर रहे थे और मैं ब्रूटस के चारित्र पर अपने नोट साथियों को सुना रहा था।

उसी समय हमारी नज़र अपनी ओर बढ़ते हुए एक शिष्ट-मंडल पर पड़ी। उस शिष्ट मंडल के पांच सदस्य थे। उनमें एक युवक था—काला रंग, गठीला बदन, फटी और घुटनों तक लटकती हुई धोती, एक पांव में देशी जूता और दूसरे में ब्राउन रंग का न्यूकट, दाएँ बाएँ दो बच्चे जिनकी मुखाकृति किसी जगह पड़े दुष्काल का परिचय दे रही थी। उस युवक के पीछे ही अपने अबोध शिशु को अपनी गोद में छिपाए और दीनता की देवी को साकार रूप प्रदान करते हुए एक युवती चली आरही थी——गन्दमी रंग, धूलि-धूसरित बिखरे हुए काले काले लंबे बाल, पेबंद लगी जीर्ण शीर्ण रेशमी साड़ी जो ब्लाउज़ का काम भी दे रही थी। युवती का एक एक अंग उसके यौवन और सौन्दर्य का प्रमाण-पत्र था और दीन हीन अवस्था में भी उसका सुडौल और पुष्ट शारीरिक गठन नारी को अबला कहने या मानने वालों का परिहास कर रहा था।

शिष्ट-मंडल के नेता ने समीप आकर याचना की, "बाबू जी, दो दिन से भूखे हैं, दीनों पर कृपा की जाए ; छोटे छोटे बच्चों पर तरस खाएँ और कुछ पैसे दें।"

पास ही चौगान में दो अधेड़ उमर की स्त्रियाँ घास काट रही थीं। परिश्रम और थकावट से उनका शरीर पसीना पसीना हो रहा था। उनकी ओर संकेत

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनत्व की कसौटी—

—श्री कृष्णचन्द्राचार्य

इसी पर्युषण पर्व के अवसर पर भारत के कोने कोने में रहने वाले सभी जैन अपने मुख से यह कह चुके हैं कि—" मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें। सब जीवों से मेरी मित्रता है, किसी के साथ मेरा वैर नहीं है।" यह बात सिर्फ मुख से ही कही गई है याकि अन्तःकरण से भी, आज हमें इसी बात को जाँचना है।

जो बात एक जैन के लिए ज़रूरी है, मनुष्य बनने के लिए भी वह उतनी ही ज़रूरी है। फिर भी जैन बनने के लिए तो यह कसौटी है। जो जैन बनना चाहता है, या कुछ भी जैनत्व का दावा रखता है, उसमें तो यह गुण होना ही चाहिए कि भूल हो जाने पर क्षमा माँग सके और क्षमा दे सके। यदि वह इतना भी नहीं कर सकता, तो उसे अपने अन्तःकरण की साक्षी से जैन बनने या होने का दावा छोड़ देना चाहिए। यह बात सूर्य प्रकाश की तरह बिलकुल स्पष्ट और संदेह से रहित है।

एक इसी बात को जैनत्व की कसौटी मान लेने का यह अर्थ नहीं है कि एक सच्चा जैन इस संघर्षमय संसार में रह नहीं सकता, या उसके लिए कोई स्थान ही नहीं। संघर्ष करना जहाँ जीवन का लक्षण है संघर्ष पर विजय प्राप्त करना जीवन की बड़ी विशेषता है। जब संसार ही संघर्षस्थली है, उससे डर कर भागना वीरता नहीं, बल्कि कायरता है। अनुभव तो यह कहता है कि एकान्त शान्त वन में रहने वाले परम त्यागी से त्यागी मुनि के भी मित्र, शत्रु और उदासीन हुए बिना नहीं रहते, तब एक गृहस्थ के मित्र, शत्रु नहीं होंगे, यह संभव ही नहीं। उसे तो जीवन क्षेत्र में रातदिन दौड़धूप करनी है, उसका सारा का सारा जीवन ही संघर्षमय है। ऐसी हालत में न मालूम कितनों से संघर्ष तथा विरोध के अवसर उपस्थित होते हैं। और तो और, अपने घर में सगे संबंधियों से आसपास के हितैषियों व पड़ोसियों तक से मनोमालिन्य के कारण खड़े होते रहते हैं। पितापुत्र, भाई-भाई का संघर्ष तो छिपा नहीं। संघर्षशील संसार में रहना और फिर उससे बच निकलना, अपने अन्तःकरण या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा पर उसका असर ही न होने देना—वास्तव में किसी बड़े ही सावधान साधक का काम हो सकता है ।

यह सब कुछ ठीक है । फिर भी जैनत्व की कसौटी में यह नहीं कहा गया कि—एक सच्चे जैन का किसी से संघर्ष हो ही नहीं सकता, या होना ही नहीं चाहिए । जब संसार ही संघर्षशील है, तो उसमें संघर्ष के कारण तो खड़े होंगे ही । अन्तर सिर्फ भावना का है । रातदिन संघर्ष करते हुए भी—एक सच्चे जैन का जीवन एक सच्चे खिलाड़ी की तरह होना चाहिए । सच्चे खिलाड़ी को सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह अपने काम को दिलोजान से करता है, उसमें जरा सी भी कमी नहीं आने देता । फिर भी हार हो या जीत—उसका असर अपने मन या आत्मा पर नहीं पड़ने देता । वह दोनों अवस्थाओं में प्रसन्न रहता है । अपने प्रतिपक्षी की जीत में भी उसे उतना ही आनन्द आता है, जितना कि अपनी जीत में । जीवन की चाबी भी वस्तुतः यही है । एक सच्चे जैन को तो क्या, मनुष्य मात्र को इसकी साधना करनी है, इसे जीवन में उतारना है । अपना व विश्व का कल्याण भी इसी में है ।

यही योगों का योग है, और आज के परम विकास का चरम विकास भी यही है । मनुष्य यदि इस एक बात को जीवन में ला सका, तो यह मर्त्यलोक निःसन्देह अमरलोक बन जायगा । आज भी हमें जो कुछ प्राप्त करना है, वह यही कि—हम दूसरों से क्षमा माँग सके और दूसरों को क्षमा दे सकें ।

(पृष्ठ २९ के आगे)

गया उसे कौन पोंछ सकता है । पश्चिम के वादों से बहक कर कोई उसे पोंछने की चेष्टा करे—तो ब्राह्मण और शूद्र में समता का दर्शन करने वाला गीता का साम्यवाद, बुद्ध महावीर का अपरिग्रहवाद अथवा उपनिषद् का 'मा गृधः कस्यचिद्धनं' आत्म संतोषवाद उनके साहस को ठंडा करने के लिए पर्याप्त है । सचमुच चिरअव्यय भारतीय समाज को क्रांति की लहरें गतिशील नहीं कर सकतीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराकरण

काल परिस्थिति का विषण्ण-मुख, और धैर्य का सीमोल्लंघन;
इन कटु तथ्यों से जीवन का, सत्य बना करता खुद जीवन ॥
जीवन के गहरे सागर की थाह न कोई अब तक जाना ।
किसी बिन्दु तक भी न किसी ने मानस की गहराई माना ॥
हम न कभी कह पाते 'यह है', स्वयंसिद्ध बन क्षण आ जाते ।
आत्म-तुष्टि के लिए किन्तु हम अपनी परिभाषा दुहराते ॥
आंशिक-सत्य लिए आया यदि वातावरण निकट भी होकर ।
भावों के तब अंतराल में बनी तर्क की भाषा दूभर ॥
तर्क पराजित कर सकता है मानव-सत्य विकट जग-उलझन ।
क्या वाक्यों के कौशल से भी बदला कभी जगत का कण कण ॥
मानव निस्संबल हो जाता सहकर आत्म-विरोधों का रण ।
इन्हीं द्वन्द्व के समझौते के बीच गुज़रता जीवन-स्पंदन ॥
यह अति खीझ आंतरिक नर की, बन जाती साकार युद्ध-रव ।
अभिशापों का भार लिए तब रुद्र-रूप दिखलाता मानव ॥
शक्ति चाहता आज विश्व है, किन्तु शक्ति की सीमाओं पर,—
घिरा, बँधा, है मानव का सुख यंत्र, त्रस्त जग के नारी-नर ॥
अपनी सृष्टि, वही अपना फिर विध्वंसक बन गया पलट कर ।
'अपने पैरों आप कुल्हाड़ी' बनी पहेली आज क्लिष्टतर ॥
युद्ध और अणु-विस्फोटों ने ध्वस्त किया यद्यपि जग सारा—
सहस्राब्दियों से अजस्र बहती ही जाती जीवन धारा ॥
युद्ध-विजय फिर, शांति-सुरक्षा; फिर रण-छाया दूर क्षितिज पर ।
मानव तब भी खाता, जीता; जीवन-प्यास युद्ध से बढ़कर ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घात प्रतिघातों को सहकर वज्र बना है जग का अंतर।
अब विरक्त बन रह न सकेगा देख दुःख-सुख का मन्वन्तर॥
अपने पश्चात्तापों का वह स्वयं आप ही श्रेय न होगा।
बह जाए पानी सँग, ऐसा कच्चा उसका ध्येय न होगा॥
यह इतिहास-प्रवाह द्वन्द्व का अपने में ही बना प्रतिष्ठित,-
चला जा रहा है निज गति से, मानो किसी वृत्त से वर्लायत॥
नर-मस्तिष्क उड़ाने भरता, सत्य अपेक्षित हो जकड़ा है।
शक्तिमान मानव के सम्मुख वातावरण अजेय खड़ा है॥
किंतु न चुप रह सकता, वह विश्वासों पर ही तो निर्मित है।
नव संस्कृति का है अभिलाषी, यद्यपि उसकी गति सीमित है॥
अपनी ही असफलताओं से उकता जावेगा जब मानव।
आत्म-असंगति दूर करेगा रच कर नवयुग का विहान नव॥

—आनन्द भैरव शाही बी० ए०

(पृष्ठ ३० के आगे)

करते हुए हमारे एक साथी ने कहा, "तुम दोनों जवान हो, मजदूरी करके पैसे क्यों नहीं कमाते ? दर दर भीख माँगने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है।"

आगन्तुक ने साहस पूर्वक उत्तर दिया, "बाबू जी, भीख माँगना हमारी जात है, यह छोड़ दें तो जात से बाहिर निकाल दिए जाएँ।"

मैं खामोश न रह सका। मैंने कहा, "जो काम कर सके उन्हें भीख न देना हमारी जात है। अगर तुम्हें भीख दें तो हम भी जात से बहिष्कृत हो जाएँ।"

यह सुन कर शिष्ट मंडल होस्टल के बरामदे से होता हुआ बाहिर निकल गया और हम पुनः अपने काम में जुट गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचार ही जीवन है–

–मुनि श्री रंगविजय जी

सदाचार ही जीवन है कदाचार ही मृत्यु; सदाचार से उत्थान होता है, कदाचार से पतन; किसी भी राष्ट्र, समाज या जाति का उत्थान सदाचार पर अवलम्बित है। जितनी ही देश में सदाचार की मात्रा अधिक से अधिक होगी उतना ही उस देश का भविष्य उज्ज्वल होगा। प्राणिमात्र का उद्धार सदाचार पर ही अवलम्बित है। सदाचार एक ऐसी चट्टान है, जिससे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि कुभावनाएं टकराकर चूर चूर हो जाती हैं। उसी के बल पर हर एक का जीवन स्तर ऊपर उठता है, उसी के सहारे प्राणी अन्धकार से निकल कर प्रकाश में आता है। उसी के बल पर जन्म मरण से भी छुटकारा पा सकता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि सभी आसनों में विद्या का आसन सबसे ऊँचा है। पर उससे भी ऊँचा आसन यदि कोई है तो वह सदाचार का है। विद्वान् बनने में प्रायः सन्देह सा बना रहता है, पर सदाचारी बनने में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं रहता। विद्वान् बनने के लिए काव्य, कोष, व्याकरण, साहित्य आदि अनेक पुस्तकें रटनी पड़ती हैं, पर सदाचारी बनने में किसी की भी आवश्यकता नहीं रहती। विद्वान् अपनी विद्वत् मण्डली में ही पूजे जाते हैं पर सदाचारी सर्वत्र ही।

भिन्न भिन्न लेखक सदाचार की व्याख्या भिन्न भिन्न रूप से करते हैं, पर सभी का सार एक साथ मिलता जुलता है। साधारण तौर पर उसकी व्याख्या यह हो सकती है कि सत्पुरुषों द्वारा निश्चित जो आचार है, उसे ही सदाचार कहते हैं।

आगम, निगम, स्मृति, पुराण, बाइबिल, कुरान आदि जितने भी ग्रन्थ हैं उन सभी में सदाचार पर काफ़ी जोर दिया गया है। किसी भी ग्रन्थ में दुराचार की पुष्टि की गई हो ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता। हर एक धर्म सदाचार की पुष्टि करता है। विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है।

सदाचार मय जीवन व्यतीत करने के कारण ही महात्मा बुद्ध ने मोक्ष पद प्राप्त किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी सदाचार के बलपर भगवान् महावीर ने जन्म मरण से छुटकारा पाया है।

इसी सदाचार के सहारे रामचन्द्र जी ने जंगल में भी मंगल कर दिया था।

इसी सदाचार के कारण लक्ष्मण जी हमेशा सीता के चरणों को ही देखते थे।

इसी सदाचार मय जीवन व्यतीत करने के कारण महाराणा प्रताप ने एक मुगल सुन्दरी को भेंट करनेवाले मेवाड़ देश भक्त को कठोर से कठोर दण्ड दिया था। साथ ही राणा ने उस रमणी को पुनः सत्कार आदर के साथ उसके पति के पास भिजवा दिया था।

ऐसी घटना शिवा जी के समय में भी घटी थी। उन्होंने भी मुगल सुन्दरी को आदर सहित उसके पति के पास भिजवा दिया था।

सदाचारियों का जीवन हमेशा प्रकाशमय रहता है।

सदाचार मय जीवन व्यतीत करने के लिए आदर्श पुराणों की जीवनी या आदर्श पुराणों द्वारा निर्मित आचार संबन्धी पुस्तकें अवश्य पढ़ना चाहिए। साथ ही जो सच्चे महात्मा हैं उनका सत्संग भी सदाचारी बनने में बड़ा ही सहायक होता है। सदाचार का व्रत लेना जितना सरल है, उतना उसका पालन करना बड़ा ही कठिन है। सदाचारियों में सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, शील आदि गुण विद्यमान रहते हैं। उन्हीं के सहारे वे अपना विकास करते हैं।

सदाचारियों का आदर सर्वत्र होता है और दुराचारियों का अपमान। सदाचारी अपने त्याग, तपश्चर्या, संयम आदि गुणों से हमेशा अलंकृत रहते हैं, दुराचारी झूठ, चोरी, विषय वासना आदि दुर्गुणों से दूषित। सदाचारियों के चरणों में संसार नत होता है, दुराचारियों से घृणा करता है। सदाचारी मरते दम तक प्राणिमात्र का कल्याण करते रहते हैं; दुराचारी अपने अन्त समय तक दूसरों का अहित। सदाचारी मर कर स्वर्ग में जाते हैं; दुराचारी मर कर नरक में। संसार सदाचारी पुरुषों की मूर्तियाँ बनाकर पूजता है और वह दुराचारियों के नाम को सुनकर उनके मुँह पर थूकता है।

इसी सदाचार के कारण राम से आज भी संसार प्रेम करता है, किन्तु रावण के दुराचार मय जीवन से घृणा।

इसी सदाचारमय जीवन के कारण संसार युधिष्ठिर के गुणगान करता है किन्तु दुर्योधन की निन्दा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी सदाचार के कारण फ्रान्स के सम्राट वीर नैपोलियन बोनापार्ट के नाम पर संसार शुभकामना प्रकट करता है, किन्तु तेरहवें लुई के कुकृत्यों से आज सभी उससे घृणा करते हैं। यह सब क्यों होता है। एक के प्रति प्रेम, आदर, सद्भावना और दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष; केवल सदाचार और दुराचार मय जीवन के कारण ही।

कुछ लोगों का कथन है कि विद्या का जितना आदर होता है, उतना और किसी का नहीं पर यह उनकी भूल है। देखिए, रावण प्रकाण्ड विद्वान् था। वेद, पुराण, स्मृति आदि सभी का उसने गम्भीर अध्ययन किया था उन पर वह खूब विवेचन भी कर सकता था, पर सदाचार के अभाव में उसका सारा गौरव नष्ट हो गया। साथ ही सदाचार के अभाव में उसके सिर पर ऐसा कलंक का टीका लगा कि उसे धोने के लिए कोई आज भी समर्थ नहीं है। इसलिए सदाचार का ही संसार में गौरव बढ़ता है।

सारांश यह है कि सदाचार का आसन सभी आसनों से ऊँचा है। सदाचार मय जीवन यापन करने वालों की कीर्ति संसार में उसी प्रकार फैलती है जिस प्रकार पानी के कटोरे में तेल की एक बूँद सर्वत्र फैल जाती है। वे जीवित रहकर तो प्राणिमात्र का कल्याण करते हैं, साथ ही मरने पर भावी पीढ़ी के लिए भी आदर्श स्मृति चिह्न छोड़ जाते हैं जिससे निरन्तर जन समूह की शुष्क नाड़ियों को भी नई प्रेरणा, नया उत्साह और नई शक्ति मिलती रहती हैं। हमें यदि संसार में कुछ आदर्श कार्य करने हैं तो सदाचारमय जीवन यापन करना ही होगा, तभी हमारा जीवन आदर्श और उज्ज्वल बन सकेगा। तभी हम वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति कर सकेंगे, अन्यथा मनुष्य जीवन का सार्थक बनाना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव भी है। यों तो संसार में लाखों करोड़ों मनुष्य जन्म लेकर मर जाते हैं, पर उन्हीं का नाम हमेशा के लिए अमर हो जाता है, जो सदाचार मय जीवन यापन करते हैं उनकी अमर कहानी हमेशा ही बड़े बूढ़े गाया करते हैं। यह बात निर्विवाद और सत्य है कि सदाचारियों में अद्भुत शक्ति रहती है, वे जिस किसी मंत्र की साधना करते हैं, उन्हें अवश्य ही सफलता मिलती है, किन्तु दुराचारियों को सफलता के दर्शन कदापि नहीं होते हैं। सदाचार ही जीवन है और दुराचार ही मृत्यु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में स्त्री शिक्षा—

श्री रामस्वरूप जैन, लुधियाना

वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा का प्रचार प्रचुर रूप में दृष्टिगोचर हो रहा हैं। मेरे विचार में तो अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पंजाबप्रान्त ने स्त्री शिक्षा के कार्यक्षेत्र में आशातीत उन्नति की है और यह उन्नति शेष प्रान्तों के लिए ईर्षाजनक हो सकती है। क्या आज से चालीस पचास वर्ष पूर्व भी इस प्रान्त की इस क्षेत्र में एसी ही ख्यातिपूर्ण और प्रमुख स्थिति थी? कदापि नहीं। यह निस्संकोच कहना पड़ेगा कि कुछ वर्ष पहले यह प्रान्त स्त्रीशिक्षा की दौड़ में सब से पीछे था। केवल स्त्रीशिक्षा में ही नहीं, पर सामाजिक दृष्टि से अन्य समाजोद्धारक आन्दोलनों में भी पिछड़ा हुआ था।

चालीस पचास वर्ष पहले पंजाबनिवासी स्त्रीशिक्षा को सराहनीय समझना तो एक ओर रहा; बल्कि इसके कट्टर विरोधी थे। पंजाब में जैन समाज की दशा तो कट्टरपंथी होने के कारण और भी शोचनीय थी। उस समय के जैन-धर्मावलम्बी जैनेतर धर्मानुयायियों की अपेक्षा किसी भी सामाजिक उन्नति के कार्य में अग्रसर नहीं थे। वे प्रत्येक सामाजिक कार्य को शंकित दृष्टि से देखने के ही अभ्यस्त थे। यदि कोई उत्साही नवयुवक स्त्रीशिक्षा जैसे महत्वपूर्ण समाजोद्धारक कार्य का मंडन करने का प्रयत्न करता तो उसके साहस को दुस्साहस और ढीठता के बीभत्स और निन्दनीय नाम देकर उस की सामाजिक सेवा की भावना को बलपूर्वक कुचल दिया जाता था। जैनेतर समाजों में तो इन उत्साही कार्यकर्ताओं को दबाया न जासका और ये साहसी नवयुवक अपने कार्य में पर्याप्त मात्रा में सफल भी हुए; परन्तु जैन युवकों की समाज के वयोवृद्ध कर्णधारों के सम्मुख एक न चली और वे इन समाज के ठेकेदारों को स्त्रीशिक्षा जैसे श्रेष्ठ कार्य के लिए प्रोत्साहित करने में असमर्थ रहे। अन्य समाजों की अपेक्षा आर्यसमाज ने इस क्षेत्र में अधिक उत्साह दिखलाया और उसे इस कार्य में पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई।

कतिपय वर्षों के उपरान्त जैनधर्मानुयायी अन्य समाजों की, विशेषतया आर्यसमाज की इस क्षेत्र में सफलता देखकर डाह करने लगे क्योंकि वे अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक भी स्त्रीशिक्षा के पक्षपाती न बन सके थे इसलिए केवल आर्यसमाज से ईर्ष्या ही करते रहे। उनमें दूसरों की सफलता को देख कर भी इस पुण्यकार्य में अग्रसर होने की शुभ भावना जागत न हो सकी। धीरे धीरे कुछ वर्ष में कुछ लोग इस बात के इच्छुक अवश्य हुए कि हम भी कोई कन्या पाठशाला खोल लें और हमारा समाज भी आर्यसमाज की तरह ख्याति प्राप्त करे। ऐसे लोगों को भी विरोध के भय से अपनी इच्छा सर्वसाधारण के सम्मुख प्रकट करने का साहस न हो सका। एक प्रकार की संकोच की भावना का ही उन पर आधिपत्य रहा। इस संकोच को दूर करने का साहस सर्वप्रथम जैनमुनि उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज (पंजाब के स्थानकवासियों के वर्तमान आचार्य) को हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि आर्यसमाज की उन्नति में उनकी शिक्षा संस्थाओं का विशेष हाथ है और उनका स्त्रीशिक्षा का प्रचार उनके धर्मप्रचार में भी प्रचुर प्रभाव डाल रहा है। श्री आत्माराम जी महाराज ने स्त्री शिक्षा के लिए प्रचार करना आरम्भ किया। एक सुप्रसिद्ध ख्यातिप्राप्त विद्वान् श्रद्धास्पद जैन मुनि और ओजस्वी वक्ता होने के कारण उनके उपदेशों का अधिक प्रभाव हुआ। उनकी प्रेरणा से लुधियाना नगर में एक जैन कन्या पाठशाला प्रारम्भ की गई। पंजाब के जैन बन्धु अपने पूर्व के सकोच को त्याग कर इस नवीन सामाजिक कार्य में सोत्साह अग्रसर होने लगे। इसके फलस्वरूप पंजाब में अन्य कतिपय स्थानों में भी जैन कन्या पाठशालाए खलीं। इन पाठशालाओं में रावलपिंडी, फरीदकोट आदि स्थानों की पाठशालाओं ने विशेष सफलता प्राप्त की। लुधियाना के जैन श्री आत्माराम जी के महाराज के सम्पर्क में विशेषरूप से आए थे अतः लुधियाना की कन्या पाठशाला समय समय पर अधिकाधिक प्रगति की ओर अग्रसर होती हुई आज एक प्रभावशाली जैनगर्ल्ज हाई स्कूल के रूप में देदीप्यमान हो रही है।

इसके पश्चात् इन पाठशालाओं की सफलता से प्रभावित हो कर कई अन्य स्थानों पर भी जैन कन्या पाठशालाएँ खोली गईं जो इस समय विशेष काम कर रही हैं। स्त्रियों की निरक्षरता को दूर करने, उन्हें शिक्षित और विदुषी महिलाएँ बनाने में जो कार्य इन जैन कन्या शिक्षणालयों ने किया है और कर रहे हैं वह विशेष प्रशंसनीय है। इन पाठशालाओं में आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा विरचित जैनधर्म शिक्षावलियों द्वारा छात्राओं को जैनधर्म की शिक्षा भी दी जाती है। इन शिक्षावलियों के आठ भाग हैं और प्रत्येक भाग के कई कई संस्करण मुद्रित हो चुके हैं। पंजाब का जैन समाज आचार्य श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्त्रीशिक्षा क्षेत्र में किए गए उद्योग और लगन के लिए सदैव आभारी रहेगा। इस क्षेत्र में किये हुए उनके परिश्रम को जैन समाज कदापि विस्मरण नहीं कर सकता।

जो समाज चालीस वर्ष पहले पंजाब प्रान्त में सबसे पिछड़ा हुआ था, वही आज इन कन्या पाठशालाओं के कारण एक जागृत उत्साही और समाजसेवी समाज के रूप में परिणत हो चुका है। स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य इस समाज ने किया है वह अत्यंत प्रशंसनीय है। पंजाबनिवासी जैन हों या अजैन, जैन समाज के किये हुए इस कार्य की अवहेलना नहीं कर सकते। पंजाब की कन्या पाठशालाओं में जो स्थान इस समय जैन गर्ल्ज हाई स्कूल लुधियाना को प्राप्त है वह पंजाब की किसी भी जैन अथवा जैनेतर कन्या पाठशाला को प्राप्त नहीं। यह पाठशाला पंजाब की अन्य पाठशालाओं के लिए आदर्श स्वरूप है। आज यह निस्संकोच और गर्वपूर्वक कहा जा सकता है कि पंजाब में स्त्रीशिक्षा जैसे महान् और अत्यावश्यक समाजोद्धारक कार्य के लिए जो उद्योग जैनसमाज ने किया है वह इतिहास में सदैव आदर की दृष्टि से देखा जाता रहेगा।

इस समय पाँच विद्वान जैनधर्म पर रिसर्च कार्य कर रहे हैं। जो कि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को अपने महानिबन्ध (Thesis) लिखकर उपस्थित करेंगे। यह हर्ष की बात है कि–पं. इन्द्रचन्द्र जी शास्त्री एम. ए. करीब पाँच मास के अवकाश के बाद अपना थीसिस तैयार करने की दृष्टि से उपस्थित हो गए हैं। आशा है—पाँचों विद्वान अपने अपने महानिबन्ध लिखकर शीघ्र ही तैयार कर सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याश्रम-समाचार

पर्युषण पर्व

जैन समाज के इतिहास में बनारस का स्थान बनता जा रहा है। साधुओं के चातुर्मास तक होने लगे हैं। इस वर्ष पर्युषण पर्व के दिनों में बनारस शहर के जैन बन्धुओं का धर्मोत्साह देखने योग्य था। तपस्या का ठाठ लग गया था। एक नए क्षेत्र में ९-९ अठाइयों का होना विशेष महत्व रखता है। बेले-तेले आदि तपस्या का तो कहना ही नहीं। धर्मस्थान के लिए प्रयत्न गतवर्ष से ही चालू है। तारीख १६ सितम्बर को प्रातः तपस्वी बाई-भाइयों का जलूस भी निकला था। टाउनहाल में जैनमुनि श्रीजगजीवनजी व मुनि श्री जयन्तीलालजी महाराज तथा बनारस के जैन समाज के अग्रणी राजा श्री प्रियानन्द जी आदि के तपस्या के विषय में व्याख्यान हुए, जिसका जैन, अजैन जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

श्रीपार्श्वनाथ विद्याश्रमके विद्यार्थियों व विद्वानोंने भी पर्युषणोंमें सोत्साह भाग लिया। प्रतिदिन सामायिक-प्रतिक्रमणादि होते रहे। धार्मिक नियमों का विशेषरूपेण पालन किया गया। प्रतिदिन साधुओं के दर्शनार्थ शहर में प्रायः जाना आना रहा। भाषण—कविता आदि सुनाते रहे। अमृतसर से जैन बिरादरी के आमन्त्रण पर प्रो० विमलदास जी वहाँ गए थे। प्रतिदिन व्याख्यान व धर्म चर्चादि होते रहे। श्रीरामाश्रम हाईस्कूल में भी शिक्षित जनता के सामने ज्ञान की सापेक्षता (Relitivity of Knowledge) जैसे गंभीर विषय पर मनोरंजक व्याख्यान हुआ। जिससे भारतीय दर्शन शास्त्रकी गहराई का उपस्थित जनता पर अच्छा असर पड़ा।

लायब्रेरी और रिसर्च कार्य

श्रीपार्श्वनाथ विद्याश्रम का 'शतावधानी श्रीरत्नचन्द्र जैन पुस्तकालय' रिसर्च कार्य की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। पुस्तकालय में महत्व के चुने हुए ग्रन्थों का खासतौर से संग्रह किया गया है। कई ग्रन्थ तो अतिमूल्यवान् व अत्यन्त दुर्लभ ही हैं। इस बात का पता बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में इन्डोलाजी कालेज के प्रिन्सिपल डाक्टर आर. सी. मजूमदार के उन शब्दों से लगेगा, जो कि उन्होंने ता० १५-९-५० को पुस्तकालय देखने के बाद लिखे थे। निरीक्षण की विशेषता यह थी कि आपने कई घंटे लगा कर एक एक पुस्तक पर दृष्टिपात किया था।

(शेष पृष्ठ ४० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-पत्रिका;
गुरुकुल काँगड़ी:

श्रमण
का
दूसरे वर्ष में प्रवेश

क्या आप जानना चाहते हैं, मानव क्या है?

क्या आप धर्म के रहस्य को समझना चाहते हैं?

क्या आप जीवन के विविध प्रश्नों पर अनुभवी-विद्वानों के विचार जानना चाहते हैं?

क्या आप जीवन-समर के सफल सेनानियों की जीवन गाथा पढ़ना चाहते हैं?

क्या आप महावीर, बुद्ध तथा मानवता के अन्य पूजारियों का अमर सन्देश सुनना चाहते हैं?

क्या आप दर्शन, तत्त्वज्ञान और संस्कृति के विषय में अधिकारी विद्वानों के विचार पढ़ना चाहते हैं?

यदि हाँ, तो 'श्रमण' के ग्राहक बनिए। सरल भाषा, प्रामाणिक विचार, साम्प्रदायिकता से रहित, गुणों का आग्रह, एक मात्र मानव कल्याण की भावना इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

दीवाली पर यह अपने दूसरे वर्ष में प्रवेश कर रहा है। विद्वानों तथा महात्माओं ने इसका हृदय से अभिनन्दन किया है। नवीन भारत को स्वस्थ विचार देने वाले पत्रों में इसका प्रमुख स्थान है।

वार्षिक मूल्य ४) रु०, पुरानी फाइलों के लिए पत्र-व्यवहार कीजिए।

व्यवस्थापक,

'श्रमण', जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

-२१
है ?
ति हैं ?
भवी-
यों की
अन्य
विषय
?
सरल
हित,
की
कर
हृदय
स्वस्थ
।
लिए
ारस

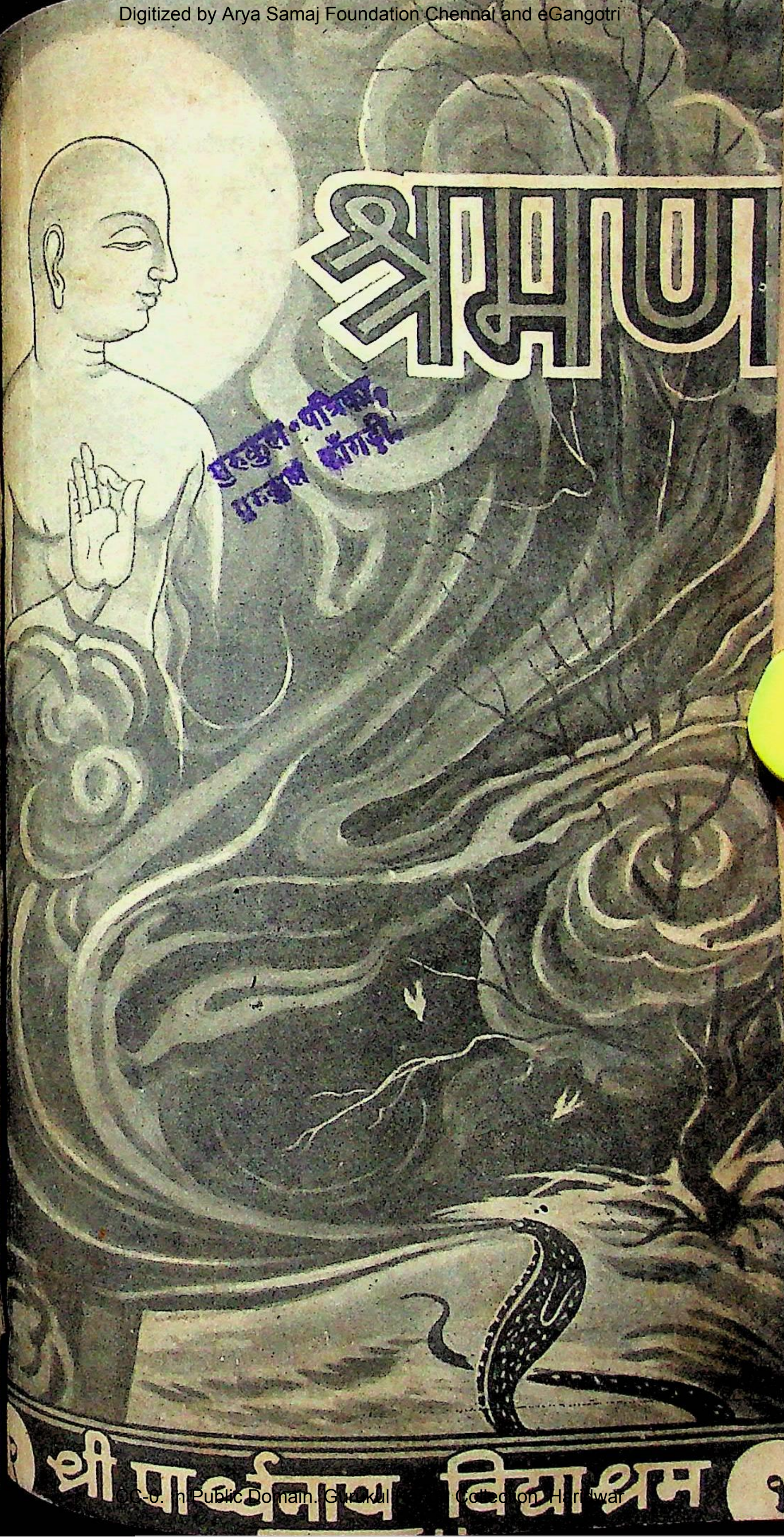

गुरुकुल पुस्तकालय, गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

इन्द्र एम० ए० — दलसुख मालवणिया
पृथ्वीराज जैन — मोहन लाल मेहता

इस अंक में–

१.	नव वर्ष—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल बी० ए०	१
२.	जीवन गति मंथर क्यों हो—डा० चन्द्रधर शर्मा	२
३.	अपनी बात (संपादकीय)	३
४.	'न्याय संपन्न विभवः'—प्रो० दलसुख मालवणिया	९
५.	मैं—श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल'	१३
६.	काम होकर ही रहेगा—रवीन्द्र	१४
६.	श्रमण संस्कृति का केन्द्र–विपुलाचल और उसका पड़ोस—श्री गुलाब चन्द्र चौधरी एम० ए०	१५
८.	प्रायश्चित्त (कहानी)—श्री इन्द्र एम० ए०	२३
९.	चित्र परिचय—श्री इन्द्र एम० ए०	२८
१०.	श्री तारण स्वामी - श्री देवेन्द्र कुमार एम० ए०	२९
११.	इन्सानियत के उत्तरदायित्वपूर्ण उसूल—श्री जेठमल बोथरा	३३
१२.	साहित्यसत्कार—	३७
१३.	आचार्य कालक और 'हंस मयूर'—पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री	३९
१४.	विद्याश्रम समाचार—	४०

श्रमण के विषय में–

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह मे प्रकाशित होता है।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) — एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

गुरुकुल-पत्रिका, गुरुकुल काँगड़ी

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष २ नवम्बर १९५० अंक १

नव वर्ष

नया वर्ष है, नए प्राण हों।

नव उमंग लेकर रवि किरणें
प्रातगगन में फूट पड़ी ज्यों
भेद तिमिर के गहन जाल को;
वही प्रेरणा, वही स्फूर्ति हो
नई बीन पर नया राग हो
नए कंठ में नए गान हों।
नया वर्ष है, नए प्राण हों।

आज चरण में गति हो नूतन,
हो नव जीवन, नव उद्बोधन,
हो मंगलवेला में पुनीत
श्रम शम सम का नव आराधन,
मानवता के चिर प्रतीक का
नई दिशा में नव प्रयाण हो।
नया वर्ष है, नए प्राण हों।

—ज्ञानचन्द्र भारिल्ल बी० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन गति मन्थर क्यों हो ?

जब जीवन गति, गति ही जीवन
तब जीवन-गति मन्थर क्यों हो ?
परिवर्त्तन के पुतले मानव !
कुछ मूक, मूढ़, तुतले मानव !
दुख दैन्य भरे दिल के मानव !
निःसार चुसे छिलके मानव !!
उठ देख निशा में ज़रा देख !
जागी प्रकाश की स्वर्ण रेख !!

तू स्वयं ज्योति तू स्वयं सिद्ध !
तू नित्य शुद्ध तू मुक्त बुद्ध !
तू गति में भी, तू मति में भी !
तू गत्यातीत, तू मत्यातीत !!
यह परिवर्तन, तेरा नर्तन !
तू दृक्, जीवन तेरा दर्शन !
बहने दे जीवन स्रोत सदा !
तू शुद्ध रत्न, कंकर क्यों हो ?
जब जीवन गति, गति ही जीवन
तब जीवन-गति मन्थर क्यों हो ?

—डा० चन्द्रधर शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

श्रमण का नया वर्ष

इस अंक के साथ 'श्रमण' अपने नए वर्ष में प्रवेश कर रहा है। यह हर्ष की बात है कि समाज को चेतना मिली और इस की पुकार व्यर्थ नहीं गई। जो लोग निद्रा पूरी होने पर भी आलस्य में पड़े थे, उन्होंने इस का स्वागत किया। जो गाढ़ निद्रा में थे वे बौखला उठे और जो बीच की अवस्था में थे उन्हें ध्येय समुचित प्रतीत होने पर भी नीति कुछ उग्र लगी। जिन की आजीविका ही दूसरों की निद्रा पर चलती है वे तो आघात पर आघात करने लगे। उन्होंने तो यहाँ तक लिख दिया कि 'श्रमण' और श्रमण की संचालक संस्था को सहायता नहीं देनी चाहिए। हमारी दृष्टि में ये सब सफलता के चिन्ह हैं। इन से हमें नया बल और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। हम ऊपर लिखे सभी महानुभावों के कृतज्ञ हैं। साथ ही अपने दृढ़ निश्चय को दोहरा देना चाहते हैं कि 'श्रमण' प्रत्येक हृदय में सत्य और अहिंसा के दीपक प्रज्वलित करना चाहता है। प्रकाश किसी सम्प्रदाय या पन्थ की निजी सम्पत्ति नहीं होता। प्रत्युत साम्प्रदायिक दीवारें चारों ओर खड़ी होकर उसे मलिन कर देती हैं। 'श्रमण' की यही कामना है कि प्रत्येक मानव में शुद्ध प्रकाशधारा का प्रसार हो, जिस से वह जीवन के बीहड़ पथ को अपनी आँखों से देख सके। दूसरे की अंगुली पकड़ कर या दूसरे के हाथ में लग्गी देकर चलना श्रमण संस्कृति के प्रतिकूल है।

दीपमालिका हमें यही संदेश देने आती है। हम अपने हृदय में दीपक जलाएँ, मस्तिष्क की आँखों को खोलें और जीवन की भयङ्कर अमावस्या को प्रकाशमय पर्व बना डालें।

विश्व में धर्म के नाम पर अन्धविश्वास, राजनीति के नाम पर शोषण, व्यापार के नाम पर पराधीनता, शिक्षा के नाम पर बौद्धिक गुलामी तथा सामाजिक मर्यादा के नाम पर अत्याचार बढ़ रहे हैं। प्राणिमात्र से मित्रता का उपदेश देने वालों ने अभी तक मनुष्य को भी गले लगाना नहीं सीखा। चौरासी लाख जीवयोनि से क्षमायाचना करने वाले वीतराग के नाम पर अपने भाई के प्राण लेने के लिए उतारू हो पड़ते हैं। चन्दना और मृगावती को प्रतिदिन नमस्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले अपनी बहनों के आँसुओं पर गुलछर्रे उड़ाने से नहीं चूकते। हम सड़क पर पड़े हुए एक पैसे को उठाने के लिए लपक पड़ते हैं किन्तु किसी तड़पते हुए मनुष्य को देख कर मुंह फेर लेते हैं। यह है हमारी मानवता।

हमारे आदर्श बहुत ऊँचे हैं। और उन आदर्शों का ढिंढोरा पीट कर हम अपने को दुनिया के सब धर्मों से श्रेष्ठ मान लेते हैं। किन्तु व्यवहार की ओर नहीं देखते। कहावत है कि जो बहुत बातें करता है वह करता बहुत कम है। इसी प्रकार बहुत ऊँचे आदर्शों की बातें वे ही करते हैं जिन्हें कुछ करना नहीं होता। भारतीय संस्कृति क्रिया को सब से ऊँचा स्थान देती है। यही कारण है कि यहाँ साधुवर्ग सर्ववन्दनीय माना जाता है। किन्तु उनका स्थान जितना ऊँचा है उतना ही महान् उन पर उत्तरदायित्व है। उनके ऊपर यह जिम्मेवारी है कि वे हमारे सामने धर्म के सच्चे आदर्श को व्यवहार द्वारा रखें। वे उन आदर्शों को जीवन में उतार कर बतावें। फिर उन्हें सम्प्रदाय रक्षा की चिन्ता नहीं रहेगी। समस्त ब्रह्माण्ड उन के चरणों पर अपने आप झुक जायगा।

गृहस्थवर्ग के ऊपर भी उत्तरदायित्व है। उसे समझ लेना चाहिए कि पैसे की अपेक्षा जीवन का मूल्य अधिक है। हम किसी वस्तु को खरीदते समय दस बार परखते हैं। पूरी तसल्ली होजाने पर पैसे निकालते हैं। जीवन के अमूल्य क्षण और श्रद्धा के बदले में हमें धर्म के नाम पर जो वस्तु मिल रही है उस पर भी विचार करना चाहिये। क्या हमें वही चीज मिल रही है जिस के लिए इतना त्याग किया जाता है? क्या हम सच्ची सामायिक करते हैं? क्या हमारा प्रतिक्रमण वस्तुतः प्रतिक्रमण है? क्या हमारी सांवत्सरिक क्षमायाचना हृदय को स्पर्श करती है? हम नवतत्व और आठ कर्मों के भेद प्रभेद प्रायः दोहराते हैं किन्तु उन का अपनी आत्मा के साथ मिलान नहीं करते।

'श्रमण' अपने आदरणीय साधुवर्ग और गृहस्थ वर्ग का ध्यान इन्हीं तथ्यों की ओर खींचना चाहता है और आशा करता है वह अपने इस ध्येय पर उत्तरोत्तर प्रगति करता जायगा।

नालन्दा का पुनरुद्धार

श्रमण संस्कृति के लिए नालन्दा विश्वविद्यालय का स्थान गौरवपूर्ण रहा है। दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर, शान्तिरक्षित आदि प्रसिद्ध बौद्ध आचार्यों ने यहाँ रह कर अमर साहित्य की रचना की। यहाँ से विद्या प्राप्त कर के हजारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों ने देश देशान्तरों मे जाकर श्रमण संस्कृति का अमर सन्देश सुनाया। आज चीन, जापान, लंका, जावा, सुमात्रा, बर्मा आदि देशों में जो बौद्धधर्म की पताकाएँ लहरा रही हैं उस का बहुत बड़ा श्रेय नालन्दा विश्वविद्यालय को है।

समय और साम्राज्यों के परिवर्तन के साथ नालन्दा का वह गौरव नष्ट हो गया। किन्तु वहाँ के भग्नावशेष अब भी अतीत गौरव की गाथा गा रहे हैं।

यह हर्ष की बात है कि श्री भिक्षु जगदीशकाश्यप तथा उनके साथी नालन्दा के गौरव को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। कई वर्षों से वहाँ एक डिग्री कालेज चल रहा है। भिक्षु जी उसे एक विश्वविद्यालय का रूप दे देना चाहते हैं। उन के इस सत्प्रयत्न में बिहारी जनता उत्साहपूर्ण सहयोग दे रही है।

एक वार्तालाप में भिक्षु काश्यप ने बताया कि बिहारी जनता महावीर और बुद्ध को अपना पूर्वज मानती है। उनके नाम से उस का हृदय नाचने लगता है और एक अस्मितापूर्ण आनन्द की लहर दौड़ जाती है। उस के हृदय में इन दोनों महापुरुषों के प्रति ममता है, आत्मीयता है। इन के नाम से उसे जागृत किया जा सकता है। बिहार के रजकण, ईंट और पत्थर इन महापुरुषों के चरणकमलों से पवित्र हो चुके हैं। वहाँ के नदी नालों में उनके उपदेश प्रतिध्वनित हैं। वहाँ श्रमण संस्कृति के बीज प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। केवल उन्हें सींचने की आवश्यकता है।

हम भिक्षु जी के प्रयत्न की सफलता चाहते हैं, साथ ही जैन समाज का ध्यान इस ओर खींचना अपना कर्तव्य मानते हैं। बिहार जितना बुद्ध का है उस से अधिक महावीर का है। राजगृह, चम्पा,अपापा आदि नगरियाँ, जिन का वर्णन जैन आगमों में भरा पड़ा है, वहाँ खण्डहरों में छिपी पड़ी हैं। चन्दनबाला, मृगावती, श्रेणिक, अभयकुमार, शालिभद्र आदि की कथाएँ वहाँ के रम्य प्रदेशों में चित्रित हैं। किन्तु हमारा उस ओर ध्यान ही नहीं है। बौद्ध जनता दूर दूर देशों से आकर अपने सांस्कृतिक स्रोत के उद्गम को पुनर्जीवित करने में लगी है और हम इसी देश में रहते हुए भी अनजान बने हुए हैं।

इसके लिए हमें स्वतन्त्र रूप से कुछ करना चाहिए या बौद्ध भाइयों के साथ मिल कर, यह दूसरा प्रश्न है। इस के लिए विचारपूर्वक रूपरेखा बनाई जा सकती है। किन्तु इस ओर उपेक्षा का अर्थ है जैन संस्कृति के प्रति उपेक्षा।

कम से कम इतना तो अवश्य होना चाहिए कि पटना विश्वविद्यालय में अर्धमागधी तथा जैन दर्शन के पठन-पाठन की पूर्ण व्यवस्था हो। जैन परम्परा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सम्बन्ध रखने वाली पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री को प्रकाश में लाया जाय और उस समय का प्रामाणिक इतिहास तैयार किया जाय।

मन्दिर, तीर्थ तथा उपाश्रयों के पीछे लाखों रुपया खर्च करने वाली जैन समाज को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। मन्दिरों में पड़े हुए करोड़ों रुपए यदि इस प्रकार के सांस्कृतिक विकास के कार्यों में नहीं लगाए जा सकते तो कब काम आएँगे ?

इन्द्र एम० ए०

मध्यमवर्ग की समस्या

पिछले महायुद्ध और उसके बाद की परिस्थितियों के कारण पैदा हुई समस्याओं में मध्यम वर्ग के जीवन निर्वाह की समस्या आज बहुत जटिल हो गई है। शुक्ल पक्ष के चाँद की कलाओं की तरह महँगाई उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। उस के घटने के लक्षण निकट भविष्य में दिखाई नहीं देते। यदि कहीं दुर्भाग्यवश तीसरा विश्वयुद्ध शुरु हो गया तो यह प्रश्न और भी टेढ़ा हो जाएगा। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि महंगाई का सबसे बुरा प्रभाव मध्यम वर्ग पर ही पड़ा है और उसके लिए जीवन संघर्ष में अपने अस्तित्व को कायम रखना अत्यंत कठिन हो गया है।

जैन समाज म मध्यमवर्ग के लोगों की ही अधिकता है। अनुमानतः जैन समाज का तीन चौथाई भाग छोटे छोटे व्यापारियों, दलालों, आढ़तियों और नौकरी पेशा वालों का है। ऐसी दशा में समाज के कर्णधारों को इस प्रश्न के हल पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। जैन समाज एक संपन्न और समृद्धिशाली समाज है, यह बात केवल हमारे प्राचीन गौरव का प्रतीक रह गई है। फिर भी समाज में कुछ ऐसे समर्थ धनिक मौजूद हैं जो यदि चाहें, अपने भाइयों की सहायता में निमित्त बन कर समाज के कलेवर को जर्जरित होने से बचा सकते हैं। साधु समाज के प्रति लोगों की पूरी श्रद्धा है। यदि वह तत्परता से इस काम का बीड़ा उठाए तो धनिकों का सहयोग मिलना अवश्यम्भावी है। इस ओर अधिक उपेक्षा का परिणाम भयंकर होगा। समाज के अधिकतम भाग के छिन्न भिन्न हो जाने पर इने गिने व्यक्तियों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा। हम कई ऐसे उत्सव मनाते हैं जिनमें लाखों रुपया पानी की तरह व्यर्थ बहा दिया जाता है। उस धन का समाज निर्माण के कार्यों में उपयोग हो सकता है। धनवानों को चाहिए कि वे अपने क्षेत्र में उन परिवारों का पता लगाएँ जिन्हें सहारा देकर खड़ा करने की जरूरत है। उनके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य धंधों की तलाश की जाए और मिल कर संगठित व्यवस्था करने का आयोजन किया जाए ।

मध्यमवर्ग से हमारा निवेदन है कि वे जीवन निर्वाह के साधनों का चुनाव व्यापक क्षेत्र से करें । समय आरहा है जब कि वर्गहीन समाज की स्थापना होगी और वह भी श्रम के आधार पर । अतः शारीरिक श्रम द्वारा साध्य कामों के प्रति विद्यमान घृणा के भावों को दूर करना चाहिए। कृषि, उद्योग, कला, कुटीशिल्प और कारीगरी के कई ऐसे धंधे हैं जिन की ओर जैन समाज का ध्यान ही नहीं गया। इन कार्यों को निम्न कोटि का समझना भूल है। कुम्भकार सद्दालपुत्त भगवान् महावीर के श्रेष्ठ उपासकों में थे। शिल्प और कला के कई काम महिलाएँ भी कर सकती हैं । उन्हें भी आजीविकोपार्जन में पुरुषों का हाथ बटाना होगा। बड़ी उम्र के बच्चे भी सहायक हो सकते हैं । जापान का उदाहरण हमारे सामने है। हमें अपनी आवश्यकताओं को भी कम करना होगा।

आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरि जी की प्रेरणा से श्री जैन श्वेताम्बर कांफ्रेंस बंबई ने मध्यमवर्ग की दशा को उन्नत बनाने के लिए एक योजना बनाई थी। उसे शीघ्र कार्यान्वित करना चाहिए । रोग के सीमा पार कर जाने पर डाक्टर को बुलाने से कोई लाभ न होगा ।

मुनि रंग विजय जी का स्तुत्य प्रयत्न

'श्रमण' ने अपने जन्मकाल से ही साधुसमाज से निवेदन किया था कि वे हरिजनों की दशा सुधारने तथा उन्हें समाज में समानता का दरजा दिलवाने का लोकोपकारी कार्य तत्परता से शुरू करें। भगवान् महावीर ने जन्म के स्थान पर गुण और कर्म को प्रधानता दी थी। जैन धर्म के सिद्धांत छूआ-छूत जैसे अमानुषिक व्यवहार की आज्ञा नहीं देते। किंतु ब्राह्मण धर्म के प्रभाव से हमारे सामाजिक जीवन में यह दोष घर कर गया। 'मित्ती मे सव्वभूएसु' का पाठ प्रतिदिन दोहराते हुए भी हम मनुष्य को गले लगाने से हिचकचाते हैं। समय आ गया है कि हरिजनों के प्रति समाज के वर्तमान दृष्टि कोण में परिवर्तन किया जाए । हमें खुशी है कि मुनिरंग विजय जी ने इस पवित्र काम के लिए अपने जीवनदान की प्रतिज्ञा की है । उन्होंने कार्य भी शुरू कर दिया है। वे मुगलसराय गए हुए हैं। उनके उपदेश व प्रेरणा से वहाँ के चालीस हरिजन परिवारों ने मांस और मदिरा का सर्वथा त्याग किया है। ई० आई० आर० के स्टाफ़ के बहुत से उच्चवर्ण के कर्मचारियों और अन्य लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भी मांस व शराब का त्याग किया है। मुनि जी हरिजनों के घर से आहार संबंधी शुद्धता का ध्यान रखते हुए गोचरी भी ग्रहण करते हैं। 'श्रमण' परिवार उनके मिशन की सफलता की कामना करता है और आशा करता है कि समाज के विचारशील सज्जन मुनि जी को पूरा सहयोग देंगे।

छपते छपते

लिखते हुए बड़ा हर्ष होता है कि जालंधर शहर (पंजाब) से भी उपर्युक्त टिप्पणी के छप जाने के बाद ऐसा ही उत्साहवर्धक समाचार प्राप्त हुआ है। व्याख्यान वाचस्पति स्वामी श्री मदनलाल जी महाराज के सदुपदेश से वहां के पचास हरिजन परिवारों ने आयंबिल का तप किया तथा जैनधर्म के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। महाराज श्री उनके घरों से आहार भी लाए हैं। हरिजनों ने सानुग्रह बिनती की है कि वे उनके निवास स्थान पर पधार कर व्याख्यान दें। आशा है महाराज श्री वहां जाएँगे। 'श्रमण' का आन्दोलन सफल हो रहा है। हमें विश्वास है कि अन्य जैन मुनि भी इस पवित्र कार्य में पूरा उत्साह दिखलायेंगे।

पृथ्वीराज जैन

स्व० श्री मोहनलाल झवेरी

सौजन्यमूर्ति श्री मोहन लाल भगवान् दास झवेरी का ता० ९-१०-५० को बंबई में अवसान हो गया। इससे समस्त जैन समाज को श्रद्धापरायण विद्वान् की क्षति हुई है। जैन दर्शन का तुलनात्मक अभ्यास उनका खास विषय था। पिछले वर्षों में उन्हों ने जैन मन्त्रशास्त्र को अपने संशोधन का विषय बनाया था। उसका तुलनात्मक गवेषण करके भैरवपद्मावती ग्रन्थ की जो प्रस्तावना लिखी है वह भारतीय मन्त्र शास्त्रके लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनका व्यवसाय तो सोलीसीटर का था किन्तु ओफिससे घर पर आते ही वे जैन साहित्य का स्वाध्याय करने लग जाते थे। उनके घर पर जैन ग्रन्थों का ढेर लगा रहता था और वे उसमें डूबे हुए नजर आते थे। ऐसे अध्यवसायी विद्वान् होते हुए भी वे विनम्र थे। विरोधी विचार रखने वालों को भी आदर की दृष्टि से देखते थे। विचार-भेद को मित्रता के बीच नहीं आने देते थे। ऐसे समभावी कर्तव्यशील व्यक्ति के चले जाने से जैन समाज की जो हानि हुई है उसकी पूर्ति शीघ्र नहीं हो सकती। हम उनके परिवार के प्रति समवेदना प्रकट करते हैं और उनके आत्मिक शान्ति के लिए प्रार्थना करते हैं।

दल सुखमालवणिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'न्यायसम्पन्नविभवः'

–प्रो० दलसुख मालवणिया

आचार्य हेमचन्द्र ने कुमारपाल राजा को जैनधर्म के प्रति श्रद्धालु बनाया, यह तो सभी जानते हैं । जैनधर्म के प्रति रुचिसम्पन्न होने के बाद उन्हों ने श्रावक के व्रत अंगीकार किए । आचार्य हेमचन्द्र ने जो उपदेश दिया उसका प्रारंभ उन्हों ने मार्गानुसारिके गुणों से किया क्योंकि जब तक ये भूमिकारूप गुण मनुष्य में न हों तब तक कच्ची भूमिका के ऊपर खड़े किए गए महल की तरह मनुष्य के व्रत नियम नहीं टिक सकते । अतएव पूर्व तैयारी के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है, आचार्य ने सर्वप्रथम उन्हीं गुणों का उपदेश दिया । जैन मार्ग—जैन आचार--मोक्षमार्ग के प्रति उद्यत पुरुष के लिये जिन गुणों की आवश्यकता होती है उन में सर्वप्रथम है---न्यायसम्पन्न-विभवः अर्थात् मनुष्य का धन और वैभव न्याय से उपार्जित होना चाहिए ।

आचार्य जिन मण्डन ने इस गुण की व्याख्या करते हुए कहा है कि स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वास रखने वालों के प्रति धोखा तथा चौर्य आदि जो निन्द्य तरीके हैं--इन सब उपायों से जो धन कमाया जाता है वह न्यायोपार्जित नहीं होता ।

क्या आज कल के उद्योगपति यह कह सकते हैं कि उन्होंने हिस्सेदारों तथा मित्रों का द्रोह नहीं किया है ? अन्यथा जैसे उनकी सम्पत्ति बढ़ती जाती है वैसे उन सभी---शेयरहोल्डरों की भी बढ़नी चाहिए। यह बात ठीक है कि मैनेजिंग एजन्ट ने अकेले किसी एक उद्योग में जितनी पूंजी लगाई है उतनी प्रत्येक शेयर होल्डर ने किसी एक उद्योग में नहीं लगाई है फिर भी जिस शेयर होल्डर ने एक उद्योग में नहीं किन्तु अनेक उद्योगों में मिल कर मेनेजिंग एजन्ट से भी अधिक पूंजी लगाई हो तो क्या उसे उतनी ही आमदनी नहीं होनी चाहिए जितनी उतनी ही या उससे भी कम पूंजी लगाने वाले मैनेजिंग एजन्ट को होती है? स्पष्ट है कि मैनेजिंग एजन्ट अपने पर विश्वास रखने वाले मित्रों का द्रोह करके ही अधिक कमाता है । उसका वह धन न्यायोपार्जित नहीं कहा जा सकता ।

ऐसे अन्यायोपार्जित धन का दान भी प्रशंसा के योग्य नहीं है । समाज में आज जो अधिक दान देता है उसकी प्रतिष्ठा है किन्तु एक गरीब व्यक्ति अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेट काट कर किसी को अन्नदान देता है तो उसका कोई मूल्य नहीं समझा जाता। अन्यायोपार्जित धन का व्यय करना कैसा दान है, इस बात को एक प्राचीन श्लोक में बताया गया है--

अन्यायोपात्तवित्तस्य दानमत्यन्तदोषकृत्।
धेनुं निहत्य तन्मांसैर्ध्वांक्षाणामिव तर्पणम्॥

अन्यायोपार्जित धन को दान में देने से अत्यन्त दोष ही होता है। वह दान वैसा ही है जैसा गौ की हत्या करके उसके मांस से कौए जैसे पक्षियों को तृप्त करना।

जो सेठ अन्याय से धन एकत्र करता है उसके गुरु भी वैसे ही होते हैं, अन्यथा वे उसे उस मार्ग पर क्यों जाने देते ? उसे उस मार्ग से धन कमाने में पाप बताते। किन्तु सेठ और गुरु का तो ऐसा गठबन्धन है कि उसे यही बताया जाता है कि यह सब तुम्हारा पूर्व जन्म का पुण्य ही फल दे रहा है। अतएव यहाँ भी हमारे जैसे सत्पुरुषों को दान दो तो फिर अगले जन्म में सुख मिलेगा। यह तो जन्मपरंपरा के काटने का रास्ता नही है। इससे तो जन्मपरंपरा बढ़ती ही जाती है। इसकी अपेक्षा तो अच्छा यही है कि मनुष्य न्याय से उतना ही उपार्जन करे जितने की आवश्यकता हो। अधिक उपार्जन करके फिर दान करने की अपेक्षा यही ज्यादा अच्छा है कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही उपार्जन करे। आवश्यकताएँ भी मनुष्य को कम से कम रखनी चाहिए अन्यथा आवश्यकताओं के बढ़ने पर अर्जनवृद्धि भी आवश्यक हो जाती है फिर न्याय और अन्याय दोनों तरीकों से अर्जन किया जाता हैं इससे बचने के लिए कमसे कम आवश्यकताएं रखनी चाहिए।

मजदूर भी तो कारखानों की पूंजी की तरह एक बड़ी सम्पत्ति हैं। वे भी कारखाने वालों के मित्रों की कोटिमें हैं। उनके हिताहित का विचार कितने लोग करते हैं? स्वयं मोटर में घूमेंगे, बढ़िया बंगले में रहेंगे, बढ़िया कपड़े पहिनेंगे किन्तु मजदूर के लिए टूटी-फूटी झोपड़ी भी नसीब नहीं। मिलों में एक से एक बढ़िया कपड़ा बनता है किन्तु मजदूर को तो नंगा ही रहना पड़ता है। क्या यह साथियों का द्रोह, मित्रों का द्रोह नहीं है ? और इस प्रकार अपने साथिओं का ही द्रोह करके कमाया हुआ धन न्याय सम्पन्न कहा जा सकता है ?

कहा जाता है कि भारत में जैन जाति जितनी कोई धनिक जाति नहीं। क्या यह जैनों के लिए प्रशंसा की बात है ? सामान्य तौर पर यही समझा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है कि यह जैनों की प्रशंसा है किन्तु इसका अर्थ धर्म दृष्टि से सोचा जाय, आज कल के जो कमाने के तरीके हैं उन्हें सामने रख कर सोचा जाय तो यही प्रशंसावाक्य निन्दावाक्य है ऐसा प्रतीत होगा। धन अधिक होना कोई गौरव की बात नहीं किन्तु न्यायसंपन्न वैभव होना गौरव की बात है। कितने धनिक अंत छाती पर हाथरखकर कह सकते हैं कि हमारा धन न्यायोपार्जित है ?

धनिक लोगों का धन न्यायोपार्जित नहीं है अतएव उसका विनियोग न्याय को बढ़ाने में नहीं होता। मजदूर भी यही सोचने लगता है कि जितनी कमाई अधिक होगी वह तो धनिकके पेट में ही जायगी। मुझे तो उसका कुछ लाभ नहीं। मैं तो अपने शरीर का ह्रास करके कठोर मजदूरी करता हूँ किन्तु उसका उचित मूल्य मुझे नहीं मिलता। अतएव मैं भी क्यों पूरा ध्यान दूं। मैं भी आराम क्यों न करूँ ? दिन भर प्रामाणिकता से मजदूरी करने की मुझे क्या आवश्यकता है ? जितना आराम से हो उतना ही क्यों न करूँ ? इस प्रकार मजदूर भी स्वामिद्रोह करके कमाने की सोचता है। परिणाम यह होता है कि उत्पादन कम और खर्च अधिक होने लगता है। इसी प्रकार महंगाई बढ़ती है और हर एक व्यक्ति अन्याय से, चोरी से और झूठ से कमाने की सोचता है। इस प्रकार सारे देश में अप्रामाणिकता और अन्याय का ताण्डव होने लगता है और सभी लोगों पर आपत्ति आती है। इस प्रकार धनिकों का कुचक्र उसी वर्ग तक सीमित नहीं रहता। वह तो स्वयं अधर्म करता ही है किन्तु अपने आश्रितों को भी अधर्म के लिये प्रेरित करता है और अन्त में स्व-पर कल्याण के स्थान में सब का अकल्याण ही होता है।

वस्तुतः सोचा जाय तो धन को एकत्र करने में मनुष्य अपना ही विचार नहीं करता। ऐसा होता तो वह अमर्याद धन एकत्र नहीं करता। उसको अपने बाल बच्चों का भी फिक्र है। अपने ही नहीं किन्तु सात पीढ़ी के बालबच्चों का फिक्र है। सात पीढ़ी का कोई यदि फिक्र करता है तो उसे हम दूरदर्शी कह सकते हैं किन्तु जो है नहीं उनका फिक्र करके जो सामने मौजूद हैं उनके हित का विचार न करना दूरदर्शिता नहीं है। यह तो ऐसा ही कहा जायगा कि वह अपने पैर की खिसकती मिट्टी को भी नहीं देखता। अपने कुल में—अपने परिवार में यदि वह न्याय का बल देता है तो वह बल धनबल की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। इसका कारण यह है कि धनबल के देने से अपने परिवार को तो वह राजी कर सकता है किन्तु जिनके जरिए वह धन कमाता है उनको वह शत्रु बनाता है। पांच के हित के लिए वह पांच हजार को शत्रु बनाता है। उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच हजार की शत्रुता उसी तक सीमित नहीं रहती। वे तो उसके, उसकी कुल-परंपरावालों के भी जानी दुश्मन हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में धन का बल देने वाला अपना अहित तो करता ही है किन्तु जिनके हित के लिये उसका प्रयत्न था उनका भी अहित करता है ।

इसके विपरीत यदि वह न्याय से कमाता है तो संभव है कि उसके सात पीढ़ी के बाल बच्चों के लिये वह कुछ भी धन रखके न जाय किन्तु वह अपने परिवार के लोगों में एक न्याय का बल छोड़ जायगा जो उनके लिए तो हित-कर है ही किन्तु उनके आश्रित हजारों मजदूरों के लिए भी हितकर है। इतना ही नहीं, उन पांच सात हजार मजदूरों में ऐसे न्याय का बल पैदा हो जयगा जो उस सेठके परिवार के लिए जान भी देने को तैयार रहेंगे। ऐसी स्थितिमें यह कहा जायगा कि उसने न केवल अपने बाल बच्चों का ही हित किया है किन्तु एक ऐसी परंपरा स्थापित कर दी कि जिसको यदि बढ़ाया जाय तो समस्त मानव जाति का कल्याण हो सकता है ।

धर्म दृष्टि से सोचा जाय तो सेठ या मालिक, आश्रयदाता और आश्रित ये सब झूठे भेद हैं । यह तो मनुष्य ने अपने तुच्छ स्वार्थ के वशीभूत होकर भाषा को विकृत किया है। आत्मदृष्टि से सभी आत्माएँ समान हैं । न कोई आश्रित है और न कोई आश्रयदाता। सभी में एक ही जैसा चैतन्य प्रस्फुटित है। मनुष्य में वात्सल्य है उसी को यदि साधर्मिकवात्सल्य के रूप में देखा जाय तो वहाँ सेठ और नौकर का भेद नहीं, आश्रय और आश्रयदाता का भी भेद नहीं, पुत्र और मजदूर का भेद नहीं, सभी में एक ही समान चैतन्य धर्म विलसित है अतएव सभी हमारे वात्सल्य के अधिकारी हैं ।

इस विश्ववात्सल्य का विकास तभी हो सकता है जब हम अपने तुच्छ स्वार्थों को छोड़ कर अन्याय से अर्जन करना छोड़ दें और दूसरों के परिश्रम का अनुचित लाभ न लें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं"

साहिल पास पर किश्ती न मेरी छोड़ती मझधार !!
लहरों में उठा तूफ़ाँ
इशारा पर रुका ।
प्रलय का मेघ गरजा
पर न सम्मुख टिक सका ॥
तड़पती बिजलियाँ आवाज
में मेरी छिपीं ।
उठे जो कदम नीचे
आसमाँ आकर झुका ॥
मंजिल सामने लेकिन न जो मुझको कभी स्वीकार !!
डांड़ों से समुन्दर का
हृदय दाबे चला ।
उड़ाये पाल तूफ़ाँ को
अरे बाँधे चला ॥
सभी मुश्किल हुई
आसान कदमों पर झुकी ।
अरे इन्सान मैं जो
आसमाँ देता हिला ॥
खड़ी यह मौत जिसको मैं पिन्हाता जिन्दगी का हार !!

--देवनाथ पाण्डेय 'रसाल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम होकर ही रहेगा—

—रवीन्द्र

अरे ओ मन !
सदा विश्वास रख,
कि काम होकर ही रहेगा ।
यदि तूने सचमुच प्रण ठान लिया है,
तो निश्चय ही तेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी ।
यह जो तेरे सामने पाषाण की तरह पड़ा हुआ है,
वह प्राण पाकर हिल उठेगा ।
जो गूंगों की भाँति पड़े हुए हैं,
वे भी निश्चय ही बोलने लगेंगे ।
समय हो गया है,
जिसके पास जो बोझ हो, उठा लो ।
मेरे मन,
यदि तूने दुःख को सिर-माथे ले लिया है,
तो वह अवश्य सह्य बन जाएगा ।
जब घंटा बज उठेगा,
तो तू देखेगा कि सब लोग तैयार हैं,
और
सभी यात्री एक साथ एक रास्ते पर निकल पड़ेंगे ।
मेरे मन,
दिन रात यह विश्वास रख,
कि काम होकर ही रहेगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण संस्कृति का केन्द्र :

विपुलाचल और उसका पड़ोस–

-श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम० ए०, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न

बौद्धधर्म के इतिहास में जो स्थान ऋषिपतन मृगदाव (वर्तमान सारनाथ) का है वही स्थान जैनधर्म के इतिहास में विपुलाचल का है। भव्यलोकों के उपकार के लिए जिस प्रकार बुद्ध भगवान् का प्रथम उपदेश सारनाथ में हुआ था उसी तरह 'पंचसेलपुरे रम्मे विउले पव्वदुत्तमे ···· महावीरेण अत्थो कहियो भवियलोयस्स' (तिलोयपण्णत्ति) भगवान् महावीर ने विपुलाचल पर्वत पर भव्य जीवों के हित के लिए अपना प्रथम उपदेश दिया था। यह पर्वत राजगृह को घेरे हुए स्थित पंच पर्वतों में से एक है। अन्य चार पर्वतों के नाम क्रमशः रत्नगिरि, उदयगिरि, सुवर्णगिरि तथा वैभारगिरि हैं। इन पांचों पर्वतों का और इन से घिरी हुई अति प्राचीन नगरी राजगृह का तथा आस पास के स्थान का नालन्दा, पावापुरी, उद्दन्तपुरी, (वर्तमान विहार शरीफ) का न केवल जैनधर्म और बौद्धधर्म के इतिहास की दृष्टि से महत्व है अपितु भारतीय संस्कृति के ज्ञान के लिए भी इनका अध्ययन अपेक्षणीय है। जैन, बौद्ध और ब्राह्मण ग्रन्थों में इस स्थान का बहुत सुन्दर वर्णन है। यह क्षेत्र अनेक शताब्दियों तक श्रमण संस्कृति का गढ़ रहा है। यहीं मगधसाम्राज्य के उत्थानपतन नाटक के अनेक दृश्य खेले गये थे। जैनधर्म और बौद्धधर्म के उत्थान के दिन इसी स्थल ने देखे थे। आजीवक आदि अनेक सम्प्रदायों और दर्शनों को जन्म देने और उन्हें सदा के लिए सुला देने का सौभाग्य भी इसी स्थान को मिला है। इसी स्थली पर आध्यात्मिक विचार धारा और भौतिक समृद्धि ने गठबंधन कर भारतीय राष्ट्रवाद की नींव डाली थी। नालन्दा और उदन्तपुरी के अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों के रूप में मगध ने अपना उत्कर्ष यहीं देखा था। इन विश्वविद्यालयों में छः सौ वर्षों से ऊपर भारतीय दर्शनों की, धर्म और साहित्य की, कला और संगीत की तथा भैषज्यविज्ञान और रसायन शास्त्र की शिक्षा बिना किसी भेद भाव के दी जाती थी। मगधके इतिहास का पृष्ठ यदि राजगृह के उत्थान के साथ खुलता है तो वह नालन्दा के पतन के साथ बन्द होता है। इस क्षेत्र के कारण ही सारा विहार प्रान्त आज विहार नाम से पुकारा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौगोलिक स्थिति

यह क्षेत्र दक्षिण विहार में पटना जिले में है। वर्तमान में राची से पटना और गया से पटना आने वाले प्रमुख मार्गों पर स्थित है। प्राकृतिक दृष्टि से इस स्थान का बड़ा महत्त्व है इसीलिए यह अनेकों शताब्दियों तक सभ्यता का प्रमुख केन्द्र रहा है। प्राचीन मगध के ठीक बीच में होने से यहीं उसकी राजधानी थी। वर्तमान अर्थशास्त्र और वाणिज्यशास्त्र के अनुसार किसी क्षेत्र की समृद्धि के लिए जो तत्व (factor) आवश्यक हैं उनसे यह परिपूर्ण था। आज भी सारे विहार में रमणीय प्रदेश यही है। अब भी यहाँ अनेक प्रकार के धान्य पैदा होते हैं। आलू, मिर्च के बीज उत्तर भारत में यहीं से पहुंचते हैं। सन और उड़द की फसल बड़े प्रमाण में यहाँ होती है।

प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक महत्त्व

यह क्षेत्र सुदूर अतीत में श्रमण संस्कृति का अड्डा था। वैदिक संस्कृति के प्रभाव से मुक्त था। इसका अपना कला–कौशल था। राजगृह और नालन्दा आदि की खुदाई से प्राप्त पक्की मिट्टी (terracotta) के खिलौनों से जिन में स्त्री, पुरुष, राक्षस और पशुओं के चित्र हैं–मालूम पड़ता है कि इस क्षेत्र का संबन्ध मोहेंजोदारो और हरप्पा की संस्कृतियों से अवश्य था। इन खिलौनों को हम सम्प्रदायगत भेद में नहीं बाँध सकते। आर्यों के आगमन के पहले के कुछ अवैदिक तत्त्वों से मालूम होता है कि वहां पाषाणयुगीन लोगों के वंशज रहते थे। वेदों में इन्हें व्रात्य, नाग, यक्ष आदि नामों से कहा गया है। इस क्षेत्र के नेतृत्व में मगधवासियों ने आर्यों के हर प्रकार के आक्रमण रोकने के प्रयत्न किये थे। इस देश से चारण भाट लोग आर्य देशों में बहुधा आया जाया करते थे। इसलिये चारणों को आर्य लोग मागध कहने लगे और संस्कृत साहित्य में 'मागध' शब्द चारण का पर्यायवाची बन गया। आर्य लोग यहाँ के निवासियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे, इस बात के प्रमाण उपनिषदों तथा ऐतरेय व शतपथ ब्राह्मणों में प्रचुरता से हैं। इस क्षेत्र वालों ने पुरोहितों और देवताओं की प्रभुता नहीं स्वीकारी। यद्यपि महावीर और बुद्ध के उदय होने के काफी पहले आर्यों ने मगध को जीत लिया था पर पुरोहितवर्ग का वैसा सम्मान कभी नहीं था जैसा कि आर्य देशों में था। वैदिक संस्कृति उस क्षेत्र के लिए विदेशी थी। इसी लिए पीछे महावीर और बुद्ध के उदय काल में वहाँ जो थोड़ा बहुत वैदिक धर्म का प्रभाव था वह भी उठ गया था। श्रमण और याज्ञिक संस्कृति से संघर्ष के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छूटकर उल्लेख ब्राह्मण और उपनिषद ग्रन्थों में बहुत मिलते हैं। जैन-बौद्ध ग्रन्थों से भी साक्षी ली जा सकती है। इस क्षेत्र के प्रधान केन्द्र गिरिव्रज का—जिसका नाम पीछे राजगृह पड़ा—अपने विपुलाचल आदि पांचो पर्वतों सहित उल्लेख रामायण और महाभारत में मिलता है। महाभारतकालीन बृहद्रथ और जरासंध की राजधानी यहीं थी। अपना धर्म प्रचार करने के लिए न केवल महावीर-बुद्ध ही ने बल्कि तत्कालीन अनेक सम्प्रदायवादियों ने इस स्थल को अपना केन्द्र बनाया था। भारत के साम्राज्यीकरण की नींव अजातशत्रु द्वारा इसी क्षेत्र में पड़ी थी। इतिहास प्रसिद्ध महाराज श्रेणिक बिम्बिसार और अजातशत्रु ने अपना गौरव यहीं बढ़ाया था। चन्द्रगुप्त के समय होने वाले द्वादश वर्षीय अकाल के कारण जैनधर्म यद्यपि पूर्व भारत में क्षीण हो गया और दक्षिण तथा पच्छिम भारत की ओर फैलने लगा पर बौद्धधर्म का प्रधान केन्द्र यहीं था। यद्यपि मौर्यों के समय पाटलिपुत्र मगध की राजधानी थी फिर भी इस क्षेत्र का धार्मिक महत्त्व किसी भी तरह कम न हुआ था। अशोक ने सारिपुत्त की स्मृति में यहाँ एक मन्दिर बनवाया तथा अपने अन्तिम दिन राजगृह में बिताये थे। मौर्य साम्राज्य के पतन और गुप्तसाम्राज्य के उत्थान के बीच के अन्धकारयुगीन भारत में इस क्षेत्र में ऐसी कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। गुप्तकाल में इस क्षेत्र की ख्याति पुन: फैली। गुप्तों और पालों के राज्य काल में यह क्षेत्र शिक्षा का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र था। पालवंशी धर्मपाल बौद्धधर्म का बड़ा भक्त था। उसने उदन्तपुरी और विक्रमशिला शिक्षाकेन्द्रों की नींव डाली। ८ वीं से १२ वीं ईस्वी तक इस क्षेत्र की नालन्दा कला और स्थापत्य का बहुत प्रसार हुआ। ११९७ ई० में तुर्कराजा मुहम्मद बिन् बख्त्यार ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया, वहाँ की मूर्त्तियों और मन्दिरों के साथ बड़े बड़े ग्रन्थागार भी नष्ट कर दिये। उसने नालन्दा और विक्रमशिला के सैकड़ों तान्त्रिक भिक्षु भी नष्ट कर दिये। पालराजाओं द्वारा राज्य रक्षा के लिये बनाये गये उदन्तपुरी बिहार को दो सौ घुड़सवारों से जीत लिया। इस तरह उस क्षेत्र का गौरव सदा के लिए अस्त हो गया।

विपुलाचल और उसके साथी चार पर्वत

आज से करीब २४५० वर्ष पहले भगवान् महावीर ने श्रावण कृष्ण १ को अपनी प्रथम देशना संसार के प्राणियों के हितार्थ विपुलाचल पर्वत पर दी थी। यह तथा उसके साथी अन्य चार पर्वत राजगृह को चारों ओर से घेरे खड़े हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनका भारतीय तीर्थ के इतिहास में बड़ा महत्त्व है। उनके नाम रत्नगिरि उदयगिरि, सुवर्णगिरि और वैभारगिरि हैं। जैन, बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य में इनके विभिन्न नाम कहे गये हैं और बहुविध महिमा गाई गई है। (१) 'विपुलाचल' को प्राकृत में वेउल्ल कहा है। महाभारत में चैत्यक तथा बौद्ध ग्रन्थों में 'वेपुल्ल' कहा है। यह राजगृह के 'नैऋत्य' कोण में है। यहाँ अजातशत्रु का स्तुप तथा वर्तमान में ६ जैन मन्दिर हैं। कई एक ठंडे गर्म पानी के कुण्ड भी हैं (२) 'रत्नगिरि' को तिलोयपण्णति और कसायपाहुड में 'छिन्न' पर्वत कहा है पाली ग्रन्थों में इसका पण्डव तथा महाभारत में ऋषिगिरि नाम दिया गया है। यह पर्वत राजगृह के पश्चिम, वायव्य और उत्तर दिशा में फैला है। यहाँ इन्द्रशाला नाम की एक प्राचीन गुफा है तथा वर्तमान में तीन जैन मन्दिर हैं। (३) 'उदयगिरि' का जैनग्रन्थों में 'पाण्डु' महाभारत में वृषभ तथा बौद्धग्रन्थों में 'गृद्धकूट' नाम मिलता है। यह राजगृह के ईशान कोण पर है। इस ओर जीवक का आम्रवन और बुद्ध का विहार है। यहाँ जैनियों का एक चौमुख विहार है जिसमें मूलनायक श्री पार्श्वनाथ स्वामी की एक बड़ी मनोज्ञ प्रतिमा है। पास में बाणगंगा नाले का स्रोत है। (४) 'सुवर्णगिरि' राजगृह के पूर्व में है। इसे जैनग्रन्थों में 'ऋषिगिरि' व 'श्रमणगिरि' नाम से कहा है जिसका पीछे अपभ्रंश 'सुवर्णगिरि' हो गया। महाभारत में इसे 'वराह' नाम से कहा है। सुवर्ण गिरि का चढ़ाव बहुत लम्बा है। वर्तमान में यहां तीन जैन मन्दिर हैं। इसी पर्वत पर वह कालशिला थी जहां निर्ग्रन्थ साधुओं ने तपश्चर्या की तीव्र वेदना सही थी। इसका उल्लेख चूल-दुक्खक्खंध-सुत्त नामक बौद्धग्रन्थ में है।

(५) 'वैभारगिरि' का नाम सर्वत्र वैभार कहा गया है। हाँ, महाभारत में इसे 'वैहार' लिखा है। यह पर्वत राजगृह के दक्षिण में है और अन्य पर्वतों से अधिक ऐतिहासिक महत्त्व का है। महावीर के ११ गणधर वैभारगिरि से निर्वाण को प्राप्त हुए थे। जिनप्रभसूरि ने अपने 'विविधतीर्थ कल्प' के वैभारगिरि कल्प में इस पर्वत का तीर्थ माहात्म्य लिखा है। यहां पुरातत्व की बहुत सामग्री मिलती है। गरम पानी का सुप्रसिद्ध ब्रह्मकुण्ड तथा दूसरे कुण्ड इसी पर्वत की तलहटीमें हैं। इसलिए हिन्दुओं के कई तीर्थस्थान यहाँ हैं। इसपर दर्शनीय स्थानों में प्रसिद्ध जरासन्ध की बैठक है जिसे बौद्धगन्थों में पिप्पल गुहा लिखा है। इसी पर्वत पर प्रसिद्ध सातपर्णी गुफा है जहां कि भगवान् बुद्ध के बाद बौद्ध भिक्षुओं ने प्रथम बार इकट्ठे हो कर बुद्ध के वचनों का संकलन किया था। इस पर्वत से पावापुरी का जलमन्दिर बड़ा मनोज्ञ दिखाई देता है। यहाँ वर्तमान में जैनियों के चार मन्दिर हैं। वैभारगिरि की दक्षिण तलहटी में सोनभण्डार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम की एक बड़ी गुफा है, जिसे श्रेणिक का स्वर्णभण्डार आदि नामों से कहते हैं। यहाँ जैन पुरातत्त्व की बहुत सामग्री है। सोनभण्डार के पश्चिम का मार्ग जरासंध का अखाड़ा कहा जाता है। वैभारगिरि को जाते दाहिनी ओर करण्डवेणु वन है जहाँ किसी समय बुद्ध विहार था तथा एक स्तूप था।

राजगृह

यह स्थान इस क्षेत्रकी प्रधान नगरी तथा राजधानी था। इसके कई प्राचीन नाम थे जैसे वसुमती, बृहद्रथपुर, गिरिव्रज, कुशाग्रपुर और मगधपुर। नगर, नगरनिर्माणपद्धति का सुन्दर नमूना है। यद्यपि इस नगर को बाहिरी आक्रमणों से बचाने के लिए स्वयं प्रकृति ने पर्वत शृंखला से घेर रखा है फिर भी शोभा के लिए एक मजबूत परकोटा है। पांच पर्वतों से घिरा हुआ होने से कुछ ग्रन्थकार इसे पंचशैलपुर भी कहते हैं। महाराज श्रेणिक ने किन्हीं कारणों वश इस पंच पहाड़ियों से घिरे हुए राजगृह को छोड़ कर उत्तरी प्रवेश द्वार की ओर ५-६ फर्लांग की दूरी पर एक नया राजगृह बसाया। अजातशत्रु ने इसका वैभव बहुत बढ़ाया। पीछे अजातशत्रु ने जब काशी कौशल और विदेह को जीत कर मगधसाम्राज्य का विस्तार किया तब यातायात के साधनों की विशेष सुविधा की दृष्टि से उसके उत्तराधिकारियों ने पाटलिपुत्र को राजधानी बनाया। इस तरह मगध साम्राज्य के विस्तार की योजना इसी प्रदेश में अंकुरित हुई और पीछे फलित हुई। इस नगरी के प्राचीन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक वैभव का जैन बौद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत विस्तार के साथ वर्णन है। यहाँ जैन बौद्ध और ब्राह्मण वादियों के कई अखाड़े थे। बुद्ध भगवान् बुद्धत्व प्राप्ति के पहले यहीं आये थे और यहीं के आचार्य आलार कालाम और उद्दक रामपुत्र के पास समाधि सीखी थी। बुद्ध ने सारनाथ के बाद अपने धर्म का उपदेश क्षेत्र राजगृह और उसके पड़ोस को चुना था। महावीर के उपदेश को समझने वाला प्रथम शिष्य इन्द्रभूति गौतम इसी राजगृह में मिला था। इसी क्षेत्र के प्राणियों को ही महावीर का प्रथम उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस नगर में भगवान् महावीर के १४ चातुर्मास और अनेकों समवशरण हुए थे। राजगृह से भगवान् महावीर का जन्म जन्मान्तरों से संबन्ध था। यहाँ १९ वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के चार कल्याणक हुए थे तथा यह नगर अनेकों महापुरुषोंकी लीलाभूमि और सिद्धि गमनका स्थान रहा है। ब्राह्मणग्रन्थ 'वायुपुराण' में राजगृह-माहात्म्य में इसके हिन्दू तीर्थ होने का वर्णन है। यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहात्म्य के अनेक हिन्दू तीर्थस्थान हैं। जैसे शालग्राम तीर्थ, हंस तीर्थ, पंचनाद तीर्थ, शृष्यशृंगतीर्थ, वानरतीर्थ, वैकुण्ठ तीर्थ, कण्वतीर्थ आदि। पूर्व-काल में यहाँ ५२ कुण्ड होने का उल्लेख है पर अब २२ ही हैं। सबसे अधिक प्रसिद्ध ब्रह्मकुण्ड है। इन कुण्डों के कारण राजगृह बहुत ही स्वास्थ्यप्रद स्थान बन गया है।

नालन्दा और उदन्तपुरी

नालन्दा, राजगृह से उत्तरपश्चिम दिशा में ७ मील दूर पर स्थित है। जैनागमों के अनुसार यह राजगृह का एक उपनगर था जहाँ महावीर ने अपने १४ चातुर्मास बिताये थे। पाली साहित्य में उल्लेख है कि बुद्ध प्रायः नालन्दा आया करते थे तथा 'पावारिक' आम्रकुंज में बैठ अपने शिष्यों को उपदेश दिया करते थे। इस आम्रकुंज में सारिपुत्त—बुद्ध के प्रधान शिष्य—की कुटी थी जहाँ वे लोगों को अपने धर्म में आकर्षित करते और दीक्षा देते थे। इतिहास लेखक तारानाथ के अनुसार अशोक ने नालन्दा में सारिपुत्त की स्मृति के लिए एक विशाल मन्दिर बनवाया था। इसके बाद ई० सन् ४२५ और ६२५ के बीच यह जनता के दान और राज्य संरक्षण में एक अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षाकेन्द्र विश्व-विद्यालय के रूप में उत्कर्ष पर पहुँचा। यहां के शिक्षा केन्द्र की दिगन्तव्यापिनी कीर्ति थी। भारतीय इतिहास के मध्यकाल के प्रारम्भ में नालन्दा विश्वविद्यालय ने मनुष्य को विचारशील और राष्ट्र की रचना शील प्रतिभा के बढ़ाने में बड़ा योग दिया है। ८ वीं से १२ वीं ईस्वी सदी तक नालन्दा के स्थापत्य का जगह जगह बोलबाला था। यहाँ के विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए चीन तथा बृहत्तर भारत से विद्यार्थी आते थे। ब्रह्मचारी विद्यार्थियों के रहने के लिए अनेक छात्रावास बनाए गए थे। एक सुन्दर ग्रन्थागार भी था जिसके विकास के लिए विशेष ध्यान दिया जाता था। वहाँ के अध्यापकों ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की थी। तिब्बत में लामा पंथ का संस्थापक पद्मसम्भव यहीं से तिब्बत गया था। यद्यपि यह शिक्षा केन्द्र महायान सम्प्रदाय द्वारा संचालित था, इस लिए असंग, नागार्जुन वसुबन्धु और दिग्नाग के ग्रन्थ विशेष रूप से पढ़ाए जाते थे पर जैन और ब्राह्मण दर्शनों को पढ़ाने की ओर भी कम ध्यान नहीं दिया जाता था। नालन्दा ने जैन बौद्ध और ब्राह्मण कला तथा संस्कृति के संरक्षण में कोई भेदभाव नहीं रखा इसलिए नालन्दा और तिलरहा की खुदाई और भग्नावशेषों में हिन्दू जैन और बौद्ध कला और आदर्श एक साथ मिले हुए पाये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उदन्तपुरी' नालन्दा से ८ मील उत्तर की ओर है इसे वर्तमान में 'बिहार शरीफ' कहते हैं। उदन्तपुरी के भग्नावशेषों पर आज कल बिहार शरीफ का नालन्दा कालेज अवस्थित है जो कि विहार में ३० वर्ष पुराना कालेज है। यहाँ वज्रयानी बौद्धों का बड़ा भारी विहार था। आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म वस्तुतः वज्रयान या भैरवीचक्र का धर्म था। नालन्दा और उदन्तपुरी इसका गढ़ था। बौद्धधर्म के पतन के बीज इन्हीं स्थानों में अंकुरित हुए थे। सारे भारत मे यहाँ से तंत्र, मंत्र, त्राटक हिप्नाटिज्म की प्रक्रियाएँ यहाँ से फैल रही थीं। इन शताब्दियों में भारतीय जनता तांत्रिकों के चक्कर में पड़ व्यसनी, शराबी और मूढ़विश्वासी बन गई थी। तुर्कों के आक्रमण के एक चपेटे में नालन्दा और उदन्तपुरी के विहार साफ़ हो गये और लोगों का जादू का स्वप्न टूट गया।

पावापुरी

विपुलाचल और उसके पड़ोस में पावापुरी स्थान बड़ा ही मनोज्ञ है। यहां महावीर का निर्माण हुआ था ऐसी जैनसमाज की मान्यता है। पावा तीन मानी जाती है। एक मल्लों की पावा जिसे अपापा भी कहते हैं। यह गोरखपुर जिले में कुशीनगर से ९मील की दूरी पर है। दूसरी भागों की राजधानी। यह मिर्जापुर जिले में है। तीसरी मध्यम पावा है, जिसे वर्तमान पावापुरी कहते हैं। यह मध्य देश की पावापुरी है। यह स्थान बिहारशरीफ से ७ मील तथा राजगृह से ८ मील दूरी पर है। यहां जैनों की बड़ी बड़ी धर्मशालाएँ तथा मन्दिर हैं। एक मन्दिर जिसे महावीर की निर्वाण भूमि पर बना बताते हैं कमलों के एक सरोवर के बीच में हैं। यहां प्रत्येक दीपावली को बड़ा भारी उत्सव होता है।

वर्तमान पावापुरी को महावीर की निर्वाण भूमि मानने में ऐतिहासिकों में मतभेद है। स्व० हर्मन जैकोबी इसी पावा को निर्वाण स्थान मानते हे जबकि कनिंगहम ने पावा को वर्तमान पडरौना (देवरिया जिले में और राहुल सांकृत्यायन ने पपउर (रामकोला स्टेशन के पास) से मिलाने का प्रयत्न किया है। मेरे गुरु डा० राजबली पाण्डेय अपनी खोजों के आधार पर भगवान् की निर्वाणभूमि कुशीनगर से ९ मील दूर पूर्व दक्षिण दिशा में सठियांव फाजिलपुर के अवशेषों को बताते हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में जैन और बौद्ध दोनों साहित्य का आलोडन किया है। उनका कहना हैं कि "वर्तमान पावापुरी में प्राचीन नगर अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मस्थान के कोई अवशेष नहीं मिलते हैं। वर्तमान मन्दिर आधुनिक है। वर्तमान पावा संभवतः चौदहवीं शताब्दी में स्थानान्तरित हुई है। जैन जनता ने प्रारंभ में मुस्लिम आतंक और पीछे अपने अज्ञान के कारण वास्तविक पावा का परित्याग करके नवीन पावा की कल्पना की।" जो भी हो वस्तुस्थिति का पता अवश्य लगाना चाहिये। जैन श्रीमानों, सेठों और मठाधीशों के कारण कई अनेक नये तीर्थों का अपनी कल्पना के आधार पर निर्माण हुआ है। कहीं यहां भी ऐसा न हो।

इस लेख में विपुलाचल और उसके पड़ोस के वर्णन में प्रायः ७, ८ मील की परिधि ली गई है, तथा विहंगमावलोकन के रूप में सामान्य परिचय कराया गया है। इस क्षेत्र की महिमा भारत के हर प्रान्त के प्राचीन संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के कवियों ने गाई है। इसके अतीत गौरव की झाँकी थोड़े शब्दों में यहाँ भी उपस्थित की गई। श्रमण संस्कृति के गौरव केन्द्र को आज की पीढ़ी न भुला सके इसी की याद दिलाने का प्रयत्न मात्र है।

भारतीय ज्ञानपीठ के प्रकाशन

जैनशासन—जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन कराने वाली रचना— मूल्य ३)

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ—ले० डा० जगदीश चन्द्र जैन एम.ए.। चौसठ लौकिक, धार्मिक और ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह— मूल्य ३)

कुन्दकुन्दाचार्य के तीनरत्न—मूललेखक—गोपालदास जीवाभाई पटेल।
अनुवादकः—पं० शोभाचन्द्रजी 'भारिल्ल'। आचार्य कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् ग्रन्थों का संक्षिप्त और सरल भाषा में विवेचन— मूल्य २)

करल क्वण—सामुद्रिक शास्त्र— मूल्य १)

केवलज्ञानप्रश्न चूडामणि—ज्योतिष ग्रन्थ— मूल्य ४)

ज्ञानोदय—[मासिक] वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति— ।।=)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायश्चित्त–

–श्री इन्द्र एम० ए०,

"पिता जी ! सांकल्पिक पितृहत्या का क्या प्रायश्चित्त होता है ?" भारवि ने रुंधे हुए कंठ से पूछा। उसके हृदय में आत्मग्लानि की भयङ्कर ज्वाला धधक रही थी।

"इसका प्रायश्चित्त है छह महीने श्वसुर गृह में निवास।" पिता ने सहज भाव से उत्तर दिया।

भारवि अभी युवावस्था में प्रवेश कर रहा था किन्तु लेखनी में वह प्रौढता थी जो विशाल अनुभव और जीवन समस्याओं के गम्भीर अध्ययन के पश्चात् प्राप्त होती है। उसकी प्रत्येक उक्ति में वृद्धों का सयानापन, गुत्थियों का समाधान तथा अर्थ गाम्भीर्य भरा रहता था। 'भारवेरर्थगौरवम्' प्रत्येक व्यक्ति के मुँह पर बस गया था।

कोई ऐसी काव्यगोष्ठी न होती जहाँ भारवि को निमन्त्रित न किया जाता। उसके बिना सभा छिछली सी प्रतीत होती। अलङ्कार, शब्दाडम्बर, नखशिखवर्णन तथा उक्तिवैचित्र्य की विपुलता रहने पर भी सहृदय हृदयों को काव्य का वास्तविक आनन्द न आता। उन्हें जीवन की व्याख्या न मिलती, वह कठोर आलोचना न मिलती जिसके कहने वाले विरले ही होते हैं और सुनने वाले उस से भी कम। ऐसा प्रतीत होता जैसे भोजन के सभी व्यञ्जन तो मिल गए किन्तु असली तत्व नहीं मिला। भारवि के आते ही सभा में गाम्भीर्य छा जाता। कविता को कामिनी कटाक्षों तक सीमित रखने वाले अपने आप लज्जित हो जाते। अब वह उन कवियों की सभा बन जाती जिन्हें स्वयम्भू तथा पारदृश्वा कहा जाता है। कर्मठ युवक तथा अनुभवी वृद्ध सभी के मन में भारवि के लिए गौरवपूर्ण स्थान था।

किन्तु जब वह घर पर लौटता तो वातावरण सर्वथा विपरीत मिलता। वह अपनी रचनाएँ पिता को सुनाता तो अभिनन्दन के स्थान पर तिरस्कार प्राप्त होता। जिन्हें सुनकर बड़े बड़े साहित्य मर्मज्ञों के मुंह से अपने आप साधुवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल पड़ता था उन्हीं में बीसियों दोष निकल आते । भारवि कुछ हतोत्साह होता किन्तु शीघ्र ही सम्भल जाता । अपनी नई रचनाओं के लिए प्रयत्न करता कि वे दोष दुबारा न आने पावें ।

भारवि के पिता स्वयं एक साहित्य मर्मज्ञ थे । उनके पास साहित्यिकों का जमाव बना ही रहता था । लोग उन्हें पण्डितराज कहते थे । जिस दिन भारवि का कहीं कवितापाठ होता उस दिन पुत्र की सफलता पर बधाई देने वालों का ताँता सा लग जाता । भारवि स्वयं बैठा होता । लोग आकर उसकी रचनाओं की प्रशंसा करते किन्तु पण्डितराज इतनी त्रुटियाँ निकाल कर रख देते कि सारा प्रभाव समाप्त हो जाता । भारवि की समझ में नहीं आता कि पिता इतनी कटु आलोचना क्यों करते हैं । वह मन ही मन खीझ उठता ।

खीझ बढ़ते बढ़ते असह्य हो गई । एक दिन भारवि ने सोचा—ये मेरे पिता नहीं, शत्रु हैं, मेरी कीर्ति के प्रसार में बाधा डालते हैं । इनके मन में ईर्ष्या भरी हुई है । क्यों न इनका अन्त करदूँ । भयङ्कर संकल्प विकल्पों के पश्चात् उसने वह क्रूर निश्चय कर ही लिया । मुख से वेदना टपकती थी और मन में द्वन्द्व मचा हुआ था । भोजन करने बैठा किन्तु एक ग्रास भी गले से नीचे नहीं उतरा।

"आज भारवि बहुत उदास है । उसने भोजन भी नहीं किया ।" भारवि की माँ ने पास ही लेटे हुए पंडितराज से कहा ।

"क्यों क्या कारण है ?"

"आपही तो इसके कारण हैं । आप पण्डितसमाज के सामने उसके दोष निकालते रहते हैं । अभिनन्दन के स्थान पर तिरस्कार करते हैं । बेचारा मन ही मन दुखी हो जाता है ।"

मैं तो उसी के हित के लिए ऐसा करता हूँ । मैं मानता हूँ कि भारवि की तुलना करने वाला कवि इस समय शायद ही कोई हो । किन्तु फिर भी चाहता हूँ, वह अपने को पूर्ण मान कर यहीं न रुक जाय । उसके पास प्रतिभा है, शक्ति है, आयु भी अभी छोटी है । उसे परिश्रम करते रहना चाहिए जिससे उत्तरोत्तर उन्नति होती रहे । उस की कीर्ति से मुझे सब से अधिक प्रसन्नता होती है । मेरी यह जीवन–अभिलाषा है कि वह विश्व का सर्वश्रेष्ठ कवि हो और उसकी कीर्ति दिग्दिगन्त में फैले । क्या मेरा मन उसकी प्रशंसा करना नहीं चाहता । मेरे हृदय में वह लालसा उठती है । किन्तु सोचता हूँ जिस दिन मैं उसकी प्रशंसा कर दूँगा उसका विकास रुक जायगा । मुझे उस सुख से वञ्चित रहना पड़ता है । पण्डितराज ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारवि किवाड़ के पीछे छिपकर बैठा हुआ सारी बातें सुन रहा था। आज उसने अपने क्रूर संकल्प को कार्यरूप में परिणत करने का निश्चय कर लिया था। इसी लिए हाथ में खड्ग लेकर छिपा बैठा था। सोचा था पिता के निद्रामग्न होते ही प्रहार करूंगा।

माता पिता की बातें सुन कर वह सहम गया। उसे मार्मिक आघात लगा। सोचने लगा, पिता का हृदय कितना विमल है, कितना वात्सल्यपूर्ण है। मेरे मन में कैसा जघन्य संकल्प आया, मैं इस का प्रायचित्त करूँगा।

उसी समय बाहर निकल आया और पिता के चरण छुए।

पिता ने उसे छाती से लगा लिया और पूछा "वत्स भारवि! तुम कहाँ गए थे? तुम्हारी माता बड़ी उदास हो रही है। आज कल तुम प्रसन्न क्यों नहीं दिखाई देते?" पिता की आँखों में आँसू छल छला आये।

भारवि शान्त खड़ा रहा। मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला।

कुछ देर की स्तब्धता के बाद उसने धीरे धीरे कहना प्रारम्भ किया।

"पिता जी! मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूँ।"

"पूछो, वत्स! पूछो! इसमें संकोच कैसा?"

"मैं यह जानना चाहता हूँ कि सांकल्पिक पितृहत्या का क्या प्रायश्चित्त होता है?"

पण्डित राज को भारवि के प्रश्न पर आश्चर्य तो हुआ किन्तु उन्होंने विशेष जिज्ञासा में जाना उचित न समझा। सीधा उत्तर दिया—इसका प्रायश्चित्त होता है छह महीने श्वसुर-गृह-निवास।

भारवि ने धीरे धीरे क्रूर संकल्प की सारी बात पिता को कह दी और उसका प्रायश्चित्त करने की अनुज्ञा माँगी।

पण्डितराज ने बहुत समझाया कि बुद्धिमान के लिए पश्चात्ताप ही पर्याप्त होता है। किन्तु भारवि के मन को सन्तोष न हुआ। उसने कहा—
"पिता जी! प्रायश्चित किए बिना मेरे मन से यह शल्य कभी न निकलेगा।"

भारवि ससुराल चला गया। दो चार दिन तो आदर सत्कार हुआ किन्तु शीघ्र ही भार सा प्रतीत होने लगा। सालियाँ और सलजों की ओर से ताने आने लगे। साले उपेक्षा करने लगे। पत्नी का उलहना रोज की चीज हो गई। किन्तु भारवि तो प्रायश्चित्त करना चाहता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकम्मे बैठे रहना अनुचित समझ कर उसने परिवार के कामों में हाथ बँटाना शुरू किया। प्रातः होते ही गौएँ लेकर बाहर चला जाता और सायंकाल गोधूलि के समय लौटता।

घर में यह काम ऐसे व्यक्ति को दिया जाता है जो और किसी काम का न हो। किन्तु भारवि के लिए वही वरदान सिद्ध हुआ। गौएं जंगल में चरती रहतीं और वह वृक्ष की छाया में बैठ कर कविताएँ बनाता। उन्हीं दिनों उस ने किरातार्जुनीय नाम का महाकाव्य लिखना प्रारम्भ किया।

सामने सिर ऊँचा उठा कर खड़े हुए पर्वत, दिव्य संगीत करते हुए जल स्रोत, स्वयं ताप सहकर दूसरों को छाया देने वाले पादप, कलरव करते हुए स्वैर विहारी विहग तथा भयभीत होकर इधर उधर छिपते हुए हिंसक पशु उसे अपना अपना संदेश दे रहे थे। वह देख रहा था कि वर्षा और तूफान में सब प्रकार के आघात सहकर भी जो सिर उठाये खड़ा रहता है, चट्टान का हृदय होने पर भी जो हिमशीतल है वही शीतल, मधुर तथा निर्मल स्रोत बहाकर संसार की तृषा को शान्त कर सकता है। जो प्रचण्ड ताप को अपनी ही शीतल पंखुड़ियों में उलझा कर बाहर नहीं निकलने देता वही आश्रित को शान्ति दे सकता है।

उस ने ताड़ के कुछ पत्ते इकट्ठे किए और लिखना प्रारम्भ किया। इसी प्रकार एक महीना बीत गया।

एक दिन घर लौटा तो देखा कि गृहिणी समर की तैयारी किए बैठी है। उसने कहना प्रारम्भ किया—"तुम यहाँ बैठे हो। कुछ कमाई करके नहीं लाते। मेरी भाभियाँ अच्छे अच्छे कपड़े पहनती हैं। आभूषणों से लदी हुई हैं। मैं एक नौकरानी की तरह पड़ी हुई हूँ। न वस्त्र न आभूषण। इस प्रकार अपमानित होकर मुझसे तो न रहा जायगा।"

भारवि विचार में पड़ गया। स्वयं पराश्रित था। गृहिणी की मांगों को कैसे पूरी करता।

मुद्रणालयों के आविष्कार से जहाँ साहित्य सुलभ हो गया है वहाँ उसका महत्व भी कम हो गया है। उन दिनों एक श्लोक का जितना मूल्य था आज उतना सम्पूर्ण ग्रन्थ का नहीं है। भारवि ने उसी दिन लिखा हुआ एक पत्ता गृहिणी को दे दिया और उसे बेचकर काम चलाने के लिए कहा।

भारवि की पत्नी ने जिस स्त्री को श्लोक बेचा था उसका पति धनमित्र व्यापार के लिए विदेश गया हुआ था। जिस समय उसने प्रस्थान किया, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भवती थी । अब लड़का पन्द्रह वर्ष का हो गया था किन्तु पति का कोई समाचार न था । उस प्रोषितभर्तृका के लिए वही पुत्र एक मात्र सहारा था । माँ उसे अपने साथ ही सुलाती । कभी आँखों से ओझल न होने देती । वह श्लोक उसने अपने शयनागार में टांग दिया ।

विदेश में पर्याप्त सम्पत्ति उपार्जन करके धनमित्र वापिस लौटा । गाँव के पास पहुँच कर पड़ाव डाल दिया । इच्छा थी दूसरे दिन शुभमुहूर्त में प्रवेश किया जाय ।

रात को अकस्मात् धनमित्र के मन में आया—"चलो देखें, घर का क्या हाल है ।"

उसने चुपचाप घर में प्रवेश किया और वहाँ पहुँच गया जहाँ उसकी पत्नी पुत्र के साथ सो रही थी । दीपक मन्द मन्द जल रहा था ।

धनमित्र को पुत्र के विषय में कुछ भी पता न था । पत्नी को एक पुरुष के साथ सोती देखकर क्रोध का ठिकाना न रहा । उसने खड्ग उठाया और एक ही प्रहार से दोनों को समाप्त करना चाहा । किन्तु तलवार दीवार के साथ टकरा गई और वहाँ टंगा हुआ पत्ता खड़खड़ा कर गिर पड़ा ।

धनमित्र ने ताड़पत्र उठाया और उस पर पढ़ा—

'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।'

'किसी काम को बिना सोचे समझें नहीं करना चाहिए । अविवेक विपत्तियों का घर हैं ।'

धनमित्र ठिठक गया । उसने पत्नी को जगाया और साथ सोए हुए पुरुष के लिए पूछा—यह कौन है ?

"यह आप का पुत्र जीवनमित्र है । आप को पता नहीं, जब आप ने प्रस्थान किया था, मैं दो महीने से गर्भवती थी ।"

धनमित्र स्तब्ध रह गया । उस की तनिक सी शीघ्रता कितना अनर्थ कर डालती, यह सोच कर वह काँप उठा ।

दूसरे दिन धनमित्र ने भारवि को बुलाया और अपनी आधी सम्पत्ति उसे दे दी ।

भारवि ने श्लोक पूरा कर दिया—

'वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ।'

'जो विचार करके काम करता है सम्पत्तियाँ गुणों से आकृष्ट हो कर उसे स्वयं वर लेती हैं ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र परिचय

'श्रमण' के मुखपृष्ठ पर जो चित्र दिया गया है वह भगवान् महावीर के जीवन की एक घटना से सम्बन्ध रखता है। अपने साधनाकाल में एक बार महावीर श्रावस्ती की ओर जा रहे थे। मार्ग में चण्डकौशिक नाम का दृष्टिविष सर्प रहता था। उसकी फुंफकार से आसपास का जंगल सूना हो गया था। लोग उधर जाने से डरते थे। महावीर को भी रोका गया किन्तु वे न रुके। चंडकौशिक के बिल के पास ही ध्यान लगाकर खड़े हो गए। सर्प ने क्रुद्ध होकर फुंफकार मारी, सारा वायुमण्डल विषैला हो गया, वृक्ष झुलस गए, पक्षी नीचे गिरने लगे। किन्तु महावीर शान्त होकर खड़े रहे। उनके मुंह से दो ही शब्द निकले—समझो! चण्डकौशिक समझो! सर्प का हृदय बदल गया। उसने अपने सारे जीवन के लिए अहिंसाव्रत ले लिया।

यह घटना श्रमण संस्कृति का निचोड़ है। चण्डकौशिक आसुरी वृत्तियों का प्रतीक है और महावीर दैवीवृत्तियों के। साधारणतया आसुरी वृत्ति का दमन करने के लिए हिंसा को काम में लिया जाता है। यदि शक्ति प्रबल है तो उस से भय होता है और यदि दुर्बल तो उस पर आक्रमण कर दिया जाता है। ये दोनों हिंसा के रूप हैं और इन से प्रतिहिंसा का जन्म होता है। श्रमण संस्कृति के अनुसार आसुरी वृत्तियाँ आत्मा का वैभाविक परिणाम हैं। आत्मा का स्वरूप समझा देने पर वैभाविक परिणाम दूर हो जाता है। महावीर का यह विश्वास था कि साँप में भी वैसी ही आत्मा है जैसी एक मोक्षगामी जीव में। केवल उस सुप्त आत्मा को उद्बुद्ध करने की आवश्यकता है। आसुरी शक्तियों का दमन युद्ध या शस्त्र द्वारा न हो सका और न भविष्य में ऐसी आशा की जा सकती है। उन का दमन नहीं, प्रेम द्वारा शमन करना होगा। भयङ्कर आग को हवा के पेड़े नहीं बुझा सकते, उसके लिए पानी ही चाहिए। व्यक्ति, समाज तथा विश्व—सभी में इस प्रकार का संघर्ष चल रहा है। किन्तु इस निराशा में भी आशा की एक किरण प्रस्फुटित हो रही है। गहन अंधकार में भी चन्द्रमा की शीतल किरणें चमक रही हैं। भयंकर विष से भरे हुए वातावरण में भी अमृत की बूंदें टपक रही हैं।

श्रमण संस्कृति का यह भी विश्वास है कि विष और अमृत व्यक्ति की अपनी देन हैं। व्यक्ति ही विश्व को नरक बनाता है और वही उसे स्वर्ग बना सकता है।

यही चित्र का संक्षिप्त परिचय है।

—इन्द्र एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री तारण स्वामी–

–श्री देवेन्द्र कुमार एम० ए०

मध्ययुग भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक उथल पुथल का युग था। भारतीय दर्शनों की आलोचना से यह स्पष्ट है कि इस देश में राजनैतिक क्रांतियों की अपेक्षा दार्शनिक क्रांतियाँ कम नहीं हुईं। प्रत्येक भारतीय दर्शन का जन्म एक एक नई विचार क्रांति का जन्म है जो पिछली विचार रूढ़ि में से ही अंकुरित हुई। यही कारण है कि जहां यह देश राजनीति में सामंतवाद से ऊपर नहीं उठ सका वहाँ आध्यात्मिक जगत् में उसने मनुष्य को ईश्वर के आसन पर बैठा दिया। जैन, बौद्ध और वेदान्ती सभी–ईश्वर को आत्मा का परम विकास ही मानते हैं। मध्ययुग की यह दार्शनिक क्रांति हृदय के माध्यम से हुई। जिन भारतीय साधकों और संतों ने इस क्रांति को उदीप्त किया—श्री तारण स्वामी उनमें एक थे। वह श्रमण परम्परा के उज्ज्वल रत्न थे, पर उनका मार्ग तर्क और वाद का न होकर—अनुभूति और श्रद्धा का था! अनुभूति हृदय को छूती है और तर्क तथा चिंतन बुद्धि को, इसी अनुभूतिपरक आत्म-साधना को मध्ययुग की भाषा में भक्ति कहते हैं। साधना के क्षेत्र में हृदय द्वारा बुद्धि के इस विरोध का सबसे बड़ा कारण यह था कि उस युग में मानवबुद्धि योग तंत्र और लोकपूजा की उलझन में पड़कर पथरा चुकी थी, स्वस्थ और सात्विक धर्म-साधना की जगह वह विविध विकारों और भेदों का सृजन कर रही थी! फलतः उसके विरुद्ध क्रांति होना स्वाभाविक था। ठीक इसी समय मुसलमानी राज यहाँ स्थापित हो गया। वैसे विदेशीशासन से यह महादेश अपरिचित नहीं था, तो भी यह नया राज उसके लिए अभूतपूर्व था। क्योंकि इसके पीछे इस्लाम के प्रचार की कट्टर भावना थी। उस समय भारतीयतलवार में इतना पानी नहीं था कि वह विदेशियों को खदेड़ देती और न भारतीय आत्मा इतनी सबल और उदार थी कि उन्हें पचा लेती! इस लिए राजनैतिक पराजय के बाद राजनैतिक द्वंद्व तो समाप्त हो गया, पर सांस्कृतिक संघर्ष नहीं मिट सका— इस अभूतपूर्व घटना ने भारतीय साधकों और संतों का मार्ग और भी कंटकाकीर्ण बना दिया। अब उन्हें केवल प्राचीन रूढ़ियों को उखाड़ कर लुप्तप्रायः भारतीय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक चेतना को ही स्वच्छ और वेगशील नहीं बनाना था प्रत्युत नये धर्म के उन्माद और कुसंस्कारों को भी माँज कर मानव मिलन की सुधारक भूमि तैयार करना था। शायद कबीर ऐसे सबसे पहले सांस्कृतिक किसान थे जिन्होंने एकता के बीजवपन के लिए सांस्कृतिक भूमि जोतने का साहसपूर्ण प्रयत्न किया, पर उससे यह समझ लेना भ्रम है कि मुसलमानी राज के कारण मध्ययुग में भारतीय साधना का यह रूप बदला। प्रत्युत–मुसलमान न भी आते तो भी भारतीय धर्म साधना का स्वरूप ८० फीसदी यही होता। वस्तुतः उस में विदेशी राज की उतनी प्रतिक्रया नहीं है जितनी कि पुरानी धार्मिक रुढ़ियों और सांस्कृतिकजड़ता की। भारतीय भक्ति के उद्गम के पहले भारतीय जीवन पर शंकर के अद्वैत दर्शन की छाप पड़ चुकी थी, उससे सामाजिक नीच ऊँच की भावना और मजबूत हो उठी, दूसरी ओर वाममार्गियों की रहस्य और तंत्र साधना सामाजिक जीवन के खोखला बनाने में लगी थी। सुधारवादी जैन बौद्ध भी लोक पूजा और सकाम उपासना में बुरी तरह उलझे थे श्रावकों में न पुरानी सांस्कृतिक उदारता थी और न शुद्ध वीतराग की उपासना। अड़तालीस तालों को विघटित करने वाली आचार्य मानतुंग की भक्ति और विषापहार स्तोत्र की हिमानी शक्ति उन्हें जितना चमत्कृत कर रही थी उतना महावीर का साधु जीवन और सरल आत्मसाधना नहीं।

इस लिए श्रमण संस्कृति भी युगक्रांति से एक दम अछूती नहीं रह सकती थी। मध्यप्रदेश और मध्यभारत के कुछ प्रदेशों में इस क्रांति के अगुआ श्री तारण स्वामी थे। उनके जीवन के विषय में अभी तक इतना ही ज्ञात है कि उनका जन्म १५ वीं सदी के अंतिम चरण में हुआ था। उन्हें दीर्घ जीवन मिला था पर उनका अधिकांश समय अध्यात्म साधना में बीता। उनके पिता का नाम गढ़ाशाह और माता का वीरश्री बताया जाता है। उनकी पवित्र स्मृति में वेतवा के किनारे एक सुंदर स्मारक खड़ा है। वेतवा की चंचल लहरें निरन्तर उसका अभिषेक करती रहती हैं। स्वामी जी आध्यात्मिक साधक होते हुए भी लोक जीवन के बहुत निकट थे। इतना ही नहीं उन्होंने लोक के कुचले हुए अंगों को स्वस्थ और उन्नत बनाने का प्रयत्न किया। ऐसे लोक पुरुष के जीवन के अनेक मीठे कड़वे संस्मरण होंगे– पर उन्हें हमारे प्रमाद ने काल के प्रवाह में बहा दिया। किन्तु महापुरुषों का महत्व उनकी जीवन घटनाओं में उतना नहीं जितना उनको संचालित करने वाली उनकी आत्मशक्ति में होता है। और उनकी यह आत्मशक्ति उनकी रचनाओं में भली भाँति प्राप्त है। स्वामी जी के कुल १४ ग्रन्थ मिलते हैं। उनके समूचे साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है, एक में शास्त्रीयज्ञान और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार विचार की विवेचना है और दूसरे में शुद्ध आत्मानुभति की झलक । इसकी भाषा अधिक सरल और लोकगम्य है । ममल पाहुड़ तथा अन्य अप्रकाशित चार ग्रन्थ इसी प्रकार की कृतियाँ हैं। स्वामी जी ने मूर्तिपूजा का विरोध किया है, पर उसमें खंडन मंडन का भाव बहुत कम है। उनका अविरोध ही उनका विरोध है और उनकी सहिष्णुता ही उनकी असहिष्णुता है। जैनधर्म व्यक्तिपरक है इस लिए उपासना में एकाकी रहता है, पर स्वामी जी ने कहीं कहीं सामूहिक उपासना का चित्र खींचा है, ठीक इसी प्रकार संत साहित्य का प्रतीकवाद रहस्य भावना स्वामी जी में मिलती है पर इन्हें उन्होंने अपनी दार्शनिक परम्परा के अनुसार ग्रहण किया है, इस लिए उनकी आत्मानुभूति में न सूफियों की मूर्छना है, न कबीर का अक्खड़पन और न तुलसी का दैन्य। उनके कथन में चाहे रहस्य हो पर उनका लक्ष्य रहस्यमय नहीं है । क्योंकि आत्मा ही उनका प्रियतम है। वह किसी अज्ञात के लोक में नहीं है, इस लिए उसकी खोज में स्वामी जी ने न तो अपने जिगर के टुकड़े किए और न यमुनातट पर रासलीला की रहस्यमयी योजना ही की। वहाँ आत्मा ही आत्मा का सहायक है "हंसा हियरमन सहाई रे" ।

आत्मा रूपी हँस अपने आप में रमण करता है । शुद्धानुभूति ही तारणतरण है, यही प्रकाशमान जहाज है जहां ज्ञान का दिशा सूचक यंत्र चमक रहा है । यही आत्मानुभूति जब अनंतज्ञान में ढल जाती है तो आत्मारूपी सहस्र कमल की पंखुड़ियाँ खुल जाती हैं ।

कबीर के प्रियतम जब आते हैं तो इंद्रियाँ दुलहिन बनकर गीत गाने लगती हैं, और कबीर पाँच तत्त्वों को बराती बनाकर—प्रिय का स्वागत करते हैं, और इसप्रकार अविनाशी ब्रह्म से उनका ब्याह हो जाता है ।

"दुलहिनी गावहु मङ्गलचार, हम घर आए राजा राम भरतार ।"

सचमुच यह कबीर के लिए गौने का दिन है, पर तारणस्वामी आत्मानुभूति के वर्णन में कहते हैं कि मुझे शुद्धानुभूति से मिलने का सन्देश आया है, यही आत्मा ध्रुवकलश और चन्द्रशाला है जहाँ शुद्ध अनुभूति क्रीड़ा कर रही है ।

शुद्ध परिणति ही पाडुंकशिला है । वहाँ न दृश्य है और न दृष्टा । न उपासक है और न उपास्य । आत्मा ही सिद्धशय्या पर शुद्धानुभूति रूपी जिनवर से मिलने के लिए मचल रही है । आत्मा के सूक्ष्म प्रदेश ही उसका सिंहासन है, कबीर ने भी ऐसे महल की कल्पना की है—

नैनों की करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारिकै, पिया को लिया रिझाय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार उन्होंने शरीर के महल में प्रियतम को रिझा लिया, पर तारण-स्वामीने शरीरको भी छोड़ दिया और आत्म प्रदेशों में ही महल की कल्पना की।

संत साधना में पतिपत्नीभाव से ईश्वर की उपासना की जाती है। कबीर अपने को लक्ष करके कहते हैं—

दुलहिन तोहि पिया के घर जाना ?
काहे को रोवे काहे को धोवे
काहे को करत बहाना ?

तारण स्वामी ने भी साधक की आत्मा के लिए प्रिय के घर—ससुराल की कल्पना की है। भेद केवल यह है कि कबीर का प्रिय ब्रह्म है और स्वामी जी का शुद्धात्मानुभूति है।

उनके नाममाला और छद्मस्थ वाणी ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि मनुष्य मात्र को आध्यात्मिकसाधना का मार्ग खोल दिया था। उनका आध्यात्मिक पंथ ऊंची जात वालों के लिए ही नहीं था—और हजारों की संख्या में हिन्दू मुसलमान तथा अन्य नीची जातियों के लोग उनके शिष्य बने। और उनकी समाधि के आसपास उनके हिन्दू मुस्लिम शिष्यों के स्मारक भी बने हुए हैं—वस्तुतः उनका स्मारक स्मारकों का संगमतीर्थ है।

स्वामी जी की कृतियों में भक्ति का पुट अवश्य है। पर उन्होंने भक्ति को चितशुद्धि का साधन भर माना है। सूर्योदय के पहले अरुणिमा जिस प्रकार आकाश को गुलाबी आभा से भर देती है, पर पूर्ण प्रकाश फैलने पर उसका अस्तित्व नहीं रहता, उसी प्रकार पूर्ण ज्ञानोदय के बाद भक्ति का अनुराग भी विलीन हो जाता है। तारणस्वामी ने भक्ति को इसी रूप में स्वीकार किया है—आध्यात्मिक जीवन की तरह गृहस्थ जीवन में भी स्वामी जी ने नीच ऊंच का भेद स्वीकार नहीं किया—अनेक नीच लोग उनके पंथ में दीक्षित होकर नये गृहस्थ बने, तारणसमाज में उन्हें भी समानता का पद मिला। उनके असाधरण व्यक्तित्व का अनुमान इतने से ही लग जाता है। और इसमें सन्देह नहीं कि यदि उनका जीवन और साहित्य जनता के सामने आएँ—तो उससे कितनी ही नई बातों पर प्रकाश पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्सानियत के उत्तरदायित्वपूर्ण उसूल

श्री जेठमल बोथरा

इन्सान का दर्जा बहुत ऊँचा दर्जा है । ऊँचा दर्जा बहुत लम्बे अर्से की साधना के बाद हासिल हुआ करता है, तभी तो उसका इतना मोल और इतनी इज्जत होती है ।

दर्जा जितना उच्च होता है, उसकी जिम्मेदारी भी उतनी ही उच्च होती है। एक बालक को जिम्मेदारी उतनी नहीं होती, जितनी कि एक बड़े आदमी की। बालक का दर्जा अभी छोटा है, अत: उसकी जिम्मेदारी भी छोटी है । मनुष्य का दर्जा बड़ा है अत: उसकी जिम्मेदारी भी बड़ी है । मूल बात यह है कि दर्जा जितना बड़ा होगा उसकी जिम्मेदारी भी उतनी ही बड़ी होगी । पशुओं का दर्जा छोटा होता है, चुनांचे उनका उत्तरदायित्व भी बहुत हल्का होता है। मनुष्य की तरह उन्हें अपने कुटुम्ब के भरण पोषण के लिए दिल तोड़ कोशिश करने की जरूरत नहीं होती, और न कोई आर्थिक व सामाजिक लगाव ही उनकी स्वतन्त्र प्रकृति में बाधा डालता है ।

अपने ऊँचे दर्जे के कारण मनुष्य का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है । राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक और शारीरिक जिम्मेदारियां उठाने के लिए मनुष्य को हर वक्त, हर समय अपने आप को तैयार रखना पड़ता है । स्वास्थ्य को ठीक रखने की चिन्ता सबको रहती है, कुटुम्ब के आश्रितों के पालनार्थ आर्थिक व्यवस्था के लिए दिन-रात अपने आप को खपाना पड़ा है, सामाजिक मान प्रतिष्ठा के लिए कई प्रकार के स्वांग रचने पड़ते हैं । जिन्दगी में कितने ही उतार चढ़ाव आते हैं, समय की कितनी ही थपेड़ें सहनी पड़ती हैं इसे, पर अडिग, अचल अपने सामने के रास्ते को पार करते हुए इसे जाना पड़ता है अपनी मंजिल की ओर ! क्या यह उत्तरदायित्व छोटा है ? जितना बड़ा दर्जा हैं, उतनी ही बड़ी जिम्मेदारियां हैं इसके सामने । इन सारी जिम्मेदारियों का पुलिन्दा मनुष्य को ले जाना पड़ता है अपने साथ, जहाँ कहीं भी जाता है देश-विदेश में । इस प्रकार की अनेकों जिम्मेदारियाँ अपने ऊपर उठा लेने के पश्चात् कोई मनुष्य एक नागरिक कहलाने का अधिकारी होता है । यदि इन जिम्मेदारियों को उठाने में मनुष्य उदासीनता दिखलाता है, विमुख होता है और आना कानी करता है तो नासमझ, बेवकूफ और बे ऐतबार समझा जाता है, दुनिया उसे एक ऐसी नजर से देखने लगती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें सन्देह की अधिकता रहती है। अपनी जिम्मेदारियों को अपने कंधे पर न उठाना मनुष्य के लिए सचमुच एक बहुत बड़ा अपराध और कलंक की कालिमा है। मानव समाज को पतन के रास्ते ले जाने वाली ऐसी घिनौनी आत्माएँ वास्तव में घृणास्पद समझी ही जानी चाहिएँ।

उपरोक्त जिम्मेदारियों के अलावा मनुष्य के ऊपर एक और बहुत बड़ी जिम्मेदारी ह। इसी जिम्मेदारी के कारण असभ्य जातियों में गिना जाने वाला आदमी 'मनुष्य' कहलाने लगा था। यदि मनुष्य ने आज तक उस जिम्मेदारी को अपने कंधे पर वहन करने की प्रतिज्ञा न की होती, तो आज भी मनुष्य आंख कान, नाक, मुंह वाला बन्दर या ऐसा ही कोई और जानवर पुकारा जाता। पशु कहे जाने वाले को मनुष्य का दर्जा दिलाने वाले इस उत्तरदायित्व का नाम आध्यात्मिक उत्तरदायित्व है। मनुष्य के ऊपर यह सबसे बड़ी जिम्मेदारी है, जिसे कंधे पर उठाने से आत्मा अपनें आत्म-सम्मान की रक्षा स्वयं करने में समर्थ हो सकती है।

सांसारिक उत्तरदायित्वों का भार वहन करने से सांसारिक-प्रतिष्ठा में चार चाँद लगते हैं, अतः मनुष्य इसके लिए प्रायः सचेत ही रहते हैं। स्वास्थ्य रक्षा के लिहाज से कड़ी से कड़ी औषधि का सेवन किया जाता है, धनोपार्जन के लिए बड़े से बड़ा संघर्ष करना पड़ता है, मानसिक विचार-धारा को ठीक रास्ते पर लगाने के लिए आराम को छोड़ कर चित्त को एकाग्रता, मनन और चिन्तन में लगाया जाता है, सामाजिक प्रतिष्ठा और इज्जत को कायम रखने के लिए संगठित होना पड़ता है, गिरोह बनाना पड़ता है, और कभी कभी तो सामूहिक स्वार्थ-पूर्ति के लिए अपने व्यक्तिगत-स्वार्तों को छोड़ना भी आवश्यक हो जाता है। मनुष्य को करना पड़ता है यह सब कुछ; चूंकि इसके बिना इसके सामाजिक-जीवन पर बहुत बुरा, बदबूदार असर पड़ता है। मनुष्य यह सब उत्तरदायित्व निभाता है, पर इसे अपने उस सबसे बड़े आध्यात्मिक उत्तरदायित्व को नहीं भूल जाना चाहिए जिसने उसे 'मनुष्य' का पद दिला रक्खा है। इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए भी कड़ी से कड़ी मेहनत की आवश्यकता होती है, बड़े से बड़ा बलिदान करना पड़ता है।

इन्द्रियों का दमन, अपने स्वार्थों पर अंकुश और दीन भावनाओं का त्याग आध्यात्मिक उत्तरदायित्व के निभाने में शुमार हैं।

आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए उन मर्यादाओं का ध्यान रखना होता है जिससे अपने व्यक्तित्व की सचाई, ईमानदारी और गौरवशालीनता पर आँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न आने पावे। बात का धनी, अपने विश्वास के प्रति वफादार और वचन का सच्चा और खरा आदमी जबर्दस्त कुरबानी कर सकता है समय आने पर। हमारे मुल्क में ऐसी कुरबानियाँ एक दो नहीं, अनेकों हुई हैं। श्री रामचन्द्र जी चाहते तो अयोध्या का राज-पाट अपने हाथ में ले सकते थे, राजा हरिश्चन्द्र चाहता तो विश्वामित्र से अपना वचन मुकर सकता था, हकीकतराय आज के राजनैतिक दांवपेच को अपना कर अपने प्राणों की रक्षा कर सकता था। ईसा का क्रूस पर चढ़ना, राणाप्रताप का घास की रोटी खाकर जंगलों में मारे मारे फिरना, वह सब रुक सकता था यदि वे अपनी प्रतिज्ञा छोड़ देते, विरोधियों के सामने जरा सा झुक जाते; पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। विश्वास की रक्षा करना उनके लिए प्राण रक्षा से बहुत अधिक मूल्यवान था। प्राणों को तिनके के समान तोड़ कर फेंकने वाले ये जाज्वल्यमान उदाहरण इस बात का पता देते हैं कि हमारी संस्कृति का नैतिक धरातल आत्म सम्मान की रक्षा को सर्वोपरि महत्व देता है।

आज के इस सभ्य-युग का मनुष्य इस नैतिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व को करीब करीब भुला चुका है। हिन्दुस्तान की जन संस्कृति जिसे पनपाने के लिए करोड़ों हाथ ऊँचे उठे, आज रसातल की ओर जा रही है। बात-बात में झूठ बोलने वाले, वचन से मुकर जाने वाले, समाज के धूर्त मक्कार, बेईमान, व्यभिचारी, खुशामदी, चापलूस और अन्यायी लोगों की संख्या का अनुपात समाज में दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। इन्सानियत को लोग पैसे से नापते हैं, मनुष्य की इज्जत का मोल पैसे से चुकाया जाता है। समाज में उन लोगों का बोलबाला है जो धूर्तता से इधर उधर भीड़ा भिड़ कर अपना काम बना लेते हैं। इन्सानियत के उसूलों को अपनाकर चलने वालों को आज कौन पूछता है? समाज में दर-दर ठोकरें खानी पड़ती हैं ऐसे लोगों को! आत्मिक-पतन की यह दुखदायी घड़ी मनुष्य के लिए अभिशाप बन कर आई है।

हमारे देश में कुछ समय पूर्व लोक मूँछ का बाल किसी के यहां गिरवी रख कर जाते थे और उसे छुड़ाने की जी–जान से कोशिश करते थे। कई लोग ऐसे भी थे जो कर्ज लेंने वाले से कोई चीज गिरवी न लेते थे और न किसी प्रकार की लिखा पढ़ी ही होती थी। सिर्फ इस बात पर कर्ज दिया जाता था कि इस जन्म में कर्ज न चुका सको तो अगले जन्म में मय-ब्याज के कर्ज चुका देना। इस प्रतिज्ञा के साथ कर्ज लेने वाला निश्चय ही इसी जन्म में कर्ज चुका देता, किसी कारण से यदि वह न चुका पाया तो उसके वंशज मय ब्याज के कर्जदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कर्ज चुका देते थे। आज तो २०) रुपये के स्टांप पर लिखी हुई लिखापढ़ी भी रद्दी करार कर दी जाती है। जुबानी जमा खर्च इस स्थिति में कहां तक रहेगा, हमारी समझ में नहीं आता।

हमारा मुल्क जिस उत्तरदायित्व को निभाने के कारण गौरवमय गिना जाता है, उसका गौरव दिन पर दिन घटता चला जा रहा है। जिधर आँख उठाकर देखिये उधर वंचकता फैल रही है। दुष्ट आदमी अपना उल्लू सीधा करने में लगे हैं, सच्चे और खरे आदमी पग-पग पर ठोकरें खाते हैं। समाज का नैतिक धरातल कतई गायब होता जा रहा है। मनुष्यता का मूल्य, आत्म गौरव की रक्षा और बलिदान की भावनाएँ कहीं भी दिखाई नहीं देतीं। इन्सानियत की जलती हुई शमा क्रूर हाथों से बुझा दी गई है और कूटनीति का नक्कारा चारों ओर अपने उच्च-घोष के साथ बज रहा है।

निरपराध व्यक्तियों को मौत की घाट उतारा जा रहा है। एसिडों से गाँव के गाँव ध्वंस किये जा रहे हैं। मां-बहिनों की अस्मतें बात की बात में लूट ली जाती हैं। हमारे मुल्क में भी ऐसी चीजें सरे-बाजार हुई हैं और हो रही हैं। युद्ध पहले भी होते थे, व्यभिचारी आदमी पहले भी थे, पर इस प्रकार का नैतिक पतन तो उनका नहीं हुआ था। शिवाजीने शत्रु की बेटी को अपनी बेटी कहकर उसके सतीत्व की रक्षा करते हुए उसके घर लौटा दी थी, रावण जैसे मनोवृत्ति के आदमी ने भी सीता के सतीत्व पर बलात्कार नहीं किया। महाभारत के समय विराम काल में पूरा संयम बर्ता जाता था। पर आज प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता के नाम पर जो कुछ हो रहा है, उससे शैतान का सिर भी शर्म से झुक जाता है।

हिन्दुस्तान के वाशिन्दों को अपने ठंडे दिल-दिमाग से आज कुछ सोचने की आवश्यकता है। अपनी विश्व-मान्य इज्जत को पशु बन कर लुटा देना, इन्सानियत के फर्ज के प्रति गुनाह है, हमें इसे सोचते-समझते बढ़ना हैं। मुल्क के निवासियो! अपनी अमूल्य महानता को इस प्रकार कौड़ियों के मोल बेचना बन्द करो! आत्मिक उत्तरदायित्व का भार वहन करो, इन्सानियत के गौरव को इतना बदनाम मत करो! इन्सानियत की जिम्मेदारी बहुत बड़ी है उसे इस प्रकार तिलाञ्जलि देना ठीक नहीं। विश्व के प्रत्येक इन्सान को मिल कर आज ऐसा काम करना है जो इन्सानियत के झंडे को ऊँचा उठा कर आगे बढ़ सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सत्कार—

श्रमण-सूत्र—

लेखक—उपाध्याय अमर मुनि ।

प्रकाशक—श्री सन्मति ज्ञानपीठ आगरा ।

मूल्य—साढ़े पाँच रुपये ।

आजकल जैन संस्कृति के साहित्य की अभिवृद्धि के लिए जितने प्रयत्न हो रहे हैं उनमें उपाध्याय श्री अमर मुनि का भी प्रमुख हाथ है। जैन श्रमणों के इस साहित्य-प्रेम और अभिरुचि के फलस्वरूप प्राचीन काल में साहित्य का जिस परिमाण में निर्माण हुआ है उसकी तुलना में आज का जैन साहित्य नहीं के बराबर है। जिस प्रकार मानव-जीवन के अन्य क्षेत्रों में समय के अनुसार प्रगति होती रहती है, उसी प्रकार साहित्य का क्षेत्र भी प्रगति चाहता है। जिस संस्कृति का साहित्य क्षेत्र जितना प्रगतिशील होता है वह संस्कृति उतनी ही वृद्धि कर सकती है। प्राचीन परम्परा के बहुमूल्य सिद्धान्तों का नवीनकरण उतना ही आवश्यक है जितना कि पुराने बर्तनों व वस्त्रों का शोधन। जो सिद्धान्त नये ढंग से समाज के सामने नहीं आते वे पड़े पड़े स्वत: समाप्त हो जाते हैं।

श्रमण सूत्र की रचना इसी कमी की पूर्ति की ओर एक सफल प्रयास है। श्रावक प्रतिक्रमण का एक सच्चे श्रावक के लिए जितना मूल्य है, एक सच्चे श्रमण के लिए श्रमण सूत्र का उतना ही महत्त्व है। उपाध्याय जी ने श्रमण-सूत्र की विस्तृत व्याख्या करते हुए अच्छी तरह से प्रतिपादन किया है कि श्रमण के जीवन का वास्तविक रूप क्या है? श्रमण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए मुनि जी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि श्रमण का आधार श्रम, सम और शम है। परिश्रम, समानता और शान्ति ही श्रमण के जीवन के बीज वाक्य हैं। जो श्रमण परिश्रम से दूर भागता है, समानता के स्थान पर भेदभाव का आश्रय लेता है और शान्ति को एक ओर रख कर व्यर्थ का कलह किया करता है वह श्रमणाभास होता है-श्रमण संस्कृति के लिए कलंकरूप होता है। श्रमण-सूत्र श्रमण-संस्था के वास्तविक रूप को पुनः प्रकाशित करे, यही कामना है।

संगीतिका

गीतकार—उपाध्याय श्री अमर मुनि "कविरत्न"

स्वरकार—पं० विश्वम्भर नाथ भट्ट एम० ए०, एल० एल० बी०, संगीत विशारद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, लोहा मन्डी आगरा

मूल्य—राज संस्करण, पांच रुपया; साधारण संस्करण, तीन रुपया।

पृष्ठ सं० २२९

मानव का कला के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस के हृदय में कला के प्रति सच्चा राग नहीं वह मानव शब्द से सम्बधित नहीं किया जा सकता। संगीत भी उसी कला का एक रूप है। भारत में जिस ढंग से अन्य कलाओं का विकास हुआ है, उसी प्रकार से संगीत कला भी विकसित हुई है। संगीत का आधार कविता है। जहाँ पर काव्य और संगीत दोनों का आश्रय एक ही व्यक्ति होता है वहां संगीत का जितना रस मिलता है उतना दोनों के भिन्न भिन्न आश्रयों में नहीं मिल सकता। यह भी सत्य है कि कवि हृदय सहज ही संगीत प्रिय होता है। जगत् में शायद ही ऐसा कोई अभागा कवि होगा जिसका हृदर स्वाभाविक ही संगीत प्रिय न हो। कवि का पूर्ण रूप काव्य और संगीत का संगमस्थल है। उपाध्याय श्री अमर मुनि एक सफल कवि हैं और सफल कवि संगीत प्रेमी होता ही है। प्रस्तुत पुस्तक उपाध्याय जी के इसी स्वरूप का दर्शन कराती है। सांस्कृतिक गीतों का आधार लेकर संगीत-शास्त्र का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करने वाली जैन समाज में इस ढंग की यह सर्व प्रथम पुस्तक है। एक जैन-श्रमण की संगीत-शास्त्र के निर्माण में इस ढंग की प्रेरणा हमारा ध्यान विशेषरूप से आकर्षित करती है। कला के रक्षण व निर्माण में जैन श्रमणों का यह सहयोग अभिनन्दनीय है। आत्म-स्वरूप के साथ ही साथ कला के स्वरूप का ज्ञान भी आवश्यक है। कला-हीन जीवन नीरस होता है और नीरस जीवन को मृत्यु से भिन्न नहीं किया जा सकता। पुस्तक के प्रकाशन में बहुत उदारता दिखाई गई है। संगीत की परिपाटी का पूर्ण रूप से पालन किया गया है। चित्र इत्यादि का यथा स्थल प्रकाशन हुआ है। सन्मति ज्ञान पीठ सरीखी संस्था ने इस ढंग का एक नवीन प्रयास किया है जो कि हमारे समाज की संस्थाओं की परंपरा से सर्वथा भिन्न है। इस प्रयास का हम विशेष रूप से स्वागत करते हैं।

मोहन लाल मेहता बी० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्यकालक और 'हंस-मयूर'

पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री

शायद ही कोई ऐसा जैन होगा जिस ने आचार्य प्रवर श्री आर्यकालक का पुनीत नाम न सुना हो। सातवीं शताब्दी से ले १७ वीं शताब्दी तक ३६ भिन्न भिन्न विद्वानों ने उनकी गौरव गाथा का गान किया है। उन्हों ने समस्त संसार के सामने एक अनुपम आदर्श रखा। आज से दो हजार वर्ष पूर्व उन्हों ने अपने उदाहरण से सिद्ध कर दिया कि चारित्र और शील मानव के सांस्कृतिक जीवन की आधार शिला है और उस की रक्षा के लिए संसार त्यागी साधु को भी समय आने पर हर संभव प्रयत्न करने से लेश मात्र संकोच न करना चाहिए। उज्जयन के कामांध लंपट राजा गर्दभिल्ल ने आर्यकालक की छोटी बहिन साध्वी सरस्वती पर पैशाचिक दृष्टि डाली और उसे बलात् अपने अन्तः पुर में ले गया। विषय वासना के नशे में चूर गर्दभिल्ल को आर्यकालक, श्री संघ, पुरोहित, मंत्री आदि सब ने समझाया मगर उस नर पिशाच ने लोकलज्जा, राजकर्त्तव्य, सामाजिक-मर्यादा, नैतिकता तथा शिष्टता को तिलांजलि दे एक शीलरत्ना साध्वी को अपनी कुत्सित क्रीड़ा का शिकार बना ही डाला। आर्यकालक इस घोर अन्याय को सह न सके। और कोई सहायता न मिलने पर वे सिंधु सौवीर गए और शकों की मदद से गर्दभिल्ल को पराजित किया। गर्दभिल्ल को देशनिकाला दिया गया। और वह पश्चाताप के दुःख से पीड़ित हो इधर उधर घूमता रहा। अंत में एक शेर ने उसे मार डाला। आर्यकालक ने साध्वी सरस्वती को पुनः संयम में स्थापित किया और स्वयं भी आलोचना प्रतिक्रमण किया।

कुछ समय से कतिपय भारतीय लेखक ऐतिहासिक घटनाओं तथा परिस्थितियों की उपेक्षा कर पक्षपात पूर्व हृदय से आर्यकालक को देश द्रोही कहने लगे। श्री वृंदावन लालवर्मा ने अपने नाटक 'हंस मयूर' में तो सब सीमाओं को पार कर अद्भुत चमत्कार दिखाया है। हिन्दी साहित्य के इस महारथी (?) ने साध्वी सरस्वती को गृहस्थिनी सुनन्दा बनाया है और यह दिखाया है कि वह गर्दभिल्ल के प्रेम के पीछे पागल हो रही है। स्वतंत्र भारत के संविधान में विचार-अभिव्यक्ति की जो स्वतंत्रता मिली है, उसका यह सदुपयोग! लेखक महाशय भूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याश्रम-समाचार

पंजाब का दौरा

श्रीपार्श्वनाथ विद्याश्रम बनारस का कार्य क्षेत्र ज्यों ज्यों बढ़ता जा रहा है, त्यों त्यों खर्च में भी वृद्धि हो रही है। पहले तो जैन दर्शन शास्त्री व आचार्य आदि के विद्यार्थियों के लिए ही छात्र वृत्ति आदि की व्यवस्था थी। सन् १९४८ से रिसर्च का काम भी शुरू हो गया है। आज चार विद्वान जैनधर्म विषयक खोज के काम में लगे हुए हैं, जो पी. एच. डी. के लिए अलग अलग विषयों पर महानिबन्ध तैयार करेंगे। एक वर्ष से 'श्रमण' मासिक पत्र भी शुरू हो चुका है। कई तरह के काम चालू होने से खर्च का बढ़ जाना भी स्वाभाविक है। इस साल संस्था का वार्षिक बजट १९ हजार तक पहुंच चुका है।

गए कि एक भारतीय चारित्र व आत्मा की रक्षा के सामने समस्त संसार को हेय समझता है। चारित्र व शील उस की सर्वश्रेष्ठ संपत्ति है जिस की वह हर कीमत पर रक्षा करेगा। क्या वर्मा जी विभीषण को भी देश द्रोही कहेंगे? क्या वे यह भूल गए कि राष्ट्र की आज जो भावना है, वह उस समय न थी? आज भी राष्ट्र की व्याख्या बदलती रहती है। पूर्वी बंगाल के हिन्दू हमारे लिए विदेशी हो गए हैं। कल हमारे ही अंग थे। फिर शक तो उस ससय भारत में बस चुके थे।

गुजराती के सिद्धहस्त लेखक जयभिक्खु जी नें इस नाटक की विस्तृत आलोचना की है। यह नाटक यू० पी० बोर्ड ने इण्टर की परिक्षा के पाठ्यक्रम में नियत किया है। जयभिक्खु जी के शब्दों में यह 'ऐतिहासिक विकृति और सांप्रदायिक द्वेष से भरा हुआ है।' ओसवाल महासम्मेलन की बनारस शाखा ने प्रस्ताव पास किया है कि इसे पाठ्यक्रम से हटाया जाए। हम पाठकों व सहयोगियों से निवेदन करते हैं कि वे भी इस विषय में आन्दोलन करें और अपनी आवाज यू० पी० के प्रधान मंत्री, शिक्षा मंत्री तथा बोर्ड के मंत्री तक पहुँचाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले के कई सालों तक संस्था का सारा खर्च पंजाब से ही पूरा हो जाता था। दो साल से बम्बई जाना पड़ा। बम्बई के श्री जैन संघ ने अच्छी सहायता पहुंचा कर हमारा बड़ा उत्साह बढ़ाया। इस वर्ष हमें फिर अपने घर की याद आई। हमने बड़े संकोच के साथ १९ अक्तूबर से पंजाब का दौरा शुरू किया। संकोच इसलिए हो रहा था कि—जो पंजाब हरतरह से नष्टभ्रष्ट हो चुका है, जो स्वयं दूसरों की सहायता का पात्र है उसी से एक संस्था के लिए कैसे सहायता मांगी जा सकेगी। हमारे ११-१२ दिन के छोटे से दौरे ने सिद्ध कर दिया है कि पंजाब हमेशा बीर रहा है और आज भी एक वीर की तरह वह कठिनाइओं को झेलता हुआ कुछ कर सकने का दम रखता है। इस बात को देख कर तो हम गद्गद हुए बिना नहीं रह सके कि—जो भाई पश्चिमी पंजाब से उखड़ कर आए हैं उन्हों ने भी हमारी सहायता की है। कुछ भाई तो ३०) रु० वार्षिक के मेंबर भी बने हैं। अस्तु, इस दौरे में ला० त्रिभुवननाथजी, प्रेसिडेण्ट; ला० हरजसरायजी जैन, मंत्री; ला० मुन्नीलालजी जैन, खजानची—श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति के कार्यकर्ता और पं० कृष्णचन्द्रजी, अधिष्ठाता—श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम बनारस—शामिल थे। इनके अलावा अमृतसर निवासी ला० पन्नालालजी व ला० रामलालजी आदि ने भी सहयोग दिया। नीचे लिखे शहरों से ३०) रु० वार्षिक के मेम्बर इस प्रकार बने हैं—

जालन्धर शहर से १०, होशियारपुर से १७, बंगा से ९, लुधियाना से १६, मालेर कोटला से ७, अंबाला से ११, पटियाला से २। लुधियाना से पूज्य श्री मंगल ऋषि जी और मालेरकोटला से ला० रामजी दास जी जिन्दल एक एक हजार के लाईफ मेम्बर भी बने हैं। हम जहाँ जहाँ भी गए वहाँ के मुखिया भाई स्वयं मेम्बर बने और हमारे साथ घूम फिर कर बड़ा प्रयत्न किया। इस लिए हम सभी को हृदय से धन्यवाद देते हैं।

जालन्धर शहर में श्री मदन लाल जी महाराज, होशियारपुर में श्री नरपत राय जी महाराज, बंगा में युवाचार्य श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज, लुधियाना में पंजाब के जैनाचार्य श्री आत्माराम जी महाराज और अम्बाला में श्री प्रेमचन्द्र जी महाराज आदि मुनिराजों ने हमारे ध्येय व कार्यों को समझने-समझाने में पूरी सहायता की है। हम उनके भी अत्यन्त अनुगृहीत हैं।

—अधिष्ठाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'SANMATI' PUBLICATIONS

1. Lord Mahavira
by Dr. Bool Chand, M.A., Ph.D. — Rs. 4/-
2. गुजरात का जैन धर्म—मुनि श्री जिनविजय जी — बारह आने
3. विश्व-समस्या और व्रत-विचार—डॉ॰ बेनीप्रसाद — चार आने
4. Constitution — 4 Ans.
5. अहिंसा की साधना —श्री काका कालेलकर — चार आने
6. परिचयपत्र और वार्षिक कार्यविवरण — चार आने
7. Jainism in Kalingadesa--Dr. Bool Chand — 4 Ans.
8. भगवान महावीर—श्री दलसुखभाई मालवणिया — चार आने
9. Mantra Shastra and Jainism—Dr. A. S. Altekar — 4 Ans.
10. जैन-संस्कृति का हृदय—पं॰ श्री सुखलालजी संघवी — चार आने
11. भ॰ महावीरका जीवन–पं॰ श्री सुखलालजी संघवी — " "
12. जैन तत्त्वज्ञान, जैनधर्म और नीतिवाद
लें॰–पं॰ श्री सुखलालजी तथा डॉ॰ राजबलि पाण्डेय — " "
13. आगमयुग का अनेकान्तवाद—श्री दलसुखभाई मालवणिया — आठ आने
14--15. निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय—श्री सुखलालजी संघवी — एक रुपया
16. वस्तुपाल का विद्यामण्डल—प्रो॰ भोगीलाल सांडेसरा — आठ आने
17. जैन आगम—श्री दलसुखभाई मालवणिया — दस आने
18. कार्यप्रवृत्ति और कार्यदिशा — आठ आने
19. गांधीजी और धर्म
लें॰ पं॰ श्री सुखलालजी और दलसुख मालवणिया — दस आने
20. अनेकान्तवाद—पं॰ श्री सुखलाल जी संघवी — बारह आने
21. जैन दार्शनिक साहित्य का सिंहावलोकन
पं॰ दलसुखभाई मालवणिया — दस आने
22. राजर्षि कुमारपाल–मुनि श्री जिनविजयजी — आठ आने
23. जनधर्म का प्राण–श्री सुखलालजी संघवी — छः आने
24. हिन्दू, जैन और हरिजन मंदिर प्रवेश
लें॰ श्री पृथ्वीराज जैन M.A. — सात आने
25. Pacifism & Jainism—Pt Sukhlalji — 8 Ans.
26. छठे वर्ष का कार्य-विवरण — दो आना
27. जीवन में स्याद्वाद—श्री चन्द्रशंकर शुक्ल — बारह आना

The Secretary,
JAIN CULTURAL RESEARCH SOCIETY
BENARES HINDU UNIVERSITY.

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए-२१

ONS

Rs. 4/8
बारह आने
चार आने
4 Ans.
चार आने
चार आने
4 Ans.
चार आने
ar 4 Ans.
चार आने
" "
" "
आठ आने
एक रुपया
आठ आने
दस आने
आठ आने
दस आने
बारह आने
दस आने
आठ आने
छः आने
सात आने
8 Ans.
दो आना
रह आना

TY

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम १

बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

इन्द्र एम० ए० — दलसुख मालवणिया

पृथ्वीराज जैन — मोहन लाल मेहता

इस अंक में—

१. नारी (कविता)—इन्द्र एम० ए० — १
२. अपनी बात (संपादकीय) — ३
३. नारी के अतीत की झाँकी: सती प्रथा—
—श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम० ए० — ११
४. भाग्य निर्माण (कहानी)—इन्द्र एम० ए० — १९
५. निकल पड़ (गद्यकाव्य)—रवीन्द्र — २४
६. सौन्दर्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—
श्री मोहन लाल मेहता बी० ए० — २५
७. तलाक़—श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए० — २९
८. विजय—कुमारी सत्यवती जैन — ३५
९. सम्पादक के नाम— — ३९

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिए।

वार्षिक मूल्य ४) — **एक प्रति ।=)**

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष २ दिसम्बर १९५० अंक २

नारी

देवि ! जीवन की निशा में तू सुनहला प्यार लाई ।
बुझ गए जब दीप सारे तू उषा शृङ्गार लाई ।
मैं गहन वन में अकेला श्रान्त विह्वल घूमता था ।
प्यास की ज्वाला बुझाने, रजकणों को चूमता था ॥
लड़खड़ाते थे चरण युग, छा गई सम्मुख अँधेरी ।
रुद्ध होती जा रही थी, श्वास की गति हाय मेरी ॥
तू मधुर संगीत झंकृत री अमी की धार लाई ।
देवि ! जीवन की निशा में तू सुनहला प्यार लाई ॥
देख तेरा रूप रूपसि ! काल से संघर्ष ठाना ।
मृत्यु के आघात को भी, इक नया वरदान माना ॥
खेल करता जा रहा, तूफान हैं मेरे खिलौने ।
अमिर भीषण उदधि को भी, मैं लगा हूँ अब बिलौने ॥
मैं निराशा से घिरा था तू विजय का हार लाई ।
देवि ! जीवन की निशा में तू सुनहला प्यार लाई ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गल रहे थे प्राण पल पल, ग्लान मन जब हो रहा था।
तुंग लहरों के थपेड़ों में सुधी सब खो रहा था॥
ये भुजाएँ थक गईं, पतवार मेरी गल गई जब।
छोड़ कर उत्साह धीरज, बन गया कायर कृपण जब॥
तू मृदुल मुस्कान लेकर इक नई पतवार लाई।
देवि! जीवन की निशा में, तू सुनहला प्यार लाई॥

इक अहिंसा प्रेम के दिव्यास्त्र का लेकर सहारा।
निज पराजय में विजय का मन्त्र था तूने उचारा॥
री! हृदय का दान तुझसे जो न सीखा आज भी नर।
कह उठा अबला तुझे, निज क्रौर्य का अभिमान लेकर॥
त्याग की प्रतिमूर्ति तू है, वीरता का सार लाई।
देवि! जीवन की निशा में तू सुनहला प्यार लाई॥

त्याग कर सर्वस्व री! अधिकार लेना जानती तू।
निज विलय को ही सदा से स्वामिनी-पद मानती तू॥
जो न ममता से भरे तेरे हृदय को पा सका नर।
कह उठा यह मोह है, अभिशाप है, जो था अरे वर॥
प्रलय नाटक में अरी, नवसृष्टि का उपहार लाई।
देवि! जीवन की निशा में तू सुनहला प्यार लाई॥

विश्वजननी तू बनी री, दूध और दुलार देकर।
बहन औ रानी बनी मृदु, हृदय का उद्गार लेकर॥
प्यार तेरा बन गया, वरमाल औ राखी अरी जब।
दो कुलों को बाँध डाला, एक कच्चे तार से तब॥
जुड़ गए सब प्रेम पुलकित, हर्ष पारावार लाई।
देवि! जीवन की निशा में, तू सुनहला प्यार लाई॥

—इन्द्र एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

नारी का हृदय

एक दिन लाला हरजसराय जी ने अपनी वृद्धा माता से कहा—"मां, आज भगतसिंह को फाँसी दे दी गई।"

"क्या उस के मां नहीं थी?" जननी का हृदय शब्दों में ढलक पड़ा। सचमुच यदि उस के मां होती तो वह फांसी पर न लटकता।

नारी का हृदय जीवन के मूल्य को आँक सकता है। वह जानता है, एक जीवन का निर्माण करने के लिए कितनी तपस्या करनी पड़ती है। नारी अपने रक्त और हृदय द्वारा एक जीवन को सींचती है। उसके लिए अपने सुखों का बलिदान करती हैं। संघर्षपूर्ण यात्रा के लिए अपने वात्सल्य, अपनी ममता और अपने प्यार का पाथेय प्रदान करती है। उस जीवन को पुष्पित और फलित देखने के लिए आतुर रहती है। उस के विकास के लिए अपनी सुधबुध भूल जाती है। जब वह जीवन बीच ही में क्रूर हाथों द्वारा कुचल दिया जाता है तो उसे असह्य वेदना होती है।

भगवान् महावीर ने कहा था—किसी प्राणी को न मारना चाहिए, न सताना चाहिए, न उस की स्वतन्त्रता में बाधा डालनी चाहिए। मां भी यही कहती है। वह उस दुख का अनुभव करती है जो किसी जीवन के नष्ट होने पर माँ को होता है।

एक कुलांगना जब किसी के सौभाग्य सिन्दूर को पुंछते देखती है तो विलख हो उठती है। एक बहिन किसी के भाई को सदा के लिए विदा होते देख कर चीख उठती है। नारी की यह ममता विश्व को विनाश से रोके हुए हैं।

यदि जनरल मेक् आर्थर की जगह कोई नारी होती तो हिरोशिमा पर कभी इस प्रकार का अत्याचार न होता। आकाश में उड़ते हुए शिशुओं की कल्पना मात्र से उस का हृदय काँप उठता।

जब इन बातों पर विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व को संहार की इन लपटों से यदि कोई बचा सकता है तो वह मातृशक्ति है। पुरुष ने मिथ्याभिमान में आकर उस शक्ति को कुचला और वह उत्तरोत्तर क्रूर होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। परिणाम स्वरूप विश्वव्यापी प्रलय के भीषण बादलों से सभी राष्ट्र चिन्तित हो उठे हैं।

श्रमण संस्कृति प्रारम्भ से ही नारी को उच्च स्थान देती आई है। बुद्ध ने कहा "माता जिस प्रकार अपने इकलौते बेटे पर स्नेह करती है, उसी प्रकार अपने स्नेह को अखिल विश्व में फैला दो।" महावीर ने चन्दनबाला आदि महादेवियों को अपने संघ में प्रमुख स्थान दिया।

मनु ने भी स्त्री जाति की पूजा करने के लिए कहा किन्तु पुरुष उसे समझ न सका। उस ने नारी को अपनी दासी बनाया, पैरों तले कुचला और उपभोग की सामग्री समझा। परिणाम स्वरूप वह स्वयं वासनाओं का दास बनता गया और पतन के भीषण गर्त में जा पड़ा।

यदि विश्व फिर सुखी बनना चाहता है तो उसे नारी जाति को पुनर्जीवन देना होगा।

विचार था कि नारी जीवन के समस्त पहलुओं को लेकर एक विस्तृत 'नारी अंक' निकाला जाय। किन्तु साधनों की अल्पता तथा कुछ दूसरे कारणों से रुक जाना पड़ा। फिर भी पत्र के छोटे शरीर के अनुसार जो कुछ दिया जा सकता था, हमने प्रयत्न किया है। हम इसे विशेषाङ्क न कह कर इतना ही कहेंगे कि इस अंक में नारी सम्बन्धी कुछ समस्याओं पर विचार किया गया है।

हमारा विचार है कि समय समय पर इस प्रकार भिन्न भिन्न विषयों पर सामग्री प्रस्तुत की जाय। अगले अंक में मुनि जीवन की समस्याओं पर सामग्री रहेगी।

जैन मनोरंजन गृह

स्त्रियों का साधुओं के साथ अधिक सम्पर्क में आना समाज के लिए चिन्ता का कारण बन गया है। उसके दुष्परिणाम आए दिन सुनने को मिलते हैं। इसे रोकने के लिए विविध प्रकार के नियम बनाए जाते हैं। यह प्रतिबन्ध लगाया जाता है कि व्याख्यान से अतिरिक्त समय में स्त्रियाँ साधुओं के स्थानक में न जायँ, दर्शन करते समय अधिक वार्तालाप न करें। अकेली न जायँ इत्यादि। किन्तु इस समस्या का एक दूसरा दृष्टि कोण भी है। हमें उस ओर भी ध्यान देना चाहिए।

मानव हृदय स्वाभाविक रूप से अपनी अभिव्यक्ति चाहता है। मन में अच्छी या बुरी, जो बातें घूम रही हैं, हम उन्हें उगल देना चाहते हैं। किन्तु उगलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए सामने वाले व्यक्ति का विश्वासपात्र होना आवश्यक है। हमारे घरों का वातावरण प्रायः ऐसा होता है कि वहाँ पुरुष तो अपने मन की निकाल लेते हैं किन्तु स्त्रियों को ऐसा अवसर बहुत कम मिलता हैं। पुरुषों से वार्तालाप करते हुए उन्हें संकोच होता है और स्त्रियों में भी परस्पर विश्वास का वातावरण नहीं रहता। परिणामस्वरूप साधु के रूप में ही एक ऐसा स्थान मिलता है जहाँ वे अपना हृदय खोलकर रखती हैं। यहाँ तक देखा गया है कि जो बात वे पति से भी कहती हुई हिचकती हैं उसे साधु के सामने प्रकट कर देती हैं। साधु भी उन्हें उचित अनुचित परामर्श देते रहते हैं।

दूसरी बात यह है कि उनके लिए ऐसा कोई स्थान नहीं होता जहाँ घड़ी दो घड़ी बैठ कर स्वस्थ मनोविनोद कर सकें। पुरुष क्लबों में जा सकता है, अपनी इच्छानुसार घूम सकता है, साथियों के साथ बैठ कर गप्पें लड़ा सकता है, किन्तु स्त्री को वे सुविधाएँ नहीं हैं। ले दे कर उसे धर्मस्थानक ही एक ऐसी जगह मिलती है जहाँ बे रोक टोक जा सके। घर वालों की ओर से केवल वहीं जाने की छुट्टी होती है।

इन सब बातों के इलाज का एक ही उपाय है कि स्त्रियों के अपने मनोरंजन गृह हों, जहाँ उन्हें स्वस्थ साहित्य और स्वस्थ मनोरंजन प्राप्त हो सकें। जहाँ वे बे रोक टोक जा सकें और खुले दिल से परस्पर वार्तालाप कर सकें। यदि उन्हीं में से दो चार सुशिक्षित महिलाएँ बहिनों में जमे हुए अन्धविश्वास तथा दूसरे कुसंस्कारों को दूर करने का प्रयत्न करें तो ऐसी संस्था समाज के लिए वरदान बन सकती है। वहाँ बहिनें परस्पर एक दूसरे की कठिनाइयों तथा समस्याओं को समझेंगी और उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करेंगी। उनमें वह शक्ति आएगी जिस से अपने प्रश्नों को अपने आप हल कर सकें।

स्त्रियों के लिए ही नहीं, हम तो कहेंगे, पुरुषों के लिए भी इस प्रकार के क्लब होने चाहिए। चारों ओर से यह शिकायत आती है कि युवकसमाज धर्म से उन्मुख होता जा रहा है। हम इस का दोष युवकसमाज पर ही लाद देते हैं और समझ लेते हैं, हमारा कर्तव्य पूरा हो गया। हम यह नहीं सोचते कि स्थानक में ऐसी कौन सी वस्तु है जो एक युवक को आकृष्ट कर सके। युवक का हृदय जीवित होता है और जीवन चाहता है। मरी हुई बातों से वह कतराता है। स्थानक में जो बातें सुनने को मिलती हैं, वास्तव में उन में जीवन नहीं रहता। एक नेता का व्याख्यान सुनने के लिए हजारों युवक दौड़े दौड़े चले जाते हैं। क्योंकि उस की बातों में जीवन रहता है। आवश्यकता इस बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है कि हम अपने धर्मस्थानों को संस्कृति का जीवित केन्द्र बनाएँ। वहाँ अच्छा साहित्य रहे, बैठने के लिए आराम हो, ऐसी सांस्कृतिक सामग्री एकत्रित हो जिसे प्रत्येक व्यक्ति देखना चाहे, स्वस्थ मनोरंजन के साधन हों, धार्मिक तथा सामाजिक चर्चा वार्ता के लिए पूरी सुविधा हो। ऐसा क्लब युवकों के मस्तिष्क को परिष्कृत तो करेगा ही, साथ में उन्हें संगठित भी करेगा। यदि उसे चलाने वाले दो चार अच्छे युवक मिल जायँ, फिर तो वह समाज के नवनिर्माण का केन्द्र बन सकता है।

हमें यह ध्यान रखना चाहिए धर्म कड़वे घूँट की तरह पिलाने की चीज नहीं है। वह तो एक प्रकार का संस्कार है और संस्कार तभी जमता है जब व्यक्ति का उस ओर आकर्षण हो।

हमारा कलङ्क

श्रमण संस्कृति के प्रचार के लिए यह समय जितना अनुकूल है उतना शायद ही कभी रहा हो। जन-हृदय अपने आप क्रान्ति कर रहा है। पुरानी मर्यादाएँ टूट रही हैं, रूढियाँ नष्ट हो रही हैं। जमी हुई धारणाएं उखड़ रही हैं और नवचेतना अँगड़ाई ले रही है। इस समय जनता ऐसा आधार चाहती है जहाँ उसके अधिकार सुरक्षित हों, विकासका पूरा अवसर मिले, वह मनुष्य होते पर भी मानवीय सुविधाओं से वंचित न रहे। यदि श्रमण परम्परा उसकी यह इच्छा पूर्ण कर सकती है तो इसे वह वरदान की तरह स्वीकार करेगी। उसके अनुयायियों पर यह उत्तरदायित्व है कि वे इसे सिद्ध करके बतलाएँ। उन्हें अपने जीवन और व्यवहार द्वारा यह बताना होगा कि श्रमण संस्कृति मनुष्य को मनुष्य समझती है। उसके मत में न कोई माता अछूत को जन्म देती है और न कोई ब्राह्मण को। जन्मना सभी एक हैं। सभी को समान अधिकार है। केवल उपदेशों से काम नहीं चलेगा। इस मान्यता को अपने आचार में उतारना होगा। उन तिरस्कृत तथा पददलित भाइयों को गले लगाना होगा, तभी हम कह सकेंगे कि हम श्रमण या श्रमणोपासक हैं।

कुछ दिन पहले डाक्टर अम्बेडकर के बौद्ध होने की बात सबने पढ़ी थी। इसी दशहरे पर बौद्ध भिक्षु श्री जगदीश काश्यप ने अजमेर की यात्रा की। उन्होंने वहाँ अछूत कहे जाने वाले कौलिय क्षत्रियों का सम्बन्ध भगवान बुद्ध की माता मायादेवी के साथ बताया, तथा उनका ध्यान अपने प्राचीन गौरव की ओर आकृष्ट किया। परिणाम स्वरूप लगभग बीस हजार कौलिय बौद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनने के लिए तैयार हो गए। शीघ्र ही उन्हें बौद्ध धर्म में दीक्षित किया जाने वाला है।

यह समाचार जैन साधु तथा श्रावकों के लिए आँखें खोलने वाला होना चाहिए। हमारे साधु हजारों की संख्या में इधर उधर विचर रहे हैं। किन्तु उन्हें अपनी ही दुकानदारी टिकाए रखने की चिन्ता पड़ी है। अपने ही भक्तों में घूमते रहना उन्हें किसी प्रकार बाहर की हवा न लगने देना तथा अपनी सम्प्रदाय चलाना उनके जीवन का लक्ष्य बन गया है। वे जानते हैं कि अपने ही श्रावकों को शास्त्रों की बातें सुनाना समुद्र में बरसने के समान है। किन्तु उन्हें भय हो गया है कि यदि समुद्र में न बरसेंगे तो समुद्र पानी देना बन्द कर देगा। त्यागीवर्ग में इस प्रकार का भय होना किसी भी समाज के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकता

साधु श्रावकों के पथप्रदर्शक हैं, पिछलग्गू नहीं। वे नेता हैं, अनुयायी नहीं। जब उन्होंने घर बार तथा समस्त सम्पत्ति का त्याग कर दिया है तो भय कैसा? उन्हें तो निर्भीक होकर विचरना चाहिए।

हम श्रमण के प्रथम अंक में लिख चुके हैं कि भारत में ऐसी अनेक जातियाँ हैं जिन्हें बलपूर्वक मानवीय अधिकारों से वञ्चित रखा गया है। वे भी सभ्य नागरिक का पद प्राप्त करना चाहती हैं किन्तु उन्हें अवसर ही नहीं दिया जाता, उनमें भी आध्यात्मिक भूख है किन्तु कोई भोजन देने वाला नहीं है। यदि हमारा मुनिवर्ग इस ओर ध्यान दे तो बड़ी सेवा कर सकेगा। संख्यावृद्धि की दृष्टि से भी यह कार्य महत्वपूर्ण है किन्तु हम तो केवल मानवता के नाते प्राणिमात्र का हित चाहने वाले साधुवर्ग से अपील करेंगे कि वे इस ओर ध्यान दें। इस प्रकार वे देश और धर्म के कलङ्क को धो सकेंगे।

दिल्ली में जैन कालेज

देहली सरीखे केन्द्रीय स्थान में उच्च कोटि की जैन शिक्षण संस्था का न होना खटकने वाली बात है। भारत की राजधानी होने के अतिरिक्त अन्त-र्राष्ट्रीय दृष्टि से भी इसका महत्व बहुत बढ़ गया है। भारत के सभी नेता अपना अधिक समय प्रायः यहीं बिताते हैं। विदेशी राजदूतों का तो यह निवास ही है। ऐसा कोई प्रान्त नहीं है जहाँ के निवासी यहाँ विपुल संख्या में न रहते हों। यहाँ की प्रत्येक घटना बिजली की तरह सारे संसार में फैल जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ जैन संस्था होने पर सभी नेताओं के साथ अनायास ही सम्पर्क जोड़ा जा सकता है और उन्हें जैन धर्म तथा संस्कृति के परिचय में लाया जा सकता है। उनके द्वारा हम सभी विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं में अपने उचित अधिकारों की मांग कर सकते हैं। उदाहरण के रूप में अन्य दर्शनों के समान जैन दर्शन को भी सरकारी पाठ्यक्रम में स्थान मिलना एक न्यायपूर्ण मांग है। किन्तु भारतीय विश्वविद्यालयों की इस ओर उपेक्षा है। इस प्रकार की संकुचित वृत्ति की ओर हमें अपने राष्ट्र नेताओं का ध्यान खींचना चाहिए। ऐसे कार्य देहली में सरलता से हो सकते हैं।

विदेशी राजदूतों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके विदेशों का ध्यान भी जैनधर्म की ओर खींचा जा सकता है।

देहली का प्रत्येक समाचार शीघ्र ही सारे संसार में फैल जाता है। वहां रहकर समय समय पर बड़े आदमियों को निमन्त्रित करते रहने से हमें अनायास ही विज्ञापन मिल सकता है।

इन सब बातों के अतिरिक्त देहली में जैनियों की बहुत बड़ी संख्या है। पंजाब विभाजन के बाद वह और भी बढ़ गई है। हजारों की संख्या में जैन विद्यार्थी दूसरी दूसरी संस्थाओं में पढ़ रहे हैं। उनके हृदय में जैन संस्कृति के प्रति गौरव उत्पन्न करने के लिए हमारा अपना संस्कृति केन्द्र होना चाहिए, जहां उच्चकोटि के जैन विद्वान रहें और अपनी समाज के बालकों में अच्छे संस्कार डाल सकें।

यह लिखते हुए हर्ष होता है कि देहली में एक पूर्णाङ्ग जैन कालेज की स्थापना के लिए एक सज्जन ने एक लाख रुपया देने का वचन दिया है। हम उनके इस शुभ अध्यवसाय की प्रशंसा करते हैं। यह भी मालूम पड़ा है कि अमृतसर निवासी लाला हरजसराय जैन इस योजना को सफल बनाने पर विचार कर रहे हैं।

जैन समाज एक सम्पन्न समाज है। बहुत से ऐसे धनिक हैं जो अकेले कालेज खड़ा कर सकते हैं। उन सबसे हमारी अपील है कि इस कार्य की ओर ध्यान दें और शीघ्र ही एक अच्छा कालेज प्रारम्भ कर दें। सहयोगी पत्रों से भी हमारा अनुरोध है कि वे समस्त समाज का ध्यान इस आवश्यक कार्य की ओर आकृष्ट करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और बेकारी

शिक्षा के दो ध्येय हैं—जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है, शिक्षा इस योग्य बनाती है कि व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके। अपने तथा अपने कुटुम्ब के भरण पोषण के लिए दूसरे पर निर्भर न रहे। समाज की दृष्टि से शिक्षा व्यक्ति में वह योग्यता उत्पन्न करती है जिससे वह अपनी वाणी तथा व्यवहार द्वारा समाज को शक्तिदायी भोजन दे सके। समाज को निर्बल बनाने वाले तत्वों का दृढ़तापूर्वक सामना कर सके।

किन्तु जैन समाज की शिक्षण संस्थाएँ इनमें से किसी ध्येय को पूरा नहीं कर रही हैं। लाखों रुपया खर्च कर देने के बाद भी संचालकों के मुख पर निराशा छाई हुई है।

वास्तव में देखा जाय तो उपरोक्त दोनों लक्ष्य परस्पर सापेक्ष हैं। निर्भीक होकर स्वस्थ विचार वही दे सकता है जो आजीविका के लिए परतन्त्र न हो।

किन्तु हमारी संस्थाओं से निकले हुए स्नातकों के लिए सामाजिक संस्थाओं में नौकरी के सिवाय कोई चारा नहीं है। ऐसे व्यक्तियों से नेतृत्व की आशा नहीं की जा सकती। यदि हम अपने स्नातकों को निर्भीक नेता के रूप में देखना चाहते हैं तो उन्हें इस योग्य बनाना होगा कि वे अपनी आजीविका के लिए पराश्रित न रहें।

इतना ही नहीं, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थी अपने अध्ययन काल में भी पराश्रित न रहे। तभी उसमें आत्मगौरव के संस्कार आ जाएँगे।

यदि संस्थाओं को बड़े बड़े कारखानों के साथ सम्बद्ध कर दिया जाय तो यह समस्या अनायास ही सुलझ सकती है। फिर विद्यार्थी को अपना अध्ययन तथा भोजन सम्बन्धी खर्च चलाने के लिए न तो घर से पैसे लाने होंगे और न किसी दूसरे से सहायता लेनी होगी। यदि एक विद्यार्थी तीन घंटे प्रति दिन मिल में काम करे तो अध्ययन का सारा खर्च निकल सकता है। यह नौसिखिए की बात है। साल बारह महीने में कुछ सीख जाने पर तो वह और भी अधिक कमा सकता है। शेष सारा समय वह अध्ययन में लगा सकता है। इस प्रकार प्रारम्भ से ही उसे अपने पैरों पर खड़े होने की शिक्षा मिलेगी। साथ ही उसके खर्च का भार समाज को न उठाना पड़ेगा। इस प्रकार स्वावलम्बन का पाठ सीखा हुआ युवक जीवन में कभी असफल नहीं हो सकता।

अमेरिका तथा दूसरे देशों में इस प्रकार की अनेक संस्थाएँ चल रही हैं। उनमें प्रविष्ट होने के लिए विद्यार्थी से पैसे नहीं मांगे जाते किन्तु परिश्रम मांगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। विद्यार्थियों से विविध प्रकार का काम लिया जाता है और बदले में श्रम के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता है। विद्यार्थी उस पारिश्रमिक से फीस तथा भोजन आदि का खर्च चलाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की संस्थाओं से निकले हुए स्नातक बड़े बड़े कारखाने चला रहे हैं। समाज का नेतृत्व भी उन्हीं के हाथ में है। वे जिस गाँव में जाते हैं उसकी काया पलट देते हैं। आलस में पड़े हुए बालक तथा युवकों में जीवन फूँक देते हैं। उन्हें देखकर निराशों में आशा का संचार होता है, सभी में आत्मसम्मान का भाव जागृत होता है।

जैन समाज में बड़े बड़े उद्योगपति हैं। यदि वे चाहें तो शीघ्र ही इस प्रयोग को व्यवहार में ला सकते हैं। इसके लिए न उन्हें दान देने की आवश्यकता पड़ेगी, और न किसी प्रकार के त्याग की। केवल इतना ही करना होगा कि वे अपने अपने उद्योग में विद्यार्थी को काम करने का अवसर दें। विकसित होने पर तो संस्था स्वयं एक उद्योग चला सकती है। क्या वर्तमान बेकारी के समय समाज के धनवान् इस ओर ध्यान देंगे।

—इन्द्र एम० ए०

पुरुष को अपने कार्यों से ईश्वर और मनुष्य जाति की सेवा करने का आदेश दिया गया है, पर स्त्री को बच्चों द्वारा ही यह कार्य करने का आदेश है। इसलिए स्त्रियों का अपने बच्चों को विशेष रीति से प्यार करना सर्वथा स्वाभाविक है। माता सदा अपने बच्चों को प्यार करेगी। माता का अपने शिशुओं से प्यार करना अहंवृत्ति का द्योतक नहीं है, जैसी की उल्टी सीख कुछ लोग देते हैं। यह प्यार वैसा ही है जैसे कोई कारीगर अपने हाथ से बनाये कार्य को प्यार करता है। यदि यह प्यार निकाल दिया जाय तो फिर उसके लिए काम करना असंभव हो जाय।

—टॉल्सटाय

बहिनो ! शील का आभूषण तुम्हारी शोभा बढ़ाने के लिए काफी है। तुम्हें और आभूषणों का लालच नहीं होना चाहिए। आत्मा की आभा बढ़ाओ। मन को उज्जवल करो। हृदय को पवित्र भावनाओं से अलंकृत करो। इस मांसपिंड की सजावट में क्या पड़ा है। शरीर का सिंगार आत्मा को कलंकित करता है। तुम्हारी सच्ची महत्ता और पूजा शील से होगी।

—आचार्य जवाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी के अतीत की एक झांकी : सती प्रथा—

-श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम० ए० व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न

सामान्यतः सती शब्द का प्रयोग पतिव्रता साध्वी, शीलवती स्त्रियों के लिए आता है। जैन बौद्ध साहित्य इस शब्द को इसी अर्थ में प्रयोग करते आये हैं, जैसे सती सीता, सती मैनासुन्दरी, सती सावित्री आदि। ब्राह्मण साहित्य के प्रधान अंग वेद, धर्मसूत्रों और प्रधान स्मृतियों में यद्यपि सतीशब्द का प्रयोग शीलवती नारियों के अर्थ में आया है पर पीछे की स्मृतियों ने इसका सम्बन्ध पति के साथ सहमरण और अनुमरण के अर्थ में प्रयोग किया है। भारतीय इतिहास के मध्यकाल में तो यह विधवा स्त्री का एक परम धार्मिक कृत्य बना दिया गया। विशेषतः क्षत्रिय पत्नियों में अपने पति की चिता के साथ मरने का बड़ा रिवाज था। यद्यपि आजकल इस प्रथा का नामोनिशां भी नहीं है और १८२९ ई० के बाद जब कि यह सरकारी कानून बना कर एक दम बन्द कर दी गई, अंग्रेजी भारत में केवल कागजी बहस की चीज बन गई। इन पृष्ठों द्वारा 'नारी के अतीत की एक झांकी : सती प्रथा' का क्रमिक विकास और ऐतिहासिक विश्लेषण पाठकों को रुचिकर ही होगा।

अन्तर्निहित तत्त्व

पति और पत्नी दो सापेक्ष शब्द हैं। इतने सापेक्ष कि एक के अभाव में दूसरे की सिद्धि नहीं। नर और नारी में उतनी सापेक्षता नहीं है। स्त्रीवाचक शब्दों में यदि नारी सामान्यवाचक है तो पत्नी को विशेष स्त्रीवाचक कहना होगा। नारी सामान्य को लेकर साहित्य निर्माताओं ने अनेक भली बुरी कल्पनाएँ की हैं। श्रमण संस्कृति के उपासकों ने उसे अपने मोक्ष पद में परम बाधक माना है। वैराग्यप्रदर्शन में उसके बुरे पक्ष का ही दिग्दर्शन कराया है। पर पति और पत्नी धर्म की ओर बुरी कल्पनाएँ शायद ही किसी साहित्यकार ने की हों। सत्पत्नी धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों को लेकर आती है। ऐसी पत्नी के आने पर ही वास्तव में घर घर है दीवारों और छप्पर के संस्थान का नाम घर नहीं है। कवि के वचन में :—

सत्कन्यां ददता दत्तः सत्रिवर्गो गृहाश्रमः।
गृहं हि गृहिणीमाहुर्न कुड्य-कटिसंहतिं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति पत्नी का प्रेम व भक्ति अद्वितीय है । जन्म से मां, बाप, बन्धु, बान्धवों के बीच पलने पुसने वाले नर नारी तारुण्य आते ही एक अद्भुत आकर्षण की ओर झुकते नजर आते हैं जिसका कि प्रतिबिम्ब पति-पत्नीभाव है और इसका ही फलित रूप सारा मानव समाज है । यह आकर्षण इतना कैसे बढ़ गया इस पर चकित हो एक कवि कहता हैः--"इत्थं पाणिगृहीतीयं कथं मां चेतसाऽविशत्, यन्नामापि मुदे··।" आगे वह इस प्रेम का विश्लेषण नहीं दे पाता। कतिपय विद्वान् इस पतिपत्नी प्रेम को अगले जन्म में भी इस जन्म जैसा ही बतलाते हैं इस लिए अगले जन्म में भी पत्नी का पति के साथ मिलन का विधान करते हैं। पत्नी ही पति के साथ जा सकती है, अन्य बन्धु बान्धव नहीं "मृतोऽपि बान्धवः शक्तो नाऽनुगन्तुं प्रियं जनं, जायावर्जं हि" ।

पति पत्नी के इस प्रेमातिरेक में--ऐसी अन्धभक्ति में ही कुर्बानी--चिता के साथ जलने की सती प्रथा—के बीज निहित है । प्रेमी जब संसार से उठ जाता है तो प्रेमिका का प्रेमातिरेक—गहराप्रेम डोल उठता है और ऐसी हालत में उसे मृत्यु की शरण सुखद मालूम होती है । जब पति इस जीवन में सदा के लिए आंखों से ओझल हो रहा है—ऐसे समय उसका वह प्रेम, भक्ति पत्नी को दिङमूढ़ कर देता है और बाध्य करता है कि पति के मरण के साथ तेरे कर्तव्यों की भी इतिश्री हो गई है अब जिस गति पति गए हैं वही गति शरण है । वर्तमान युग में हर चीजों को नई दृष्टि से देखने वाले हमारे सामने प्राणिशास्त्रज्ञ (Biologist) और मनोविज्ञानी (Psychologist) आते हैं । एक तो पति पत्नी के सम्बन्ध को यौन सम्बन्ध मात्र कह कर विराम ले लेता है। इस प्रेम के पीछे इतनी बड़ी सृष्टि कैसे तैयार हुई, की ओर आँख मूँद लेता है । दूसरा कुछ हद तक नजदीक पहुँचता है पर उसकी विश्लेषण रूपी चीराफाड़ी (Operation) में उस प्रेम का दम ही घुट जाता है । अवश्य प्राचीन काल के रसशास्त्रियों और रीतिकाल के कुछ कवियों ने इस प्रेम का विभाव, अनुभाव, संचारीभावों द्वारा चित्रण करने का प्रयास किया है। रसराज श्रृंगार इसका ज्वलन्त प्रतीक हैं। प्रेम का पन्थ सचमुच निराला है। उसे पति पत्नी तक सीमित रखना तो एक अपराध ही होगा । आराधक आराध्य, स्वामी भृत्य, तथा माता पुत्र के प्रेम भी जगत् में विख्यात हैं। प्रेमातिरेक में केवल पत्नी ही अपने जीवन को शेष कर लेती हो ऐसी बात नहीं है । बहुत से मनुष्य भी अपने स्वामियों की भक्ति के कारण जल मरे हैं। हर्ष चरित में वर्णन है कि राजा प्रभाकर वर्धन के मरने पर उसके कितने ही मित्र, मंत्री, भृत्य और प्रिय लोगों ने अपने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जला कर मृत्यु कर ली। राजतरंगिणी में उल्लेख है कि अपने पुत्र के प्रेम के कारण माता उसकी चिता में जल मरी। १० वीं ईस्वी के बाद तथाकथित सती प्रथा का बड़ा विकृत रूप सामने आता है।

सती : एक मान्यता

प्रागैतिहासिक काल में कई समाजों में एक ऐसा साधारण विश्वास था कि मृत व्यक्ति का जीवन और आवश्यकताएँ जैसी इस लोक में होती हैं, वैसी या वैसी ही कुछ परलोक में भी होती हैं इसलिए जीवित संबंधियों का परम कर्तव्य है कि मृत व्यक्ति के साथ वे तमाम वस्तुएं दें जो उसे जीवन में आवश्यक थीं। विशेष कर जब कोई विशिष्ट व्यक्ति उनका मुखिया, सरदार या योद्धा मरता था तो वे ऐसी सब चीजें—जो उसे प्यारी थीं उसके साथ दफ़ना दिया करते थे। इस विश्वास ने ही पीछे पति की प्यारी वस्तु पत्नी को भी साथ जला देने—सती प्रथा-के विकृत रूप में जन्म दिया। यह प्रथा किसी जाति या देश तक सीमित न थी; संसार की प्रसिद्ध जातियों में—गाल, गोथ, नार्वेजियन, सेल्ट, स्लाव प्रेसियन में— इस प्रथा के अवशेष मिले हैं। शकों में यह प्रथा आम तौर से प्रचलित थी। चीन में यदि कोई विधवा अपने पति को स्वर्ग भेजने के लिए स्वयं को मार डालती थी तो उसका शव विशेष जलूस के साथ निकाला जाता था। प्राचीन काल में यह प्रथा विशेषत: युद्धप्रिय जातियों में थी। वे लोग शत्रुओं के हाथ से अपनी औरतों की मर्यादा बचाने के लिए अपने मरने से पहले उनकी हत्या या उनका जौहर (राजपूतों में खासकर) करा डालते थे। एक और विश्वास था कि मृत व्यक्ति की प्रेतात्मा अपनी प्यारी वस्तुओं से मिलने के लिए हमेशा आती जाती है इसलिए इन प्रेतात्माओं का इस तरह आवागमन रोकने के लिए उनके साथ उनकी प्यारी वस्तुएँ जला देनी चाहिए।

भारत में इसकी प्राचीनता : साहित्यिक आधार

इस प्रथा के पीछे चाहे जो भी विश्वास हो पर जब आर्य लोग भारत में आए तब उन्होंने यह प्रथा नहीं अपनाई। इस प्रथा का उल्लेख आर्य जाति के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ऋग्वेद' और 'अवेस्ता' में नहीं मिलता। सती प्रथा के समर्थकों ने ऋग्वेद के एक मंत्र—

"इमा नारीरविधवा सपत्नीराजनेन सर्पिषा संविशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

–में 'अग्रे' के स्थान में 'अग्ने' परिवर्तन किया है जो स्वतः अशुद्ध है, एवं अनुचित और अप्रासंगिक भी है । यह मंत्र स्त्रियों के समूह को लेकर कहा गया है । यद्यपि 'अथर्ववेद' में कहा गया है कि पत्नी मृत पति के साथ चिता पर थोड़ा लेटकर उतर आवे और पुराण धर्म का पालन करती हुई शेष जीवन बितावे । वैदिक काल में विधवाओं को पुर्नविवाह की सलाह भी दी गई है। 'धर्मसूत्रों' में स्त्री संबन्धी अनेकों धार्मिक कृत्यों और संस्कारों का वर्णन है पर उनमें सती प्रथा का उल्लेख कहीं नहीं है। बल्कि उस समय विधवा को अपने देवर, पति के शिष्य अथवा वृद्ध दास के साथ नियोग कराने की सलाह दी गई है। बौद्ध साहित्य में सती प्रथा का उल्लेख ढूँढ़ने पर भी न मिलेगा। जैनागमों में सती प्रथा का उल्लेख केवल 'महानिसीह' को छोड़ अन्यत्र नहीं है । वह भी विधवा के पिता के घर में प्रथा न होने पर सती न होने के रूप में । मेगस्थनीज और कौटिल्य के ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख नहीं है । मनु और याज्ञवल्क्य की प्रसिद्ध स्मृतियों में स्त्रियों और विधवाओं के अनेक कृत्यों का विधान किया गया है पर कहीं भी सती प्रथा का नाम नहीं है । महाभारत के प्रक्षिप्त भाग की बात यदि हम छोड़ दें तो उस विशालकाय ग्रन्थ में केवल माद्री के सती होने के सिवाय और दूसरा उल्लेख नहीं। माद्री को भी उस कृत्य में अनेकों ऋषियों और बान्धवों ने रोका था पर वह पति के प्रेमातिरेक में अपने को सती होने से रोक न सकी। हां, वहां अनेकों मरे हुए योद्धाओं के साथ अवश्य उनकी प्यारी वस्तुएँ जलाई गई थीं पर उनकी पत्नियाँ नहीं । वे अपने पतियों के पीछे उन्हें श्राद्ध देने के लिए जीवित रहीं। रामायण के भी प्रक्षिप्त भाग की बात यदि छोड़ दें तो उसमें भी इस प्रथा का उल्लेख न मिलेगा । पुराण साहित्य में अवश्य थोड़े बहुत उल्लेख मिलते हैं । पुराण साहित्य ने वर्तमानरूप ईसा की चौथी शताब्दी में पाया है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह प्रथा चौथी शताब्दी के आसपास ही धीरे धीरे प्रचार में आने लगी थी । इसका कारण भी था । ईसा की प्रथम शताब्दियों में शकों हूणों का आक्रमण होने लगा था तथा देश का जीवन अस्तव्यस्त हो रहा था । राज परिवारों ने अपनी स्त्रियों की दुश्मनों के हाथ मर्यादा भंग होने के भय से उनका नाश अपनी आंखों के सामने कर देना उचित समझा । पहले कहा जा चुका है कि शकों में यह प्रथा आम तौर से थी और संभव है उनके आगमन काल में यह प्रथा उनके अनुकरण पर जारी की गई हो । भारत में प्रवेश करने पर अनेक शक और हूण हिन्दू धर्म में दीक्षित होने लगे थे । उनको प्रसन्न करने के लिए हिन्दू स्मृतिकारों ने उनकी बहुत सी प्रथाओं, रीतिरिवाजों को हिन्दू स्मृतियों में स्थान देना शुरू किया । इसी लिए इसके बाद की स्मृतियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सती प्रथा का उल्लेख काफी मिलता है। दक्ष, पराशर, व्यास, अंगिरस् और उशनस् आदि स्मृतियों में इस प्रथा का उल्लेख है पर विशेष विधिविधान से वर्णन नहीं है। विष्णुस्मृति (ई० १००) में सती प्रथा को धार्मिक कृत्य का रूप नहीं दिया गया। ईसा की चौथी शताब्दी से यह प्रथा क्षत्रियों में विशेष रूप से चलने लगी। वात्स्यायन, भास, कालिदास और शूद्रक ने इसका उल्लेख किया है। शिलालेखों में इसका उल्लेख करने वाला सबसे पहला शिलालेख गुप्त काल ई० ५१० का है।

सतीप्रथा : एक विकल्प

जहाँ कहीं भी सतीप्रथा का विधान है वहाँ यह विकल्प (alternative) के रूप में दी गई है। विधवा स्त्री या तो पति के साथ जल मरे या ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन बितावे। स्मृतिचन्द्रिका ने सती धर्म को ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने से घटिया बतलाया है। गर्भिणी और छोटे बालबच्चे वाली विधवाएं सती न हो सकती थी। उन्हें पति के बाद धर्मपूर्वक जीवन बिताना पड़ता था। विधवा विवाह की इस युग में कल्पना भी न थी।

विरोध

सती प्रथा के विधान के साथ साथ हम इसके विरोध की आवाज भी सुनते हैं। मेधातिथि और देवन्नभट्ट ने इसका काफी विरोध किया है। इसे अधार्मिक और अशास्त्रीय कहा है, तथा आत्मघात तुल्य माना है। बाणभट्ट ने कादम्बरी में इसे मूर्खों का धर्म, मूर्खता का प्रदर्शन, अदूरदर्शिता, अज्ञानता, जड़ता का चिह्न कहा है और भीरुता की निशानी माना है। पर इन विरोधों का कोई खास असर नहीं हुआ।

धार्मिक भावना

आदर्श पतिव्रता के जीवन के विषय में बृहस्पति स्मृति में लिखा है—

> आर्ताऽऽर्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा।
> मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता॥

बृहस्पति के इस पद्य में पतिव्रता का रूप अतिशयोक्तिपूर्ण है। पति के मरने पर मरना यह बात पातिव्रत की धार्मिक भावना में रंगने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न है। पीछे तो सती होने के लिए अनेक धार्मिक प्रलोभन दिये गए हैं जैसे यज्ञ में पशु हिंसा के समर्थकों ने कहा है कि हम उन पशुओं को यज्ञ के द्वारा स्वर्ग भेज रहे हैं। "सती अपने पति के साथ स्वर्ग में उतने वर्षों तक रहती है जितने कि शरीर में रोम हैं अर्थात् ३॥ करोड़ वर्ष तक। सती अपने पुण्य से कैसे भी अधार्मिक पापी पति को दुर्गतियों से तार कर उसके साथ स्वर्ग में रहती है। वहां उसकी सेवा अप्सराएँ करती हैं। अगर वह पति के साथ सती नहीं होती तो अगले जन्मों में वह स्त्री पर्याय से मुक्त भी नहीं हो सकती" आदि। स्त्रीजाति सदा से भावुक और त्याग प्रधान रही है। पति के अभाव में पति के कुटुम्बियों द्वारा उत्पन्न की जाने वाली असुविधाओं, कष्टों को याद कर तथा पति के साथ मरने में महान् पुण्योपार्जन के लोभ से वह सती होने के लिए तैयार होने लगी और धर्म ध्वजियों ने इस तरह विधवा स्त्री समाज को कीड़े मकोड़ों की भांति सहस्त्रों की संख्या में सती धर्म के नाम पर बलि चढ़ाना शुरू कर दिया। सती होने की विधियों का उन स्मृतियों में, जो इसे विधवा स्त्री के लिए विकल्प के रूप में उपस्थित कर रहीं थी विधान नहीं मिलता जैसा कि १४, १५ वीं शताब्दी में रचे गए कुछ पुराणों मे लिखा है। सती होने वाली सती को बड़े गाजे बाजे के साथ श्मशान भूमि की ओर ले जाते थे। वह स्नान कर अनेक वस्त्राभूषणों से शृंगार करती थी। पीछे अपने बन्धुबांधवों से बिदा ले पतिके साथ चिता पर जलती थी। वह अपने ज़ेवरात अपने संबंधियों को वितरित कर देती थी। जिसे वे लोग बड़े सम्मान के साथ रखते थे। विधवा सती का अपने पति के साथ जल जाने को सहमरण, सहगमन या अन्वारोहण कहते हैं। अगर पति प्रवास में मर गया हो और उसका दाह संस्कार भी नहीं हुआ हो तो पत्नी पति की भस्म के साथ या उसकी चरणपादुका के साथ सती हो सकती है उसे अनुमरण कहते हैं

यह प्रथा प्रमुख रूप से क्षत्रियवर्ण में थी उससे ब्राह्मण वर्ग में फैली; स्मृतिकारों ने ब्राह्मणी विधवाओं के लिए इसका विरोध किया है। पीछे अपने बड़ों के अनुकरण पर अपना सामाजिक स्तर ऊंचा करने के लिए नीच जातियों ने इसे अपनाना शुरू किया। विधवा स्त्रियाँ ऐसा करने में गौरव अनुभव करने लगीं। इसके पीछे उन्हें धार्मिक प्रलोभन भी था। सतियों का गौरव बढ़ाने के लिए उनके स्मारक स्वरूप अच्छे चबूतरे या स्मृतिपाषाण बना दिये जाते थे। स्त्रियां जिनका कि जीवन संकुचित था इस कीर्ति के लोभ से भी सती होने में अपने को बहुत हद तक समर्पण करने लगीं। मुसलमानों के आने के बाद इस देश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रथा का बड़ा जोर बढ़ गया था। उससे हिन्दू विधवाओं को विशेष खतरा था। सचमुच इसके विकास का समय भी मध्यकाल ही है। राजपूतों में जौहर नाम से यह प्रथा १८६१ ई० तक चलती रही है। बंगाल में, जहां कि सदा से विधवाओं की संख्या ज्यादा रहती है १८२९ ई. के सरकारी कानून के पहले इस प्रथा का बड़ा जोर था। सहस्रों विधवाएँ अनिच्छापूर्वक जबरदस्ती सती के नाम पर जलाई जाने लगी। कलकत्ता शहर की नींव डालने वाले अंग्रेज ने ऐसी ही एक विधवा का उद्धार कर उसकी सन्तानों से अपना कुटुम्ब बढ़ाया।

ऐतिहासिक विश्लेषण

पहले कहा जा चुका है कि पति के लिए इस कुर्बानी में पत्नी का प्रेमाविश्य, अन्धभक्ति गुप्त बीज है। पर पुरुषवर्ग ने उसके इस त्याग, आदर्श का पीछे की शताब्दियों में बहुत दुरुपयोग किया। अंग्रेजों ने जैसे हमारे देश के आतिथ्य गुण (Hospitality) का दुरुपयोग कर हमें गुलामी के चंगल में कस लिया था वैसे ही स्त्री समाज के कुछ सहज औदार्य गुणों के कारण पुरुष वर्ग ने उसे अमानवीय कृत्यों में घसीट डाला। कुछ आदर्श नारियों ने प्रेम का एक आदर्श रूप रखा पीछे समय की मांग और परिस्थितिओं की विवशता से एक बड़े नारी समुदाय ने उसे अपनाया और स्वार्थी पुरुष वर्ग नें धर्म का रूप दे नारी समाज के ऊपर थोप दिया।

वैदिक युग में हम देखते हैं कि जब आर्य लोग भारत में आये, उस समय वे संख्या में कम थे। उन्हें अपनी संख्या बढ़ानी थी इसलिए नारी समाज को विधवा विवाह की आवश्यकता बतलाई। उनकी दृष्टि में झूठे परलोक के मोह से बढ़कर समाज की सेवा थी। यही बात सूत्रकाल में हम देखते हैं। ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दियों तक सती प्रथा के न पनपने का कारण यही था। धर्म नेताओं ने विधवाओं का दूसरे रूपों से उपयोग किया। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में जब कि पुरोहित धर्म अपना नया रूप लेकर आया उसी समय नये विदेशी आक्रमण होने लगे। पुरोहित धर्म ने उन्हें भी पचाने की ठान ली और उनकी कुछ अमानवीय प्रथाओं को भी स्थान देना शुरू किया पर उसके साथ विधवाओं के लिए विकल्प अवश्य रखा। कुछ विरोधी नेताओं ने आवाज उठायी पर वह दवा दी गई। सती होने की घटना यदा कदा घटने लगी। ईस्वी ७ वीं शताब्दी के बाद भारत में कोई भी ऐसी शक्तिशालिनी साम्राज्यशक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न थी । वह राष्ट्रविप्लव का युग था । राजन्य वर्ग के सामने अपने नाश के बाद अपने विशाल रनवास की इज्जत की बड़ी समस्या थी। एक राजा दूसरे राजा के रनवास की बड़ी दमनीय हालत करता था । शत्रु राजा की रानियां दासी बनाई जातीं, सैनिकों की भोगतृप्ति का साधन बनाई जाती थीं। इसलिए उन्होंने उस दयनीय स्थिति से स्वयं अपने सामने मार डालना–जौहर करा देना कहीं अच्छा समझा । यह एक परिस्थितिजन्य हालत थी । पर हमारे स्मृतिकारों ने उसे धर्म के रंग में रंग कर विधवा स्त्री के लिए आवश्यक धार्मिक विधि बना दी, उसे परलोक के अनेकों प्रलोभन भी दिये। ब्राह्मण स्मृतिकारों ने अपने वर्ण की सदा से रक्षा की है और उसकी सर्वोच्चता के गीत गाये हैं। उन्होंने अपने वर्ग की विधवाओं के लिए सती होने का निषेध किया है। पर अपने प्रभु राजन्यवर्ग के अनुकूल बातें स्मृतियों में भर दीं । यह धर्मोन्मादजन्य आग ऐसी फैली कि इसे ब्राह्मण, वैश्य, तथा शूद्रवर्ण की विधवाएँ भी न बच सकीं। परिस्थितियां भी तब ऐसी बना दी गई कि विधवा के लिए इसके सिवाय और कोई चारा न था। विधवा के सामने पति की मृत्यु के बाद जीने की समस्या थी । पति की सम्पत्ति पर उसके भाई बन्धु झगड़ते थे। धार्मिक स्मृतियों ने उसे उत्तराधिकार से वंचित कर दिया था उसे पढ़ाया गया कि सती रूप में मरने से तेरा गौरव है, सम्मान है। बेचारी नारी, विशेष कर मध्य काल की नारी–जिसे "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" के नियम के अनुसार संकुचित क्षेत्र में जीवन बिताना पड़ता था, सती के नाम पर इतना बड़ा गौरव पाने के लोभ को संवरण न कर सकी; उसके सामने ऐसी परम्परा भी उपस्थित की गई और वह इस तरह सती की बलिवेदी पर तैयार करके कुर्बान की जाने लगी । स्त्रियां स्वभाव से पुराणपन्थिनी होती हैं और परम्परा के पालन में पुरुष वर्ग भी अपने कुटुम्ब को विधवा के भरणपोषण संरक्षण आदि की चिन्ता से मुक्त करने के लिए, तथा उसके निमित्त से आने वाले लांछन से बचने के लिए–अनिच्छुक हालत में भी प्रेरित करने लगा; यहां तक कि बलपूर्वक उसे सती बनाने के लिए बाध्य करने लगा । विधवा के और तरह से जीवन बिताने के रास्ते बन्द कर दिये गए थे।

१७ वीं, १८ वीं ईस्वी में तो जबरदस्ती ही सती बनाया जाने लगा। जो विधवाएँ ऐसा करने से इन्कार करती थीं उन्हें समाज में पतित गिना जाने लगा रूढ़िधर्म का चारों ओर बोलबाला था । जिन प्रान्तों में विधवाओं की संख्या

[शेष पृष्ट २३ पर देखिये]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग्य निर्माण—

—इन्द्र एम० ए०

"नहीं पिता जी ! मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करता है । दुनिया में सभी एक दूसरे के काम आते हैं ; किन्तु इसके लिए किसी को यह कहने का अधिकार नहीं है कि मैं दूसरे का स्वामी हूँ, या उस पर उपकार करता हूँ । स्वामी और सेवक की कल्पना उन आलसियों द्वारा की गई है जो दूसरों के परिश्रम पर गुलछर्रे उड़ाना चाहते हैं । प्रत्येक व्यक्ति समाजरूपी मशीन का कल पुर्जा है । उन में परस्पर न कोई उपकारी है और न कोई उपकृत । जिस समाज में इस प्रकार का भेद विद्यमान हैं, वह विकास नहीं कर सकता ।" राज कुमारी ने प्रश्न का विश्लेषण करते हुए कहा ।

गुणसुन्दरी राजा अरिकेसरी की एक मात्र सन्तान थी । मातापिता का वात्सल्य, राजकीय वैभव तथा अनेक दास दासी होने पर भी वह कुछ और ही सोचा करती थी । जब किसी दरबारी को राजा के सामने हाथ जोड़ कर गिड़-गिड़ाते देखती तो मन ही मन खीझ उठती, वह सोचती कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर क्यों शासन करता है ! सब का अधिकार समान क्यों नहीं हैं ? दास दासियों की जी हुजूरी उसे न सुहाती । वह तो यही चाहती थी कि सभी में समान व्यवहार हो । समान आमोद प्रमोद हो । पिता चाहते थे कि वह एक राजकुमारी के समान रहे । अपने को दूसरों से उत्कृष्ट माने, किन्तु वह सब के साथ बन्धुत्व का नाता जोड़ना चाहती थी ।

एक दिन दरबार लगा हुआ था । महाराज अरिकेसरी राजकीय वेषभूषा से सुसज्जित हो कर ऊँचे सिंहासन पर विराजमान थे । सभी दरबारी अपने अपने पद के अनुसार ऊँचे नीचे आसनों पर बैठे थे । एक तरफ प्रजा के प्रमुख नागरिक थे । चारों ओर से जयनाद हो रहा था । हुजूर, खमा, अन्नदाता आदि शब्दों का तांता लगा हुआ था । अरिकेसरी दरबार की शोभा और अपनी प्रशंसा सुन कर प्रफुल्लित हो रहा था । वह अपने को उन दरबारियों तथा समस्त प्रजा का भाग्यविधाता मानने लगा था । इस बात का उसे गर्व था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने में गुणसुन्दरी उधर आ निकली और राजा के साथ ही सिंहासन पर बैठ गई।

अरिकेसरी ने अपने आप कहना प्रारम्भ किया—प्रजाजनो ! हमें इस बात का हर्ष है कि राज्य में सभी प्रकार से सुख बरस रहा है। सभी चैन की वंशी बजा रहे हैं। आधि, व्याधि, अभाव, भय आदि किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। क्या आप लोग बता सकते हैं, यह किस की कृपा है ?

'हुजूर की' सभी ने एक स्वर में कहा। एक वृद्ध ब्राह्मण उस की व्याख्या करते हुए बोला—

"श्रीमान् समस्त पृथ्वी के स्वामी हैं। सभी नर नारी श्रीमान् के सेवक हैं। श्रीमान् का दिया हुआ खाते हैं। यदि श्रीमान् की कृपा न रहे तो प्रलय मच जाय। पृथ्वी रसातल में चली जाय। कोई भी प्राणी जीवित न रह सके।"

अरिकेसरी मूंछों पर ताव देता हुआ अपनी झूठी प्रशंसा सुन रहा था। वह सचमुच अपने को उस प्रशंसा का अधिकारी मानने लगा था। मन ही मन कह रहा था, दुनिया में यदि कोई ईश्वर है तो वह मेरे अतिरिक्त कोई नहीं है।

गुणसुन्दरी से अधिक नहीं सहा गया। वह तेजी के साथ खड़ी हो गई। और बोली—"पिता जी ! मैं यह नहीं मानती। व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करता है। कोई किसी पर निर्भर नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता, पौरुष का पुतला नर अपने को इतना दीन क्यों बनाता है ?"

गुणसुन्दरी के शब्दों से सभा में सन्नाटा छा गया। झूठी खुशामद पर जीने वाले बड़े बड़े दरबारियों का मुख लज्जा से झुक गया। किन्तु राजा को उसकी बात समझ में नहीं आई।

मानव दूसरों के विषय में सोचते समय जिस तर्क से काम लेता है, उसे अपने विषय में भूल जाता है। एक धनवान् शारीरिक श्रम के बदले में पैसा देता है। उसे अपने पैसे की याद हमेशा बनी रहती है और उस के बदले में चाहता है कि दूसरा व्यक्ति जीवन भर के लिए कृतज्ञ बना रहे। अपने को सेव्य मानता है और दूसरे को सेवक। इस बात को भूल जाता है कि पैसे का मूल्य श्रम के द्वारा चुकाया जा चुका है। अब दोनों का पद समान है। वह श्रम को कम महत्व देता है और पैसे को अधिक, जब कि वस्तुस्थिति इस के सर्वथा विपरीत है। पैसा श्रम के अधीन है, श्रम पैसे के अधीन नहीं है। अरिकेसरी के मन में भी यही भ्रम जमा हुआ था। वह मानने लगा था कि प्रजा का अस्तित्व राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर निर्भर है। झूठी प्रशंसा ने इसे और भी दृढ़ बना दिया था। गुणसुन्दरी के शब्दों से उस की अस्मिता को आघात लगा। अहंकार क्रोध का रूप धारण करने लगा। पितृसुलभ वात्सल्य भी उसे न रोक सका।

उस ने क्रोध मिश्रित गर्व के साथ कहा—"सुन्दरी! तुम मेरे तेज से अपरिचित हो। इसीलिए ऐसी बातें करती हो। मेरे नाम से शत्रु काँपते हैं। किसी का साहस नहीं कि मेरे सामने आँख उठा कर देख सके।"

"मानती हूँ, पिता जी! आप बड़े बलवान् हैं।" गुणसुन्दरी ने शान्त भाव से कहा। "किन्तु आप का यह बल प्रजा के सहयोग पर निर्भर है। आखिर, आप का कोश, आप की सेना, आप का शस्त्रागार सभी प्रजा के परिश्रम का ही तो फल हैं, आप इस बात को क्यों भूल जाते हैं। यदि मान भी लिया जाय कि आप जनसंहार में बड़े कुशल हैं, जिसे वीरता के नाम से कहा जाता है, तो इस का यही अर्थ है कि आप प्रजा का विनाश कर सकते हैं। इस का यह अर्थ तो नहीं है कि प्रजा अपने भरण पोषण के लिए आप पर निर्भर है। इस से आप हिंसक हो सकते हैं अन्नदाता नहीं।"

"सुन्दरी तुम वाचाल बन गई हो। तुम नहीं जानती मेरे क्रोध का क्या परिणाम है?" क्रोध और भी तीव्र हो गया।

"मैं जानती हूँ पिता जी! आप का क्रोध बड़ा भयङ्कर होता है। किन्तु मेरा विश्वास है कि मनुष्य अपने आप का निर्माण स्वयं करता है।" सुन्दरी के शब्दों में दृढ़ता थी।

"क्या तुम इस की परीक्षा दे सकोगी? राजा ने उत्तेजित हो कर पूछा।

"हाँ, पिता जी! समय आने पर मैं पीछे न हटूंगी।"

राजा ने सुन्दरी के सभी वस्त्राभूषण उतरवा लिए और सादे वस्त्रों के साथ उसे एक लकड़हारे के साथ ब्याह दिया। साथ ही प्रजा में घोषणा करदी कि जो व्यक्ति गुणसुन्दरी की सहायता करेगा, उसे फांसी पर लटका दिया जाएगा। मन्त्री तथा रानियों ने राजा से अपना निश्चय बदलने की प्रार्थना की, किन्तु उसने किसी की न मानी।

राजकुमारी गुणसुन्दरी लकड़हारे के पीछे पीछे उसकी झोंपड़ी में चली आई।

"राजकुमारी! तुम्हारे अनुपम सौन्दर्य और गुणों को देख कर ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो आकृष्ट न हो। बड़े बड़े राजकुमार तुम्हारी कृपा के लिए लाला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यित हो उठेंगे। मुझ सरीखे अभागे के साथ तुम्हें अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहिए। तुम किसी दूसरे देश में जाकर किसी राजकुमार के साथ विवाह कर लो।" लकड़हारे ने वस्तुस्थिति को सामने रखते हुए कहा।

"क्या कहा ? मैं अपने भविष्य को सुखी बनाने के लिए किसी राजकुमार का आश्रय लूं ! क्या आश्रय के लिए मेरे पास पिता की गोद न थी ? नहीं, ऐसा नहीं होगा। मैं उपने भाग्य का निर्माण स्वयं करूँगी। दूसरे पर निर्भर रहने की अपेक्षा इस झोंपड़ी में रहना और लकड़ियां बेच कर निर्वाह करना मुझे अधिक पसन्द है।"

गुणसुन्दरी लकड़हारे के साथ रहने लगी उसके मुख पर वही प्रसन्नता थी जो राजमहल में। दिन भर परिश्रम करती और अपने पारिवारिक जीवन को अधिक से अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न करती।

एक दिन पुण्यपाल लकड़ियों का गट्ठड़ लेकर आया। उससे सारी झोंपड़ी में सुगन्ध भर गई। भार खोला तो कुछ लकडियाँ वासी चन्दन की मिलीं। गुणसुन्दरी उन्हें ले जाकर गाँधी की दुकान पर बेच आई। धीरे धीरे यह नित्य का कार्य हो गया। पुण्यपाल चन्दन की लकड़ियां लाता और गुणसुन्दरी उन्हें बाजार में अच्छे मूल्य पर बेच आती।

गुणसुन्दरी के प्रयत्न से पुण्यपाल भी अब वाणिज्य की बातें समझने लगा था। उसमें लकड़हारों वाला फूहड़पन नहीं रहा था। उसका परिचय पोतनपुर के एक सार्थवाह के साथ हो गया। दोनों ने मिल कर व्यापार किया। पुण्यपाल के पास भी पर्याप्त धन हो गया।

धीरे धीरे उसने विदेशों के साथ व्यापार प्रारम्भ किया। समुद्रमार्ग पर जहाज चलने लगे। स्थलमार्ग पर क़ाफ़िले। कुछ ही दिनों में पुण्यपाल का नाम चारों ओर फैल गया।

एक दिन गुणसुन्दरी को पिता से मिलने की इच्छा हुई और उसने भद्दिलपुर चलने के लिए प्रस्ताव रखा।

श्रेष्ठी पुण्यपाल की यात्रा का समाचार चारों ओर फैल गया। राजा अरिकेसरी भी उसकी सम्पत्ति के विषय में विचित्र कथाएँ सुन चुके थे। उनके हृदय में भी उसे देखने की उत्सुकता हो रही थी। भद्दिलपुर पहुँचने पर उस का शाही स्वागत किया गया। कुछ ही दिनों में पुण्यपाल और अरिकेसरी में अत्यन्त घनिष्ठता हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणसुन्दरी के कहने से पुण्यपाल ने एक दिन राजा को भोजन के लिए निमन्त्रित किया। गुणसुन्दरी चित्र विचित्र वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आती और भोजन परोस कर शीघ्रता के साथ चली जाती। राजा उसे पूरी तरह न देख पाता।

जब भोजन समाप्त हो गया, पुण्यपाल और राजा एक सजे हुए कमरे में विश्रम्भालाप करने लगे। इतने में गुणसुन्दरी विवाह के समय के वस्त्रों को पहनकर उस कमरे में आई और पिता के पैर छूए।

राजा अरिकेसरी उसे देखकर चकित रह गए। मुंह से निकल पड़ा--"क्या तुम्हीं मेरी गुणसुन्दरी हो ? बेटी ! मैं मानता हूँ, मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करता है। तुम्हारे जाने के बाद मुझे इस राज्य में कोई आकर्षण नहीं रहा। अब तुम्हीं इसे सँभालो। मैं अपना अन्तिम जीवन निवृत्ति में बिताना चाहता हूँ।"

शुभ मुहूर्त में पुण्यपाल का राज्याभिषेक हो गया। गुणसुन्दरी राजरानी बन गई।

—ooXooo—

[पृष्ट १८ के आगे]

ज्यादा रहती थी, जैसे बंगालमें; वहाँ सती के नाम पर सहस्रों निरपराध नारियाँ जला दी जाती थीं। स्त्री की पशु से भी गई गुजरी हालत थी। आज जैसे बढ़ती हुई जन संख्या को रोकने के लिए अर्थ शास्त्रियों ने युद्ध अनिवार्य बतलाए हैं, राष्ट्रीय सरकारें पुंस्त्वशक्ति नाश (Sterlisation) का विधान करती हैं वैसे ही संभवतः उन समयों में धर्मशास्त्रियों ने विधवाओं के खतरे से समाज को त्राण देने के लिए सती नाम की प्रथा पर जोर दिया था। भारत की समाजजागृति के आन्दोलन के नेता राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को धन्यवाद है जिनके सत्प्रयत्न से यह अमानवीय प्रथा सदा के लिए बन्द हो गई। अंग्रेज गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक को बधाई है, जिसने १८२९ में सरकारी कानून द्वारा इस प्रथा को सदा के लिए बन्द कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल पड़—

—रवीन्द्र

अरे ओ अभागे !

यदि तू स्वयं चिन्ता-ग्रस्त होकर गिर पड़ेगा,
तो, दूसरे को कैसे बल देगा ?
उठ, खड़ा हो जा, हिम्मत न हार ।
लाज, छोड़ दे, भय छोड़ दे—
तू अपने आप को ही जीत ले ।
जब ऐसा हो जाएगा,
तू जिसे पुकारेगा वही तेरी पुकार पर चल पड़ेगा ।
अगर तू रास्ते में निकल ही पड़ा है,
तो अब
जो भी हो, जैसे भी हो, लौटने का नाम न ले ।
अरे ओ अभागे !
तू बार बार पीछे की ओर न देख ।
भाई मेरे !
दुनिया में भय और कहीं नहीं है,
भय केवल तेरे मन में है ।
तू सिर्फ अभय चरणों की शरण लेकर निकल पड़ ।

* * * *

जो तुझे पागल कहे
उसे तू कुछ भी मत कह ।
आज तो तेरे ऊपर धूल उड़ाता है,
कल प्रातः काल
हाथ में माला लिए पीछे पीछे फिरेगा ।
आज चाहे वह मान करके वही पर बैठा रहे;
कल भक्ति से नम्र हो कर अपना शीश नवाएगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—रवीन्द्र

सौन्दर्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—

—मोहनलाल मेहता बी० ए०, शास्त्री

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह सौन्दर्य को देखकर तुरन्त आकर्षित हो जाता है। सौन्दर्य का यह भाव प्रत्येक व्यक्ति में पाया जाता है। इस जगत् में कोई भी ऐसा स्वस्थ व्यक्ति न होगा जो सौन्दर्य के प्रति आकर्षण न रखता हो। अब प्रश्न यह होता है कि क्या सौन्दर्य वास्तव में कोई बाह्य पदार्थ है या केवल मनुष्य के भीतर की वासना ही सौन्दर्य का रूप धारण कर लेती है? इसका उत्तर यह है कि सौन्दर्य का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है। बच्चा जब उत्पन्न होता है तब उसके हृदय में सौन्दर्य के प्रति एक स्वाभाविक प्रेम होता है। जगत् के नाना प्रकार के पदार्थों को वह अपनी आँखों से देखता है और उस चक्षुदर्शन में वह विशेष आनन्द की अनुभूति करता है। कुछ बड़ा होने पर वह कोमल कोमल पदार्थों का स्पर्श करता है और उस स्पर्श में आह्लाद का अनुभव करता है। सुन्दर सुन्दर द्रव्यों को सूँघता है और उस गंध से उसका हृदय प्रसन्न होता है। मधुर मधुर स्वरों का श्रवण करता है और खुश होता है। बालक के इस अनुभव को यदि हम ध्यान पूर्वक देखने का प्रयत्न करें तो हमें यह सहज ही समझ में आसकता है कि सौन्दर्य का वास्तव में अन्य पदार्थों की भांति स्वतन्त्र अस्तित्व है। यह केवल मानसिक कल्पनामात्र नहीं है। जो बालक संसार के ऐन्द्रिय-अनुभवों से सर्वथा दूर है, जिसके चित्त में वासना नाम की कोई सत्ता नहीं है, जो जगत् को उसी रूप में देखता है जिस रूप में कि जगत् अपने आप में है उसके उस निर्दोष अनुभव को वासना-जन्य अनुभव तो नहीं कहा जासकता। जिस प्रकार वह जगत् का एक अंग होता है उसी प्रकार अन्य वस्तुएँ भी जगत् का ही अंग होती हैं। जगत् के अंगों का पारस्परिक-आकर्षण वासनाजन्य नहीं कहा जा सकता। वह तो उसी प्रकार सच्चा होता है जिस प्रकार कि जगत् स्वयं सच्चा होता है। जो लोग जगत् की व्यावहारिक सत्ता मानते हैं उन्हें सौन्दर्य की भी व्यावहारिक सत्ता माननी ही पड़ती है और जिन लोगों का संसार की पारमार्थिक सत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विश्वास है उन्हें सौन्दर्य को भी उसी रूप से स्वीकार करना चाहिए। जगत् के अस्तित्व को मानते हुए सौन्दर्य को वासना का कार्य बताना ठीक नहीं।

इस प्रकार से सौन्दर्य की स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध हो जाने पर हम यह भी कह सकते हैं कि जिस प्रकार संसार की अन्य धाराओं का स्वतन्त्र विकास होता है—अन्य सत्य पदार्थों की स्वतन्त्र रूप से प्रगति होती है उसी प्रकार से सौन्दर्य-भाव की भी स्वतन्त्र गति से वृद्धि होती है। जब बालक कुछ मूलभूत सौन्दर्य-सिद्धान्तों से परिचित हो जाता है, जब वह यह समझने लग जाता है कि सौन्दर्य-भाव की उत्पत्ति अमुक अवस्था में अमुक पदार्थ से होती है तब वह उस अवस्था में उन पदार्थों से ही प्रेम करने लग जाता है। सौन्दर्य-भाव की पूर्ति करने वाले वे पदार्थ स्वयं सुन्दर बन जाते हैं और वह उन पदार्थों को सर्वाङ्ग सुन्दर समझ कर उनके सुख-दुख में अपना सुख दुख देखने लगता है। धीरे धीरे उसे इतना अभ्यास हो जाता है कि उन पदार्थों की कल्पनामात्र उसके हृदय में सौन्दर्य-भाव को उत्पन्न कर देती है। जिस समय सौन्दर्य का स्रोत उसके सामने प्रत्यक्षरूप से नहीं बहता है उस समय वह अपनी कल्पना-शक्ति से उस स्रोत का निर्माण कर लेता है और उस काल्पनिक स्रोत में स्नान कर वह उतने ही आनन्द का अनुभव करता है जितना कि उसे वास्तविक-स्रोत में गोता लगाने से प्राप्त होता है। इस प्रकार उस बालक का बीजरूप में रहा हुआ सौन्दर्य-भाव पूर्णरूप से विकसित होता है। जगत् के किसी भी सुन्दर पदार्थ से उसके सौन्दर्य-भाव की तृप्ति होती है। जहाँ वह सुन्दरता का आभास पाता है, तुरन्त उस ओर खिंच जाता है। यदि कोई उसके इस स्वाभाविक आकर्षण में विघ्न उत्पन्न करता है तो उसे उस पर क्रोध आता है और वह उस बाधा को नष्ट करने के लिए पूरा प्रयत्न करता है। काल्पनिक जगत् का निर्माण क्यों करता है ? काल्पनिक और वास्तविक सौन्दर्य की इस अनुभूति को यदि हम वासना कहें और उसका अपमान करें तो यह हमारा अज्ञान है।

अब प्रश्न यह है कि वास्तविक पदार्थ के होते हुए मनुष्य काल्पनिक जगत् का निर्माण क्यों करता है ? इसका सीधा सा उत्तर यही है कि जगत् में इतने अधिक पदार्थ हैं कि मनुष्य अपनी छोटी सी आयु में समस्त पदार्थों का प्रत्यक्ष उपभोग नहीं कर सकता—अपने हृदय-गत भावों को उनके प्रत्यक्ष उपभोग से शान्त नहीं कर सकता। इस अभाव की पूर्ति के लिए—इस दुर्बलताजन्य अभाव को पूरा करने के लिए वह एक ऐसे संसार की रचना करता है जिसमें वह उन पदार्थों के प्रतिनिधियों से भेंट करता है और उस भेंट से आत्म-संतोष का अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। अपने काल्पनिक संसार में कुछ ऐसे प्रतीकों का निर्माण करता है, जिनकी सत्ता से उसे संतोष होता हैं—उसकी इच्छा पूर्ति होती है। इस प्रकार की हमारी सौन्दर्य-कल्पना दो प्रकार की होती है—एक कल्पना वह है जिसका व्यक्ति स्वयं निर्माण करता है। इसी कल्पना को अंग्रेजी में Creative Aesthetic Imagination कहते हैं। उदाहरण के रूप में एक कवि को लीजिए। कवि क्या करता है ? वह एक ऐसे संसार का निर्माण करता है जिसकी आंशिक अनुभति उसका आधार होती है। वह आकाश में चन्द्रमा देखता है। यह चन्द्र-दर्शन उसके हृदय में एक ऐसा भाव उत्पन्न करता है कि वह उससे दूर नहीं होना चाहता किन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता है ? पूर्णचन्द्र का दर्शन तो एक महीने में केवल एक ही बार तो होता है और वह भी रात्रि की गिनती की घड़ियों में, और फिर शरत्-चन्द्र तो वर्ष में एक ही बार दिखाई देता है। इस भाव की तृप्ति के लिए भाषा का आधार लेकर वह ऐसे काव्यकी रचना करता है जिसमें उस आंशिक चन्द्रदर्शन की अनुभूति को उँड़ेल देता है। जिस समय वह काव्य का निर्माण करता है उस समय उसे उतनी ही आनन्दानुभूति होती है जितनी कि पूर्णिमा की रात्रि के चन्द्रदर्शन के समय। उस आनन्दानुभूति को वह अपने जीवन का प्रमुख अंग मानता है और कभी कभी तो वह जगत की सम्पूर्ण सौन्दर्य-राशि का उसी में दर्शन करता है। उसके हृदय पर उस चन्द्र दर्शन का इतना अधिक प्रभाव होता है कि वह उसे सौन्दर्य का प्रतीक मान कर अप्राप्य-सौन्दर्य की अभावपूर्ति कर लेता है। यही कवि का प्रतीकवाद है। यही सौदर्य की काल्पनिक सत्ता का रसास्वाद है।

दूसरी कल्पना वह होती है जिसका निर्माण व्यक्ति स्वयं तो नहीं करता किन्तु अन्य व्यक्ति द्वारा निर्मित कल्पना का रसास्वादन उतने ही आनंद से करता है जितना कि निर्माता स्वयं उस कल्पना का निर्माण काल में आनन्द ले चुका है। उदाहरण के तौर पर महाकवि कालिदास का मेघदूत ले लीजिए। एक सहृदय पाठक जिस समय मेघदूत पढ़ता है उस समय वह कितना आनन्दित होता है ? पाठक के हृदय में दाम्पत्य प्रेम की कितनी ऊँची अनुभूति होती है। वह पढ़ता पढ़ता उस रसोदधि में कण्ठ पर्यन्त डूब जाता है। उसे यह भान ही नहीं रहता कि मैं कहाँ हूँ और क्या हूँ ? वह उस काव्यलोक को ही अपना वास्तविक लोक समझ कर मस्त हो जाता है। उस काव्य के एक एक वाक्य को अपनी अनुभूति का प्रतीक समझता है। उसकी एक एक कल्पना को जीवन का सोपान समझता हुआ बढ़ता जाता है—कवि के काल्पनिक प्रासाद में चढ़ता जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसी कल्पना को अंग्रेजी में Receptive Aesthetic Imagination कहते हैं। इसी प्रकार की कल्पनाएँ संगीत और चित्रकला में भी होती हैं। इस दूसरे प्रकार की कल्पना का आधार पहले प्रकार की कल्पना है। पहले प्रकार की कल्पना का स्तर ऊँचा होते हुए भी जब तक दूसरे प्रकार की कल्पना का स्तर उन्नत नहीं होगा तब तक पाठक को उसका सही स्वाद नहीं आ सकता। पाठक का हृदय भी उतना ही सरस एवं सरल होना चाहिए कि वह कवि कल्पना की चोटी तक आसानी से पहुँच सके। जब तक पाठक का स्तर इतना उन्नत नहीं होगा तब तक उसे उस कल्पना का आनंद प्राप्त नहीं हो सकेगा। ऊँची कल्पना के रसास्वाद के लिए उतना ही ऊँचा हृदय चाहिए। निम्न स्तर का पाठक ऊँची कल्पना तक नहीं पहुँच सकता।

इस प्रकार से सौन्दर्य की अनुभूति व्यक्ति के जीवन का एक अंग है। इस अंग की कमी व्यक्ति के जीवन की पूर्णता में बाधक होती है। जिस व्यक्ति के जीवन में सौन्दर्य की दृष्टि नहीं होती, उसे हम पूर्ण व्यक्ति नहीं कह सकते। हमें जगत् में कुछ ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जिनको संगीत का भान ही नहीं होता। वे किसी लय, राग और ताल को उसी प्रकार से सुनते हैं जिस प्रकार कि सामान्य बातचीत। उन्हें संगीत और सामान्य गद्य में कोई भेद नहीं दिखाई देता। इस प्रकार के लक्षण एक विकृति है। इसी प्रकार से कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिन्हें सौन्दर्य का भान ही नहीं होता, उनके लिए जगत् की सभी वस्तुएँ एक सरीखी होती हैं। कोमलता और कठोरता का भेद उनकी दृष्टि में मिथ्या होता है। कुरूप और रूपवान के भेद को वे झूठा समझते हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध को वे कृत्रिम मानते हैं। उनके लिए जगत् में कोई आकर्षण ही नहीं होता। न तो वे चन्द्रमा को देखकर आह्लादित होते हैं और न फूलों की सुगन्ध से प्रसन्न। हँसता हुआ नन्हा सा बच्चा भी उनके लिए आकर्षण की वस्तु नहीं होता। नारी के रूप को वे वासना का प्रतीक समझ कर सर्वदा दूर भागने का ही प्रयत्न किया करते हैं। ये सब लक्षण मनोविज्ञान की दृष्टि में विकृति के सूचक हैं। सौन्दर्य का भान जीवन का अपना भाव है—जीवन की स्वस्थता का प्रतीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलाक–

–पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री

विवाह की संस्था का प्रारंभ उस समय हुआ जब मनुष्य सर्वथा असभ्य अथवा अर्धसभ्य जीवन से सभ्यता की ओर अग्रसर होने लगा। मानव समाज की प्राथमिक दशा में इस संस्था का अभाव था। जैन शास्त्रों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के समय से विवाह के वर्तमान स्वरूप का सूत्रपात हुआ। महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि ऋषि श्वेतकेतु ने नियमित विवाह की व्यवस्था दी। उससे पहले विवाह का बंधन न था। 'पशुओं की तरह संसार में सभी वर्णों की स्त्रियां स्वतंत्र हैं।' महाभारत से यह भी प्रगट होता है कि उत्तर कुरु और माहिष्मती में नारियां 'कामचारा' और 'स्वरिणी' थीं। डाक्टर आल्टेकर का मत है कि यह अवस्था वेदों के समय से पहले की है। ऋग्वेद के समय नियमित विवाह होते थे और 'अपत्नीक' को अपवित्र समझा जाता था।

विवाह का उद्देश्य मनुष्य की नैसर्गिक काम भावना की पूर्ति अथवा यौन संबंध ही नहीं है। सन्तान की उत्पत्ति तथा उसके पालन पोषण की ज़िम्मेवारी का बोझ विवाहित स्त्री पुरुष को उठाना पड़ता है। इससे पति और पत्नी के निजी विकास में ही सहायता नहीं मिलती बल्कि समाज और उसकी संस्कृति का रक्षण और परिवर्धन भी व्यवस्थितरूप से होता है। पारिवारिक जीवन की आधार शिला विवाह ही है। अतः विवाह संबंधी वही नियम उचित और न्यायपूर्ण कहे जा सकते हैं जो राष्ट्र और समाज के हितों को ध्यान में रखते हुए दम्पती को अधिक से अधिक सुख और स्वास्थ्य प्रदान कर सकें। प्रसिद्ध विद्वान बरट्रांड रसेल का कथन है कि "विवाह में आनन्द और सुख उसी दशा में संभव है जब दोनों ओर पूरी समानता के भाव हों; एक दूसरे की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न हो; अधिक से अधिक शारीरिक और मानसिक साम्य हो और जीवन के विविध पहलुओं के मूल्यांकन में यथासंभव ऐकमत्य हो।" जहां पति पत्नी केवल एक दूसरे के चौकीदार हैं, वहां विवाह का असफल होना निश्चित है। यौन संबंध तथा अन्य दृष्टिकोणों से जब स्त्री-पुरुष का सहवास सुख व आनन्द से भरपूर होता है तब एक दूसरे के प्रति वफ़ादार न रहने की संभावना नहीं रहती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक जीवन का जो रूप इस समय हमारे सामने है, उस के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि समाज और राष्ट्र का हित इसी बात में निहित है कि साधारणतः विवाह स्थायी हों । उनका विच्छेद अहित कर है । पति पत्नी का कर्त्तव्य है कि वे क्षणिक तुच्छ स्वार्थों की उपेक्षा कर अपने महान् उत्तरदायित्व को समझें । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । सामाजिक जीवन अपनाने का अर्थ है अपनी स्वच्छन्दता को छोड़ना, ऐसे नियमों और बंधनों को स्वीकार करना जो हमारे आत्म-सम्मान का घात न करें और जीवन को केवल एक मशीन न बना दें बल्कि हमारे समुचित विकास का साधन बनते हुए मानव समाज की सामूहिक उन्नति और रक्षा में सहायक हों । समय समय पर विचार में भेद हो सकता है, एक दूसरे से भूल होना भी संभव है, हमेशा हर चीज हमारी इच्छा और रुचि के अनुकूल ही नहीं होती । किंतु ऐसी अवस्थाओं में क्षमा, धैर्य, परस्पर सहयोग, भूलों के संमर्षण और उदारता से काम लेना चाहिए ताकि जीवन क्लेश और कलह के काँटों से सुरक्षित रह सके।

हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि आदर्श अवस्था वही है जहाँ तलाक अथवा विवाह विच्छेद न हो । तलाक का अर्थ है वैवाहिक बंधन को तोड़ कर पति पत्नी को अन्यत्र पुनः विवाह करने की स्वतंत्रता देना । तलाक के प्रचलन से पारिवारिक जीवन नष्ट भ्रष्ट हो जाता है । बच्चे जो कि राष्ट्र अथवा मानव जाति की अमूल्य संपत्ति हैं, उपेक्षित हो जाते हैं । उनके पालन पोषण अथवा शिक्षा की व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाती है । समाज को स्थिरता प्रदान करने वाले प्रेम, पारस्परिक सहायता, हृदय की विशालता और सहानुभूति आदि गुणों का अस्तित्व नहीं रहता और न कोई मर्यादा ही क़ायम रहती है ।

किन्तु आदर्श और व्यवहार में अन्तर है । कोई भी सामाजिक विधान सार्वकालिक और सर्वव्यापक नहीं हो सकता । परिस्थितियाँ अपवाद मार्ग के लिए हमें बाध्य करती हैं । वस्तुस्थिति तो यह है कि अपवाद ही नियम या आदर्श की सार्थकता सिद्ध करते हैं । ऐसी दशा में यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या हर परिस्थिति में विवाह का बँधन स्थायी ही होना चाहिए ? क्या इस विषय में नियम को शिथिल करने की आवश्यकता है ? यदि है तो किन अवस्थाओं में ? क्या तलाक के विषय में पुरुष और स्त्री को एक ही स्तर पर रखना चाहिए अथवा भिन्न भिन्न स्तर पर ?

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव जाति ने प्रायः सभी युगों में और सब देशों में किसी न किसी कारण से कम या अधिक अंश में तलाक़ को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्यता दी है। एक ओर प्राचीन ईसाई धर्म तथा हिन्दू धर्म का आदर्श है। दोनों ने विवाह के बंधन को स्थायी माना और तलाक को घृणित व पापमय घोषित किया; दूसरी ओर प्राचीन चीन में पत्नी को इस आधार पर हीं तलाक़ दे दिया जाता था कि वह बहुत वाचाल या बातूनी है।

महात्मा ईसा से यह प्रश्न पूछा गया था कि किन किन कारणों के आधार पर तलाक़ को जायज़ समझना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि यहूदियों में तलाक़ की प्रथा थी। महात्मा ईसा ने तलाक़ को ही पाप बताया और कहा कि यह विवाह की पवित्रता के प्रतिकूल है। रोमन कैथोलिक संप्रदाय के अनुयायी इसे स्वीकार करते हैं किन्तु व्यवहार में इस पर सख़्ती से अमल नहीं किया गया है। बड़े बड़े राजाओं, धनिकों और सामंतों को कुछ कारणों से तलाक़ की अनुमति दी जाती थी। उन्हें अनुमति प्राप्त करने के लिए बहुत खर्च करना पड़ता था। प्रोटेस्टेंट संप्रदाय ने जहाँ पादरियों को विवाह की आज्ञा दी, वहाँ तलाक़ को भी स्वीकार किया। आज पाश्चात्य देशों में तलाक़ का रिवाज है। उसके कारणों के विषय में एकरूपता नहीं है। रूस में सब से सरल नियम है। दम्पती में से किसी एक की इच्छा से ही तलाक़ मिल जाता है। परन्तु सुना जाता है कि वहाँ तलाक़ों की संख्या विशेष नहीं होती।

भारतीय संस्कृति में विवाह की पवित्रता को बहुत ऊँचे स्तर पर रखा गया है। विवाह का बंधन इस जीवन में तो अटूट है ही, उसे जन्मजन्मांतर में भी अविच्छेद्य समझा जाता है। इसके साथ साथ यह भी तथ्य है कि पुरुष को एक से अधिक विवाह करने का पूरा अधिकार था और अब भी है। परन्तु इसका उपयोग राजा, धनिक वर्ग और उच्च वर्ण के कुछ लोग ही करते हैं। मनु के अनुसार यह पुरातन नियम है कि एक व्यक्ति अपनी पत्नी को बेच दे या छोड़ दे तब भी वह पति से विमुक्त नहीं हो जाती। विवाह एक संस्कार है और उसी के फलस्वरूप पत्नीत्व का आविर्भाव होता है। श्री काने History of Dharma Shastra में लिखते हैं कि पति या पत्नी के पतित हो जाने पर या व्यभिचार करने पर भी हिन्दूधर्म के अनुसार विवाह का संस्कार रद्द नहीं हो जाता। ऐसी अवस्था में पत्नी के लिए प्रायश्चित्त या तप का विधान तो है मगर विवाह का संस्कार दोबारा नहीं किया जाता। पति के दूसरा विवाह कर लेने पर भी पहले का विवाह क़ायम रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह बँधन की ऐसी जटिलता के बावजूद धर्मशास्त्रों में अपवादों का उल्लेख है। नारद और पराशर ने पति के गुम हो जाने, मरजाने, नपुंसक होने, संन्यास ग्रहण करने या जाति से बहिष्कृत हो जाने की दशाओं में स्त्री को पुनः विवाह करने का अधिकार दिया है। मनु तथा कतिपय अन्य ऋषियों ने भी इस प्रकार की कई अवस्थाओं का उल्लेख किया है। लम्बे समय तक पति की अनुपस्थिति, पति का निम्न जाति का होना, स्वभाव की कुटिलता, पागलपन, कोढ़ या अन्य रोग, गोत्र की समानता, दासता और अभिनेता (Actor) का पेशा आदि ऐसी ही अवस्थाएँ हैं। टीकाकारों का कथन है कि ये नियम कलियुग में लागू नहीं होते। कौटिल्य अर्थशास्त्र में तलाक़ संबंधी कई बातें हैं। पति पत्नी दोनों एक दूसरे से घृणा करते हों (कोई एक नहीं) तो तलाक़ हो सकता था। यदि पति को पत्नी की ओर से आघात का भय हो तो पति विवाह के समय पत्नी को प्रदान की गई संपत्ति लौटा कर उसे तलाक़ दे सकता था। यदि पत्नी को आघात का भय हो तो ऐसी सम्पत्ति वापिस करने की जरूरत न थी। कौटिल्य का यह भी कहना है कि जो विवाह ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष या दैव कोटि के हों, उन का विच्छेद नहीं हो सकता।

परन्तु आश्चर्य यह है कि ब्राह्मण साहित्य अथवा जैन साहित्य में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते जिनसे तलाक़ के व्यवहार का पता चलता हो। डाक्टर आल्टेकर लिखते हैं कि बौद्ध साहित्य में कुछ उदाहरण पाए जाते हैं मगर बहुत ही कम। काणा नाम की एक स्त्री ने अपने पति के पास आने से इन्कार कर दिया। क्योंकि उसने पति की अनुपस्थिति में दूसरा विवाह कर लिया था। भिक्षुणी इसीदासी ने अपने पूर्व जीवन में कई बार अपने पति को तलाक़ दिया था।

जहाँ तक हिन्दुओं की उच्च जातियों का सम्बन्ध है, तलाक नहीं के बराबर रहा है। किन्तु हिन्दुओं की तथाकथित निम्न जातियों में अब भी तलाक़ का प्रचलन है। उनमें यह प्रथा है कि बिरादरी की पंचायत के सामने और उसकी अनुमति से तलाक़ हो जाता है। तलाक़ का अधिकार व्यभिचार के कारण ही प्रायः दिया जाता है।

पितृ-सत्तात्मक परिवार में तलाक़ आदर्श स्थिति का द्योतक नहीं है, यह सब मानते हैं। किन्तु कुछ अवस्थाएँ ऐसी हैं जब कि गृहस्थ जीवन लड़ाई झगड़े का अखाड़ा बन सकता है और कलह और असंतोष की वृद्धि हो सकती है। उन अवस्थाओं में तलाक़ की अनुमति न देने का अर्थ होगा कि उससे भी अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयंकर बुराइयों का आह्वान किया जाए । वैवाहिक जीवन में व्यक्ति के निजी सुख और सर्वतोमुखी विकास के साथ साथ ही समाज व राष्ट्र के हित का ध्यान रखना पड़ता है । किसी एक की उपेक्षा उचित नहीं । कल्पना करें कि दम्पती में कोई एक पागल हो, किसी भयंकर रोग से पीड़ित हो, नपुंसक हो, शराब का आदी हो, व्यभिचारी हो या भयंकर अपराध करता हो । क्या ऐसी दशा में पति या पत्नी को विवश किया जा सकता है कि वे एक दूसरे के साथ रहें ? ऐसी सख्ती अमानुषिक अत्याचार है । दोनों का व्यक्तिगत जीवन तो नष्ट होगा ही, समाज व राष्ट्र की दृष्टि से भी ऐसा सहवास हानिकर है । बच्चों पर इन दशाओं में बहुत बुरा असर पड़ेगा । सच तो यह है कि इनमें किसी भी दशा में दम्पती को सन्तान पैदा करने की अनुमति देना ही अनुचित है । माता पिता में किसी एक का भी उपर्युक्त अवस्थाओं में होना वर्तमान और भावी सन्तति के लिए अहितकर है । बच्चों को ऐसे व्यक्ति की संगत से बचाना ही समाज या राष्ट्रधर्म है । पति पत्नी में जो व्यक्ति इन अवस्थाओं का शिकार नहीं, उसके लिए सुखी जीवन के द्वार बन्द कर देना मानवता नहीं। यह तो एक निर्दोष प्राणी की हत्या है । कोई व्यक्ति अपनी इच्छा से दूसरा विवाह न करना चाहे तो यह अलग बात है । मगर यह देखना होगा कि दोनों के साथ रहने से समाज या बच्चों पर कोई बुरा असर तो नहीं पड़ता । अपवाद स्वरूप विषम परिस्थितियों में भी तलाक़ की आज्ञा न देने से यही नतीजा निकल सकता है कि या तो एक व्यक्ति जीवन की जिम्मेदारियों से भाग खड़ा हो, अथवा छिप कर व्यभिचार को पोषण दे या प्रगटरूप में व्यभिचारी बन जाए । ये सभी बातें समाज को अधिक हानि पहुँचाएँगी ।

प्रस्तावित हिन्दू कोड बिल के अनुसार हिन्दू कानून में जो परिवर्तन किए जा रहे हैं उनमें तलाक़ का विधान भी है । हम इस बिल की सभी धाराओं से उनके वर्तमान रूप में सहमत नहीं हैं । यह भी सन्देहास्पद है कि वर्तमान संसद् को ऐसा कानून बनाने का अधिकार है या नहीं । फिर एक धर्मनिरपेक्ष राज्य देश के किसी एक अंग के लिए ही कानून क्यों बनाए ? इसका रूप सब भारतीयों के लिए एक जैसा क्यों न हो ? क्या एक हिन्दू का बहुविवाह नाजायज़ है और मुसलमान का जायज़ ? हाँ, यह बात अवश्य है कि बिल में तलाक़ की जो शर्तें दी गई हैं, उनके अनुसार यह कहा जा सकता है कि ऐसी हालतों में तलाक़ का विधान प्रायः होना ही चाहिए । वे शर्तें ये हैं:—विवाह के समय निर्धारित आयु से कम अवस्था, विवाह का निषेधात्मक रिश्तों की कोटि का होना, वर या वधू में किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पक्ष का जड़बुद्धि होना, पागल होना या नपुंसक होना, पति का किसी दूसरी स्त्री को दाश्ता (Concubine) के रूप में रखना या पत्नी का इस रूप में रहना, हिन्दू धर्म को छोड़ कर किसी दूसरे धर्म को अंगीकार करना, भयानक या असाध्य कोढ़ आदि रोगों से पीड़ित होना। कुछ हालतों में अदालती अलहदगी को भी स्थान दिया गया है ताकि तलाक़ के विषय में शीघ्रता से काम न लिया जाय।

सारांश यह है जब तक समाज का वर्तमान ढाँचा कायम है, परिवार पितृ-सत्तात्मक है, बच्चों के पालन पोषण तथा उनकी शिक्षा आदि का भार माता पिता पर है, स्त्री आर्थिक दृष्टि से अपने पांव पर खड़ी नहीं हुई है, पुरुष और स्त्री के शिक्षा स्तर में काफी अन्तर है, तब तक कल्याण इसी में है कि तलाक़ का रिवाज न हो और पति पत्नी दोनों मिल जुल कर अपने कर्तव्य को पूरा करें। अगर कोई ऐसी दशा हो जब दोनों का पति पत्नी के रूप में रहना व्यक्ति और समाज की दृष्टि से हानिकर हो, जीवन केवल भाररूप हो जाता हो या अधिक भयंकर बुराई का भय हो तो तलाक़ की व्यवस्था भी होनी चाहिए। उसके नियम कड़े हों ताकि सरलता से उनका व्यवहार न किया जा सके। साधाणत: पुरुष और स्त्री को इस विषय में एक स्तर पर रखना होगा, किंतु स्त्रीकी वर्तमान आर्थिक विवशता में यह आवश्यक है कि यदि वह पुनर्विवाह न करे तो तलाक देने वाले पुरुष पर उसके निर्वाह का भार हो। जब ऐसा समय आएगा कि राज्य माता पिता दोनों की जिम्मेवारी स्वयं ले लेगा, तब न तो विवाह का वर्तमान रूप रहेगा और न तलाक़ की समस्या ही हमें परेशान करेगी।

[पृष्ट ४० के आगे]

यदि दोशी जी और उनका सम्यग्दर्शन "पुराण पन्थी है और रहेगा' तो उन्हें बधाई है, हमारी दृष्टि में जमाली आदि भगवान महावीर के विरोधी थे परन्तु यह भी सम्भव है कि जमाली आदि की दृष्टि में महावीर विरोधी था। इस आधार से हमें दोशी जी के पुराणपन्थ से झगड़ा नहीं है। अपने को समझाने की गुंजाइश ही उन्होंने बन्द कर रक्खी है। ऐसा निश्चय करने में वे स्वतन्त्र हैं, हम इसमें बाधक नहीं हैं।

भवदीय
हरजसराय जैन
मन्त्री

अमृतसर
१२-११-१९५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय–

—कुमारी सत्यवती जैन

दिवाकर की अन्तिम किरणों का धीमा प्रकाश गुरुदेव के ज्योतिर्मय मुख पर पड़ा; वह और भी चमत्कृत हो उठा, संसारके समक्ष एक नूतन ज्योति जगाने की भावना के प्रतीक उस विशालहृदय सिन्धु में एक नई तरङ्ग उठी—

'मेरे जीवन की श्वेत चादर पर कालिमा का धब्बा तो नहीं लगेगा? मेरे त्याग में संसार स्वार्थ की भावना तो नहीं पायेगा? ....नहीं, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने अपनी जीवन शृंखला को ढीला छोड़ दिया है, सांसारिक मोह छोड़ कर शिष्य के मोह में फँस गया हूँ, ...

गुरुदेव! कहते हुए विजय ने उनके चरण छू कर प्रभु के चरणों में भक्ति अर्चन करने की आज्ञा माँगी।

'ओह! समय हो गया? 'गुरुदेव ने सूर्यास्त के पश्चात् आकाश पर छाई लालिमा को देख कर कहा—

शिष्य ने देखा–आज किसी गम्भीर विचार में निमग्न हैं....

विजय!

आज्ञा; गुरुदेव!

"सन्ध्या समाप्ति के पश्चात् एक विषय पर विचार करना है,"

जो आज्ञा!

"चन्द्र की शीतल चन्द्रिका पृथ्वी पर मधुरता से छा गई, संसार आनन्द विभोर हो उठा; थके मांदे प्राण नव उत्साह पा कर स्फुरित हो उठे—

विजय अपने विचारों में उलझते हुए सोच रहे थे–विषय कैसा? मेरी प्रतिज्ञा है–गुरुदेव के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर देना। निश्चय ही आज मुझसे कोई अवज्ञा हो गई है? क्या मैं अपने पथ से विचलित हो गया हूँ?

विजय!

गुरुदेव!

हम भिक्षुक हैं हमारा जीवन अपने लिए नहीं दूसरों के लिए होना चाहिये। स्वयं की स्वार्थ साधना के लिए भिक्षा मांग कर खाने में जानते हो कितना पाप है?

'अनर्थ'—विजय आश्चर्य चकित थे, 'आज कैसी बातें हो रहीं हैं' ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांसारिक मोह बन्धन को तोड़कर यदि हम गुरुशिष्य के मोहबन्धन में फंस जायँ तो यह हमारी कितनी भयंकर भूल है ! संसार के पथ से सर्वथा अलग भिक्षुक का पथ है । साधक साधना करता है–अपने लिए, संसार के लिए नहीं । परन्तु संसार के प्रति उसकी मंगलकारी भावना अनिवार्य होती है । चाहे संसार उसके बताये पथ पर चले, चाहे न चले । अपनी आत्मा में कुछ शक्ति उत्पन्न हो जाने से विश्व उसे अमर भेंट समझ कर ग्रहण करने को प्रस्तुत रहता है । तू मेरे शरीर से प्रेम मत कर–मेरी आत्मा के साथ अपनी आत्मा का सम्बन्ध जोड़.....

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है,"

कल सुबह होते ही तुम्हें यहाँ से प्रस्थान कर देना होगा ।

उसके नेत्रों में प्रेमाश्रू उमड़ पड़े, गुरुदेव, इतनी शीघ्रता !

वत्स, कर्तव्य परायण बनो, विश्व तुम्हारी ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा है । जाओ अपनी भव्य भावना से परिचित कर के विश्व की आशा पूरी करो।

एक याचना है, गुरुदेव !

क्या !

केवल एक दिन के लिए अपने चरणों में स्थान दीजिये मेरे नेत्र आपके दर्शन करके · · ·

मेरे मोह में फँसते हो ?

नहीं, गुरुदेव, विजय का कंठ गुरु के प्रेमानुराग में आकर भर्रा गया;

"तुम्हें प्रभात होते ही यहां से प्रस्थान कर देना होगा ।" शासक के रूप में उत्तर मिला । विजय एक क्षण के लिए आवेश में आगये, मैं आपके चरण छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ नाथ––जब तक मेरी साधना पूरी नहीं होगी तब तक आपके दर्शन का अधिकारी नहीं बनूँगा । प्रभो ! मैंने जो यह साधना की अग्नि जलाई है चाहे उसमें शरीर की आहुति देकर भी उसे प्रज्वलित करना पड़े, मेरे हृदय में कभी संकोच न होगा । विजय के हृदय में कल्पना का सागर तरंगें मारने लगा और उन्हीं तरंगों पर तैरता हुआ मन विजयी होने की भावना से प्रफुल्ल हो उठा ।

गुरुदेव, गद्गद स्वर में बोले––तुमसे मुझे ऐसी ही आशा है विजय, जाओ तुम विजयी होओगे । अजय तुम्हारे साथ रहेगा ।

प्रभात की लालिमा एक नूतन ज्योति लिए पृथ्वी पर छा गई संसार उसे पाकर कर्तव्य परायणता के पथ पर बढ़ चला । विजय अपनी यात्रा की तैयारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे थे। अनन्त प्रकाशमान सूर्य की प्रखर किरणों ने वसुधा को छुआ—विजय हृदय में अत्यंत महत्वशाली आकांक्षा लिए गुरुदेव के चरणों में उपस्थित हुए :—गुरुदेव, आज्ञा !

आओ प्रिय, त्याग के कठिन मार्ग को प्रसन्नता से पार करते हुए मेरी चिर अभिलाषा को परिपूर्ण करो, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

विजय चरण छू कर उठ खड़े हुए, एक बार सतृष्ण नेत्रों से उस महान व्यक्ति की ओजस्विनी प्रतिभा का अवलोकन किया, गुरुशिष्य की दृष्टि परस्पर टकरा गई, विजय स्तब्ध हो उठे—गुरुदेव के नेत्रों में अपूर्व ज्योति देखकर। स्वर्गीय स्वप्न टूट गया, गुरुदेव की कर्तव्य-परायणता बार बार उन्हें चेतावनी दे रही थी, वे कठोर स्वर में बोले :—विजय ! विलम्ब क्यों ?

विजय को कड़ा झटका लगा। नहीं, गुरुदेव, विलम्ब नहीं होने पाएगा। विजय और अजय संसार के हृदय में प्रवेश करने के लिए अपने पथ पर बढ़ चले। जाते हुए शिष्यों को देखकर गुरुदेव के नेत्रों में कुछ उष्णता सजल हो उठी परन्तु, कहां त्याग ! कहां मोह !

अहिंसा संसार में अजेय है। पूर्ण अहिंसा के मार्ग पर चलना खड्ग की धार पर चलना है। परन्तु जब इस पथ को पार करके लक्ष्य प्राप्त होता है तो आत्मा अज्ञेय सुखों में लीन हो जाती है।

विजय, अजय अपनी अमर भावना लिए पथ पर बढ़ रहे थे। उनके हृदय म शक्ति थी ; वे उसे वाणी के रूप में संसार को कहना चाहते थे।

मुरलीधर अपनी वंशी में मधुर राग भर रहा था, उस की वंशी के मधुर स्वर को सुन कर जनता किसी मधुर मंत्र के वशीभूत हो कर उमड़ घुमड़ कर चली आरही थी।

विश्व कल्याण की भावना से ओतप्रोत मुरलीधर की वंशी के मधुर राग में स्वर्गीय स्वप्न की झलक पाकर विश्व अपनी समस्त व्यथा को भुल कर उसी में लीन हो रहा था।

परन्तु स्वेच्छा की अपेक्षा गुरुदेव की इच्छा महत्व शालिनी है—मुरलीधर की भावना अपने लक्ष्य पर दृढ़ थी।

जनता नदी की विशाल बाढ़ के समान विजय की मधुर भावना के पीछे बढ़ी जा रही थी। अकस्मात् ! कड़ा झटका लगा। विश्व का स्वर्गीय स्वप्न टूट गया। हृदय पर करारी चोट लगी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरलीधर ने अपनी वंशी को अधरों से अलग किया, जनता ने आग्रह भरी दृष्टि से उस की ओर देखा, परन्तु मुरलीधर पीछे घूम पड़े, जनता भी भावावेश के वशीभूत हो कर उन के चरण चिन्हों पर चलती हुई उनका अनुकरण करने लगी।

प्रभात का सुन्दर समय जीवन में अद्भुत मिठास भर रहा था। दिवाकर के शुभ स्वागत के लिए पंछी अपनी मृदु भाषा में चहचहा रहे थे। गुरुदेव समाधि में लीन थे, प्रकाशपुंज दिवाकर की किरणों का उज्वल प्रकाश उनके चन्द्रमुख पर पड़ा; उन्होंने--नेत्र खोल दिये, अरे ! यह क्या ? यह विशाल जन समुदाय कैसा चला आ रहा है ?

विजय, अजय गुरुदेव के दर्शन पाने की अभिलाषा लिए शीघ्रता से पग बढ़ा रहे थे--योग्य शिष्यों की जोड़ी ने अकस्मात आकर गुरुदेव के चरण छुए

विजय ! अजय !

गुरुदेव ! दोनों एक स्वर से बोले,

"तुम अकस्मात यहां कैसे ? और विशाल जनसमुदाय कैसा"

सब गुरुदेव की कृपा है। संसार आप की मधुर वाणी का श्रवण करने के लिए उत्सुक है, हम ने उसे पथ दिखाया, और वह आप के श्री चरणों में उपस्थित हो गया है, उपदेश देना आप का कार्य है।

गुरुदेव के मुख पर एक दिव्य आभा झलक उठी, वे गदगद स्वर में बोले-

'वत्स; तुम्हारे जैसे शिष्य पाकर मैं धन्य हुआ। कर्तव्य के कठिन पथ पर चलने से पहले वह कंटीला लगता है परन्तु............'

'उसका अन्तिम परिणाम अत्यन्त मधुर निकलता है, गुरुदेव !' विजय बोले-

विश्व के नेत्र खुल गए; उस महान आत्मा का दिग्दर्शन करके। उसने सादर भाव से प्रणाम किया, आकाश मण्डल सत्य, अहिंसा के पुजारी के जयघोष से गूँज उठा। गुरुदेव विजय के विशाल मस्तक पर हाथ रखकर कह रहे थे-

विजय ! तुम सचमुच विजय हो, तुमने मेरी चिर अभिलाषा को उज्ज्वल कर दिया। तुम सदा विजयी बनो; यही मेरी कामना है।

विजय के श्रद्धालु नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक के नाम

श्री सम्पादक, श्रमण, बनारस हिन्दू यूनिर्वासिटी,

मान्य,

मुझे एक पत्र सैलाना, मध्यभारत में 'सम्यग्दर्शन कार्यालय' से मिला है, वह श्री रत्नचन्द्र दोशी की ओर से प्रतीत होता है, गो उस पर किये गए हस्ताक्षर स्पष्ट पढ़ने कठिन हैं, श्री दोशी जी 'सम्यग्दर्शन' के सम्पादक हैं, यह अलग प्राप्त 'सम्यग्दर्शन' के एक अङ्क से ज्ञात हुआ है।

अपना और 'सम्यग्दर्शन' का परिचय देते समय उन्होंने अपने पुत्र श्री गम्भीरमल जी से बम्बई में मेरे मिलन का संकेत किया है और यह भी लिखा है कि मैंने वी० पी० की मांग प्रगट की थी परन्तु मुझे ऐसी कोई भेंट या मांग की स्मृति नहीं है। मैं दोशी जी के इस लेख की सराहना करता हूँ जब वे यह भी लिखते हैं कि 'सम्यग्दर्शन' जबरदस्ती किसी के गले डालने की वस्तु नहीं है, मात्र पैसा वसूल करना ही इसका ध्येय नहीं है, इसी उसूल से प्रेरित होकर उन्हों ने मुझे वी० पी० नहीं भेजा है। इसके लिए हार्दिक धन्यवाद है।

श्री दोशी जी ने उल्लिखित पत्र में लिखा है कि 'सम्यग्दर्शन' की दृष्टि में 'श्रमण' और 'पार्श्वनाथ विद्याश्रम' जैनत्व से गिर चुके विपरीत प्रचार कर रहे हैं, यदि मैं उनका यह कहना गलत मानता हूँ तो वह साबित करने को तैयार हैं।

इस प्रकार के सम्बन्ध में जहाँ विचारों का सच्चा विरोध हो, उत्तर प्रत्युत्तर में पड़ना मेरा ध्येय और रुचि नहीं है; परन्तु मेरा उपरोक्त वर्णित दोनों संस्थाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोशी जी के विश्वास और विचार में मुझे गड़बड़ प्रतीत हुई है इसलिए यह उत्तर मैं श्रमण के पन्नों द्वारा देना उचित समझता हूँ। इसलिए यह पत्र सेवा में प्रेषित है। कृपया प्रकाशित कर अनुगृहीत करें।

'श्रमण' और 'पार्श्वनाथ विद्याश्रम' दोनों एक ही प्रकार की संस्थाएँ नहीं हैं। 'श्रमण' श्रमणसंस्कृति के स्पष्टीकरण के वास्ते मासिक पत्रिका है जिसमें सम्पादकीय विचारों के अतिरिक्त उस संस्कृति से सम्बन्धित अथवा साहित्यिक और दार्शनिक आदि विषयों पर अनेक लेखकों के लेख होते हैं। उन लेखों में लिखित विचार न सम्पादक के विचार हैं, न संस्था या उसके व्यवस्थापकों के। वे लेखकों के व्यक्तिगत विचार हैं। 'श्रमण' उनके विचारों का इतना सत्कार अवश्य करता है कि उन्हें विचारों की forum (मण्डी) में सब के अवलोकनार्थ उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है ताकि उनमें उठाए गए प्रश्नों पर गम्भीर और धैर्य्यपूर्ण विचार शक्य हो न वह साधुओं (पारिभाषिक रूप में भी) के खिलाफ है न उनका अन्ध अनुयायी। चार तीर्थों में से इन दो तीर्थों के सम्बन्ध में उसकी यह धारणा है कि सामाजिक जिम्मेदारियों से वे परे नहीं हैं। समय समय पर जो सामाजिक समस्याएं उस काल को आन्दोलित कर रही हों उनकी ओर से उदासीनता प्रदर्शित करने से वे तीर्थ अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर रहे होते हैं अपितु साधुता के नाते से वह अपना आदर और प्रभाव कम कर रहे होते हैं। मुझे तो यह अवस्था अत्यन्त वेदनापूर्ण लगती है इतनी शारीरिक तपस्या त्याग और परीषह सहन के बावजूद जैनसाधु व्यापक क्षेत्र में आदर और प्रभाव के बिना है। स्थान स्थान पर मातापिता की यह अटूट शिकायत है कि उनके युवक साधु और स्थानक से दूर रहते हैं। उनको इन संस्थाओं में आकर्षण प्रतीत नहीं होरहा है; तो क्या साधु को अपने परिश्रम की असफलता से जिज्ञासा और चिन्ता करनी उचित नहीं है ? अपने इस छोटे से जीवन में हमने देखा है कि साधु मानापमान में पड़कर उदारता से अपने परस्पर क्लेशों को मिटाने में असमर्थ रहे हैं बल्कि अपनी इस विचारधारा से वे गृहस्थ समाज को परे नहीं रख सके हैं। उनके अन्दर भी प्रबल कषाय उत्पन्न करने में समर्थ हुए हैं। इस उपदेश और आचार की पारस्परिक विभिन्नता क्या हम सब के लिए शोचनीय नहीं है ? क्या गृहस्थसमाज केवल वेषमात्र से प्रेरित होकर प्रत्येक साधु के चरणरज को अपने नेत्रों और मस्तक पर धारण करने के वास्ते ही निर्माण हुआ है ? जो हमारा पूज्य है उसमें पूज्य होने के गुणों की तलाश को हम रोक नहीं सकते। इस ओर अन्य दो तीर्थों का भी कर्तव्य है।

'पार्श्वनाथ विद्याश्रम' जैनत्व से गिरा हुआ विपरीत प्रचार कर रहा है, यह मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आसका है। 'पार्श्वनाथ विद्याश्रम' प्रचारक संस्था नहीं है। उसका ध्येय तो अपनी समाज और अन्य लोगों में जैन दर्शन के अभ्यास और अध्ययन में रुचि उत्पन्न करना है। इस हेतु से वह ऐसा अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों और रिसर्च स्कालरों को आर्थिक और अन्य साधनों-निवास पुस्तकालयादि, की सहायता जुटाता है। इससे अधिक वह कोई कार्य नहीं करता है, ऐसा करते समय वह किस प्रकार "जैनत्व से गिर चुके, विपरीत प्रचार करता है" मेरी समझ के बाहर है।

[शेष पृष्ठ ३४ पर देखिए]

कृष्णचन्द्राचार्य, ने हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, बनारस में छपवा कर प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ के प्रकाशन

जैनशासन—जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन कराने वाली रचना— मूल्य ३)

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ—ले० डॉ० जगदीश चन्द्र जैन, एम०ए०। चौसठ लौकिक, धार्मिक और ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह— मूल्य ३)

कुन्दकुन्दाचार्य के तीनरत्न—मूल लेखक—गोपालदास जीवाभाई पटेल।

अनुवादकः-पं० शोभाचन्द्रजी 'भारिल्ल'। आचार्य कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् ग्रन्थों का संक्षिप्त और सरल भाषा में विवेचन— मूल्य २)

करलक्खवण—सामुद्रिक शास्त्र— मूल्य १)

केवलज्ञान प्रश्न चूडामणि—ज्योतिष ग्रन्थ— मूल्य ४)

ज्ञानोदय—[मासिक] वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति— ॥=)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।

क्या आप जानना चाहते हैं

हमारी साधुसंस्था का क्या आदर्श है और वह इस समय किधर जा रही है? क्या आप चाहते हैं कि इस संस्था को समाज, राष्ट्र और विश्व के कल्याण के लिए वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुसार उपयोगी बनाया जाए?

'श्रमण' का अगला अंक पढ़िए

इसमें आपको साधु संस्था का गौरवपूर्ण अतीत, दयनीय वर्तमान और अंधकारपूर्ण भविष्य अधिकारी एवं अनुभवी विद्वानों द्वारा चित्रित मिलेगा। साथही मुनि जीवन का सूक्ष्म व गंभीर विश्लेषण तथा इसे जर्जरित होने से बचाने के लिए उचित पथ प्रदर्शन रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'SANMATI PUBLICATIONS'

	Lord Mahavira by Dr. Bool Chand, M.A., Ph. D.	Rs. 4/8/
	गुजरात का जैन धर्म—मुनि श्री जिनविजय जी	बारह आने
3.	विश्व-समस्या और व्रत-विचार—डॉ० बेनीप्रसाद	चार आने
4.	Constitution	4 Ans.
5.	अहिंसा की साधना—श्री काका कालेलकर	चार आने
6.	परिचयपत्र और वार्षिक कार्यविवरण	चार आने
7.	Jainism in Kalingadesa—Dr. Bool Chand	4 Ans.
8.	भगवान् महावीर—श्रीदलसुखभाई मालवणिया	चार आने
9.	Mantra Shastra and Jainism—Dr. A.S. Altekar	4 Ans.
10.	जैन-संस्कृति का हृदय—पं० श्री सुखलालजी संघवी	चार आने
11.	भ० महावीरका जीवन—पं० श्री सुखलालजी संघवी	,, ,,
12.	जैन तत्त्वज्ञान, जैनधर्म और नीतिवाद ले०—पं० श्री सुखलाल जी तथा डॉ० राजबलि पाण्डेय	,, ,,
13.	आगमयुग का अनेकान्तवाद—श्री दलसुखभाई मालवणिया	आठ आने
14–15.	निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय—श्री सुखलालजी संघवी	एक रुपया
16.	वस्तुपालका विद्यामण्डल—प्रो० भोगीलाल सांडेसरा	आठ आने
17.	जैन आगम—श्री दलसुखभाई मालवणिया	दस आने
18.	कार्यप्रवृत्ति और कार्यदिशा	आठ आने
19.	गांधीजी और धर्म ले० पं० श्रीसुखलालजी और दलसुख मालवणिया	दस आने
20.	अनेकान्तवाद—पं० श्री सुखलाल जी संघवी	बारह आने
21.	जैन दार्शनिक साहित्य का सिंहावलोकन पं० दलसुखभाई मालवणिया	दस आने
22.	राजर्षि कुमारपाल—मुनि श्री जिनविजयजी	आठ आने
23.	जैनधर्म का प्राण—श्री सुखलालजी संघवी	छः आने
24	हिन्दू, जैन और हरिजन मंदिर प्रवेश ले० श्री पृथ्वीराज जैन M.A.	सात आने
25.	Pacifism & Jainism—Pt. Sukhlalji	8 Ans.
26.	छठे वर्ष का कार्य विवरण	दो आना
27.	जीवन में स्याद्वाद—श्री चन्द्रशंकर शुक्ल	बारह आना

The Secertary.

JAIN CULTURAL RESEARCH SOCIETY
BENARES HINDU UNIVERSITY.

Cover Printed at Hind Art Press, Godowlia, Banaras.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए-२१
NS'
s. 4/8/
ह आने
र आने
Ans.
र आने
र आने
Ans.
र आने
4 Ans.
र आने
"
"
ठ आने
रुपया
ठ आने
न आने
ठ आने
स आने
ह आने
स आने
ठ आने
ठ आने
आने
Ans.
आना
आना
ETY
ras,

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'SANMATI PUBLIC

Lord Mahavira
by Dr. Bool Chand, M.A., Ph.
गुजरात का जैन धर्म—मुनि श्री जिनविजय
3. विश्व-समस्या और व्रत-विचार—डॉ० बेनी
4. Constitution
5. अहिंसा की साधना—श्री काका कालेलकर
6. परिचयपत्र और वार्षिक कार्यविवरण
7. Jainism in Kali—इन्द्र

मोहन लाल मेहता १
२. अपनी बात (संपादकीय)— ३
३. जैनदर्शन—सुश्री हीरा कुमारी ९
४. "निर्बल के बल राम"—कुमारी सत्यवती जैन १६
५. स्वामी समन्तभद्र जी—प्रो० पद्मनाभ जैनी, एम० ए० १७
६. वेदना—ज्ञानचन्द्र 'आलोक' २४
७. शास्त्र की मर्यादा—प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य २५
८. गीत (कविता)—रामप्रकाश जैन, एम० ए० ३०
९. तर्क का क्षेत्र—प्रो० विमलदास जैन ३१
१०. साहित्य-सत्कार— ३७
११. विद्याश्रम-समाचार— ४०

अगले अंक में—

१. धर्म की उत्पत्ति व उसका अर्थ—श्री मोहनलाल मेहता
२. विद्यामूर्ति पं० सुखलाल जी—प्रो० दलसुख मालवणिया
३. परिग्रहवाद—श्री रघुवीर शरण दिवाकर
४. केवल ज्ञानसम्बन्धी कुछ विचारणीय बातें—श्री इन्द्र एम० ए०
५. मनुष्य की उलझन—श्री इन्द्र एम० ए०
६. परोपकार का फल—श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए०

'श्रमण' आपके मस्तिष्क के लिए स्वस्थ भोजन देता है। आज ही ग्राहक बनिए।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस का मुखपत्र

वर्ष ३ जनवरी १९५२ अंक ३

मैं तो चमकूँगा ही

मैं खद्योत हूँ। जब सूर्य अस्त हो जाता है। चाँद और तारे बादलों में छिप जाते हैं। अन्धकार की काली चादर सारे विश्वको ढक लेती है। मैं उस समय चमकता हूँ और यह सूचना देता हूँ कि संसार में प्रकाश की सत्ता मिटी नहीं है।

माना, मेरे प्रकाश से अँधेरा कम नहीं होता। उस से राह चलते हुए मुसाफिर को कोई सहारा नहीं मिलता। फिर भी मेरे टिमटिमाने से वह इतना तो जान ही लेता है कि यह प्रदेश सूखा नहीं है। दोपहर की कड़ी धूप से बचने के लिए यहाँ हरी भरी झाड़ियाँ हैं और प्यास बुझाने के लिए पानी भी। क्या थके हुए काफिले के लिए इतना कम है!

दानवी वैभव से सम्पन्न राजमार्गों पर चमकती हुई बिजली की बत्तियाँ मुझ पर हँसती हैं, हँसें। महलों के रंग बिरंगे दीप मेरा उपहास करते हैं, करें। मेरा प्रकाश अल्प या अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना भी है, अपना है। मैं अपना ही दीप जलाता हूँ। स्वयं ही तेल बनता हूँ और स्वयं ही बत्ती। मैं किसी विद्युद्गृह पर निर्भर नहीं रहता।

एक बात और है। जहाँ बिजलियाँ चमकती हैं, वाहर उजाला है और भीतर अँधेरा। जहाँ मैं चमकता हूँ, बाहर अँधेरा है और भीतर उजाला। बिजलियाँ बाह्य प्रकाश का प्रतीक हैं और मैं आभ्यन्तर प्रकाश की सूचना देता हूँ। जहाँ मैं चमकता हूँ, वहाँ बिजलियाँ पहुँच ही नहीं सकतीं। महलों के दीप उस का स्वप्न भी नहीं देख सकते।

मैं चमकता हूँ। लोग पूछते हैं, क्यों चमकते हो? भला यह भी कोई प्रश्न है? क्या प्रत्येक बात किसी दूसरी बात के लिए होती है? यदि ऐसा हो तो अनवस्था हो जायगी। चमकना अपने आप में प्रयोजन है। मैं उनको यही उत्तर देता हूँ, चमक है, इसलिए चमकता हूँ। क्या खान में पड़ा हीरा अपनी चमक ही बन्द कर दे? वह किसी के गले का हार बने या न बने, उस की चमक किसी को अच्छी लगे या न लगे, वह तो चमकेगा ही।

हाँ, बिजली की बत्तियों के लिए यह पूछा जा सकता है। उन की चमक उधारी होती है। वे बिना चमके भी रह सकती हैं। किन्तु जो न रह सके उस से प्रश्न पूछना व्यर्थ है। मेरे प्रकाश को यदि कोई नहीं देखता, या उससे अपनी स्वार्थपूर्ति नहीं कर सकता तो क्या चमकना बन्द कर दूँ। मैं तो चमकूँगा ही।

—इन्द्र

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

साधु सम्मेलन

यह हर्ष की बात है कि आगामी अक्षय तृतीया पर स्थानकवासी जैन समाज के साधुओं का सम्मेलन होने जा रहा है, त्यागी महात्माओं का एक जगह एकत्रित होकर व्यक्ति तथा समाज के हित की बात सोचना अच्छा ही है। किन्तु यह जितना उपादेय एवं महत्वपूर्ण है, उतना ही गम्भीर तथा उत्तरदायित्वपूर्ण भी है।

सन् १९३३ में इसी प्रकार का एक सम्मेलन हुआ था। उसमें और सब बातें तो ठीक हो गई किन्तु एक बात ने सब किए कराए पर पानी फेर दिया। वह थी एक ही सम्प्रदाय के दो आचार्यों को एक करने की बात। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस बात पर जितना जोर दिया गया उतना ही वाता-वरण विकृत होता गया। अन्त में दुर्लभजी भाई के सत्प्रयत्न से किसी तरह बात बनी किन्तु हृदयों की दूरी न मिटी। प्रत्युत उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। अन्त में कान्फरेंस को बाध्य हो कर फिर दोनों का पृथक् अस्तित्व स्वीकार करना पड़ा।

भावी सम्मेलन का ध्येय है, सभी सम्प्रदायों में एकता स्थापित करके उन्हें एक आचार्य के अधीन करना। इसकी पूर्वपीठिका तैयार करने के लिए समाज का प्रतिनिधिमण्डल घूम रहा है। कुछ सम्प्रदायों ने अपने अलग अलग सम्मेलन भी किए हैं। किन्तु इन सबसे हृदय में कितना परिवर्तन हुआ है, शिष्य लिप्सा और साम्प्रदायिक अस्मिता में कहाँ तक कमी हुई है यह तो वस्तुस्थिति सामने आने पर ही कहा जा सकता है।

हम समझते है, समस्त सम्प्रदायों के संगठन के लिए सबसे पहले भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का विघटन आवश्यक है। इसके लिए पहला उपाय यह है कि अलग अलग संघाड़ों में विचरने वाले साधुओं को प्रत्येक चातुर्मास के बाद बदल दिया जाय। प्रायः ऐसा होता है कि एक संघाड़े में जो साधु विचरने लगते हैं वे फिर दूसरे में जाना पसन्द नहीं करते। उसी में एक प्रकार का मोह सा स्थापित कर लेते हैं। कई बार तो ऐसा देखा गया है कि जिन साधुओं का गृहस्थ के रूप में पिता पुत्र या अन्य किसी प्रकार का सम्बन्ध रहा है, वे साधु होने के बाद भी अलग नहीं होना चाहते। साध्वियों में तो यह बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भी अधिक है। इस मोह को दूर करने के लिए यह होना चाहिए कि एक चातुर्मास में जो साधु इकट्ठे रहे हैं, अगले में वे सब बिखर कर दूसरे दूसरे संघाड़ों में मिल जायँ। एक भी संघाड़ा पूर्ववत् अक्षुण्ण न रहे। यदि यही क्रम भिन्न भिन्न आचार्य भी अपना लेवें तो साम्प्रदायिकता का बुरा प्रभाव समाप्त हो जाय। एक चातुर्मास में जो शिष्यमण्डल एक आचार्य के पास रहे वह दूसरे चातुर्मास में अन्यान्य आचार्यों के पास चला जाय। इससे छोटे साधुओं को भिन्न भिन्न आचार्यों के अनुभव तथा ज्ञानप्राप्ति का लाभ होगा और साम्प्रदायिक मोह भी कम पड़ जाएगा। विभिन्न सम्प्रदायों के रहते हुए भी यह क्रम अपनाया जा सकता है।

ऐसा देखने में आया है कि अमुक सम्प्रदाय के साधु अपने को दूसरों की अपेक्षा उत्कृष्ट मानते हैं। उत्कृष्ट तथा कठोर संयमी होना अच्छी बात है किन्तु उसका अभिमान करना तथा दूसरों को शिथिलाचारी समझना बुरा है। यदि आचार्यों में परस्पर परिवर्तन होता रहे तो यह अस्मिता न आने पाए।

किसी एक को सभी सम्प्रदायों का आचार्य नियुक्त करने में भी पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता है। इसके लिए पहला प्रयास तो मतप्रदान है। जिसके पक्ष में अधिक मत हों उसे ही चुन लिया जाय। किन्तु यह प्रणाली तभी लाभदायक है जब हृदय शुद्ध हों। अन्यथा विभिन्न दलों में सदा के लिए मनोमालिन्य प्रारम्भ हो जायगा। हमारी राय में इसके लिए ऐसे व्यक्ति को चुनना चाहिए जो किसी सम्प्रदाय का आचार्य न हो और जो साम्प्रदायिक खींचातानी से सदा अलग रहा हो। साथ ही उस आचार्य के पद को इंग्लैंड के बादशाह के समान एकत्व का प्रतीक मात्र रहने दिया जाय। उसके हाथ में विशेष सत्ता न रहे। कार्य संचालन के लिए एक व्यवस्था-परिषद् चुन ली जाय। यह ठीक है कि साधु बार बार मिल नहीं सकते। फिर भी पत्र व्यवहार या श्रावकों द्वारा यह कार्य हो सकता हो। श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया विधान के विशेषज्ञ हैं। आशा है, वे साधु समाज के लिए भी ऐसा विधान बनाएँगे जिससे संघर्ष का प्रसङ्ग कम से कम आए।

सबसे बड़ा कार्य है प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत करने का। हमारे पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो समाज के प्रत्येक अंग को नियमानुसार चलने के लिए बाध्य कर सके और बात न मानने पर अनुशासन सम्बन्धी कारवाई कर सके। अनुशासन की शक्ति के बिना संगठन का कोई महत्व नहीं रह जाता। इसके लिए प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रतिनिधि श्रावकों की एक अधिनिर्णायक समिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनी चाहिए जो अनुशासन को ठीक रख सके। श्रावक समाज अपना दृढ़ विश्वास प्रकट करके उस समिति को शक्तिशाली बना सकता है। हम चाहते हैं, साधु सम्मेलन एक मेला न होकर समाजोन्नति के लिए एक ऐतिहासिक क्रान्तिकारी प्रयत्न सिद्ध हो। इससे हमारा साधुसमाज समस्त संसार के त्यागीवर्ग के सामने एक आदर्श उपस्थित कर सकेगा।

—इन्द्र

जर्मन दार्शनिक ग्लाजनप—

भारतीय विद्या और विज्ञान को संसार के सामने प्रकाश में लाने का सर्वाधिक व सर्वप्रथम प्रयत्न जर्मन विद्वानों की ओर से हुआ है। वेदों का सबसे अच्छा, व्यवस्थित एवं मान्य संस्करण जर्मनी के विद्वानों ने ही सर्व प्रथम दुनिया के विद्वानों के सामने रखा। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति की अन्य अनेक पुस्तकें अनुवाद, मौलिक-आलोचनात्मक संस्करण आदि अनेक रूपों में जर्मन पुरुषार्थियों ने संसार के सामने प्रस्तुत कीं। वैदिक, बौद्ध एवं जैन–सभी शाखाओं पर इन पुरुषार्थियों ने अत्यन्त परिश्रम एवं सच्चाई पूर्वक काम किया। बुहलर, शूब्रिग, याकोबी, ग्लाजनप आदि जर्मन भारतविज्ञानवेत्ता (Indologists) भारत एवं जर्मनी दोनों के गौरव को बढ़ाने वाले व्यक्ति हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

प्रो० ग्लाजनप कुछ दिनों से भारत आए हुए हैं। भारतीय संस्कृति का विशेष अध्ययन करने की दृष्टि से वे कुछ समय तक यहीं ठहरेंगे। वे काफी वृद्ध हैं अतः इधर उधर घूमने की अपेक्षा उन्होंने काशी को ही अपना केन्द्र चुना है जिसे वे भारतीय संस्कृति का सच्चा प्रतीक समझते हैं। दस बारह दिन तक यहाँ (काशी विश्वविद्यालय के अतिथि के रूप में) ठहर कर भारतीय विचार-धारा से विशेष संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। दिन में कई संस्थाओं में जाते हैं, वहां व्याख्यान देते हैं, विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।

प्रो० ग्लाजनप का जन्म उसी नगर में हुआ जहाँ जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक इमानुएल कान्ट पैदा हुए थे। प्रारंभ से ही इन्हें भारतीय विद्या से प्रेम था। बचपन में भारतीय परंपरा की कई कहानियाँ पढ़ा करते थे जिनकी प्रेरणा से इनका इस ओर विशेष झुकाव हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रोफेसर साहब का ज्ञान बहुत गहरा एवं अद्भुत है। प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन तथा धर्मशास्त्र के ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययन की ओर आप की विशेष रुचि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको अध्ययन से कितना प्रेम है, इसकी कल्पना हम इसी से कर सकते हैं कि कि द्वितीय महायुद्ध के पूर्व एवं अन्त तक भी आप के पास अपना निजी एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था जिसकी पुस्तक संख्या प्रायः दो लाख थी। भारतवर्ष में ऐसे निजी पुस्तकालय हों, यह तो किसी की कल्पना में भी नहीं आ सकता किन्तु सार्वजनिक पुस्तकालय भी गिनती के ही होंगे। हिन्दू विश्व विद्यालय का इतना बड़ा पुस्तकालय है फिर भी उसकी संख्या दो लाख से कम ही है। जर्मनी के पराजय के बाद वह पुस्तकालय रूसियों द्वारा नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया।

जैन धर्म पर प्रो० ग्लाजनप ने दो पुस्तकें लिखी हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं। एक पुस्तक कर्म-सिद्धान्त पर है जिसका जर्मन से अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है। दूसरी पुस्तक जैनधर्म के ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक महत्त्व पर है जिसका अनुवाद गुजराती भाषा में हो चुका है। यह जानकर हमें और अधिक प्रसन्नता होनी चाहिए कि प्रोफेसर साहब हर्मन याकोबी के प्रमुख शिष्य हैं जिन्होंने जैनसंस्कृति पर काफ़ी कार्य किया था। एक दिन दर्शनविभाग (का० वि० वि०) में व्याख्यान देते समय प्रोफेसर साहब ने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात बताई और वह यह कि भारतीय विचारधारा में जड़तत्त्व की स्पष्टरूप से स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने का सर्वप्रथम श्रेय जैनदर्शन को है। श्री पार्श्वनाथ के समय से ही यह मान्यता जैनदर्शन में विद्यमान है। भारत की कोई भी अन्य शाखा इस मान्यता को अपनी मानकर इतनी प्राचीन सिद्ध नहीं कर सकती। दूसरी यथार्थवादी सभी शाखाओं में यह मान्यता बाद में आई जिनपर स्पष्ट रूप से जैन विचारधारा का प्रभाव पड़ा। हम ऐसे विचारकों का स्वागत करते हैं।

—मोहन लाल मेहता, बी० ए०, शास्त्री

इस युग में भी !

नागपुर से एक समाचार मिला है कि वहाँ की परवार समाज के अठसका लोगों ने चौसका भाइयों का मंदिर बंद किया है। इस पर चौसका भाइयों ने अपने धर्माधिकार के लिए अदालत की शरण ली है। जो लोग विवाह में मामा आदि के आठ गोत्रों का विचार करते हैं वे अठसका हैं और जो चार गोत्रों का विचार करते हैं वे चौकसा हैं। दोनों शुद्ध हैं। भगवान् महावीर ने उस भीषण अन्धकार में मनुष्य को जातिपांति के भेद के बिना समान अधिकार दिये थे और अपने श्रमणसंघ में चांडालों तक को दीक्षित किया था। आज उन्हीं की साधना के फलस्वरूप भारत गणतन्त्र में प्रत्येक नागरिक को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण जाति वंश आदि की अपेक्षा किये बिना ही समान नागरिकता के अधिकारों की घोषणा हो चुकी है। इस समता और अहिंसा के व्यावहारिक युग में भी कुछ अतिसंकीर्ण रूढिग्रस्त अठसका चौसका जैसी चौका बाजियों का गन्दा नारा लगाकर धर्म और समाज को कलंकित कर रहे हैं यह लज्जा को भी लजा देने वाली बात हैं। हम उन भूले भाइयों से प्रार्थना नहीं, उन्हें चेतावनी देना चाहते हैं कि वे इस प्रकार की हरकतें करके वीरप्रभु के वीतरागी धर्म को बदनाम न करें और अपनी गलती को अविलम्ब सुधार कर धर्म का क्षेत्र प्राणी-मात्र के लिए खुला रखें इसी में धर्म और समाज का हित है।

साधु और सार्वजनिक सेवा

जैनभिक्षु रंगविजय जी का परिचय हम पहले दे चुके हैं। सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए वे जिसप्रकार कार्य कर रहे हैं, वह जैन ही नहीं सभी सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए अनुकरणीय है। अपनी मुलाकात में उन्होंने जो दो चार घटनाएं सुनाईं वे कार्य क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

लखनऊ में हरिजनों की कुछ लड़कियों का अपहरण हो गया। जिस मुहल्ले में यह घटना हुई वहीं गुण्डों का एक दल रहता था। उनके विरुद्ध कार्रवाई करने का किसी को साहस न होता था। भिक्षु जी ने हरिजनों को एकत्रित करके प्रोत्साहित किया कि अपनी बेटियों को खोकर इस प्रकार चुप न बैठना चाहिए। परिणाम स्वरूप हरिजनों ने उस मुहल्ले का सामाजिक बहिष्कार कर दिया और वहाँ सफाई करना छोड़ दिया। पोलिस ने रंगविजय जी तथा हरिजनों को धमकियां दीं किन्तु कोई परिणाम न निकला। दूसरी ओर रंगविजय जी ने कड़ी सरदी में यह प्रतिज्ञा की कि जब तक लड़कियाँ वापिस नहीं आएंगी, चद्दर नहीं ओढेंगे। शीतकाल में नंगा शरीर लेकर वे लखनऊ की सड़कों पर चक्कर लगाने लगे। जो देखता यही कहता—"हरिजनों की लड़कियाँ अपहृत हो गई हैं। उसी के लिए बाबा जी ने यह व्रत ले रखा है।" बात उत्तरोत्तर फैलती गई और यह सम्भावना होने लगी कि कहीं यह भीषण रूप न ले ले। गुण्डों पर दबाव डाला गया और एक सप्ताह के अन्दर ही लड़कियाँ वापिस आ गईं।

दूसरी घटना मुरादाबाद जिले में होने वाली पशुओं की चोरी से सम्बन्ध रखती है। वहाँ डाकुओं का एक ऐसा दल था जो गाँवों से पशु चुरा ले जाता और दूसरे प्रान्तों में ले जा कर बेच देता। ग्रामीण परेशान थे। पोलिस कुछ भी न कर पा रही थी। डाकुओं के सरदार का वहाँ ऐसा आतङ्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि कोई भी विरुद्ध खड़ा होने का साहस न करता था। रंगविजय जी पता लगाकर दल के मुख्य सरदारों से मिले। उन्हें अहिंसात्मक पद्धति से समझाया। इससे उनके हृदय पर काफी प्रभाव पड़ा।

अपने कार्य में वे धीरे धीरे समस्त त्यागी वर्ग को सहयोगी बना रहे हैं। लखनऊ से मेरठ यात्रा का जो वर्णन उन्होंने हमारे पास भेजा है, वह इसका निदर्शन है। वे लिखते हैं—

"मैंने लखनऊ से ता० १७–७–५१ को मेरठ की ओर प्रस्थान किया। साथ में कोई न था। प्रतिदिन २८ से ३१ मील तक चलता था। भिक्षा एक ही बार लेता था और वह किसानों से मिल जाती थी। रात में ठहरने के स्थान होते थे वैष्णव मन्दिर, गुरुद्वारे या दूसरे मठ। मार्ग में वैष्णव, कबीरपंथी, संन्यासी तथा अन्य प्रकार के साधु मिलते, मैं उनके सामने अपनी अहिंसा योजना रखता। उन्होंने उसका स्वागत किया और पूर्ण सहयोगी बनने की इच्छा प्रकट की। कई बार अजैन साधुओं के साथ बैठकर मैंने भिक्षान्न भी खाया। इसके लिए मुझे कच्चा पानी पीना पड़ता था। किन्तु जिस ध्येय को लेकर चला था, उसके लिए यह अनिवार्य था।

लखनऊ से हरदोई, शाहजहांपुर, बरेली, मुरादाबाद होता हुआ मेरठ पहुँचा। मार्ग में कांग्रेसी, ग्राम पंचायत तथा अन्य कार्यकर्ताओं से मिला।

कार्यक्षेत्र विस्तृत होने के कारण मेरे सामने रेलयात्रा का प्रश्न भी उपस्थित हुआ। एक नवम्बर से मैं रेलमें बैठने लगा हूँ। जब देखूँगा कि अब उसकी आवश्यकता नहीं रही, तब प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि करूँगा।"

रंगविजय जी की रेलयात्रा और कच्चे पानी का सेवन उचित है या अनुचित, हम इस चर्चा में नहीं जाना चाहते। हम तो यही कहना चाहते हैं कि इस प्रकार देहातों में कार्य करके वे भारत के साधु समाज के सामने एक आदर्श मार्ग रख रहे हैं। आखिर सभी साधु तो बन्धनों में जकड़े हुए नहीं हैं। जो जकड़े हुए हैं उन्हें भी सामयिक आवश्यकता देखकर उचित सुधार करना चाहिए।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि साधु अपनी मर्यादाओं को छोड़ दें। किन्तु वे अपने जीवन का ध्येय निश्चित करके उस ओर बढ़ें। जब साम्प्रदायिक मर्यादा आगे बढ़ने से रोके तो उस में, केवल ध्येय की दृष्टि से उचित सुधार कर लें। यदि उसमें सुखेषणा नहीं है और ध्येय पवित्र है तो परिवर्तन बुरा नहीं है।

—इन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनदर्शन—

—सुश्री हीराकुमारी, व्याकरण-सांख्य-वेदान्त-तीर्थ

जैनदर्शन—इस वाक्य में दर्शन एक पद है और इसका व्युत्पत्तिगत अर्थ है 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाता है उसका नाम है दर्शन। यहाँ देखने का अर्थ सिर्फ आँखों से देखना ही नहीं; बल्कि अन्य चारों इन्द्रियाँ, मन तथा ज्ञान से देखना अर्थात् जानना है। इस व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है। कौन जानता है ? किसे जानता है ? जानने वाले का स्वरूप क्या है ? जिसको जाना जाता है, उसका स्वरूप क्या क्या है ? इत्यादि प्रश्न तथा उन प्रश्नों के विचार पूर्वक समाधान को ही हम दर्शन शास्त्र कहते हैं। जब हम विचार करना आरंभ करते हैं तो पहले हमारे सामने जो वस्तु उपस्थित होती है उसके संबंध में विचार करते हैं। तब यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि मुझे जो पदार्थ जिस रूप में भासित होता है क्या वही रूप उसका सही रूप है ? सरसरी तौर पर इसका उत्तर है, हाँ; अर्थात् मुझे जिस वस्तु का जो रूप भासित होता है वही उसका यथार्थ रूप है। पर जब हम सोचते हैं, तो कहना कठिन है कि मुझे भासित होने वाला स्वरूप ही उसका यथार्थ स्वरूप है। मेरे सामने कोई चीज है उसे मैं जिस रूप में देखता हूं दूसरे व्यक्ति को उसी समय वही वस्तु दूसरी तरफ से दूसरे रूप में भासित होती है। तीसरा व्यक्ति उसे तीसरे ही रूप में देखेगा। प्रकाश के तारतम्य से अथवा निकटता और दूरता के कारण से एक ही वस्तु भिन्न भिन्न व्यक्ति को भिन्न भिन्न रूप में भासित होती है। एक ही शब्द को भिन्न भिन्न व्यक्ति विविधरूप से सुनता है। स्पर्शादि के विषय में भी यही कहा जा सकता है। एक ही वस्तु के सम्बन्ध में जब विभिन्न व्यक्ति विचार करता है तो प्रत्येक का विचार भिन्न तो होता ही है पर एक ही व्यक्ति का विचार भी एक ही वस्तु के सम्बन्ध में समयान्तर में बदल जाता है, अतएव कैसे कहा जा सकता है कि मुझे भासित होने वाला वस्तु का स्वरूप सत्य है और उसका अन्य रूप सत्य नहीं है। इसलिए वस्तु का जितना भी रूप भासित होता है वह सब काल्पनिक है, और इसका मौलिक रूप कुछ और ही है यह कहना पड़ेगा। या तो वस्तु का स्वरूप ही अनेक है अर्थात् वस्तु अनेक धर्मात्मक है यह कहना पड़ेगा। कालिक, दैशिक और वैयक्तिक भेद से उसका विविध रूप ग्रहण होता है और विभिन्न व्यक्ति अपने अपने ढंग से उन्हें समझते हैं और समझाने की कोशिश करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिदृश्यमान जगत का स्वरूप क्या हैं, इसको जानने वाला इन्द्रिय मन तथा ज्ञान का स्वरूप क्या है; इत्यादि विषय के प्रश्न को भिन्न भिन्न रूप से सुलझाने के प्रयत्न को हम दर्शन शब्द में जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक वेदान्त आदि विशेषण लगा कर सूचित करते हैं। दर्शन शास्त्र परिदृश्यमान जागतिक वस्तु को प्रधानत: दो दृष्टि से विचार करता है अतएव हम दर्शन शास्त्र को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला वास्तववादी दर्शन, दूसरा मायावादी दर्शन। जैनदर्शन वास्तववादी दर्शन है। वह जागतिक प्रत्येक वस्तु को, और उस वस्तु के प्रत्येक रूप को सत्य मानता है। कार्यकारण दोनों की वास्तविक सत्ता स्वीकार करता है। कारण यद्यपि विनष्ट हो जाता है तथापि जैनदर्शन कार्यरूप में परिणत वस्तु की सत्ता को यथार्थ कहता है। न्याय वैशेषिक, सांख्य योग, बौद्धों के सौत्रान्तिक और वैभाषिक मतवाले दर्शन वास्तववादी दर्शन हैं। अद्वैत वेदान्त, विज्ञानवादी और शून्यवादी बौद्ध दर्शन को हम मायावादी दर्शन कह सकते हैं। मायावादी दर्शन परिदृश्यमान जागतिक वस्तुओं की पारमार्थिक सत्ता नहीं मानता है। इन सब कल्पित रूपों के मूल में वह एकमात्र तत्त्व को स्वीकार करता है और उसी एकमात्र तत्त्व को सत्य भी मानता है तथा बाकी की दिखलाई पड़ने वाली सभी वस्तुओं को कल्पित कहता है। जैनदर्शन जागतिक वस्तु को जिस दृष्टि से विचार करता है उस दृष्टिबिन्दु को हम अनेकान्त दृष्टि कह सकते हैं। क्योंकि वह वस्तु के स्वरूप को अनेक रूप से विश्लेषण करता है। सभी दर्शन अपने अपने प्रतिपादित वस्तु के स्वरूप को सत्य तथा अन्य दर्शन प्रतिपादित वस्तु के स्वरूप को मिथ्या कहते हैं। पर जैनदर्शन अन्य दर्शन प्रतिपादित वस्तु के स्वरूप को सर्वथा मिथ्या न कह कर उसे किसी न किसी रूप में सत्य भी कहता है। मैं पहले ही बतला चुकी हूँ कि उसके मत से वस्तु अनेक धर्मात्मक है अतएव प्रतीयमान विरोधी धर्म भी एक ही वस्तु में किसी अपेक्षा से रह सकता है और सदृश विसदृश गुणों का एक ही वस्तु में प्रतीत होना असम्भव सा दिखने पर भी वस्तु का वही यथार्थ स्वरूप है। अतएव जैन दर्शन वस्तु के प्रत्येक रूप को सत्य मान कर अनेकान्त दृष्टि से उसका विचार करता है। अब देखना है कि जैन दर्शन का मुख्यरूप से विचारणीय विषय क्या है, जागतिक वस्तु का मौलिक तत्त्व क्या है, मौलिक कारण कार्यरूप में कैसे परिणत होता है, यदि एक से अधिक मौलिक तत्त्व हो तो परस्पर का सम्बन्ध किस प्रकार का है? इन्हीं तीन प्रश्नों के विचार की भित्ति पर ही सारा दर्शन शास्त्र निर्मित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनदर्शन जब जागतिक वस्तु को विश्लेषण करता है तो मौलिक रूप से दो तत्वों को पाता है। पहला चैतन्य तत्त्व दूसरा जड़ तत्त्व।

मैं जानता हूँ, मैं खाता हूँ, मैं जाता हूँ इत्यादि वाक्यों में ज्ञातारूप से या कर्त्तारूप से जो वस्तु भासित होती है वही वस्तु चैतन्य तत्त्व है। हम चैतन्य तत्त्व को अस्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि जिस ज्ञान के द्वारा चैतन्य को अस्वीकार किया जाता है उसी ज्ञान के आधार रूप में चैतन्य या आत्मा आप ही सिद्ध हो जाता है।

गुण और क्रिया अथवा पर्याय के आधार को द्रव्य कहा जाता है आत्मा एक द्रव्य है और ज्ञानादि को उसका विशेष गुण माना गया है। आत्मद्रव्य अनन्त, नित्यानित्य तथा शरीर परिमित है। आत्मा द्रव्यरूप से नित्य है; पर इसका विशेष गुण स्वकीय रूप में नित्य होने पर भी अवस्थान्तर को प्राप्त होता रहता है अतएव गुण की पर्यायदृष्टि से आत्मा अनित्य भी है। कारण इस दर्शन में गुण को गुणी से कथंचित् अर्थात् कुछ अंशों में भिन्न तथा अभिन्न दोनों कहा गया है इसलिए गुण में परिवर्त्तन होने के कारण उसके आधार द्रव्य में भी परिवर्तन होना अनिवार्य है। आत्मा स्वयं जिसको प्रकाशित करता है तथा स्वातिरिक्त दूसरे को भी प्रकाशित करता है यह इसका विशेष गुण है; यही गुण चैतन्य को जड़ से भिन्न करता है। एक ही आत्मा शुद्ध और अशुद्ध दो रूप में भासित होता है। हम जब कोई अच्छा या बुरा कार्य करते हैं तो आत्मा अपने ही आप को कहता है कि अरे! यह कार्य तुमने अच्छा किया, यह कार्य तुम्हें नहीं करना चाहिए था। यहाँ विचार करने वाला आत्मा शुद्ध रूप से और जिसके बारे में विचार किया जाता है वह आत्मा राग द्वेष अज्ञान आदि से युक्त होकर अशुद्ध रूप से भासित होता है तब प्रश्न उपस्थित होता है कि अज्ञान रागद्वेष आदि से युक्त जो आत्मस्वरूप भासित होता है वह, या जो विशुद्ध स्वरूप भासित होता है वह; इन दोनों में कौन सा स्वरूप यथार्थ है? इन प्रश्नों के जवाब में जैन दार्शनिकों ने अनन्त ज्ञानादियुक्त राग द्वेषादि विरहित अत्यन्त विशुद्ध आत्मस्वरूप को ही आत्मा का सत्य स्वरूप बतलाया है; तथा उसे मुक्तात्मा या परमात्मा कहते हैं। ~~शुद्ध~~ अशुद्ध स्वरूप वाले आत्मा को संसारी आत्मा कहा गया है।

संसारी आत्मा या जीव कितने प्रकार के होते है उनका किन नामों से उल्लेख किया जाता है इत्यादि विषयों का वर्णन नहीं करके मैं अब जड़ तत्त्व के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनदर्शन जिसमें ज्ञान नहीं है अथवा जिसमें अनुभव करने की शक्ति नहीं है उसे जड़ कहता है। धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय और काल रूप से जड़ पाँच प्रकार का है। वे अपने विशेष विशेष गुणों के कारण परस्पर भिन्न हैं। आकाश एक व्यापक पदार्थ है पर इसे कल्पित रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है। धर्म, अधर्म, काल, आत्मा और पुद्गल के आधार भूत आकाश को लोकाकाश तथा तद्व्यतिरिक्त आकाश को अलोकाकाश कहा जाता है। सभी को अपने में स्थान देना यही इसका विशेष गुण है। धर्म, अधर्म एक एक अखण्ड द्रव्य हैं और लोकाकाश को व्याप्त करके रहते हैं। जीव और पुद्गल को क्रिया करने में तथा स्थिर रहने में सहायता करना यही इन दोनों का विशेष गुण है। अनन्त समयात्मक द्रव्य को काल* कहा जाता है। द्रव्यों में जो परिवर्तन होता रहता है वह द्रव्य का स्वभावसिद्ध गुण है पर इस परिवर्तन का परिचय हम काल के द्वारा देते हैं और कहते हैं कि काल ही सब वस्तुओं में परिवर्तन लाता है इसलिए परिवर्तन करना यही इसका विशेष गुण है। पुद्गल के दो रूप हैं। अणु और स्कन्ध। पुद्गल का सूक्ष्मतम अंश जिसका विभाग नहीं किया जा सकता उसे परमाणु कहते हैं पुद्गल परमाणु अनन्त और निरवयव हैं। दो या दो से अधिक परमाणुओं का परस्पर सम्बन्ध होने से स्कन्ध बनता है। रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द आदि को पुद्गल का गुण कहा गया है। जब मूल तत्त्व के रूप में चैतन्य और जड़ स्वीकृत हो जाता है तब इन दोनों तत्त्वों का आपस में कोई सम्बन्ध है या दोनों परस्पर निरपेक्ष होकर अपना कार्य करते हैं; यह प्रश्न उपस्थित होताहै। जैनदर्शन पारस्परिक सम्बन्ध स्वीकार करता है। जीव और पुद्गल के साथ धर्म, अधर्म, काल और आकाश के सम्बन्ध को साधारण सम्बन्ध कहा जा सकता है। क्योंकि जीव या पुद्गल को यदि क्रिया करना हो तो धर्म, स्थिर रहना हो तो अधर्म, स्थान पाना हो तो आकाश, अवस्थान्तर प्राप्त करना हो तो काल उन्हें सहायतामात्र देता है। वे चारों जीव और पुद्गल पर अपना कोई प्रभाव विस्तार नहीं करते हैं, न सृष्टि वैचित्र्य में उनकी कोई शक्ति ही है। पर आत्मा के साथ पुद्गल का संबन्ध घनिष्ठ सम्बन्ध है। अचेतन होने पर भी पुद्गल अपनी शक्ति से आत्मा को प्रभावित करता है। आत्मा भी पुद्गल पर अपना प्रभाव विस्तार करता है। यों तो पुद्गल द्रव्य बहुत प्रकार के हैं पर जो पुद्गल परमाणु आत्मा पर अपना

*श्वेताम्बर शास्त्रों में काल को पंचास्तिकाय का पर्याय बताकर उपचार से द्रव्य माना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव विस्तार करता है उसे कर्म कहा जाता है। जीव और पुद्गल का सम्बन्ध अनादि सिद्ध है। जीव और पुद्गल का सम्बन्ध अनादि क्यों है—यह प्रश्न युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि उन दोनों का स्वभाव ही वैसा है। युक्ति या तर्क से हम वस्तु के स्वभाव को बदल नहीं सकते तथा अस्वीकार भी नहीं कर सकते। कहा भी गया है "यदीयं स्वयमर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयम्" पुद्गल के साथ आत्मा का सम्बन्ध अनादि होने के कारण कर्मपुद्गल आत्मा के विशुद्ध ज्ञानादि गुण को प्राय: आवृत कर देता है और जीव अज्ञानता और मोहवश पुद्गल को अपना कह कर अपना लेता है। फलस्वरूप वह राग द्वेष के वशीभूत होकर कहीं चैन नहीं पाता है और उसे अपना समझ कर विविध रूप में रूपान्तरित करता है। इस चैतन्य तथा पुद्गल का जो परस्पर प्रभाव है तथा इसके कारण जो सुख दुःख व्याकुलता आदि उत्पन्न होती है उससे आत्मा को ही क्षति पहुँचती है न कि पुद्गल को। आत्मा में अनुभव शक्ति है इसलिए दुःखादि को अनुभव करता है और अपने ज्ञानमय आनन्दमय स्वरूप से प्रच्युत रहता है। दूसरी तरफ पुद्गल का विचित्र रूप में परिणत होना स्वभाव ही है अतएव आत्मा पुद्गल के विचित्र परिणामों में सहायक ही बनता है।

पुद्गल के बन्धन में आबद्ध आत्मा उस बन्धन को तोड़ सकता है या नहीं इस पर जैनदर्शन ने काफी विचार किया है। पाप, पुण्य, आस्रव, संवर, बन्ध, कर्म, कर्मका स्वरूप इत्यादि विषयक विचार भी इस विचार से फलित होता है। जैनदर्शन आत्मा में एक ऐसी शक्ति स्वीकार करता है कि जिसके बल से आत्मा अनादि पौद्गलिक सम्बन्ध को छिन्न-भिन्न करके अपने स्वरूप को पा जाता है। जीव सुख पाने के लिए सब समय प्रयत्न करता है और पौद्गलिक साधनों का संग्रह करता है। जब उससे सुख नहीं मिलता है तो और अधिकाधिक पौद्गलिक साधनों को संग्रह करता है फिर भी जब वह उससे सुख शान्ति नहीं पाता है तो सब जीव नहीं, पर विकसित होने वाला जीवात्मा अशान्ति के कारणों की खोज में लग जाता है। धीरे धीरे उसका चित्त बाह्य विषयों से हट कर अन्तर्मुखी होता रहता है और जैसे जैसे उसे आत्मोपलब्धि होती जाती है वैसे वैसे उसे पौद्गलिक स्वरूप भासित होता है और उससे उसका सम्बन्ध छूटता जाता है। आखिर में वह पूर्णरूप से पौद्-गलिक सम्बन्ध को विछिन्न कर देता है और अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा प्रश्न यह है कि परिदृश्यमान जगत का मौलिक कारण कार्यरूप में कैसे परिणत होता है ? इसके उत्तर में दर्शन शास्त्र में चार विभिन्न प्रकार की चार प्रक्रियाएँ बतलाई गई हैं। आरम्भवाद, परिणामवाद, विवर्तवाद और प्रतीत्य-समुत्पाद वाद नाम से उन चारों प्रक्रियाओं का परिचय दिया जाता है।

आरम्भवाद में परमाणुओं को परिदृश्यमान इन्द्रियग्राह्य जागतिक वस्तुओं का मौलिक कारण कहा गया है। परमाणु अनन्त नित्य और क्षुद्र अर्थात् अविभाज्य है। वे परमाणु जब आपस में सम्बन्धित होते हैं तो उससे स्थूल एक नया कार्य उत्पन्न होता है। वह कार्य अपने कारण से अत्यन्त भिन्न है तथा उत्पन्न होने से पहले कारण में उसकी कोई सत्ता नहीं रहती है। परिमाण में वह अपने कारण से बृहत् होता है। उदाहरण के तौर पर वस्त्र को लीजिए। कुछ सूत्रों को एकत्रित करके बुनने पर वस्त्र उत्पन्न होता है कार्यरूप वस्त्र अपने कारणरूप सूत्र से परिमाण में बृहत् ही होता है तथा उत्पन्न होने के पहले वस्त्र की सत्ता भी उसके कारणभूत सूत्र में प्रतीत नहीं होती है। न्याय-वैशेषिक और मीमांसक इस मत के समर्थक हैं।

परिणामवाद ठीक इससे विपरीत है। वह परिदृश्यमान जागतिक वस्तु के मौलिक कारण को अतिसूक्ष्म व्यापक एक तथा परिणामी नित्यानित्य मानता है। वह कार्य को कारण से अत्यन्त भिन्न नहीं मानता है तथा कारण में कार्य की सत्ता को स्वीकार करता है। समुद्र के उदाहरण से हम इस विषय को स्पष्ट कर सकते हैं। समुद्र में तरंग के बाद तरंग उत्पन्न होता है और उसी में विलीन हो जाता है। परिणामवादी कहता है कि कारणरूप समुद्र में कार्यरूप तरंग की सत्ता विद्यमान रहती है तभी तरंग उससे आविर्भूत होता है और उसी में विलीन हो जाता है। कारणरूप समुद्र से कार्यरूप तरंग क्षुद्र ही होता है। इस मत में प्रधानरूप कारण से क्षुद्र कार्य स्थूलरूप में

* आत्मा का क्रोधादिक स्वभाव जब तथाभव्यता के आधार पर व्यक्त होता है, तब उसकी सांसारिक अवस्था रहती है। और जब तथाभव्यता के आधार से ज्ञानादि स्वभाव का आविर्भाव होता है तब उसकी मोक्षावस्था आविर्भूत होती है। कषायादिक और ज्ञानादिक दोनों आत्मपदार्थ के स्वभाव हैं। मोक्षावस्था के आविर्भावक स्वभावों के उपादेय होने की अपेक्षा कषायादि भावहेय होने से वैभाविक स्वभाव कहे जाते हैं। वैभाविक और स्वाभाविक कहे जान वाले सभी स्वभाव आत्मद्रव्य के पर्याय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविर्भूत होता है और उसी में विलीन होता है। यह मत सांख्य और योग दर्शन का है। जैनदर्शन कारण का कार्यरूप में परिणत होने के बारे में अपने विशेष तरीके से आरम्भवाद तथा परिणामवाद इन दोनों प्रक्रियाओं को मानता है। कारणरूप से वह परमाणुओं को तथा एकत्रित परमाणुओं से कार्य को स्थूलरूप से उत्पन्न होना मानता है इसलिए इस अंश में जैनदर्शन आरम्भवादी और कारण में कार्य की सत्ता को स्वीकार करने से तथा कारण का ही कार्यरूप में परिणत होना मानने से इस अंश में परिणामवादी है। जैनदर्शन में प्रतीत्य-समुत्पाद वाद और विवर्तवाद का कोई स्थान नहीं है क्योंकि प्रतीत्य-समुत्पाद वाद प्रत्येक वस्तु को अनित्य और क्षणस्थायी मानता है और विवर्तवाद जगत को स्वप्न के माफिक अलीक मानता है। *

भारतीय दर्शनशास्त्र शुष्क ज्ञानमात्र अथवा विद्वानों के मनोविनोद का साधन मात्र नहीं है। भारत में दर्शन तथा धर्मका, तत्त्वज्ञान और जीवन का गहरा सम्बन्ध है। जीव विविध प्रकार का क्लेश पाता है इन क्लेशों की निवृत्ति कैसे हो, जीव जड़ के बन्धन से कैसे मुक्त हो सकता है यह बतलाना भारतीय दर्शन का एकमात्र लक्ष्य है। जड़ पदार्थों के विश्लेषण से नाना प्रकार की सांसारिक उन्नति होती है। सुख प्राप्ति के लिए विविध प्रकार का साधन बनता है। पर भारतीय दर्शन ने इन सुखों को दुःख मिश्रित सुख कहकर इसकी उपेक्षा की है और आत्मविश्लेषण पर अधिक भार देता है। आत्मविश्लेषण का फल है अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि नैतिकता। इसी नैतिकता का अभाव मानव जीवन को दुःखपूर्ण बनाता है क्योंकि जितना ही नैतिकता का विकास होता है उतना ही मानवजीवन सुखी होता है। इसलिए आज के जगत में इतनी यान्त्रिक उन्नति होने पर भी, सुख के प्रचुर साधन उपस्थित होने पर भी इन सभी के पीछे आत्मविश्लेषण नहीं रहने से नैतिकता के अभाव में आज का मानव समाज धीरे धीरे सुख और शान्ति से दूर होता हुआ न तो स्वयं ही सुख पाता है और न दूसरे को शान्ति देता है।

---

* दृश्यमान जगत का मौलिक तत्त्व क्या है? यदि स्वप्न से अधिक मौलिक तत्त्व हो तो परस्पर का सम्बन्ध है या नहीं? मौलिक कारण कार्यरूप में कैसे परिणित होता है? मैंने पूर्वोक्त इन तीन प्रश्नों का उत्तर जैन दर्शन के अनुसार संक्षेप में वर्णन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"निर्बल के बल राम"

–कुमारी सत्यवती जैन, प्रभाकर

मेरे जीवन की ग्रंथियाँ उलझ गईं, मेरे सुनहले स्वप्नों के गगन मण्डल में जगमगाते इन्दु पर काली घटाएँ घिर आईं, मेरे प्रफुल्लित हृदय में विषाद की रेखाएँ खिच गईं। अंधकार छा गया, मैंने—हड़बड़ा कर देखा, मेरी जीवन नौका से सागर की असंख्य छोटी बड़ी लहरें खिलवाड़ करने जा रही हैं...... मेरा सर्वस्व... लूट कर..... मेरा...... सर्वनाश...... करना चाहती हैं।

मैंने अपने दृढ़ हाथों से पतवारें पकड़ीं और नौका को इस भीषण संघर्ष से बचा कर पार ले जाना चाहा......परन्तु—तूफ़ान बढ़ता गया, आँधी, पानी, बिजली, मेघ ओह! मेरा साहस छूट गया; हाथों से पतवारें छूट गईं और......और न जाने कहाँ ...किस दिशा की ओर......बह चली मेरी नौका।

ओह! इस काली रजनी के आंचल में छुपे–छुपे ही......मेरी जीवन लीला समाप्त हो जायगी? मैंने सोचा, मेरा हृदय वेग से धड़कने लगा, नेत्र बन्द कर लिये और अपनी डगमगाती हुई नैया को रामाधार छोड़ दिया। मुझे मूर्च्छा आ गई परन्तु मेरी धीमी साँस कह रही थी—नि...र्ब...ल...के... ब...ल...रा...म।

प्रभात आया, जिसके आने की मुझे तनिक भी आशा न थी, सामने एक सुन्दर द्वीप दृष्टि गोचर हुआ, मैंने समझा मेरा स्वप्न झूठा है, भय के कारण मेरा शरीर शिथिल हो चुका था बड़ी कठिनता से मैंने हाथ उठाकर अपने नेत्र मले, और तीव्र दृष्टि से देखा—अरे! यह तो वही द्वीप है; जहाँ मुझे पहुँचना था, मेरा हृदय हर्षोल्लास से भर गया, प्रभो! क्या आप मरणासन्न परीक्षा लेकर ही निर्बलों को सहायता प्रदान करते हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी समन्तभद्र जी—

—प्रो० पद्मनाभ जैनी, एम० ए०

दुनिया के जितने महान् पुरुषों का हमें ज्ञान है उससे बहुत बड़ी संख्या उन महात्माओं की है जो अज्ञात हैं और अज्ञात रहना ही पसंद करते हैं। खुदा की शान दिखती है मगर खुदा नहीं दिखता। इसी तरह उन अज्ञात महात्माओं ने जिन्दगी में जो कुछ किया वही हम देख पाते हैं। उन महात्माओं को देखने का, उनके सत्संग पाने का या उनके अन्तेवासी बन कर मूक सेवा की शिक्षा लेने का भाग्य तो बहुत थोड़ों को नसीब होता है। निसर्ग जिस मूकतासे, जिस धारावाही क्रम से चलता है उसी प्रकार, उतने ही स्वाभाविक रूप में इन महात्माओं का जीवन कार्य चलता है, जिसे दिखाये बिना वे नहीं दिखते और प्रकाश में बिना लाये अज्ञात ही रह जाते हैं। ऐसे ही एक महान् आत्मा का परिचय, एक अदृष्ट सूर्य का दर्शन कराने का प्रयत्न यहाँ किया जाता है।

गत पचास वर्षों में भारत में जो शैक्षणिक आन्दोलन हुए उन से अनेक सत्पुरुष प्रकाश में आए। राजा राममोहन राय से प्रारंभ करके स्वामी विवेकानन्द तक भारत के शैक्षणिक क्षेत्र में काफी जागृति हुई और शिक्षण की नई नई परंपराएँ चालू हुईं। इनमें गुरुकुल शिक्षण का स्थान सर्वश्रेष्ठ रहा। स्वामी श्रद्धानन्द जी का कांगडी गुरुकुल, रवीन्द्रनाथ टागोर का शांतिनिकेतन, महात्मा गांधी का राष्ट्रीय विद्यापीठ और सत्याग्रहाश्रम आदि संस्थाओं ने राष्ट्र को नया आदर्श दिया और शिक्षण की नई परंपरा चालू की। इसी परंपरा में जैन समाज का जो प्रथम प्रयत्न उदात्त भावना को लेकर हुआ वह स्वामी समंतभद्र जी की देन है। स्वामी समंतभद्र जी ने गत चालीस वर्ष में जैन समाज के लिए जो कुछ किया है वह शायद ही किसी अन्य व्यक्ति ने किया हो। ऐसा होने पर भी उनका नाम शायद ही किसी को ज्ञात हो। क्योंकि, गुरुकुल के उच्च आदर्श के अनुसार वे सदैव अज्ञात रहे हैं। जिस महात्माने अपने साठ वर्ष की जीवनी में सैंकड़ों विद्यार्थियों को केवल शालीय शिक्षण ही नहीं दिया बल्कि मनुष्य बनाया, अपने सर्वोच्च स्वार्थ त्याग से भारत के सामने एक नया आदर्श खड़ा किया उसकी षष्ट्यब्धि पूर्ति के मंगल प्रसंग पर उनके जीवन का परिचय पाना हमारा कर्तव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी समन्तभद्र जी का जन्म ईस्वी सन् १८९१ में शोलापुर के पास दुधनी ग्राम में एक गुजराती जैन कुटुम्ब में हुआ। उनका जन्म नाम है 'देवचन्द कस्तूरचन्द शाह'। बहुत वर्षों पहले गुजरात के ईडर प्रान्त के अनेक जैन कुटुम्ब दक्षिण महाराष्ट्र में आकर बसे और आज भी अपने व्यापार कौशल्य के लिए प्रसिद्ध हैं। सेठ बालचन्द हीराचन्द आदि अनेक प्रसिद्ध व्यापारियों को इसी कौम ने जन्म दिया। वैश्य होने पर भी इस समाज की जो सांस्कृतिक प्रकृति है उसके कारण देवचंद जी का ध्येय व्यापारी बनना नहीं था। पूना के फर्ग्यूसन् कॉलेज में उन्होंने तत्त्वज्ञान विषय में बी० ए० तक अध्ययन किया। इसी अरसे में वे उस जमाने के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी विचारक श्री अर्जुनलाल जी सेठी के संपर्क में आये और साथ ही तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। शिक्षण समाप्त होने पर जब गृह-जीवन का समय आया तब देवचंद जी ने अपने जीवन के लिए अलौकिक संकल्प किया और आजीवन बालब्रह्मचारी रह कर समाज में शिक्षण का कार्य करने का निर्णय किया। लेकिन केवल ब्रह्मप्राप्ति के लिए ही ब्रह्मचारी रहना संभव है यह जानकर उन्होंने उसी "ब्रह्म विहार" की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये। जीवन की अंतर्बाह्य विशुद्धि के बिना ब्रह्मचर्य सिद्ध नहीं होता और अभ्यास तथा वैराग्य के बिना विशुद्धि कहाँ? देवचंद जी ने अपना जन्मस्थान छोड़ा और विदर्भ (बरार) में कारंजा नामक जैनों के प्रसिद्ध स्थान में ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया। तब से वे ब्रह्मचारी देवकुमार के नाम से पहचाने जाते थे। आंग्लशिक्षण से सुसंस्कृत इस कुलीन और श्रीमान् नव-युवक के उज्ज्वल संकल्प से अनेक उदारमना आकर्षित हुए और कारंजा में सन् १९१९ में श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की गई। करीब तैंतीस वर्ष पहले इस संस्था का उदय हुआ। ब्रह्मचारी देवकुमार जी ने जिस पक्के पाये पर यह संस्था खड़ी की वह देखने लायक है।

करीब पचास हजार रुपये के गुप्तदान पर यह संस्था खड़ी हुई। उस ज़माने में केवल पांच व्यक्तियों ने इतनी बड़ी रक़म गुप्तदान के रूपमें दी। गुप्तदान के रूप में यह दान होने से संस्था का प्रारंभ किस पवित्र हेतु से प्रेरित हुआ था यह पाठक जान सकते हैं। यही उज्ज्वल आदर्श ब्रह्मचारी देवचंद जी ने सदैव रक्खा है। दान देना हो तो गुप्तदान, सेवा करनी हो तो मूकसेवा। क्या जैन और क्या अजैन, सभी समाजों में, अपनी ख्याति के लिए, अपनी वैयक्तिक अहंता और अस्मिता के पोषण के लिए धन का, सेवा का, लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…और समाज का यत्र तत्र उपयोग किया जाता है। लेकिन अपने चालीस …के सेवामय जीवन में ब्र० देवकुमार जी ने जो कुछ दान पाया वह प्राय: …दान रहा है, जो कुछ सेवा की और कराई वह भी मूक रही है और जो …क निर्माण किये वे भी चुप ही रहे हैं।

कारंजा का 'महावीर ब्रह्मचर्याश्रम' उन्होंनें गुरुकुल पद्धति से चलाया। …ज के अत्यंत निम्न स्तर के गरीब विद्यार्थियों को चुन चुन के आश्रम में …या, कितने ही बेघरों को बसाया और प्राथमिक शिक्षण देना शुरू किया। …संस्था में जैन विद्यार्थी रहते थे, और अजैन विद्यार्थिओं को मुफ्त शिक्षण …या जाता था। सुबह से शाम तक अपना निरंतर सहवास विद्यार्थियों को …, उनमें नये नये संस्कारों का सिंचन करना, उनके साथ ही खान पान, …राम और श्रम करना। अपनी सर्व शक्ति उन बालगोपालों के विकास में …ाना, उन्हें ब्रह्मचर्य के पवित्र आदर्श की ओर प्रेरित करना और यह सब …र्थ के हेतु से या वित्त की अभिलाषा से या कीर्ति की कामना से नहीं बल्कि …ल 'ब्रह्म' के अभ्यास में यही सर्वोच्च साधना है इस भावना से! हमारे …ित और अशिक्षित विशाल भारतीय समाज में ऐसे ध्येयवादी शिक्षक …तने हैं!

ब्र० देवकुमार जी के मूक कार्य का प्रारंभ यद्यपि बहुत छोटा था, काल …म से उसने बड़ा रूप लिया। प्रतिवर्ष एकेक कक्षा बढ़ती गई और थोड़े ही …मय में कारंजा का गुरुकुल हाई स्कूल तक शिक्षण देने में समर्थ हुआ। …वल संप्रदाय को पुष्ट करने वाली, जीवन के अन्यान्य अंगों का दुर्लक्ष करके …वल धर्म ग्रंथों के निःसत्त्व पठन में ही सार्थकता मानने वाली अनेक शिक्षण …स्थाएँ उस जमाने में भी जैन और अन्य समाजों में कम न थीं। लेकिन …च्च धार्मिक शिक्षण के साथ लौकिक शिक्षण, उच्च धार्मिक जीवन के साथ …जीवन का भी शिक्षण, ऐसा सुन्दर समन्वय ब्र० देवकुमार जी ने अपनी …स्था में किया। इस कारण भारत की पाठशालाओं में जो एकांगी धर्म-…क्षण था और आंग्लविद्यालयों में जो संस्कार विरहित केवल भौतिक शिक्षण …, उन दोनों के दोष को टालते हुए, जीवन में उन्नत और उपजीवन में समर्थ …विद्यार्थी वर्ग का निर्माण ब्र० देवकुमार जी कर पाये।

"न धर्मो धार्मिकैर्विना" यह संस्था का ध्येयवाक्य था। धर्म की कोरी …र्चा नहीं लेकिन धार्मिक व्यक्तियों पर, धार्मिक जीवनपर ही संस्था खड़ी थी। …र्म से जिन लोगों ने प्रेरणा पाई वे ही इस आनन्द यज्ञ में भाग ले सकते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्था की प्रगति सेवकों के त्याग और श्रम के परिमाणमें होती है। कारं पंद्रह बीस वर्ष पहले कारंजा की संस्था जब कार्य प्रवण हुई और उसका संचालन करने वाले योग्य व्यक्ति पैदा हुए तब ब्र० देवकुमारजी ने प्रव्रज्या ली और वे क्षुल्लकव्रतधारी बने। केवल तीन वस्त्र रखना, एक बार ही भोजन करना, अनगार होकर रहना आदि कठिन व्रतों से पूर्ण जीवन को अपनाया। इसी आश्रमान्तर के प्रसंग पर उन्हें नया नाम दिया गया। अब ब्र० देव कुमारजी "समंतभद्र" के शुभ नाम से पहचाने जाने लगे। जिन स्वामी समंतभद्र ने करीब बारह सौ वर्ष पहले अपनी विद्वत्ता से सारे भारतमें अनेकान्त धर्म की स्थापना की उसी परमार्हत का शुभनाम ब्र० देवकुमारजी के लिए उनके दीक्षागुरुने चुना यह अर्थपूर्ण है। लेकिन संन्यासव्रत स्वीकार करने पर समंतभद्रजी ने अपने शिक्षणकार्य को छोड़ के उदासीनाश्रम में बैठना या डेरा जमाकर विहार में उपदेश देना ठीक नहीं समझा। धर्मचक्र का यथार्थ प्रवर्तन तो समाज में रहकर ही, उसके अन्यान्य स्तरों में काम करके ही होता था। निवृत्तिपरक साधु संस्था में रहते हुए भी स्वामी समंतभद्रजी ने यह जो निर्दोष प्रवृत्ति चालू रक्खी इसीमें उनकी महत्ता है। अपने समाज में और सारे भारत में भी साधुओंकी संख्या कम नहीं है, लेकिन विशिष्ट ध्येय से प्रेरित होकर प्रामाणिकता और निस्पृहता से लोकशिक्षण का कार्य करने वाले समर्थ श्रमण कहाँ है? स्वामी समंतभद्रजी ने अपने दीर्घ सेवाकाल में अनेक सेवकों को तैयार किया। अपनी सारी धन दौलतको छोड़कर, जीवन भर ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा से, अवेतन सेवाकार्य करने के लिए जीवन समर्पण करनेवाले समर्थ युवक पैदा होना यह क्या सामान्य बात है? हमारे देश में अपार पामरता और अज्ञान है ऐसी शिकायत करनेवाले देश सेवकों की कमी नहीं है। कमी है, प्रयत्न करनेवालों की। केवल स्वात्मोन्नति के लिए एक उच्च साधन के रूप में आजीवन सेवा कार्य की दीक्षा लेनेवाले थोड़े भी तरुण निर्माण करने का सामर्थ्य जिसमें है वह व्यक्ति, वह आदर्श और वह प्रणाली कितनी सर्वोदयकारी है इसकी कल्पना पाठक ही करें। स्वामी समंतभद्रजी की महत्ता इसी में है। अपने पथ पर चलने वाले आठ दस विद्यार्थियों को उन्होंने तैयार किया और उनके आत्मविकास के लिए योग्य कार्यक्षेत्र के रूप में महाराष्ट्र के अन्यान्य विभाग में उन्होंने जैन गुरुकुल—हाई स्कूलों की स्थापना की।

इस में दक्षिण महाराष्ट्र के 'बाहुबलि जैन गुरुकुल' का कार्य विशेष उल्ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। दक्षिण महाराष्ट्र में, कोल्हापुर के पास प्राय: सभी देहातों में जैनों का बहुमत है। लेकिन शिक्षण के अभाव से उन्हें अपने जैन होने का पता भी नहीं था। ऐसी परिस्थिति में कारंजा के कुछ ध्येयवादी नवयुवकों को साथ लेकर स्वामी समंतभद्र जी ने एक नई संस्था का प्रारंभ सन् १९३३ में किया। कोल्हापुर के पास के करीब पचास सौ देहातों में उन्होंने एक एक विद्यार्थी को अपने गुरुकुल में लिया और उनके लिए मुफ्त शिक्षण की, रहने की और खानपान की व्यवस्था की। देहातों में, गुरुकुल के इन विद्यार्थियों के लिए स्वयं स्फूर्ति से हररोज हरएक घर से 'एक मुष्टि' जवार और गेहूं एकत्र होता था और प्रतिवर्ष अपना संग्रह गाड़ी में भर भर के लोग आश्रम में दे जाते थे। जिन घरों को सैकड़ों वर्षों में कभी ज्ञान या शिक्षण का स्पर्श नहीं हुआ था उन घरों तक शिक्षण को पहुँचाने का यह महान् कार्य स्वामी समंतभद्र जी ने किया। गत १५ वर्ष में यहाँ पर लाखों रुपयों का दान, प्राय: खेती करने वाली जनता से इकट्ठा हुआ है। हजारों गाड़ियाँ अपने प्रीतिपूर्ण 'एक मुष्टि' दान को लेकर वहाँ आई हैं और सैकड़ों विद्यार्थियों ने लौकिक और धार्मिक शिक्षण पाकर अपने अपने देहातों को उसका लाभ दिया है। यह सारा शिक्षण भी संस्था के बाहर के शिक्षकों से नहीं लेकिन गुरुकुल के स्नातकों की स्वयं स्फूर्त सेवा से हुआ है। स्वामी समंतभद्र जी की शिक्षण की नीति यह थी कि शालान्त शिक्षण के बाद प्रत्येक विद्यार्थी ऐसी संस्थाओं में अपना एक वर्ष सेवा के रूप में दे। इसी नियमानुसार, कारंजा के विद्यार्थी शालांत (मैट्रिक) शिक्षण के बाद बाहुबली में काम करते और बाहुबली के विद्यार्थी शोलापुर, नासिक, स्तवनिधि, देऊलगाँव, खुरई या अन्यत्र जहाँ गुरुकुल की शाखाएँ चलती थीं वहाँ जाकर अवैतनिक कार्य करते थे। अपने देश के शैक्षणिक प्रश्न को हल करने के लिए, विश्वविद्यालय के शिक्षण के बाद प्रत्येक स्नातक के लिए देहात में एक वर्ष की अवैतनिक सेवा अनिवार्य करने की अनेक योजनाएँ हमारी सरकार के सामने हैं, ऐसा सुना जाता है लेकिन इसका सर्व प्रथम आयोजन पन्द्रह वर्ष पहले अगर किसी ने इतने व्यवस्थित रूप में किया हो तो, वह स्वामी समंतभद्र जी ने ही! यह भले ही छोटे पैमाने पर हो, लेकिन देश के लिए यह शिक्षणनीति अनुकरणीय है इसमें सन्देह नहीं है।

स्वामी समंतभद्रजी की शिक्षण नीति सम्बन्धी और भी अनेक बातें मननीय हैं। जो काम गुरुकुलों के शिक्षक करते हैं वह परिमाण में और शिक्षकों के काम से अधिक होता है। सिर्फ शाला में पढ़ाने का ही नहीं लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियों के प्रत्येक कार्यक्रम के साथ शिक्षक का संबंध रहता है। सुबह पांच बजने पर उठने से लेकर, स्वाध्याय, व्यायाम भोजन और अभ्यास, खेल और विहार, सामायिक और अध्ययन, सभी कार्यक्रमों में विद्यार्थी और शिक्षक एकत्र पाये जाते हैं। सरकारी सहायता न होने से अनेक निर्बंधों से ये संस्थाएँ मुक्त हैं। अपने दुर्भागी देश में जो छुट्टियों की भीड़ शालाओं में हुई है उससे कितना समय और धन का अपव्यय होता है यह देखने पर समाज की सदिच्छा और गरीबोंके एकमुष्टि दानसे चलती हुई इन संस्थाओं में जो बारहमास और चौवीस घंटे काम चलता है उसीसे राष्ट्र का धन बढ़ता इसमें संदेह नहीं रहता। 'काम, ज्यादह काम, और ज्यादह काम' यही स्वामी समन्तभद्रजीका सूत्र है। खुले पग और नंगे सिर देहातों में रोज घूमकर संस्था के लिए विद्यार्थी और धान्य इकट्ठा करनेवाले स्वामीजीको जिन्होंने देखा है उन्हें समाजके दुर्लक्षित भागों में शिक्षण का प्रकाश पहुँचाना कितना पुरुषार्थपूर्ण है इसकी कल्पना आएगी। शाला में भी विद्यार्थियों से जो शालेय अभ्यास के अलावा अनेक जुदी जुदी प्रवृत्तियाँ कराई जाती हैं और उपयोगी विद्याओंका अध्ययन कराया जाता है उससे स्पष्ट है कि हम लोग हमारी शालाओं में विद्यार्थियों के सामर्थ्य का, उनके समय और बुद्धिका पूरा उपयोग नहीं करते हैं, जिससे शिक्षण महंगा ही नहीं बल्कि एकांगी और अधूरा रहता है।

स्वामी समंतभद्र जी की शिक्षणनीति का एक और स्पृहणीय अंग यह है कि उन्हों ने उच्च याने विश्वविद्यालयीय शिक्षण पर उतना भार नहीं दिया जितना कि प्राथमिक और शालेय शिक्षण पर। हमारे समाज में विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षण के नाम पर जो अपार व्यय, समय और धन का, होता है वह भारत जैसे गरीब और सर्वथा अशिक्षित देश के लिए शायद ही हितकारी है। ज्यादा से ज्यादा लोगों को, थोड़े खर्च में और अधिक से अधिक शिक्षण मिलने के लिए प्रयत्न करने के बदले नगरों में उच्चशिक्षण को केन्द्रित करके देहातों की ओर जो दुर्लक्ष किया जाता है उसके कुपरिणाम स्पष्ट हैं। कोई कॉलेज खोलना या यूनिवर्सिटी में अमुक चेयर स्थापित करना यह तो उत्तम है ही लेकिन उतने ही श्रम और पारिश्रमिक से सैकड़ों प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ देहातों में खोली जायँ तो वह बहुजनहितकारी है यह निर्विवाद है। स्वामी समंतभद्र जी ने राष्ट्रीय आवश्यकता को जानकर उसकी पूर्ति जिस सेवा भाव से की है वह निःसंशय अनुकरणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि स्वामी समंतभद्र जी ने जैनों के सहाय से और जैनधर्म के पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न किये और अपना कार्यक्षेत्र जैन समाज तक सीमित रक्खा, तो भी उन्होंने कभी सांप्रदायिकता को नहीं बढ़ने दिया। गुरुकुलों में सिर्फ जैनविद्यार्थियों के लिए ही रहने की व्यवस्था थी लेकिन अनेक अजैन विद्यार्थी गुरुकुल में शिक्षण के लिए अभी भी आते हैं। विचारों के बारे में भी स्वामी समंतभद्र बड़े उदार हैं। संस्था के विद्यार्थी जब उच्चशिक्षण पाकर कॉलेज़ से पीछे संस्था में आते तो नये विचार और कार्यदिशा लाये बिना नहीं रहते। उन सबका संग्रह स्वामी समंतभद्र जी ने अत्यन्त कौशल्य से किया है। हाँ, जिसे समाज की सदिच्छा पर ही यह कार्य होनेवाला था वह समाज अत्यंत सनातन संस्कारों से बद्ध होने से अपने पुरोगामी विचारों को क्षोभजनक रीति से पेश करने के बदले, शांतता से चित्तपरिवर्तन करके और मधुर वैयक्तिक संबंध से उन्होंने पेश किये। अपने ४० वर्षों की सेवा में स्वामी जी शायद ही कभी पब्लिक सभा में बोले हों। संस्था के अनेक वार्षिक उत्सव हुए, अनेकानेक नई इमारतों के उद्घाटन समारभ हुए लेकिन स्वामी जी कभी भी सभा समाज में आगे नहीं आए। अभ्यागत को संस्था बतलाना, उसे मदद की प्रेरणा करना, कार्यकर्त्ताओं को सदैव उत्साहित रखना, दाता की इच्छानुसार दान का उपयोग करना, लेकिन महोत्सव में पीछे रहकर दाता का ही अनुमोदन करना यह अद्भुत निस्पृहता देखने पर इस महान् आत्मा की त्यागबुद्धि कितनी विशुद्ध है इसका पता लगता है।

स्वामी जी ने अपने जीवन में जो पुरुषार्थ किया उससे सैकड़ों विद्यार्थियों को शिक्षण मिला। और जो अधिक पुण्यवान् थे उनमें कल्याणकारी सेवावृत्ति भी पैदा हुई। सदैव कार्य करते रहो, जिसमें अपना कल्याण है उसको चुनो, जिससे अपने अंतरात्मा का समाधान हो उसे ही करो, वीतरागत्व की वृद्धि जिसमें हो ऐसा जीवन जीवो यही स्वामी जी का संदेश है। ऐसे कृतार्थ और कृतविद्य सत्पुरुष के साठवें वर्ष के दिन पर उनके चिर आयु और आरोग्य की मंगल कामना करना कृतज्ञता का चिह्न है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदना

अरे ! इन प्राणों में अनजान
वेदना का यह कैसा भार ?
हुआ क्यों मिट्टी में मिल नष्ट
सुनहला सहसा सखि ! संसार

सभी के जीवन का 'मधुमास'
स्वयं क्यों 'पतझड़' बनता मित्र !
घिनोनी हो जाती क्यों देह
कभी लगती जो परम पवित्र ?

त्रस्तमानव का जीवित रूप
सदा चित्रों तक रहता शेष ।
उसे है आदर से क्या इष्ट
न जिसका कोई अपना शेष ॥

सुखद वरदान शाप के तुल्य
जल चुका जीवन का स्नेह।
श्वास चालित होवेगा नष्ट—
'यंत्र' इसमें न लेश सन्देह॥

'वेदना' से पीड़ित सो चुकी—
कल्पना कवि की, नष्ट विचार।
निकलती बस अन्तर से आह
"सजग हो –है संसार निसार॥

सभी नाचेंगे दो क्षण और
चले जावेंगे अपनी राह।
'वेदना' में ही रह कर करो
'आत्मदर्शन' छोड़ो सब चाह॥

—ज्ञानचन्द्र 'आलोक'

——:०:——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र की मर्यादा–

–प्रो० महेन्द्रकुमार, न्यायाचार्य

'शास्त्र की मर्यादा' के प्रश्न में हमारी संस्कृति का मूल आधार छिपा हुआ है। वैदिक संस्कृति का पाया 'वेद' की निर्बाधगति और उस पर तर्क से परे की श्रद्धा पर रखा गया है। उसकी पहली शर्त है कि धर्म जैसे अतीन्द्रिय और सूक्ष्म पदार्थ को एकमात्र वेद ही प्रतिपादन कर सकता है, किसी मनुष्य या देवता में यह शक्ति नहीं हो सकती जो धर्म का साक्षात्कार कर सके। धर्म को यदि जाना जा सकता है तो वेद के द्वारा ही।

"चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयक-मर्थमवगमयितुमलं नान्यत्किञ्चनेन्द्रियम्" (शावरभा० १।१।५)

अर्थात् वेद ही भूत वर्तमान भविष्यत् सूक्ष्म व्यवहित आदि अतीन्द्रिय जातीय पदार्थों का ज्ञान कराने में समर्थ है अन्य इन्द्रियाँ आदि नहीं। इसी घोषणा के बल पर 'वेद' धर्म के नियम उपनियमों में अन्तिम और निर्बाध प्रमाण है। और यही कारण है कि वैदिक मीमांसकों ने पुरुष की पहुँच धर्म तक नहीं मानी। उसने पुरुष के ज्ञान के अन्तिम विकास–धर्मज्ञता, सर्वज्ञता और वीतरागता पर विश्वास नहीं किया। पुरुष की शक्ति और चाहे जिसको जाने पर धर्म को नहीं जान सकती। वह तो अपौरुषेय वेद के द्वारा ही जाना जा सकता है। इस तरह वेदशास्त्र पर बिना कुछ ननु नच किये ही श्रद्धा करना और धर्म का निर्णय वेद के शब्दों के आधार पर करना यह वैदिक संस्कृति की प्रथम मूल और अनिवार्य शर्त है। प्रखर वैदिक आचार्य भट्ट कुमारिल से जब यह पूछा गया कि आप सर्वज्ञता का निषेध क्यों करते हो ? तो उनने इस प्रश्न का उत्तर बहुत स्पष्ट और विश्लेषण पूर्वक दिया। उनने लिखा है[1] कि—सर्वज्ञता के निषेध का अर्थ है धर्मज्ञता का निषेध, अर्थात् धर्म को वेद से ही जाना जा सकता है अन्य किसी जरिये से नहीं। धर्म के सिवाय दुनियाँ के अन्य सब पदार्थों को कोई भले ही जाने, हमें उसमें आपत्ति नहीं।

१ "धर्मज्ञत्वनिषेधस्तु केवलोऽत्रोपयुज्यते।
सर्वमन्यद्विजानानः पुरुषः केन वार्यते ॥"—कुमारिल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु श्रमण संस्कृति के नेताओं ने सर्वप्रथम इसी बात को नहीं माना कि धर्म का निर्णय वेद से हो। उनने पुरुष की वीतरागता और सर्वज्ञता, धर्मज्ञता या तत्त्वज्ञता पर अविश्वास नहीं किया, प्रत्युत अपनी जीवन की साधना के द्वारा स्वयं धर्म का साक्षात्कार किया और बताया कि वीतरागी पुरुष के ज्ञान का इतना विकास हो सकता है जिससे उसे धर्म का स्पष्ट दर्शन और अनुभव हो सकता है। वे धर्म जैसी जीवन को उन्नत बताने वाली वस्तु को किसी अकर्तृक शास्त्र के सुपुर्द नहीं करना चाहते थे। वेद के निर्बाध धर्माधिकार का स्पष्ट और तर्कसंगत इनकार श्रमण संस्कृति के युगपुरुषों ने किया। तात्पर्य यह कि जहाँ वैदिक संस्कृति शब्द-प्रमाणवादी है वहाँ श्रमण संस्कृति अनुभवप्रामाण्य को स्वीकार करती है। श्रमण संस्कृति के अन्तिम तीर्थंकर निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र महावीर ने वेद की प्रमाणता की दिमागी गुलामी से भव्यजीवों को मुक्त कर स्वयं साक्षात्कृत अपने निर्मल अनुभव में झलके हुए धर्म का त्रिकालाबाधित उपदेश दिया। यह तो हमारी संस्कृति की मूल दृष्टि हुई।

एक बात और यहाँ विचारने की है कि जैन परम्परा के अनुसार सभी तीर्थंकरों के उपदेश एक जैसे और ज्ञान भी एक जैसा होता था। जिस तत्त्व का साक्षात्कार आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव ने किया उन्हें जितना और जैसा तत्त्वज्ञान था वैसा और उतना ही तत्त्वज्ञान अन्तिम तीर्थंकर महावीर को था। और इसीलिए धर्म का उपदेश भी प्रायः एक जैसा होता रहा है। यद्यपि ऊपर से यह बात कुछ अटपटी लगती है पर वस्तुतः इसमें सत्यनिष्ठा का त्रिकालाबाधित रूप मौजूद है। जगत् में अशान्ति और व्यक्ति की आकुलता के कारण परिग्रह की तृष्णा और राग द्वेष मोह की त्रिपुटी है। जगत् में हिंसा संघर्ष और युद्ध परिग्रह की छीना झपटी तथा पुद्गल को अपना मानकर तदाश्रित प्रभुत्व सत्ता और अहंकार के पोषण की दुर्वृत्ति के ही कुफल हैं। इन तीर्थंकरों ने इस तत्त्व का साक्षात् और स्पष्ट दर्शन किया कि संसार का प्रत्येक चेतन प्राणी भूत सत्त्व जीव अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है। एक का दूसरे पर कोई निसर्गसिद्ध अधिकार नहीं। इसी तरह जगत् का प्रत्येक भौतिक अणु परमाणु भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। यद्यपि एक दूसरे से प्रभावित होकर उनके परिणमन नाना प्रकार के होते हैं पर उनके अस्तित्व स्वतन्त्र हैं। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर अधिकार करने की वृत्ति ही हिंसा है, यही संघर्ष का मूल है, यही पाप है और यही रागद्वेष आदि का कारण है। अतः धर्म है सब प्राणियों को समान मानना। परिग्रह और प्रभुत्व स्थापन की कुवृत्ति से दूसरे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार अपहरण की प्रवृत्ति हिंसा है। धर्म समता और अहिंसा ही हो सकता है। इसी से जगत् में शान्ति और व्यक्ति की मुक्ति हो सकती है। जाति कुल गोत्र रंग रक्त आदि पुद्गलाश्रित हैं। इनके कारण ऊँच नीच भाव मानना हिंसा है। अतः त्रिकालाबाधित धर्म अहिंसा ही हो सकता है और इसी मूल तत्त्व का साक्षात्कार जैन तीर्थंकरों ने किया था। यही सत्य सबके ज्ञान में झलका था। इसीलिए कहा गया है कि "जो अतीत वर्तमान या भविष्यत अर्हंत भगवंत हैं वे एक ही धर्म को जानते हैं कहते हैं कि सभी प्राणियों की हिंसा नहीं करना चाहिए। अहिंसा ही धर्म है।" श्रीमद् राजचन्द्र ने बहुत मार्मिक शब्दों में लिखा है कि—

"करोड़ ज्ञानियों के एक ही विकल्प होता है पर एक अज्ञानी के करोड़ विकल्प होते हैं।"

करोड़ों सम्यग्ज्ञानी जगत् की शान्ति और व्यक्ति की मुक्ति का एक ही उपाय सोचते हैं, पर अज्ञानी अपनी कषाय और परिग्रहवृत्ति की पुष्टि के लिए करोड़ों जाल रचता रहता है।

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म के मूलतत्त्व को जैन तीर्थंकर एक ही रूप में सोचते विचारते और प्रतिपादन करते थे। उन्हीं के वचनों का संग्रह शास्त्र कहलाता है। शास्त्र की मूलतत्त्व के सम्बन्ध में मर्यादा तो स्पष्ट है कि चाहे उसे श्रद्धा से मान लो या फिर निर्मल वीतराग विज्ञान से स्वय समझ लो, निष्कर्ष एक ही निकलेगा। अतः मूल सिद्धान्तों को शास्त्र के द्वारा भी यदि हम श्रद्धा करके मानते हैं तो उससे हमारी उस निर्मल वीतराग विज्ञान की गति नहीं रुकती; क्योंकि शास्त्र उसी वीतराग विज्ञान से कहे गए वचनों का संग्रह है, अतः प्रतिष्ठा वीतराग विज्ञान की है। कोई भी वीतराग विज्ञानी मूल तत्त्व को दो प्रकार से नहीं सोच सकता। शास्त्र तो सूत्र हैं, वे सूचना करते हैं मूल सिद्धान्तों की। ये धर्म के विधान हैं। जो सभी तीर्थंकरों के समान रूप से ज्ञान में झलकते हैं। अतः जहाँ तक मूल सिद्धान्तों का प्रश्न है, उन्हें हम श्रद्धा से मानें और उसमें शास्त्र को अन्तिम प्रमाण भी इसी आधार से स्वीकार कर सकते हैं कि वे निर्मल वीतराग विज्ञान से प्रसूत हैं और कोई भी वीतराग विज्ञान कभी भी, कहीं भी अन्यथा नहीं सोच सकता। रह जाती है उन मूल सिद्धान्तों को व्यवहार जीवन में उतारने की बात। संसार में अनन्त प्राणियों की द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की परिस्थितियाँ अनन्तानन्त होती हैं। सामाजिक राजकीय आर्थिक वैयक्तिक अनन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिस्थितियों में वे मूलसिद्धान्त किस रूप में लागू होंगे यह विचार उत्तरकालीन आचार्यों ने कुछ अपने युग की परिस्थितियों के अनुसार किये हैं। ये हमारे वीतराग विज्ञानकल्पी आचार्य समय समय पर उन सिद्धान्तों का युगानुसारी व्यावहारिक मार्ग बाताते आये हैं और उन्हें शब्दनिबद्ध करके नूतन पीढ़ी के लिए युगों से 'शास्त्र' के रूप में देते आये हैं। इन आचार्यकृत शास्त्रों में मूलसिद्धान्तों की वही पतितपावन धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती आई है और अपनी अटूट निष्ठा से उन सिद्धान्तों का निर्वाह इन युगदर्शी आचार्यों ने किया है। इन्होंने भी मूलसिद्धान्तों को विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार में लाने के स्थूल प्रकार ही बताए हैं, क्योंकि अनन्त द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अनन्त जीवों की अपेक्षा होने वाली अवस्थाओं में प्रत्येक अवस्था के व्यवहार का विवरण देना न संभव है और न शक्य ही। अत: उत्तरकालीन आचार्यों के शास्त्रों में जो मूलसिद्धान्तों के व्यवहार का स्थूल दिशादर्शन अपने युग को लक्ष्य में रख कर किया है, उसका हम अपनी परिस्थितियों के सुलझाने में पूरा पूरा उपयोग कर सकते हैं पर यह केवल श्रद्धा से नहीं चल सकता। इसका कारण स्पष्ट है। किस युग में, किन परिस्थितियों में उन आचार्यों ने क्या व्यवहार बताया इसका तर्कसंगत विचार हमें आज की द्रव्यक्षेत्रादि की परिस्थिति से करना ही होगा। वे दिशादर्शक हैं यह ठीक है और यहाँ तक श्रद्धा पूर्वक चलने पर भी आज और इस समय की स्थितियों में उन्हें कैसे और कहाँ तक लगाना इसकी जवाबदारी अन्ततः वीतराग विज्ञान पर ही आती है। हमारे आचार्यों के ग्रन्थों में जो आचार विषयक मतभेद देखे जाते हैं वे उनकी युगानुसारी सूझ के कारण ही हैं, उनसे हमें घबड़ाने की जरूरत नहीं। वे हमें इस कर्तव्य की ओर प्रेरणा देते हैं कि हम अपने युग के अनुसार मूलसिद्धान्तों को वीतराग विज्ञान पूर्वक व्यवहार में लाने के निर्दोष प्रकार ढूँढ़े, यह ध्यान रहे कि मूलसिद्धान्तों का विघात न हो। और इस तरह हम अपने निर्मल विज्ञान को सदा जागृत रखें। शास्त्रों का उपयोग दिशादर्शन तक ही है। आयुर्वेद में ज्वर की अनेक औषधियाँ हैं। पर किस रोगी को कहाँ कौन औषधि किस मात्रा में किस अनुपात से किस पथ्य और कैसी चर्या से उपयोगी पड़ेगी यह निर्णय करना चतुर वैद्य की जागृत बुद्धि का ही कार्य है। यह ठीक है कि आयुर्वेद पढ़कर ही वह वैद्य बना और आयुर्वेद के ग्रन्थ देखकर ही वह औषधि का निर्णय करता है। पर उसके व्यवहार, मात्रा, अनुपान का तात्कालिक रूप वही निश्चित करता है। अत: जैन संस्कृति के मूल सिद्धान्त के अनुसार शास्त्र हमारे निर्मल वीतराग विज्ञान के सहायक हो सकते हैं, कर्तव्य निर्णय के दिशा सूचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीं सकते हैं, पर हर परिस्थिति के दिग्दर्शक नहीं, क्योंकि उनमें प्रत्येक परिस्थिति का विचार संभव नहीं है। हाँ, मूलतत्त्वों और सिद्धान्तों के सम्बन्ध में उनकी जो मर्यादा है वह एकरस और निर्विवाद है। उसे चाहे श्रद्धा से मानो या निर्मल वीतराग विज्ञान की कसौटी पर कसो, फरक नहीं पड़ेगा।

अतः जहाँ वैदिक संस्कृति ने कहा कि—'तुम धर्म को वेद से ही जानो' उसमें अपने ज्ञान का दख़ल न दो, अपने ज्ञान को दुनियाँ के सारे पदार्थों में दौड़ाओ कोई बाधा नहीं.' वहाँ श्रमण संस्कृति ने कहा[1] कि—"हम दुनियाँ के शेष सब पदार्थों को जाने या न जाने पर हम उस धर्म को अपने निर्मल वीतराग विज्ञान से ही कसकर जानना चाहते हैं जो हमारे जीवन को उन्नत और निराकुल बनाता है तथा जिससे जगत् में शान्ति की आशा की जाती है।"

तात्पर्य यह कि श्रमण संस्कृति में शास्त्र की प्रतिष्ठा स्वयं नहीं, किन्तु निर्मल वीतराग विज्ञान के कारण है। अतः जो शास्त्र वीतराग विज्ञान की खरी कसौटी से घबड़ाता है और केवल श्रद्धा का पल्ला पकड़ता है वह हमारे लिए बहुत दूर तक उपयोगी नहीं हो सकता।

१—"सर्वं पश्यतु वा मा वा तत्त्वमिष्टं तु पश्यतु"—प्रमाणवार्तिक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत

पंथ के साथी ठहर जाओ, मिलन फिर हो न भी हो
आँख में तुमको बना तस्वीर रख लूँ
प्राण-दीपक में तुम्हारा स्नेह भर लूँ
आँधियों के बीच मरु में डगमगायेंगे चरण जब—
कौन जाने पास में कोई सहारा हो न भी हो।

पंथ रहने दो उसे ले क्या करूँगा
डूब जा मंजिल तुझे ले क्या करूँगा
क्षितिज के उस पार ऊजड़ देश में कैसे रहूँगा—
कौन जाने उस विजन में संग साथी हो न भी हो।

राह तेरी और मेरी मिल सकेगी?
मिल सकेगी तीर की बिछुड़ी तरी क्या मिल सकेगी?
दैव के दुर्गम भँवर से भी अगर मैं बच गया तो—
कौन जाने खार तो हो पर किनारा हो न भी हो!

देख नभ में चल रहे हैं दो सितारे
खींच जीवन-पंथ मेरे औ' तुम्हारे
कौन जाने गगन की घन गहनता में ये सितारे—
डूब जायें और फिर कोई सितारा हो न भी हो

यह निराशा पंथ में अभिशाप होगी
वेदना की भीति जीवन-शाप होगी
यह निराशा-वेदना मुझको मिली वरदान जैसी—
कौन जाने शाप में यह जिन्दगानी हो न भी हो।
पंथ के साथी ....

—राम प्रकाश जैन, एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्क का क्षेत्र—

—प्रो० विमलदास कोंदिया जैन

तर्क के क्षेत्र या उसकी मर्यादा के विषय में भारतीय तथा पाश्चात्य दार्शनिकों ने अत्यधिक चिन्तन किया है; अतएव दोनों प्रकार के दार्शनिकों का यह दृढ़ मन्तव्य हैं कि तर्क मनुष्य को कुछ हद तक ही तात्त्विक ज्ञान सम्पादन कराने में सहायक हो सकता है। प्रस्तुत लेख में यह दिखलाने का प्रयत्न किया जायगा कि यथार्थ में तर्क मानव-जीवन में जीवन और जगत् की समस्या को सुलझाने में कहाँ तक सफल हो सका है।

कुछ विचारकों की तर्क के विषय में अत्यधिक सांशयिक धारणा है। वे लिखते हैं, 'तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः, नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणं। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः।' अर्थात् तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। ऐसा कोई मुनि नहीं जिसके वचनों को सर्वथा प्रमाण मान लिया जाय। अतः धर्म का तत्त्व गुफा में छिपा हुआ है। मनुष्य का कर्तव्य है कि जिस मार्ग से महापुरुष चले हैं हमें भी उसी मार्ग से चलना चाहिए और वही सत्पथ है। यह कहावत बहुत प्राचीन है और इसका कई जगह उल्लेख मिलता है। बादरायण ने भी अपने ब्रह्मसूत्र में लिख दिया—'तर्काऽप्रतिष्ठानात्'। तर्क अप्रतिष्ठित है इससे किसी ध्येय की सिद्धि नहीं हो सकती।

यह परंपरा वैदिक धर्मावलम्बियों की है या उन रहस्यवादियों की है, जो तर्क को सर्वथा निरर्थक समझते हैं और कहते है कि बुद्धि तो व्यभिचारिणी होती है। इस पर विश्वास करना ही भूल है। इसके बल से तो सत्य को असत्य सिद्ध किया जा सकता है ओर असत्य को सत्य। अतः ईश्वर वचन या आगम ही यथार्थ ज्ञान कराने में सहायक हो सकता है। यूरोप में भी कान्ट, हेगेल, ब्रेडले आदि महानुभावों ने बुद्धि या तर्क की उपयोगिता एक सीमित क्षेत्र में ही बतलाई है। उनकी भाषा में तर्क (Discursive Reasoning) समग्र तथ्य का प्रतिपादक नहीं हो सकता। पूर्ण तत्त्व आन्तरानुभव (Intuition) से ही प्राप्त हो सकता है; अथवा पूर्णतत्त्व हमारे ज्ञान के परे की चीज है। यह सब विचारवादियों (Idealists) का चिन्तन है। इसके अतिरिक्त यथार्थवादियों ने भी इस समस्या पर अच्छी तरह विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है और प्रश्न उठाया है कि क्या तर्क या युक्ति सर्वथा निरर्थक है। यदि युक्ति या तर्क सर्वथा निरर्थक है तो हम जिस बात को दूसरे के सामने सिद्ध करना चाहते हैं उसका किस प्रकार समर्थन करेंगे। केवल किसी के कहने मात्र से तो किसी वस्तु के प्रामाण्य या अप्रामाण्य का निर्णय नहीं किया जाता। **किसी वस्तु के प्रामाण्य या अप्रामाण्य का निर्णय करना ही युक्तिवाद या बुद्धिवाद है।**

संसार में अनेक प्राणी हैं। कुछ न कुछ ज्ञान का अंश सब में पाया जाता है। छोटे जन्तु तथा पशु-पक्षियों का ज्ञान उनकी मूल प्रवृत्तियों (Instincts) तक ही सीमित रहता है। विश्व में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें समझदारी पाई जाती है। आंग्ल भाषा में इसको रैशनेलिटी (Rationality) कहते हैं। मनुष्य बुद्धिजीवी है यद्यपि मनुष्य के अन्दर से मूल प्रवृत्तियों का सर्वथा विनाश नहीं हो जाता तथापि उसका अधिकांश व्यवहार बुद्धि से ही समुत्प्रेरित होता है। यह बुद्धि का प्रयोग ही है जिस ने मनुष्य को स्वर्ग के उद्यान से बाहर निकाल कर फिंकवाया और उसको अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ी। संभव है यह केवल कल्पना ही हो किन्तु इसमें इतना तथ्य अवश्य है कि मनुष्य ने अपनी बुद्धि के बल से ही विश्व-प्रकृति में अनेक प्रकार के परिवर्तन पैदा किये हैं। आज भी जितना ज्ञान-विज्ञान का चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब बुद्धि या तर्क का ही प्रभाव है। बुद्धि से ही मनुष्य अपने हिताहित में प्रवृत्त होता है, अर्थात् हित को ग्रहण करता है और अहित का परिहार करता है। हित की प्राप्ति और अहित का परिहार, बुद्धि और तर्क के फल है। बुद्धिहीन प्राणी असंख्य दुःखों का भाजन बनता है।

यह सत्य है कि जहां बुद्धि या तर्क मनुष्य को सन्मार्ग का दर्शन कराते हैं वहां वे कभी कभी असन्मार्ग के गड्ढे में भी ढकेलते हैं। संसार में जहां बुद्धिमानों ने अनेक प्रकार के तत्त्व ज्ञान और आविष्कारों द्वारा जगत् का उपकार किया है वहाँ उन्हीं ने मानव-जाति-संहारक अणुबम आदि का आविष्कार कर तथा मिथ्याज्ञान का प्रचार और समर्थन कर मनुष्य जाति का अकल्याण भी किया है। यही कारण है कि कुछ तत्त्व-ज्ञानियों ने बुद्धि या तर्क को अप्रतिष्ठित उद्घोषित कर उसको वंचक बतलाया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने तर्क की दो प्रगतियाँ बतलाई है। एक प्रगति में वे ऊपर की ओर से नीचे की ओर उतरते हैं और दूसरी में नीचे की ओर से ऊपर की ओर जाते हैं। एक प्रक्रिया का नाम अवगमन या निगमन है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी प्रक्रिया का नाम उद्‌गमन है। प्रथम प्रक्रिया में बुद्धि कुछ बातों को मानकर उनके आधार पर अन्य निर्णयों पर पहुँचती है। इसके चिन्तन का क्रम इस प्रकार है—

सब मनुष्य मरणशील हैं, जिनभद्र मनुष्य हैं; अतः वह भी मरणशील है। यथार्थ में देखा जाय तो इस प्रकार के चिन्तन में बुद्धि का अधिक विकास नहीं होता। क्योंकि जिस वस्तु को हमने पहले से ही अपने सामान्य वाक्य में ग्रहण कर लिया हैं उसी का विस्तार विशेष वाक्य द्वारा कर देते हैं। किन्तु दूसरी प्रक्रिया में यह बात नहीं है। वहां हमें सर्वथा विशेष घटनाओं का दिग्दर्शन करके सामान्य निर्णयों में पहुँचना पड़ता हैं। जैसे; मोहन मरणशील है, सोहन मरणशील है, जॉन मरणशील है, शूफूं मरणशील है; इसलिए ये सब मरणशील हैं। इस प्रकार के सामान्य निर्णयों की प्राप्ति करना तर्क का उद्देश्य बतलाया जाता है। भारतवर्ष में इस प्रकार से तर्क का उपयोग करने वाले वेदान्ती हैं जो परम सामान्य पर पहुँच कर स्थिर हो जाते हैं; या बौद्ध हैं जो परम क्षणों की सत्यता पर विश्वास कर संसार को अनित्य समझते हैं। इन दोनों संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं का सामंजस्य श्रमण संस्कृति के तार्किकों ने किया है जिसका परम विकास स्याद्वाद-सिद्धान्त के अन्दर निहित हैं। यही जैनी नीति युक्ति या तर्क है। जैन तार्किक कुछ इससे और ऊपर उठकर वितर्क पर पहुँचे हैं जिसका उल्लेख ध्यान के प्रकरणों में पाया जाता है।

आचार्य समन्तभद्र ने सर्वज्ञ की परीक्षा करते समय एक बड़ा सुन्दर श्लोक कहा है:—'स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्। अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते।' अर्थात्, हे भगवन्! आप ही निर्दोष हैं क्योंकि आपके वचन युक्ति और आगम के विरोध से रहित हैं। अतः जो आप का प्रवचन या मत अविरोध रूप है उसमें प्रत्यक्ष से कोई बाधा नहीं आती। हरिभद्र ने भी इसी प्रकार कहा है—'युक्तिमद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।' जिसका वचन युक्ति पूर्ण हो उसी को ग्रहण करना चाहिए।

सामान्य रूप से युक्ति, तर्क, अनुमान, श्रुत एकार्थक ही ग्रहण किये जाते हैं। जैन तत्त्वज्ञान की दृष्टि से जितना श्रुत है वह सब वितर्क है। यह वितर्क या विचारशृङ्खला एकत्व शुक्लध्यान तक जाती है। उसके अनन्तर विचार का पल्ला छूट जाता है और आत्मगत कुछ सूक्ष्मक्रियाएँ प्रकट होने लगती हैं जिनका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। हिन्दुओं की विचारधारा के अनुसार जिसको कहा जाता है कि 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' अर्थात् जहाँ उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि एक दृष्टि से देखा जाय तो केवलज्ञान और स्याद्वाद में कोई विशेष अन्तर नहीं है। केवलज्ञान पदार्थव्यवस्था को साक्षात् जानता है और स्याद्वाद उसी को शब्द का आश्रय लेकर अपरोक्ष रूप से जानता है। इसीलिए अकलंक ने 'स्याद्वादः सकलादेशः' स्याद्वाद सकलादेश है—ऐसा कहा है। स्याद्वादी श्रुतकेवली होता है। स्याद्वाद, बुद्धि या तर्क का चरम-विकास है। बुद्धितत्त्व या तर्क का क्षेत्र यहीं तक है।

तत्त्वज्ञान के क्षेत्र की तरह तर्क का व्यवहार में भी उपयोग है। हमें किसी मनुष्य को किसी वस्तु का परिज्ञान कराना है तो हम बिना तर्क का आश्रय लिए उसको नहीं समझा सकते। तर्क का अस्त्र सांसारिक दिग्विजय में सर्वदा सहायक रहा है और रहेगा। गौतमऋषि के शब्दों में हम इसे आन्वीक्षिकी या बौद्धों के अर्थ में इसे हेतुविद्या भी कह सकते हैं जिसका अर्थ होता है प्रमाण से वस्तुतत्त्व की सिद्धि करना और उसमें दोष या हेत्वाभासादि दिखाना। सम्यक्-तर्क सर्वथा मिथ्याज्ञान का निराकरण करता है। गौतम ऋषि ने अवश्य ही जल्प, वितण्डा, छल, निग्रह स्थान आदि का तर्क के अन्दर समावेश कर इस देश में कुतर्क को जन्म दिया। यही कारण था कि मध्ययुग में कुतर्क के आधार पर अतत्त्व की भी सिद्धि की गई और एक दूसरे पर प्रहार करने के लिए अपशब्दों का भी प्रयोग किया गया जो वीतराग कथा के सर्वथा विरुद्ध था।

शुद्ध तर्क सर्वदा वीतराग कथा की ओर प्रेरित करता है। मनुष्य-जीवन का लक्ष्य शुद्ध तर्क का उपयोग कर आत्म तत्त्व की प्राप्ति होना चाहिए। केवल वाग्जाल से कोई प्रयोजन नहीं। इसी से मानव जाति का कल्याण हो सकता है। तर्क एक प्रकार का शस्त्र है जो आत्म-घातक भी हो सकता है और आत्म-रक्षक भी हो सकता है। मुझे आशा है मनुष्य अपनी तार्किक बुद्धि का उपयोग लोक कल्याण के लिए करके जगत् में अनादि काल से भ्रमण करते हुए जीवों का उद्धार करने में प्रवृत्त होंगे और अपने अज्ञानान्धकार को दूर करके स्वपर हितकारक तर्कग्राही बनेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सत्कार

गच्छायार पइण्णयं—

अनुवादक—मुनि श्री त्रिलोक चन्द्रजी, प्रकाशक—रामजी दास किशोर चन्द जैन, मानसा मण्डी, पेप्सू। मूल्य—अनिर्दिष्ट।

'गच्छाचार-प्रकीर्णक' जैन श्रमण की आचार-विचार सम्बन्धी मर्यादा का निर्देश करता है। मूलग्रन्थ प्राकृत भाषा में है। उपरोक्त पुस्तक संस्कृत छाया व हिन्दी अनुवाद सहित है। बीच में कहीं कहीं पर टिप्पणी भी है जिसका कोई खास महत्त्व नहीं है। पुस्तिका के मुख्यरूप से तीन प्रकरण हैं—आचार्यस्वरूप निरूपण, साधुस्वरूप निरूपण एवं साध्वीस्वरूप निरूपण। जो जैन श्रमण के व्यवहार, आचार व नियमों से अपरिचित है वह उपरोक्त पुस्तक को पढ़ कर सामान्यरूप से जैन श्रमण के आदर्श एवं सैद्धान्तिक स्वरूप की कल्पना कर सकता है। इस दृष्टि से पुस्तक बहुत उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है।

आदर्श विवाह-विधि—

सम्पादक—रिषभदास रांका, जमनालाल जैन, प्रकाशक—भारत जैन महा-मण्डल, वर्धा। मूल्य ।—)

विवाह की समस्या जैन समाज के लिए एक विवादास्पद विषय है। कुछ विचारकों का मत है कि जैनों के लिए एक नई विधि बनाना और उसके अनुसार विवाह कार्य सम्पन्न करना एक बहक है। कई लोग इससे विपरीत विचार रखते हैं। वे यह मानते हैं कि जैन समाज का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है अतः उस समाज के लिए विवाह-विधि भी स्वतन्त्र ही होनी चाहिए। इसी विचार धारा को लेकर समाज में एक नहीं, अनेकों विवाह-विधियाँ बनी हैं जिनमें से कुछ तो प्रकाशित रूप में हमारे सामने आ चुकी हैं और कुछ प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रही हैं उपरोक्त पुस्तक इसी विचार-धारा की एक तरंग है। इसमें कुछ चीजें अच्छी भी हैं और कुछ चीजें बेकार भी। यही हालत जितनी भी एतद्विषयक पुस्तकें निकली हैं, प्रायः सबकी है। केवल देवी-देवताओं या भगवान् के नाममात्र के परिवर्तन से आदर्श की प्राप्ति नहीं हो सकती, जब तक कि यज्ञ-होम की लकीर पीटना बन्द नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महावीर का जीवन-दर्शन

लेखक—रिषभदास रांका, सम्पादक—जमना लाल जैन प्रकाशक—भारत जैन महामण्डल, वर्धा। मूल्य ६ आ०

आचारांग सूत्र के आधार पर भगवान् महावीर के जीवन-दर्शन का प्रयास उपरोक्त पुस्तिका के रूप में हमारे सामने है। लेखक ने महावीर की विचार-धारा का शुद्धस्वरूप उपस्थित करने का पूरा प्रयत्न किया है। दार्शनिक सन्तुलन की अपेक्षा आचार विषयक विवेचन पर खास ध्यान दिया गया है, ऐसा प्रतीत होता है; और ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि आचारांग सूत्र का मुख्य विषय आचार ही है। लेखक ने आचार-शास्त्र को ही जीवन का प्रमुख साध्य मान कर पुस्तिका का नाम 'महावीर का जीवन-दर्शन' रखा है। आचार-शास्त्र की भूमिका विचार-शास्त्र है—दर्शन-शास्त्र है, इस दृष्टि को सामने रखकर यदि दार्शनिक भित्ति पर भी थोड़ासा विचार किया होता तो अच्छा रहता। निबन्ध पठनीय एवं आचरणीय है।

—मोहनलाल मेहता

धर्म और समाज–

लेखक–पं० सुखलाल जी संघवी, सम्पादक–पं० दलसुख मालवणिया, प्रकाशक–जैन संस्कृति संशोधन मण्डल बनारस की ओर से पं० नाथूराम जी प्रेमी, हेमचन्द्र मोदी पुस्तकमाला, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई। मूल्य १।।) पृष्ठ संख्या २०८

प्रस्तुत पुस्तक, सुप्रसिद्ध विचारक पं० सुखलाल जी संघवी के समय समय पर प्रकट किये गए विचारों का लेखबद्ध संग्रह है। अधिकांश विचार जैन समाज को लक्ष्य कर पर्यूषण व्याख्यान माला के अवसर पर व जैन पत्रों द्वारा प्रकाशित किये गए हैं। समाज व धर्म को लेकर जैनों की प्रायः प्रत्येक समस्या पर मौलिक दृष्टि से इन २४ निबंधों में पण्डित जी ने जो विचार प्रकट किये हैं वे चिरसुप्त जैन समाज के लिए बड़े ही उद्बोधक हैं। आज जैन समाज का युवक युग संक्रान्तिजन्य समस्याओं से भ्रान्त है। जब वह समाज के क्षेत्र में नूतन निर्माण की ओर पग बढ़ाता है तो उसे निराशा और घृणा का सामना करना पड़ता है तब वह गुमराह हो विनाशकारी क्रान्ति की ओर अग्रसर होने लगता है। वह भावुक है, चंचल है। उसके सामने अनुभव नहीं, विचार नहीं। पण्डित जी के ये लेख विचारों के उस भूखे युवक के लिए पुष्ट खाद्य सामग्री के रूप में प्रस्तुत हैं। आज उसे उचित दिशा में चलाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस विचारक नेता की आवश्यकता है वह इन लेखों के लेखक के रूप में उसे मिली है। आज उसके सामने जैन समाज की कई विकराल समस्याएँ— त्यागी मुनि संस्था, शिक्षा संस्था, तीर्थ, मन्दिर, हरिजन, जातपाँत, रूढ़ि आदि– मुँह पसारे खड़ी हैं। उसे इन लेखों से इन सबके प्रति नूतन निर्माण कराने वाले हल (Solutions) मिलेंगे। अब जमाना आ गया है कि इन विचारों को प्रयोग क्षेत्र में लाया जाय जिससे समाज के मन मस्तिष्क का सर्वोदयकारी निर्माण हो सके। यदि समाज में सच्ची क्रान्ति आई और जैसा कि मेरा विश्वास है कि वह धीरे धीरे आ रही है तो ७० वर्षीय वृद्ध पण्डित जी के ये विचार उस क्रान्ति के अग्रदूत माने जायँगे और पण्डित जी का वही स्थान होगा जो अन्य देशों में नव जीवन निर्माणकारी महात्मा पुरुषों का होता है।

अन्त में ऐसी पुस्तक की प्रकाशिका संस्था के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसे उदीयमान युवक समाज की ओर से अनेक धन्यवाद देता हूँ जिसने ऐसी स्वस्थ एवं सुन्दर विचारों वाली पुस्तकों को प्रकाशित करने का व्रत ले रखा है। धर्म और समाज के क्षेत्र में क्रान्ति की मशाल हाथ में रखने वाले प्रत्येक युवक को अपने दिल दिमाग दोनों को प्रकाशित करने के लिए यह अल्पमूल्य वाली पुस्तक सदा साथ रखनी चाहिए।

'साथी'

(उठ उभड़ती नई पीढ़ी का अपना सचित्र मासिक)

सम्पादक— महेन्द्र 'राजा', प्रकाशक—साथी कार्यालय, बी ३/२० बी, भदैनी, बनारस, वर्ष १ अंक ४ पृ० सं० २४, वार्षिक मूल्य २)

श्री महेन्द्र 'राजा' के नूतन प्रयोग का साथी 'साथी' आकर्षक ढंग से निकल रहा है। उन्हें लेखकों के रूप में जिन साथी साथिनों का सहयोग मिल रहा है वह साथी को उच्च स्तर पर ले जाने में सहायक सिद्ध होगा। मुखपृष्ठ पर स्काऊटों जैसा चित्र दिया है यह 'साथी' का प्रतीक न होना चाहिए। आज भारतीय साथी क्रान्ति का अग्रदूत है, क्रान्ति की मशाल है। साथी निर्माण कारी व्यक्ति है चित्र से वह भाव नहीं प्रकट होता। और देशों में 'कामरेड' नाम से संबोधित कई अखबार निकलते हैं उनका नमूना ही रख इस ओर चला जाय तो साथी अच्छा सफल रहेगा। फिर भी यह उत्साह प्रशंसनीय है।

—गुलाबचन्द्र चौधरी, एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याश्रम-समाचार

पंजाब जैन सभा

श्वे० स्था० जैनसभा, पंजाब की कार्यकारिणी समिति की मीटिंग ९-१२-५१ को जालन्धर शहर में हुई थी। अखिल भारतवर्षीय कान्फरन्स की 'संघ ऐक्य योजना' के सम्बन्ध में प्रान्तिक साधु सम्मेलन एकत्रित करने का जो कार्य पंजाबसभा को सौंपा गया था और जिस के मिलने में कई उलझनें भी थीं, उसको सरल करने और सम्मेलन को सफल बनाने के कार्य के अतिरिक्त लोगों की माँग पर सभा ने अपने स्वधर्मी जनों का निम्न पथप्रदर्शन भी किया था—

समय पर election के सम्बन्ध में सभा का यह विचार निश्चित हुआ था कि अपने देश में अनेक धर्म और विचार धाराएँ हैं जिनके मिलाप से भारतीय संस्कृति बनी है। अपने देश की बौद्धिकपरम्परा विश्लेषण के स्थान पर सदैव समन्वयशील रही है इसलिए असाम्प्रदायिक राज्य (Secular non-communal State) ही इसकी अवस्था के अनुकूल और इसके लिए हितकर है, जैन भी इस देश के एक मतावलम्बियों में से हैं और अल्पसंख्या में हैं। इसलिए इस सभा का जनसाधारण से और विशेषतया जैन लोगों से यह अनुरोध है कि अपना मत (vote) उसी पार्टी को दें जो असाम्प्रदायिक राज्य के पक्ष में हो।

सभा ने जैन वोटरों को यह भी परामर्श दिया था कि उनके वोट को चाहने वालों पर उन्हें यह अंकित करना चाहिए कि भारत के महान् पुरुषों में महावीर भी एक थे जिनके उत्तराधिकारियों ने भारतीय संस्कृति के हर क्षेत्र में अपनी सेवाओं से अमिट प्रभाव छोड़ा है। जैनों को हार्दिक चोट लगती है जब कि वे देखते हैं कि केन्द्रीय और कुछेक प्रान्तीय सरकारें जैनों की इस भावना को भी स्थान नहीं देती हैं कि महावीरजयन्ती की छुट्टी उनकी सूचिओं में हो। शायद इस अवहेलना का कारण जैन लोगों की अल्पसंख्या हो परन्तु यह भारतीय राज्य की नीति के विरुद्ध बात है और उनको और भी खेद होता है जब वे देखते हैं कि अल्पमतों और आम्नाओं के महापुरुषों के सम्बन्ध में बहुसंख्या में छुट्टियाँ मंजूर की गई हैं। यह कमी फौरन दूर होनी चाहिए। महावीर-जयन्ती चैत्र शुक्ला १३ को पड़ती है।

जब से पंजाबसभा का उदय १९११ में हुआ था तब से निरन्तर इसकी नीति और ध्येय इस ओर रहा है कि जैन लोगों के रीति-रिवाज में खर्च की कमी की जाए। पर इसके निर्धारित प्रस्तावों से विशेषतः ओसवाल जैनों ने बड़ा लाभ उठाया है और उनके रीतिरिवाज अति सरल, कम खर्च और उदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा वाले होते गए हैं। यह बात सभा की अव्यवस्थित दशा में भी स्थानीय बिरादरियों को उपरोक्त नीति और ध्येय का अवलम्बन देती रही है और उस ओर प्रेरणा बनी रही है। फिर भी कभी कभी ऐसी सूचनाएँ मिलती रहती हैं कि अमुक ने अमुक स्थान पर इन सुखदायी रिवाजों को तोड़ा है। इस लिए सभा ने ऐसे उलटे मार्ग की निन्दा की है और उन लोगों और बिरादरियों की प्रशंसा और धन्यवाद किया हैं जिन्हों ने रीति-रिवाज की कमखर्ची और सरलता को बनाए रक्खा है। इसके अतिरिक्त सभा ने इसी सम्बन्ध में लोगों का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया है कि यही ढीलापन बाद में 'मांग" का रूप धारण कर लेगा तो बड़ा कष्टकारक सिद्ध होगा।

समिति की बैठक

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति की प्रबन्धकारिणी सभा का अधिवेशन ता० २३-१२-५१ को अमृतसर में हुआ। पूर्वाधिकारियों को ही पुनः उन पदों पर चुना गया है। १९५२ के लिए श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम बनारस, उससे सम्बन्धित 'शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय' और 'श्रमण' आदि प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में विचार किया गया। रिसर्च स्कालरों के समय की वृद्धि के सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया है कि निश्चित समय में थीसिस (thesis) पूरा करने पर जोर दिया जाए। यदि स्कालर ऐसा न कर सके तो अपने उपायों (resources) पर भरोसा रखकर पूर्ण करे। यही समिति और उनके हित की बात है। इस सम्बन्ध में यह भी निश्चय हुआ है कि रिसर्च कार्य के गुणानुसार असाधारणावस्था में ऐसे थीसिस के उपलक्ष्य में कुछ रक़म आंशिक अर्थपूर्ति के रूप में देने का विचार यह समिति करती है।

यह भी विचार हुआ कि १९५२ के शीतकाल में Memorial Lectures जो लिखित तीन या चार हों बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में दिये जाने का प्रबन्ध किया जाए। उसके लिए उचित भेंट की रकम और सुविधाओं का प्रबन्ध समिति करें।

आरम्भ में श्री बाबू अजित प्रसाद जी लखनऊ, सम्पादक जैनगज़ट, श्री मूलखराज जंडियाला, श्री खैरायतीलाल और श्री फग्गूमल होशियापुर के देहावसान पर शोक प्रस्ताव पास किया गया था और उनके परिवारों के साथ समिति की समवेदना जारी की गई थी

समिति ने इस बात को पसन्द किया है कि उसके documents बैंक में Safe-custody में रखे जावें।

-हरजसराय जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत जैन महामंडल के लोकप्रिय प्रकाशन

प्यारे राजा बेटा—(भाग १ और २) इन दोनों भागों में संसार के महापुरुषों की २६ कहानियाँ, सरल और सुबोध भाषा में, बालकों के लिए लिखी गई हैं। मूल्य प्रत्येक भाग ॥=)

जीवन जौहरी—पत्रों के रूप में स्व० जमनालालजी बजाज के सत्यनिष्ठा, व्यावहार-कुशलता, देशसेवा, अतिथि-सत्कार आदि गुणों का तात्विक और व्यावहारिक विवेचन किया गया है। पुस्तक हाथ में लेकर छोड़ने को जी नहीं चाहता।—कई चित्र। पृष्ठ १७६, मूल्य १।)

गीता प्रवचन—श्रीमद्भगवद्गीता पर धुलिया जेल में आचार्य विनोबा द्वारा दिए गए मार्मिक प्रवचनों का मराठी संस्करण। बढ़िया एंटिक पेपर पृष्ठ ३००, मूल्य केवल १॥)

धर्म और संस्कृति—धर्म और संस्कृति पर म० भगवानदीन, आनन्द कौसल्यायन, जैनेंद्र कुमार, केदारनाथ, आ० विनोबा, मशरूवाला आदि के विचारपूर्ण लेखों का संकलन। पृष्ठ १४४, मूल्य १।)

समाज और जीवन—समाज और जीवन संबन्धी कई प्रश्न हमारे दिमाग में उलझे रहते हैं। इसमें ऐसी कई समस्याओं पर विचारकों के प्रभावपूर्ण लेखों का संकलन है। पृष्ठ १२५, मूल्य १)

बुद्ध और महावीर तथा दो भाषण—दोनों क्रांतिकारी धर्म प्रवर्तकों तथा अहिंसा के अवतारों का तुलनात्मक जीवन-परिचय श्री मशरूवाला ने मौलिक रूप में कराया है। पृष्ठ १४८, मूल्य १)

उज्ज्वल प्रवचन—बुद्ध महावीर, गांधी, तिलक, विवेकानन्द, चर्खा, खादी, गृहोद्योग आदि विषयों पर जैन साध्वी उज्ज्वल कुमारी जी के राष्ट्रीय प्रवचनों का संग्रह। पृष्ठ ९६, मूल्य ॥=)

मणिभद्र (उपन्यास)—महावीर कालीन त्याग और प्रेम का संघर्ष तथा आदर्श प्रधान उपन्यास। पृष्ठ १४४, मूल्य १।)

महावीर वाणी (जैन गीता)—आउट आफ स्टाक है।

जो सन्तों ने कहा—इसमें णमोकार महामंत्र की विशेषता पर पं० बेचरदास जी का लेख है और प्रबुद्ध जैन साधक कवियों की सरस और आध्यात्मिक वाणी का संकलन है। पृष्ठ ३२, मूल्य ।)

जैन जगत (मासिक)—भारत जैन महामंडल का राष्ट्रीय चेतना और सुलझे विचारोंका असाम्प्रदायिक मासिक जो काफी लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। वार्षिक शुल्क ३)

भारत जैन महामंडल, वर्धा (सी०पी०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

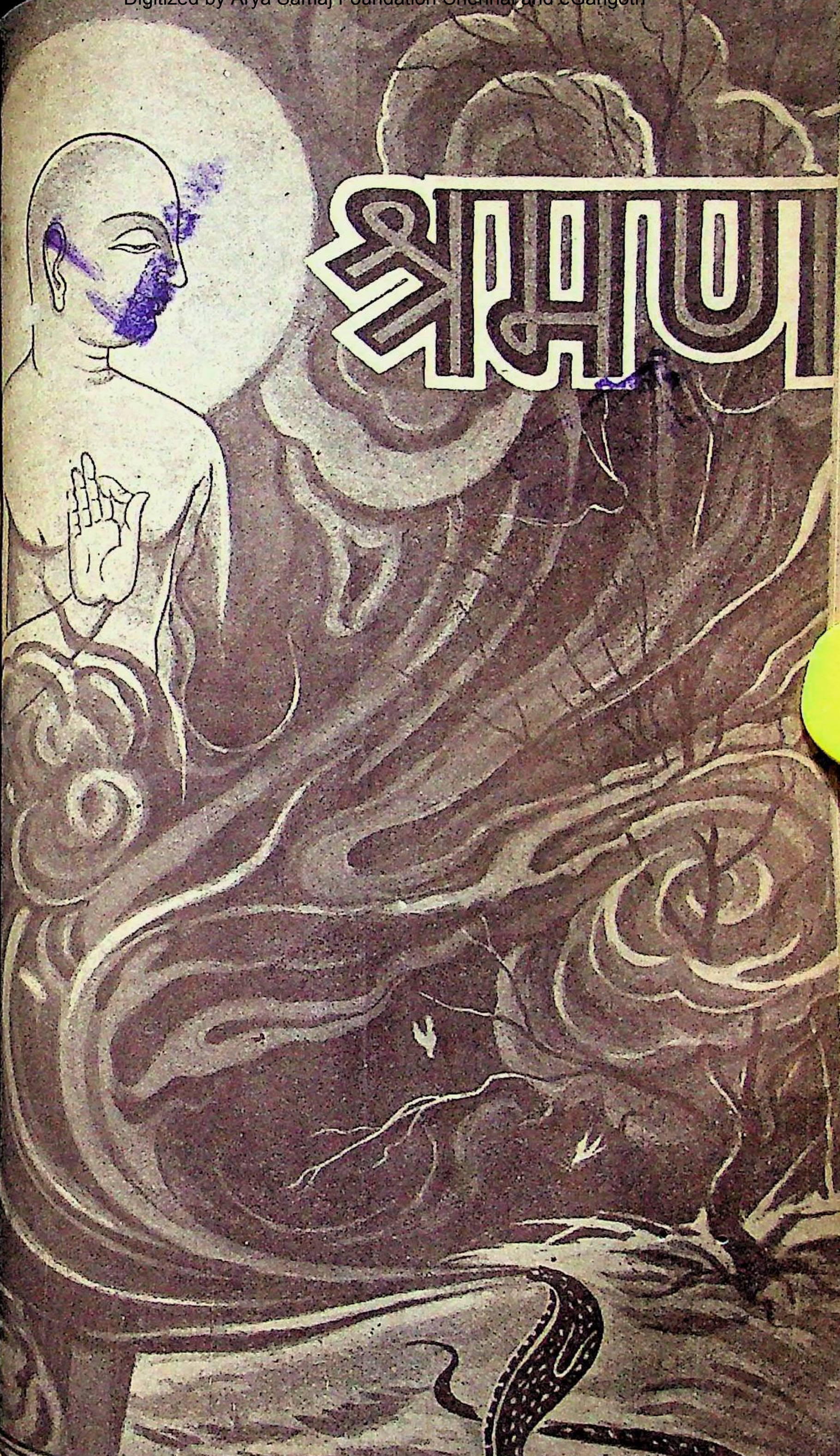

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

इन्द्र एम० ए०

दलसुख मालवणिया   मोहन लाल मेहता

इस अंक में–

१. कवि के गीत से ! (गीत)—श्री बद्रीप्रसाद गुप्त 'आर्य' १
२. वसन्त का स्वागत—कुमारी सत्यवती २
३. अपनी बात (संपादकीय)— ३
४. धर्म की उत्पत्ति व उसका अर्थ—श्री मोहनलाल मेहता, बी० ए० ९
५. विद्यामूर्ति पं० सुखलाल जी—प्रो० दलसुख मालवणिया १५
६. केवलज्ञान सम्बन्धी कुछ बातें—इन्द्र एम० ए० १९
७. शैतान—अनु० प्रो० महादेव सीताराम करमरकर २३
८. अपरिग्रहवाद—श्री रघुवीर शरण दिवाकर ३४
९. मनुष्य की उलझन—मैं क्या करूँ ?—इन्द्र एम० ए० ३७
१०. परोपकार का फल—श्री पृथ्वीराज जैन, एम० ए० ३९

श्रमण के विषय में–

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनिऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४)   एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस का मुखपत्र

वर्ष ३ फरवरी १९५२ अंक ४

कवि के गीत से !

नये गीत कवि के नयी चेतना दो !

निशा शीघ्र भागे, दिशा नींद त्यागे,
उठें जागरण भर मनुज-गण अभागे।
जड़ों-जंगमों में नया जीव जागे,
नये गीत, जग को नयी प्रेरणा दो !

नयी आश भर दो, नयी साँस भर दो,
हृदय में नया एक विश्वास भर दो।
दुखी देश में हर्ष-उल्लास भर दो,
नये गीत, जग को सुखद सांत्वना दो !

चरण में नयी स्फूर्ति का अवतरण हो,
नयी युक्ति से हीन मति का भरण हो।
नये ध्येय हित नव्य प्रण का वरण हो,
नये गीत जग को नयी कल्पना दो !

नये पंथ पर प्रति मनुज अग्रसर हो,
नयी प्रीति हो प्यार हो नव असर हो।
नयी वंदना का नया राग स्वर हो,
गये गीत, जग को नयी भावना दो !

नये गीत कवि के, नयी चेतना दो !

—श्री बद्रीप्रसाद गुप्त 'आर्य'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसन्त का स्वागत

वसन्त !

तुम आए, तुम्हारे आने की शुभ सूचना ने विश्व में नव क्रान्ति भर दी, उपवन के सुकुमार पुष्प हँसने की चेष्टा करने लगे, पक्षी-गण मृदु भाषा में तुम्हारा शुभ स्वागत करने के लिए उत्सुक हो उठे, कवि की अर्ध सुप्त चेतना प्रोत्साहित हो उठी, तुम्हारे प्रिय आह्वान की मधुर सूचना में कितना आनन्द है !

प्रिय वसन्त !

तुम आते हो चले जाते हो, प्रतिवर्ष नवक्रान्ति लेकर आते हो और एक अनूठी छवि से वसुधा का शृङ्गार कर जाते हो। प्रकृति देवी के सहज सौंदर्य की छवि अनंत सौंदर्यमान हो उठती है।

वसन्त !

तुम आओ ! नया सन्देश लेकर, नई कुहुक लेकर, नया आह्वान लेकर। मानवता की शिशिर-संत्रस्त वल्लरी को नए कुसुमों का उपहार देने, इस मुरझाए उद्यान को शीतल समीर से अनुप्राणित करने। हृदय सुमनों में नई सुगन्ध भरने।

और यह देखो !

उस दीर्घ तपस्वी का यह उद्यान। कैसा पतझड़ आया है इसमें ? न फूल हैं, न पत्ते हैं। केवल टहनियाँ ही टहनियाँ। झंझा के थपेड़ों से परस्पर टकरा रही हैं। उनका जीवन रस सूखता जा रहा है। प्रिय वसन्त ! उनमें नए रस का संचार करो।

परन्तु माधव !

तुम आकर चले क्यों जाते हो ? तुम्हारे आने में सुख है, किन्तु जाने में अनन्त दुःख। हां, अब जाना। यही चिरन्तन सत्य है। जो आएगा, वह जाएगा। यह जानकर भी कि तुम चले जाओगे, हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम्हारा क्षणिक मिलन? नहीं उसकी आशामात्र से असीम प्रेरणा मिलती है। वही तो विश्व का आधार है। किन्तु मुझे भ्रम हो रहा है। तुम आगन्तुक नहीं हो। तुम तो मेरे ही हो। मेरी आत्मा की विभूति हो। मैं तुमको पहचान नहीं पाई। परदा जो पड़ा हुआ है। वही तो दूर करना है। फिर न मैं हूँ, न तुम हो। दोनों एक हैं वसन्त!

—सत्यवती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

कुछ नए रोग—

मूर्तिपूजा बुरी है, यह मानकर स्थानकवासियों ने मूर्ति की पूजा करना बन्द किया। दूसरे शब्दों में मूर्तिपूजा के नाम पर होने वाला आडम्बर लोकाशाह को पसन्द न आया। उन्होंने शास्त्रों में मूर्तिपूजा का विधान ढूंढना चाहा पर उन्हें वैसा कोई विधान न मिला। परिणाम स्वरूप उन्होंने मूर्तिपूजा के नाम पर होने वाले आडम्बर को चुनौती दी। वही चुनौती जैन समाज में स्थानकवासी या साधुमार्गी सम्प्रदाय के नाम पर आज भी उसी रूप में खड़ी है। सनातन धर्म—हिन्दूधर्म में स्वामी दयानन्द का जो स्थान है, जैनधर्म में वीर लोकाशाह का वही स्थान है। वर्तमान हिन्दू समाज में आर्य समाज को जो स्थान प्राप्त है, वर्तमान जैन समाज में स्थानकवासी समाज का भी ठीक वही स्थान है। तात्पर्य यह है कि जैन समाज का एक अंग ऐसा है जो मूर्तिपूजा में तनिक भी विश्वास नहीं रखता। उसी समाज का नाम स्थानकवासी समाज है। कुछ लोग इस समाज को साधुमार्गी समाज के नाम से भी पुकारते हैं। इस समाज की मान्यता के अनुसार मूर्तिपूजा प्रत्येक साधु व गृहस्थ के लिए सर्वथा वर्जित है। जिस विधान में मूर्तिपूजा की गंध आवे अथवा उसी प्रकार का कोई अन्य विधि-विधान हो जिसमें इसी प्रकार का कोई दूसरा बाह्य-आडम्बर नजर आवे तो सच्चा स्थानकवासी फिर वह साधु हो या श्रावक, उसे ऐसे काय में सक्रिय भाग नहीं लेना चाहिए।

इस समय समारे सामने 'दिव्य चातुर्मास' नाम की एक छोटी सी पुस्तिका पड़ी है। इस पुस्तिका में श्री मनोहर लाल जी मुनि तथा श्री विजय मुनि के इस वर्ष के चातुर्मास का वर्णन हैं। चातुर्मास कानपुर में हुआ है जो कि उत्तर प्रदेश का एक अच्छा औद्योगिक नगर है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्तर प्रदेश के इस प्रकार के नगरों एवं अन्य ऐसे नगरों में जहाँ की जनता जैन समाज के आचार-विचारों से अपरिचित है, साधुओं के चातुर्मास का अच्छा प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त मुनियों के चातुर्मास का कानपुर में बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा, यह हर्ष की बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम इस प्रसंग पर इन दोनों मुनियों के विषय में कुछ ऐसी बातें कहना चाहते हैं जो 'दिव्य चातुर्मास' पुस्तिका को देखकर हमें एक दम खटकीं। स्थानकवासी मुनि अपना चित्र उतरवा सकता है या नहीं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि स्थानकवासी साधु की मर्यादा व आचरण को दृष्टि में रखते हुए चित्र उतरवाना ठीक नहीं। आजकल यह एक विचित्र सी प्रवृत्ति चल गई है कि कुछ मुनि अपने फोटो उतरवाने लगे हैं। इतना ही नहीं, मूर्तिपूजा का विरोध करने वाले कुछ कट्टर अन्धभक्त श्रावक साधुओं के चित्रों को पूजने तक लग गए हैं। हमने ऐसे कई श्रावक देखे हैं जिनके घरों में अपने इष्ट मुनिराज का चित्र रहता है जिसकी वे हमेशा श्रद्धा से भक्तिपूजा करते हैं। 'दिव्य चातुर्मास' में फ़ोटो उतरवाने की मनोवृत्ति का पोषण करनेवाले दो चित्र हैं। चित्र पुस्तक के प्रारंभ में हैं। पहला चित्र है श्री मनोहर लाल जी मुनि का और दूसरा चित्र है प्रखर वक्ता वीरपुत्र श्री विजयमुनि का। दोनों चित्र शानदार हैं और तैयारी पूर्वक लिए गए हैं। ऐसा नहीं कि किसी ने अचानक ही फोटो उतार लिया हो और मुनि जी को पता तक न लगने दिया हो। चित्रों को देखने से तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि फ़ोटो जानबूझ कर एवं तैयारी पूर्वक उतरवाये गए हैं। धर्म की प्रभावना के नाम पर एक त्यागी सन्त अपनी इस प्रवृत्ति को सही सिद्ध कर सके, कम से कम हमारी समझ में तो यह बात नहीं आती। एक गृहस्थ ऐसा कर सकता है, यह बात तो कुछ समझ में आ भी सकती है किन्तु एक श्रमण इन व्यर्थ के आडम्बरों में पड़कर कहाँ तक अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है, यह एक सोचने की बात है। जहाँ तक व्याख्यान, अध्ययन एवं चिन्तन का प्रश्न है, उसकी किसी प्रवृत्ति को समझाने का प्रयत्न किया जा सकता है किन्तु धर्म की प्रभावना के नाम पर इस प्रकार के दिखावे हमारी समझ में नहीं आते। क्या हम आशा करें कि श्रमण संघ के ऐसे साधु जो इस प्रकार की प्रवृत्ति को ठीक समझते हैं, आगे से अपनी दिशा बदल देंगे।

कुछ समय से एक और विचित्र प्रवृत्ति चली हुई है। यह प्रवृत्ति है 'श्री नवकार महामन्त्र का अखण्ड जाप।' जिस प्रकार कुछ लोग 'रामनाम' या अन्य किसी नाम का अखण्ड जाप करवाते हैं, उसके नाम पर भारी आयोजन होता है, खूब तैयारियाँ होती हैं, उत्सव मनाया जाता है उसी प्रकार कुछ साधुओं ने नवकारमन्त्र के नाम पर यह सारा ढोंग मचाना प्रारंभ कर दिया। मानसिक शुद्धि व विवेक की वृद्धि के महत्त्वपूर्ण प्रश्न को एक ओर रख कर अखण्ड जाप के चक्कर में पड़ गए। एक घंटा किसी एक को बैठा दिया तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा घंटा किसी दूसरे के लिए नियुक्त कर दिया। कभी किसी बच्चे को पकड़ लिया तो कभी किसी बूढ़े को फँसा लिया। इसी तरह कई दिन तक यह क्रम चलता रहता है। दिनरात होता क्या है, नवकार मन्त्र का शुद्ध या अशुद्ध उच्चारण मात्र। दिन-रात एक ही पद रटते रहते हैं और नतीजा निकलता है शून्य।

कानपुर के इस चातुर्मास में नवकार महामन्त्र का अखण्ड जाप किया गया। पुस्तक के पृ० २४–२५ पर लिखा है—"आतमा, व्यक्ति, गृह, नगर, प्रान्त राष्ट्र, देश तथा विश्वकल्याण की कामना से प्रेरित हो श्री सद्गुरु की प्रेरणा से श्री संघ ने जीवन में पहली बार श्री पंच परमेष्ठी नवकार मंत्र का पर्युषण पर्व के सप्ताह पर्यन्त अहोरात्रि १६८ घंटे का निरन्तर जाप किया।"—किसी नाम के रटन मात्र से विश्व का कल्याण कैसे हो सकता है, यह तो नाम रटने वाले या रटाने वाले ही जानें। इतना ही नहीं कि जाप यों ही सम्पूर्ण कर दिया गया हो। "नवकार महामन्त्र का चित्र धर्मप्रेमी उत्साही स० मंत्री श्री रामकुमार जी जुही वालों की ओर से चांदी के भव्य फ्रेम में मण्डित करा रजत-चौकी पर स्थापित किया गया था।····· संघ के सभापति श्रीमान् ला० छंगामल जी जैन की ओर से प्रातःकाल जाप में भाग लेने वाली कन्याओं, स्त्रियों को सातों दिन विविध मिष्टान्नों की प्रभावना अर्पित की गई।····· नवकार महामंत्र की जप-समाप्ति के उपलक्ष में श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी संघ की ओर से एक विराट् जुलूस निकाला गया।" नवकार मंत्र को एक मूर्ति का रूप देकर उसका जुलूस निकालना, उसे सोना–चांदी के फ्रेमों में मंडवाना इत्यादि बातों से क्या यह स्पष्टरूप से प्रकट नहीं होता कि स्थानकवासी समाज के ये दृढ़ स्तम्भ किस दिशा में झुक रहे हैं? जिस दिशा से संन्यास लेकर स्थानकवासी समाज ने अपनी एक मौलिक साधना की दिशा का निर्माण किया, क्या इन सब कार्यों से वह पुनः उसी दिशा की ओर नहीं बढ़ रहा है? खासकर साधुओं की इस दिशा में जो प्रेरणा है वह विशेष घातक है। जिस रोग से मुक्त होकर स्थानकवासी समाज ने जीवन की सही दिशा में कदम बढ़ाया था, आज वही रोग पुनः उसे लगता जा रहा है। यदि यही दशा रही तो उसका अस्तित्व ही खतरे में है, ऐसा भान होता है। हम चाहते हैं कि विचारक विद्वद्वर्ग—चाहे साधु हो या श्रावक, इस समस्या पर गंभीरता पूर्वक विचार करे एवं सक्रिय कदम उठावे।

—मोहनलाल मेहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्टडीज इन जैन फिलॉसॉफी' का प्रकाशन

कठोर प्रतीक्षा के बाद श्री नथमल जी टाटिया का निबन्ध सुन्दर रूप में हमारे सामने आ गया। इसका प्रकाशन जैन ही नहीं, भारतीय साहित्य के इतिहास में एक विशेष स्थान रखता है।

यदि हम गंगा के समग्र रूप का दर्शन करना चाहें तो हिमालय से लेकर सागर तक उसकी अविच्छिन्न धारा का अध्ययन करना होगा। काशी का विद्वद्वर्ग हरिद्वार में बहती हुई गंगा को छोड़ कर उसके अधिकारी विद्वान् होने का दावा नहीं कर सकता। संस्कृति की भी यही बात है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर आजतक विभिन्न परिस्थितियों को तथा विभिन्न परिधियों को पार करती हुई सांस्कृतिक धारा एक अखण्ड रूप में बहती आ रही है। उसे टुकड़े टुकड़े करके देखने का परिणाम यह हुआ कि हमारा ज्ञान अधूरा तथा खण्डित रह गया। भारतीय संस्कृति का जो विकास श्रमण साहित्य में हुआ है, उस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। कुछ दिनों से बौद्धसाहित्य तो फिर भी अध्ययन अध्यापन का विषय बना हुआ है किन्तु जैन साहित्य सर्वथा उपेक्षित रहा।

इस समय विद्वानों का ध्यान इस ओर गया है और वे समझने लगे हैं कि प्राकृत तथा जैन साहित्य के अध्ययन के बिना भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण भाग अँधेरे में है। जैनदर्शन के अध्ययन के बिना भारतीय विचारधारा पूरी समझ में नहीं आ सकती। लखनऊ की ओरिएण्टल कान्फरेंस में दिए गए विद्वानों के भाषण इस तथ्य के साक्षी हैं। माडर्न रिव्यू में डाक्टर यदुनाथ सरकार ने संस्कृत के अध्ययन के लिए प्राकृत और जैनदर्शन को आवश्यक माना है।

जैन साहित्य के अन्धकार में रहने का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व स्वयं जैन समाज पर भी है। हमने अपने ग्रन्थों को अधिकतर भण्डारों में बन्द करके रखा। उन्हें विश्व के सामने प्रचलित भाषाओं में उपस्थित नहीं किया। श्री नथमल जी टाटिया की उपरोक्त पुस्तक इस त्रुटिपूर्ति की ओर स्तुत्य प्रयत्न है।

टाटिया जी के थीसिस का नाम है 'स्टडीज इन जैन फिलॉसॉफी'। इस में अनेकान्त, ज्ञान, अविद्या, कर्म तथा योग पर विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। इस पर गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के भूतपूर्व प्रिंसिपल, काशी के ख्यात-नामा विद्वान् महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज लिखते हैं:—"यह पुस्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनदर्शन के विधिपूर्वक विशाल अध्ययन का फल है। इसमें दर्शन शास्त्र की मूलभूत समस्याओं का विवेचन किया गया है। वे समस्याएँ हैं ज्ञान, अज्ञान, कर्म तथा योग। इनका सम्बन्ध संसार के सभी दर्शनों से है। यद्यपि इसमें एक विशेष दृष्टिकोण को लेकर ही लिखा गया है किन्तु वह भारतीय दर्शन के प्रत्येक जिज्ञासु के लिए उपयोगी होगा। पर्याप्त आधारों के बल पर कहा जा सकता है कि लेखक का अध्ययन विशाल तथा अनेकाङ्गी है। इतना ही नहीं, उनका विवेचन निष्पक्ष है। उससे बहुत सी बातें प्रकाश में आती हैं। मैं इस बात को बहुत महत्त्व देता हूँ। इन दो गुणों के असाधारण मेल के साथ तीसरी बात और मिल गई है और वह है, गम्भीर बातों को उपस्थित करने की रोचक शैली।"

बनारस की 'जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी' कई वर्ष से छोटी छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर रही है। वे जैन दर्शन व साहित्य के भिन्न भिन्न प्रश्नों को लेकर लब्धप्रतिष्ठ एवं तटस्थ विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं। अब तक सोसायटी इकतीस पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर चुकी है। उन्होंने अजैन विद्वानों का ध्यान स्याद्वाद, जैन इतिहास तथा अन्य बातों की ओर आकृष्ट किया है। साथ में सात पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं। उनमें से डॉ० बूलचन्द द्वारा लिखित 'Lord Mahavira' का काफी स्वागत हुआ। श्री वेलाणी द्वारा लिखित 'जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार' यह बताती है कि जैन साहित्य कितना समृद्ध है। डॉ० जगदीशचन्द्र की 'जैन तीर्थ' भी महत्त्वपूर्ण है। 'हस्तिनापुर' भी इतिहास पर प्रकाश डालता है। इसके अतिरिक्त डॉ० बागची द्वारा लिखित 'Jaina Epistemology' भी छप रही है। टाटिया जी के थीसिस के साथ सोसायटी बड़े बड़े ग्रन्थ भी प्रकाशित करने लगी है। इन कार्यों के द्वारा वह एक स्मरणीय कार्य कर रही है। हम इन सब प्रवृत्तियों का अभिनन्दन करते हैं।

श्री नथमल जी टाटिया को नियुक्ति

बिहार सरकार ने पाली तथा बौद्धदर्शन के पठन पाठन के लिए नालन्दा में जिस संस्था की स्थापना की है, डॉ० नथमल जी टाटिया एम० ए०, डी० लिट्०, वहाँ अध्यापक नियुक्त हो गए हैं। यह समाचार हम 'श्रमण' के पाठकों को दे चुके हैं। २३ जनवरी से उन्होंने कार्य भी प्रारम्भ कर दिया है। टाटिया जी की योग्यता का जो सत्कार हुआ उसके लिए हम उन्हें बधाई देते हैं और साथ ही श्री भिक्षु जगदीश काश्यप की इस गुण ग्राहिता के लिए उन्हें धन्यवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते हैं। संस्था की सफलता का पहला चिह्न होता है, योग्य व्यक्तियों का चुनाव। इस विषय में भिक्षु जी की निष्पक्ष दृष्टि अभिनन्दनीय है।

आज हम इस घटना पर एक दूसरी दृष्टि से विचार करना चाहते हैं। नथमल जी ने जैन दर्शन में डाक्टरेट किया हैं। वे स्वयं एक श्रद्धालु जैन हैं और जैन साहित्य के अनुसन्धान को अपना प्रिय विषय मानते रहे हैं। हृदय तथा मस्तिष्क दोनों दृष्टियों से उनकी जैसी भूमिका जैन दर्शन की है वैसी बौद्धदर्शन की नहीं है। यह कहना अनुचित नहीं है कि उनका उपयोग जैन साहित्य के लिए अधिक हो सकता था। उन्हें तैयार करने में जैन समाज की दृष्टि भी यही रही होगी कि वे अपनी विद्वत्ता से जैन संस्कृति की सेवा करेंगे। किन्तु उन्हें कार्य क्षेत्र बदलना पड़ा। पका हुआ फल माली को नहीं मिला। यह बात केवल नथमल जी के लिए नहीं है। जैन समाज में जो भी विशिष्ट विद्वान होगा, उसे अगत्या दूसरी जगह जाना ही होगा। यदि वहाँ जाकर वह कुछ समय जैन साहित्य के लिए निकाल सकता है तो ठीक, नहीं तो आजीविका के अनुसार कार्य करना होगा। जैन समाज को उस फल से वंचित होना ही होगा।

इस वस्तुस्थिति का मुख्य कारण है जैन समाज में उच्च संस्थाओं का अभाव। प्रथम श्रेणी के कालेज भी नहीं हैं। रिसर्च संस्था तथा विश्व-विद्यालय तो दूर की बात है। बनारस का 'पार्श्वनाथ विद्याश्रम' अपने अत्यल्प साधनों से योग्य विद्वान तैयार कर रहा है किन्तु उन्हें कार्यक्षेत्र देना, उसकी शक्ति के बाहर है। विद्वानों के लिए क्षेत्र तैयार करने के तीन उपाय हैं एक बहुव्यय साध्य है दूसरा अल्पव्यय साध्य तथा तीसरा प्रयत्न साध्य। पहला उपाय है उच्च शिक्षासंस्था की स्थापना। एक ऊँचे स्तर की स्वतन्त्र संस्था के लिए कम से कम दस लाख चाहिए। यह तो तभी हो सकता है जब शिक्षणसंस्थाओं को मन्दिर, स्थानक या अन्य धर्मसंस्थाओं के समान मान लिया जाय। जैन समाज खर्च करता है किन्तु धर्म के लिए। जिस दिन यह शिक्षा-संस्था को धर्म का एक अंग मान लेगा, उस दिन महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय बनते देर न लगेगी। यह कार्य यदि चाहे, तो हमारा साधु समाज कर सकता है। वह समाज की मनोवृत्ति को बदल सकता है। वह उसे समझा सकता है कि ज्ञानमन्दिर का महत्व देवमन्दिर से भी अधिक है। दूसरा अल्प व्यय साध्य उपाय है सरकार या दूसरी संस्थाओं से मिलकर काम

[शेष टाइटल ३ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म की उत्पत्ति व उसका अर्थ–

–मोहनलाल मेहता बी० ए०, शास्त्री

धर्म की उत्पत्ति—

धर्म का अर्थ समझने से पहले यह जानना आवश्यक है कि धर्म की उत्पत्ति क्यों हुई ? उत्पत्ति के आधार का ज्ञान किए बिना अर्थ का ज्ञान करना जरा कठिन है। धर्म की उत्पत्ति का कारण समझ लेने के बाद धर्मरूप कार्य का अर्थ समझने का प्रयत्न करना ठीक होगा। इसी दृष्टि से सर्वप्रथम हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि धर्म की उत्पत्ति का क्या कारण है ? मानव-जीवन में ऐसी कौन सी समस्याएँ उत्पन्न हुई जिन्हें सुलझाने के लिए मानव-जाति को धर्म का आश्रय लेना पड़ा। ऐसी कौन सी कठिनाइयाँ आईं जिन्हें दूर करने के लिए मनुष्य जाति के हृदय में धर्म की प्रबल भावनाएँ जागृत हुईं।

किसी का मत है कि मनुष्य ने जब प्रकृति के अद्‌भुत कार्य देखे तब उसके मन में एक प्रकार की विचारणा जागृत हुई। उसने उन सब कार्यों के विषय में सोचना प्रारम्भ किया। सोचते सोचते वह उस स्तर पर पहुँच गया जहाँ श्रद्धा का साम्राज्य था। वहीं से धर्म की विचार-धारा प्रारंभ होती है। ह्यूम इस मत का विरोध करता है। उसकी धारणा के अनुसार धर्म की उत्पत्ति का मुख्य आधार प्राकृतिक कार्यों का चिन्तन नहीं अपितु जीवन की कार्य परम्परा है। मानव-जीवन में निरन्तर आने वाले भय व आशाएँ ही धर्म की उत्पत्ति के मुख्य कारण हैं। जीवन के इन दो प्रधान भावों को छोड़ कर अन्य कोई भी ऐसा कार्य या व्यापार नहीं है जो धर्म की उत्पत्ति का प्रधान कारण कहा जा सके। ह्यूम की इस मान्यता का विरोध करते हुए किसी ने केवल भय को ही धर्म की उत्पत्ति का कारण माना। इस मान्यता के अनुसार भय ही सर्वप्रथम कारण था जिसने मानव को भगवान् की सत्ता में विश्वास करने के लिए विवश किया। यदि भय न होता तो मानव एक ऐसी शक्ति में कदापि विश्वास न करता जो उसकी सामान्य पहुँच व शक्ति के बाहर है। कान्ट ने इन सारी मान्यताओं का खण्डन करते हुए इस आधार की स्थापना की कि धर्म का मुख्य आधार न आशा है, न भय है और न प्रकृति के अद्‌भुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य ही हैं। धर्म की उत्पत्ति मनुष्य के भीतर रही हुई उस भावना के आधार पर होती है जिसे हम नैतिकता (morality) कहते हैं। नैतिकता के अतिरिक्त ऐसा कोई आधार नहीं जो धर्म की उत्पत्ति में कारण बन सके। जर्मन के दूसरे दार्शनिक हेगल ने कान्ट की इस मान्यता को विशेष महत्त्व न देते हुए इस मत की स्थापना की कि दर्शन और धर्म दोनों का आधार एक ही है। दर्शन और धर्म के इस अभेदवाद के सिद्धान्त का समर्थन क्रोस आदि अन्य विद्वानों ने भी किया है। हेगल के समकालीन दार्शनिक श्लैरमाकर ने धर्म की उत्पत्ति का आधार मानव की उस भावना को माना जिसके अनुसार मानव अपने को सर्वथा परतन्त्र (Absolute Dependent) अनुभव करता है। इसी ऐकान्तिक परतन्त्र भाव के आधार पर धर्म व ईश्वर की उत्पत्ति होती है। हेगल और श्लैरमाकर की मृत्यु के कुछ ही समय उपरान्त धर्म की उत्पत्ति का प्रश्न डार्विन के विकासवाद के हाथ में चला गया। यह परिवर्तन दर्शन और विज्ञान की परम्परा के बीच एक गंभीर संघर्ष था। धर्म की उत्पत्ति का प्रश्न जो कि अब तक दार्शनिकों के हाथ में था, अकस्मात् विज्ञान के हाथ में आ गया। विज्ञान की एक शाखा मानव-विज्ञान (Anthropology) अपनी विकासवाद की धारणा के आधार पर धर्म की उत्पत्ति का अध्ययन करने लगी। इस मान्यता के अनुसार आध्यात्मिक श्रद्धा ही धर्म की उत्पत्ति का मुख्य आधार मानी गई।

इस प्रकार धर्म की उत्पत्ति के प्रश्न को लेकर विभिन्न धारणाओं ने विभिन्न विचारधाराओं का समर्थन किया। इन सब विचारधाराओं का विश्लेषण करने से यह प्रतीत होता है कि धर्म की उत्पत्ति का प्रधान कारण न तो प्राकृतिक कार्यों की विचित्रता है, न आश्चर्य है और न आशा ही है अपितु मानव की असहाय अवस्था है जिसमें एक प्रकार के भय का मिश्रण रहा हुआ है। इसी अवस्था से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य एक प्रकार की श्रद्धापूर्ण भावना का निर्माण करता है। यही भावना धर्म का रूप धारण करती है। भारतीय परम्परा में धर्म की उत्पत्ति का प्रधान कारण दुःख माना गया है। मनुष्य सांसारिक दुःख से मुक्ति पाने की आशा से एक श्रद्धापूर्ण मार्ग का अवलम्बन लेता है। यही मार्ग धर्म का रूप धारण करता है। जिसे पाश्चात्य परम्परा में असहायावस्था कहा गया है वही भारतीय परम्परा में दुःख मुक्ति की अभिलाषा है। इस ढंग से दोनों परम्पराओं में बहुत साम्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म का अर्थ—

धर्म की उत्पत्ति से संबन्ध रखने वाली विभिन्न धाराओं का अध्ययन कर लेने के बाद यह जानना आवश्यक हो जाता है कि धर्म का वास्तविक अर्थ क्या है ? 'धर्म' शब्द का ठीक ठीक अर्थ समझे बिना उसकी उत्पत्तिविषयक मान्यता स्पष्टरूप से समझ में नहीं आ सकती। 'धर्म' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'धारणात् धर्मः' अर्थात् जो धारण किया जाय वह 'धर्म' है। 'धृ' धातु के धारण करने के अर्थ में 'धर्म' शब्द का प्रयोग होता है। किसी परम्परा में वस्तु का स्वभाव ही धर्म कहा गया है।[1] प्रत्येक वस्तु का किसी न किसी प्रकार अपना स्वतन्त्र स्वभाव होता है। वही स्वभाव उस वस्तु का धर्म माना जाता है। उदाहरण के तौर पर अग्नि का अपना एक विशिष्ट स्वभाव है जिसे उष्णता कहते हैं। यह उष्णता ही अग्नि का धर्म है। कुछ लोगों ने आत्मा के अहिंसा, संयम, तप इत्यादि गुणों को भी धर्म का नाम दिया है।[2] इस प्रकार 'धर्म' शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग हुआ है। भिन्न भिन्न परम्पराएँ अपनी अपनी मान्यता के अनुसार विविध स्थानों पर 'धर्म' शब्द के विविध अथ करती हैं। ऐसी कोई व्याख्या नहीं है जिसे सभी स्वीकृत करते हों। ऐसा कोई लक्षण नहीं है जो सर्वसम्मत हो।

वस्तुतः 'धर्म' से हमारा अभिप्राय इस समय उस शब्द से है जिसे अंग्रेजी में 'रिलीजन' कहते हैं। अंग्रेजी के 'रिलीजन' शब्द से हमारे मन में जो स्थिर अर्थ जम जाता है 'धर्म' शब्द से वैसा नहीं होता क्योंकि 'रिलीजन' शब्द का प्रायः एक निश्चित अर्थ है जब कि 'धर्म' शब्द का कई अर्थों में प्रयोग होता है। 'रिलीजन' शब्द के एक निश्चित अर्थ को दृष्टि में रख कर ही भिन्न भिन्न विचारक उस अर्थ को अपनी अपनी दृष्टि से भिन्न भिन्न रूपों में अभिव्यक्त करते हैं। उन सब रूपों में उस अर्थ की मूल भित्ति प्रायः एक सरीखी ही रहती है। 'धर्म' शब्द के विषय में एकान्त रूप से ऐसा नहीं कहा जा सकता। 'रिलीजन'—धर्म शब्द का पाश्चात्य विचारकों ने किन किन रूपों में क्या अर्थ किया है, इसे जरा देख लें। कान्ट के शब्दों में 'अपने समस्त कर्तव्यों को ईश्वरीय आदेश समझना ही धर्म है[3]।' हेगल

१ वत्थुसहावो धम्मो,

२ धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।

३ Religion is the recognition of all our duties as divine commands.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की धारणा के अनुसार 'धर्म सीमित मस्तिष्क के भीतर रहने वाले अपने असीम स्वभाव का ज्ञान है'[1] अर्थात् सीमित मस्तिष्क का यह ज्ञान कि वह वास्तव में सीमित नहीं अपितु असीम है, धर्म है। मैयर्स ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि 'मानव-आत्मा का ब्रह्माण्ड विषयक स्वस्थ और साधारण उत्तर ही धर्म है।'[2] इन तीन मुख्य व्याख्याओं के अतिरिक्त और भी ऐसी व्याख्याएं हैं जिन्हें देखने से हमारी 'रिलीजन'—धर्म विषयक धारणाएँ बहुत कुछ स्पष्ट हो सकती हैं। व्हाइटहेड ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है—'व्यक्ति अपने एकाकी रूप के साथ जो कुछ व्यवहार करता है वही धर्म है'[3] अर्थात् जिस समय व्यक्ति अपने को एकान्त में सर्वथा अकेला पाता है और यह समझता है कि मेरा जो कुछ स्वरूप है वह यही व्यक्तित्व है; ऐसी अवस्था में उसका अपने साथ जो व्यवहार है, व्हाइटहेड की भाषा में वही धर्म है। यह धर्म का वैयक्तिक लक्षण है। व्यक्ति का अन्तिम मूल्य व्यक्ति स्वयं ही है, ऐसा मानकर धर्म की उपरोक्त व्याख्या की गई है। यह दृष्टिकोण एकान्त व्यक्तिवाद (Absolute Individualism) का सूचक है। अमेरिका के एक मनोविज्ञान शास्त्री आमेस ने धर्म की ठीक इससे विपरीत व्याख्या करते हुए कहा कि जो ईश्वर से प्रेम करता है वह अपने भाई से अवश्य प्रेम करता है।'[4] यह धर्म की सामाजिक व्याख्या है। व्यक्ति केवल व्यक्तिगत साधना से धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक बनने के लिए यह अत्यावश्यक है कि व्यक्ति समाज की सेवा करे। जो व्यक्ति समाज की उपेक्षा करके धर्म की आराधना करना चाहता है वह वास्तव में धर्म से बहुत दूर है। यह दृष्टिकोण समाजवादी विचारधारा का पोषक और समर्थक है। इसे हम एकान्त समाजवाद (Absolute Socialism) का नाम दे सकते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर ने इसी धारणा को दृष्टि में रखते हुए धर्म का स्वरूप इस ढंग से बताया—'धर्म विश्व को व्यापक रूप से समझने की एक काल्पनिक

---

१ Religion is the knowledge possessed by the finite mind of its nature as absolute mind.

२ Religion was the same and normal response of the human spirit to all that we know of cosmic law.

३ Religion is what the individual does with his own solitariness.

४ He who loves God must love his brother also.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारणा हैं। संसार के समस्त पदार्थ एक ऐसी शक्ति की अभिव्यक्ति हैं जो हमारे ज्ञान से परे हैं।'[१] स्पेन्सर की यह धारणा आदर्शवादी दृष्टिकोण के बहुत समीप है। हेगल के समान स्पेन्सर ने भी धर्म के साथ दर्शन की विचारधारा का समन्वय किया है, ऐसा प्रतीत होता है। मक्टागार्ट ने इसी लक्षण को जरा और स्पष्ट करते हुए कहा कि 'धर्म चित्त का वह भाव है जिसके द्वारा हम विश्व के साथ एक प्रकार के मेल का अनुभव करते हैं।'[२] जेम्स फ्रेजर के शब्दों में 'धर्म मानव से ऊँची गिनी जाने वाली उन शक्तियों की आराधना है जो प्राकृतिक व्यवस्था व मानव-जीवन का मार्गदर्शन व नियन्त्रण करने वाली मानी जाती हैं।[3] धर्म का उपरोक्त स्वरूप विचारात्मक व भावात्मक न होकर क्रियात्मक है, ऐसा मालूम होता है। आराधना या पूजा मानसिक होने की अपेक्षा विशेष रूप से कायिक होती है तथापि उसके अन्दर इच्छाशक्ति का सर्वथा अभाव नहीं होता। यदि ऐसा होता तो शायद आराधना करने की प्रेरणा ही न मिलती। जहाँ तक प्रेरणा की जागृति का प्रश्न है, इच्छाशक्ति अवश्य कार्य करती है। जिस समय वह प्रेरणा कार्य-रूप में परिणत होती है उस समय उसका क्रियात्मक रूप हो जाता है और वह कायिक श्रेणी में आ जाती है। जेम्स फ्रेजर की उपरोक्त व्याख्या मानसिक व कायिक दोनों दृष्टियों से आराधना का विधान करती है, यह बात इस विवेचन से स्पष्ट हो जाती है। विलियम जेम्स ने किसी ऊँची शक्ति विशेष की अराधना का विधान न करके विश्वास के आधार पर धर्म की नींव रखी। जेम्स के शब्दों में 'धर्म एक श्रद्धा है जिसे धारण कर मनुष्य सोचता है कि जगत् एक अदृष्ट नियम के आधार पर चलता है जिसके साथ मेल रखने में ही हमारा उत्कृष्ट हित है।''[४] इस व्याख्या के अनुसार धर्म का आराधना या पूजा से कोई सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य जगत् के साथ मैत्री का व्यवहार करे, यही इस व्याख्या का अभिप्राय है। संसार का सारा काय एक ऐसे नियम के अनुसार चलता है जिसका स्पष्ट दर्शन हमारी योग्यता से बाहर है।

१ First Principles, पृ. ४३, ९९.

२ Some Dogmas of Religion, पृ. ३.

३ Religion is a propitiation or conciliation of the powers superior to man which are believed to direct and control the course of nature and of human life.

४ Varieties of Religious Experience, पृ. ५३.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लोग अपनी साधारण बुद्धि के आधार पर उस नियम तक नहीं पहुंच सकते। उस नियम का पूर्ण विश्लेषण हमारी शक्ति से बाहर है। अपनी इस अयोग्यता को दृष्टि में रखते हुए संसार के समस्त प्राणियों के प्रति सद्भावना व मित्रता का व्यवहार रखना ही धर्म है। धर्म का यह लक्षण नैतिकता का पोषण करने के लिए बहुत उपयोगी है।

इन सब व्याख्याओं को देखने से यह सहज ही समझ में आ सकता है कि धर्म का सर्व सम्मत एक लक्षण निर्धारित करना कितना कठिन है। इतना होते हुए भी हम यह कह सकते हैं कि धर्म मानव विचार और आचार का आवश्यक अंग है। मानव-विचारधारा की वृद्धि के साथ ही साथ धर्म की धारणा भी दृढ़ होती जाती है। मनुष्य के आचरण की शुद्धि के साथ ही धार्मिक श्रद्धा भी बढ़ती जाती है। यह ठीक है कि धर्म के कुछ चिह्न सामान्य होते हैं और कुछ विशेष। सामान्य चिह्न के आधार पर ही सम्पूर्ण समाज की उन्नति होती है। विशेष चिह्न या लक्षण विशेष परिस्थिति या समय की दृष्टि से उपयोगी एवं ग्राह्य होते हैं; ऐसे लक्षणों का सामान्य रूप से उपयोग नहीं हो सकता। धर्म के चिह्न आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार के होते हैं। आभ्यन्तर चिह्न विचारप्रधान होते हैं और बाह्य चिह्न आचार प्रधान। दोनों में श्रद्धा का प्रमुख स्थान होता है, यह स्वयं सिद्ध है।

मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि

१ मिथ्यादृष्टि—अपने अधिकार तथा दूसरे के कर्तव्य का ध्यान रखता है।
सम्यग्दृष्टि—अपने कर्तव्य तथा दूसरे के अधिकार का ध्यान रखता है।

२ मिथ्यादृष्टि—अपने गुण तथा दूसरे के दोषों पर दृष्टि रखता है।
सम्यग्दृष्टि—अपने दोष तथा दूसरे के गुणों पर दृष्टि रखता है।

३ मिथ्यादृष्टि—स्वयं नहीं करता, उपदेश देता है।
सम्यग्दृष्टि—उपदेश देने से पहले स्वयं करता है।

४ मिथ्यादृष्टि—अपनी सुख सुविधा का ध्यान रखता है।
सम्यग्दृष्टि—दूसरों की सुख सुविधा का ध्यान रखता है।

५ मिथ्यादृष्टि—अपनी कठिनाइयाँ देखता है।
सम्यग्दृष्टि—दूसरे की कठिनाइयाँ देखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

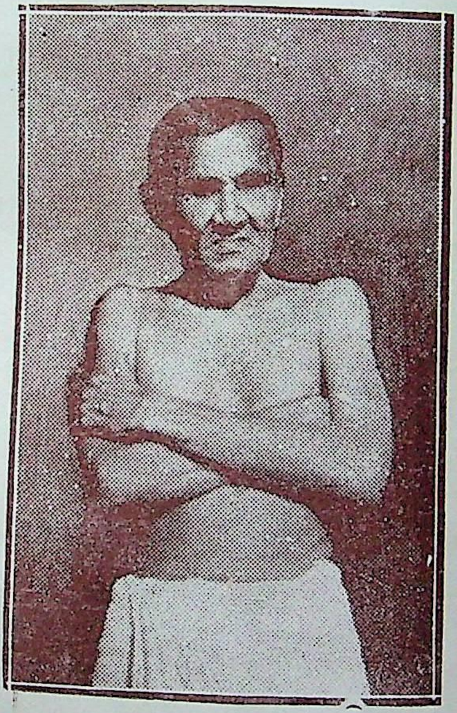

पंडित श्री सुखलालजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे समाज-निर्माता

विद्यामूर्ति पं० सुखलाल जी–

–प्रो० दलसुख मालवणिया

दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी जैसे रत्नों की जन्मभूमि सौराष्ट्र के होकर श्री पं० श्री सुखलाल जी का लेखन अधिकतर हिन्दी में ही हुआ है। उसका कारण यह है कि उनका संस्कृत का अध्ययन बनारस और मिथिला में हुआ और प्रथम कार्य का प्रारंभ भी आगरा में हुआ। यह समय वि० १९६० से १९७७ तक का है। बीच में १३ वर्ष गुजरात में जाकर फिर वि० १९९० से २००० तक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में जैन दर्शन के प्रधानाध्यपक रहे। इस प्रकार विद्या का प्रारंभ और परिपाक—दोनों इधर ही हुआ। अतएव हिन्दी जगत् को ही उसके सुफल मिलें, यह स्वाभाविक है।

उनका प्रथम हिन्दीकार्य कर्मग्रन्थों का चार भागों में विवेचन है जो १९७४ वि० में लिखा गया। उनके इस विवेचन का अनुकरण करके गुजराती में कई ग्रन्थ बने हैं किन्तु उनका अध्ययन और तुलनात्मक दृष्टि से जो विवेचन है उसमें आज तक कोई कुछ नया नहीं बढ़ा सका। उसके बाद उन्होंने 'प्रतिक्रमण' जो जैन समाज के घर घर की चीज है उसका हिन्दी विवेचन वि० १९७८ में प्रकाशित किया। उसके भी कई अनुकरण हुए किन्तु पंडित जी के विवेचन से नया कोई कुछ दे न सका। उसी वर्ष 'योगदर्शन और योगविंशतिका' नामक ग्रंथ की जो योगविषयक प्रस्तावना उन्होंने हिन्दी में लिखी है वह आज भी पुरानी नहीं हुई। उसमें उन्होंने हिन्दू, जैन और बौद्ध मान्यता के अनुसार योग का तुलनात्मक विवेचन किया है। शायद ऐसी तुलना किसी अन्य ने किसी भाषा में नहीं की। सुप्रसिद्ध 'तत्त्वार्थसूत्र' का विवेचन भी उन्होंने हिन्दी में ही लिखना शुरू किया था किन्तु वह पहले गुजराती में छपा और बाद में हिन्दी में। इन सब विषयों में उनका पुरोगामी कोई नहीं था। उन्होंने ही अपने अध्यवसाय के बलपर अपना रास्ता निकाला और जो सामग्री दी वह सर्वथा अपूर्व संकलन के रूप में थी।

इस प्रकार हिन्दी विवेचना का कार्य करते करते उन्हें सटीक 'सन्मतितर्क' नामक महाग्रन्थ के उद्धार की बात सूझी और आगरा में ही उसका कार्य शुरू हुआ। इसी बीच उनकी नियुक्ति वि० १९७८ में गुजरात विद्यापीठ में दर्शन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र के अध्यापक रूप से हुई। अतएव फिर वहीं रहकर उस महान् ग्रन्थ का समुद्धार किया। मूलग्रन्थ प्राकृत गाथाबद्ध है और बहुत छोटा है किन्तु उसकी संस्कृत टीका वाद का महार्णव है। उसका सम्पादन भारतीय संपादन के इतिहास में सुवर्णाक्षरों से लिखने योग्य हैं। यह उनकी ही सूझ थी कि उस ग्रन्थ में आए हुए उद्धरणों को खोज निकाला। इतना ही नहीं बल्कि ग्रन्थ के पूर्वोत्तर पक्षों को अन्य दर्शनों के ग्रन्थों में से निकाल कर उन्हें भी नोट किया। इतने ही से वे संतुष्ट न हुए और प्रत्येक वाद की दलीलों का इतिहास खोजने वालों के लिए भी उसकी सामग्री टिप्पणों में जुटाई। वस्तुतः उनका यह ग्रन्थ भारतीय दर्शनों का विश्वकोष बन गया है। ग्रन्थ की प्रस्तावना भी विशिष्ट रूप से लिखी गई है। मूल ग्रन्थ का संक्षिप्त विवेचन भी उन्होंने गुजराती में प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ का संपादन पूरा करते ही पुनः वे हिन्दी के क्षेत्र बनारस यूनिवर्सिटी में वि० १९९० में आए और अपने दार्शनिक अनुभव का निचोड़ 'प्रमाण मीमांसा' की प्रस्तावना और टिप्पणों में तथा 'ज्ञानबिन्दु' की प्रस्तावना में हिन्दीभाषा में ही रखा। उनके ये दोनों ग्रन्थ भारतीय दर्शनशास्त्र का तुलनात्मक अभ्यास करने वालों के लिए हिन्दी भाषा में मौलिक सामग्री देने का कार्य करते हैं। बनारस में रहते समय ही उन्होंने चार्वाक दर्शन के एक मात्र उपलब्ध ग्रन्थ 'तत्त्वोपप्लव सिंह' का संपादन किया और उसका सर्वप्रथम परिचय हिन्दी में ही लिखा। उनका अंतिम संपादन बौद्धदर्शन विषयक 'हेतुबिन्दु' नामक धर्मकीर्ति कृत ग्रन्थ है। ये दोनों ग्रन्थ गायकवाड़ सिरीज में मुद्रित हैं। इसी बीच उन्होंने 'वेद-वाद-द्वात्रिंशिका' का हिन्दी विवेचन लिखा है जो वैदिक और औपनिषद उद्धरणों से समलंकृत है। उसे 'भारतीय विद्याभवन बंबई ने' प्रकाशित किया है।

पंडित जी की हिन्दीसेवा की यह रूपरेखा है। इसमें उनके छोटे मोटे लेखों का ज़िक्र नहीं है और छोटे छोटे प्रकरण ग्रन्थों के हिन्दी अनुवादों को भी छोड़ दिया गया है। एक गुजराती मातृभाषाभाषी व्यक्ति की यह हिन्दी जगत् की जो सेवा है उसके सामने कोई भी नतमस्तक हो सकता है। उक्त समस्त लेखन का अधिकांश जैनदर्शन को केन्द्र में रख कर होते हुए भी ताटस्थ्य का भंग कहीं नहीं हुआ है। स्वयं जैन हैं, यह भूल कर ही उन्होंने हरएक वस्तु की मीमांसा की है। साहित्य का जितना विस्तार है, उसमें उतनी ही गहराई है जिसे देख कर लेखक की मननशीलता, स्पष्टता, तर्कपटुता और निर्भयता पद पद पर प्रकट होते हैं। साथ ही प्रत्येक वाक्य में बहुश्रुतता और सत्यप्रियता का पुट रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके इस बहुमूल्य और बहुगुण साहित्य को देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि वे नेत्रविहीन हैं और वह भी सोलह वर्ष की किशोरावस्था से। यह एक आश्चर्य है कि वे नेत्रविहीन होकर भी प्रज्ञाचक्षु से एक नेता के रूप में ही हमारे सामने खड़े होते हैं।

यह सब कैसे हुआ? बाह्य चक्षु न होने पर भी वे प्रज्ञाचक्षु कैसे बने? इसकी कथा लम्बी है। सार इतना ही है कि केवल तीव्र जिज्ञासा ने ही नहीं, सत्य जानने की तीव्र जिज्ञासा ने ही उनको इतना बड़ा बनाया है। सौराष्ट्र के छोटे से गाँव के एक बनिये का लड़का सोलह वर्ष की अल्पायु में चेचक से वि० १९५३ में अंधा होता है। किसी को भी यह कल्पना नहीं थी कि यह लड़का व्यापार छोड़ कर अन्य कुछ कर सकता है किन्तु विधि कुछ और ही थी। तेईस वर्ष की उम्र में यह युवक केवल संस्कृत विद्या के प्रेम के कारण घर का सुख, पिता और संबंधियों के प्रेम को छोड़ कर बनारस की गली गली में पण्डितों के घर घर विद्या का भिखारी हो कर घूमने के लिए आया। कुछ वर्ष की कठोर तपस्या करने के बाद जब देखा कि बनारस में व्याकरण, साहित्य, दर्शन शास्त्र के विषय में प्राप्त करना कुछ शेष नहीं है तब नव्य-न्याय में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए मिथिला की ओर प्रयाण किया। मिथिला में भी अनेक गुरु किये किन्तु अन्त में श्री पं० बालकृष्ण मिश्र नामक विद्यासंपन्न गुरु का योग मिला। उनके पास रह कर नव्यन्याय में निष्णात हुए। ये गुरुशिष्य दोनों बाद में बनारस यूनिवर्सिटी में संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापक पद पर नियुक्त हुए। गुरु स्वर्गस्थ हो गए और शिष्य आज सत्तर-वर्ष की आयु में भी विद्यामूर्ति बन कर हमारा मार्गप्रदर्शक बना हुआ है।

जैन समाज में उन्होंने नई विचारधारा प्रवाहित की है। इसी विचारधारा के कारण पंडित जी की प्रसिद्धि क्रान्तिकारी विचारक के रूप में है। यही कारण है कि आज वे रूढ़िवादियों के शत्रु बने हुए हैं। विचार स्वातन्त्र्य उनकी जान है। यदि वे साधुओं के विरुद्ध, उनके रूढ़ आचरण के विरुद्ध, उनकी निष्क्रियता के विरुद्ध आवाज़ नहीं उठाते तो अपनी विद्या और अपने सच्चरित्र के कारण आज उनकी देव जैसी पूजा होती। उनको अपनी पूजा की अपेक्षा सद्विचार का प्रचार अधिक इष्ट है, अतएव अंध भक्ति की अपेक्षा रूढ़िवादिओं द्वारा किये जाने वाले अपमान और गाली गलौज को ही वे अधिक पसंद करते हैं। उनके मत से परम आस्तिक वह है जिसकी स्वसंप्रदाय वाले तो निन्दा करें किन्तु अन्य संप्रदाय वाले जिसका सम्मान करें। उनकी विद्वत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कसौटी भी यही है कि जो अपने संप्रदाय के बाहर भी कार्य करने में समर्थ होकर अपनी विद्या के बल से सन्मान प्राप्त कर सके वही विद्वान् कहलाने योग्य हैं। अपने शिष्यों के सामने भी उन्होंने आस्तिकता और विद्वत्ता का यही आदर्श उपस्थित किया है।

अध्ययन, अध्यापन, लेखन और विचारशुद्धि—यही उनका व्यवसाय है। उनकी जिज्ञासा आज सत्तर वर्ष की आयु में भी इतनी तीव्र है कि दो-चार मील चल कर भी विद्या का सुयोग हो तो वे नहीं गँवाते। अपने शिष्य के पास भी यदि कोई वस्तु जानने को मिलती हो तो उन्हें जाने में कोई संकोच नहीं। अपने खाने पीने के खर्च में कमी करके भी—वाचक का खर्च करने को सदैव तैयार रहते हैं किन्तु निकम्मा बैठना और निकम्मी बातें करना उनको पसंद नहीं। जहाँ कहीं नौकरी की, सम्मान के साथ की और अर्थदृष्टि से नहीं किन्तु विद्यानिष्ठ हो कर की। अर्थ का तब तक ही महत्त्व है जब तक विद्यानिष्ठा में और अपने विचार स्वातन्त्र्य में वह बाधक न हो।

यह सब इसीलिए संभव हुआ है कि उन्होंने गांधी जी के आदर्श को अपनाया है। वि० १९७३ में वे गांधी जी के आश्रम में रहे और उनके साथ बैठ कर चक्की भी पीसी। गांधी जी के आश्रम से उन्होंने जीवन की सादगी, शारीरिक परिश्रम की वृत्ति और कर्मयोग सीखा है। यही कारण है कि वे आज भी शारीरिक परिश्रम से नफ़रत नहीं करते। अनिवार्य होने पर ही दूसरों से शारीरिक सेवा लेते हैं। उनका परिग्रह इतना कम है कि दश वर्ष बनारस यूनिवर्सिटी में कार्य करके जब निवृत्त होकर बंबई भारतीय विद्याभवन में जाने लगे तब उनके पास अपना सामान एक ट्रंक और एक बिस्तर ही था। आज किसी के बड़े बंगले में रहते हुए भी उनका अपना सामान तो वही ट्रंक और बिस्तर ही है। जीवन निराडम्बर और निष्कपट है। किन्तु विचार की प्रखरता, प्रतिभा और विवेक प्रज्ञा का तेज उनसे मिलने वाला दूसरे ही क्षण में पहचान लेता है।

अभी पिछले वर्ष की बात है। उनको रक्त का दौरा हो आया। डॉक्टर ने कहा कि आप अधिक वाचन लेखन करते हैं इसीसे यह हुआ है। उसे छोड़ दें। मित्रों ने कहा—हम लोग आप का दिल बहलाने के लिए बातें करेंगे, आप चुप रहिए। किन्तु यह उन्होंने स्वीकार नहीं किया। कहने लगे कि विद्या के लिए यह शरीर है। यदि विद्या में ही यह बाधक हो तो फिर वह चला जाय इसमें क्या हानि है? ऐसी है उनकी विद्यानिष्ठा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवलज्ञान सम्बन्धी कुछ बातें–

–इन्द्र एम० ए०

जब एक जैन विद्वान् शिक्षित वर्ग में पहुँचता है तो उससे यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है, "क्या एक व्यक्ति एक ही समय में भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान के सभी पदार्थों को जान सकता है?" साथ ही यह भी पूछा जाता है, "यदि भौगोलिक विषयों का प्रतिपादन करने वाले हमारे आगम सर्वज्ञप्रणीत हैं तो वे ग़लत सिद्ध क्यों हो रहे हैं?"

इन में से दूसरे प्रश्न का उत्तर सरल है, किन्तु वह भी कई प्रकार से दिया जाता है। आगम के नाम से प्रचलित प्रत्येक पुस्तक के प्रत्येक अक्षर को सत्य मानने वाला श्रद्धालु यह उत्तर देता है कि विज्ञान परम सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता। किन्तु इस उत्तर से उस नवयुवक को सन्तोष नहीं होता जो किसी बात को सत्य मानने से पहले उसके लिए प्रमाण चाहता है। पुस्तक विशेष में लिखे होने मात्र से, या व्यक्ति विशेष द्वारा कहे जाने मात्र से वह दो और दो को पाँच मानने के लिए तैयार नहीं होता। दूसरा उत्तर ऐतिहासिक आधार पर दिया जाता है। वह यह है कि भौगोलिक बातों को प्रतिपादित करने वाले आगम सर्वज्ञप्रणीत नहीं हैं। वे परवर्ती आचार्यों के बनाए हुए हैं। उनमें जो सिद्धान्त प्रतिपादित हैं वे प्रत्यक्ष दर्शन पर आश्रित नहीं हैं। उनमें तत्कालीन प्रचलित परम्पराओं में से किसी एक को स्वीकार कर लिया गया है। उन का महत्व उसी दृष्टि से है कि भूगोल तथा गणित सम्बन्धी प्राचीन साहित्य में उन ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु अब दोनों बातों में विज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है, इसलिए हमें पुरानी परम्पराओं से चिपके रहने की आवश्यकता नहीं है। यह उत्तर बहुत दूर तक समाधान कर देता है किन्तु इसके साथ यह प्रश्न उठता है कि यह निर्णय कौन कर सकता है कि अमुक आगम सर्वज्ञप्रणीत है और अमुक नहीं। विज्ञान ने आपके एक सिद्धान्त को खण्डित कर दिया तो आप कहने लगे कि वह सर्वज्ञ प्रतिपादित नहीं है। दूसरे सिद्धान्तों को ज्यों का त्यों मानते रहें। कल यदि दूसरा सिद्धान्त खण्डित हो गया तो आप उसे भी छोड़ देंगे। इसका अर्थ तो यह हुआ कि अन्तिम निर्णय हमारे अधीन है। परम्परा से सर्वज्ञ प्रतिपादित होने का दावा रखने वाली किसी पुस्तक को विज्ञान द्वारा खण्डित होने पर यह कहना कि वह सर्वज्ञ-प्रतिपादित नहीं हैं, या यह कहना कि उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपादक सर्वज्ञ नहीं हैं, इसमें विशेष अन्तर नहीं पड़ता। अन्त में हमें पुरानी परम्परा छोड़कर विज्ञान की शरण लेनी पड़ती है और उसीके आधार पर तथाकथित सवज्ञ के वचनों की परीक्षा होती है। फिर यह बात तो नहीं रहती कि किसी भी बात को केवल शास्त्रों में प्रतिपादित होने के कारण मान लिया जाय। इसी बात को लेकर हरिभद्र ने लिखा है—"न तो मेरा महावीर के प्रति पक्षपात है और न कपिल आदि के प्रति द्वेष। मैं तो उसीका स्वागत करूँगा, जिसके वचन युक्ति संगत हैं।"

किन्तु विचार कर देखा जाय तो इस युक्ति में भी एक उलझन है। जब आप प्रत्येक बात को युक्ति पर तोलना चाहते हैं तो किसी व्यक्ति के स्वागत की बात कहाँ रही। वह तो युक्ति का स्वागत हुआ। आप अंधेरे में जा रहे हैं। एक ग्रामीण ने कहा—"स्वामी जी ! आगे खाई है।" आप विश्वास करें या न करें सन्देह में तो पड़ ही जाएँगे। जब सँभल कर चलने पर लाठी द्वारा या कहीं से रोशनी मिल जाने पर आप अपनी आँखों से खाई देख लेंगे तब विश्वास हो जाएगा। किन्तु यह विश्वास किसका है, उस ग्रामीण की बात का या अपनी आँखों का ?

एक बात और है, यदि सब कुछ युक्ति पर ही कसना है आगम प्रमाण कहाँ रहा ?

इस विषय में वैदिक परम्परा का दृष्टिकोण स्पष्ट है। मीमांसा दर्शन का कहना है कि वेद सबसे अधिक प्रमाण है। उनके सामने दूसरी कोई बात नहीं माननी चाहिए। किन्तु उन्होंने एक बुद्धिमत्ता भी की—वेद के विषयक्षेत्र को सीमित कर दिया। उन्होंने कहा—"वेद का मुख्य प्रयोजन कर्तव्य का विधान तथा अकर्तव्य का निषेध है। जहाँ किसी वस्तुस्थिति का प्रतिपादन है वहाँ वेद का प्रयोजन नहीं है।" विवाद वहीं खड़ा होता है जहाँ किसी वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन किया जाय। उस विषय में वेद के प्रयोजन का निषेध करके उन्होंने विवाद की जड़ ही काट दी। यदि उन बातों के लिए वेद झूठा भी हो जाय तो इस से उसकी प्रामाणिकता को बट्टा नहीं लगता। फिर भी मीमांसकों के सामने एक कठिनाई अवश्य उपस्थित हुई—किसी ने वेदविहित विधि के अनुसार यज्ञ किया और उसमें प्रतिपादित फल नहीं मिला, तो क्या वहाँ वेद को झूठा मान लिया जाय ? इसका उत्तर उन्होंने दिया—फल न मिलने का कारण पूर्वजन्म का पाप है। उस पाप के कारण फल मिलने में विघ्न पड़ गया। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वेद ने जो कुछ कहा था वह गलत है। 'अग्नि जलाती है' इस कथन को सभी सत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते हैं, किन्तु यदि व्यवधान या किसी प्रकार के लेप के कारण वह नहीं जला पाती तो इस से उपरोक्त कथन झूठा नहीं होता।

वेदान्त, सांख्य आदि दर्शनों ने दूसरी बातों में भी उसे प्रमाण माना किन्तु विचारविनिमय में आध्यात्मिक प्रश्नों को ही लिया। वैदिक परम्परा के विद्वानों ने उन सब बातों को प्रायः छोड़ ही दिया है जिन की भौतिक विज्ञान के साथ संगति नहीं बैठती थी।

बौद्ध परम्परा ने स्पष्टरूप से दूसरा मार्ग अपनाया। उन्होंने कहा—कोई शास्त्र प्रमाण रूप से न मानना चाहिए। प्रत्येक बात की स्वयं परीक्षा करनी चाहिए। बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

"परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्वचो न तु गौरवात्।"

"हे भिक्षुओ ! मेरी वाणी को तभी स्वीकार करना जब वह तुम्हारी जाँच में ठीक उतरे। केवल मेरे प्रति आदर होने के कारण किसी बात को मत मानना।"

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि बौद्ध परम्परा सर्वज्ञवाद से अछूती रही। उसमें भी बाद में जाकर वह आ ही गया।

धर्मकीर्ति ने सर्वज्ञ का अर्थ 'धर्मज्ञ' किया। उनका कथन है कि सर्वज्ञ वही है जो काम की बातें जानता है। दुनिया में कितने कीड़े हैं, इस बात के ज्ञान से हमें कोई मतलब नहीं। किन्तु धर्मकीर्ति के टीकाकार शान्तरक्षित ने 'सर्वज्ञ' का अर्थ सब बातों को जानने वाला मान लिया।

बौद्ध ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि उन्होंने आत्मकल्याण के लिए सर्वज्ञ बनने की कोई अवश्यकता नहीं समझी। आत्मकल्याण की छ भूमियों में तथा छ पारमिताओं में सर्वज्ञता कहीं नहीं आती। सर्वज्ञता का वर्णन महायान की दस भूमियों और पारमिताओं में आता है। उनके कथनानुसार भी प्रत्येक मुक्त जीव सर्वज्ञता को नहीं प्राप्त करते। इसकी आवश्यकता केवल बोधिसत्व को उपदेश देने तथा दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करने के लिए पड़ती है। बौद्धपरम्परा में बुद्ध को करुणा का अवतार माना गया है। वे अपनी करुणा द्वारा दूसरों का उद्धार करते हैं। उद्धार के इस कार्य में सर्वज्ञता सहायक है।

जैनदर्शन में मुक्ति प्राप्त करने के लिए सर्वज्ञ होना आवश्यक है और सर्वज्ञ का अर्थ है, सब वस्तुओं को जानने वाला। साथ ही उसमें सर्वज्ञ-प्रतिपादित होने के आधार पर आगमों को प्रमाण माना गया है। हमें यह सोचना है कि आगम स्वयं सर्वज्ञ के विषय में क्या कहते हैं। और इसी के साथ पहले प्रश्न का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रारम्भ होता है। हमारा अपने पाठकों से अनुरोध है कि वे सत्य के जिज्ञासु बन कर तटस्थ दृष्टि से विचार करें। हम इस प्रश्न को व्यक्ति विशेष की मान्यता के रूप में नहीं किन्तु तत्त्व जिज्ञासा की दृष्टि से छेड़ रहे हैं। जो सज्जन शास्त्र या युक्ति के आधार पर इस विषय में कुछ लिखेंगे उनका भी स्वागत किया जाएगा।

१. प्रथम प्रश्न—केवली होने पर भी तेरहवें गुणस्थान में मन और इन्द्रियाँ विद्यमान हैं। फिर भी यह कहा जाता है कि केवली उनका उपयोग किसी वस्तु को जानने के लिए नहीं करते। श्वेताम्बर परम्परानुसार केवली मन का उपयोग किसी मन:पर्यायज्ञानी या देवता के प्रश्न का उत्तर देने के लिए करते हैं। दिगम्बर परम्परा उसे भी नहीं मानती। किन्तु उपासकदशांग में यह स्पष्ट रूप से आता हैं कि भगवान् महावीर ने आजीवक के अनुयायी शकटाल की बात को सुना। यदि वे सर्वज्ञ थे तो सुनने की क्या आवश्यकता थी।

२. दूसरा प्रश्न—भगवती, पन्नवणा आदि सूत्रों में गौतमस्वामी भगवान् से पूछते हैं—

हे भदन्त ! केवली जिस समय रत्नप्रभा पृथ्वी को आकार से, हेतु से, उपमा से,........जानते हैं, क्या उसी समय देखते हैं ?

"गौतम ! यह बात ठीक नहीं है।"

"सो किस लिए भदन्त !"

"गौतम ! ज्ञान साकार होता है और दर्शन निराकार होता है, इस लिए वह जिस समय जानता है, उस समय देखता नहीं है और जिस समय देखता है उस समय जानता नहीं है। इस से यह स्पष्ट है जानना और देखना दो भिन्न भिन्न कार्य हैं। केवली जिस समय जानते हैं उस समय देखने का कार्य नहीं होता और जिस समय देखते हैं उस समय जानने का कार्य नहीं होता। ऐसी दशा में किसी भी एक को पूर्ण नहीं माना जा सकता।

३. तीसरा प्रश्न—जहाँ तक बोध का प्रश्न है श्रुतज्ञान और केवलज्ञान समान हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि श्रुत परोक्ष है और केवल प्रत्यक्ष। श्रुतज्ञान शास्त्रों पर आश्रित है इसलिए अनन्त नहीं हो सकता। ऐसी दशा में उसके समकक्ष कहे जाने वाले केवल को अनन्त कैसे कहते हैं।

ऊपर लिखी बातें शास्त्रों के आधार पर लिखी हैं। युक्ति के आधार पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। उसे फिर कभी उठाया जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैतान—

—खलील जिब्रान

फादर समन को लोग धार्मिक और आध्यात्मिक बातों में बहुत मानते हैं। वे योग्य भी थे, क्योंकि इन विषयों पर उनका अध्ययन भी हुआ था। पाप पुण्य सम्बन्धी विषयों पर उनका ज्ञान विस्तृत था तथा स्वर्ग और नरक के विषयों में भी उनके पास काफी अच्छे अच्छे विचार थे।

उत्तर लेबनान में वे देहातों में घूमते थे और लोगों को आत्मिक उन्नति के लिए व्याख्यान देते थे और शैतान से किस तरह बचना चाहिए इस पर बहुत कुछ कहते थे। यही उनका जीवन-व्यवसाय था। अज्ञानी जनता भी इस धर्मगुरु का बहुत आदर करती थी और उनके उपदेशों को नित्य चाहती थी। लोग इसके बदले उनको धन-धान्य और फल भेंट करते थे।

एक दिन शाम के समय धर्मगुरु देहात की ओर जा रहे थे। देहात का रास्ता पहाड़ों और गुफाओं से होकर जाता था। सुनसान रास्ते से जाते समय धर्मगुरु को रास्ते के किनारे किसी गढ़े से जोर की कराह सुनाई पड़ी। उन्होंने ठहर कर देखा वह कहाँ से आ रही है; वहाँ तक चले गए और देखा कि एक आदमी एक गढ़े में कराहता हुआ पड़ा है। उसके शरीर पर कोई कपड़ा नहीं है, सिर में, सीने में सख्त चोटें आई हुई हैं। उनसे खून की धारें निकल रही हैं और वह अभागा उस खून से लथपथ पड़ा है। कह रहा है— "मैं मरता हूँ, मदद करो, ओह !"

धर्मगुरु ने उस आदमी की ओर देखा और उसे बुरी हालत में देखकर मन ही मन विचार किया, यह आदमी चोर तो नहीं है। किसी की चोरी करते समय पकड़ा गया होगा और बुरी तरह पीटा गया होगा। इतनी बुरी हालत में वह मर भी सकता है और मेरे रहते अगर मर गया तो मुझ पर सन्देह किया जायगा कि मैंने ही उसे मार डाला।

इस तरह विचार करके धर्मगुरु ने वहाँ से खिसक कर राह ले ली और आगे बढ़ने लगे इतने में उस गिरे हुए आदमी ने उन्हें फिर पुकारा और कहा— "भाई, चले मत जाना, इस तरह मुझे छोड़ मत देना। मैं मर रहा हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर धर्मगुरु ने विचार किया और उनका चेहरा शर्म से पीला पड़ गया, क्योंकि उन्हें ज्ञान हुआ कि बेहाल आदमी को छोड़कर मैं चला जा रहा हूँ। उनके होंठ काँप गए। लेकिन उन्होंने अपने से कहा, हो न हो यह कोई पागल है। इसकी चोटें देखकर ही दिल डर रहा है। अब क्या किया जाय? आत्मा को सुधारने वाला चोटों को कैसे ठीक कर सकेगा? और धर्मगुरु आगे बढ़ गए। लेकिन मरणासन्न व्यक्ति ने फिर उनको टोका और जोर से कराह कर कहा—"नजदीक आओ, नजदीक आओ। हम दोनों मित्र हैं, घनिष्ठ और बहुत काल के परिचित मित्र। तुम फादर समन हो, और मैं भी कोई चोर या पागल नहीं हूँ।...आ जाओ, इस तरह अकेले में मुझे मत मरने दो, पास आ जाओ.. मैं कौन हूँ...मैं बताये देता हूँ......"

धर्मगुरु पास आकर बैठ गए। उसके चेहरे की ओर काफ़ी देर तक देखा। अजीब-सा वह चेहरा था, उस पर विरोधी भाव एक ही समय दीखते थे-सुन्दरता के साथ कुरूपता, कोमलता में कठोरता, बुद्धिमानी में धूर्तता। धर्मगुरु ने पीछे हटकर पूछा—"कौन हो तुम ?"

धीमी और क्षीण आवाज में उनको सुनाई पड़ा—"मुझसे डरो मत। हम बहुत ही परिचित मित्र हैं, पुराने भी हैं। मुझे जरा उठाओ, पास के ही झरने पर ले चलो, और मेरी चोटों को अपने कपड़ों से पोंछ डालो।" धर्मगुरु ने पूछा—"पहले बताओ कि तुम कौन हो? क्योंकि मैंने तुम्हें पहचाना नहीं और कभी देखा होगा तो भी ध्यान नहीं।"

तब उस कराहने वाले ने कहा—"तुम मेरी शक्ल को जानते हो। हजारों बार तुमने मुझे देखा है और हर रोज तुम मेरी बात करते हो।" धर्मगुरु ने सुना और कहा—"तुम बड़े झूठे हो, मरते समय तो सच बोलना चाहिए। तुम्हारा यह चेहरा मैंने कभी देखा नहीं। सच कहो, तुम कौन हो? नहीं तो तुम्हें इसी हालत में छोड़कर मैं चल दूँगा। फिर अपने पाप से मरना।"

तब उस अधमरे आदमी ने धर्मगुरु की आँखों की ओर एक टक देखा, उनके पास जरा खिसक गया और मुस्कराते हुए धीरे से हल्की, लेकिन स्पष्ट आवाज में कहा—"मैं...शैतान...हूँ।"

इस भयंकर शब्द को सुनते ही फादर समन बड़े जोर से चिल्ला उठे। वह चिल्लाहट आसपास के पहाड़ों, गुफाओं में भी प्रतिध्वनित हो उठी। कुछ देर तक वे उस शैतान की ओर एकटक देखते रहे और तब धीरे धीरे उन्हें याद आने लगा कि उसकी तरह का चित्र देहात के गिरजाघर में टँगा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका वही बेढंगा शरीर, वही चेहरा ! सभी उससे मिलता जुलता है। वे एक दम थर्रा उठे और बोले—" ईश्वर ने ही तुम्हारी बदसूरत मुझे दिखादी है और इससे नफ़रत करना ही मैं सीख चुका हूँ।"

शैतान ने कहा—"जल्दी मत जाओ और यह कीमती समय भी व्यर्थ बातों में मत गँवाओ। मेरी चोटों को बाँध दो।"

तब धर्मगुरु ने कहा—"जो हाथ ईश्वर की प्रार्थना और सेवा में हर रोज काम आये उन हाथों से पापी के शरीर को स्पर्श करूँ ! तुमको काल के कराल दाँतों में ही विलीन होना चाहिए, क्योंकि तुम मानवता के विरोधी हो, शत्रु हो और इसके साथ सभी गुणों को तहस-नहस करने का तुमने बीड़ा उठाया है।"

शैतान ने एक हाथ का आधार लेते हुए गर्दन ऊपर उठायी और कराहते हुए कहा—"तुम क्या कह रहे हो, तुम यह नहीं जानते। तुम जो गुनाह कर रहे हो उसे भी समझ लेते ! ध्यान से सुनो। मैं, अपनी कहानी कहता हूँ। आज मैं, अकेले इस निर्जन पहाड़ों में घूम रहा था। उसी समय देवदूतों का दल अचानक यहाँ पहुँच गया और सबके सब मुझ पर टूट पड़े। उनके सभी आघात मैंने झेल लिए और मैं उनको परास्त करके भगा भी देता, लेकिन उनमें से एक के पास बड़ी तेज, चमकीली तलवार थी जिसके दोनों ओर से धार थी। उस तलवार के सामने मेरी एक नहीं चल सकी। शैतान ने अपनी बगल की गहरी चोट को दबाते हुए ज़रा विश्राम किया और फिर कहने लगा— "वह तलवार वाला देवदूत, मेरा खयाल है वह मायकेल होगा ······बड़ा ही अच्छा लड़ाकू है। मैंने अपने को जमीन पर गिरा दिया और मरने का स्वांग रच लिया। इसीलिए बच गया, नहीं तो वह मुझे टुकड़े टुकड़े करके मार डालता।"

धर्मगुरु ने तत्क्षण आसमान की ओर सिर उठाया और जोर से, विजय भरी आवाज़ से मायकेल को संबोधित करके पुकार कर कहा—"तुम धन्य हो, बार बार धन्य हो। तुम्हीं ने मानव जाति को इस तरह के पापी शत्रु के हाथ से बचाया है।"

शैतान ने एकदम कहा—"तुम्हारे पास जितनी नफ़रत है उससे मानवता के प्रति मेरी नफ़रत कई गुना कम ही होगी। तुम्हारा मायकेल, कभी तुम्हारी मदद के लिए नीचे नहीं आया है। उसी की तुम पूजा कर रहे हो ! तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे पापी कह कर अन्तिमक्षण में बदनाम कर रहे हो। और मैं तुम्हारे सभी सुख और शान्ति का स्रोत हूँ, आधार हूँ। तुम मेरी मदद नहीं कर रहे हो, मुझ पर तुम्हें दया नहीं आ रही है, लेकिन मेरे ही अस्तित्व की परछाइं में तुम जी रहे हो और सभी सुख पा रहे हो। अपने धार्मिक व्यवसाय को चलाने के लिए तुम मेरे अस्तित्व का सहारा लिए हो, और मेरे नाम पर मुझे बदनाम करने का व्रत रखते हुए तुम अपने कार्य की भलाई का गौरव ले रहे हो।

"क्या तुम नहीं समझ सकते कि मेरे मर जाने से तुम खुद भूखे मर जाओगे? आज तुम मुझे मार डालना चाहते हो; लेकिन कल तुम खुद क्या करोगे? मैं अगर मर जाऊँ तो अपना धार्मिक धँधा तुम कैसे चला सकोगे? वर्षों तक तुम इसी देहातों में घूम घूम कर लोगों को मेरे चंगुल से बचाने की बातें करते आये हो, उन्हें सचेत करते आये हो। तुम्हारा उपदेश वे अब तक खरीदते आये और बदले में दीनार (सिक्के) और अनाज भी तुमको देते आये। कल तुमसे बदले में वे क्या खरीद सकेंगे। अगर उनको यह मालूम हुआ कि मैं मर गया हूँ उनका पापी शत्रु अब नहीं रहा है तो तुम्हारा व्यवसाय मेरे साथ ही नष्ट हो जायगा। तुम धर्मगुरु हो तुम्हारी समझ में यह नहीं आ सकता कि शैतान के अस्तित्व में ही उनके शत्रु के गिरजाघर का निर्माण है। इस पुरानी शत्रुता के गुप्त हाथ ही धार्मिक लोगों के पास से सोने चांदी के सिक्के चुरा कर तुम्हारे जैसे धर्मगुरु और प्रचारकों के झोले में दान के रूप में देते रहे हैं। मुझे यहाँ पर इस प्रकार तुम कैसे मरने दे रहे हो जब कि तुम जानते हो कि तुम्हारे इस गिरिजा घर, तुम्हारे जीवन और गौरव पर ही वज्रपात हो जायगा?"

× × × ×

शैतान कुछ देर तक चुप रहा और उसकी विनम्रताने अधिकार का रूप ले लिया। वह आगे बढ़ कर कहने लगा—"तुम गर्वीले हो, लेकिन अज्ञानी भी हो। मैं तुमको विश्वास का इतिहास बताता हूँ। और उसमें तुमको असली सत्य का साक्षात्कार होगा, तो तुम्हारे और मेरे जीवन को भी एक साथ बाँध देता है और जिससे मेरे अस्तित्व का, तुम्हारी सत् असत् बुद्धि का भी सामंजस्य होता है।

"काल की गति जबसे शुरू हुई तबसे उसके पहले क्षण में ही आदमी सूरज के सामने खड़ा हो गया। उसने अपने हाथ उसकी ओर बढ़ाये और उसने पहली बार कहा—'सूरज के पीछे सर्व शक्तिमान्, दयामय और उदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् का वास है।' फिर आदमी ने घूमकर देखा कि उस प्रकाश में ज़मीन पर उसकी अपनी काली परछाइँ पड़ी है। तब उसने कहा—'ज़मीन के अन्दर कहीं पापी शैतान निवास करता है।'

"आदमी अपनी गुफा की ओर जाते हुए मन ही मन सोचने लगा—'मेरे दोनों ओर दो तरह की शक्तियाँ काम कर रही हैं और मुझे दोनों अपनी ओर खींच रही हैं; एक को मुझे स्वीकार करना है, दूसरी शक्ति से लड़ते हुए।' इसी तरह युग बीत गए और मानव इन्हीं दो शक्तियों के बीच में लड़खड़ाता रहा—एक ने उसको गौरवान्वित किया, इसलिए वह उसकी प्रशंसा करता रहा; दूसरी को वह गालियाँ देता रहा; क्योंकि उससे वह डरता रहा। लेकिन दोनों के अर्थ वह समझ नहीं सका। वह एक पेड़ के समान था जो वसन्तागमन से फूलता है और शिशिर के आगमन से सिकुड़ जाता है।

"आदमी ने जब सभ्यता का उदय देखा, जो सभ्यता की सच्ची पहचान है तब घर की इकाई का अस्तित्व निर्माण हुआ, तब जातियाँ बनीं तथा रुचि और योग्यता के अनुसार श्रमविभाग का तत्त्व अपनाया गया। एक वर्ग ने खेती का काम स्वीकार किया, एक ने मकान बनवाये, एक ने कपड़ा तैयार किया, एक वर्ग शिकारी बन गया।"

यह कह कर शैतान एक क्षण के लिए चुप रहा। फिर वह हँस पड़ा, जिसकी हँसी पहाड़ों में भर गई। लेकिन हँसी से उसे अपनी चोटों की याद आ गयी और उसने अपना हाथ अपनी करवट में दबा लिया और एक बार फिर कराहकर कहने लगा—

"आदिम जाति में एक आदमी 'लाविस' था। उसका यह नाम कैसे पड़ा, मैं नहीं जानता। वह बुद्धिमान था, लेकिन था बड़ा सुस्त। खेती बाड़ी से उसे नफ़रत थी। घर बनवाना, गायों को चराना या किसी भी परिश्रम के काम से उसे नफ़रत थी। उस ज़माने में बिना परिश्रम के खाने की चीज़ों का मिलना भी मुश्किल था, जबतक आदमी खुद काम न करे। इसलिए 'लाविस' को कितनी रातों भूखे ही सो जाना पड़ता!

"गर्मी का मौसम था। एक रात उस जाति के सभी आदमी अपने प्रमुख नायक के पास अपने दिन के परिश्रम पर बातचीत कर रहे थे। उस समय एक आदमी दौड़कर उस नायक के पैरों पर पड़ गया और आसमान की ओर हाथ उठाकर उसने कहा—'देखिए, रात के उस चन्द्रमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता की ओर देखिए। उसका चेहरा काला पड़ गया है उसकी सारी सुन्दरता विनष्ट हो गई है। और एक काले पत्थर के समान वह आसमान के गोलार्ध में टँगा दीख रहा है।'

"सभी ने चन्द्रमा की ओर देखा--आश्चर्य से और दिलमें डरसे कांपते हुए भी—मानों अन्धकार के हाथों ने उनके दिल को ही पकड़ लिया है, क्योंकि उन्होंने देखा कि चन्द्रमा देवता धीरे धीरे काले पत्थर की गेंद जैसा बनता जा रहा है जिससे धरती पर के प्रकाश की सुन्दरता भी नष्ट होती जा रही है। पहाड़ और गुफाएँ उनकी आँखों से ओझल होते हुए काले परदे से छिपते जा रहे हैं।

"उस समय 'लाविस' अवसर पाकर आगे बढ़ा। वह इस तरह के ग्रहण को पहले देख चुका था और उसका कारण भी जानता था। वह, अब उन लोगों के बीच जा खड़ा हुआ। आसमान की ओर हाथ उठाये, आधि-कारिक वाणी में लोगों से बोला—'घुटने टेककर ईश्वर की प्रार्थना करो, क्योंकि दुष्ट और पाशविक शक्ति से प्रकाशमान रात्रीदेवता को लड़ना पड़ रहा है। अगर वह पापी राक्षस विजयी हुआ तो हम सभी नष्ट हो जायेंगे और यदि रात्रीदेवता की जीत हुई तभी हम जिन्दा रहेंगे। इसलिए प्रार्थना करो, चेहरे पर मिट्टी लगा कर उन्हें ढँक लो और आसमान की तरफ मत देखो, क्योंकि जो कोई यह भयंकर लड़ाई देख लेगा वह अन्धा हो जायगा और पागल बनकर जिन्दगी बिताएगा। इसलिए सिर नीचे करो और मन ही मन देवता का यश चिन्तन करो।'

"इस तरह 'लाविस' बड़बड़ाता रहा, जिसका अर्थ किसी की समझ में न आ सका। इस तरह की धोकेबाजी करके जब चाँद फिर शान से चमकने लगा, लाविस ने अपनी आवाज पहले से भी ऊँची करके कहा—'सिर उठा लो ऊपर देखो चन्द्रमा देवता विजयी हो गए हैं, अपने दुश्मन को परास्त कर चुके हैं तारिकाओं में से वह अपनी यात्रा फिर से कर रहे हैं। तुम्हारी प्रार्थना का लाभ उस देवता को जरूर हो गया है। उससे अपने दुश्मन पर उसने विजय पाई है। अब वे बहुत प्रसन्न हैं और पहले से ज्यादा चमक दिखा रहे हैं।'

"सभी ने सिर उठा कर चन्द्रमा की ओर देखा, जो प्रकाशमान हो गया था। उनका डर शान्त हो गया और व्यस्त मन प्रफुल्लित हो गया। वे आनन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ नाचने कूदने लगे, अपने साथ की लकड़ियों से लोहे के पत्रों पर ठोंकते हुए बजाने लगे। जिससे सब कहीं वह आवाज गूँज उठी।

"उस रात को उस जत्थे के नायक ने लाविस को सम्मानित करते हुए कहा—'तुमने ऐसा कार्य किया है जैसा अब तक किसी ने नहीं किया है। तुम्हींने विशेष ज्ञान हमको दिया है, जो रहस्य पूर्ण रहा। और कोई भी उसे नहीं जानता। अपने लोगों की इच्छा को समझ कर मैं तुम्हें सबसे सम्मानित पद देता हूँ। जो केवल मेरे बाद का है। मैं सबसे शक्तिशाली हूँ और तुम सबसे बुद्धिमान हो। तुम हम लोगों और ईश्वर के बीच की कड़ी हो, माध्यम हो और उसकी इच्छाओं और कार्यों को तुम हमें बताते जाओ। उसकी सदिच्छा पाने के लिए तुम ही जरूरी मार्ग बताते जाओ।'

"और लाविस ने बड़ी धूर्तता से कहा—'रात के सपनों में मुझे अच्छे देवता साक्षात्कार करते हैं और गूढ़ रहस्य बताते हैं। जाग जाने पर आप से ये सब मैं निवेदन करता जाऊँगा। आपको विश्वास हो कि मैं आप दोनों के बीच में रह कर मिलाने का प्रयत्न करूँगा।' तब लाविस को उस टोली के नायक ने दो घोड़े, सात बछड़े, सत्तर बकरियाँ भेंट में दे दीं और कहा—'तुम्हारे लिए मेरे आदमी पक्का मकान बनाएँगे और फसल के दिनों के बाद उसका कुछ अंश भी तुम्हें मिलता जायगा, जिससे तुम सम्मान के साथ रह सकोगे।'

"इस पर लाविस जाने लगा। तब उस प्रमुख ने पूछा—'ईश्वर कौन है और क्या है? इससे लड़ाई करने वाला यह दूसरा कौन है? हमने इस पर कभी सोचा नहीं है।'

"लाविस ने विचार करते हुए कहा—'पुराने जमाने में सभी देवता शान्ति के साथ स्वर्ग में तारिकाओं के विशाल जगत के पीछे रहते थे। उस समय मानव का निर्माण भी नहीं हुआ था। देवाधिदेव उनके राजा थे और वे सबके ज्ञाता और अधिकारी थे। आधिभौतिक बातों को वे भली भाँति जानते थे। और अपने पास ही उन्हें सुरक्षित रखते थे। तब बाद में बहतार (बहटार) नाम का एक देवता उस देवाधिराज से शत्रुता कर बैठा। उसके सामने उसने कहा—'आप ही सभी अधिकार सभी जीवों पर क्यों ले बैठे हैं। और परम विश्व के गूढ़ और आवश्यक नियमों के ज्ञान से हमें क्यों वंचित रख रहे हैं? क्या हम आपके ही पुत्र नहीं हैं? हमें भी आपके ज्ञान और अधिकार में भाग लेना आवश्यक है, जबकि हम आपका विश्वास करते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देवाधिराज यह सुनकर बहुत उत्तेजित हुए और उन्होंने बड़े तपाक से कहा—'अपना अधिकार, अपना ज्ञान और विश्व के गूढ़ नियमों का ज्ञान में अपने पास ही रखे रहूँगा। क्योंकि मैं ही सम्पूर्ण जगत का आदि और अन्त हूँ।'

"तब बहतार ने जबाब दिया—जब तक आप अपने ज्ञान और अधिकार में हमें भी सहयोगी नहीं बनाते तब तक मैं, मेरे पुत्र, मेरे नाती-पोते मेरा वंश ही आप के विरुद्ध विद्रोह करता रहेगा।'

"उसी क्षण उस देवताओं के पिता और सम्राट ने अपनी तलवार को हाथ में ले, सूरज को एक हाथ में ढाल के तौर पर पकड़, अधिकार के साथ गर्जन करके, जिससे सारा विश्व हिल उठा, आज्ञा दी—'तुम विद्रोही हो। इस सबसे श्रेष्ठ और सबसे ऊपर के विश्व से तुम नीचे चले जाओ, उधर जहाँ अँधेरे और दुःख का निवास है। जबतक सूरज जलकर खाक नहीं होगा, जबतक तारे चूरचूर होकर नष्ट नहीं होंगे तबतक तुम देश निकाले रहोगे। बहतार ने प्रण कर लिया कि जो कोई देवता के सम्राट, मेरे पिता का अनुयायी होगा उसे पापी बनाकर उस अपमान का बदला लेलूँगा।

"उस टोली के नायक ने यह सब सुना और उसका चेहरा पीला पड़ गया। उसने पूछा—'बहतार उस शत्रु देवता का नाम है?' और लाविस ने बताया-'जब वह आसमान की दुनिया में था तब उसका वह नाम था। जब वह नीचे की दुनिया में उतर आया तब उसने कई नाम रखे—बाझला बोल, साटनेल, झामोल, अरिमान, मार इत्यादि और आखिर 'मैं शैतान' जो सबसे परिचित है।

"उस दल-प्रमुख ने शैतान शब्द को फिर दुहराया। उसकी आवाज में कँप निर्वाण हुआ और उसने पूछा—'शैतान को आदमी से भी ईश्वर जैसी दुश्मनी क्यों?' लाविस ने झट कह दिया—क्योंकि आदमी शैतान के ही भाई बहन की औलाद है। तब प्रमुख ने कहा—तब तो शैतान आदमी का चाचा लगता है।' कुछ अप्रतिभ होते हुए लाविस ने जबाब दिया। लेकिन शैतान तो उसका कट्टर शत्रु बन गया है जो उसके दिन दुख से भर देता है और रात भयंकर सपनों से। शैतान एक ऐसी शक्ति है जो बरसात को रोक देता है और अकाल के राज्य का निर्माण करता है तथा आदमी और उनके पालतू जानवरों में बीमारियाँ फैला देता है। वह दुष्ट प्रवृत्ति का देवता है और हमारे दुःख में ही उसे सुख है, हमारे सुख से उसे दुख होता है। अपने ज्ञान के जरिए हमें अच्छी तरह पहचानना चाहिए और उसके सम्पर्क में आने से होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली बीमारियों से बचना चाहिए, उसकी प्रवृत्ति को समझना चाहिए जिससे उसके पैदा किए दुखों से बाल बाल बच जायँ।'

'अब मुझे मालूम हुआ कि हमारे दुखों का रहस्य क्या है। अपने आदमियों को मैं इन बातों से परिचित कराऊँगा।' और दल प्रमुख अपने मन में सोचता रहा— लाविस को बड़े सम्मान से रखा जायगा। जिसने हमको ऐसी गूढ़ शक्तियों का परिचय दिया और दुख के मार्ग से बचने का तरीका बता दिया।'

"लाविस ने अपने दल प्रमुख से बिदाई ली और अपने रहने की जगह पहुंच गया। उसे अपनी होशियारी से बहुत ही खुशी थी और अपने वैभवशाली भविष्य की कल्पना में वह मस्त था। अब यह पहली ही रात थी जब कि लाविस को छोड़कर दल प्रमुख और उसके बाकी सभी आदमी भयंकर सपनों से भयानक भूत आदि की कल्पना के प्रत्यक्ष रूपों से अपनी सुख की नींद को बिगाड़ चुके थे।"

शैतान कुछ समय के लिए रुक गया और फादर समन चुपचाप उसकी ओर देखते रहे। उनका चेहरा पीला पड़ गया। शैतान ने फिर कहना शुरू किया—

"इस तरह दुनिया में देव-तत्त्व आ गया है और मेरी वजह से प्रत्यक्ष हुआ। लाविस ने पहले पहल मेरी शत्रुता का व्यापार करना शुरू किया। उसकी मृत्यु के बाद उसके लड़के, नाती पोते इत्यादि ने इससे खूब कमाया और वह एक स्थायी और आत्मिक व्यवसाय बन गया। उसके चलाने वाले वे थे जिनका मन ज्ञान से युक्त था, जिनकी आत्मा पवित्र थी और जिनका हृदय नेक था तथा जिनकी कल्पनाशक्ति तीव्र थी।

"बाबिलोन शहर में लोग धर्मगुरु के सामने सात बार सिर झुकाते थे जो मुझ से अपने मंत्रों से लड़ता था। 'विनेब्हा' में वे ही जो आध्यात्मिक बातों को जानकर अपने को बताते थे, ईश्वर और मानव के बीच सुनहली कड़ी माने जाते थे। तिब्बत में मुझ से जो लड़ते थे वे सूरज और चन्द्रमा के पुत्र कहलाते थे। बिब्लस, एफिसस, एन्टिओक में मेरे शत्रुओं को अपने बच्चे की बलि देते थे। जेरूशलेम और रोम में वे खुद अपने प्राण उनके हवाले करते थे जो मुझ से शत्रुता कर मेरा द्वेष करते थे।

"हरएक शहर में मेरे नाम पर सारे धार्मिक शिक्षण की नींव रखी थी, चाहे वह कला हो, दर्शन हो या धर्म, सब मेरे कारण। मैं न होता तो मन्दिर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थनागृह न बनते; कोई मीनार, कोई गुम्बद न बनता। आदमी के संकल्प की दृढ़ता के लिए मैं साहस दिलाने वाला हूँ। मैं आदमी के मौलिक विचारों को जन्म देता हूँ। आदमी को क्रियाशील बनाने में मेरा हाथ काम करता है। अपने को जीवित रखने के लिए आदमी मुझ से लड़ता है अगर मुझ से उसकी लड़ाई बन्द हो जायगी तो वह एकदम निष्क्रिय बन जायगा। उसका मन, उसका हृदय, उसकी आत्मा सब ठंडे पड़ जायँगे।

"मैं वह तूफ़ान, वह आँधी हूँ जिससे आदमियों का मन, स्त्रियों का हृदय थर्रा उठता है। मेरे डर से मेरा नाश करने के लिए वे प्रार्थना मंदिरों में चल पड़ेंगी, मुझे खुश करने के लिए दुर्गुणी के निवास-स्थानों पर भी जाकर अपनी बलि चढ़ायँगे।

"मैंने डर की नींव पर मठों का निर्माण कराया है। ऐशो-आराम के बल पर शराब खाने और चिड़िया घरों को भी प्रत्यक्ष किया है। मैं अगर जीवित न रहूँ तो भय और आराम दोनों दुनिया से विदा हो जायँगे और उनके न रहने से इच्छाओं और आशाओं का भी आदमी के हृदय से उच्चाटन हो जायगा। सारा जीवन सूखा और नीरस बन जायगा, टूटे तारों का वीणा हो जायगा। मैं ही अमर शैतान हूँ।

"मैं असत्य, धोकेबाज़ी का निर्माता हूँ। इन्हें दुनिया से नष्ट कर डालिए मानव जाति एक उजाड़ खेत जैसी बन जायगी, जिसमें केवल सद्गुणों के काँटे ही काँटे फैल जायँगे।

"मैं ही पाप का मातापिता सब हूँ। और पाप नष्ट हो जाय तब पाप से लड़ने वाले भी मर जायँगे, उनके घर, उनका समाज कहाँ रह जायगा।

"मैं सारी दुष्ट आत्माओं की आत्मा हूँ। मुझको नष्ट करके मानव की गति में बाधा डालना चाहते हो। कारण को नष्ट करके फल को तुम पाओगे? मैं उसका कारण हूँ। मुझे इस बीहड़ स्थान पर मरने दोगे? तुम्हारे और मेरे बीच जो नाता है उसे तुम नष्ट कर डालोगे? जवाब दो, धर्म के रक्षक, जवाब दो?"

फिर शैतान ने अपने हाथ को फैला दिया, सिर आगे को झुकाते हुए गहरी साँस लेली। उसका चेहरा फीका पड़ गया, नील नदी के किनारे मिश्र की मूर्तियों में से एक मूर्ति के समान वह दीखने लगा! जो काल के प्रभाव से दीन हीन हुई है। तब फादर समन की ओर एक टक देखते हुए उसने कहा—"मैं थक गया हूँ। तुमसे परिचित बातों को फिर कहने में मैंने यों ही अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति खर्च कर दी है। अब तुम्हें जो करना हो करो ········मुझे अपने घर ले जा सकते हो, मेरी शुश्रूषा कर सकते हो या यहीं मरने को छोड़ भी सकते हो।"

फादर समन ने हाथ पर हाथ रखकर क्षमा की आवाज़ में कहा—"एक घंटे पहले जो मैं नहीं जानता था अब जान गया। अपने अज्ञान पर मुझे क्षमा करो। तुम्हारे अस्तित्व से ही लालच पैदा होता है और उसी कसौटी पर ईश्वर मानवता की परख करता है। अगर तुम मर जाओगे तो लोभ का आकर्षण ही मर जायगा और उससे वह दैवी शक्ति जो आदमी का उत्थान कर देती है खुद काल कवलित हो जायगी। तुमको जीवित रहना चाहिए क्योंकि तभी दुर्गुणों और पापों से आदमी की मुक्ति हो सकेगी। मानवता की प्रेमवेदी पर मैं तुम्हारे प्रति अपने द्वेषभाव को समर्पित करता हूँ।"

शैतान जोर से हँस पड़ा और बोला—"कितने बुद्धिमान तुम हो और धार्मिक बातों का तुम्हारा ज्ञान कितना अथाह है। अपने ज्ञान के बल पर तुमने मेरे अस्तित्व का कारण खोज डाला, जो मेरे ध्यान में कभी नहीं आसका था और अब हम एक दूसरे की आवश्यकता समझने लगे हैं।"

"जरा नजदीक आजावो, मेरे भाई। अँधेरा बढ़ रहा है। और मेरा आधा खून इस धरती पर बह चुका है और हड्डियों के सिवाय अब कुछ रहा नहीं। तुम अगर मेरी मदद जल्दी नहीं करोगे तो वह भी मृत्यु का शिकार बन जायगा।"

फादर समन ने अपने कुरते की बाहों को ऊपर समेट लिया, शैतान के पास आगए और शैतान को अपनी पीठ पर उठा कर अपने घर की ओर ले गए।

× × × ×

उन पहाड़ी गुफाओं से, सुनसान वातावरण और भयानक अँधेरे में फादर समन अपनी पीठ पर भारी बोझ ढोते हुए अपने देहात की ओर चले गए। उनके कुरते के गले का भाग और उनकी सफेद दाढ़ी, ऊपर से बहते खून से तर हो गई थी। लेकिन वे तेजी से आगे बढ़ रहे थे और शैतान की आयु के लिए प्रार्थना कर रहे थे।

अनुवादक—प्रो० महादेव सीताराम करमरकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरिग्रहवाद—
एक तुलनात्मक अध्ययन

—श्री रघुवीर शरण दिवाकर

[४]

कहा जा सकता है कि वर्तमान भारतीय तथा अन्य साम्यवादियों की हिंसात्मक कार्य-पद्धति अथवा उनके आतंकवादी कार्यक्रम को, तथा उनकी राष्ट्रद्रोही गति-विधि व युद्ध-वृत्ति को देखते हुए यह मान्य करना वस्तु-स्थिति के अनुकूल न होगा कि साम्यवाद एक अहिंसात्मक सिद्धान्त या विधान है। सचमुच भावना और कृति का, आदर्श और व्यवहार का, यह घोर अंतर्विरोध हमें द्विविधा में डालने के लिए अपर्याप्त भी नहीं है। पर यदि हम ऐतिहासिक अध्ययन की पद्धति से रूस में हुई साम्यवादी क्रान्ति पर दृष्टि डाले तो हम इस निर्णय पर आए बिना न रहेंगे कि **साम्यवादियों की हिंसात्मक नीति व कार्य-पद्धति का मूल स्रोत साम्यवाद के सिद्धान्त या आदर्श में नहीं, उन विशेष व असाधारण परिस्थितियों में है जिनमें साम्यवादी क्रान्ति का सूत्रपात हुआ।** आज, एक दृष्टि डाल ही लें।

ऐकान्तिक रूप से साधन के किसी विशेष रूप का आग्रह नहीं किया जा सकता, न किया ही जाना चाहिए। पर यह एक खरी सच्चाई है कि **साध्य के अनुकूल साधन न हो तो साध्य की साधना पूर्णतया निर्दोष एवं त्रुटिहीन नहीं हो पाती।** विशेष विषम परिस्थिति की अपेक्षा से अपवाद उपादेय होकर भी नियमरूप से साध्य-साधन की एकरूपता ही उचित व श्रेष्ठ है, यही आदर्श भी है। साधन का प्रयोग जो भाव या विचार मन में लाता है, अनिवार्यतः उसकी प्रतिक्रिया साध्य पर होती है। जहाँ परिस्थितियाँ साधनों को सुनिश्चित करती हैं वहाँ साधन भी परिस्थितियों का निर्माण करते हैं और **जिन परिस्थितियों में कोई व्यवस्था जन्म लेती है, उनका उस व्यवस्था के व्यावहारिक स्वरूप पर, बल्कि उसकी विचार-धारा पर और संभवतः एक सीमा तक उसके मूल स्वरूप पर भी प्रभाव पड़ता ही है।**

यही नियम काम कर रहा है साम्यवाद के जन्म और विकास को लेकर। जिस समय रूस में ज़ारशाही का आतंक और दमन हद तक पहुँच गया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा सारे अधिकार निरंकुश आततायी ज़ार और उसके गिने चुने अधिकारियों व सामन्तों के हाथों में थे, जनता की इच्छा अनिच्छा का कोई मूल्य न था, उसकी आवाज़ नक्क़ारखाने में तूती की आवाज़ थी; यही नहीं, वह बुरी तरह त्रस्त पीड़ित व अन्याय-ग्रस्त थी, और उसकी ज़ुबान पर ताला लगा होने से वह उफ़ भी न कर सकती थी, तब साम्यवाद ने ज़ारशाही के विरुद्ध जनता के असन्तोष व विद्रोहभाव को व्यक्त किया, उसने चारों ओर फैली हिंसा और अनीति को, ज़ुल्मो-सितम को, चुनौती दी, और सशस्त्र क्रान्ति का झंडा ऊँचा किया। परिणामतः ख़ून की नदियाँ बहीं और अन्ततः ज़ारशाही का तख़्ता उलटा, साम्यवाद को जीवन मिला। इस परिस्थिति का इतना गहरा प्रभाव साम्यवाद के विचार-प्रवाह पर तथा साम्यवादियों पर पड़ा, जैसा कि पड़ना स्वाभाविक भी था, कि आतंकवाद, लूटमार, ख़ूँरेज़ी या सशस्त्र क्रान्ति साम्यवाद का एक अनिवार्य अंग मानी जाने लगी; यद्यपि वस्तुस्थिति यह है कि **साम्यवाद का हिंसात्मक साधनों से अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है।** स्वयं कार्लमार्क्स ने ही १८७० ई० फर्स्ट इन्टरनेशनल (First international) में भाषण देते हुए कहा था—"हम यह दावा नहीं करते कि इस ध्येय तक पहुँचने का मार्ग सब जगह एक जैसा ही है। हम जानते हैं कि भिन्न-भिन्न देशों की संस्थाओं और रीति-रिवाजों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि अमेरिका, इंगलैण्ड और यदि मैं आप की व्यवस्था को भली भाँति समझ रहा हूँ तो हालैण्ड भी, ऐसे राष्ट्र हैं जहाँ मज़दूर शांतिपूर्ण उपायों से अपने उद्देश्य की सिद्धि कर सकते हैं।" इस तरह मार्क्स के मतानुसार भी हिंसात्मक नीति या कार्य-पद्धति अनिवार्य रूप से साम्यवादी विचार-धारा का अंग नहीं है। ठीक भी है। बाहर से नहीं, भीतर से, बल्कि जड़-मूल से, हिंसा के सभी कारणों व मूल स्रोतों को निःशेष करने का दावा करने वाला हिंसात्मक नीति को अपनाने का एकान्तिक रूप से आग्रह करे, यह जँचने वाली बात नहीं है, यहाँ तक कि यदि कोई ऐसा हठ करता ही है तो यही मानना होगा कि वह मूढ़तावश अपनी विचार धारा की जड़ों पर ही आघात कर रहा है या उसे अपने आदर्श में सजीव आस्था ही नहीं है।

अपरिग्रहवाद : साम्यवाद

अपरिग्रहवाद और साम्यवाद की सैद्धान्तिक विचारधाराओं को जान लेने के उपरान्त दोनों का तुलनात्मक निरीक्षण करें तो हम देखेंगे कि आश्चर्यजनक रूप से ये दोनों वाद एक दूसरे के निकट ही नहीं हैं बल्कि बहुत अंशों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वे एक दूसरे के पूरक भी हैं। तभी हम यह भली भाँति समझ सकेंगे कि दोनों में मौलिक अंतर या भेद 'नहीं' के बराबर है, जो भेद है वह ऊपरी है, गौण है।

अपरिग्रहवाद के मूल में यह भाव है कि व्यक्ति किसी बाहरी पदार्थ में निजत्व या स्वामित्व का, एवं तज्जन्य मोहममत्व का भाव न रखे, और इधर साम्यवाद वैयक्तिक सम्पत्ति का अंत करता है और ऐसी स्थिति लाता है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी पदार्थ को 'अपना ही' न कह सके अथवा उसमें उस की विशेष आसक्ति या मूर्छा आदि न हो। समाज की सारी सम्पत्ति व सम्पत्ति-निर्माण या उत्पादन के समस्त स्रोत व साधन सामूहिक रूप से समाज द्वारा ही अधिकृत हों, या यूँ कहें कि समस्त सम्पत्ति का स्वामी कोई विशेष व्यक्ति, वर्ग या कोई भी संकीर्ण जन-समुदाय न होकर सारा ही समाज हो तब सहज ही व्यक्ति को पदार्थों के प्रति समदृष्टि होगी, वह उनका उपयोग या उपभोग करते हुए भी बहुत कुछ निर्लिप्त या अनासक्त रह सकेगा, संचय या अति-संग्रह की लालसा व वासना उसके मन में हिलोरें न लेंगी, मोह-ममत्व, तृष्णा, प्रतिस्पर्धा, धन-मद, अहंकार, पापाजीविका या अनीतिपूर्ण धनोपार्जन आदि परिग्रह-जन्य कुत्सित वृत्तियों-प्रवृत्तियों के लिए अनुकूल वातावरण न रह जायगा। व्यक्ति के अतिलाभ द्वारा सामूहिक रूप से समाज की हानि होने की परिस्थिति वहाँ न होने से लोभ पर लगाम लगेगी, शोषण अव्यवहार्य होगा, पारस्परिक प्रतियोगिता व प्रतिद्वन्द्विता न होने से शक्ति व समय का दुरुपयोग रुकेगा और मिलजुल कर निर्माणकारी कार्यों के सम्पादन की प्रेरणा बलवती होगी, तथा स्वार्थों की टक्कर होने की कोई संभावना न होने से युद्धों की बिभीषिका का अंत होगा।

अपरिग्रहवाद व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक पदार्थ या धन-सम्पत्ति रखने का निषेध करता है, और साम्दवाद भी यही चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कार्य करे और अपनी आवश्यकता के अनुसार उपयोग या भोगोपभोग की सामग्री पाए। इस तरह योग्यतानुसार देने और आवश्यकतानुसार लेने की यह साम्यवादी नीति ऐसी व्यवस्था को जन्म देना चाहती है जिसमें व्यक्ति आवश्यकता से अधिक पदार्थों का संग्रह नहीं करेगा, नहीं कर सकेगा। यहाँ उचित उपयोग या योग के लिए ही स्थान होगा और स्पष्टतः इस औचित्य में विकार नहीं है, मोह नहीं है, ममत्व या आसक्ति नहीं है। यहाँ पदार्थ है, पर परिग्रह नहीं है।

[-क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की उलझन—
क्या करूँ ?

—इन्द्र एम० ए०

एक बार ईसामसीह नगर की गलियों में घूम रहे थे। अचानक कोलाहल सुनाई दिया। खिड़की से एक शराबी की आवाज़ आई। वह अपने घर वालों से झगड़ रहा था और अनर्गल प्रलाप कर रहा था। ईसामसीह ने उसे शान्त करते हुए पूछा—"भाई ! तुम मदिरापान में अपना जीवन क्यों नष्ट कर रहे हो ?"

शराबी ने उत्तर दिया—"भगवन् ! मैं एक कोढ़ी था, आपने स्वस्थ कर दिया। अब और क्या करूँ ?"

कुछ और आगे बढ़े तो देखा कि एक युवक वेश्या के पीछे पागल बना हुआ है।

ईसामसीह ने पूछा—"तुम अपनी आत्मा को क्यों पतित बना रहे हो ?"

उसने उत्तर दिया—"भगवन् ? मैं अँधा था। आपने आँखें दे दीं। अब वही सूझता है।"

नगर के मध्य में पहुँचे तो एक बूढ़ा ज़मीन पर पड़ा रो रहा था। ईसामसीह ने कारण पूछा तो उसने कहा—"भगवन् ! मैं मर गया था, आपने जीवित कर दिया। अब समझ में नहीं आता क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ?"

मनुष्य को वैज्ञानिक शक्ति प्राप्त हुई। उसने जल, स्थल और नभ पर विजय प्राप्त कर ली। प्रकृति को दासी बना लिया। समुद्रों और पर्वतों के व्यवधान को समाप्त कर दिया। विस्तीर्ण ब्रह्माण्ड को छोटा सा उद्यान बना डाला। आकाश में उड़ना सीखा, समुद्र पर तैरना सीखा, भूमि पर वायुवेग से दौड़ना सीखा। वर्षों के काम को दिनों में पूरा करने की सामर्थ्य प्राप्त की। असाध्य रोगों की औषध निकाली, अकाल मृत्यु पर प्रतिबन्ध लगा दिया। हवा को सन्देशवाहक बनाया, विद्युत् को आज्ञाकारी सेवक। किन्तु अब ! समझ में नहीं आया अब क्या करे ! उसने यह नहीं सीखा कि इस अपार शक्ति का क्या उपयोग करे। भौतिक विजय ने उसमें अस्मिता भर दी। वह मानने लगा मैं सब से बड़ा हूँ। मुझे दूसरों से अधिक सुखी बनने का अधिकार है। मैं दूसरों के सुख को छीन कर अपने सुख की वृद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूँगा। किन्तु 'दूसरा' और 'अपना' का क्या अर्थ है ? उसने अपने इर्द गिर्द के कुछ लोगों को एकत्रित किया और उन्हें 'अपना' कह दिया। शेष सभी को 'दूसरा'। उसने यह निश्चय कर लिया कि दूसरे को लूट कर अपने का घर भरना चाहिए। सैनिक संगठन किया। तोपें बनाईं। बम वर्षक वायुयान तैयार किए। टैंकों और मशीनगनों का निर्माण किया। विषैली गैसें तैयार कीं। परमाणु और उदजन बम बनाए। सोचने लगा, अब मैं विश्व पर विजय प्राप्त कर सकता हूँ। मेरे सामने कोई खड़ा न रह सकेगा।

अधिकार पद से अभिभूत होकर वह स्वप्न देखने लगा। एक विशाल नगर है। धन धान्य से परिपूर्ण। सुख और समृद्धि से भरा हुआ। छोटे छोटे बालक, हँसते खेलते, किलकते हुए पाठशाला से आ रहे हैं। माताएं उनकी प्रतीक्षा कर रही हैं। बल, पौरुष तथा सहृदयता की मूर्ति नवयुवक कार्यक्षेत्र से लौट रहे हैं, गृहदेवियाँ मृदु मुस्कान के साथ उनका स्वागत कर रही हैं। वृद्धा माताएँ सुख से बैठी हुईं सभी पर आशीर्वादों की वर्षा कर रही हैं। वृद्ध बिना किसी विघ्न के आत्मा और परलोक की चिन्ता में लीन हैं। इस दुनियाँ की चिन्ता से उन्हें छुट्टी मिल गई है। वैज्ञानिक उस नगर की सुखी जनता को देख कर ईर्ष्या करने लगा।

सहसा भयङ्कर शब्द हुआ। बिजली के समान एक चमक दिखाई दी और चारों ओर धुआँ फैल गया। अरे यह क्या! सारा नगर आग की लपटों में समा गया। मानव शरीर के टुकड़ों से आकाश व्याप्त हो गया। खोपड़ियाँ, कटे हुए हाथ, पाँव, मांस के लोथड़े। बड़ा भयानक दृश्य था वह।

वैज्ञानिक एक बार मुस्कराया। जिस सुख को देख कर वह ईर्ष्या से जल उठा था उसका अन्त हो गया।

किन्तु यह क्या! एक खोपड़ी उसी के समीप आकर गिरी। "अरे! यह तो मेरी प्रियतमा का सिर है जिसे गोद में रख कर मैंने कितनी सुखद रातें बिताई हैं।" वैज्ञानिक चौंक पड़ा। "और यह हाथ, यह तो मेरे उस भोले शिशु का है। कितना प्यारा था वह!" वैज्ञानिक व्याकुल हो उठा। "और यह आग कहाँ से उठ रही है, यह तो मेरा ही घर है!"

भयानक स्वप्न के कारण वैज्ञानिक की नींद टूट गई। नशा उतर गया। उसे अपनी प्रयोगशाला एक क्रूर नरभक्षी पिशाच सी दिखाई देने लगी।

वह सोचने लगा, "अब इसका क्या करूँ!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परोपकार का फल–

–श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री

हज़ारों वर्ष पहले की बात है। किसी देश में एक राजा था। उसका साम्राज्य दूर दूर के देशों तक फैला हुआ था। उसके पास किसी प्रकार के धन की कमी न थी। सैकड़ों राजा उसके सामने अपना मस्तक झुकाते थे और ते कर देते थे। संसार की कोई ऐसी सुन्दर और कीमती चीज़ न थी जो महलों में न पहुँची हों। उसके खज़ाने की संपत्ति का कोई पारावार न था। कहते हैं यदि वह चाहता तो हर रोज़ हज़ारों दीन-अनाथों को मुँह मागा दान दे सकता था और फिर भी उसका कोष सात पीढ़ी तक समाप्त न होता। संसार के प्रायः सभी देशों की सुन्दर स्त्रियाँ उसके अन्तःपुर में निवास करती थीं। उसके कर्मचारियों की संख्या लाखों तक पहुँचती थी। उसका जीवन तरह तरह के आनन्द-प्रमोद में व्यतीत होता था। उसके शासन की धाक सर्वत्र जमी हुई थी और सब लोग उसकी वीरता का लोहा मानते थे।

यह सब होने पर भी वह बड़ा निर्दयी था। उसने कभी कोई भलाई का काम नहीं किया। कोई ग़रीब और भिखारी उस से अन्न का एक दाना भी माँगता तो वह अपने आदमियों से उसकी बोटी बोटी नुचवा डालता। छोटी छोटी भूल होने पर भी वह सख़्त दण्ड देता। अपराधियों को इंच इंच कर तड़पते हुए मरता देख उसका हृदय आनन्द से नाच उठता। उसकी इच्छा और आज्ञा के प्रतिकूल लेशमात्र भी काम करने का अर्थ था—यमराज को स्वयं निमंत्रण देना। किसी भी व्यक्ति में यह शक्ति न थी कि वह उसका विरोध कर सके या उसकी आज्ञा का उल्लंघन कर सके। क्षमा, प्रेम, सहानुभूति, दया, दीन-दुखियों की सहायता आदि सद्‌गुण जो हमारे सामाजिक जीवन के आधार स्तम्भ हैं, उससे कोसों दूर थे। उसके शरीर में मानव-हृदय का वास था, यह बात संदिग्ध है।

एक दिन वह अपने घोड़े पर सवार हो कर कहीं जा रहा था। रास्ते में उसने देखा कि एक जगह एक बैल बँधा हुआ था। थोड़ी दूर पर घास की एक गठरी पड़ी थी। बैल ने काफ़ी हाथपाँव मारे मगर गठरी तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचने में सफल न हो सका। थकावट के कारण उसका शरीर चूर चूर हो रहा था। यह दृश्य देख कर न मालूम राजा के मन में क्या बात आई कि वह सहसा घोड़े से उतरा। उसने अपने पाँव से घास की गठरी को थोड़ा सरका दिया जिससे बैल का मुँह वहाँ तक आसानी से पहुँच सके। फिर राजा घोड़े पर आरूढ़ हो आगे बढ़ गया।

कुछ समय बाद जब राजा की मृत्यु हुई तो वह नरक में गया। वहाँ उसे अनेक प्रकार की असह्य यातनाएँ सहनी पड़ीं। किन्तु उसके पाँव का वह भाग जो घास की गठरी का स्पर्श कर चुका था, बिलकुल स्वस्थ रहा—वहाँ किसी प्रकार की कोई वेदना न हुई। परोपकार के छोटे से काम का फल भी बहुत मीठा होता है।

(एक पहलवी कथा के आधार पर)

मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि

[पृष्ट १४ से आगे]

६ मिथ्यादृष्टि—अपनी प्रशंसा तथा दूसरों की निन्दा से प्रसन्न होता है।
सम्यग्दृष्टि—अपनी निन्दा तथा दूसरों की प्रशंसा से प्रसन्न होता है।

७ मिथ्यादृष्टि—सिखाता अधिक है, सीखता कम है।
सम्यग्दृष्टि—सीखता अधिक है, सिखाता कम है।

८ मिथ्यादृष्टि—दूसरों के तिरस्कार से प्रसन्न होता है।
सम्यग्दृष्टि—दूसरों के सम्मान से प्रसन्न होता है।

९ मिथ्यादृष्टि—जागता हुआ भी सोया है।
सम्यग्दृष्टि—सोया भी जाग रहा है।

१० मिथ्यादृष्टि—जिन्दा भी मरा हुआ है।
सम्यग्दृष्टि—मरने पर भी जिन्दा है।

—इन्द्र

एक ही बात

एक राजकुमार ने सुनार को अँगूठी बनाने के लिए दी और कहा—इसपर ऐसी चीज़ लिख दो जो विपत्ति में सहारा हो और सम्पत्ति में नियन्त्रण हो। सुनार ने लिख दिया—'सर्वं क्षणिकम्' अर्थात् सब क्षणिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ८ से आगे)

करना। बिहार सरकार नालन्दा और दरभंगा के समान वैशाली में एक जैन इंस्टिट्यूट भी खोलना चाहती है किन्तु प्रारम्भिक खर्च के लिए कुछ रुपया चाहती है। यदि जैन समाज दो ढाई लाख रुपए की व्यवस्था कर दे तो शेष सारा भार सरकार अपने ऊपर लेने को तैयार है। यह उपाय प्रशस्त होने के साथ साथ प्रथम उपाय जितना कठिन नहीं है। इतने बड़े महत्व पूर्ण कार्य के लिए ढाई लाख ज्यादा नहीं है। यदि और कहीं से न हो सके तो तीनों सम्प्रदायों को मिलकर इसे पूरा कर देना चाहिए। जैन इंस्टिट्यूट का अर्थ होगा जैन दर्शन, आचार, भूगोल, स्थापत्य, मूर्तिकला आदि सभी विषयों का गम्भीर अध्ययन तथा देश विदेश में उनका प्रचार। हम समाज के कर्णधारों का ध्यान इस स्वर्णावसर की ओर खींचना चाहते हैं।

एक और उपाय है। वह है, सभी विश्वविद्यालयों में जैन दर्शन के पाठ्यक्रम का होना। इसके लिए हमने थोड़ा सा प्रयत्न किया था। सभी जगह से उत्तर आशाजनक था। यह हर्ष की बात है कि इस समय पुरातत्व के सभी विद्वानों का ध्यान जैन साहित्य की ओर जा रहा है। वे यह मानने लगे हैं कि जैन साहित्य का अध्ययन किए बिना भारतीय संस्कृति का परिचय अधूरा है। इतना ही नहीं, इतिहास तो उसके बिना खण्डित ही रह जाता है। ओरिएण्टल कान्फरेंस में विद्वानों ने जो भाषण दिए थे उसमें प्रायः सभी ने इस तथ्य का उल्लेख किया था। वे सभी विद्वान् प्रायः विश्वविद्यालयों के अधिकारी थे। यदि उन से जैन साहित्य को पाठ्य-क्रम में स्थान देने का अनुरोध किया जाय तो स्वीकृति मिलने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों की एक संगठित समिति इस कार्य को अपने हाथ में ले। इसके लिए विश्वविद्यालयों के कुलपति तथा अन्य अधिकारियों से आवश्यकता हो, तो मिला जाय और अपनी इच्छा उनके सामने व्यक्त की जाय। यह एक ऐसा कार्य है जिसमें खर्च कुछ भी नहीं है किन्तु सफलता की पूर्ण आशा है।

भारत में इस समय चालीस के लगभग विश्वविद्यालय हैं। यदि इन में जैन दर्शन की एक एक चेयर हो जाय तो चालीस विद्वानों के लिए स्थान हो जाएगा। वे जैन साहित्य की सेवा में अपना जीवन लगाएँगे, साथ ही उसके पठन पाठन के लिए दूसरों को प्रोत्साहित करेंगे।

आशा है, जैन समाज इस ओर ध्यान देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत जैन महामंडल के लोकप्रिय प्रकाशन

प्यारे राजा बेटा—(भाग १ और २) इन दोनों भागों में संसार के महापुरुषों की २६ कहानियाँ, सरल और सुबोध भाषा में, बालकों के लिए लिखी गई हैं। मूल्य प्रत्येक भाग ॥=)

जीवन जौहरी—पत्रों के रूप में स्व० जमनालालजी बजाज के सत्यनिष्ठा, व्यवहार-कुशलता, देशसेवा, अतिथि-सत्कार आदि गुणों का तात्विक और व्यावहारिक विवेचन किया गया है। पुस्तक हाथ में लेकर छोड़ने को जी नहीं चाहता। कई चित्र। पृष्ठ १७६, मूल्य १।)

गीता प्रवचन—श्रीमद्भगवद्गीता पर धुलिया जेल में आचार्य विनोबा द्वारा दिए गए मार्मिक प्रवचनों का मराठी संस्करण। बढ़िया एंटिक पेपर पृष्ठ ३००, मूल्य केवल १॥)

धर्म और संस्कृति—धर्म और संस्कृति पर म० भगवानदीन, आनन्द कौसल्यायन, जैनेंद्र कुमार, केदारनाथ, आ० विनोबा, मशरूवाला आदि के विचारपूर्ण लेखों का संकलन। पृष्ठ १४४, मूल्य १।)

समाज और जीवन—समाज और जीवन संबन्धी कई प्रश्न हमारे दिमाग में उलझे रहते हैं। इसमें ऐसी कई समस्याओं पर विचारकों के प्रभावपूर्ण लेखों का संकलन है। पृष्ठ १२५, मूल्य १)

बुद्ध और महावीर तथा दो भाषण—दोनों क्रांतिकारी धर्म प्रवर्तकों तथा अहिंसा के अवतारों का तुलनात्मक जीवन-परिचय श्री मशरूवाला ने मौलिक रूप में कराया है। पृष्ठ १४८, मूल्य १)

उज्ज्वल प्रवचन—बुद्ध, महावीर, गांधी, तिलक, विवेकानन्द, चर्खा, खादी, गृहोद्योग आदि विषयों पर जैन साध्वी उज्ज्वल कुमारी जी के राष्ट्रीय प्रवचनों का संग्रह। पृष्ठ ९६, मूल्य ॥=)

मणिभद्र (उपन्यास)—महावीर कालीन त्याग और प्रेम का संघर्ष तथा आदर्श प्रधान उपन्यास। पृष्ठ १४४, मूल्य १।)

महावीर वाणी (जैन गीता)—आउट आफ स्टाक है।

जो सन्तों ने कहा—इसमें णमोकार महामंत्र की विशेषता पर पं० बेचरदास जी का लेख है और प्रबुद्ध जैन साधक कवियों की सरस और आध्यात्मिक वाणी का संकलन है। पृष्ठ ३२, मूल्य ।)

जैन जगत (मासिक)—भारत जैन महामंडल का राष्ट्रीय चेतना और सुलझे विचारोंका असाम्प्रदायिक मासिक जो काफी लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। वार्षिक शुल्क ३)

भारत जैन महामंडल, वर्धा (सी०पी०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम ७-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

इन्द्र एम० ए०

दलसुख मालवणिया मोहन लाल मेहता

इस अंक में—

१. सदा तेरे क़दम चूमेगी सफलता ! (कविता)—महेन्द्र 'राजा' १
२. अपनी बात (संपादकीय)— ३
३. मुनियों का आदर्श त्याग—मुनि श्री आईदान जी महाराज ७
४. जैन साहित्य निर्माण की नवीन योजना—
डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ९
५. पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस—प्रो० विमलदास जैन, एम० ए० १३
६. साधु समाज से ! (गद्यकाव्य)—श्री कृष्णलाल ढल 'प्रभाकर' २४
७. अपरिग्रह वाद—श्री रघुवीर शरण दिवाकर २५
८. आत्मा की महिमा—श्री जय भगवान जी एडवोकेट ३०
९. यह मनमानी कब तक ?—श्री 'राकेश' ३१
१०. एक समस्या ? (गद्यकाव्य)—मुनि कीर्तिचन्द्र जी 'यश' ३४
११. जैन समाज और वैशाली—पं० पन्नालाल धर्मालंकार ३५
१२. सम्मेलन-संस्मरण—मुनि श्री सुशील कुमार जी शास्त्री ३९
१३. साधु समाज की प्रतिष्ठा बढ़ी—पं० कृष्णचन्द्राचार्य ६१
१४. विद्याश्रम समाचार— ६४

मई–जून का युग्मांक !

करीब ढाई साल के जीवन में यह पहला अवसर है, 'श्रमण' का मई अंक समय पर नहीं निकल सका। इससे 'श्रमण' के पाठकों को परेशानी ज़रूर हुई है, जैसा कि हमें उनके पत्रों से पता चलता है। विलम्ब के कई कारण थे। जिनमें बड़ा कारण यह भी रहा कि संपादक-व्यवस्थापकादि सादड़ी-सम्मेलन पर चले गए थे। सादड़ी से लौटने पर हमें लगा कि सम्मेलन के बारे में यदि कुछ नहीं देते, तो पाठकों के साथ यह न्याय नहीं होगा। इस लिए और भी विलम्ब हो गया। अन्त में मई-जून का अंक सम्मिलित निकालना पड़ा है। आशा है पाठक क्षमा करेंगे।

—व्यवस्थापक

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस का मुखपत्र

वर्ष ३ मई-जून १९५२ अंक ७-८

सदा तेरे क़दम चूमेंगी सफलता !

त्याग जीवन का कठिनतम सत्यव्रत है,
त्याग से मिलती सफलता अनवरत है।
त्याग से ही मनुज जीवन जागरत है,
त्याग से जीवन सभी का समाहृत है॥

त्याग का सन्देश मानव के लिए है,
त्याग का सन्देश नारी के लिए है।
त्याग का सन्देश जन-जन के लिए है,
त्याग का सन्देश युग-युग के लिए है॥

त्याग मानव हृदय की शुभ भावना है,
त्याग मानव हृदय की शुभ कामना है।
त्याग मानव हृदय की शुभ साधना है,
यह चिरन्तन सत्य की आराधना है॥

त्याग की शुभ भावना नव कल्पना है,
त्याग की शुभ कामना नव अर्चना है।
त्याग से अति दूर रोदन वेदना है,
त्याग सुन्दर हास्य नूतन चेतना है॥

त्याग का सन्देश ही जन जागरण है,
त्याग एक प्रकाशमय नूतन किरण है।
यह परिग्रह को हटाता प्रतिक्षण है,
त्याग-जीवन मोक्ष-लक्ष्मी का वरण है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िन्दगी तालाब के कुछ बुलबुले हैं,
ज़िन्दगी के पर जवानी में खुले हैं।
पर जवानी की रवानी नहीं हममें—
ज़िन्दगी बर्बाद करने को तुले हैं॥

ज़िन्दगी दरियादिली है इक मुहब्बत,
ज़िन्दगी में नाम को न कहीं मुरव्वत।
किन्तु जग में आज हैं इन्सान ऐसे,
समझते जो ज़िन्दगी को एक आफ़त॥

आदमी की तमन्नाएँ अपरिमित हैं,
आदमी की वासनाएँ अपरिमित हैं।
आदमी की कामनाएँ अपरिमित हैं,
आदमी की भावनाएँ अपरिमित हैं॥

ज़िन्दगी है क्या, नहीं क्या, कौन जाने!
कौन गाये निराशा के आज गाने!
बीतते जा रहे हैं कितने ज़माने,
सभी गाना चाहते सुख के तराने॥

किन्तु उम्मीदें नहीं सब पूर्ण होतीं,
किन्तु आशाएँ नहीं सब पूर्ण होतीं।
रातदिन इन्सान का बहता पसीना,
किन्तु सारी तमन्नाएँ चूर्ण होतीं॥

इसलिए ही 'त्याग' बतलाया किसी ने,
पर न माना पूर्णतः इसको किसी ने।
सभी ने 'हाँ हाँ' कहा था आज, पर कल
नहीं कुछ भी याद रक्खा था किसी ने॥

आज उठ इन्सान अपनी कमर कस ले,
ज़िन्दगी में जो तुझे करना समझ ले।
सदा तेरे क़दम चूमेगी सफलता,
किन्तु मन में त्याग की रख साध पहले॥

—महेन्द्र 'राजा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

सादड़ी के दो सम्मेलन

सादड़ी में अक्षय तृतीया से होने वाले स्था० साधुसम्मेलन में एक आचार्य की योजना को जो सफलता मिली है उससे एक बात का तो निश्चय हो गया कि समाज एक स्वर से जिस वस्तु के पक्ष में होता है वह होकर ही रहता है। आज से बीस वर्ष पहले अजमेर साधुसम्मेलन की तू तू मैं मैं जिनको याद थी वे सादड़ी के साधुसम्मेलन के विषय में भी सशंक थे। किन्तु अजमेर और सादड़ी का एक भेद है। वह यह कि उस वक्त श्रावक समाज ने किसी वस्तु को साधुसमाज के सामने एक स्वर से नहीं रखा था और साधुलोग अपनी बुद्धि के भरोसे नहीं किन्तु अपने संप्रदाय के श्रावकों की सलाह के अनुसार चलते थे। श्रावक समाज में ही परस्पर ऐकमत्य था नहीं और कोई एक पूर्व निश्चित ध्येय भी नहीं था। किन्तु सादड़ी में श्रावक समाज ने एक स्वर से एकाचार्य की योजना का समर्थन किया था और उसका निर्णय किसी की तात्कालिक सलाह के बिना ही साधुसमाज को करना था। फल यह हुआ कि एकाचार्य की योजना बिना किसी विवाद के सफल हो गई। इसका सारा श्रेय उन मुनिराजों को मिलना चाहिए जिन्होंने एकनिष्ठा से इस महान् योजना को मूर्त करने के लिए अपनी पूज्य पदवियों का त्याग कर के योजना को मूर्तरूप दिया। इस दृष्टि से हम उन मुनिराजों का बहुमान करते हैं और उनके सामने नतमस्तक हैं।

किन्तु एक दूसरी दृष्टि से भी इस सम्मेलन के विषय में जब हम विचार करते हैं तब निराशा होती है और लगता है कि ये साधु बीसवीं शताब्दी के नहीं किन्तु कई शताब्दी पहले के हैं। आज के बीसवीं शताब्दी के साधु-सम्मेलन में सातसौ २ मील का लम्बा पैदल विहार करके एकत्र होने वाले साधुओं के दिल में अब भी समस्या तो वही पुरानी है कि केले में जीव है या नहीं, संवत्सरी किस मास में की जाय, ठहरने के स्थान में किसकी आज्ञा ली जाय, पंचांग कौन सा माना जाय इत्यादि। इन प्रश्नों से लोक जीवन के समुद्धार का कोई सम्बन्ध नहीं। किन्तु अपने समुद्धार का भी तो सम्बन्ध इससे नहीं है। इसको देखते हुए यही कहना पड़ता है कि ये समाज के बीच तो रहते हैं किन्तु सामाजिक प्राणी नहीं रह गए हैं। जब इनका ऐसी छोटी छोटी बातों में विवाद सुन पड़ता है तब लगता है कि अभी जैन समाज की प्रतिष्ठा, जैनधर्म की समुन्नति और शासन की प्रभावना के लिए हमें एक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीढ़ी की राह देखनी पड़ेगी। मौजूदा साधुसमाज इतना दृष्टिशून्य और कर्तव्यविमूढ है इसका ख़याल हमें नहीं था।

जो कुछ हुआ सर्वानुमति से हुआ है यह एक अच्छा लक्षण है और भविष्य में किसी को निश्चित विषयों के बारे में कोई विवाद नहीं होगा यह संतोष की बात है। एकाचार्य की योजना को मूर्तरूप देकर साधु सामाज बिखर गया है किन्तु इतने मात्र से सब सिद्धि हो जायगी यह बात नहीं है। जिन-जिन भूतपूर्व आचार्यों ने अपनी पदवी पाकर त्याग किया है उनका यह कर्तव्य है कि नवीन आचार्य के कार्य को गुरुतर नहीं किन्तु सरल बनावें और अपना पूर्ण हार्दिक सहयोग और समादर समर्पित करें। ऐसा होने से जो अन्य साधु हैं वे भी नए आचार्य के प्रति आदरशील बनेंगे। साधुओं के पारस्परिक व्यवहार में जो संभोग को लेकर विवाद था उसका निराकरण हो गया किन्तु उसमें हाथी चला गया और पूँछ अटक गई ऐसा लगता है। सभी संभोग खोल कर भी साथ में भोजन व्यवहार को जो ऐच्छिक रखा गया है उसीमें कुछ साधुओं का अपने सच्चारित्रका घमंड वृद्धिगत होकर फिरसे साधु समाज को छिन्न-भिन्न न करदे यह देखना आचार्य जी का कर्तव्य है।

उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी हुए हैं और कान्फरेंस के अध्यक्ष सेठ चंपालाल जी। ये दोनों पहले से भी एक थे। दोनों उदार व्यक्ति हैं किन्तु दोनों एक ही संप्रदाय के थे अतएव उन दोनों पर बहुत बड़ी जिम्मेवारी है। पूर्वकालीन सांप्रदायिक संस्कार उन दोनों को मनमें से सर्वथा निकाल देने चाहिए। अजमेर साधुसम्मेलन की जो छिछालेदर हुई थी उसमें पूज्य गणेशीलाल जी की संप्रदाय भी एक पक्ष में थी। इन सब बातों को देखते हुए इन दोनों के समभाव के ऊपर एकाचार्य की योजनाकी सफलता का बहुत कुछ आधार है।

कान्फरेंस किसी एक खास संप्रदाय—खासकर पूज्य गणेशीलाल जी के संप्रदाय की पक्षपातिनी है; कई लोगों का यह आक्षेप बहुत काल से चला आता है किन्तु अब उस अक्षेप को झूठा करना इन दोनों महाशयों का कर्तव्य है। यदि इसमें थोड़ी सी भी शिथिलता की गई तो किया कराया सब धूल में मिल जायगा। हमें स्वयं इन दोनों महानुभावों की उदारता और समभाव में विश्वास है किन्तु अब उनको अपनी इस सचाई को सिद्ध करने का अच्छा मौका मिला है। आशा है वे इस परीक्षा में भी खरे उतरेंगे।

साधुसंमेलन में जो निर्णय हुए थे उनका अनुमोदन करने के लिए श्रावकों का भी संमेलन किया गया था। इसमें साधुओं ने जो कुछ किया उसकी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर से जो अनुमोदना करने के लिए तथा श्रावकों को एक सूत्र में बाँधने के निमित्त स्था० कोन्फरेंस के कार्यकर्ताओं ने जो परिश्रम उठाया है उसके लिए उन्हें जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। यह उन्हीं की सूझ और परिश्रम का फल है कि साधुसम्मेलन इस प्रकार एकाचार्य की योजना में सफल हुआ। किन्तु अब उन्हीं के ऊपर इससे भी अधिक बोझ इसे सफल बनाने का है। हमें तो विश्वास है कि उनकी सन्निष्ठा से इसमें भी उनको पूरी सफलता मिलेगी बशर्ते कि वे पूरे सतर्क रहें और सांप्रदायिकता के मरे हुए राक्षस को फिर अपना सिर उठाने न दें। वह धोखा देकर अनेक तरह से भ्रम में डालकर अपने सिर को उठाने की कोशिश करेगा। किन्तु इसी में उन कार्यकर्ताओं की भी परीक्षा हो जायगी।

साधुसम्मेलन के प्रस्तावों को अनुमोदन देने के अलावा श्रावक समाज ने एक बात ऐसी की है जिससे उसकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ सकती। कान्फरेंस के कई अधिवेशनों में आन्तरजातीय रोटी-बेटी व्यवहार का समर्थन हुआ है किन्तु सादड़ी अधिवेशन में उसी बात का विरोध हुआ। यह जानकर आश्चर्य और दुःख हुआ कि जो स्थानकवासी समाज क्रान्ति के पथ में हमेशा आगे रहा है उसका यह दावा कितना खोखला है सादड़ी संमेलन ने इसे सिद्ध कर दिया। हो सकता है कि कंचन बहन की ईसाई से हुई शादी की प्रतिक्रिया हो किन्तु इस प्रकार प्रगतिशील कार्यों की प्रतिक्रिया होना यह स्वस्थ समाज का लक्षण नहीं है। हमें तो आगे—सबसे आगे बढ़ना है और एक मानव समाज की रचना हमारा ध्येय है। इस ध्येय की पूर्ति ऐसी प्रतिक्रिया से नहीं, किन्तु विवेक से काम लेने से ही होती है। आशा है आगामी अधिवेशन में इस प्रस्ताव को फिर से बहुमति से स्वीकार किया जायगा।

जैनों का कोई सम्मेलन हो और पशुहत्या के विरुद्ध प्रस्ताव स्वीकार न हो यह असंभव है। फिर भी पशुहत्या की मात्रा दिनों दिन बढ़ती ही जाती है और लक्षण ऐसे ही हैं कि बढ़ती ही जायगी। इसका कारण यही है कि पशुहत्या प्रस्ताव करने से ही नहीं रुक जाती। उसको रोकने के लिए तो जैन समाज को कोई रचनात्मक प्रोग्राम भी बनाना चाहिए किन्तु इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं है। देशके सामने जो अन्न की समस्या है उसे सुलझाने के लिए जैनों ने क्या किया? वे तो अभी इसी चर्चा में पड़े हुए हैं कि खेती करना जैनधर्म के अनुकूल है या नहीं? इस प्रश्न का ही निपटारा वह जब तक नहीं कर सकता तबतक पशुहत्या रोकने के प्रश्नको भी वह कभी हल नहीं कर सकता। देश में अनाज की, फल की, दूध की कमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसे यदि जैन समाज दूर कर सकेका—जितनी मात्रा में भी कर सके तो उतनी ही मात्रा में पशुहत्या रुकती चली जायगी। किन्तु अभी अन्न की खेती करने में ही पाप-पुण्य की चर्चा हो रही है। यह चर्चा जब पूरी होगी तभी कुछ काम होगा। ऐसी स्थिति में दयाधर्म के सिर्फ प्रस्तावों को स्वीकार करने से कोई लाभ नहीं है ऐसा हमारा स्पष्ट मन्तव्य है।

स्वर्गवास !

सौराष्ट्र के लीम्बड़ी संघ के आचार्य श्री गुलाबचन्द्र जी महाराज का स्वर्गवास ता० ६–४–५२ को हुआ। जितना नाम शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी का है उतना उनके गुरु आचार्य श्री गुलाबचन्द्र जी का नहीं; किन्तु शतावधानी जी के निर्माण में अत्यधिक मात्रा में श्रेय उनके गुरु को है। गुरु हो कर भी एक शिष्य की तरह उन्होंने सभी प्रकार की सुविधाएँ अपने होनहार शिष्य को देकर अपना विद्याप्रेम व्यक्त किया था। जब कभी उनके दर्शन मैंने किए वे कुछ न कुछ लिखते या पढ़ते हुए पाए गए। बहत्तर वर्ष जितने लम्बे दीक्षाकाल में उन्होंने न जाने कितने ग्रन्थों की नक़लें अपने हाथ से कर के ग्रन्थ भंडार में रखी होंगी। शान्तमूर्ति, विनम्रता की मूर्ति इन दो शब्दों में उनके जीवन का सार दिया जा सकता है। आडम्बर उनके जीवन में मैंने नहीं देखा। स्थानकवासी समाज में संस्कृत विद्या को आदर देने वालों की पंक्ति में उनका नाम अग्रसर रहेगा। उनके स्वर्गवास से खास कर सौराष्ट्र के जैन समाज को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति निकट भविष्य में होना कठिन है।

इस अवसर पर जिस खास बात की ओर लीम्बड़ी संघ का ध्यान दिलाना है वह यह है कि सादड़ी में होने वाले साधुसम्मेलन में सौराष्ट्र और गुजरात के किसी भी संप्रदाय के प्रतिनिधि उपस्थित नहीं थे। कारण कुछ भी रहा हो उसकी चर्चा में नहीं करना चाहता। किन्तु संघ से एक निवेदन अवश्य करना चाहता हूँ कि आचार्य जी का देहावसान हो जाने से नए आचार्य का प्रश्न उपस्थित है किन्तु अपने संप्रदाय का नाम विसर्जन करके संघ को चाहिए कि वह पूज्य आचार्य आत्माराम जी के अलावा अन्य किसी को नया आचार्य न बनाएँ। ऐसा कर के लीम्बड़ी का संघ सौराष्ट्र और गुजरात के अन्य संप्रदायों को भी प्रेरणादायी होगा और स्थानकवासी संघ में जो एकाचार्य की परंपरा कायम करने का निर्णय हुआ है उसे बल मिलेगा और भविष्य में ऐक्य स्थापित होगा।

—दलसुख मालवणिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन के प्रांगण में—

मुनियों का आदर्श त्याग—

—मुनि श्री आईदान जी महाराज

जीवन जब लम्बी यात्राओं में से गुजरता है, जब वह जनसंपर्क में आता है, तब परिस्थितियाँ एवं समय की गति के प्रभाव से वह बच नहीं सकता। उसमें भी स्वार्थ एवं व्यामोह का कचरा भरना प्रारम्भ हो जाता है और कभी कभी तो वह अपने एक स्वतंत्ररूप धारण करने में ही गौरव मान बैठता है, जो आगे जाकर उसके पतन का कारण बन जाता है।

आज विश्व के प्रांगण में जैन मुनियों का त्याग अपना सानी नहीं रखता है, वह हर दृष्टि से चमकती हुई मीनार है, जो भूले भटके मानव को राह दिखाती रहती है परन्तु इसके साथ जो सम्प्रदायवाद की भावना अन्तर में घुसी हुई है, वह उनके जीवन विकास को रोके हुए है। यही कारण है कि इतना महान् त्याग होते हुए भी वे विश्व के दिलों में तो क्या, भारत के मानस में —उसमें भी जैन कहलाने वालों के अंतःस्थल में पूर्णरूपेण स्थान नहीं पा सका है। युवक वर्ग उनकी ओर उपेक्षा एवं घृणा की दृष्टि लिए हुए है, इस समस्या का मूलभूत कारण है—त्यागरूप निर्मल नीर सामूहिक रूप से प्रवाहित न होकर अलग २ सम्प्रदाय रूप पोखरों में सड़ने लगा, गन्ध मारने लगा।

हमारा यह सद्भाग्य है—सदियों की सोई हुई समाज में नव जागृति पदा हुई, चेतना की लहरें दौड़ीं और वह अपने आप के जीवन को परखने लगी। फूट एवं वैमनस्य के कटु फलों की अनुभूति होने लगी, उसके आन्तरिक जीवन में प्रेम का सागर ठाठें मारने लगा, चारों तरफ से एकता की आवाज गूँज उठी।

तीन वर्ष के सतत प्रयास से वैमनस्य, भेदभाव एवं सम्प्रदायवाद की दीवारें शिथिल पड़ती गईं, एक दूसरे के निकट आने की शुभ भावनाएं आन्तरिक जीवन में जगने लगीं। अन्त में जब अक्षय तृतीया (वैशाख शुक्ला ३ सं० २००९) को सादड़ी सम्मेलन का निमंत्रण प्राप्त हुआ, तब सबका मानस-मयूर नाच उठा, नव मिलन के उत्साह से सब सन्त सादड़ी की ओर चल पड़े। गरमी एवं शारीरिक वेदनाओं को विस्मृति के गहन अन्धकार में ढकेल कर प्रेम के पुजारी बढ़ते ही गए, संघ-ऐक्य के हितैषी, अखंडता के प्रतीक तुच्छ शारीरिक सुखों की ओर कब ध्यान देने वाले थे। यही कारण है—गरमी से उत्तप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरुधरभूमि में भी वे ४००, ५००, ६०० एवं हजार हजार मील की लम्बी पैदल यात्रा करके नियत समय पर उपस्थित हो गए।

सादड़ी का नव सम्मेलन, पुरातन आगमिक 'केशी-गौतम' के सम्मेलन का प्रत्यक्ष चित्रण कर रहा था, संतों के प्रेम मिलन को देखने के लिए सादड़ी के मैदान में पचास हजार के करीब जनता खड़ी थी, लाखों करोड़ों के अधिपति सेठ भव्य भवनों के सुखों का त्याग करके तम्बुओं के नीचे त्यागपथ का अनुसरण कर रहे थे, वह सुन्दर दृश्य उस विस्मृत अतीत की स्मृति करा रहा था—जिसने दो महान् विभूतियों को एक बनाया था और आज २२ व ३२ से एक बनने जा रहे थे।

कैसा सुहावना समय था, सब अपने अपने साम्प्रदायिक भेद-भावों का विसर्जन करके विछुड़े हुए भाइयों से सीने से सीना मिलाकर मिल रहे थे। नवीन एवं प्राचीन विचार धाराओं का सुन्दर सामंजस्य हो रहा था। जो एक दूसरे से दूर रहते आए थे, दूर रहने में अपना एवं अपने पूर्वजों का गौरव मानते थे, वे उनके हित के लिए जीवन देने को तत्पर दिखाई देते थे। मुझे वह दृश्य देखकर तो अपरिमित आनन्द हुआ कि एक साधु के गिरने की बात सुनते ही कई साधु उनकी परिचर्या के लिए सम्मेलन की कार्यवाही को भी छोड़कर चल पड़े। यह था सेवा और प्रेम का जीता-जागता चित्रण, जिसने समाज को एकता के धागे में पिरोया।

कहना नहीं होगा—हमारे महारथियों के आदर्श त्याग ने जनता की आशंकाओं को सफलता के रूप में बदल दिया। एक आचार्य के वैधानिक रूप पर जो मानस में चट्टानें खड़ी थीं, सम्मेलन के विफल होने के स्वप्न लिये जा रहे थे, और मनमें कई भावनाएँ चक्कर काट रही थीं, किन्तु जब यह प्रस्ताव सम्मेलन के प्रांगण में आया तो इतनी सुगमता एवं सहृदयता से स्वीकार कर लिया गया, जिसकी किसी को संभावना भी नहीं थी। क्यों न हो, त्याग भला क्या नहीं कर सकता है! जब वह महान् से महान् पर्वत शिखरों को भी चूर चूर कर सकता है, तो साधारण चट्टानों का तो कहना ही क्या! बस विधान तैयार हुआ। फिर क्या था, सारी समस्याएँ सुलझती गईं, नए एवं पुराने विचारों में विचार-संघर्ष हुआ, पर वह जीवन एवं प्रगति को लिए हुए था, न कि विकास एवं संगठन में रोड़ा अटकाने को। नवीन एवं पुरातन दोनों ही विचारकों ने संगठन के लिए आदर्श त्याग के पथ को अपनाया, जो भावी पीढ़ी के लिए तथा अन्य दूरस्थ साथियों के लिए पथ-प्रदर्शक का काम देता रहेगा।

[शेष पृष्ठ ६० पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनसाहित्य निर्माण की नवीन योजना—

—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल माने हुए विद्वान व विचारक हैं। उनका चिंतन-मनन बड़ा गंभीर है। नवीन जैन साहित्य निर्माण के विषय में उनके अपने कुछ सुझाव हैं जिनका इस लेख में पढ़ने से कुछ पता चल सकेगा। जैन विद्वानों व जैन समाज को इस विषय में गहराई के साथ विचार करने की बड़ी ज़रूरत है। हम चाहते हैं विचारशील व्यक्ति हमें इस बारे में अपने अपने विचार अवश्य सूचित करें। जिससे इस योजना को कार्यरूप में परिणत करने में प्रोत्साहन मिले।

—संपादक

भारतीय धार्मिक संस्कृति और साहित्य के अन्तर्गत वैदिक, बौद्ध और जैन ये तीन मुख्य धाराएँ हैं। इनमें वैदिक और बौद्ध धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य का न केवल प्रकाशन ही पहले, ठीक रूप में हो चुका है, बल्कि उन दोनों पर विद्वानों के द्वारा पर्याप्त कार्य भी संपन्न किया जा चुका है। लन्दन की पाली टेक्सट सोसायटी ने प्रो० राइस डेविडस के निर्देश, संचालन और योजना के अनुसार मूल पाली के समस्त त्रिपिटक साहित्य को उसकी बहुमूल्य टीकाओं के साथ शताधिक जिल्दों में पिछले पचास वर्षों में बड़ी सफलता के साथ प्रकाशित किया। इसका फल यह हुआ कि बौद्ध साहित्य प्राचीन भारतीय संस्कृति और दर्शन संबन्धी सामग्री का बहुत ही अच्छा भाग प्रदान करने में समर्थ हुआ। इस प्रकार से इस क्षेत्र में बौद्ध साहित्य छा सा गया है। लेकिन जैनसाहित्य को, जो उतना ही महत्त्व पूर्ण है, यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका। इस कमी को दूर करना जैनसमाज और विद्वानों का अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य है। दृढ़ संकल्प के बल से इस प्रकार के महान कार्य सिद्ध होते हैं। अतएव इस दिशा में सुनिश्चित योजना के अनुसार प्रयत्न करना उचित जान पड़ता है। इस प्रकार के कार्य के लिए अब समय भी परिपक्व है; क्योंकि कितने ही क्षेत्रों से विद्वान् इस कार्य की आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं।

थोड़े दिन हुए ला० हरजसराय जी के साथ हम लोगों का जो वार्तालाप हुआ था, उससे यहाँ की संस्था के कार्यकर्त्ताओं को नया उत्साह प्राप्त हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस संबन्ध में अमृतसर से लाला जी ने अपने पत्र में जो विचार प्रकट किये हैं, उनसे हम लोगों को और भी बल मिला है। इन योजनाओं के सम्बन्ध में उनका यह अभिमत ठीक है कि चार पाँच लाख रुपया यदि एकत्र हो तो इस योजना के कई अंग पूरे किये जा सकते हैं। हम लोगों ने (डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, श्री दलसुख मालवणिया और पं० कृष्णचन्द्राचार्य) इस योजना पर मोटेरूप से विचार विनिमय किया हैं और हमारा मत है कि यह काम इस योजना के अनुसार पूरा किया जा सकता है। खासकर मेरे साथ (डॉ० अग्रवालजी के साथ) हुई बातचीत का जो अभिप्राय उन्होंने समझा है, वह यथार्थ है, कार्य के विविध अंगों के बारे में जो लिखा है, वह भी ठीक है।

अब इस योजना के दो अंग किये जा सकते हैं एक आर्थिकपक्ष है और दूसरा है योग्य विद्वानों को जुटा कर उनसे भिन्न भिन्न कार्यों को पूरा कराना। आर्थिक पक्ष के बारे में निम्नलिखित सुझाव है।

१. Dictionary of Proper Names—यह चीज श्री मलाल शेखर कृत Dictionary of Pali Proper Names—के ढंग पर तैयार होनी चाहिए। समस्त आगम साहित्य एवं उसकी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका के आधार पर सर्व प्रकार के व्यक्ति वाची और स्थान संबन्धी नामों पर पूरा पूरा विवरण तैयार करा कर उनका परिचय लिखा जाय। इस काम को चार योग्य विद्वान नियमित रूप से चार वर्ष तक काम करेंगे, तो इसके पूरा होने की आशा है। उपयुक्त योग्य विद्वान २५०) रु० मासिक से कम पर नहीं मिल सकते। इसके अनुसार इस प्रकार के ग्रन्थ की तैयारी में लगभग पचास सहस्र (५००००) रुपये का व्यय होगा। तैयार ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए भी पचीस सहस्र (२५०००) रुपये की आवश्यकता होगी।

२. दूसरी योजना का संबन्ध जैन दर्शन और धार्मिक विचार धारा के क्रमबद्ध इतिहास लेखन से है। जिसको History of Jain Philosophy and Religious Thoughts कह सकते हैं। इस कार्य का महत्त्व भी अत्यधिक है। जिस प्रकार से श्री राधाकृष्णन ने History of Indian Philosophy तैयार की है, कुछ वैसी ही वस्तु दो जिल्दों में लगभग दो सहस्र पृष्ठों में जैन दर्शन के लिए तैयार कराना उपयुक्त होगा। इस रूप में जैन दर्शन के सामने आने पर न केवल जैन समाज के लिए वह वस्तु अत्यन्त उपयोगी होगी, बल्कि भारतीय दर्शन की जो इतिहास कथा है, उसमें भी जैन दर्शन अत्यन्त समुचित स्थान प्राप्त कर सकेगा। वस्तुतः आने वाले समय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण की व्याख्या करने के कारण यह ग्रन्थ एक विशेष स्थान की पूर्ति करेगा।

यह कार्य संस्था के भवन में नियमित रूप से विद्वानों को नियुक्त करने की अपेक्षा विद्वानों के स्वतंत्र प्रयत्न के द्वारा अधिक अच्छी तरह पूरा हो सकता है। लेकिन कार्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे विद्वानों के साथ संस्था कार्य के संबन्ध में किसी प्रकार का समझौता कर ले। जिससे कि वे विद्वान संस्था के लिए नियत समय के भीतर योजना के अनुसार इस काम को पूरा कर सकें। आर्थिक दृष्टचा संस्था विद्वानों को मासिक वेतन न देकर ग्रन्थ के लिए समुचित पुरस्कार प्रदान करे। यदि यह मान्य हो तो हम लोगों का सुझाव है कि बड़ी साइज के लगभग दो हजार पृष्ठों में यह ग्रन्थ पाँच वर्ष के भीतर पूरा किया जाय। पुरस्कार विद्वान् लेखक की अनुरूपता देखते हुए १०) रु० प्रतिपृष्ठ रखना चाहिए। इस प्रकार बीस हजार (२०,०००) रुपये ग्रन्थ लेखन में और लगभग उतना ही ग्रन्थ प्रकाशन में व्यय होगा।

३. योजना का तीसरा अंग जैन साहित्य के सांगोपांग इतिहास से संबन्ध रखता है। इस कार्य के तीन भाग हो सकते हैं। पहले में आगम साहित्य का परिचय, दूसरे में तदतिरिक्त प्राकृत-संस्कृत साहित्य के इतिहास का समावेश किया जाय, जो अत्यन्त विस्तृत है। तीसरे में अपभ्रंश और लोक-भाषाओं में विरचित जैन साहित्य का इतिहास लिया जाय। इस प्रकार लगभग एक एक सहस्र पृष्ठ की तीन जिल्दों में यह कार्य पूरा किया जा सकता है। इस कार्य को भी वैतनिक आधार पर न रख कर संस्था को पृथक् पृथक् विद्वानों के साथ प्रबन्ध करके कराना होगा। इसके लिए पाँच रुपया प्रतिपृष्ठ दक्षिणा देनी चाहिए। इस तरह पन्द्रह हजार (१५,०००) रुपये में यह ग्रन्थ तैयार होंगे। और लगभग तीस सहस्र (३०,०००) रुपया छपाई के लिए आवश्यक होगा।

४-५. चौथी और पाँचवीं योजना जैन साहित्य में उपलब्ध सांस्कृतिक सामग्री के पूर्ण संकलन और संचय से संबन्ध रखती है। इसके एक भाग में आगमिक साहित्य में संनिविष्ट सामग्री और दूसरे में तदतिरिक्त साहित्य की सामग्री का संकलन करना चाहिए। पहला कार्य तो किसी अंश में डॉ० जगदीशचन्द्र जी जैन ने अपने थीसिस में किया है। और दूसरे भाग पर श्री गुलाबचन्द्र जैन अपना निबन्ध तैयार कर रहे हैं। हमारी समझ में यह कार्य भविष्य के रिसर्च के लिए छोड़ देना ही ठीक होगा। किसी नियमित योजना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार इसकी पूर्ति उतनी सफलता के साथ नहीं की जा सकती। भिन्न-भिन्न दृष्टि कोणों से जैन सामग्री का संकलन, उसकी व्याख्या और मूल्यांकन या संबन्ध भारतीय इतिहास विषयक अनुसन्धान से संबन्ध रखता है। समयानुसार भिन्न भिन्न विद्वान् इस कार्य की पूर्ति करेंगे, ऐसी आशा है।

६. योजना का छठा भाग जैन दार्शनिक शब्दावली के कोष (Dictionary of Jain Philosophical terms) से संबन्ध रखता है। यह ग्रन्थ भी विद्वानों और साधारण जनता के लिए बड़े काम की वस्तु होगी। लगभग दो हजार पृष्ठों में इस प्रकार का कोष तैयार हो सकता है। उसके लिए लेखन और प्रकाशन दोनों के लिए लगभग तीस सहस्र (३०,०००) रुपये की आवश्यकता होगी। ऐसा सुना है कि श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार ने लक्षणावली नामक हस्तलिखित ग्रन्थ में इसी प्रकार का प्रयत्न किया है। किन्तु हम लोगों की दृष्टि से वह कहाँ तक ग्राह्य है इसकी जाँच पड़ताल करनी होगी।

इस प्रकार ला० हरजसराय जी के पत्र में निर्दिष्ट योजनाओं के लिए करीब ढाई लाख (२,५०,०००) रुपये की आवश्यकता होगी। कार्य महान है, और उसके लिए आर्थिक और बौद्धिक दोनों क्षेत्रों में पर्याप्त श्रम, व्यवस्था और दृढ़ निश्चय की आवश्यकता पड़ेगी। हमें आशा है जैन समाज इस प्रकार के शुभ कार्य का सूत्रपात शीघ्र ही करने में समर्थ होगी। और उसे सफलता तक पहुँचा सकेगी।

उत्तर आने पर इस सम्बन्ध में अन्य विद्वानों के साथ भी आवश्यकतानुसार लिखा पढ़ी की जा सकेगी।

थीसिसों के प्रकाशन के लिए भी कम से कम पचीस हजार २५०००) रुपये की आवश्यकता पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस–

श्रमण संस्कृति संबन्धी रिसर्च कार्य के लिए अपूर्व केन्द्र

–प्रो० विमलदास जैन, एम० ए०, एल० एल० बी०।

बनारस और काशी विश्वविद्यालय

विश्व के इतिहास में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ अनादिकाल से सभ्यता और संस्कृति का उदय और अस्त होता चला आ रहा है। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति का मूलस्रोत इस युग में आर्यप्रवर तीर्थंकर ऋषभ से आरम्भ होता है। तीर्थंकर ऋषभ के पहले यहाँ भोग प्रधान संस्कृति और सभ्यता थी। तीर्थंकर ऋषभ ने ही सर्वप्रथम इस देश के निवासियों को असि, मसि, कृषि, सेवा, वाणिज्य और विद्या का उपदेश देकर धर्म और कर्म मूलक संस्कृति और सभ्यता की स्थापना की। ऋषभ का समय इतिहास काल से लाखों वर्ष पहले का है। उनके अनन्तर अनेक तीर्थंकरों ने उस परंपरा को पुनः २ स्थापित कर धर्म और कर्म मूलक सभ्यता और संस्कृति की रक्षा की। अन्त में हम पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समय में आते हैं। पार्श्वनाथ का जन्म काशी देश की वाराणसी नगरी में हुआ था। वाराणसी नगरी वरुणा और असी नालों के मध्य में बसी हुई अब भी अपनी संस्कृति और सभ्यता की रक्षा में परिपूर्ण है। यद्यपि इस देश में तक्षशिला, नालन्दा, दक्षिण में काञ्ची, श्रमण बेलगोला, विक्रमशिला आदि सांस्कृतिक केन्द्र रहे हैं, फिर भी वाराणसी का स्थान सदा अपना विशेष अस्तित्व रखता रहा है। यह वाराणसी ही है जहाँ हरिश्चन्द्र ने अपना सर्वस्व त्याग कर सत्य की रक्षा की थी। भगवान् पार्श्वनाथ ने नाग, नागिन के जीवों की रक्षा कर दया के अपूर्व मार्ग का उपदेश दिया था। महात्मा बुद्ध का प्रथम उपदेश भी इसी नगरी में हुआ था। हिन्दू लोग इसको विश्वेश्वर का स्थान मानते हैं। शिक्षा की दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि यह सहस्रों वर्षों से संस्कृत के अध्ययन अध्यापन का भी केन्द्र रहा है। आचार्य समन्तभद्र ने इसी जगह अपनी विजय दुन्दुभी बजाई थी। हिन्दूधर्म के यहाँ सर्वदा प्रकाण्ड पंडित अपना अद्वितीय स्थान रखते चले आये हैं। पं० सुधाकर द्विवेदी, तात्यां शास्त्री आदि पंडितों का नाम किसने न सुना होगा। और तो क्या हिन्दी युग के वृन्दावन, जगन्नाथ, बाबू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिश्चन्द्र, प्रसाद आदि के नाम से तो प्रायः सभी लोग परिचित हैं। महामना पं० मदन मोहन मालवीय ने विश्व संस्कृति के केन्द्र 'काशी विश्वविद्यालय' की स्थापना आज से ३६ वर्ष पूर्व यहीं की थी। उस महान् आत्मा की भावनाओं का मूर्तरूप आज सबके सामने विद्यमान है। आज इस विश्वविद्यालय की १४ या १५ शिक्षा संस्थाओं में देश विदेश के मिलाकर लगभग १०००० विद्यार्थी, ५०० से अधिक अध्यापकों से शिक्षा का लाभ प्राप्त करते हैं। वर्तमान काल में आचार्य नरेन्द्र देव के वाइस चान्सलर तथा श्री वी० वी० नार्लीकर के प्रोवाइस चान्सलर बनने से तथा इसके केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में आजाने से इसका महत्व अत्यन्त बढ़ गया है। शिक्षा संस्थाओं के अतिरिक्त इस विश्वविद्यालय की विशेषता इसमें है कि यहाँ एक विशाल पुस्तकालय भी है जिसमें लाखों पुस्तकों तथा अनेक हस्तलिखित प्रतियों का संग्रह किया गया है। पुस्तकालय शोध कार्य के लिए सबसे प्रधान साधन है। इसके बिना शोध खोज का कार्य असम्भव है।

विद्याश्रम की स्थापना और कार्य दिशा

वर्तमान युग के इस विशाल सर्वाङ्गपूर्ण शिक्षाकेन्द्र की महत्ता का अनुभव करते हुए पंजाब के जैनाचार्य पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज के शुभस्मारक में उनके भक्तों ने, शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्र जी की प्रेरणा मिलने पर कुछ सम्पत्ति एकत्रित की थी। उक्त सम्पत्ति के सदुपयोग के लिए काशी में आकर ला० त्रिभुवननाथ जी, ला० हरजस राय जी और प्रो० मस्तराम जी आदि कार्यकर्ताओं ने प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल जी के परामर्शानुसार काशी विश्वविद्यालय को शिक्षा का सर्वोत्तम केन्द्र समझ कर भगवान् पार्श्वनाथ जी के जन्म कल्याणक के पवित्र स्थान में सन् १९३७ में पार्श्वनाथ विद्याश्रम की स्थापना की। यद्यपि इससे पूर्व जैनियों की ओर से यहाँ कई प्रयत्न शिक्षा की दिशा में किये गये थे। जैसे, श्वेताम्बराचार्य विजयधर्म सूरि ने सर्व प्रथम 'यशोविजय पाठशाला' की स्थापना की। उसके कुछ दिनों बाद ही आचार्य गणेश प्रसाद जी (वर्तमान समय में, क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी) पं० पन्नालाल वाकलीवाल आदि महानुभावों ने श्री स्याद्वाद महाविद्यालय की भगवान् सुपार्श्वनाथ के जन्म कल्याणक के स्थान में स्थापना की, जो आज तक सुचारु रूप से चल रहा है। किन्तु उक्त संस्थाएँ केवल पठन पाठन के उद्देश्य के लिए ही खोली गई थीं। काशी में विशेषरूप से जैन संस्कृति के अध्ययन–अध्यापन के अतिरिक्त संशोधन कार्य का कुछ सज्जनों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष महत्व अनुभव किया। तदनुसार उक्त विद्याश्रम का जन्म हुआ। पार्श्वनाथ विद्याश्रम को स्थापित हुए लगभग १५ वर्ष हो चुके हैं। जब से यह संस्था खुली है तभी से अपना शनैः २ स्थायी रूप से कार्य कर रही है। अब तक इस संस्था से कई सुयोग्य विद्वान् निकलकर जैन धर्म और समाज की सेवा कर रहे हैं। यह संस्था अपने जन्मकाल से लेकर आज तक उत्तरोत्तर प्रगतिशील रही है।

कोई भी व्यक्ति या संस्था अपनी पूर्वसंचित शक्तियों के आधार पर ही आगे बढ़ती है। यद्यपि संसार में अनेक संस्थाएँ पैदा होती हैं और अनेक समाप्त होती हैं किन्तु अमर संस्थाएँ वे ही कहलाती हैं जो इतिहास के पृष्ठों पर अपने कुछ चिह्न छोड़ जाती हैं। साहित्य निर्माण की दृष्टि से भारतवर्ष में हिन्दू, बौद्ध और जैनों का विशेष महत्त्व है। जहाँ तक जैनों का सम्बन्ध है कोई भी साहित्य से परिचय रखने वाला व्यक्ति इतना तो अवश्य जानता है कि भारतीय साहित्य के निर्माण में जैनियों का विशेष स्थान है। सर्व प्रथम जैनियों ने भारतीय भाषा अर्धमागधी में साहित्य निर्माण किया जो अंग और पूर्वों के नाम से विख्यात है। अंग साहित्य भगवान महावीर द्वारा उपदेशित तथा गणधरों द्वारा सम्पादित है। पूर्व साहित्य पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, आदि तीर्थंकरों की परंपरा से आया हुआ साहित्य है। इन दोनों स्रोतों से परिपूर्ण साहित्य द्वादशांग वाणी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस साहित्य का संकलन पाटलीपुत्र, मथुरा, वल्लभी आदि स्थानों में हुआ, किन्तु वर्तमान युग में हमारे पास वही साहित्य है जिसको देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण ने संकलित किया। आचार्य उमास्वाति ने सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में भी साहित्य रचने की परंपरा जैनों में प्रचलित की। फलस्वरूप संस्कृत भाषा में भी जैनों ने छंद, व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष, गणित, वास्तु विद्या, नीति, व्यवहार, आचार, कला, न्याय, दर्शन आदि सभी विद्याओं और विज्ञानों के क्षेत्र में अनूठे ग्रन्थ लिखे, जो आज भी भारतीयों के लिए गौरव की वस्तुएँ हैं। तामिल और कन्नड़ी भाषाओं के साहित्य भी जैनों की रचनाओं से भरे पड़े हैं। अपभ्रंश के क्षेत्र में तो जैनों का आज भी अद्वितीय स्थान है। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी की जननी होने का श्रेय अपभ्रंश भाषाओं को ही है। इस प्रकार यदि हम देखें तो प्रतीत होगा कि सुधर्मा, जम्बूस्वामी, शय्यंभव, कुन्दकुन्द, भूतबलि, पुष्पदंत, यतिवृषभ, समंतभद्र, जिनभद्र, सिद्धसेन, शिवकोटि, अकलंक, पूज्यपाद, विद्यानन्द, सिद्धसेन दिवाकर, हेमचन्द्र, लौंकाशाह, देवसूरि, यशोविजय, आशाधर आदि अनेक आचार्य हुए हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा जैन साहित्य को सर्वाङ्ग परिपूर्ण बनाया है। इस प्रकार इस्वी से पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक जैन परंपरा में मौलिक साहित्य का निर्माण होता रहा है। किन्तु उसके पश्चात यह परंपरा शिथिल सी हो गई और ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैन प्रतिभा का सूर्य अब अस्त होता चला जा रहा है। इसी भावना को लेकर नवीन सर्वाङ्ग पूर्ण वर्तमान ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के अनुकूल साहित्य के निर्माण के लिए यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि इस वैज्ञानिक युग में विशेष अनुसंधान पूर्वक साहित्य के निर्माण की जरूरत है। इसी आवश्यकता को अनुभव करते हुए पार्श्वनाथ विद्याश्रम के अभिभावकों ने इस विद्याश्रम को अनुसंधान और शोध का केन्द्र बनाने की योजना का प्रयास किया है। आज यह संस्था उक्त दिशा में कुछ प्रयत्न कर सकी है और भविष्य में करने के लिए प्रयत्नशील है। अब हम इसके भविष्य के विषय में अपनी योजना रखते हैं।

विद्याश्रम का वर्तमान कार्य व परिचय

भविष्य की विशेष योजना रखने से पहले हम पाठकों को संस्था के वर्तमानरूप से परिचित कराना चाहते हैं। वर्तमान में यह संस्था हिन्दु विश्वविद्यालय के पश्चिम भाग की दीवाल से सटे हुए स्थान पर कुछ दक्षिण की ओर अवस्थित है। स्थान छोटा सा है। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से इसका महत्व है। इसका एक छोटा सा पर बड़े महत्व का एक पुस्तकालय भी है। जिसमें लगभग ५००० के चुनी हुई पुस्तकें हैं। यह सब जानते हैं कि शोध का कार्य बिना पुस्तकों के नहीं हो सकता। बौद्धिक प्रवृत्ति के लिए पुस्तकालय उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के लिए भोजन। इस पुस्तकालय में जैन साहित्य का विशिष्ट संग्रह तो है ही, साथ ही अन्य साहित्य भी प्रचुर मात्रा में है। पुस्तकालय का नाम 'शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय' है। पुस्तकालय में कुछ पुस्तकें ऐसी भी हैं जो अन्य स्थानों में प्राप्त नहीं हो सकतीं। पुस्तकालय में जैनागम, पुराण, इतिहास, साहित्य, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, जैनदर्शन, पाश्चात्य दर्शन, अन्य भारतीय दर्शन, जैनधर्म, मूर्तिकला, आयुर्वेद, भाषाविज्ञान, जीवन-वृत्तान्त, भूगोल इत्यादि विषयों पर मुख्य मुख्य प्राय: सभी पुस्तकें हैं। जिनका स्थानीय स्कालर तथा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लोग उपयोग करते हैं। पुस्तकों का वर्गीकरण आधुनिक पद्धति के अनुसार है। इस पुस्तकालय का, कोई भी शिक्षाप्रेमी व्यक्ति संस्था के नियमानुसार निःशुल्क उपयोग कर सकता है। डॉ० नथमल टाटिया ने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीसिस 'स्टडीज इन जैन फिलॉसॉफी' यहीं बैठकर लिखी। प्रो० दलसुख मालवणिया ने न्यायावतार, गणधरवाद, तत्त्वार्थसूत्र आदि महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन इसी पुस्तकालय की सहायता से किया। प्रो० विमलदास, श्री इन्द्रचन्द्र, पं० महेन्द्रकुमार, श्री गुलाबचन्द्र चौधरी आदि स्कालर अपनी थीसिसें यहीं पर अध्ययन कर लिख रहे हैं। इनके अतिरिक्त मोहनलाल मेहता, अमरचन्द जी तथा अन्य विश्वविद्यालय के विद्यार्थी भी इसका उपयोग करते रहते हैं।

संस्था का एक निजी भवन है जिसमें स्कालर लोग सपरिवार निवास करते हैं उनके लिए सब प्रकार की सुव्यवस्था है। संस्था की व्यवस्था आचार्य कृष्णचन्द्र जी की संरक्षता में होती है। आप संस्था को वर्धनशील बनाने में सतत प्रयत्न करते रहते हैं। समाज की प्रगति तथा श्रमण संस्कृति के प्रचार के लिए यहां से एक 'श्रमण' मासिक पत्र भी निकलता है, इसके संपादक श्री इन्द्रचन्द्र जी प्रो० दलसुख भाई तथा श्री मोहनलाल मेहता हैं। 'श्रमण' अपने तीन वर्ष के अल्पकाल में काफ़ी उन्नति कर रहा है इसके लेख सुपाच्य, गंभीर तथा आदर्श को लिए हुए होते हैं। भविष्य में हमारी भावना है कि यह पत्र विशेष रूप से शोध के कार्यों को विशेष स्थान देगा। पं० दलसुखभाई जो जैन संस्कृति संशोधन मण्डल की जान हैं विद्याश्रम की निरीक्षण और पथ प्रदर्शन आदि सेवाओं द्वारा सहायता करते रहते हैं। पं० इन्द्रचन्द्र M.A. वेदान्ताचार्य 'जैन ज्ञानवाद' का विशेष अध्ययन कर उस पर निबन्ध लिख रहे हैं। आप का निबन्ध पूर्ण हो चुका है जो कि यूनिवर्सिटी को अर्पित कर दिया गया है। प्रो० विमलदास कोंदिया जैन M.A, LL.B. का महानिबन्ध 'ज्ञान की सापेक्षता' पर तैयार हो रहा है। वह भी Ph. D. के लिए समर्पित किया जायगा। श्री गुलाबचंद्र जी चौधरी M. A., व्याकरणाचार्य 'मध्ययुग में जैन साहित्य के आधार पर राजनैतिक और सामाजिक अवस्था के चित्रण' विषय पर शोध कर रहे हैं। आपका निबन्ध भी Ph.D. के लिए आगामी अक्तूबर तक समर्पित किया जायगा। इसके अतिरिक्त वि० मोहनलाल मेहता, श्री अमरचन्द ने भी अपने विद्यार्थी काल में ही 'Foundations of Jain Philosophy तथा 'हस्तिनापुर' नामक दो पुस्तिकाएँ क्रमशः लिख डाली हैं। यह भी M. A. की थीसिस के रूप में समर्पित की जायेंगी। इसके अतिरिक्त यहाँ के स्कालर तथा विद्यार्थी समय समय पर बाहर जाकर जैनदर्शन और धर्म के संदेश को लेकर विशेष उत्सवों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने व्याख्यानों द्वारा जनता में प्रचार कार्य करते हैं। यह संस्था की गति विधि का संक्षिप्त परिचय पाठकों के सामने रखा है। यथार्थ में संस्था का अभी किशोर रूप हैं। हमारी प्रबल आकांक्षा है कि हम, जिस प्रकार भी हो सके इस संस्था के पूर्ण विकास के रूप को समाज के समक्ष रक्खें।

विद्याश्रम का भावी कार्यक्रम व योजनाएँ

अब हम अपनी विशेष योजना को समाज के सामने विचार और परामर्श के लिए रखते हैं। जैन समाज अपनी दानशीलता के लिए विख्यात है। उक्त समाज का धन बड़ी मात्रा में आहार, औषध, वसति और विद्यादान में खर्च होता है। यद्यपि यह समाज विशेष रूप से व्यापारिक समाज है फिर भी इसकी रुचि सांस्कृतिक कार्यों के लिए सर्वदा निराबाध रहती है। विद्या के क्षेत्र में इस समाज का सर्वदा विशेष लक्ष्य रहा है। किन्तु यह ढंग प्राचीन पद्धति को लिए हुए था। कुछ दिनों से इसकी रुचि नवीन ढंग की ओर आकर्षित हुई है। यदि जैन समाज चाहती तो अपनी निजी युनिवर्सिटी स्थापित कर सकती थी। किन्तु जैन समाज ने विदेशी शिक्षा और संस्कृति को कभी प्रोत्साहन देने का प्रयत्न नहीं किया। यह अपने भारतीय आचार विचार की सर्वदा पोषक रही है। इसकी भावना यही रहती है कि यह तीर्थंकरों के आदर्श को न भूलें। जैन समाज अपने तीर्थंकरों को सदुपदेष्टा और सत्संस्कृति का प्रतिष्ठापक समझती है और चाहती है कि उन विशाल उत्तुंग आत्माओं द्वारा प्रतिपादित अहिंसा और सत्य (अनेकान्त) का विश्व में प्रचार होता रहे। अहिंसा और सत्य विश्व संस्कृति के आधार स्थान हैं। यह त्रिकालाबाधित आदर्श है जिस पर चलकर संसार शान्ति और सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है। अहिंसा के आदर्श में युद्ध को स्थान नहीं। सत्य की प्रतिपालना में आग्रह या एकान्त को स्थान नहीं। भारत और विश्व का इन्हीं आदर्शों के अपनाने और उनके प्रचार में कल्याण है। वर्तमान युग की आत्मा महात्मा गांधी ने भी इन्हीं आदर्शों पर चलकर भारत की एक हजार वर्ष से लादी हुई परतन्त्रता को जड़मूल से उखाड़कर इस देश को स्वतन्त्र कराया। यद्यपि वह महात्मा स्वयं अहिंसा की वेदी पर बलिदान हो गया किन्तु भारतीयों के हृदय पर वह अहिंसा और सत्य की छाप सदा के लिए छोड़ गया है। महात्मा गांधी द्वारा दर्शाया हुआ अहिंसा, सत्य और सत्याग्रह का मार्ग, विश्व के लिए जीवन-रक्षा की कसौटी है। भविष्य में विश्व की रक्षा इसी में है। एटमबम के आविष्कार से तो विश्व का प्रलय है। हमें इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः हम चाहते हैं कि हमारे देश में ऐसी संस्थाएँ हों जो अहिंसा और सत्य के आदर्शों पर नवीन ढग से शोध कराकर विश्व में इन आदर्शों की पूर्ण प्रतिष्ठा कराएँ।

आज हमारा देश स्वतंत्र है। हमारे ऊपर किसी की बौद्धिक दासता नहीं। हम अपने आदर्शों को गौरव के साथ विश्व के सामने रख सकते हैं। हम यह भी चाहते हैं कि हमारे सामने एक ऐसी संस्था का रूप आवे जो विश्व के लिए एक नमूना हो। किसी संस्था की महत्ता बड़ी बड़ी बिल्डिगों या बड़ी तनख्वाह पाने वाले व्यक्तियों से नहीं होती। संस्था की महत्ता आदर्श व्यक्तियों के आदर्श निर्माण से होती है। भारतवर्ष का आदर्श नि-परिग्रहता में है। महात्मा गांधी स्वयं निष्परिग्रहता के प्रतीक थे। उनका मामूली आहार, कमर-पट्टा, वृद्धत्व की अवलम्बिका यष्टि और निज शरीर यही उनका परिग्रह था। विचार के संग्रह में वे स्वयं एक जीते जागते विश्वविद्यालय थे। उनका साहित्य सदियों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हो गया है। हम चाहते हैं, ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना। संसार एक विषम परिस्थिति से गुजरता चला जा रहा है। इसका भविष्य अंधकार में है। इसके त्राण के लिए प्रत्येक विवेकी मनुष्य का कर्तव्य है। इसलिए हमारी यह भावना है कि हम अपनी संस्था को, जो अभी किशोरावस्था में हैं, एक विशेष रूप देना चाहते हैं।

हमारी संस्था का ध्येय होगा—अहिंसा और सत्य (अनेकान्त) मूलक संस्कृति की प्रतिष्ठापना। इन विषयों तथा इनसे सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर शोध कराकर महानिबन्धों को लिखवाना—जिससे विचार के क्षेत्र में क्रान्ति हो सके। क्रान्ति जीवन-प्रगति के लिए आवश्यक है, बिना क्रान्ति के मनुष्य अतीत की निद्रा से नहीं जागता। आज हमें पुनः अहिंसा और सत्य मूलक क्रान्ति द्वारा विचार क्षेत्र को परिवर्तित कर देना है। जैन तीर्थंकरों ने सर्वदा इसी ध्येय को लक्ष्य में रखकर निज-पर का कल्याण किया है। हम चाहते हैं हमारी संस्था उन आदर्शों को नवीन ढंग से विश्व के सामने रक्खे। इसके लिए हमने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का सहारा लिया है। आज इस विश्वविद्यालय में नवीन युग के समग्र साधन उपलब्ध हैं। हम उनका लाभ उठाकर उक्त आदर्शों के ऊपर खोज कराकर विश्व कल्याण की भावना से अहिंसा और सत्य मूलक संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठापना चाहते हैं।

उक्त विचार धारा को मूर्तरूप में परिणत करने के लिए पार्श्वनाथ विद्याश्रम के रूप में आधार शिला तैयार हो गई है। हमें इस आधारशिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ऊपर अपनी भव्य भावनाओं का भवन निर्माण करना है। उसके लिए धन की आवश्यकता है। संसार का कोई कार्य धन के बिना नहीं चल सकता। हमारी आकांक्षा है पचीस लाख रु० एकत्रित करने की। जिसमें हम पाँच लाख रु० विद्याश्रम के भवन के निर्माण में लगाना चाहते हैं। हमारे भवन के मध्यभाग में विशाल पुस्तकालय होगा। उसकी चार दिशाओं में चार अनुसंधान विभाग होंगे। उन विभागों का नाम होगा (१) प्रथमानुयोग विभाग, जिसमें इतिहास, संस्कृति आदि विषयों पर खोज होगी। (२) करणानुयोग, जिसमें गणित, ज्योतिष, भूगोल आदि विषयों पर अनुसंधान होगा। (३) द्रव्यानुयोग, जिसमें जीवाजीवादि द्रव्य तथा भौतिक विज्ञान, रसायनादि विज्ञानों पर अनुसंधान होगा। (४) चरणानुयोग जिसमें मनुष्यों के आचरण विषयक आदर्शों के अनुकूल शोध होगी। इसके अतिरिक्त वहां पर अधिकारी तथा स्कालरों, सेवकों आदि के लिए परिवारगृह होंगे। इसके लिए हमें विशाल क्षेत्र की आवश्यकता होगी। इस संस्था का बीस लाख रु० का ध्रौव्य कोष होगा जिसकी आमदनी संस्था के कार्य के लिए खर्च की जायगी। हमारी संस्था में एक रिसर्च डाइरेक्टर होगा, जिसका वेतन ६००-१००० तक होगा। एक असिस्टेन्ट डाइरेक्टर होगा जिसका वेतन ५००-८०० तक होगा। इनके अतिरिक्त चार विभागों में चार स्थायी स्कालर कार्य करेंगे जिनका वेतन २५०-४५० होगा। इनके अतिरिक्त दानी महानुभावों की भावनानुसार अनेक स्कालर होंगें। ये स्कालर दो या तीन वर्ष तक किसी विशेष विषय को लेकर अनुसंधान या खोज करेंगे। प्रथम वर्ष उनको १००) रु० मासिक दिया जायगा। द्वितीय वर्ष १५०) रु० मासिक दिया जायगा तथा तृतीय वर्ष में २००) रु० मासिक दिया जायगा। इस प्रकार तीन वर्ष में वह स्कालर अपना महा निबन्ध किसी डिग्री (Ph. D. or D. Litt.) के लिए समर्पित करेगा। समर्पित महानिबन्ध संस्था की सम्पत्ति होगी।

इसमें जो मुख्य वस्तु होगी वह है पुस्तकालय। हमारा पुस्तकालय अनूठा होगा। उसमें चुने हुए ग्रन्थ होंगे जो हमारे स्कालरों के लिए उपयोगी होंगे। इस संस्था से जो 'श्रमण' पत्र निकलता है उसका परिवर्धित रूप होगा। उसमें स्थानीय तथा बाहरी स्कालरों के गवेषणा पूर्ण लेख रहेंगे। यद्यपि लघुरूप में ये दोनों कार्य संस्था में चल रहे हैं किन्तु इनसे हमें संतोष नहीं है। कारण, अनुसंधान और खोज का कार्य साधारण नहीं है; और न साधारण कार्य से आजकल के युग में साहित्य की प्रतिष्ठा हो सकती है। वर्तमान युग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है विशेषीकरण का, किसी भी क्षेत्र में जब तक विशेषता न दिखलाई जाय तब तक उसे विद्वत्संसार मानने के लिए तैयार नहीं। हम चाहते हैं हमारे स्कालरों के महानिबन्ध साहित्य क्षेत्र में प्रशंसनीय स्थान प्राप्त करें। हमारे 'श्रमण' के लेख विश्व साहित्य में आदर प्राप्त करें। उनमें निकाले हुए निष्कर्ष विश्व के लेखकों के लिए उल्लेखों का काम दें। इसके साथ साथ हम यह भी चाहते हैं कि हमारी संस्था से विभिन्न सामयिक और साहित्य संबन्धी विषयों पर लघुपुस्तिकाएँ भी प्रकाशित हों जिनके द्वारा हम जनता तक उक्त सिद्धान्तों को पहुँचा सकें। यद्यपि यह कार्य बहुत कुछ अंश में 'जैन संस्कृति संशोधन मंडल बनारस' द्वारा हो रहा है फिर भी हम इसको कुछ और ऊँचे स्तर पर ले जाना चाहते हैं। तभी हमारी भावना के अनुसार कुछ कार्य हो सकेगा। आज बौद्ध और हिन्दू साहित्य की प्रगति और उन्नति को देख कर हमें अपने साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्य के लिए लघुता का अनुभव करना पड़ता है। इस दिशा में हमें गहराई के साथ सोचना पड़ेगा। हमारी नवीन विचाराधीन योजना के अन्दर हमें सर्व प्रथम कुछ आवश्यक साहित्य का निर्माण करना है। हम जैन साहित्य में प्राकृत लक्षणावली का संकलन और निर्माण चाहते हैं। इसकी अत्यन्त कमी है। पं० जुगल किशोर जी ने इस दिशा में कुछ प्रयत्न किया है। हमारी इच्छा है कि यह लक्षणावली समस्त दिगम्बर-श्वेताम्बर साहित्य को लेकर तैयार कराई जाय। इसमें दिगम्बर परंपरागत तथा श्वेताम्बर परंपरागत दोनों ही विचारधाराओं का पूर्ण उपयोग किया जाय। दूसरा कार्य जैनदर्शन और धर्म सम्बन्धी विचार धारा का सर्वाङ्ग पूर्ण इतिहास लिखवाया जाय। इसके दो भाग हों जो समग्र आर्हती संस्कृति के ऊपर प्रकाश डालने में समर्थ हों। आज भी जैन दर्शन और धर्म के विषय में बहुत से लोगों की गलत धारणाएँ हैं। उनको दूर करना हमारा कर्तव्य है। तीसरा कार्य जैन स्रोतों के आधार के ऊपर महावीर के पूर्व तक का तथा महावीर के बाद के भारतवर्ष का इतिहास तैयार करना है। यह कार्य भी दो भागों में तैयार होगा। यहाँ हमें यह न भूलना चाहिए कि भारत के इतिहास के निर्माण में जैन ग्रन्थ और अनुश्रुतियों का कम महत्व नहीं है। जैनग्रन्थ ऋषभ से लेकर वर्तमान समय तक सुसम्बद्ध ऐतिहासिक प्रगतियों पर प्रकाश डाल सकते हैं। वैदिक आर्य इस देश में कब आए। उन्होंने किस प्रकार ब्राह्मण संस्कृति का प्रचार इस देश में किया, इन सब विषयों पर जैनग्रन्थ अच्छा प्रकाश डालते हैं। श्रमण संस्कृति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण संस्कृति के पार्थक्य का उल्लेख पातञ्जल महाभाष्य तक में स्पष्ट रूप से दिया हुआ है। अहिंसा और सत्यमूलक संस्कृति तथा हिंसा और कर्मकाण्ड मूलक संस्कृति भारत की प्राचीनतम संस्कृतियों में हैं जो अब तक अवच्छिन्न रूप से एक दूसरे को प्रभावित करती चली आई हैं। आज का भारतवर्ष उक्त दोनों संस्कृतियों के सम्मिश्रण के साथ साथ इस्लाम और क्रिश्चियन संस्कृति के पुट को लिए हुए हैं। किन्तु महात्मा गांधी की विचार धारा ने इस देश में पुनः सत्य और अहिंसा की संस्कृति का अङ्कुरारोपण कर दिया है। हमें पूर्ण आशा है कि वह पुनः विश्व संस्कृति बनने जा रही है। इसलिए इसके आधार पर तैयार किया हुआ इतिहास उस कल्याणकारी भविष्य की संस्कृति की रचना के लिए प्रेरणा-दायक सिद्ध होगा। इसके अतिरिक्त हमें आगम साहित्य, जैन संस्कृत साहित्य, अपभ्रंश साहित्य आदि पर भी गवेषणामय पुस्तकें तैयार करनी हैं जो तीन जिल्दों में समाप्त होंगी। अन्त में हमें जैन दार्शनिक-विषय-सम्बन्धी एक कोष भी तैयार करना है। जैन ज्योतिष का क्षेत्र बिलकुल अछूता ही पड़ा है तिलोयपण्णत्ति, जम्बूद्वीप पण्णत्ति, सूर्य-प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, लोकसार आदि महान् ग्रन्थों के सम्बन्ध में आज तक कोई अनुसन्धान कार्य नहीं हुआ है। हमें इन विषयों पर भी प्रकाश डालना है। आज हमारे यहाँ भूवलय सदृश ग्रन्थराज विद्यमान हैं जिनमें बहुत कुछ ज्ञान का भंडार है। इन सब विषयों पर खोज कराकर प्रामाणिक ग्रन्थों का निर्माण कराना हमारी संस्था का मुख्य ध्येय है। यह सब कार्य हमारी बृहत् रिसर्च इन्स्टिटचूट द्वारा ही हो सकता है। इसलिए यह हमारी समग्र योजना का विचार सार्थक है। इस लेख में हमने केवल दिशासूचक बातों का उल्लेख किया है। वास्तव में हम एक महान् योजना को अपने उदर में छिपाए बैठे हैं; हमें केवल आर्थिक बल चाहिए। विद्वान् और कार्य कर्ताओं की संसार में कमी नहीं है। आर्थिक बल मिलने पर हमारा कार्य अवश्य सफल होगा।

प्रसन्नता और संतोष की बात यह है कि उक्त संस्था का बीज वपित हो अंकुर के रूप में आगया है। इसको सींचने के लिए धन रूपी जल की आवश्यकता है। जैन समाज भारत की सम्पन्न समाजों में से एक है। इसके लिए २००००००) रु० इकठ्ठा करना असम्भव नहीं है। केवल २० व्यक्ति ही चाहें तो एक एक लाख रुपया देकर इस सांस्कृतिक कार्य को अमर बना सकते हैं। आज भी जैन समाज लाखों रुपया मन्दिरों और स्थानकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा उत्सवों पर खर्च कर डालती है। यदि जैन समाज के दान के प्रतिवर्ष के आंकड़े किये जायँ तो प्रतीत होगा कि हमारी योजना उनके दो वर्ष के दान से अधिक न चाहेगी। केवल विचार बदलने की बात है। जब हम इतना रुपया स्वयं एकत्रित कर लेगें तो हमें बल मिलेगा कि हम सरकार से भी प्राप्त करें। आज की सरकार महात्मा गांधी के आदर्श—सत्य और अहिंसा पर अवलम्बित है। हमारी संस्था का भी यही उद्देश्य है। हमें आशा है कि हमारी सरकार भी हमारे इस कार्य में बिना सहायता दिये न रहेगी। हमारे सामने सर हरिसिंह गौड़ का उदाहरण है। एक ही व्यक्ति ने २००००००) रुपया देकर सागर यूनिवर्सिटी की नींव डाल दी। क्या जैनियों में भी हमें कोई ऐसा महादानी मिलेगा जो हमारी इस योजना को सफल बनाने में सहायक सिद्ध होगा ?

इसके लिए मैं एक अन्तिम बात लिखना चाहता हूँ। जैन समाज अपना राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक बल शनैः शनैः खोती चली जा रही है। भविष्य में इसका क्या होगा—कहना कठिन है। समाज का जीवन 'विचार' होता है। विचारधारा के जीवित रहने से सब चीजें जीवित रहती हैं। हम अपनी विचारधारा को जीवित रखकर राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सफलताएँ प्राप्त कर सकते हैं। आज का युग अहिंसा और सत्य की विचार धारा के लिए सर्वथा उपयुक्त बन गया है हमें इसका प्रचार कर जगत् में शान्ति व सुख की लहर बहानी है और वह लहर पार्श्वनाथ विद्याश्रम से उठ कर विश्व के कोने कोने में फैलेगी—यह हमारी भावना है। हमारा विश्वास है जैन समाज तथा विश्व का कल्याण इसी में है। अन्त में सब सज्जनों से प्रार्थना है कि वे हमें हमारी योजना में तन, मन, धन से सहायता करें और हमें आशीर्वाद दें कि हम अपनी योजना को सफल बनावें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधु समाज से !

आज चाहिए मार्ग दर्शन,
कौन करेगा ?—
किसकी खातिर ?—
और फिर क्यों कर ?—
प्रश्न चिन्ह है जड़ा हुआ,
सबके मस्तक पर !
न तेजोमय न आकर्षक—
अन्धकार फैला चातुर्दिक !
ठोकर खाता, ज्यों मदमाता
डिगते डिगते बढ़ता जाता—
अनभिज्ञ सा,
जा पहुंचेगा ध्येय बिन्दु तक
क्या यह मानव ?
इसमें संशय और विस्मय है !
कारण इसका
करुणामय है हृदय बना जो
इस मानव का !
आज पुनः जागे संस्कृति
ज्ञान पुरातन और स्मृति !
सत्य अहिंसा की प्रतिष्ठा—
हो जग के कण कण में निष्ठा !
दीप जगें श्रमणानुयायियों के—
रक्त दान से, तप विज्ञान से;
कर दें उज्ज्वल,
इस मानव के—
अन्धकार मय और विकारमय
मानस पट को !
यही कार्य है
अनिवार्य है;
होगा निश्चित और संवर्धित;
वर्द्धमान के उस विधान से !
जिस को लेकर आज अनेकों
त्यागी और वैरागी बंदे
छोड़े जगत के मोह के फंदे
पथिक बने हैं सन्मार्ग के !
और करेंगे मार्गदर्शन
शुभ अनुवर्तन, इस मानव का !
यही माँग है युगपुरुष की,
करनी होगी निश्चित पूरी,
स्वयं पहुँच कर खोज २ कर,
और मानव को खूब झंझाड़ कर,
कहना होगा,
यही कि तुमको जगती का मोह
ढहना होगा !
निकल पड़ो चहोदीवारी से,
वेग चलो वारिधि वारि से,
है कल्याण इसी में जग का;
साधु सन्त औ' गृहस्थ का;
पूरी होगी तभी कामना,
सफल तुम्हारी होगी साधना !

—कृष्णलाल ढल 'प्रभाकर'

——:※:——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरिग्रहवाद—

एक तुलनात्मक अध्ययन

[५]

—रघुवीर शरण दिवाकर

अपरिग्रहवाद और साम्यवाद में एक महत्त्वपूर्ण समानता यह है कि ये दोनों ही सिद्धान्त एक और अखण्ड मानवता की भावना पर स्थित हैं, दोनों की दृष्टि सार्वत्रिक व सार्वभौमिक हैं। परिग्रह के पीछे विषम दृष्टि है, एक पदार्थ के प्रति विशेष आसक्ति या लिप्सा है, और निश्चय ही जब तक सहानुभूति व आत्मीयता का वृत्त विश्वव्याप्त न हो; सारा ही मानव-जगत, बल्कि प्राणी-जगत, अपने दृष्टि-विस्तार का क्षेत्र न हो; रंग, राष्ट्र, नस्ल, जाति परिवार आदि की संकीर्ण सीमाओं का अतिक्रमण कर आत्मानुभूति सब में अपने को और अपने में सब को लय न करे या स्व-पर में परस्पर विलीनीकरण न हो; मेरे-तेरे का भेदभाव या अपने पराए की कल्पना निःशेष न हो; तब तक परिग्रह रहेगा, अपरिग्रहवाद आत्मसात् न हो सकेगा। जो व्यक्ति संकीर्ण जातीयता, राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता या सांस्कृतिकता में मोहासक्त है; उसके लिए उसकी जाति, राष्ट्र, सम्प्रदाय व संस्कृति परिग्रहरूप ही हैं। ऐसा व्यक्ति भले ही अपनी सम्पत्ति पर लात मार कर 'साधु-संन्यासी' हो जाए, पर उसके जीवन में अपरिग्रह की साधना न हैं, न हो सकती है। इधर साम्यवाद की जो कल्पना या योजना है उसके मूल में ही यह मान्यता है कि सर्व-जन-समाज एक महान् व्यक्ति है और कोटि-कोटि मानव-व्यक्ति उसके अंग हैं। यहाँ समष्टि के हित का प्रश्न सदैव व्यक्ति की लालसाओं या महत्त्वाकांक्षाओं पर एक बंधन है, यही नहीं, साम्यवाद की विचारधारा ही अंतर्राष्ट्रीय है। उसके अंतर्गत अखिल विश्व को एक राष्ट्र बनाने का प्रश्न सर्वप्रधान है: और संकीर्ण राष्ट्रवाद का वहाँ नाम भी नहीं है। समस्त संकीर्ण स्वार्थों का त्याग तथा मानव-मानव की और नर-नारी की समानता वहाँ प्रतिष्ठित है।

एक ही सत्य के दो बाजू—

इस तरह जितना ही अपरिग्रहवाद और साम्यवाद को हम भीतर ही भीतर टटोलेंगे, हम देखेंगे कि साम्यवाद एक बड़े से बड़े पैमाने पर समाज की व्यवस्था ऐसी बना देना चाहता है, जिस में व्यक्ति निष्परिग्रही हो। निस्संदेह साम्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद में अपरिग्रहवाद के सर्वोत्कृष्ट सार्वजनिक रूप के निर्माण की उपादान सामग्री विद्यमान है, यहाँ तक कि संभवतः यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि **साम्यवाद अपरिग्रहवाद का सामाजिक संस्करण है।** वैयक्तिक अपरिग्रहवादी भावना को सामाजिक दृष्टि से किसी विधान या योजना में मूर्तिमान किया जाए तो निश्चय ही वह साम्यवादी योजना से, समय-समय व स्थान-स्थान की बाह्य परिस्थितियों की विषमताओं के परिणाम-स्वरूप अनिवार्य रूप से होने वाले भेद या अंतर के बावजूद मौलिकरूप से प्रायः समान ही होगा, और तब यह सुस्पष्ट होगा कि ये दोनों ही वाद एक ही सत्य के दो बाजू हैं। अंतर इतना ही है कि एक की दृष्टि व्यक्ति प्रधान है, दूसरे की समाज-प्रधान है।

एक-दूसरे के पूरक

एक बात और है। अपरिग्रहवाद और साम्यवाद, दोनों एक दूसरे के पूरक भी हैं। अपरिग्रहवाद कहता है कि व्यक्ति आवश्यकता के अनुसार ही सामग्री या धन-सम्पत्ति ग्रहण करे, पर उस आवश्यकता के मापदण्ड का निर्देशन साम्यवाद करता है। वह कहता है कि **व्यक्ति की आवश्यकता समाज-द्वारा अनुमोदित होनी चाहिए।** व्यक्ति को ही निर्णय करने का अधिकार न देकर वह 'आवश्यकता' को रबड़ की तरह खींचने की आशंका को निर्मूल कर देता है। फिर अपरिग्रहवाद समाज-निर्माण में हाथ बंटाने के विषय में, व्यष्टि द्वारा समष्टि को अपनी देन देने के सम्बन्ध में मौन-सा ही है। साम्यवाद इस कमी को पूरा करता है। प्रवृत्त्यात्मक पक्ष पर जोर देकर वह अपरिग्रहवाद के निवृत्त्यात्मक पक्ष को संतुलित करता है। यूँ भी कह सकते **कि साम्यवाद अपरिग्रह के अतिवाद को या अपरिग्रहवादी भावना के दुरुपयोग व उन्माद पर प्रतिबन्ध लगाता है।** अपरिग्रह के नाम पर मनुष्य को जड़वत्, निरर्थक कष्ट सहन करने वाला, अनुद्योगी या अकर्मण्य, स्वकेन्द्रित या स्वार्थी, कायर, भगेड़ू, या उपेक्षावादी बनने की जो आँधी संयम, त्याग, तपस्या और आत्मशुद्धि के नाम पर चली है, तथा मुफ्तखोरी और हरामखोरी का बाजार अपरिग्रह की दुहाई के बल पर निवृत्तिवाद के झंडे तले गरम हुआ है, साम्यवाद उसका अंत कर देना, अथवा श्रम व स्वावलम्बन के पारस से ऐसे लौहवत् व्यक्तित्व को सोना बना देना चाहता है। यहाँ सामाजिक या सार्वजनिक भावना से अथवा निष्काम व निर्लिप्त भाव से कर्त्तव्य-पालन की परिस्थिति है। श्रम यहाँ गौरवान्वित है। स्वावलम्बन यहाँ प्रतिष्ठित है। निवृत्ति के एकांतवाद को यहाँ प्रश्रय नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न—क्या ऐसे सामंजस्य में त्याग-तपस्या व साधना के निवृत्ति-मार्ग के लिए स्थान नहीं है ?

उत्तर—नहीं ! कोरी निवृत्ति अनावश्यक कष्ट-सहन ही नहीं है, वह विश्वहित की भावना अथवा परहित की साधना के प्रतिकूल भी है। कोरी प्रवृत्ति भी इसी तरह सदोष है। सत्य व कल्याण किसी एक में नहीं, दोनों के संतुलन में है। आदान-प्रदान की आधार शिला यही है, नीतिवाद का प्राण भी यही है। मैं किसी से लूँ और लेता ही रहूँ, उसे कुछ न दूँ, यह नहीं चल सकता, न चलना ही चाहिए। परस्पर लेन-देन के आधार पर ही यह समाज और संसार स्थित है, यह जीवन टिका हुआ है। एक व्यक्ति संसार का 'परित्याग' करे, जग को मिथ्या या माया कहकर उससे 'नाता तोड़ने' का दावा करे, पर इसके उपरान्त भी वह दुनिया से लेता ही रहे और उसे देने का नाम न ले, तो यह उसकी अनधिकार चेष्टा ही है। जो दुनिया को देने के कर्तव्य के प्रति उदासीन है, वह दुनियाँ से लेने के अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता। **कर्त्तव्य और अधिकार की जोड़ी है।** जिसका दुनिया के प्रति कोई कर्तव्य नहीं, उसका दुनिया पर कोई अधिकार भी नहीं होना चाहिए। **कर्तव्यहीन अधिकार का उपयोग शोषण है, अन्याय है, पाप है।** दुनिया को देखकर जिसे नाक-भौं सिकोड़नी है, उसका समाज में रहना, समाज का एक अंग बनकर और इस अपेक्षा से समाज पर टिक कर रहना असहनीय है। किसी को किसी पर भार बनने का अधिकार नहीं है। स्वावलम्बन सामाजिक जीवन की आधार-शिला है और जो इस शिला को चूर्ण करता है, वह समाज-व्यवस्था की जड़ों को हिलाना और मानव-जीवन को रौंदता है। निवृत्तिमार्ग का पथिक यही अनधिकार चेष्टा करता हैं। उसकी साधना के ताने-बाने का तार-तार समाज की देन है। उसकी चर्या, भोजन-विधि अथवा उसका सारा ही जीवन-यापन सामाजाश्रित है। सच तो यह है कि वह कर्तव्य-पक्ष की अपेक्षा से ही निवृत्तिवादी हैं अधिकार-पक्ष का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह प्रवृत्तिवादी ही है। कहने की जरूरत नहीं कि यह दुरंगी नीति नहीं चल सकती और न इसे चलने देना ही चाहिए।

प्रश्न—आप ने सामाजिक दृष्टि से ही विचार किया है। व्यक्तित्व के परिष्करण अथवा आत्म-निमज्जन की दृष्टि से देखने पर आप निवृत्ति-मार्ग को प्रशस्त रखने या करने के पक्ष में ही अपना मत देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर—नहीं। आत्म-कल्याण निवृत्तिमूलक ही नहीं है। उसका एक प्रवृत्यात्मक पक्ष भी है और वह भी उतना ही सबल है। दूसरों से हट कर या स्वकेन्द्रित होकर आत्म-कल्याण या निजहित की साधना नहीं चल सकती। आधिभौतिक हित साधन के लिए तो निर्विवाद रूप से यह सर्वमान्य है ही, पर वस्तुस्थिति यह है कि आध्यात्मिक कल्याण की दृष्टि से भी यह एक खरी सच्चाई है। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, इन सभी कषायों व दुर्वासनाओं को या आत्मा के समस्त दुर्गुणों व विकारों को मिटाने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि नैमित्तिक दृष्टि से ही उन्हें अव्यवहार्य बना दिया जाय। उपादान रूप से उन्हें मिटाना ही सच्चे अर्थों में उन्हें मिटाना है। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति रहे, जो क्रोध, मान, माया, लोभ आदि बुराइयों का क्रीड़ास्थल हो और वहाँ रहते हुए उन्हें निःशेष करने का अभ्यास सतत करता रहे और इस आन्तरिक संघर्ष के परिणाम-स्वरूप वह अपना हृदय इतना शुद्ध व निर्विकार बना सके कि उन सब परिस्थितियों में रहते हुए भी वह अलिप्त व अनासक्त रहे, जल में कमल की तरह भीतर रहते हुए भी ऊपर रहे, यह अवस्था ही सचमुच वीतरागता की अवस्था है। शान्त वातावरण व एकान्तवास में साधना की तैयारी हो सकती है, सच्ची साधना नहीं हो सकती। **साधना संघर्षमय है।** तूफान के बीच अचल बने रहना साधना है। वीतरागता की साधना रागद्वेष के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करते हुए उन पर विजय पाने में है। रागद्वेष के वातावरण से दूर भाग कर कमजोरी को उभरने से रोका जा सकता है, पर उसे दूर नहीं किया जा सकता। कषाय **भावना दबी रहना वास्तविक संयम नहीं है।** उसे मूल से मिटाना और उसके पुनः भीतर प्रवेश करने का मार्ग अवरुद्ध करना ही सच्ची संयम-साधना और तपस्या है। निश्चय ही ऐसी अवस्था संघर्ष के बीच में से ही निकल कर प्राप्त हो सकती है और इस अपेक्षा से **आत्मकल्याण की साधना में प्रवृत्ति का भी अपना योगदान है।** इस तरह सामाजिक दृष्टि से ही नहीं, वैयक्तिक दृष्टि से भी, अथवा आत्म-कल्याण की अपेक्षा से भी, **निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों का संयोग व सन्तुलन ही श्रेष्ठ है।** जहाँ कोरी प्रवृत्ति अनर्थ मूलक है, वहाँ कोरी निवृत्ति भी एक-पक्षीय और आत्मघातक है। अतः वैयक्तिक हितसाधन या आत्मकल्याण की दृष्टि से भी कोरे निवृत्तिमार्ग की खुली छूट नहीं दी जा सकती, अथवा किसी को भी समाज पर भार बन कर रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह हम देखते हैं कि साम्यवाद मूलतः अपरिग्रहवाद का संशोधन व परिष्करण करने की क्षमता रखता है। ठीक इसी तरह अपरिग्रहवाद भी साम्यवाद की त्रुटियों व विकृतियों को हटाने अथवा उसे परिष्कृत व पूर्ण बनाने की सामर्थ्य रखता है। **जहाँ अपरिग्रहवाद निवृत्ति की अति से पीड़ित है, वहाँ साम्यवाद को भी प्रवृत्ति के उन्माद का रोग लगा हुआ है,** और उसका इलाज अपरिग्रहवाद से उसका संयोग व संतुलन ही है। साम्यवाद ने जीवन के आर्थिक पहलू पर अत्यधिक जोर दिया है, यहाँ तक कि आर्थिक जीवन के विकास क्रम में ही वह इतिहास-निर्माण देख पाता है, और इसके अनुसार मनुष्य को वह इतिहास का निर्माता नहीं, एक कठपुतला या यंत्रमात्र मान लेता है। यहाँ पूर्ण सत्य नहीं, अर्धसत्य है। अपरिग्रहवाद व उसकी अध्यात्म मूलक दृष्टि इस भ्रम को दूर कर इतिहास-निर्माता मानव की मानवीयता का सच्चा स्वरूप प्रकट कर सकती है। फिर, अधिकाधिक उत्पादन का अंध उन्माद साम्यवाद पर सवार न हो जाए, जनहित विरोधी तथा सुख व शान्ति का आघात करने वाले शस्त्रास्त्र, अति-विलास के कृत्रिम साधन, एवं औचित्य व आवश्यकता का ध्यान न रख कर पदार्थ-उत्पादन न हो, झूठे सुख का भुलावा या मृगतृष्णा उत्पन्न कर तथा आत्मस्थित सुख-स्रोत को ओझल कर बाह्य पदार्थों में ही सुख ढूँढने की महामारी न फैले, इसके लिए निश्चय ही अपरिग्रहवाद बहुत ही उपयोगी है। यद्यपि साम्यवाद मानसिक व बौद्धिक उन्नति के प्रश्न को उपेक्षित नहीं करता है, फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि उसमें भौतिकवादी विचारधारा का प्राधान्य है, जब कि अपरिग्रहवाद में भौतिकवाद उसी सीमा तक मान्य है, जहाँ तक बाह्य पदार्थों की नैमित्तिकता अनिवार्य है। इस तरह एक प्रधानतः भौतिकवादी और दूसरी अध्यात्मवादी विचारधारा है। अतः दोनों का संतुलित सामंजस्य श्रेष्ठ है। दोनों ही मिल कर अध्यात्म-साम्यवाद की संगमधारा प्रवाहित करें, बाहर और भीतर दोनों ओर से या हर दृष्टि से मानव-जीवन को सुखी व समृद्धिशाली बनाने में जुटें, मानव-देह को, मन-मस्तिष्क को व आत्मचेतना को नीरोगी व बलिष्ठ बनाने में मिल कर संलग्न हों तो कोई कारण नहीं है कि जीवन-कुसुम विकसित हो कर चेतन-जगत् में सर्वत्र सुख-सौरभ व्याप्त न हो।

—क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा की महिमा—

—श्री जयभगवान जी एडवोकेट

१. हे भव्य जन ! तुम इस जगत में—अधःलोक के भवनवासियों में, मध्यलोक के मनुष्यों में और ऊर्ध्वलोक के देवों में जो कुछ विस्मयकारी दृश्य देख रहे हो, वे सब इस आत्मा के ही चमत्कार हैं। इसलिए तुम एक मन होकर सदा इस आत्मा की ही आराधना करो।

२. इस आत्मा की शक्तियाँ अचिन्त्य हैं। इन्हें शब्दों में बाँध कर बयान करने में भला कौन समर्थ हो सकता है ? ये शक्तियाँ अनेक तरह के ध्यान बल से स्वयं ही प्रकट हो जाती हैं।

३. यह आत्मा साक्षात् गुणरत्नों का भण्डार है। यह सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है, सर्वहित है, सर्वव्यापक है और निरञ्जन हैं।

४. विद्वानों ने इस आत्मा को ही शिव, गरुड और मन्मथ कहा है। यह आत्मा ही अणिमा, महिमा, गरिमा आदि ऋद्धि सिद्धियों की खान है।

५. परन्तु कितना खेद है कि यह आत्मा अपने स्वरूप को भुलाकर पिछले कर्म संस्कारों से प्रेरा हुआ इन्द्रिय विषयों में सुख मान रहा है, जो विपाक के समय विषैले भोजन के समान अत्यन्त दुःखदायी हैं।

६. जो सहज सुख एक वीतराग मुनि को प्राप्त है, उसका अनन्तवाँ भाग भी जग वैभव के स्वामी इन्द्र को प्राप्त नहीं है।

७. हे आत्मन् ! यदि तुझे परम सुख, परम शान्ति, परम सुन्दरता की चाह है, तो तुझे आप अपने में ही बैठकर इन्हें ढूँढना चाहिए, इनके लिए न बाह्य वस्तुओं की जरूरत है और न इन्द्रिय सहायता की।

८. हे आत्मन् ! तू निश्चय रख जिस समय तू विशुद्ध ध्यान अग्नि से पूर्व संचित कर्म संस्कारों को भस्म कर देगा, तेरी आत्मा स्वयं साक्षात् परमात्मा बन जाएगी।

ज्ञानार्णव—प्रकरण २१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मनमानी कब तक ?

—श्री 'राकेश'

इस बात में जरा भी मतभेद नहीं है कि जीवन सरिता शिक्षा और दीक्षा के कूलों में होकर अबाध गति से प्रवाहित होती है। जिस नदी के कूल न हों, उसका जल अधिक दिनों तक प्रवाह रूप में नहीं बह सकता। वह इधर उधर फैलकर धरती की गहन उदर दरी में समा जायगा। यही बात जीवन के सम्बन्ध में भी सत्य है। जीवन सरिता की रक्षा के लिए शिक्षा और दीक्षा के कूल आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी हैं।

शिक्षा का अर्थ है—वह ज्ञान जो मनुष्य जीवन के विकास के लिए जरूरी है। शिक्षा का सम्बन्ध मनुष्य के मस्तिष्क से रहता है। बौद्धिक विकास शिक्षा द्वारा ही हो सकता है। जीवन को सरस, सुन्दर और मधुर बनाने के लिए शिक्षा की नितान्त आवश्यकता रहती है। शिक्षा के बिना जीवन अज्ञानान्धकार से आच्छन्न रहता है जिससे मनुष्य अपने कर्तव्य पथ से भटक जाता है।

दीक्षा का अर्थ है—मनुष्य का वह नैतिक बल जिसके प्रभाव से वह उन्मार्ग को छोड़कर सन्मार्ग पर लगता है। दीक्षा का सम्बन्ध नैतिक विकास से है। नैतिक बल के बिना मनुष्य का जीवन वैसा ही अस्थिर बना रहता है जैसे किसी सरोवर के जल पर पड़ा हुआ शैवाल। इधर का पवन लगा तो उधर जा अटका और उधर से धक्का लगा तो इधर आ जमा। जीवन की इसी विषम स्थिति पर अधिकार पाने के लिए दीक्षा आवश्यक है, नैतिक बल जरूरी है।

भगवान महावीर ने पहले ही यह निर्णय कर दिया है कि जीवन विकास दो बातों पर आधारित है —पहली शिक्षा और दूसरी दीक्षा। शिक्षा और दीक्षा के बिना मनुष्य प्रगति नहीं कर सकता। उन्होंने अपने जिज्ञासु भक्तों को उपदेश देते हुए कहा है "पढमं नाणं तओ दया।" जीवन में पहला स्थान ज्ञान का है और दूसरा आचार का। दोनों एक दूसरे के पूरक तत्त्व हैं।

पर अत्यन्त खेद की बात है कि हमारा साधु-साध्वी समाज जो कि अपने आपको भगवान की गद्दी का दावेदार समझता है—उनके इस उपदेश की प्रत्यक्ष रूप में अवहेलना कर रहा है। जहाँ तक हमारे बौद्धिक और नैतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के विकास का प्रश्न है, वहाँ हम स्पष्टरूप में देख रहे हैं कि हमारा वह गुरुवर्ग, जिसमें साधु और साध्वी दोनों ही सम्मिलित हैं—हमारे जीवन विकास में किसी भी प्रकार का शिक्षण-दीक्षण नहीं दे सकते। भला, जो मनुष्य स्वयं ही अंधेरे में भटक रहा हो वह दूसरों को प्रकाश का मार्ग कैसे बता सकता है? भूला हुआ राही आत्म विश्वास के साथ यह कैसे कह सकता है कि मैं जिस मार्ग पर चल रहा हूँ, वह ठीक है। जिस नेता को अपनी विजय में संशय हो, और फिर वह जनता को अपने पीछे आँखें मूंद कर आने के लिए प्रेरणा दे तो यह उसकी मूर्खता है। वह स्वयं भी गिरता है और दूसरों को भी गिराता है।

हमारा साधु समाज और साध्वी समाज आज जिस राह पर चल रहा है वह खतरे से खाली नहीं है। वह इस खतरे से परिचित न हो, यह बात भी नहीं है। फिर भी वह आँखें मूँद कर चल रहा है और दूसरों को वैसा करने की शिक्षा देता है। बड़े ही हैरत की बात है कि वह समाज के नाम पर, धर्म के नाम पर और सम्प्रदाय के नाम पर चोरी करके भी साहूकार कहलाता है और अनैतिक कृत्य करके भी धर्मात्मा कहलाता है और असत्य बोल कर भी सत्यनिष्ठ कहलाता है। समय आ रहा है, जब कि आज की जागृत जनता इस काले पर्दे को फाड़ करके अन्दर की गंदगी को हिकारत भरी निगाह से देखेगी।

मैं अपने नौजवान साथियों के सामने एक दिल दहलाने वाली ताजी हकीकत रख रहा हूँ। जिसे पढ़कर वे समझ सकेंगे कि हमारा पूज्य साधुवर्ग और विशेषत: साध्वीवर्ग धर्मदीक्षा के नाम पर अधखिले बच्चों को और उठती हुई तरुणाइयों को किस प्रकार बरबाद करने की कोशिश करते रहते हैं।

एक सुप्रसिद्ध आचार्य की छात्रछाया में विचरण करने वाली एक विख्यात-नामा साध्वी जी ने अभी कुछ समय पूर्व एक अबोध बालिका को धर्मदीक्षा दी है। यह दीक्षा मेवाड़ प्रान्त के किसी छोटे ग्राम में हुई है। साध्वी जी का आदेश था कि दीक्षा महोत्सव धूमधाम के साथ होना चाहिए ताकि आस-पास के लोग भी इस पुण्यमय महोत्सव में हिस्सा ले सकें। धर्मदीक्षा के नाम पर उस ग्राम के भोले लोगों ने खर्च की शक्ति न होने पर भी साध्वी जी के आदेश को शिरोधार्य कर लिया "आज्ञा गुरूणां खलु धारणीया।"

धर्मदीक्षा का शुभ दिवस आ गया। दीक्षित होने वाली अबोध बालिका को जिसे कि वैरागिन कहते हैं, साध्वी जी के आदेशानुसार सुन्दर सुन्दर रेशमी वस्त्रों और सुवर्णमय आभूषणों से खूब सजाया गया। कोई आभूषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराने ढंग का होता, या कुछ मैला मलिन दीखता तो साध्वी जी कहती—अमुक सेठानी जी, तुम्हारी लड़की के या तुम्हारी बहू के जो नये जेवर हैं उन्हीं को लाओ न ? ऐसा अवसर बार बार कहाँ आता है। देखो, इस बहन की हिम्मत देखो न ! जो संसार को लात मर कर जोग ले रही है। साध्वी जी की इस धर्मवाणी को सुनकर श्रद्धालु नर-नारी "धन्य धन्य" कहने लगे।

अपनी बहन की धर्मदीक्षा देखने दूर देश से उसका बड़ा भाई भी आया हुआ था। वह उस प्रसिद्ध मकान के समीप ही ठहरा हुआ था जिसमें साध्वी जी महाराज विराजित थीं। यह व्यक्ति बड़ा ही धूर्त और चालाक था। अवसर पा कर वह उन सभी सुवर्ण आभूषणों को एकत्रित कर ले भागा, जो धर्मदीक्षा लेने वाली वैरागिन के साथ श्रृंगार के लिए अनेक घरों से संगृहीत करके सुरक्षित रखे थे।

इस घटना से सारे ग्राम में कुहराम मच गया। जिनका धन गया, उन लोगों के चेहरे पीले जर्द पड़ गए। इधर साध्वी जी उपदेश दे रही थीं कि भाई जो हुआ सो हुआ। कर्मों की लीला विचित्र है। अब तुम चिन्ता को छोड़कर दीक्षा के जुलूस की तैयारी करो, क्योंकि दीक्षा मुहूर्त निकट आ गया है। वहाँ के समझदार नौजवानों ने इस अवसर पर दीक्षा का घोर विरोध किया। परन्तु साध्वी जी की अभिशाप शक्ति से भयभीत होकर वहाँ के श्रद्धालु वृद्धजन अपने धनहरण के दुःख को भूलकर इस धर्म कर्म से विमुख न हो सके। गृहस्थों का धन लुटे बला से ? नौजवान विरोध क्यों न करें। भला, कहीं दीक्षा के मुहूर्त भी चूका करते हैं क्या ? आखिर, वह धर्मदीक्षा हो कर ही रही।

इस घटना की सूचना उन सुप्रसिद्ध आचार्य जी को मिल गई थी, जिनकी आज्ञा में दीक्षा देने वाली साध्वी जी विचरती हैं। इसी प्रकार स्थानकवासी जैन महासभा को भी युवक वर्ग ने इस घटना से परिचित कर दिया था। पर सब अरण्य रोदन ही सिद्ध हुआ।

यहाँ एक बात यह भी ध्यान में रखने की है कि दीक्षा लेने वाली बालिका की माता दक्षिण भारत की रहने वाली थी। वह अपने चरित्र के लिए अनेकों बार बदनाम भी हो चुकी है। यह बात भी दीक्षा देने वाली साध्वी जी से छिपी नहीं है।

[शेष पृष्ठ ३८ पर देखिए]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-समस्या ?

आज कुछ, शीघ्र ही-
खुल गई आँख थी,
हो गया था, मुक्त मैं-
निद्रा के भार से;
समय था प्रातःकाल,
शीतल समीर था बह रहा,
प्राची में ऊषा का,
आगमन था हो रहा,
वातावरण-
पूर्णतया शान्त था;
सहसा इसी समय,
मस्तिष्क में छा गई-
समस्या एक—
जीवन का लक्ष्य क्या ?
देखते हैं, विश्व में-
घृणा का, द्वेष का,
आपस की फूट का,
पूर्ण साम्राज्य है;
पापाचार, अत्याचार,
हत्याकाण्ड, दुराचार,
भ्रष्टाचार,
निरन्तर बढ़ते हैं जा रहे;
आधुनिक मानव तो–
पाप का पुञ्ज है,
देखें जिस ओर भी,
उसी ओर,
हाहाकार हो रहा,
रूढ़ि से, कुरीति से,
और-

अज्ञान से,
जकड़ा समाज सब-
कराह रहा,
सिसकियाँ ले रहा;
और,
मानवता,
दया और सत्यता,
गलियों में-
ठोकरें है खा रही,
सिर पीट रो रही,
इस ओर-
ध्यान नहीं,
लक्ष्य नहीं, किसी का
किन्तु सब
दानवता, पशुता का,
पोषण हैं कर रहे;
दूसरों को, लूट कर, मार कर,
निज घर भर रहे,
दीनों का, हीनों का,
दुखित, गरीबों का,
शोषण हैं कर रहे;
फिर चाहते हैं
हाँ विश्व शान्ति !!
यह तो है वही बात,
सुधा में गरल की,
पर्वत में समुद्र की,
कुरंग में केशरी औ'
अग्नि में हाथ डाल-
हिम की कल्पना;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१५२]

ाजकल, एक ओर-
हैं शिखर बड़े-बड़े,
ूते आकाश को,
भ को, गगन को;
क ओर-
हरे और महान्
र्त हैं, गड्ढे हैं,
ूप हैं, और हैं खाइयाँ;
क ओर-
ीन हैं, हीन हैं,
ृदय से विदीर्ण हैं,
िन्हें-
ाने को न अन्न औ'
स्त्र न पहनने को,
हने को न झोंपड़ी
क ओर-
मीर हैं, धनाढ्य हैं,
ार हैं, पूँजीपति,
ँचे-ऊँचे, महलों में,
ंगलों में, कोठियों में,
ट्टालिका-प्रासादों में,
श और आराम के,
ान्ति और सुख के,
ाधन हैं जुटा रहे;
िन्तु
ूल कर दीनों को,
िसान, मज़दूरों को,

कर रहे अठखेलियाँ,
मना रहे दीवालियाँ,
दीन मज़दूरों के-
श्रम के पसीने को-
दुग्ध सम पी रहे,
असहाय विधवा के,
दुखिया के, कर्मों की मारी के,
विलाप में, रुदन में,
सुनते हैं शब्द ये संगीत का,
लेते हैं आनन्द ये मधुरता का;
फिर चाहते हैं शान्ति !
कैसी विडम्बना है ?
भटक रहे अन्ध में,
चारों ओर,
हाथ-पाँव मार रहे,
कूद रहे, फाँद रहे,
पर जो मार्ग है ,
उच्चता, शान्ति, सन्तोष का,
सुख का; उनको-
न मिल रहा !
सच्चाई से, उपकार से,
शान्ति और संतोष के-
मार्ग से, कोसों हैं दूर सब,
मार्ग भ्रष्ट !
अब भी समस्या है-
जैसी की तैसी ही—
जीवन का लक्ष्य क्या ?

—मुनि कीर्तिचन्द्र जी 'यश'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनसमाज और वैशाली–

–पं० पन्नालाल धर्मालंकार

आज तक वैशाली के पुरातत्व का पर्यवेक्षण करने जितने भी इतिहास विद्वान् वहाँ गए हैं सबने एक स्वर में यह कहने में जरा भी सङ्कोच नहीं किया कि भारत के प्रथम गणतंत्र नायक चेटक जैन थे और वे लिच्छवि गणतंत्र के प्रमुख व्यक्ति माने जाते थे। उन्हीं के अहिंसक लिच्छवि वंश में प्रियकारिणी त्रिशला का जन्म हुआ था। और वे ज्ञातृवंश के शिरोमणि गणनायक सिद्धार्थ की धर्मपत्नी थी। उन्हीं की पवित्र कुक्षि से भगवान महावीर ने जन्म लिया था। आज तक दिगम्बर जैन और श्वेताम्बर जैन दोनों ही इस पुरातन इतिहास से अपरिचित थे। किन्तु जब से डाक्टर हार्मन जैकोबी और सरकारी अनुसन्धानकर्ताओं ने इस ऐतिहासिक सत्य को जनता के सामने रखा और इधर भारतीय इतिहासज्ञों ने भी इस सत्य वृत्त को प्रमाण कोटि में ला देने के अनेक प्रयास किये, तब से जैन समाज का ध्यान भी इस सत्यता की ओर आकृष्ट हुआ और अनेक श्वेताम्बर साधु एवं दिगम्बर विद्वान् अपने अपने कथानकों के आधार पर गवेषणा में लग गए और अपनी अपनी धारणाओं को बदलकर वैशाली को महावीर की जन्मभूमि होने का उल्लेख अपने स्फुट लेखों, भाषणों एवं पुस्तकों में करने लगे।

आज वह दिन आगया कि दिगम्बर जैन समाज के कर्णधारों को वैशाली में एक छोटा सा मंदिर बनाने की योजना बनाते हम देख रहे हैं। यह जैन समाज के शुभचिह्नो में से एक उन्नति का चिह्न है। क्योंकि बिहार सरकार का पुरातत्व विभाग वैशाली के ध्वंसावशेषों को खनन कराने का उद्योग कर रहा है। अतः जैसे नालंदा में बौद्धों के पुरातत्व का विशाल स्मारक नालन्दा विद्यालय भूगर्भ से बाहर आकर बौद्धों का विशाल गढ़ माना जाने लगा है इसी तरह वह दिन भी दूर नहीं जब वैशाली का पुरातत्व जैनधर्म का विशाल गढ़ साबित हो जाएगा अतः जैन समाज को अपने पुरातत्व सुरक्षित रखने के लिए आज से ही अपना छोटा मोटा स्थान बना लेना अत्यावश्यक है। तथा आवश्यक तो यह भी है कि वैशाली के पुरातत्वान्वेषण में जैन समाज भी बिहार सरकार को आर्थिक सहयोग देकर हाथ बँटावे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु आज अपनी समाज की गतिविधि देखते हुए यह विश्वास नहीं होता कि हमारी समाज के कर्णधार इस ओर ध्यान देंगे। यदि वे एक छोटा मोटा स्थान ही बनालें जिससे परिशोध से प्राप्त होने वाले पदार्थों की परीक्षा होते समय अपने सांस्कृतिक चिह्नों के आधार पर उन पुरातत्वों का सही रूप निश्चित कराने में बिहार सरकार के पुरातत्त्व विभाग को सहयोग दे सकें तो भी बहुत है।

हमारा जैन समाज से सानुनय अनुरोध है कि आगामी वर्ष की महावीर जयन्ती के अवसर पर भगवान् महावीर की वाणी का प्रचार करने हिन्दी भाषा में कुछ ऐसे ट्रैक्ट प्रकाशित करावें जिनमें महावीर की जीवन गाथा के लिए उनके मौलिक सिद्धान्त, उनकी व्यावहारिक उपयोगिता आदि विषयों का ज्ञान सरलता से कराया जा सके।

यदि इस आवश्यक निवेदन पर समाज ने ध्यान दिया तो मैं समझूँगा कि जैन समाज को महावीर के प्रति हार्दिक भक्ति और महावीर शासन को संसार की भलाई के लिए प्रदर्शन करने की हार्दिक कामना है अन्यथा अपने ग्रामों में अपनी समाज के एक कोने में भगवान् महावीर की जय बोलने का कोई खास महत्त्व नहीं है।

'श्रमण' के गतांक में सम्पादकीय विचार धारास्तम्भ में एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी प्रकाशित हुई थी जिसका आशय यह था कि बिहार सरकार नालंदा में बौद्ध विश्वविद्यालय और दरभंगा में सनातन धर्म के गम्भीर अध्ययन के लिए एक विश्वविद्यालय की तरह भगवान् महावीर के तत्त्व ज्ञान का विशाल अध्ययन करने के लिए वैशाली में भी एक विश्वविद्यालय उद्घाटन करने का उद्योग कर रही है। इस टिप्पणी की चर्चा मैंने ज्ञानदीप के सम्पादकीय स्तम्भ में भी की थी।

मुझे प्रकट करते हुए प्रसन्नता होती है कि इस वर्ष की महावीर जयन्ती के महोत्सव में वैशाली संघ की ओर से माननीय खाद्यमंत्री श्री के० एम० मुन्शी की अध्यक्षता में एक प्रस्ताव भी इसी आशय का पास हुआ है और उस प्रस्ताव को उपस्थित करते समय बाबू जगदीश चन्द्र जी माथुर, एम० ए०, आइ० सी० एस०, शिक्षा विकाश सचिव बिहार सरकार तथा शिक्षा मंत्री आचार्य श्री बद्री प्रसाद वर्मा साहब ने अपने गम्भीर विवेचनों में यह आश्वासन वैशाली की जनता को दिलाया कि निकट भविष्य में महावीर वाणी के अध्ययन का केन्द्र वैशाली में अवश्य बनेगा। यदि जैन समाज के शिक्षा प्रेमियों ने हमारा साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया तो हम जल्दी ही इस योजना को सफल करने की चेष्टा करेंगे। वैशाली संघ ने एक उपसमिति भी बनादी है। इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए डॉ० नथमल टाटिया इस उपसमिति के संयोजक बनाये गए हैं।

डॉ० टाटिया साहब ने मुझ से वैशाली में मिलकर इस कार्य में सहयोग देने के लिए आमंत्रण भी दिया था जिसकी स्वीकारता देते समय मैंने आश्वासन दिया था कि मैं हर तरह से आप को सहयोग देने को तैयार हूं। मैं डाक्टर साहब से निवेदन करूँगा कि आप अपनी योजना को शीघ्रातिशीघ्र जैन समाचार पत्रों में प्रकाशित करें तथा भगीरथ प्रयत्न करने में जुट जायें। सफलता आप के हाथ सुनिश्चित है क्योंकि जैन समाज में बहुत दिन से इसकी चर्चा उठ रही है। दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों समाजों में आपकी समयोचित माँग पर गंभीर विचार होगा तथा सर्व सम्मति से एक संस्था इस तरह की स्थापित होने की योजना बन जायगी। सिर्फ दृढ़ता से प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

मैं समाज के शिक्षा प्रेमी सज्जनों से भी निवेदन करूँगा कि अब वे इस योजना को सफल दनाने में अधिक बिलम्ब न करें। समय पर किये काम ही पूर्ण सफल होते हैं। यह अवसर जैन समाज के लिए स्वर्णावसर है।

[पृष्ठ ३३ से आगे]

कुछ वर्ष पूर्व इन्हीं साध्वीजी महाराज की दीक्षित की हुई दो नौजवान शिष्याओं ने धर्म दीक्षा को छोड़कर समाज के एक प्रतिष्ठित नेता के द्वारा विवाह भी करवा लिया था। और वे आज भी अपनें पतियों के साथ गृहस्थ में रह रही हैं।

अबोध बालिका और अधखिले बच्चों को दीक्षा देने का यही परिणाम होता है न? ठोकरें खाकर भी हमारा साध्वी समाज अपने आपको संभाल नहीं पाता है। इससे बढ़कर अज्ञानता और नैतिक दुर्बलता और क्या हो सकती है।

समय आ गया है, युग बदल गया है। यदि अब भी हमारा पूज्य साधु-वर्ग और साध्वीवर्ग उसी विनाशकारी पथ पर चलते रहें, तो वे अपना तो सर्वनाश करेंगे ही पर साथ में समाज और धर्म को भी ले डूबेंगे। इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन-संस्मरण—

—मुनि श्री सुशील कुमार जी शास्त्री, प्रभाकर

श्री सुशीलकुमार जी पंजाब के उदीयमान लेखक मुनि हैं। आपके विचार भी क्रान्तिकारी हैं। आप में कितना उत्साह व ज़ोश हैं—इसका पता एक ही बात से लगता है कि आप थोड़े से दिनों में ७०० मील का पैदल विहार करके पंजाब से मारवाड़ के दूसरे कोने में स्थित सादड़ी पहुँचे और दिन के दिन साधु सम्मेलन में जा उपस्थित हुए। वहाँ भी आप ने बड़ी हिम्मत से काम लिया। इन सब बातों की झलक आप की लेखनी से प्रसूत संस्मरणों से भलीभाँति मिल सकेगी। संस्मरण भी दिलचस्प ढंग से लिखे गए हैं और उनमें ज़िन्दा दिली टपकती है। हमें इस बात की प्रसन्नता है कि सादड़ी साधु सम्मेलन के संस्मरणों को हम 'श्रमण' के पाठकों के सामने एक ऐसे मुनि की लेखनी द्वारा रख रहे हैं, जो स्वयं उसमें उपस्थित थे और प्रत्येक चरचा में सोत्साह भाग लेते रहे हैं। शायद यह सौभाग्य 'श्रमण' और श्रमण के पाठकों को ही मिल सका है।

—संपादक

सचमुच आज से भारत के इतिहास में यह एक नया अध्याय जुड़ गया; जब कि भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में बँटी हुई सारी स्थानकवासी साधुसंस्था एक आचार्य के नियन्त्रण में संगठित हो गई और समस्त इकाइयों और बिखरी हुई आचार्य परम्पराओं ने अपनी समस्त पुरातन पदवियाँ व उपाधियाँ त्याग कर एक सर्वसम्मत नवीन विधान तैयार कर लिया। इस महान् कार्य सम्पादन के लिए भारत भर की सम्प्रदायों से प्रतिनिधि माँगे गए थे। जिनमें से दो चार को छोड़ कर २२ सम्प्रदायों के प्रतिनिधि ५२ की संख्या में एकत्रित भी हुए थे। श्वे० स्था० जैन कान्फरेन्स ने क्या क्या प्रयत्न किये और दूसरे हिताकांक्षी वर्ग ने क्या क्या कष्ट सहन कर इसे पूर्ण करने का भगीरथ प्रयास किया यह सब सम्मेलन की पृष्ठभूमि में छिपा हुआ है। मैं तो आपको केवल सम्मेलन के कुछ अंदरूनी संस्मरण ही बताऊँगा। वास्तव में यही कुछ तो उसका जीवन है। देखिए :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भिक संस्मरण—

साधु नियोजक समिति की विनती स्वीकार करके साधुवर्ग प्रतिनिधि बनकर सादड़ी सम्मेलन की ओर चल पड़ा। इन पंक्तियों के लेखक को भी ७०० मील का मार्ग तय करना पड़ा। प्रसन्नता की बात तो यह है कि हम उसी दिन ठीक ९ बजे सम्मेलन की प्रारम्भिक कार्यवाही के समय पहुँच गए थे।

जनता के कोलाहल में मांगलिक स्तवन और कीर्तन का उद्घोषण हुआ किन्तु सुना कुछ नहीं। अव्यवस्था के अभिशाप ने बदला ले ही लिया और १५ मिनट में कार्यवाही चला कर सब उठ गए। पहली सभा समाप्त हुई।

दुपहर के समय समस्त साधुवर्ग की सभा हुई और सम्मेलन के मुहूर्त की गरमा-गरम चर्चा हुई। किसी ने कहा कि मुहूर्त ठीक नहीं। जोधपुर से एक ज्योतिषी द्वारा प्रकाशित पैम्फलेट दिखाया गया जिसमें लिखा था कि सम्मेलन यदि इस मुहूर्त (रविवार, अक्षयतृतीया) में किया गया तो अवश्य असफल होगा। किन्तु अन्त में मेरा यह समर्थन जोरदार स्वर में स्वीकार किया गया :—

रविवार, अक्षयतृतीया (भगवान ऋषभ देव ने एक वर्ष बाद पारणा किया, इक्षु तृतीया भी इसे कहते हैं) चन्द्रमा वृष का, सूर्य मेष का, अधिक ग्रह उदय हैं। अतः आज का मुहूर्त मानने में कोई आपत्ति नहीं सिवाय इसके गुरु और शुक्र की युति कहीं कहीं संघर्ष का रूप दिखाए। किन्तु अन्त में सफलता अवश्य मिलेगी ऐसी ज्योतिदृष्टि कहती है।

तीन बजे का समय है मंगल पाठ हो चुका है, अध्यक्ष का चुनाव करना है; नाम चुन दिये गये। मेरी ओर से अधिकारों की व्याख्या माँगी जा रही है, अन्त में वीटो पावर का अधिकार देकर केवल दर्शक साधुओं की उपस्थिति स्वीकार कर ली जाती है। दलील यह थी कि जिस साधु वर्ग को इन विधानों का पालन करना है उन्हें क्यों न बैठने दिया जाय किन्तु वे बोल नहीं सकते, बोलने का अधिकार तो केवल प्रतिनिधियों को ही रहेगा।

आम जनता में सम्मेलन क्यों नहीं कर लिया जाता ? इस प्रश्न के उत्तर में, क्योंकि अभी इतनी ऊँची भूमिका है नहीं, जिसकी छाप समस्त दर्शकों पर पड़ सके, नहीं तो आदर्शवादी संस्था को धक्का लगेगा।

रात का समय है, विषय निर्वाचन समिति बनाई जा रही है। १५ नाम चुने गए मेरा नाम भी चुना गया है और न जाने किस किस का नाम चुना गया; किन्तु प्रातः की सभा के लिए समस्त प्रतिनिधियों ने ही विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्धारण किया। इस संघ का नाम भी तो अभी चुनना है; लीजिए नामों की परम्परा :—

जैन संघ
जैन स्थानकवासी संघ
महावीर श्रमण संघ
वर्धमान श्रमण संघ
भारतीय श्रमण संघ (मेरी ओर से चुना गया नाम)

अन्त में **'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ'** सर्वानुमति से स्वीकृत किया गया है।

स्थानकवासी शब्द और 'भारतीय श्रमण संघ' नाम रखने वालों ने प्रबल युक्तियों की झड़ियाँ लगाईं। स्थानकवासी शब्द के पीछे हमारा सारा इतिहास है समूची परंपरा है और अखिल भारतवर्षीय फैडरेशन है; तथा सर्वाधिक प्रसिद्धि का भी बल इसी नाम के पीछे है।

भारतीय श्रमण संघ—क्यों कि श्रमण संस्कृति का जन्म भारत में हुआ अतः भारत शब्द जोड़ा जाय। श्रमण शब्द—क्यों कि यह शास्त्रों में बार बार आया है और श्रमण शब्द से जैन साधुओं और बौद्ध साधुओं का ही बोध होता है। बौद्ध विदेशों में अधिक हैं भारत में तो केवल जैनसाधु ही श्रमण संस्था को कायम रखे हुए हैं अतः भारतीय श्रमण संघ ही नाम उपयुक्त है। जिसके बल पर आप समूचे विश्व में पनप सकते हैं और श्रमण तथा गृहस्थ वर्ग के नाते दोनों ही मार्ग का संसार को उपदेश भी दे सकते हैं।

श्रमणसंस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृति है, और वह आर्यों के भारत-आगमन से पूर्व भी विद्यमान थी। साधकों की संस्था को ही श्रमण कहा गया किन्तु साधक की व्याख्या जैन शास्त्रों की उत्कृष्टतम देन है। अतः सर्वश्रेष्ठ श्रमण परम्परा यथार्थ और आदर्श के नाते जैनभिक्षु ही उसमें आते हैं अतः इसका नाम श्रमण संघ तथा भारत जोड़ कर 'भारतीय श्रमण संघ' ही ठीक रहेगा।

* * * *

प्रातःकाल का समय है, सोमवार का दिन है। एक आचार्य की योजना पर बहस हो रही है। उग्रदल बड़ी तेजी से एक आचार्य का समर्थन कर रहा है और पुरातन तथा पुराणपंथी जरा संकोच कर रहा है। आचार्य तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले भी भिन्न भिन्न थे, गणधरों के भी पृथक् २ गण थे, तो आज ही क्यों एक आचार्य की आवाज बुलन्द की जा रही है। उग्रदल बहुत तीव्रता से एक आचार्य को कायम कर देना चाहता है।

समाज को बचाना है, गौरव से जीना है, तो एक आचार्य की योजना के सिवाय और कोई चारा है ही नहीं, भिन्न भिन्न आचार्यों ने समाज को अलग २ बाँटा, संगठन को तोड़ा, अपनी अपनी गुरुपरम्परा कायम की। इसके फलस्वरूप एक सम्प्रदाय का श्रावक व साधु दूसरी सम्प्रदाय के श्रावक और साधु को सम्यग्दृष्टि और वन्दनीय मानने से भी इनकार करने लग गया। एक ही विचारों के लोगों में संघर्ष हुआ, लड़ाइयाँ छिड़ीं और द्वेष की आग भभकी। यह सब एक आचार्य के न होने के कारण ही हुआ। शिष्यों की अलग २ टोली ने कौटुम्बिक भावना को जन्म दिया। समाज के सामने वैयक्तिक अस्मिता शासन करने लगी। जिससे आज लाखों की संख्या में अस्तित्व रखने वाली समाज छिन्न भिन्न होकर छोटी छोटी टुकड़ियों में बँट गई। न संगठन रहा, न प्रेम रहा, और न आपसी किसी प्रकार का भी समझौता कायम रह सका।

बौद्धों की अपेक्षा हममें क्यों इतना भयङ्कर मत भेद और संस्थाओं का जन्म हुआ। इसका कारण दीक्षा के समय संघ की उपेक्षा, भगवान की उपेक्षा और धर्म की उपेक्षा है। वैरागी को क्या बताया जाता है? केवल गुरु। क्या पढ़ाया जाता है? केवल 'करेमि भंते'। क्या सिखाया जाता है? अपनी सम्प्रदाय। परिचय किनसे कराया जाता है? केवल अपने सम्प्रदाय के अनुयायिओं से। फिर बताइए, सामूहिक भावना किस प्रकार पैदा हो? स्नेहधारा किस प्रकार प्रवाहित हो? एक दूसरे से मिल कर सुसंगठित बनाने की भावना किस प्रकार पनपे?

बस केवल एक ही उपाय है एक आचार्य और एक संघ के शासन में नियन्त्रित होना।

एक बड़े प्रतिष्ठित आचार्य जी उठे और छः माह परीक्षण नहीं, अपितु आपसी समस्थिति के लिए व्यवधान मांग कर बैठ गए।

मैं :—ऐसा करने का कारण भी बताया जाय?

उत्तर :—क्योंकि अभी मानसिक पृष्ठभूमि सन्तों की प्रबल नहीं देख रहा हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना सुनते ही मेरा आत्मा उग्रता से ध्वनित हुआ और मैंने कहना प्रारम्भ किया :—

"जिनके हाथ में सत्ता थी, वे भी सत्ता त्याग कर एकत्रित होकर कार्य करने लग पड़े। जो आप सन्तों की मानसिक स्थिति की निर्बलता की ओर सङ्केत कर रहे हो, इससे हृदय में हमें बहुत चोट लग रही है। मानसिक स्थिति को भाँपने में बड़े बड़े मनोवैज्ञानिक भी हार खा जाते हैं, आप कैसे जान पाये कि हमारी मनोभूमि निर्बल है ?

"संघ ऐक्य के लिए ७०० मील का पैदल सफर किया। चट्टानों, कंकड़ों, काँटों और भयानकतम प्रचण्डाग्नि की आँधी से मुकाबला किया, केवल एकता के लिए।

"आत्मिक और मानसिक सम्पूर्ण बल को संजो कर आज एकता का हमने आह्वान किया और फिर आप कहते हैं मन अभी निर्बल है !

"युग कहता है कि एक हो जाओ, समाज बड़ी उग्रता से चुनौती दे रही है कि एक हो जाओ। आत्मग्लानि, और दम तोड़ती मुनिव्यवस्था, भागती हुई इज्जत और शान्ति की लालसा लिये ताकती हुई दुनिया हमसे एक ही वस्तु मांगती है वह है एकता।

"हमारे अन्दर सड़ांध पैदा हो गई है। हमारा जीवन समाज के लिए भारभूत और अपने लिए अभिशाप रूप बन गया है ?

"आप युवकों की ओर सङ्केत कर साम्प्रदायिक मोह को मत छिपाइए ? बड़प्पन के नाते कोई बात मान्य नहीं होगी, बुद्धिवाद को नीचे दबाकर कोरा महत्त्ववाद नहीं चल सकता, आप हमारे जीवन से फायदा उठाइए, हमारी जिन्दगी समाज, युग और विश्व के लिए आदर्श बनाइए। उन उठती हुई जवानियों से खिलवाड़ मत कीजिए, इनसे कुछ काम लीजिए ? एक अनुशासन कायम करिए और एक आचार्य बनाइए, बस यही एक ढंग है। नहीं तो इस ग्लानि में हम तो जीने और साँस लेने के लिए तैयार नहीं।"

वातावरण क्षुब्ध अवश्य हुआ किन्तु परीक्षण और व्यवधान दोनों ही शब्द हवा हो गए। कुछ क्षण के बाद सन्नाटे को चीरती हुई शान्तिरक्षक जी की ध्वनि उच्छ्वसित हुई कि एक आचार्य की योजना स्वीकार ! बस कहते ही सर्वानुमति से पास हो गई।

सबके मुख मण्डल पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई, मीटिंग समाप्त हुई।

*　　*　　*　　*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचारी का प्रश्न बहुत टेढ़ा है, आज की सभा में लम्बा विवाद चल पड़ा है। समाचारी का तेल लगाकर पुराने और घिसे तीर भी प्रहार करने चल पड़े हैं। कभी प्रान्तीयता का अभिमान आड़े आता है, तो कभी शास्त्रों की दुहाई दी जा रही है। युवक मुनि वर्ग तो प्रतिनिधि होने पर भी आज दर्शक का पार्ट अदा कर रहा है। अपने को भी यह विवाद बहुत शुष्क लग रहा है।

शय्यातर का प्रश्न छिड़ गया, और कुछ कुछ रुचि अँगड़ाई लेने लगी।

आज्ञा किसकी लेनी चाहिए? मकान मालिक की। दूसरी ओर से आवाज़ आई, नहीं। मालिक और अधिकारी दोनों ही से आज्ञा ली जा सकती है। देखने वाली बात तो यह थी कि कुछ सन्त स्थानक की आज्ञा जैन बिरादरी के किसी भाई की लेते हैं और कुछ स्थानक के नौकर की भी आज्ञा लेते हैं और दोनों अपने आपको शास्त्र सम्मत मानते हैं, और हैं भी दोनों अनुकूल ही। परन्तु दोनों का दृष्टिकोण थोड़ा चक्करदार है, मालिक और नौकर की परिभाषा अलग अलग है, अपनी अपनी परिभाषा ही उन्हें मान्य है।

भगवान महावीर भी उद्यान में माली की आज्ञा लेकर ही ठहरते थे तो हमें क्या है नौकर की आज्ञा लेकर ठहरने में? उत्तर मिलता है कि माली बाग की तोड़ फोड़ में भी शामिल है, सामान्य नौकर नहीं। खैर, लम्बे वाद विवाद के बाद स्वामी और अधिकारी की आज्ञा में ठहरने का प्रस्ताव पास हो गया।

विवाद का भाग अभी छूट गया है, प्रतिनिधि कैसे सहन कर सकते थे कि स्वामी कौन? इसका अधूरा निर्णय कैसे छोड़ दिया जाय?

उत्तर दिया गया कि जिसका उस मिलकियत में हिस्सा हो।

स्थानक की आज्ञा किससे लेनी चाहिए कितने ही स्थानों में स्थानक की रजिस्टरी ओसवाल बिरादरी के नाम की हुई है, तो क्या आज्ञा ओसवाल से ही लेनी चाहिए, क्या अन्य जैन से नहीं लेनी चाहिए?

उत्तर दिया गया कि स्थानकवासी जैन से ले लेनी चाहिए।

प्रश्न उठा कि एक ग्राम में एक स्थानकवासी जैन है, और एक ही थानक है, शेष बस्ती समूची ही यवनों की है वहाँ क्या किया जाय? ऐसे ऐसे ग्रामों के नाम भी बताये गए।

एक आदर्शवादी ने यथार्थ को झुठलाकर त्याग की सलाह दी किन्तु वह मान्य नहीं हुई। अन्त में जैनधर्म से प्रेम रखने वाले की आज्ञा प्रामाणिक मानी गई तभी छुटकारा हुआ। यह प्रश्न भी एक युवक मुनि ने ही उठाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचारी के प्रसंग में विद्युत् का प्रसंग भी बहुत रोचक रूप से उपस्थित हुआ। इस प्रश्न को उपस्थित भी बड़े नाटकीय ढंग से किया गया और समर्थन भी बहुत विचित्र तरीके से।

विद्युत के प्रश्न के बारे में सारी समाज में मतभेद है। लाऊडस्पीकर के कारण यह प्रश्न इतना पेचीदा बना है; क्योंकि मुनिलोग आध्यात्मिक जगत से उतर कर सामाजिक और प्रचार के रंगमंच पर अपना आसन जमा रहे हैं। स्थिति इसलिए गंभीर बन गई है कि एक ओर तो समाज हमें सामाजिक रूप में और प्रचारक के रूप में देखना चाहती हैं और दूसरी ओर आध्यात्मिक पूर्ण निवृत्ति-प्रधान रखना चाहती हैं। कैसी विचित्र समस्या है! प्रचार चाहती हैं किन्तु प्रचार के साधन देने में शर्म मानती है। यह कैसे चल सकता है, बस क्या था, बहुत लम्बा विवाद चला, और एक प्रबल समर्थक प्रतिनिधि ने तो लाऊडस्पीकर का निषेध करना अनधिकार चेष्टा करना है, यहाँ तक कह दिया। इससे खलबली मची किन्तु उसकी चातुरीपूर्ण उक्तियों ने उनके खम्बे हिला दिए।

"लाऊडस्पीकर श्रोताओं को जरूरत है, वक्ता की जरूरत नहीं। वक्ता की वक्तृत्वकला में जहाँ भाषा, भाव और स्वर आवश्यकीय तत्त्व हैं वहाँ लाऊडस्पीकर का समावेश नहीं। ध्वनिवर्धक का सम्बन्ध श्रोताओं से है, इसीलिए वह वक्ता के कारण नहीं लगाया जाता अपितु अधिक श्रोताओं के कारण लगाया जाता है। इसलिए इसके निषेध में हमें नहीं जाना चाहिए।"

किन्तु चुपके से दूध पर से मलाई कौन उतारने देता है, सचित्त और अचित्त का झगड़ा आ गिरा और लाऊडस्पीकर की समस्या कितनी ही सतह नीचे उतर कर दब गई।

एक कमेटी बन गई, 'सचित्ता-चित्त-निर्णायक समिति' उसका नाम रखा गया।

* * * *

बहुत सारी वनस्पति कुछ शस्त्र परिणत होने पर और केला आदि छिलका उतरने पर कई साधु ग्रहण करते हैं, और कई नहीं। यह एक विवाद का विषय था, झगड़े से सब चलते हैं और सन्देहास्पद का त्याग होना भी जरा मुश्किल है। आखिर क्या किया जाय। कुछ तो होना ही चाहिए। अन्त में कमेटी पर निर्णय का भार रखकर इस सिरदर्द से छुटकारा लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदायवादी साम्प्रदायिक नामों के मोह को छोड़ने के लिए तयार नहीं थे, किन्तु यह उक्ति श्रावकों पर अधिक चरितार्थ होती है। फिर भी उनका किसी न किसी श्रमण ने प्रतिनिधित्व करते हुए कहा कि कितना अच्छा हो कि हम अपन श्रमणसंघ को बड़े बड़े आचार्य जिन पर आज भी सम्प्रदायें चल रही हैं उनके नाम पर सुसंगठित करें जिससे उन पूज्यों का भी सुयश बढ़ा सकें।

बड़े महापुरुषों से किसी को भी हो झगड़ा नहीं, हाँ साम्प्रदायिक संगठनों से चिढ़ अवश्य है। क्यों कि येही तो एक मात्र हमारी फूट के कारण हैं।

"नहीं साहब, समस्त नाम हटा कर एक ही श्रमण संघ का नाम चलेगा और किसी का नहीं चल सकता।"

"एकदम मोह त्याग करना जरा कठिन होता है, योगाभ्यास करने के लिए भी छ मास रिहर्सल करनी ही पड़ती है। अतः छः मास की अवधि जरूर देनी चाहिए।"

"आज हमारे ये कैसे मुर्दा खयालात हैं। मातापिता, स्नेह सम्बन्धों को छोड़ते तो हम ने एक मिनट नहीं लगाई अब साम्प्रदायों का मोह हमारे पीछे ठाठे मारेगा। क्या आज हम बीस-बीस वर्ष और पचास-पचास वर्ष की निरन्तर मोहत्याग साधना के बाद इतने मायामोही बन गए हैं कि हम सम्प्रदायों के मोह को भी छोड़ने में असमर्थ हैं?

"मैं नहीं समझता कि अब आप छ माह में क्या जादू कर देंगे कि मोह बिलकुल ही भाग जाएगा। मेरे विचार में ये तथ्यहीन तर्क हैं।"

हाऊस में एक ऐसे प्रतिनिधि थे जो सब से बड़ा आग्रह रखते थे। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्हें पहचान कोई नहीं सका; क्यों कि उनका आग्रह शब्दों में छुपा नहीं होता था अपितु अभिप्रायसूचक व्यंग्यपूर्ण ध्वनि के गाम्भीर्य में रूप सँवारे हुए था। जिस पर लगभग प्रतिनिधिगण कितनी ही बार मुग्ध हुए और हाँ में हाँ मिलाते रहे।

वे उठे, अवधिकी माँग को मीठी गर्जना के साथ ठुकरा दिया। और सर्वानुमति से साम्प्रदायिक नाम हटाने का प्रस्ताव पास हो गया। प्रान्तों के बँटवारे के विषय में भी एक जबरदस्त झड़प हुई, कोई कहता कि प्रान्त पाँच बनाने चाहिए। उत्तर में कहा गया कि ऐसा कैसा हो जायगा। यू० पी० में विचरने वाला आदमी अपने आप को पंजाबी किस प्रकार कहलाएगा; जैन स्थानक पर यू०पी० के स्थान पर पंजाब कैसे लिखा जाएगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९५२]

"प्रान्तों के निर्माण में आधार भी तो होना चाहिए, या कि बिना आधार के ही प्रान्त बन जाएँगे। अगर सरकार के बनाये प्रान्त उसी रूप में स्वीकार कर लिए जाएँ तो क्या हर्ज है ?"

"सरकारी प्रान्त तो बहुत हैं"

"तो क्या हर्ज है, प्रचार की भूमिका बढ़नी चाहिए, समस्त प्रान्तों में प्रचार करने के लिए हमें बढ़ना चाहिए।"

"क्या आप को पता है सरकारी कितने प्रान्त हैं ?"

"तो आप ही बताइए, हमें तो पता नहीं कौन कौन से सरकारी प्रान्त हैं।"

उग्रदलीय प्रतिनिधि उठे, कहने लगे "बड़े दुख से कहना पड़ता है कि विश्व भर का भूगोल बनाने वाले भगवान के शासन के पट्टधर आचार्यों को आज भारत के प्रान्तों का भी पता नहीं..........में यह भी निवेदन कर दूँ कि प्रान्तों का वर्गीकरण करने से पहले मुनि की सुविधा का भी ध्यान रखना चाहिए।"

प्रस्ताव अधिक लम्बा होने के कारण अरुचिकर सा बन गया और सरकारी प्रान्त लगभग १६ स्वीकार कर लिए गए।

प्रान्त का प्रश्न इतनी उलझन लेकर आया कि आते झमेला खड़ा कर दिया और जाते जाते कितनी ही उलझन भरी कड़ियाँ छोड़ गया।

प्रश्न उठा कि प्रान्तों का धर्म कार्य चलाने के लिए क्या प्रबन्ध करना होगा। क्या प्रान्ताचार्य बनाने हैं, या प्रवर्तक बनाने हैं या अन्य अधिकारी नियुक्त करने हैं जो प्रान्तीय मुनियों की सुव्यवस्था कर सकें।

इस एक प्रश्न के साथ लम्बी समस्याएँ उलझी हुई हैं। प्रान्तीय भावना भी कहीं सिर न ऊँचा उठाए और साम्प्रदायिक दलबन्दियाँ भी कायम न रह सकें। कभी ऐसा भी न हो कि प्रवर्तक या प्रान्ताचार्य चुनते समय बड़ी सम्प्रदायें छोटी सम्प्रदायों को हड़प कर और मजबूत पँजा न जमालें।

गरमा-गरम बहस के बाद मन्त्री मण्डल की योजना स्वीकार की गई। और १६ मन्त्री बनाए गए और १६ ही कार्य चुनने का भार मुझे सौंपा गया, मानने का अधिकार हाऊस ने अपने पास रखा।

मेरे जो १६ विभाग थे वे विश्व भर को आगे रख कर बनाये गए थे, क्योंकि मेरे विचार में विदेशों में भी धर्म प्रचार और भारत का सांस्कृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचय देने के लिए मुनियों का विदेशगमन भी समाविष्ट था। आज किसी नाम के प्रचार की जरूरत नहीं, अन्धश्रद्धा अभिशाप है, सङ्कीर्णता, दलबन्दी और साम्प्रदायिकता मनुष्य मात्र के लिये कलङ्क है। आज की आवश्यकता केवल एक है कोटि कोटि अभिवन्दनीय श्रमण भगवान महावीर के शब्दों में "माणुसत्तं परम दुल्लहं" अर्थात् मानवता ही परम दुर्लभ है। उसी की विश्व को आवश्यकता है, और उसी के प्रचार की जिम्मेवारी श्रमण संस्था पर है।

किन्तु अभी श्रमण संस्था पर रूढ़िग्रस्त तत्त्वों का गलबा है अतः उभरने में कुछ वर्ष और लगेंगे। १६ विभाग स्वीकार नहीं किये, केवल आठ ही माने और एक विभाग पर एक से अधिक मन्त्री नियुक्त कर दिये गए।

*   *   *   *

अभी एक विवाद ग्रस्त प्रश्न तो रह ही गया था, उसने भी सिर उठाया "तिथि सम्बन्धी वाद विवाद निपटाया जाय" इस नाम से प्रगट हुआ।

पक्खी, चातुर्मासी और संवत्सरी के सम्बन्ध में बहुत गड़बड़ है। इस घोटाले को भी समाप्त कर देना चाहिए।

एक प्रतिनिधि ने अजमेर सम्मेलन का सहारा लिया और एक दूसरे ने गड़े मुर्दे उखाड़ने वाली लोकोक्ति ही चरितार्थ कर दी।

खूब गरमा-गरम बहस चली, पक्खी संवत्सरी के नाम पर ज़ोरदार रस्साकशी शुरू हो गई।

संवत्सरी कब करनी चाहिए? जब जब चातुर्मास में लोंद का मास आ पड़ता है तब क्या करना चाहिए। शास्त्र में तो केवल ४९ वें दिन—चातुर्मास के ७० दिन शेष रहते संवत्सरी मनानी चाहिए ऐसा ही उल्लेख है। उसमें लोंद का क्या कोई जिक्र नहीं?

दूसरी ओर से आवाज़ आई कि दो सावन हों तो पिछले सावन में और दो भादों हों तो पिछले भादों में संवत्सरी करने की हमारी मान्यता है।

तीसरी ध्वनि भी गूँजी, नहीं हमारे आचार्य ने संवत्सरी के विषय में सम्मेलन का किया गया निर्णय मानने में अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखी है।

उनकी मान्यता है कि दो सावन हों तो भी भादों में और दो भादों हों तो पिछले भादों में संवत्सरी मनाने की हमारी धारणा है।

एक और हुंकार उठी क्या शास्त्रों की दुहाई देने वालों के लिए यह एक चुनौती का प्रश्न नहीं है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा कोलाहल मचा, अकस्मात एक प्रतिनिधि ने मध्यम मार्ग का सुझाव दिया। तपाक से दूसरे प्रतिनिधि ने "मध्यम मार्ग से समझौता करना कायरता से समझौता करना है" कह कर मध्यम मार्ग के सुझाव को रद्द कर दिया।

विवाद गहरा रंग धारण कर गया और रात की सभा में निर्णय करने का निश्चय कर सभा विसर्जित हो गई।

इधर उधर मुनियों को संवत्सरी के विषय में एक मत करने के लिए बड़ी भगदड़ मची। रात की मीटिंग में यह प्रस्ताव फिर आ धमका।

अन्त में समस्त प्रतिनिधि मण्डल ने एक मुनि के याचना करने पर अपनी २ सारी धारणाएँ अर्पण कर दीं और उनकी दो सावन हों तो भी और दो भादों हों तो भी केवल पिछले ही भादों में संवत्सरी करने की मान्यता स्वीकृत कर ली। तब जाकर इस विवाद का अन्त हुआ।

* * * *

तिथियों के निर्णय में फिर झगड़ा था। कोई उदय से तो कोई अस्त से तिथियों को मानता है। क्या निर्णय किया जाय? इसीलिए किसी की चतुर्थी और किसी की उसी दिन पञ्चमी तिथि आ जाती है। इन आन्तरिक कलहों और मतभेदों ने इस समाज को एक नहीं होने दिया है।

अजमेर का निर्णय भी बहुत लचर है। तिथि निर्णायक कमेटी बनाई गई थी, किन्तु उसका निर्णय आज तक भी प्रकाश में नहीं आया। हाँ उसका एक निर्णय जिसमें उसने कान्फरेन्स को पक्खीपत्र प्रकाशित और प्रमाणित करने का अधिकार दिया था उस पर आज भी आचरण किया जा रहा है। सब तो स्वीकार नहीं करते किन्तु फिर भी अधिकतर सम्प्रदायें कान्फरेंस की टीप को ही प्रमाणित मान कर चलती हैं।

किन्तु कान्फरेंस के पक्खीपत्रों में भी बहुत गड़बड़ी देखने में आती है, तब क्या करना चाहिए? यही समस्या है और अनिर्णय की स्थिति भी उसी तरह मुंह बाये खड़ी है।

हाऊस में कुछ देर तो सन्नाटा छाया रहा। आखिर एक कमेटी बनाकर उसके निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिए इतना ही निर्णय हुआ। देखें अब कब निर्णय होता है।

* * * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षार्थी का प्रश्न भी महत्त्व पूर्ण था, जिस पर चर्चा उग्ररूप धारण कर गई । उग्ररूप का अर्थ क्रोध नहीं, अपितु एक ओर एक पक्ष का अनुमोदन और समर्थन था । तथा दूसरी ओर दूसरे पक्ष का समर्थन और अनुमोदन।

एक ओर से कहा जाता था कि योग्यता देखकर दीक्षा देनी चाहिए, दूसरी ओर से आयु का भी विशेष अनुरोध किया जा रहा था कि अमुक आयु उपरान्त ही बालिग दीक्षार्थी दीक्षा ले सकेगा ऐसा कहा जा रहा था।

युवक मुनिगण की ओर से बालदीक्षा का गहरा विरोध था जो कि इन पंक्तियों के लेखक के माध्यम से स्फोट हो रहा था। अन्त में दीक्षार्थी को दीक्षा देने का अधिकार मन्त्री व आचार्य को ही देकर इस प्रश्न से विराम ग्रहण किया ।

* * * *

मैं अधिक लम्बा जाना नहीं चाहता । सम्मेलन के संस्मरण बहुत बढ़ जाएँगे । मैं उन्हें विभाग और वर्गरूप में बाँट कर जल्दी से जल्दी छुट्टी लूँगा ।

सम्मेलन के संस्मरण पाँच भागों में बाँटे जा सकते हैं ।

धार्मिक

बौद्धिक

सामाजिक

साम्प्रदायिक

ऐक्यविषयक

धार्मिक संस्मरण—नियम, उपनियम, समाचारी तथा विधान के रूप में उपस्थित किये गए । जिनका सम्बन्ध अधिकतर साम्प्रदायिक धाराओं से है । और मैं अधिकतर उनका उल्लेख भी कर आया हूँ ।

बौद्धिक संस्मरण—अधिक संख्या में तो नहीं हैं, फिर भी रूढ़िवाद पर बुद्धिवाद की विजय कहीं कहीं अवश्य हुई है ।

वास्तव में सम्मेलन की सफलता बुद्धिवाद की विजय भी कही जा सकती है । क्योंकि बुद्धिवादियों ने स्वार्थ को आगे न रख कर संघहित को ही प्रधानता देने में कल्याण समझा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रिमण्डल और समूची शासन व्यवस्था बुद्धिवाद के सिद्धान्तों से ही प्रसूत है, यद्यपि इसे रंग कुछ भी चढ़ाना पड़ा हो। यह भी तो बुद्धिवाद की अनुपम जीत है कि शास्त्रीय पद्धति को युग के अनुकूल बना दिया जाय।

रूढ़िग्रस्त तत्त्व इसे नहीं पहचान पाया और खुशी के साथ रूढ़ि का अपने हाथों जनाजा निकाल दिया।

बुद्धि, मन और शरीर से विचित्र खेल खेल गई है, क्योंकि तर्क का स्थान भावुकता तथा भौतिकता नहीं ले सकतीं।

सामाजिक संस्मरण—के रूप में हम कितने ही महत्त्वपूर्ण विचार रख सकेंगे। क्योंकि जो कुछ हुआ वह व्यक्ति की अपनी निजी इच्छा के कारण नहीं अपितु समष्टि की माँग की पूर्ति के रूप में निजी समस्त महत्त्वाकांक्षाएँ बलि के रूप में चढ़ानी पड़ीं।

समाज ऐक्य के बिना बलवती नहीं बन सकती। उसका आदर्श है केवल निर्माण, यदि वह एक बने तो समाज भी एक बन सकती है। आखिर समाज तो मुनियों के नामों पर ही बिखरी हुई है। मुनियों की अनेकता के मिटते ही समाज की अनेकता स्वयं लुप्त हो जायगी।

यही कुछ समझ कर एक आचार्य योजना स्वीकार की गई।

महावीर भवन, साम्प्रदायिक उपाश्रय और वैयक्तिक नाम पर चलने वाली संस्थाएँ ही समाज की बिखरी हुई असंगठित शक्तियाँ हैं।

सम्मेलन ने इस विषय पर बड़ी सावधानी पूर्वक जोरदार काम किया है कि समस्त स्थानक (भले ही वे किसी भी नाम से पुकारे जाते हों) एकमात्र श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ की निश्राय में आ जाने चाहिए, और उनका नाम जैनस्थानक ही होना चाहिए, तभी जैन श्रमणसंघीय मुनि उसमें ठहर सकेंगे, वरन् उसमें कोई नहीं ठहरेंगें। इसके लिए एक वर्ष की अवधि दी गई है। संवत्सरी आदि तिथि निर्णय भी सामाजिक एकता के नाते किए गए हैं। साहित्य, शिक्षण, प्रचार, चातुर्मास ये सब समाज को उन्नत बनाने के लिए ही व्यवस्था बाँधी गई हैं।

कोई भी साहित्य साहित्यमन्त्री की आज्ञा बिना नहीं छपा सकेगा। नहीं तो ये पुस्तकें भी कभी २ हथियार के रूप में बरती जाती थीं।

शिक्षण के बिना मानस कभी पनप नहीं सकता। जितने ऊँचे दरजे का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षण दिया जायगा उतना ही हमारा मानसिक धरातल स्वच्छ और ठोस तथा संस्कार युक्त बन सकेगा।

प्रचार सम्बन्धी समस्त नियम उपनियम भी समाज को ही आगे रख कर बनाये गए, और बनाए जायँगे।

चातुर्मास का दृष्टिकोण भी यही है। तीन २ चार २ सौ घरों वाले ग्राम भी चातुर्मास के लिए तरसते हैं किन्तु मुनि नहीं पधारते हैं, उनकी भी सुनवाई की जायगी।

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से कुछ बातें अवश्य रह गई हैं। इस संघ का नाम, समाचारी तथा अन्य कुछ और ऐसी बातें हैं जिनमें हमने अपनी संकीर्णता का परिचय दिया है। और आजकल संकीर्णता का ही पर्यायार्थक शब्द साम्प्रदायिक स्वीकार कर लिया है।

ऐक्य विषयक प्रस्ताव हमने भले ही पास नहीं किए हैं, वातावरण जरूर तैयार कर लिया है, और कुछ २ उद्देश्य हमारा यह बन गया है कि जैनों के समस्त फिरकों को एक पथ पर लाया जाय। श्री पुण्यविजय जी का पुण्य मिलन, हाऊस में आना, स्वागत और स्नेहसंवादों में प्रेम बढ़ाना इसी तथ्य की ओर सङ्केत कर रहा है।

हमें अन्त में भारत और विश्व को एकता का सन्देश देना है, मानवता का पाठ पढ़ाना है। हाँ उस से पहले स्वयं को तो पढ़ना चाहिए। क्यों कि कोरा आदर्शवादी उपदेश व्यवहार्य और ग्राह्य दोनों गुणों से शून्य रहता है। इसलिए आज के संसार में उपदेश उतने महत्त्वपूर्ण नहीं रह गए हैं जितना कि इन्हें होना चाहिए था।

इस श्रमण संघ ने स्वयं एकता का पाठ पढ़ा है और उसने दुनिया के लिए आदर्श बन कर एकता का मूक पाठ तो पढ़ा ही दिया है। इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है।

विशेष संस्मरण

सम्मेलन और मेरा कार्य—

मैं संसार के उस वर्ग से सम्बन्ध रख रहा हूँ जिसकी आजीविका का भार समाज वहन करता है। इस आदान के अनन्तर प्रदान का दायित्व इस संस्था पर अधिक आ पड़ता है। इसने उसे पूर्ण किया या नहीं आज यह प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारणीय नहीं रहा; अपितु पिछली भूल भविष्य में न पनप सके ऐसे सुधार का ही प्रश्न शेष रह जाता है।

इस प्रश्न के समाधानार्थ ही सम्मेलन में मैंने अधिक चाव से भाग लेने की आत्मसाधना की। शारीरिक कष्ट परम्परा को ध्यान में न रखकर सम्मेलन में पहुँचा और उसमें उचित भाग अदा किया।

मेरा एक काम था कि मैं युग के सन्देश को सुनाऊँ, और बार बार चेतावनी देता रहूँ कि भविष्य में अगर श्रमणवर्ग को जिन्दा रहना है तो वह आज से उत्तरदायित्व पूर्ण बने। अनुत्तरदायी व्यक्ति को राष्ट्र में कोई स्थान नहीं प्राप्त हुआ करता।

श्रमण वर्ग के पास पेट की समस्या का कोई समाधान नहीं। यदि आप कटु सत्य सुनने की क्षमता धारण कर सकें तो मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं युग के यथार्थ दिग्दर्शन का चार्ट पेश कर सकूँ।

आज देश को कर्मवीर बनने की जितनी जरूरत थी उतना ही अधिक श्रमण वर्ग ने देश को भीरु बनाने में सहयोग दिया। मैं इस तथ्य को भली-भाँति जानता हूँ कि श्रमण संस्था का अभ्युदय पुरुषार्थ की पराकोटि पर आश्रित था। किन्तु आज का श्रमण भगवान महावीर का श्रमण नहीं, वह तो शङ्कर के मायावाद के प्रभाव में आया हुआ अद्वैतवादी श्रमण है।

संसार की अनित्यता का, स्वर्ग नर्क का, और आरम्भ समारम्भ का डरा हुआ घिनौना रूप आज की श्रमण संस्था की ही देन है।

आज की साधना स्वर्गीय सुखों की मीठी कल्पना के लिए की जा रही है। यह पलायनवाद का धार्मिकरूप राष्ट्र के लिए कितना घातक है क्या आप इसकी कल्पना नहीं कर सकते?

'कम्मे सूरा' और 'धम्मे सूरा' का सिद्धान्त कितने बुरे तरीके से श्रमण संस्था ने बदनाम किया है! थोथे क्रिया काण्ड पर बल दे देकर समाज और धर्म की अन्तरात्मा को कितना खोखला किया है!

अधिक से अधिक नियमों के शिकंजों में आज़ादी के लौहवीर श्रमण को बाँधकर मोक्ष की खुली भावना को क्या नहीं कुचला है?

आइए, जरा सोचिए और मुझे बताइए कि श्रमण का उद्देश्य क्या था? पूर्ण निवृत्ति प्रधान बनने का वास्तविक लक्ष्य क्या रखा गया था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस का यथार्थ शब्दों में आप उत्तर देंगे कि—"मोक्ष"—शुभाशुभ से छुटकारा। बताइए सच्चे दिलसे भगवान की साक्षी से आज के श्रमण का क्या वास्तव में यही उद्देश्य है। अगर है तो छोड़िए समाज, कुटुम्ब, शिष्य-भावना तथा सम्प्रदाय वाद; अलग हो जाइए इन समस्त प्रवृत्तियों से।

अगर आप समाज कल्याण के हिताकांक्षी हैं तब भी बहुत अच्छी बात है लेकिन यह तो बताइए कि समाज की कौन सी निर्बलता को दूर करने की जिम्मेवारी आप ने ली है।

अगर आप आत्म कल्याण के साथ साथ समाज कल्याण भी चाहते हैं तब भी मुझे तो कोई आपत्ति नहीं, मैं तो इस भावना का भी आदर करता हूँ; किन्तु जरा आत्मा से पूछिए तो सही कि क्रोध, मान, माया लोभ, लोलुपता, प्रतिष्ठा की भूख और ऐन्द्रिय सुखाकांक्षा कितनी मिटगई है ?

किसी तरफ चलिए, किन्तु अपना एक उद्देश्य लेकर चलिए, निरुद्देश्य मत चक्कर काटिए। आत्म-साधना करना या समाज सेवा दोनों ही उपयोगी कार्य हैं किन्तु समाज पर भार बन कर समाज को खोखला बनाना तो उपयोगी नहीं कहा जा सकता।

आप बताइए कि आप समाज पर भार हैं या नहीं। अगर हैं तो भार बनना छोड़ दीजिए; अगर नहीं हैं तो दायित्व पूर्ण बनिए और भार कहने वालों को मुँह तोड़ उत्तर दीजिए। किन्तु वह उत्तर शब्दों से न होकर रचनात्मक कार्य से होना चाहिए।

मेरे यही विचार थे जो कि मुझे पंजाब से उठाकर राजस्थान सम्मेलन में ले गए। मुझे इन विचारों को प्रगट करना था और मैंने इसके लिए दोहरा काम किया है। उधर साधु-समाज से उत्तर भी माँगता और इधर जन समाज को भी अन्ध श्रद्धा छोड़ने के लिए बाध्य कर रहा था। मैं इसमें सफल हुआ या नहीं ऐसा सोचना मेरे लिए आवश्यक नहीं। फिर भी आप अधिक आग्रह करेंगे तो मैं इतना उत्तर दूँगा कि एक हृदय में उठने वाली विचार धारा सैंकड़ों विचारधाराओं से मिलकर अत्यन्त शक्तिशाली अवश्य बन पाई है।

सम्मेलन पर हुई विशिष्ट व्यक्तियों से वार्तालाप—

उत्क्रान्ति के सूत्रधार मुनिवरों के परिचय देने का तो मुझे लोभ संवरण करना ही होगा। इसमें कारण मैं नहीं बल्कि परिस्थिति है। हाँ, पहली वार्तालाप टीकाराम पालीवाल, मुख्यमन्त्री राजस्थान से हुई—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह संवाद भी मैं एक एक संस्मरण के रूप में रखूँ तो अधिक अच्छा रहेगा।

सायंकाल के समय में अभी गुरुकुल भवन के बरामदे में खड़ा एस० एस० जैन सभा पंजाब के आदरणीय अध्यक्ष श्री हरजसराय जी से बातचीत कर रहा था जो कि अपनी समाज के एक तपे तपाए कर्मठ और सच्चे रूप में नेता हैं। यह एक स्तुति नहीं अपितु वास्तविकता का छोटा सा रूप है। उनके रचनात्मक कार्यों की लम्बी परम्परा स्तुति की दीवारों को लाँघ चुकी है। हाँ अभी बातचीत चल ही रही थी कि इतने में मुख्यमन्त्री और उपमन्त्री तथा अन्य प्रान्तीय उच्चाधिकारी दलबल के साथ मेरे निकट आ गए। मुझे उनका परिचय दिया गया, और कुछ मेरा परिचय भी प्रदान किया गया, इतने में ही हमारे शान्तिरक्षक, सम्मेलन के सूत्रधार, एकता के सन्देशवाहक स्वामी श्री मदनलाल जी महाराज आ निकले। बस, फिर क्या था। प्रसन्नता की लहरों में परिचय के आदान प्रदान का कार्य मैं ने ही अपने ऊपर उठाया, उन्हें बताया कि ये हमारे आध्यात्मिकता-प्रधान श्रमणसंस्था के शान्तिरक्षक (अध्यक्ष) हैं। और आप राजस्थान के मुख्यमन्त्री।

विश्व-शान्ति कैसे ? प्रधानमन्त्री के इस मूक प्रश्न का समाधान देते हुए मैंने कहा कि जब तक आत्मा और बुद्धि का समझौता नहीं हो जाता, तब तक विश्व में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

विश्व आज आत्मा को दबा कर बुद्धि से विश्व-शान्ति का उपाय ढूँढ़ रहा है। किन्तु याद रखिए तर्कप्रधान बुद्धि, भौतिक सम्पत्ति को तोल २ कर शान्ति का साँस नहीं ले सकती।

आत्मा भी बुद्धि, मन, शरीर के आधार के बिना अपना कार्य पूर्ण नहीं कर सकती। आज का युद्ध आत्मा और बुद्धि में हो रहा है। धर्म और विकृति में तनाव है।

याद रखिए मनुष्य तीन प्रकार की भूख रखता है पेट की, मन की और आत्मा की ! मुख्यमन्त्री जी ! यदि आप एक ही भूख शान्त करने का उपाय करोगे तो दो भूख फिर भी शेष रह जायँगी। और जब तक भूख है तब तक अशान्ति है और अशान्ति का उग्ररूप ही युद्ध है। पेट की भख का उपाय कम्युनिज्म से सीखिए। मन की भूख ऊँचे साहित्य तथा विचार धाराओं से मिटाइए और आत्मा की भूख अध्यात्मप्रधान निवृत्ति से मिटाइए। इसके लिए आवश्यक है कि भौतिक सम्पत्ति के समाजीकरण के साथ साथ यम, नियम, महाव्रतों का भी आत्मीकरण करिए तभी जाकर शान्ति आ सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रशिया में एक क्रान्ति आई और पेट की समस्या का समाधान कर गई। अब दूसरी क्रान्ति आएगी जिसमें कुचला हुआ मन और दबी हुई आत्मा के लिए भी अध्यात्म को खुला स्थान मिलेगा। तभी रूस में वास्तविक शान्ति आ सकेगी। यही तरीका समूचे विश्व के लिए है।

आप को चाहिए कि जहाँ आप उग्ररूप से भौतिकता की वृद्धि की दौड़ लगा रहे हों वहाँ जरा अध्यात्म का भी उपदेश दीजिए और उसके लिए भी प्रबन्ध करिए।

* * * *

हिन्दुस्तान टाइमज़, सर्चलाइट, लीडर तथा पी० टी० आई० के संवाददाताओं से हुई वार्तालाप :—

सम्मेलन के विषय में कुछ औपचारिक प्रश्नोत्तर हुए फिर उन्होंने भी प्रश्नों का ताँता साथ ही लगाया :—

जैनधर्म का मुख्य सिद्धान्त क्या है ?

"अहिंसा" पर सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये चार अहिंसा के पूरक के रूप में महाव्रत के नाम से स्वीकार किए गए हैं।

"प्रेम, ईमानदारी, प्रामाणिकता, तथा विश्वास इनके बिना अहिंसा पनप ही नहीं सकती। हिंसा से इनका नाश होता है, और अहिंसा से पोषण।

आप धर्म की क्या व्याख्या करते हैं ?

"वत्थुसभावो धम्मो" वस्तु की वास्तविक स्थिति का नाम धर्म है। विकृति अधर्म है। और वास्तविक स्थिति ही धर्म है, स्वभाव धर्म है, समता धर्म है; किन्तु विषमता, किसी के विध्वंस और निर्माण की विषमता अधर्म है।

आप मतानुयायी हैं या धर्मानुयायी ?

"वास्तव में धर्मानुयायी"

मत से आप क्या अभिप्राय लेते हैं ?

"परिस्थिति जन्य विवशता को दूर करने का मति से सूझा हुआ ढंग"।

इसके सबूत में देखिए दुनिया भर के मत जो कि परिस्थिति की विवशता को दूर करने के लिए जन्मे थे किन्तु आज वे परिस्थितियाँ तो खिसक गईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु वे मत खड़े रहे। इसीलिए उनकी उपयोगिता नहीं रही केवल दुनिया के लिए सिरदर्द के सिवा मत और कुछ नहीं कर रहे।

यवनों के दुर्धर्ष काल में सिखमत हिन्दुओं की रक्षापंक्ति के रूप में खड़ा किया गया था। आज वह परिस्थिति तो नहीं रही किन्तु सिखसंस्था है। फल यह निकला कि वह आज रक्षा के स्थान पर आक्रमणकारी पंक्ति में जा खड़ी हुई; स्वार्थियों ने उससे अपना स्वार्थ साधन शुरू कर दिया।

आर्यसमाज भी सुधारों और संगठन के सन्देशवाहक स्वामी दयानन्द का मत था। किन्तु आज वह पृथक् ही इकाई के रूप में अपने स्वार्थों की रक्षा सोचने लगा।

मत परिस्थति के साथ ही साथ विलीन हो जाने चाहिए, नहीं तो मत धर्म का चोला पहन कर जनता को अन्ध-श्रद्धा की खाई में गिरा देते हैं।

उपयोगिता रहित मत-परम्पराओं को समाप्त करने के लिए आप क्या कर रहे हैं?

"यही कि उनकी अनुपयोगिता दिखाना। अगर आप सच्ची मानवता पर विश्वास करते हैं तो हम भी आपको पूर्ण सहयोग देने के लिए तैयार हैं?

"मैं अनुपयोगी मत पर ही प्रहार नहीं करता अपितु साहित्य पर भी करता हूं। मैंने संसार भर के साहित्य मर्मज्ञों के काव्य लक्षणों को भी चुनौती दी है। मैं तो यह कहता हूँ कि वस्तु और भावमय युग जब मस्तिष्क प्रधान भाषा के माध्यम से स्फूर्जित होता है तब उसे हम दर्शन का नाम देते हैं। और जब वही युग हृदय की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है तो उसका नाम काव्य या साहित्य होता है।"

संवाददाताओं ने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की, मेरा भी प्रतिक्रमण का समय था। बस, अखबारों को पूर्ण सहयोग का वचन देकर विदा ली।

'ललकार' के सम्पादक से सम्मेलन के विषय में बड़ी लम्बी बातचीत हुई। सम्मेलन का उद्देश्य और उसके आदर्श सम्बन्धी बहुत रोचक प्रश्नोत्तर हुए। जिसमें मुख्य भविष्यसम्बन्धी ये प्रश्न थे—"क्या सम्मेलन का कार्य स्थायी रह सकेगा,? "अवश्य, निश्चित।"

प्रमाण?

क्योंकि युग और समाज इस कार्य को पूरा करने में कटिबद्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या साम्प्रदायिक घेरे अभी तोड़ नहीं देने चाहिए ?"

प्रतीक्षा कीजिए और आत्मा के अन्तर्नाद में अपना उत्तर टटोलिए।

लोंकाशाह के सम्पादक ने तो समूचा वार्तालाप अपने पत्र में ही छाप दिया था। एस० एस० जैन कान्फरेंस के समस्त मन्त्रियों से जो विचार विमर्श हुआ, वह आपसी समझौते से अधिक सम्बन्ध रखता है।

चुनिलाल कामदार जी तो स्पष्टतः यथार्थ और भावना का समन्वय करके चलने वाले व्यक्ति हैं।

* * * *

अन्तिम निवेदन :—

स्थानकवासी श्रमणों का यह सम्मेलन भारत में ही नहीं अपितु विश्व भर में बेजोड़ है। इसने समाज की माँग नहीं अपितु विश्व की युगों की समस्या को सुलझाने में सहयोग देकर साधुसंस्था में नई प्रेरणा और नवीन चेतना तथा नव्य भव्य भावना उत्स्फूर्जित करने का महान कार्य किया है।

साधुसम्मेलन संसार भर के लिए आदर्श बनेगा और श्रमणसंस्कृति में नए प्राण डालेगा। यह सम्मेलन व्यक्ति व्यक्ति के लिए जहाँ हर्ष आह्लाद और स्नेहधारा का विषय बनेगा वहाँ यह समाजद्रोही श्रमणविद्वेषी के लिए ईर्ष्या का भी कारण होगा। इस सम्मेलन ने सैंकड़ों वर्षों से जलती ईर्ष्याग्निओं पर तुषारपात किया। बिखरी हुई इकाइयों को एकसूत्र में पिरोया। पनपती हुई साम्प्रदायिक भावनाओं के सिरों को कुचला और बुद्धिवाद तथा आत्मवाद का पथ प्रशस्त बनाया। युग युग तक यह सम्मेलन बार बार भरे और जीवन-ज्योति जगाता रहे तथा समाज में, देश में और दुनिया में आत्मिक तत्त्वों को जागृत करने का सन्देश देता रहे, ऐसी मेरी अमर भावना है।

संघ का मूर्त स्वरूप :—

श्रमण संघ का नाम :—'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ'

श्रावक संघ का नाम :—'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ'

संघपति आचार्य कहलाएँगें और वे दो होंगे :—

आचार्य :—जैनाचार्य श्री आत्माराम जी महाराज।

उपाचार्य :—श्री गणेशी लाल जी महाराज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त कार्य विभागमन्त्रियों को संभालना पड़ेगा। उनमें एक प्रधान मन्त्री होगा और कुल १६ मन्त्री होंगे।

प्रधान मन्त्री—श्री आनन्द ऋषि जी महाराज। शेष अन्य मन्त्री होंगे।

अब तक श्रमण संघ के सदस्य १४० साधु तथा ५०० के लगभग साध्वी हैं जिनके फार्म आ चुके हैं या आने वाले हैं।

* * * *

आचार्य पद महोत्सव—वैशाख शुक्ला त्रयोदशी ता० ७-५-५२ को एक बड़े समारोह के साथ इस संघ को मूर्तरूप दे दिया गया और दोनों आचार्यों को चादरें समर्पित की गईं। आचार्य जी महाराज वृद्धावस्था के कारण सम्मेलन में उपस्थित नहीं थे। अत: उनकी चादर उनके प्रतिनिधि भू० पू० युवाचार्य श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज को प्रदान कर दी गई जिससे जब भी वे पंजाब में पहुंचे आचार्य जी महाराज को सौंप दें।

इससे पहले मुख्य २ आचार्यों उपाध्यायों तथा मुनिवरों के भाषण भी हुए जिनमें मुझे भी कुछ कहना पड़ा। मेरे कुछ शब्द :—

"मेरे से पहले बड़े २ मुनिराजों ने सम्मेलन की भूमिका के विषय में आप सबको बता ही दिया है कि इस सम्मेलन के लिए कितने महानतम पुरुषों की भावना काम कर रही थी। किन्तु जिस समय मेरा जन्म हुआ और इस सामाजिक क्षेत्र में आँखें खोलीं उस समय इस सम्मेलन की भूमिका तैयार हो चुकी थी। इसलिए हमारे सामने प्रश्न भूमिका तैयार करने का नहीं था, अपितु भवन निर्माण और मूर्तरूप देने का ही प्रश्न शेष था।

हम एक ओर मूर्त स्वरूप की ओर व्यग्र मन से ताक रहे थे और दूसरी ओर सम्मेलन की विघ्न बाधाओं को नष्ट करने के लिए सुरक्षा पंक्ति खड़ी कर रहे थे।

रूढ़िग्रस्त उन तत्त्वों की ओर जो कि सम्मेलन को इज्जत के साथ असफल कर देने की भावना लिये हुए थे उनके प्रति भी क्रान्ति, संघर्ष की भावना को लेकर आगे बढ़ रहे थे।

किन्तु यह बड़ी प्रसन्नता का दिन है कि हम उस क्रान्ति की पहली सीढ़ी पर तो सफलता पूर्वक चढ़ गए। अब तो भविष्य का विचार करना है। क्या समाज कोटि कोटि भावना के बाद बने इस संघ के द्रोही को कोई स्थान देगा? (नहीं, कभी नहीं, जनता की ओर से उत्तर) सम्प्रदायें, भिन्न २ नामावलियाँ, स्थानकों पर भिन्न भिन्न नाम हटाकर एक संघ का नाम रखना होगा; क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज इसके लिये तैयार है ? (बिलकुल तैयार) 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ जिन्दाबाद' के नारों के बीच में आचार्य श्री को श्रद्धाञ्जली देते हुए मैंने कहा--हमारे संघ की आत्मा कौन है ? आचार्य आत्माराम जी। और हमारे गण का ईश कौन है ? उपाचार्य गणेशी लाल जी के जयकारों के तुमुल-घोष में मैंने अपनी ओर से उनका शासन अमर रहे की भावना व्यक्त करते हुए आशा और श्रद्धा पूर्वक भावना और विनय के साथ नमस्कारांजलि अर्पित की और अपना आसन ग्रहण किया।

[पृष्ठ ८ से आगे]

मुनियों के आदर्श त्याग से, अक्षय तृतीया का दिवस जैन-इतिहास में अक्षय एवं अमर बन गया है। फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अभी हमको बहुत कुछ काम करना बाकी रह गया है, यदि सचमुच देखा जाय तो कार्य तो अब ही करना है। मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है, मेरे नवयुवक साथियों ने जिस उत्साह से सम्मेलन को सफल बनाया है, उससे भी अधिक जोश एवं उत्साह के साथ उसे स्थायी बनाकर विश्व में चमकाएँगे।

एक बार नहीं, हजारों लाखों एवं करोड़ों बार कहना होगा कि नूतन एवं पुरातन विचारकों ने मिल कर एक बड़ी भारी इकाई की ताकत हमारे सामने रखी है, जो जन जन के मानस क्लेश को हरण करके, त्याग का उज्ज्वल पथ दिखाती हुई. जनता को निर्भय बनाती हुई, आगे बढ़ने का नव सन्देश, नव प्रकाश, एवं नव चेतना प्रदान करती रहेगी।

मैं इसी शुभ कामना व भावना के साथ अपनी लेखनी को विराम देता हूँ—हमारी एकता का जयनाद विश्व के कोने कोने में गूँज उठे, और यह बच्चे बच्चे के जीवन में समा जावे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधुसमाज की प्रतिष्ठा बढ़ी—

—पं० कृष्णचन्द्राचार्य

स्थानकवासी जैन समाज का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस समाज का सारा आधार व एकमात्र सहारा साधुसमाज है इसीलिए इसका नाम ही साधुमार्गी पड़ गया था। हम देखते हैं साधुओं के त्याग और तपस्या से खिच कर जो लोग उनकी सेवा-भक्ति करने लग गए थे, बाद में वे ही साधुमार्गी या स्थानकवासी कहलाए। साधुओं के अस्तित्व और उनकी प्रतिष्ठा में ही इस समाज का अस्तित्व, गौरव व उत्कर्ष है, इसमें सन्देह नहीं। साधुओं के बारे में जरा सा भी प्रश्न खड़ा हो जाने पर इस समाज में बड़ी बेचैनी का अनुभव होने लगता है। साधुओं को भी निरन्तर जागरूक बन कर रहना पड़ता है वरन् स्वयं उन्हें बड़ा ख़तरा दीखने लगता है। साधुओं के आचार-विचार, त्याग-तपस्या जितने अच्छे होंगे, उतना ही अधिक इस समाज में प्राणसंचार होता है। सभाओं व कान्फरेंसों को भी सबसे बड़ी यही चिन्ता करनी पड़ती है कि साधुसमाज का आचार-विचार कहीं शिथिल तो नहीं हो रहा है। गत ता० २७ अप्रैल से ७ मई तक सादड़ी में होने वाले साधुसम्मेलन के पीछे यही सब बात थी।

अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन कान्फरेंस आज से नहीं, बल्कि बीसियों साल पहले से इस प्रयत्न में थी कि बीसियों संप्रदायों के रूप में बँटे हुए साधु लोग किसी तरह एक आचार्य के नियंत्रण में आ जायँ, जिससे साधुसमाज की बिखरी हुई शक्ति इकट्ठी होकर प्रबल बन सके और उनकी अंदरूनी कमजोरियों पर नियंत्रण पाना सरल हो जाय। आज से करीब १९ साल पहले सादड़ी की तरह ही एक बृहत् साधुसम्मेलन अजमेर में भी हुआ था। पर उस समय कई कारणों से सादड़ी जैसी सफलता नहीं मिल सकी थी। फिर भी कान्फरेंस ने कुछ बातें ऐसी की थीं, जिससे साधुसमाज का आपसी मतभेद कुछ कम हो सका था। सफलता न मिलने के कई कारण थे। एक तो यह कि उस समय कुछ ऐसे प्रभावशाली साधु मौजूद थे, जिन में आपसी खींचा संघर्ष चल रहा था। दूसरे स्वतंत्र भारत में सरदार पटेल के द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रियासतों के विलीनीकरण से जो वातावरण पैदा हुआ है, उस समय यह चीज बिलकुल नहीं थी। आज तो बड़े बड़े पदधारी साधु स्वयं यह अनुभव करने लग गए हैं कि जब बड़ी बड़ी रियासतों का विलीनीकरण हो चुका है और राजे महाराजों को भी समय की थपेड़ों के सामने सीधा होना पड़ा है ऐसी हालत में त्याग-वैराग का दम भरने वाले साधुओं के सामने तो कोई बड़ी समस्या ही नहीं। क्या वे इतने छोटे हैं कि नाममात्र के सम्प्रदाय व पदवियों के मोह को नहीं छोड़ सकते! धन-सम्पत्ति व मठ-डेरे तो उन के पास कुछ है ही नहीं, जिन के कारण समस्या जटिल हो जाती है। आज का जैन समाज अपने साधुओं से कम से कम इतने त्याग की तो आशा भी रखता है। कहने को भले ही यह बात सरल मालूम पड़ती हो, पर इतनी सरल नहीं है। कहना होगा यह साधु समाज की अपनी विशेषता है जिसने समय की गति को भाँप लिया है; या यूँ कहिए कि स्थानकवासी साधुसमाज शुरू से ही क्रान्तिकारी रहा है। निःसंदेह इसमें क्रान्ति के स्वाभाविक बीज भी हैं। रूढ़िवादी होना इसकी अपनी चीज नहीं है। रूढ़िवाद का सहारा लेने के लिए इसके पास ऐसा कोई साहित्य भी तो नहीं है। यही कुछ बातें हैं, जिससे आज हम साधुसमाज को समय की गति पहचानने में समर्थ देख रहे हैं।

हम यह कह सकते हैं सादड़ी का बृहत् साधुसम्मेलन हर दृष्टि से सफल रहा। एकाचार्य और एक समाचारी की योजनाएँ भी सफल रहीं, इसमें संदेह नहीं। इससे भी अधिक सादड़ी में जो देखने को मिला, वह यह कि साधुओं का परस्पर मेल-जोल और उनकी बातचीत व बर्ताव बड़ा ही स्नेहपूर्ण था। जिसे देखकर जनता चकित थी और उपस्थित साधुओं के श्रद्धाभरे भावों से दर्शन करके पुलकित होती थी। साधुसम्मेलत ने सुबह, दुपहर, और रात को तीन २ बैठकें करके बहुत थोड़े समय में बड़ा काम किया है। कान्फरेंस के प्रेसिडेन्ट श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया आदि एकाध ही ऐसे विशिष्ट व्यक्ति थे जो साधुओं के सम्मेलन में उपस्थित हो सकते थे। वरन् किसी भी गृहस्थ को उपस्थित रहने की आज्ञा नहीं थी। साधुओं के सभा-संचालन की प्रेम व शिष्टतापूर्ण कार्यवाही को देखकर बम्बई असेम्बली के स्पीकर माननीय फिरोदिया जी का कहना था कि इस प्रकार की कार्यवाही तो हमारी आजकल की विधान सभाओं में भी शायद नहीं होती। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि महत्व के सभी प्रस्ताव सर्वानुमति से पास किये गए हैं जो कि संभावना के परे की बात थी। साधुसमाज ने जिस बुद्धिमत्ता व समझदारी से काम लिया है और उसमें सफलता पाई है इससे जनता की दृष्टि में उसकी प्रतिष्ठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढ़ी है। ता० ७ मई के सुबह का दृश्य सचमुच बड़ा ही हृदयस्पर्शी था, बकि बड़े बड़े आचार्यों, उपाध्यायों व अन्य पदवीधारी मुनियों ने खड़े होकर हजारों की जनता के सामने अपनी २ पदवियों को वोसिराया और ाज से अपने को आचार्य या पदधारी मुनि न मानकर एक सामान्य मुनि घोषित किया। इस दृश्य को देखकर ऐसा लगता था कि जो लोग उपस्थित थे, वे अपने आप को बड़ा ही भाग्यशाली अनुभव करते थे। साधुसमाज ने जो त्याग का आदर्श उपस्थित किया, उससे उसकी प्रतिष्ठा को चार चाँद लग गए। संभव है, इससे दूसरे दूसरे साधुओं को भी प्रेरणा मिल सके।

सम्मेलन के शान्तिरक्षक मुनि श्री मदनलाल जी महाराज और कविवर श्री अमरचन्द्र जी महाराज ने जिस शान्ति, प्रेम व मधुरता के साथ सम्मेलन को सफल बनाने में अपनी कार्यक्षमता का परिचय दिया है, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज तो इस सम्मेलन के शुरू से ही प्रबल समर्थक थे। मुनि श्री आनन्दऋषी जी और मुनि श्री हस्तीमल जी महाराज आदि प्रतिष्ठित आचार्यों ने जो अभूतपूर्व उदारता व संघहित की प्रबल भावना दिखलाई है, इससे वे सभी इतिहास में अमर बन गए हैं। श्री धीरजलाल जी तुरखिया ने जिस अदम्य उत्साह व लगन से वर्षों तक अथक प्रयत्न किए हैं, उसका बदला समाज दे ही नहीं सकता। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि साधुसम्मेलन की सफलता का सारा श्रेय कान्फरेंस के कर्णधार माननीय श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया और उनके साथी सभी कार्यकर्ताओं को है, जिन्होंने बड़ी ही कुशलता और संलग्नता से इसका संचालन किया है। सबसे अधिक पुण्यशाली व यशस्वी सेठ चम्पालाल जी बांठिया हैं, जिनकी अध्यक्षता में कान्फरेंस ने सबसे महत्व के कार्य में सफलता की पूर्णाहुति देकर आगे के लिए इसी कार्य को स्थायी बनाने की नई जिम्मेवारी उठाई है। अन्त में यह सारा यश ही सादड़ी के श्री जैनसंघ को मिला है, जिससे सादड़ी जैन समाज के इतिहास में सदा के लिए अमर बन गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याश्रम-समाचार

ज़मीन के लिए प्रयत्न

श्री महावीर-जयन्ती के अवसर पर पूज्य पं० श्री सुखलाल जी और प्रो० श्री दलसुख मालवणिया कलकत्ता के श्री संघ के आमंत्रण पर वहाँ गए थे। वहाँ के एक दानशील सेठ ने बनारस में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम के लिए ज़मीन ख़रीदने के वास्ते १५–२० हज़ार रुपया तक देने का वायदा किया है। कलकत्ता के बाद ही पं० जी बनारस पहुँचे और करीब एक मास ठहरे। उधर अमृतसर से विद्याश्रम के मंत्री ला० हरजस राय जी भी २० अप्रैल को पहुँच गए थे। बड़े प्रयत्न के बाद ज़मीन का सौदा काफ़ी तय हो चुका था। सिर्फ़ रजिस्टरी होने वाली थी। इतने में उत्तरप्रदेश की विधान परिषद् में यह घोषणा हुई कि १ जुलाई से ज़मींदारों की ज़मीनें सरकार के हाथ में चली जायँगी। अतः सभी पट्टे आदि बन्द किए जाते हैं इसलिए ज़मीन के खरीदने का काम एक़दम रोक देना पड़ा। पूज्य पं० जी को इस काम के निमित्त इतनी सख्त गरमी में भी जो कष्ट उठाना पड़ा, इसके लिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

सादड़ी सम्मेलन

बनारस से ला० हरजस राय जी, पं० कृष्णचन्द्राचार्य और पं० इन्द्रचन्द्र जी शास्त्री सादड़ी साधुसम्मेलन और कान्फरेंस के अवसर पर वहाँ पहुँचे थे। यह सम्मेलन स्थानकवासी जैन समाज के इतिहास में बड़े महत्व का था। गुजरात और सौराष्ट्र को छोड़ कर पंजाब, राजस्थान, बम्बई, दक्षिण आदि दूर दूर के स्थानों से सैकड़ों मिलों का पैदल विहार करके बड़ी संख्या में साधु-साध्वी पधारे थे। साधुओं का सम्मेलन पूर्णतया सफल रहा। एकाचार्य और एक समाचारी की योजनाएँ सर्वानुमति से पास की गईं। इस सम्मेलन की यह बड़ी विशेषता थी।

पहले मारवाड़ की गरमी के नाम से सभी घबराते थे। फिर भी ३०-३५ हज़ार के लगभग जनता पहुँच गई थी। सादड़ी के श्री संघ की ओर से इतनी सुन्दर व्यवस्था थी कि किसी को भी कष्ट नहीं पहुँचा। खासकर शीतल जल का प्रबन्ध विशेष प्रशंसनीय था। भोजन की व्यवस्था भी बड़ी अच्छी थी। इसके अलावा कई सेठों की ओर से भी स्वतंत्र रसोड़े थे। जहाँ पर बड़े आग्रह के साथ लोगों को आमंत्रण करके भोजन कराया जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान के उदारहृदय सेठों का प्रेम व उत्साह दर्शनीय था। इस अवसर पर मद्रास से सेठ मोहनमल जी चोरडिया, सेठ इन्द्रचन्द्र जी गेलड़ा, कुनूर (नीलगिरि) से सेठ रतन लाल जी पारिख, मैसूर से सेठ माणिक चन्द जी डलानी, बंगलोर से सेठ छगन लाल जी मूथा आदि कई प्रसिद्ध सज्जन भी पहुँचे थे। पंजाब, देहली, उत्तरप्रदेश, गुजरात, सौराष्ट्र आदि से भी बड़ी संख्या में लोग आए थे। मारवाड़, मेवाड़, मालवा आदि से तो बहुत बड़ी संख्या में स्त्री बच्चे तक भी पहुँचे थे। सादड़ी एक तरह से तीर्थस्थान बन गया था। एक ही जगह इतनी बड़ी संख्या में साधुओं के पुण्य दर्शनों का भारी आकर्षण था।

साधुओं ने थोड़े से समय में जिस ढंग से जटिल प्रश्नों को हल किया इससे सभी लोग प्रसन्न व चकित थे। जनता पर प्रभाव भी बड़ा अच्छा पड़ा। साधुओं की प्रतिष्ठा भी बढ़ी। जैन समाज और जैन धर्म का उज्ज्वल भविष्य सबकी आँखों के सामने चमकने लगा।

अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन कान्फरेंस का १२ वाँ अधिवेशन भी ता० ४–५–६ मई को तीन दिन तक हुआ। साधुओं ने जो कुछ किया था, कान्फरेंस ने समाज की ओर से उसका समर्थन कर के उस पर मोहर लगा दी। इतना ही नहीं, भविष्य में एकाचार्य और एक समाचारी की योजना सुदृढ़ बने, इसके लिए गंभीर विचारणा भी की। साधु सम्मेलन और कान्फरेंस ने जो महत्व के प्रस्ताव पास किए हैं उन पर भी हम 'श्रमण' के इन्हीं पृष्ठों में फिर प्रकाश डालने का विचार रखते हैं।

उच्चतम परीक्षा

श्री जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला के प्रधानमंत्री, अम्बाला शहर निवासी श्री चिरंजी लाल जैन बी० ए०, बी० टी० की सुपुत्री कुमारी कमलावती जैन ने डाक्टरी में उच्चतम परीक्षा एम० बी० बी० एस० (M. B. B. S.) अमृतसर मेडिकल कालेज से प्रथम श्रेणी में पास की है। जैन समाज के लिए यह बड़े गौरव की बात है। संभवतः जैन समाज में आप पहली महिला हैं जिन्होंने इस विषय की इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त की हैं। इसके लिए हार्दिक अभिनन्दन है।

—अधिष्ठाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन संस्कृति की महत्वपूर्ण पुस्तकें

Studies in Jaina Philosophy—
Dr. Nathmal Tatia ... 16/-

Jaina Philosophy of Non-Absolutism—
Dr. S. Mookerjee ... 15/-

Critique of the Organ of Knowledge—
Dr. S. Mookerjee ... 15/-

Lord Mahavira—Dr. Bool Chand ... 4/8/-

Hastināpura—Amar Chand ... 2/4/-

Jainism—J. P. Jain M.A., LL.B. ... 1/8/-

तत्त्वार्थ सूत्र—पं० सुखलाल संघवी ... 5/8/-

प्राचीन जैन तीर्थ—डॉ० जगदीशचन्द्र जैन .. 2/-

धर्म और समाज—पं० सुखलाल संघवी ... 1/8/-

जैनग्रन्थ और ग्रन्थकार—फतहचन्द बेलानी 1/8/-

निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय—पं० सुखलाल संघवी ... 1/-

गुजरात का जैन धर्म—मुनि जिनविजय जी ... -/12/-

अनेकान्त वाद—पं० सुखलाल संघवी ... -/12/-

जीवन में स्याद्वाद—चन्द्रशंकर शुक्ल ... -/12/-

जैन साहित्य की प्रगति १९४९-५१
—पं० सुखलाल संघवी ... -/12/-

जैनागम—पं० दलसुख मालवणिया ... -/10/-

हेमचन्द्राचार्य का शिष्यमंडल—प्रो० सांडेसरा ... -/5/-

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखें :—

मंत्री, जैन संस्कृति संशोधन मंडल
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, बनारस।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नं० ए-१

16/-
15/-
15/-
4/8/-
2/4/-
1/8/-
5/8/-
2/-
1/8/-
1/8/-
1/-
-/12/-
-/12/-
-/12/-
-/12/-
-/10/-
-/5/-

मंडल

श्रमण

...विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस का मुखपत्र

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन संस्कृति की महत्वपूर्ण

Studies in Jaina Philosophy—
Dr. Nathmal Tatia

Jaina Philosophy of Non-Absolutism
Dr. S. Mookerjee

Critique of the Organ of Knowledge
Dr. S. Mookerjee

न लाल मेहता

जचन्द्र 'सत्यप्रेमी' १

२

L... है—प्रो० विमलदास जैन, एम० ए० ५

४. एक था कवि !—श्रीश कुमार १२

५. एक हजार विद्वान मानव जाति का इतिहास तैयार करेंगे !—
सुश्री मोहिनी शर्मा १४

६. ज्ञान की खोज में—मुनि श्री जयन्ती लाल जी महाराज, १७

७. संसार का इतिहास—तीन शब्दों में ! श्री—महेन्द्र 'राजा' २२

८. 'श्री वर्धमान स्था० जैन श्रमण संघ' का विधान— २५

९. सादड़ी साधु-सम्मेलन में पास किये गए प्रस्ताव – ३१

१०. विद्याश्रम-समाचार— ४४

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनिऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस का मुखपत्र

वर्ष ३ जुलाई १९५२ अंक ९

श्रमण संघ हो अविचल मंगल

श्रमण संघ हो अविचल मंगल,
ममता मल गल गल बह जाय।
थल मद का जल जाय जंगल,
श्रमण संघ हो अविचल मंगल ॥
आत्माराम हमारी आत्मा,
उपाचार्य गणेश महात्मा।
श्री आनन्द प्रधान दया से—
रागद्वेष का जीतें दंगल ॥ श्रमण०
सकल संघ का मन ललाम है,
आज सादड़ी तीर्थ धाम है।
वर्धमान के संघ-ऐक्य से,
मोक्षमार्ग का पाया संबल ॥ श्रमण०
बनें शुभाशुभ-योग विरागी,
शुद्धभाव के हों अनुरागी।
शासन के इस भाग्योदय से,
'सूरज चन्द्र' नहीं हो चंचल ॥ श्रमण०

—श्री सूरजचन्द्र 'सत्यप्रेमी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

युवकों का कर्तव्य

इसी ९ जुलाई को काशी विश्वविद्यालय के नवीन सत्र का उद्घाटन करते हुए भारत के उपराष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन् ने कहा कि "जब कोई देश नये समाज का निर्माण करना चाहता है तो वह अपने नवयुवकों को प्रेरणा देकर आगे बढ़ाता है। देश के स्वातन्त्र्य युद्ध में नवयुवकों ने नेताओं का साथ देकर अपना कर्तव्य पूरा किया, अब स्वतन्त्रता के बाद हमारे सामने दूसरी समस्याएँ उपस्थित हो गई हैं जिनका समाधान दलबन्दी के कारण कठिन हो गया है। नवयुवकों को इन्हें भी हल करना है।

"वर्ग-विहीन और समुन्नत समाज के निर्माण के लिए देश के नवयुवकों को आगे आना चाहिए। आर्थिक विषमता तथा सामाजिक अन्यायों को हटाने के लिए नवयुवकों को संघटित, अनुशासित होना पड़ेगा। कभी-कभी छात्रों की अनुशासन हीनता के समाचारों से बड़ा दुःख होता है। किन्तु मुझे संतोष है कि विश्वविद्यालय के छात्र अपनी शिक्षा के अनुरूप अनुशासन का आदर्श उपस्थित करते हैं। देश की समृद्धि बौद्धिक, आर्थिक और शारीरिक उन्नति पर निर्भर करती है इसके लिए सदियों की निराशा के वातावरण को हटाकर उद्योगशील बनना चाहिए।

"अपनी शक्ति को निरर्थक न गवाँ कर अपने सामने उच्च आदर्श रखकर छात्रों को अपनी योग्यता और शक्ति से समाज को आगे बढ़ाना चाहिए।

"विश्व में शान्ति स्थापित करना हमारे देश का आदर्श है। पूर्व और पश्चिम के देशों में विचारों के मतभेद होते हुए भी मानवता के सिद्धान्त एक हैं। प्रत्येक देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ उनकों दूषित कर अनेकता पैदा कर देती हैं। हमें उन अनेकताओं में से एकता को सामने लाकर विश्व में शांति स्थापित करना है। सम्प्रदायों और विचारों की विभिन्नता से विश्व में सदैव संघर्ष होते रहे हैं। किन्तु बाद में सभी विचार साथ साथ बने रहे। आज साम्यवाद और साम्य विरोधी विचारों में संघर्ष चल रहा है किन्तु दोनों को साथ भी रखा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"धर्मनिरपेक्ष राज्य होने पर हमने धर्म और अध्यात्म की उपेक्षा नहीं की है। हम विश्वधर्म के उपासक हैं। अन्य धर्म इसकी शाखाएँ मात्र हैं। हमारे धर्म में संकुचित साम्प्रदायिकता को स्थान न देकर सही विचारों को स्थान दिया गया है।

"रक्तपात के द्वारा मतभेद शांत नहीं हो सकता। उसके बाद भी मतभेद बने रहेंगे। अतः अभी से उनके शांतिपूर्ण समाधान का यत्न करना चाहिए। सदियों की पराधीनता के कारण हमारे समाज और संस्कृति में जो बुराइयाँ आ गई हैं उनको दूर करने का उत्तरदायित्व भी नवयुवकों पर ही है। जीवन के नये मूल्यों को समझकर समाज को आगे बढ़ाने के लिए नवयुवकों को कटिबद्ध रहना चाहिए।"

जैन संस्था का आदर्श

इस वर्ष २५ जून को मद्रास में एक नए जैन कॉलेज का उद्घाटन हुआ है। वहाँ के जैन समाज ने उत्साहपूर्वक लगभग चार लाख रुपया एकत्र किया था। इसी रकम से यह कॉलेज शुरू किया गया है। भारत में जैनों द्वारा चलाए जाने वाले अनेक हाईस्कूल व कॉलेज हैं। इनके अतिरिक्त अनेक छोटी मोटी पाठशालाएँ भी हैं जो जैनसमाज के धन के बल पर चल रही हैं। इन सारी संस्थाओं में से कुछ संस्थाएँ बहुत-अच्छी स्थिति में हैं और कुछ की आर्थिक स्थिति सन्तोषप्रद नहीं है। दोनों प्रकार की संस्थाएँ अपने अपने ढंग से चल रही हैं।

हमारे सामने एक प्रश्न है—क्या जैनों को इन संस्थाओं के पीछे अपना धन व्यय करना चाहिए? क्या हाईस्कूल और कॉलेजों के पीछे खर्च होने वाले पैसे से जैन संस्कृति का पोषण होता है? जहाँ तक जैन हाईस्कूलों और जैन कॉलेजों के पाठचक्रम का प्रश्न है, उसमें और अन्य हाइस्कूलों तथा कॉलेजों के पाठ्चक्रम में कोई अन्तर नहीं है। प्रत्येक हाइस्कूल तथा कॉलेज किसी बोर्ड अथवा यूनिवर्सिटी से प्रमाणित होता है, ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक है कि वहाँ उसी बोर्ड अथवा यूनिवर्सिटी का पाठचक्रम रहे। अतः पाठचक्रम की दृष्टि से जैन हाइस्कलों तथा जैन कॉलेजों का जैन संस्कृति के लिए कोई उपयोग नहीं। इनकी उपयोगिता के लिए एक हेतु यह हो सकता है कि कॉलेज या हाईस्कूल कमेटी यदि चाहे तो उनमें जैन अध्यापक नियुक्त कर सकती है। इस प्रकार जैन अध्यापकों को अपने जीवन-यापन में काफी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता मिल जाती है। इस हेतु का सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं। केवल जैन अध्यापकों को कार्य में लगाने के लिए संस्थाएँ खोलने का कोई भी अर्थ नहीं। दूसरा हेतु यह है कि एकाध घंटा जैन विचारधारा की शिक्षा दी जा सकती है। इससे छात्रों में जैनत्व के संस्कार पड़ेंगे और हमारी भावी पीढ़ी जैन संस्कृति का विशेष उपकार कर सकेगी। यह हेतु भी ठीक नहीं। आज किसी भी विचारधारा का अनिवार्य शिक्षण वर्जित है। कोई संस्था किसी छात्र पर इस बात का दबाव नहीं डाल सकती कि वह अनिवार्य रूप से अमुक विचारधारा का अध्ययन करे। दूसरी बात यह है कि जैन विचारधारा के अध्ययन-अध्यापन के लिए स्वतन्त्र संस्था खोली जा सकती है जिसमें केवल इसी विषय की शिक्षा दी जाए। इससे कम व्यय में अधिक लाभ हो सकता है। उदाहरण के लिए चार लाख रुपये में स्वतन्त्र रीति से जैन विचारधारा के प्रचार के लिए एक विशाल एवं उपयोगी संस्था खुल सकती है और वह ऐसा विशाल प्रामाणिक साहित्य एवं प्रामाणिक विद्वान् तैयार कर सकती है जो जैन इतिहास में एक अद्वितीय चीज होगी। इन सारी बातों को दृष्टि में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि जब तक कोई भी जैन संस्था जैन संस्कृति के प्रचार एवं विकास के लिए सक्रिय कदम नहीं उठाती, उसका जैन विचारधारा की दृष्टि से कोई उपयोग नहीं। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक जैनसंस्था जैनसंस्कृति के विकास की दृष्टि से कोई न कोई ऐसा कार्य अपने हाथ में अवश्य ले जिसे वह निभा सके और इस प्रकार के कार्य में अधिक से अधिक धन लगाने के लिए तैयार रहे। प्रामाणिक जैन साहित्य का प्रकाशन, अपने विषय के अधिकारी विद्वानों की तैयारी आदि ऐसे कार्य हैं जिनसे वास्तव में जैन विचारधारा का प्रचार हो सकता है। प्रचार का अर्थ यह नहीं कि सब जैन बन जायें। जैन विचारधारा जिस रूप में उपलब्ध है उस रूप में दुनिया के सामने आ जाय, यही सबसे बड़ा प्रचार है। इस काम को करना प्रत्येक जैन संस्था का पवित्र कर्तव्य है।

—मोहनलाल मेहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानसापेक्ष है—

—प्रो० विमलदास जैन, एम० ए०, एल० एल० बी०

संसार और जीवन को समझने के लिए मनुष्य अनादि काल से प्रयत्न करता चला आ रहा है। और ठीक भी है, जब तक इनको न समझ ले संसार में जिए किस प्रकार ? संसार और जीवन की अज्ञानता और निःसारता उसके चित्त में क्षोभ उत्पन्न करती है और उससे वह दुःखी होता है। दुःख का अनुभव ही मनुष्य को सुख की ओर झुकाता है। संसार के सब दर्शनों और धर्मों का मूल दुःखानुभव में है। यदि जगत् में दुःख न होता तो कोई भी प्राणी उसे दूर करने का प्रयत्न न करता। सुख की खोज और दुःख का नाश मनुष्य जीवन का सर्वदा लक्ष्य रहा है।

किन्तु वैज्ञानिक लोग इसके विपरीत जीवन और जगत् की समस्या को समझाने के लिए कुतूहल को कारण मानते हैं। कुतूहल हमारे अन्दर उत्सुकता पैदा करता है। हमारी उत्सुकता हमें चिन्तनशील बनाती है। जब हम किसी वस्तु के बारे में चिन्तन करते हैं तब उसमें विरोधी बातें देखकर संशयापन्न हो जाते हैं। यह संशय हमें किसी वस्तु की निश्चयात्मकता पर स्थिर नहीं रहने देता। कौए की आँख के समान हमारा ज्ञान दोनों पथों पर दौड़ता रहता है। किन्तु यह संशय तो हमारे अन्दर बड़ी बेचैनी पैदा करता है और संशय में अधिक काल तक रहने पर हम एक बड़ी वेदना को अनुभव करते हैं और चाहते हैं कोई निश्चयात्मक तत्त्व मिल जाय जिससे हमारी यह वेदना दूर हो। इस वेदना को दूर करने के प्रयत्न ने ही हमारे बहुत से विज्ञान और कलाओं को जन्म दिया है। इसके अतिरिक्त संशय होने पर हम वस्तुओं के विविध रूपों की परीक्षा करने लगते हैं। परीक्षा का अर्थ होता है किसी वस्तु के स्वभाव या रूपों को अनेक विकल्पों द्वारा विचार करना। उनमें से जो विचार अधिक बलवान होता है उसकी प्रबलता के कारण हम निर्बल विचार को छोड़ देते हैं। इस प्रकार विचारों का चुनाव करना प्रत्येक प्राणी की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। यथार्थ में देखा जाय तो प्रतीत होगा कि विचार के चुनाव ने ही संसार में अनेक सिद्धान्तों और वादों को जन्म दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्य-अनित्य, एक-अनेक, सामान्य-विशेष, सुख-दुख कुतूहल-अकुतूहल इत्यादि सब आपेक्षिक शब्द हैं—एक के बिना दूसरे का ज्ञान नहीं होता। भूख में, शीत में, आतप में, निर्धनता में, अज्ञान में, अप्रतिष्ठा में, किसी वस्तु के अभाव में मनुष्य दुःख का अनुभव करता है और चाहता है कि इन दुःखों को दूर करूँ। प्रायः करके संसारी मनुष्य इन कष्टों को दूर करने में ही अपने जीवन को समाप्त कर देता है। कारण जीवन की प्रगति में ये इतने बाधक होते हैं कि उसे आगे बढ़ने ही नहीं देते। यदि देखा जाय तो मालूम होगा कि संसार में अधिक संख्या इस प्रकार के मनुष्यों की ही है जो अधिकतर आधिभौतिक कष्टों को दूर करने में ही प्रयत्नशील रहते हैं। इसी प्रकार उनका जीवन समाप्त हो जाता है। जीवन-यात्रा पुनः आरम्भ हो जाती है। इसी का नाम भव-चक्र है।

इस भव-चक्र से निकलने के प्रयत्न का नाम धर्म है। धर्म धारण करने से होता है। धर्म उत्तम सुख के मार्ग में लगाने के उपाय को कहते हैं। धर्म विशेष प्रकार के क्रियाकाण्ड को कहते हैं। लेकिन इन व्यावहारिक धर्म के स्वरूपों को परित्याग कर वस्तुस्वभाव रूप धर्म को ही आधार मान कर मनुष्य को प्रयत्नशील होना चाहिए। वस्तुस्वभाव को समझ लेना ही सत्य मार्ग का ज्ञान है। इसी को हम धारण कर सकते हैं। इससे ही उत्तम सुख की प्राप्ति हो सकती है। हमारे क्रियाकाण्ड भी इसके ज्ञान होने पर ही सफल हो सकते हैं। यथार्थ में सत्य-मार्ग के ज्ञान से ही संसार का पथिक अपने जीवन की राह पर चलकर गन्तव्य लक्ष्य पर पहुँच सकता है। किन्तु सत्यमार्ग का ज्ञान हो कैसे ?

इस दिशा में अनेक आत्मवेत्ताओं, अवतारों, पैगम्बरों, ऋषियों और मुनियों ने प्रयत्न किये हैं और उनके प्रयत्न ऐतिहासिक ज्ञान के रूप में हमारे सामने विद्यमान हैं। मनुष्य इनको पढ़ते हैं और पढ़ाते हैं। वे इन मार्गों पर चल कर संसार और जीवन की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। इन्हें हम भिन्न भिन्न प्रकार की दार्शनिक या वैज्ञानिक पद्धतियाँ कहते हैं। इन दार्शनिक और वैज्ञानिक पद्धतियों पर विचार किया जाय तो हमें प्रतीत होगा कि इसके द्वारा हम विश्व के एक ऐसे चौराहे पर लाकर खड़े कर दिये जाते हैं जहाँ से हमें अनेक रास्ते दीखते हैं और हम भ्रम में पड़ जाते हैं। हम अपने आप को पूछते हैं "अरे! हम कहाँ हैं? कहाँ जायें? कौन से मार्ग पर चलें? क्या इनमें से किसी मार्ग पर चल कर हम अपने गन्तव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्य पर पहुँच जायँगे । बस, हम अपना सिर पकड़ कर वहीं बैठ जाते हैं। हमारे जीवन को निराशा के बादल घेर लेते हैं । रोते हैं; पीटते हैं; चीखते हैं; लेकिन कोई पथप्रदर्शक नहीं दीखता । घबराते हैं; बेहोश हो जाते हैं; फिर उठते हैं; देखते हैं; फिर गिर पड़ते हैं । यह घटना प्रत्येक के जीवन में घटती है। इस प्रकार की मनुष्य की अवस्था को हम चाहें तो एक बिन्दु को केन्द्र में मानकर उससे अनेक मार्गरूप रेखाओं को खींच कर प्रकट कर सकते हैं ।

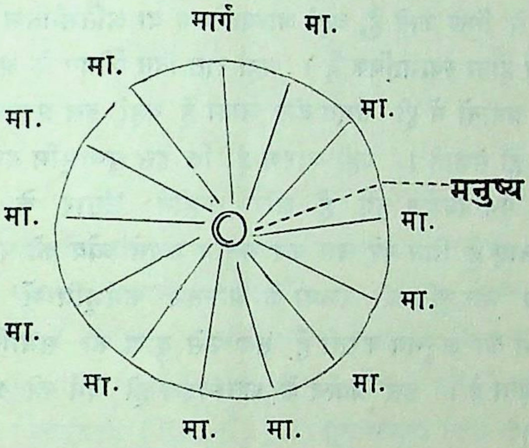

इतने में कुछ और रास्तगीर आ जाते हैं । हम उनसे पूछते हैं, "भैया ! हमें जाना है; हमें रास्ता बतला दो । यहाँ तो अनेक रास्ते हैं कहाँ जायें, कैसे जायें ?" कोई कहता है, "इस रास्ते से जाओ, तुम यथेच्छित ध्येय पर पहुँच जाओगे ।" दूसरा कहता है, "आप इस मार्ग का अवलम्बन कीजिए; शीघ्र ही जहाँ जाना चाहते हो, वहाँ पहुँच जाओगे; कोई दिक्कत न होगी ।" तीसरा कहता है "अरे भाई ! ये तुम्हें गुमराह करते हैं; तुम इस पथ से चलो; ठीक स्थान पर पहुँच जाओगे ।" इसी प्रकार अन्य लोग भी मार्ग प्रदर्शन करने लगते हैं । किन्तु वह वहाँ का वहीं सांख्य के कूटस्थ नित्य पुरुष की तरह खड़ा रहता है ।

ये सब बातें सुन कर भोले-भाले प्राणी का दिल घबरा जाता है और वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो कर चुप बैठ जाता है । सोचता है,—करें तो क्या करें ! कुछ देर बाद फिर सोचता है "अच्छा, इनमें से कोई तो सच्चा होगा; चलो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी एक के कहने के अनुसार चलो, शायद गन्तव्य के लक्ष्य पर पहुँच जायें। इस प्रकार प्राणी एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे, तीसरे के बाद चौथे मार्ग का ग्रहण करता चला जाता है। इतने में जीवन-यात्रा समाप्त हो जाती है। फिर परिभ्रमण करने लगता है। इसी प्रकार के परिवर्तन करता हुआ जीव भटकता फिरता रहता है और अनन्तकाल बिता देता है। संसार के प्रत्येक प्राणी के जीवन का यही सिलसिला है।

शस्य-श्यामला भारत भूमि पर जहाँ जीवन के साधन और आवश्यक पदार्थ सुगमता से मिल जाते हैं, वहाँ आध्यात्मिक या अतिभौतिक गवेषणा में मनुष्य की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। जहाँ रात दिन जीवन के आवश्यक पदार्थों की प्राप्ति के प्रयत्नों में ही समय बीत जाता है वहाँ इस प्रकार की विचार-धारा पैदा नहीं हो सकती। यही कारण है कि इस पुण्यभूमि पर इतने तीर्थंकर, अवतार, पथ-प्रदर्शक हुए हैं और उन्होंने संसार के लोगों को उत्तम मार्ग बतलाए हैं जिन पर चल कर मनुष्य अपने ध्येय को प्राप्त कर सकते हैं। आनन्दमय भोगभूमि की रचना के अनन्तर कर्मभूमि में जब मनुष्य संसार-जन्य दुःखों का अनुभव करता है तब उसे दुःख की समाप्ति के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। इस प्रयत्न के फलस्वरूप ही धर्म की प्रवृत्ति का आरम्भ होता है।

किसी वस्तु के यथार्थ-ज्ञानरूप धर्म को जानने के लिए एक खास दृष्टि की आवश्यकता होती है। संसार में भिन्न भिन्न मत प्रवर्तकों ने अपनी पृथक् पृथक् दृष्टियाँ स्थापित की हैं। जैसे, वेदान्तियों की अद्वैत दृष्टि है। अन्य लोगों की द्वैत दृष्टि है। किन्हीं की ईश्वरीय दृष्टि है। किन्हीं की नियति, काल, नित्य, अनित्य, व्यापक, अव्यापक आदि दृष्टियाँ हैं; जिनके द्वारा वे वस्तुतत्त्व को जानने का प्रयत्न करते हैं। वस्तुतत्त्व सत्य, सुन्दर, कल्याणमय, आनन्दमय, सत्यमय आदि अनेक रूपों को लिये हुए हैं। वह पूर्ण है। इसका ज्ञानप्राप्त करने के लिए जिज्ञासा होती है। जैसे रोगी मनुष्य के दिल में स्वस्थ मनुष्य को देख कर स्वास्थ्य लाभ की जिज्ञासा होती है वैसे ही संसार के दुःखों से दुःखी मनुष्य के हृदय में सत्य, सुन्दर, कल्याणमय, आनन्दमय, मूल्यवान वस्तुस्वरूप को जानने की अभिलाषा होती है। यद्यपि इसकी पूर्ति के लिए संसार में अनेक प्रकार के अनेक उपाय हैं किन्तु निम्नलिखित चार पद्धतियों को मैं मुख्य समझता हूँ और समझता हूँ कि इन्हीं चारों में संसार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक चिन्तन समाप्त है। वे पद्धतियाँ निम्नलिखित आकृतियों से अधिक स्पष्टरूप से प्रतीत होंगी :—

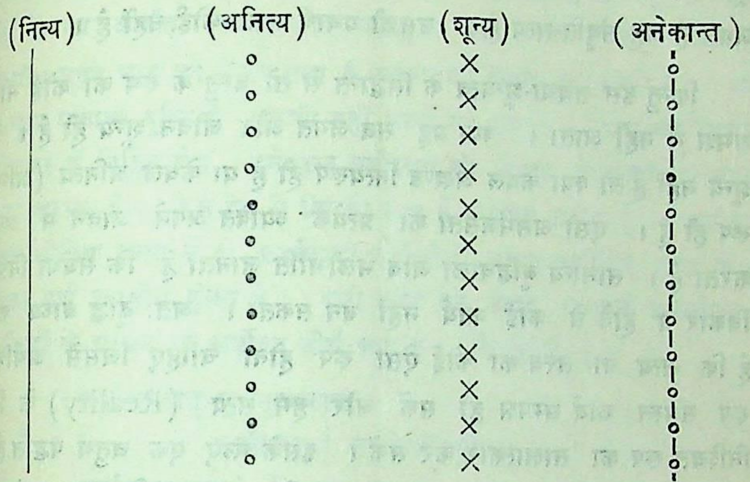

इनमें से प्रथम आकृति सांख्य तथा अद्वैत वेदान्तियों की विचार धारा को प्रकट करती है। यूनान में पारमेनाइडीज़ (Parmenides) जर्मनी में कान्ट (Kant) और हेगल (Hegel) तथा इंगलेण्ड में ब्रेडले (Bredlay और बोसान्केट (Bosanquet) आदि विद्वानों की भी विचारधारा करीब करीब ऐसी ही है। ये लोग वस्तुतत्त्व (Reality) को एक अखण्ड नित्य तत्त्व समझते हैं और कहते हैं कि यही सत्य है और इसके अतिरिक्त अन्य सब मिथ्या है या बाह्य मायारूप है।

द्वितीय आकृति भारत में बौद्धों की तथा यूरोप में बर्गसों (Bergson) और जेम्स (James) आदि की विचारधारा को प्रकट करता है। इस आकृति से यह प्रकट होता है कि स्व-लक्षण रूप एक क्षणस्थायी अस्थायी तत्त्व ही सत्य है। इनकी परंपरा अनादि काल से चली आ रही है और अनन्तकाल तक चली जायगी। यह पद्धति इस तथ्य की साक्षी है कि संसार में कोई वस्तु नित्य नहीं है। हम कह सकते हैं कि यह पद्धति पूर्व पद्धति से सर्वथा भिन्न है।

तृतीय आकृति उस पद्धति को प्रकट करती है जो उपर्युक्त दोनों पद्धतियों से ऊपर उठकर यह बतलाती है कि उक्त दोनों पद्धतियाँ परस्पर विरोधी धर्मों को बतलाती हैं। अतः सत्य (Reality) का यह रूप नहीं हो सकता। तत्त्व (Reality) इन दोनों से रहित शून्यरूप है। वे दोनों को उठाकर, इतना ही नहीं, इनके संयोगी भंग अर्थात् नित्यानित्य और अवक्तव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मों का भी निषेध करके तत्त्व को अभावरूप समझते हैं और कहते हैं कि वस्तुतत्त्व शून्य है। यह शून्यता ही परमार्थ-सत्य है। इसके अतिरिक्त जितना दृश्य जगत है वह संवृति-सत्य है। उसकी यथार्थ सत्ता कोई नहीं है।

किन्तु इस सर्वथा-शून्यत्व के सिद्धान्त से तो वस्तु के रूप का कोई भी अर्थ समझ में नहीं आता। क्या यह सब जगत और जीवन शून्य ही है। यदि शून्य नहीं है तो क्या केवल अखण्ड नित्यरूप ही है या केवल अनित्य (क्षणिक) रूप ही है। ऐसी असमंजसता को प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में अनुभूत करता है। सामान्य बुद्धिवाला जीव भलीभाँति जानता है कि सर्वथा नित्य में विकार न होने से कोई कार्य नहीं बन सकता। अतः बुद्धि बाध्य करती है कि सत्य या तत्त्व का कोई ऐसा रूप होना चाहिए जिससे अर्थक्रिया-रूप समस्त कार्य सम्पन्न हो सकें और हम सत्य (Reality) के किसी निश्चित रूप का साक्षात्कार कर सकें। इसके लिए एक चतुर्थ पद्धति है जो विचार या चिन्तन की चरम सीमा है। यदि ज्ञान या बुद्धि नामक संसार में कोई वस्तु है तो उसकी यहाँ समाप्ति है ज्ञान से हम इतना ही जान सकते हैं। इस विचारधारा के अनुसार वस्तुतत्त्व अनेकान्त रूप है, जिसकी सिद्धि स्याद्वाद से होती है। स्याद्वाद किसी एक पक्ष अर्थात् नित्य या अनित्य को एकान्तरूप से न लेकर वस्तुतत्त्व को किसी भी एकान्त के अभावरूप में देखता है। यहीं पर हमें ज्ञान की सापेक्षता के दर्शन होते हैं जो हमें बताती है कि यदि वस्तुतत्त्व को जानना चाहते हो तो वस्तुतत्त्व हमें सर्वदा अनेकान्तरूप में स्पष्ट प्रतीत होगा। चतुर्थ आकृति में जब हम ध्रौव्य या नित्यता की दृष्टि से देखते हैं तो हमें वेदान्तियों की तरह अखण्ड नित्य धारा प्रतीत होती है जो सब वस्तुओं में अनुस्यूत एकरूपता (Identity) को प्रकट करती है। जब उसी को उत्पाद और व्यय की दृष्टि से देखते हैं तो वह विनाशी या अनित्य या भेद (Difference) रूप प्रतीत होती है। यह सत्य का स्वरूप है और इसकी उपयोगिता अनुभव सिद्ध है। नित्य एकान्त और अनित्य-एकान्त के दोषों को दूर करने के लिए इससे उत्तम अन्य कोई बुद्धिजन्य उपाय नहीं हो सकता।

इसी हेतु से यह कहा जाता है कि सत्य, सुन्दर, कल्याणमय, मूल्यवान वस्तुस्वरूप अनेकान्तमय है। यह अनेकान्त अनेक धर्मों को लेकर चलता है। आचार्य समन्तभद्र ने युक्त्यनुशासन में तत्त्व का स्वरूप इसप्रकार बतलाया है 'तत्त्व-मनेकान्त-मशेषरूपम्'—तत्त्व अनेकान्त और अशेषरूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ आचार्य ने अनेकान्त को ही पूर्णरूप बतलाया हैं। एकान्त दृष्टियाँ पूर्ण नहीं हो सकतीं। अनेकान्त के अन्दर आपेक्षिक सिद्धान्त के अनुसार दोनों दृष्टियों का अर्थात् निश्चय और व्यवहार का समावेश किया जाता है। हम गौण-मुख्य भाव को लेकर सत्य के स्वरूप का निर्णय कर सकते हैं। सत्य का मूल्य एकान्त दृष्टि से कदापि नहीं मापा जा सकता। सत्य की कसौटी अनेकान्त में निहित है। अनेकान्त सापेक्षता को लेकर वस्तुतत्त्व का साक्षात्कार कराता है। इस हेतु से जितना ज्ञान है वह सब सापेक्ष है। सापेक्षता केवल भौतिक जगत में ही कार्यकारी नहीं होती अपितु अभौतिक जगत में भी इसका पूर्ण उपयोग होता है। इसी दृष्टि को लेकर आचार्य समन्तभद्र ने तीर्थंकरों के शासन को सर्वोदय तीर्थ कहा है। वे लिखते हैं—

सर्वान्तवत्तद् गुणमुख्यकल्पं,
सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं,
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।

अर्थात् वीर जिनेन्द्र का सर्वोदय तीर्थ सब धर्मों को लेकर चलता है। उक्त तीर्थ में गुण और मुख्य दोनों धर्म अपेक्षा को लिये हुए रहते हैं। जो तीर्थ अनेक धर्मों में पारस्परिक अपेक्षा का प्रतिपादन नहीं करता यानी उनको सर्वथा निरपेक्ष बतलाता है वह सब धर्मों से शून्य है। इस सर्वोदय तीर्थ का आश्रय लेने से ही समग्र आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। इसी कारण से इसका खण्डन भी नहीं हो सकता। सबसे बड़ी महत्ता इसकी इसमें है कि इस प्रकार के तीर्थ में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, सभी का अभ्युदय हो सकता है।

संसार में मनुष्य निरपेक्ष भावना को लेकर समुन्नत नहीं हो सकता। ज्ञान की सापेक्षता मनुष्य के हृदय से एकान्तता के आग्रह को निकाल कर सर्वोदय की भावना को पैदा करती है। संसार का कल्याण सापेक्षता के समभाव में है। तीर्थंकरों का आदर्श सापेक्ष दृष्टि को प्राप्त करना ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक था कवि !

एक था कवि !

कला-सृष्टि के क्षणों में वह अपने व्यक्तिगत राग-द्वेष से ऊपर उठ जाता था। उसके स्वरों में युग का स्पन्दन बोलता था। उसकी दृष्टि में मानवता दीख पड़ती थी। उसके हृदय में धरती की कसक और उच्छ्‌वास सोते थे। उसके अधरों में असत्य को ठुकराकर सत्य को अपनी बाहों में समेट लेने की प्यास थी। वह अपने युग को अपने सन्देश का अमृत देता था।

अपने एकान्त कक्ष में बैठा वह एक दिन अन्धकार की छाती पर प्रकाश की रेखाओं से जीवन के उत्थान का इतिहास लिख रहा था। सुदूर अम्बर में धूमिल मेघ उठ उठ कर सांध्य गगन का अङ्क भर रहे थे। अचानक किसी पग-ध्वनि से कवि की तन्मयता टूटी। उसने देखा स्वप्न-यान से उतरती हुई अप्सरा सी कोई अपनी अलकों में शशि-आनन घेरे उसके कक्ष में प्रवेश कर रही थी—शैशव सी सुकुमार, कंचन सी आकर्षक, अंग अंग में अनंग लहरा रहा था। उसके कपोलों पर अनुराग की आभा थी, आँखों में लिप्सा !

"कवि ! मैं स्वप्न-लोक की रानी कल्पना हूँ। एक प्रार्थना लेकर आई हूँ, अस्वीकार तो नहीं करोगे ?"

"क्या आज्ञा है, देवि ! लोकसेवा ही मेरा धर्म है।"—कवि की आँखों में सरलता थी।

"मैं तुमसे अनुराग करती हूँ। प्रणय की भिक्षा माँगने आई हूँ।"

अप्रत्याशित सा उत्तर पाकर कवि हतप्रभ हो गया।

"यह अकारण स्नेह कैसा भद्रे ! मैं तो सारे विश्व को प्रेम करता हूँ। अपने वैयक्तिक स्नेह की संकीर्णता में मुझे मत बाँधो। यह नश्वरता की दीक्षा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सुन्दरी! मैं विवश हूँ, तुम्हारा आग्रह स्वीकार नहीं कर सकूँगा। यह विश्व का रंगमंच किसी एक पात्र के लिए नहीं..."

"यह तुम्हारा भ्रम है कवि!"

कल्पना कुमारी का राग तीव्र होता जा रहा था—"एक लघु पाषाण-खण्ड की अर्चना कर व्यक्ति चिरसत्य को प्राप्त कर लेता है। हमारी मधुचर्या का एक क्षण भी अनन्त है—अमृत है कवि!"

कवि पर जादू चल गया। उसने आकर्षण की मदिरा पी ली। उसके हृदय में विजड़ित आकांक्षाओं के पथराये स्वर कराह उठे। वासना-विमुग्ध लोचनों में मादकता झलक उठी। वह बरसती हुई रूप-राशि में यौवन के समान बरस पड़ा।

कवि की आसक्ति दिन प्रतिदिन तीव्र होती जा रही थी। उसके बाद –

कवि के जीवन में अमावस का गहनतम अन्धकार छा गया। उसकी आत्मा का वह निश्छल स्नेह जो युगों से जीवन को प्रकाश और रस से अभिसिंचित करता आ रहा था, समाप्त हो गया। विश्व में क्रन्दन की लहरियाँ फैल रहीं थी। पर उसका हृदय समवेदना से रिक्त था।

वह अभी भी स्वप्नों के भस्मावशेष पर बैठा पुतलियों पर सपने सजाकर रस-गीत लिख रहा था।

उसकी ख्याति मलिन हो रही थी।

—श्रीशकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक हज़ार विद्वान मानव जाति का इतिहास तैयार करेंगे !

–सुश्री मोहिनी शर्मा

इस लेख का शीर्षक देखकर आप एकबारगी अवश्य ही चौंक उठे होंगे। पर मैं अपने इस लेख के शीर्षक को एकबार पुनः दुहरा कर कह रही हूँ कि संसार के चुने हुए एक हज़ार विद्वान प्रागैतिहासिक युग से लेकर १९५७ ई० तक का मानवजाति का इतिहास लिखकर ६ भागों में तैयार करेंगे। स्मरणीय है कि १९५७ ई० में यह ग्रंथ प्रकाशित होगा।

३० लाख शब्दों के इस इतिहास की योजना को उत्पन्न करने वाली "यूनाइटेड नेशन्स एज्युकेशनल, साइन्टिफिक एन्ड कलचरल आर्गेनिजेशन" नामक एक अन्तरराष्ट्रीय संस्था है। इस इतिहास के तैयार होने में ५ वर्ष का समय लगेगा और ६००,००० डालर खर्च होंगे। इस कार्य का संचालन "इन्टरनेशनल कमीशन फार ए साइन्टिफिक एन्ड कल्चरल हिस्ट्री आफ मेनकाइन्ड" के हाथों में होगा, जैसा कि १९५० के वसन्त में फ्लारेंस में हुई मीटिंग में यूनेस्को का प्रस्ताव पास हुआ था।

इस कार्य का उद्देश्य भूत और वर्तमान की समस्त जातियों, सभ्यताओं, संस्कृतियों व व्यक्तियों के ठीक व योग्य ज्ञान को संयुक्त रूप में इस ढंग से उपस्थित करना है, जिससे मानवजाति के क्रमशः विकास की स्थिति स्पष्ट हो सके तथा हरएक देश में मानवजाति की सामान्य संस्कृति व उन्नति के लिए किये गए प्रसिद्ध महापुरुषों के कार्यों का दर्शन हो सके।

इस अन्तरराष्ट्रीय कमीशन के प्रधान प्रो० पोलो बी० कारनीरों हैं जो यूनेस्को के लिए ब्राजील के स्थायी प्रतिनिधि हैं।

प्रमुख इतिहासज्ञ, अर्थशास्त्री, मनुष्यशरीर-रचनाशास्त्री, दार्शनिक तथा विद्या व विज्ञान के सभी क्षेत्रों के विद्वानों को इस इतिहास की रूपरेखा बनाने व इसको लिखने के लिए आमंत्रित किया जायगा। यह इतिहास ६ खण्डों में तैयार होगा तथा प्रत्येक खण्ड में ५००,००० शब्द होंगे। इसके प्रकाशन के बाद इतिहासज्ञ अन्तरराष्ट्रीय कालेजों और विश्वविद्यालयों के उपयोग के लिए दो खण्डों का एक संक्षिप्त संस्करण भी तैयार करेंगे। तथा इस संस्करण के प्रकाशन के पश्चात् ७०० पृष्ठों से भी कम का एक और संक्षिप्त संस्करण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार किया जायगा जो कुछ अंशों तक सचित्र ही होगा और सर्वसाधारण के उपयोग में आ सकेगा।

सम्पादन व प्रबंध आदि कार्यों के लिए तीन विद्वानों की एक समिति बनाई गई है जिसके प्रधान एक अमेरिकन विद्वान व येल यूनिवर्सिटी में इतिहास के प्रोफेसर डा० राल्फ ई० टर्नर हैं। श्री राल्फ ई० टर्नर काशी विश्व विद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर रहे हैं पिछले वर्ष जब आप भारत आए थे, तब हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस से इन्हें डाक्टरेट की सम्मानित उपाधि मिली थी। समिति के अन्य दो सदस्यों में एक तो फ्रांस के डा० चार्ल्स मोरेज व दूसरे सोरिया के डा० कान्सटेन्टाइन के० जुराक हैं। ६ बेसिक खण्डों को लिखने व उनके सम्पादन के लिए ७ प्रमुख विद्वानों को चुना गया है। उनकी सहायता के लिए ७० विद्वानों की एक सहायक समिति होगी। ३५ सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों की एक अन्य समिति का चुनाव इसी वर्ष होगा। वे सलाहकार के रूप में अपनी सेवाएँ देंगे। इस प्रकार इसकी विस्तृत योजना इस प्रकार है कि अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त ६०० विद्वानों से इस इतिहास को लिखने के लिए सहयोग लिया जायगा तथा ४०० अन्य विद्वानों को सम्पूर्णरूप में ग्रंथ की आलोचना व विश्लेषण के लिए कहा जायगा। इन ४०० विद्वानों के अन्य कार्यों में प्रमुखरूप से ग्रंथ की योजना, रूपरेखा बनाना, लेख आदि संगृहीत करना, और लिखने आदि का प्रबंध करना है।

जब तक इतिहास सम्पूर्ण रूप से तैयार नहीं हो जाता तब तक "जर्नल आफ वर्ल्ड हिस्ट्री" नामक एक त्रैमासिक पत्र निकाला जायगा जिसका प्रकाशन मार्च १९५३ से शुरू होगा। इसके सम्पादक कालेज डि फ्रांस के प्रो० डा० लूसिये फेब्रे होंगे तथा यह अंग्रेजी, फ्रेंच तथा स्पेनिश इन तीन भाषाओं में मुद्रित होगा। इस पत्र द्वारा संसार प्रसिद्ध विद्वानों के विचारों को जानने का कार्य अच्छी तरह संपन्न हो सकेगा।

इस पत्र के निम्न उद्देश्य हैं—

(१) अपने विषय के माने हुए विद्वानों की उन विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित करना, जिनपर कि यह इतिहास आधारित है।

(२) इतिहास की रूपरेखा व योजना तथा उसके लिए किस ढंग से कैसी २ सामग्री तैयार की जा रही है, इसके लिए आलोचना का क्षेत्र तैयार करना।

(३) मानव जाति के विकास पर एक सर्वमान्य सिद्धान्त स्थिर करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन ऐतिहासिक सभी प्रकार की समस्याओं पर विश्वजनीन रूप में विचार करना।

इस सम्पूर्ण इतिहास का नाम होगा "ए हिस्ट्री आफ मेनकाइन्ड" तथा उपशीर्षक होगा "मनुष्य : उसके संबन्धों एवं कार्यों का विकास !"

इतिहास के उपरोक्त ६ खण्ड भी अन्य बहुत से उपविभागों में विभक्त रहेंगे। ये उपविभाग लोगों के विशेष समूहों के निर्माण, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रबंधों के निश्चित भौगोलिक केन्द्र, विशिष्ट मानसिक बुद्धि संबन्धी धार्मिक और कलात्मक झुकाव तथा लोगों में स्थापित आपसी संबन्धों के विकास के आधार पर निश्चित किये जायँगे। इन प्रत्येक उपविभागों में अपने अपने विषय का सम्पूर्ण ज्ञान कराने योग्य रचनाएँ रहेंगी जो अपने अपने विषय को सरलता एवं सफलता से समझा सकने में समर्थ होंगी।

इस प्रकार पहला खण्ड प्रागैतिहासिक व प्राचीन काल से संबन्धित होगा तथा इसमें १२०० ई० पू० तक के लोगों व संस्कृतियों के विकास से संबन्धित सामग्री रहेगी। इस पहले के दो लेखक सम्पादक होंगे। एक तो अंग्रेज, प्राचीन शास्त्र वस्तुवेत्री श्रीमती जेक्वेट हाक्स, जो पूर्व इतिहास का विभाग तैयार करेंगी और दूसरे लन्दन के वारबर्ग इन्सटीट्यूट के डॉ० हेनरी फ्रेंकफोर्ट जो प्राचीन इतिहास का विभाग तैयार करेंगे।

दूसरा खंड क्लासिकल युग अर्थात् १२०० ई० पू० से ४०० ई० तक से संबन्धित रहेगा। यह केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में क्लासिक इतिहास के प्रोफेसर डॉ० ए० एच० एम० जोन्स द्वारा लिखा व सम्पादित किया जायगा।

पेरिस के मूसी गुमेट के डायरेक्टर डॉ० रेने ग्राइसेट तीसरे खंड के लेखक सम्पादक हैं। यह खंड एशिया युग से संबन्धित रहेगा। इसमें ४०० ई० से १३०० ई० तक का इतिहास रहेगा।

१३०० से लेकर १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक का समय (करीब १८१५ तक) यूरोपियन युग से सम्बन्धित रहेगा। यह चौथे खंड में आएगा और शिकागो यूनिवर्सिटी में यूरोपीय इतिहास के प्रोफेसर डा० लुई गोट्सचाक द्वारा लिखा जायगा।

पाँचवा खंड उन्नीसवीं शताब्दी—नैपोलियन के पतन से लेकर करीब १९१०

[शेष पृष्ठ २४ पर देखिए]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान की खोज में—

—मुनि श्री जयन्तीलाल जी महाराज

लगभग चार साल पहले उच्च अभ्यास के विचार को लेकर मुनि श्री जयन्तीलाल जी अपने वयोवृद्ध गुरुवर श्री जगजीवन जी महाराज के साथ एक जैन साधु की चर्या से पैदल विहार के कष्टों को झेलते हुए बनारस पहुँचे थे। आप की बुद्धि बड़ी तीव्र है और लगन व परिश्रम भी खूब है। इसीलिए केवल तीन चातुर्मास जितने थोड़े समय में ही आप नव्यन्याय और मीमांसा का गंभीर अध्ययन कर सके। आजकल आप कलकत्ता में विराजमान हैं।

हमने देखा है आप की ज्ञानपिपासा बहुत बलवती है। शरीर दुर्बल होने पर भी साहसी हैं और कष्टों से घबराते नहीं। सौराष्ट्र जैसे सुदूर प्रदेश से यहाँ ज्ञान की खोज में पहुँचे और उसमें सफलता प्राप्त की। आपका यह लेख दिलचस्प व लंबा है। इसे 'श्रमण' के दो तीन अंकों में देने का विचार है।

—संपादक

प्रवास से मुझे विशेष प्रेम रहा है। प्रवास की विविध कल्पनाएं मेरे हृदय में नवीन आकर्षण उत्पन्न किया करती थीं किन्तु उन कल्पनाओं को साकार बनाना फिर भी बाकी था। मेरे हृदय में विद्याभ्यास के प्रति एक लालसा जागृत हुई। मैं एक ऐसा अवसर प्राप्त करना चाहता था जो मेरी इस लालसा को शान्त करने में समर्थ सिद्ध होता।

उस समय मेरा प्रारंभिक अभ्यास चल रहा था। प्रसंग विशेष से सौराष्ट्र की यात्रा का आनन्द भी प्राप्त होता रहता था। इस प्रसंग पर मैं कुछ पात्र-परिचय दे देना भी आवश्यक समझता हूँ। मेरे गुरुदेव पूज्य श्री प्राणलाल जी स्वामी और हम चार शिष्य—इस ढंग से हमारा एक पंच-मंडल है। इस मंडल के दूसरे मुनि श्री जगजीवन जी महाराज मेरे पूर्वाश्रम के पिता होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी दीक्षा के प्रथम चातुर्मास के उपरान्त हम लोग दो विभागों में विचरते थे। एक विभाग वह था जिसमें मैं और जगजीवन जी महाराज थे। दूसरा विभाग मेरे गुरुदेव और अन्य मुनियों का था। मेरा अध्ययन-प्रेम ही इस विभाजन का कारण था। काशी-प्रस्थान के पूर्व का हमारा अन्तिम चातुर्मास कालावड़ ग्राम में था। गुरुदेव का चातुर्मास जामनगर में हुआ था। जामनगर सौराष्ट्र का एक प्रसिद्ध व प्रमुख नगर है जो कि 'नगर' के नाम से भी प्रसिद्ध है। कालावड़ जामनगर से ३० मील की दूरी पर अग्निकोण में स्थित है अर्थात् राजकोट से पश्चिम दिशा में बसा हुआ है।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रभाबाई साध्वी अपनी गुरुभगिनी सहित तीन वर्ष से हमारे साथ ही चातुर्मास किया करती थीं उन्हीं के साथ दो महिलाएँ दीक्षार्थिनी के रूप में अभ्यास करती थीं। पं० रोशन लाल जी अध्यापन कार्य किया करते थे। उपर्युक्त स्थिति में मेरी भावना पर विशेष रंग चढ़ता जाता था और अध्ययन की लालसा तीव्रतर बनती जाती थी। मैं यही सोचा करता था कि किसी भी ढंग से विद्याध्ययन के लिए किसी ऐसे स्थान पर पहुँचा जाय जहाँ पर तृप्ति की कुछ बूँदें उपलब्ध हों। तपस्वी श्री माणकचन्द्र जी की मारवाड़-यात्रा की प्रेरणा से मैं विशेष रूप से प्रेरित हुआ।

लम्बे प्रवास की कठिनाइयाँ और साथी का चुनाव मेरी मानसिक स्थिति को उद्वेलित कर देते थे। श्री जगजीवन जी महाराज की आयु साठ वर्ष उल्लंघन कर चुकी थी। उनका इस अवस्था का शरीर तपस्या के ताप से और भी कृश हो चुका था इस समय मेरे सन्मुख दो प्रश्न थे—कहाँ जाना और किस लिए जाना? इन दोनों प्रश्नों के चिन्तन के उपरान्त आगे का कल्पना लोक निर्मित करेंगे।

बम्बई में भारतीय विद्या भवन नाम की एक संस्था है। वहाँ पर विद्वद्वर्ग का अच्छा संगम है। मेरी जिज्ञासा इसी ओर प्रवृत्त हुई कि इस संस्था के विषय में विशेष परिचय प्राप्त किया जाय। इतना होते हुए भी मेरी नैसर्गिक रुचि सौराष्ट्र से उत्तर दिशा में ही बढ़ती थी। दक्षिण की ओर जाने में मन का साथ ही न था। बम्बई सौराष्ट्र से दक्षिण में ही पड़ता है। ऐसी स्थिति में बम्बई जाने का विचार स्थायी न रह सका। उत्तर दिशा की ओर दृष्टिपात करने से काशी ही एक ऐसा स्थान दृष्टिगोचर हुआ जहाँ पर प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्याओं का सर्वश्रेष्ठ संगम है।

जिस समय मैं राजकोट गुरुकुल में अध्ययन करता था उस समय पं० श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णचन्द्र जी दक (कानोड़ निवासी) ने एक बार काशी की अध्ययन-शीलता का सुन्दर चित्र उपस्थित किया था। उसी समय से मेरे हृदय में काशी-प्रेम पूर्णरूप से बस चुका था।

जिस समय हम जेतपुर में थे उस समय शान्तिभाई वनमाली सेठ वहाँ आये। मैंने तुरन्त शान्ति भाई से बनारस के विषय में विविध प्रश्न पूछे। उन्होंने सभी प्रश्नों का सन्तोषप्रद उत्तर देते हुए बनारस के श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम के विषय में भी अनेक बातें बतलाईं। विद्याश्रम की सम्पूर्ण व्यवस्था का परिचय दिया तथा श्री शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय आदि विभिन्न विभागों का विशद वर्णन किया।

विद्याश्रम की सुस्थिति से विशेष प्रेरणा मिली और एक नया प्रोत्साहन पैदा हुआ। श्रीयुत दलसुख भाई ने भी गोंडल में मुझे यह प्रेरणा दी कि बनारस में रहकर अध्ययन किया जाय तो बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हो सकती है। मेरे सतीर्थ भाई श्री प्राणलाल ने भी बनारस के वातावरण का संक्षिप्त परिचय दिया। भाई मगन लाल तथा पं० रोशन लाल जी से भी इस विषय में अनेक बातें पूछीं। इन सभी संयोगों का मेरे मन पर चिरस्थायी प्रभाव पड़ा। मैंने यह दृढ़रूप से निश्चय कर लिया कि बनारस ही विद्या-प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र है।

पहले महाराज श्री मंगलविजय जी भी अभ्यासार्थ बनारस आये थे, यह मैंने 'आर्हतदर्शन दीपिका' की प्रस्तावना में पढ़ा था। इस से मेरी विचार-धारा को और भी प्रोत्साहन मिला।

दूसरा प्रश्न यह था कि बनारस जाकर क्या किया जाय? किस विषय का अध्ययन किया जाय? मेरी प्रारम्भ से ही चर्चात्मक विषय में विशेष रुचि थी। राजकोट गुरुकुल में न्यायतीर्थ का पाठ्यक्रम पढ़ते समय युक्ति वाला भाग विशेष रुचिकर प्रतीत होता था, फिर वह चाहे पूर्वपक्ष हो या उत्तरपक्ष। गुरुकुल में संस्कृत पढ़ाने का कार्य श्री प्राणभाई करते थे। उस समय वे दोनों नेत्रों से नहीं देख सकते थे। अन्धावस्था की उनकी स्मरणशक्ति विशेष सम्मानार्ह थी। वे एक सदाचारी व हितशिक्षक अध्यापक थे। मैं उनसे पंचतन्त्र का अध्ययन करता था। वे मुझ से बहुत प्रसन्न थे। एक दिन उन्हों ने प्रश्न किया—"वैरागी! तुम्हारी आगे अभ्यास करने की इच्छा है किन्तु यह तो बताओ कि तुम्हें कौनसा विषय अच्छा लगता है?" "तर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दर्शन", मैंने उत्तर दिया। वे मध्ययुग के तर्क प्रवाह से चिढ़े हुए थे। वे कहने लगे—"विद्यार्थियों को अपने मन में इस खंडन मंडन का विष नहीं भरना चाहिए।" मैंने नम्रता से कहा—"जो तर्क खंडन करता है वही तर्क समन्वय भी कर सकता है। मैं तर्क का उपयोग खंडन में न करके समन्वय में करूँगा।" यह सुनकर वे प्रसन्न हो गए। मुझे भी अपने ऊपर विश्वास हुआ।

मेरी यह धारणा दृढ़ हो गई कि कठिन से कठिन दर्शन का अध्ययन करना चाहिए। दर्शन से सामान्य परिचय रखने वाले कहते हैं कि न्याय दर्शन बहुत क्लिष्ट है। न्यायग्रंथों की तर्क पद्धति अत्यन्त प्रबल है। जेतपुर में एक षड्दर्शन के ज्ञाता मिले। उनकी वास्तविक तार्किक शक्ति का तो क्या पता? दर्शन का मोह ही उनसे मिलने की प्रेरणा प्रदान करता था। उनसे मिला और अनेक प्रश्न पूछे। न्यायदर्शन की विशेषता पर उन्होंने कई बातें बतलाईं। इन सभी बातों से मेरा उद्देश्य और भी दृढ़ होता जाता था।

जामनगर में मुक्तावली को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। उसकी तीन बातें विशेष रूप से आकर्षक प्रतीत हुईं। प्रथम तो यह नाम ही कितना आनन्दप्रद है? मुक्तावली में तो मोती ही होते हैं न? मोतियों का स्पर्श करना कौन नहीं चाहता? और फिर यह तो मोतियों की लड़ी! ऐसी स्थिति में तो पूछना ही क्या? ग्रंथ के प्रारम्भ में 'सूर्यकान्त मण्यभाव-विशिष्ट चन्द्रकान्तमण्यभाव' युक्ति का रसास्वाद विशेष आकर्षक मालूम हुआ। उसमें 'मण्यभावविशिष्टवह्निकारणं और वह्निविशिष्टमण्यभावः कथं नोच्यते' यह कह कर विनिगम का विरह खड़ा किया गया है इससे और रस जागृति हुई। जैन दर्शन में देश काल के भेद की विपुल सामग्री पड़ी है। चतुर्भङ्गी की पद्धति—नवभङ्गी की पद्धति एक वस्तु में गहरी उतर कर विचार करती है। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस अध्ययन से बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है। इस के द्वारा तुलनात्मक दृष्टि विस्तीर्ण हो सकती है।

उपरोक्त विशिष्ट विधि भी चतुर्भङ्गी का ही रूपान्तर है। हम उन भङ्गियों को विशिष्ट शब्दों में नहीं रख सके इसीलिए चतुर्भङ्गी हमको सादी लगती है। यही चतुर्भङ्गी तर्कपूर्ण होने पर आकर्षक लगती है। यही आकर्षक रूप देखिए—

(१) चन्द्रकान्त मणि रहती है—सूर्यकान्त मणि रहती है
(२) चन्द्रकान्त मणि नहीं रहती—सूर्यकान्त मणि नहीं रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) चन्द्रकान्त मणि नहीं रहती—सूर्यकान्त मणि रहती है
(४) चन्द्रकान्त मणि रहती है—सूर्यकान्त मणि नहीं रहती

यह चतुर्भङ्गी हुई। इससे हमको तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि कौन सा भङ्ग प्रतिबन्धक है और कौन सा नहीं? प्रथम तीन प्रतिबन्धक नहीं हैं किन्तु चौथा प्रतिबन्धक है। इस प्रकार से चतुर्भङ्गी का कितना सुन्दर रूप हमारे सामने आता है। शब्दों का सौन्दर्य कितना रसमय हो जाता है! इस प्रतिपादन से मेरे मन में निश्चित धारणा हो गई कि तुलनात्मक दृष्टि से इसका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। नवीनता की प्राप्ति भी इसी के आधार पर हो सकती है।

तीसरा आकर्षण था 'वियति विक्षेपे धवलिमोपलब्धिः' कितना सुन्दर व छोटा सा काव्यमय वाक्य है; अलंकार का विलास भी क्या सुन्दर है! नीरस न्यायग्रंथों में कितनी सरसता होती है! नव्यन्याय के प्रति विशेष रुचि जागरित हुई। तर्क ग्रन्थों के विषय में तो मेरा पूर्ण विश्वास था कि ये ग्रंथ हास्यरस के भण्डार हैं। इन ग्रंथों को शुष्क कहना अज्ञान का परिचय देना है। मनुष्य के हृदय में जिस समय नवीन तर्क का प्रादुर्भाव होता है उस समय उसका हृदय कितना हँसता है, यह तो वही जान सकता है। वास्तव में तार्किक हृदय ही रसागार है। हास्यरस और तर्क शास्त्र में बहुत सामीप्य है। हास्य का पिता तर्क ही है, ऐसा कहा जाय तो भी अनुचित नहीं है।

इस ढंग से मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि नव्य न्याय के अभ्यास के लिए बनारस ही जाया जाय। अब मेरे सामने कुछ प्रश्न ऐसे रह गए थे जिनका समाधान बाकी ही था। १—दृढ़ संकल्प, २—सहकारी का चुनाव, ३—गुरु-आज्ञा, ४—अन्य दर्शन का अभ्यास क्यों? क्या जैनदर्शन अपूर्ण है? ५—क्या अभ्यास का विकृति से तादात्म्य या तदुत्पत्ति सम्बन्ध है? ६—मार्ग की तथा वहाँ की परिस्थितियों पर अधिकार। —क्रमशः

—अनु० मोहनलाल मेहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार का इतिहास—तीन शब्दों में !

–श्री महेन्द्र 'राजा'

अपने पिता की मृत्यु के बाद नवयुवक राजकुमार जब गद्दी पर बैठा तो उसने राज्य के सारे दरबारियों, विद्वानों व अन्य ऊँचे ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित कुलीन सरदारों को बुलवाया और कहा, "मेरे गुरु ने शुरू से ही मुझे इस बात की शिक्षा दी है कि राजाओं को चाहिए कि कम से कम ग़लतियाँ करें। जहाँ तक हो सके, हरएक कार्य को अच्छी तरह सोच समझकर करें और इसके लिए उन्हें भूतकालीन घटनाओं और उनके परिणामों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इसी उद्देश्य से मैं संसार के समस्त राष्ट्रों का इतिहास जानना चाहता हूँ। इसके लिए मैं आपको आज्ञा देता हूँ कि आप विश्व-इतिहास का निर्माण करावें और उसमें ऐसी कोई भी बात नहीं छूटने पावे जिसकी कमी उसकी सम्पूर्णता में खटके।"

विद्वानों ने राजकुमार की इस इच्छा को यथासम्भव शीघ्र ही पूर्ण करने का वादा किया और शीघ्र ही विश्व-इतिहास के निर्माण का कार्य प्रारम्भ करा दिया।

२० वर्ष बाद वे राजकुमार के सामने हाजिर हुए। उनके साथ १२ ऊँट थे और प्रत्येक ऊँट पर ५००–५०० ग्रन्थ लदे हुए थे। विद्वत्-परिषद के मंत्री ने राजसिंहासन की सीढ़ियों पर घुटने टेक कर कहा, महाराज! श्रीमान के दरबार के चुने हुए विद्वानों ने आपकी इच्छानुसार विश्व-इतिहास लिखकर तैयार कर लिया है और उनका यह सौभाग्य है कि आज उसे लेकर श्रीमान की सेवा में उपस्थित हुए हैं। कुल इतिहास ६००० विशाल खण्डों में समाप्त हुआ है और इसके अन्तर्गत वे समस्त बातें आ गई हैं जिनके द्वारा हम संसार के सभी राष्ट्रों के आचार-विचार, रीति रिवाज, शत शताब्दियों के उलटफेर आदि के संबन्ध में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। हमने अपनी ओर से इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया है कि कोई भी ऐसी बात न छूटने पावे जो आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हो। हमने प्राचीन इतिहास की समस्त बातों को इसमें संकलित किया है। जो हमारे सौभाग्य से सुरक्षित रूप में अब लिख कर तैयार हो गई है। और हमने स्थान स्थान पर भूगोल, इतिहास, राजनीति संबंधी आवश्यक चित्र एवं टिप्पणियाँ देकर इसे सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है। मात्र प्रस्तावना संबंधी ग्रंथ ही एक अलग ऊँट पर हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा ने इतना सब कुछ धैर्यपूर्वक सुनने के बाद कहा, "आप ने जो कुछ भी इतना कष्ट किया है उस के लिए मैं आप को धन्यवाद देता हूँ। पर आप तो जानते ही हैं कि मैं राज्यकार्यों में अत्यन्त व्यस्त रहता हूँ। प्रजा के कष्टों को दूर करने में ही मेरा अधिकांश समय निकल जाता है और अब जितने वर्षों में आपने यह इतिहास तैयार कराया है उतनी ही मेरी आयु घट गई है। अतः अपने सम्माननीय कवि महोदय की एक कविता के अनुसार तो मैं अब जिन्दगी के आधे रास्ते पर आ गया हूँ। पर फिर भी मुझे विश्वास है कि मैं पूर्ण आयु प्राप्त कर ही मरूँगा। मैं ऐसी आशा नहीं कर सकता कि इतने सारे ग्रंथों को अपने शेष जीवन में पढ़ कर समाप्त कर सकूँ। पर हाँ, ये ग्रंथ राजकीय ग्रंथागार में अवश्य रखे जा सकते हैं जहाँ अन्य प्राचीन ग्रंथ, लेख आदि सुरक्षित रखे हुए हैं। अतः अच्छा होगा कि अब यदि आप संक्षेप में मानव-जाति का इतिहास लिख कर लावें जिसमें सभी आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश रहे।"

विद्वत्-परिषद के सदस्य पुनः १५ वर्ष तक ग्रंथ निर्माण कार्य में संलग्न रहे और तब तीन ऊँटों पर १५०० ग्रंथ लाद कर लाये गए।

"महाराज," प्रधान मंत्री ने कुछ शिथिल आवाज में कहा, "अब हम पुनः इतिहास तैयार कर सेवा में उपस्थित हुए हैं। हमें इस बात का पूर्ण विश्वास है कि इस संक्षिप्त संस्करण में कोई भी आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण बात नहीं छूट पाई है।"

"ठीक है," राजा ने कहा, "पर मैं उन्हें पढ़ नहीं सकूँगा। अब मैं काफी वृद्ध हो गया हूँ। मेरे जीवन के अब कुछ ही वर्ष शेष रह गए हैं अतः इतने अल्प समय में इन ग्रंथों को पढ़ सकना सम्भव नहीं है। अब आप इन ग्रंथों को पुनः और भी संक्षेप में सारांश रूप में तैयार करें, और इस बात का विशेष खयाल रखें कि अधिक समय न लगने पावे।"

राजा की आज्ञानुसार विद्वत्-परिषद ने अबकी बार इतने संक्षेप में इतिहास तैयार कराया कि १० वर्ष बाद एक छोटे हाथी पर केवल ५०० ग्रंथ लाद कर लाए गए।

"मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये ग्रंथ श्रीमान को संतुष्ट कर सकेंगे और इनसे आप की इच्छापूर्ति हो सकेगी।" प्रधान मंत्री ने कहा।

"अभी भी मुझको संतोष नहीं है," राजा ने कहा, "आप तो जानते ही हैं कि अब मैं काफी वृद्ध हो चुका हूँ। अतः यदि आप चाहते हैं कि मैं मरने के पहले संसार का इतिहास जान लूँ तो आप इन्हें अत्यन्त ही संक्षेप में करवाइए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच वर्ष के बाद प्रधान मंत्री पुनः राजा के सामने उपस्थित हुआ। अब वह एक छोटे से गदहे पर एक मोटा सा ग्रंथ लाद कर लाया था।

"जल्दी करो," महाराज के अंग रक्षक ने कहा, "महाराज का अन्त समय निकट है।"

वास्तव में महाराज इस समय मृत्यु-शय्या पर थे। उन्होंने विद्वत्-परिषद के सदस्यों एवं उनके तैयार किए हुए ग्रंथ को उड़ती नजरों से देखा और फिर आह भर कर कहा, "अब मैं मानव जाति का इतिहास जानने की इच्छा मन में रखे हुए ही मर जाऊँगा। आह! मैं मरते दम तक अपनी एकमात्र इच्छा की पूर्ति न कर सका। अब मैं मानवजाति का इतिहास नहीं जान सकूँगा।"

महाराज! एक वृद्ध अनुभवी व्यक्ति ने, जो वहीं खड़ा हुआ था तथा स्वयं मृत्यु-शय्या पर पड़ने वाला था कहा, "मैं श्रीमान् को केवल तीन शब्दों में में ही संसार का इतिहास बतला रहा हूँ। 'वे जन्मे, कष्ट सहे और मर गए।' यही संसार का मानवजाति का इतिहास है।"

इस प्रकार उस राजा ने अपनी जीवन संध्या में संसार का इतिहास जान लिया।

[पृष्ठ १६ से आगे]

तक के समय से संबन्धित रहेगा। इस खंड का भार पेरिस की 'नेशनल लायब्रेरी आफ लीमा' के डायरेक्टर डा० जोर्जे बसाद्रे को सौंपा गया है।

छठा और अन्तिम खंड जो बीसवीं शताब्दी के प्रथम ६ दशकों से संबंधित होगा, 'मिनिस्ट्री आफ एक्सटर्नल अफेयर्स आफ दी रिपब्लिक आफ इंडिया' में इतिहास विभाग के डायरेक्टर डा० के० झचारियाह द्वारा लिखा जायगा। इस छठे खंड में वर्तमान समस्याओं पर–जो आज मानव समाज के सम्मुख उपस्थित हैं, सम्पूर्ण रूप से विचार करने का प्रयत्न किया जायगा।

यह इतिहास यूनेस्को की तीन मान्य भाषाओं–फ्रेंच, अंग्रेजी और स्पेनिश में प्रकाशित किया जायगा। बाद में संसार की अन्य भाषाओं में भी इसका प्रकाशन किया जायगा।

इस प्रकार यह इतिहास संसार के इतिहास साहित्य में अपने ढंग का अकेला व अनूठा होगा और यही एक ऐसा ग्रंथ होगा जो वास्तव में अन्तरराष्ट्रीय कहा जा सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ

का

विधान

सादड़ी बृहत्साधु-सम्मेलन का विधान और उसके प्रस्ताव श्रमण संघ के साधुओं के लिए बड़े ही काम की चीज़ है। उन्हें इनकी हर वक्त आवश्यकता भी पड़ेगी। दूसरे जैन साधुओं के लिए भी उनका महत्व कम नहीं। आज तक ये किसी भी पत्र में संशोधित और परिष्कृत रूप में नहीं छपे। जो छपे हैं, उनमें भी भाषा व भाव की बड़ी त्रुटियाँ रह गई हैं। हमने दोनों को परिष्कृत और अच्छे रूप में छापने का प्रयत्न किया है। फिर भी त्रुटियाँ रह गई हों, तो सूचना मिलने पर सुधार दी जायँगी। आशा है सभी साधु-साध्वी इनसे पूरा लाभ उठाएँगे। इसी विचार से हम 'श्रमण' में इन्हें अविकलरूप से नीचे दे रहे हैं। **—सम्पादक**

१—उद्देश्य

वर्तमान स्थानकवासी जैन समाज में भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का अस्तित्व है, उनमें प्रचलित भिन्न भिन्न परम्पराओं और समाचारियों में एकता लाकर समस्त सम्प्रदायों का एकीकरण करना, परस्पर प्रेम और ऐक्य की वृद्धि करना, मार्ग में आई हुई विकृतियों को दूर करना और एक आचार्य के नेतृत्व में एक अविभाज्य श्रमण संघ बनाना।

२—नाम

इस संघ का नाम 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' रहेगा।

३—कार्यक्षेत्र

श्री वर्धमान स्था० जैन श्रमण संघ का कार्यक्षेत्र इस प्रकार रहेगा—

(१) आत्मशुद्धि करने के लिए श्रद्धा-प्ररूपणा में एकता लाना और चारित्र में शुद्धता एवं वृद्धि करना तथा शिथिलाचार व स्वच्छन्दाचार को रोकना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) समस्त साधु-साध्वियों को सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत बनाने के लिए व्यवस्था करना।

(३) आगम-साहित्य का संशोधन व भाषांतर करना तथा जैनधर्म के प्रचार के लिए रुचिवर्धक नया साहित्य निर्माण करना।

(४) धार्मिक शिक्षण में वृद्धि हो ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करना।

(५) जैन तत्त्वज्ञान का व्यापक प्रचार करना।

(६) चतुर्विध श्रीसंघ में ऐक्य बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना।

४—श्री वर्धमान स्था० जैन श्रमण संघ में प्रविष्ट होने की विधि

(१) प्रत्येक सम्प्रदाय के साधु-साध्वी जी को अपनी अपनी सम्प्रदाय और साम्प्रदायिक पदवियों का विलीनीकरण करके (त्याग कर) उक्त संघ में प्रविष्ट होने का प्रतिज्ञापत्र भरना होगा।

(२) अपने गुरुजनों अथवा बड़े मुनिराज या साध्वी जी के समक्ष शुद्ध हृदय से आलोचना कर लेने पर श्रमणसंघ में प्रविष्ट होते समय छेद-पर्याय कम करके पूर्व की दीक्षा पर्याय मानी जायगी।

५—श्रमण संघ में प्रवेश होते समय का प्रतिज्ञापत्र

मैं मेरी सम्प्रदाय एवं साम्प्रदायिक पदवियों का विलीनीकरण करके श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ में प्रविष्ट होता हूँ। संघ के बंधारण के अनुसार आचार्य और मन्त्रिमण्डल की आज्ञानुसार प्रवृत्ति करूँगा।

मैंने अपने आचार्य, गुरुजन तथा बड़े मुनिराज (प्रवर्तिनी, गुरानीजी तथा बड़ी साध्वी जी) के समक्ष शुद्ध हृदय से आज तक लगे हुए जानते अजानते सभी दोषों की आलोचना करली है और छेदपर्याय को बाद करके आज मेरी दीक्षापर्याय········ ····की है।

मंत्रियों, गुरुजनों तथा श्रमणसंघ के आचार्यश्री को मेरे भविष्य काल के चारित्र के सम्बन्ध में कोई शंका उत्पन्न होगी तो वह सिद्ध होने पर आचार्यश्री और प्रायश्चित्त मंत्री जी की आज्ञानुसार मैं उसका प्रायश्चित्त करूँगा।

श्रमण संघ के बंधारण और समाचारी का मैं यथायोग्य पालन करूँगा—(करूँगी)

ता०··················१९५२ हस्ताक्षर मुनि

साध्वीजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—बन्धारण

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ का बन्धारण निम्न प्रकार होगा–

(१) इस संघ के एक आचार्य होंगे जिनकी निश्राय में संघ के सब साधु-साध्वी रहेंगे।

(२) आचार्यश्री के अतिवृद्ध अथवा कार्य करने में अक्षम होने पर मंत्रिमण्डल उपाचार्य को नियुक्त करेगा। और उपाचार्य आचार्यश्री की इच्छा पूर्वक सब हक सँभालेंगे।

(३) आचार्यश्री की अनुपस्थिति में मन्त्रिमण्डल आचार्य की नियुक्ति करेगा।

(४) शासन की सुव्यवस्था तथा आचार्यश्री की मदद के लिए आचार्यश्री की इच्छा से नियत संख्या का एक मंत्रिमण्डल होगा जो आचार्यश्री की आज्ञानुसार कार्य करेगा। मंत्रिमण्डल बनाते समय आचार्यश्री मुख्य मुख्य मुनिराजों की सलाह लेंगे।

(५) मंत्रियों के रिक्तस्थान की पूर्ति आचार्यश्री की सलाह के अनुसार मंत्रिमण्डल कर सकेगा।

(६) मंत्रिमण्डल की संख्या घटाने बढ़ाने और कार्यविभाग में आवश्यक फेर-फार करने की सत्ता आचार्यश्री को होगी।

(७) मंत्रिमण्डल को आवश्यक विभाग सुपुर्द किए जाएँगे। मंत्रिमण्डल में एक प्रधान मंत्री तथा उसकी इच्छानुसार दो सहायक मंत्री रहेंगे।

(८) प्रधानमंत्री सहमंत्रियों के सहयोग से मंत्रिमण्डल के कार्य की देखभाल करेंगे। समय समय पर आवश्यक समाचार आचार्यश्री को देते रहेंगे। तथा आचार्यश्री की आज्ञा व सूचनाओं को मन्त्रिमण्डल द्वारा कार्यान्वित करेंगे।

(९) मंत्रिगण एक से अधिक विभाग संभाल सकेंगे तथा संयुक्त विभाग की जवाबदारी ले सकेंगे।

(१०) आचार्यश्री यावज्जीवन के लिए होंगे।

(११) मन्त्रिमण्डल का कार्यकाल तीन वर्ष का रहेगा। तीन वर्ष के बाद आचार्यश्री मन्त्रिमण्डल चुनेंगे। उस समय मुख्य मुनिवरों की सलाह लेंगे।

६—पसंदगी

(१) आचार्यश्री जी की पसंदगी मन्त्रिमण्डल करेगा। उनके रिक्त-स्थान पर मंत्रिमण्डल नई नियुक्ति कर सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) मंत्रिमण्डल का सम्मेलन यथाशक्य प्रतिवर्ष अथवा तीन वर्ष में तो अवश्य होगा।

(३) बृहत्साधु-सम्मेलन ५ वर्ष में अथवा ७ वर्ष में तो आचार्यश्री मंत्रिमण्डल के परामर्श से अवश्य करावेंगे।

७—कार्यप्रणाली

सम्मेलनों का कार्य यथासंभव सर्वानुमति से होगा। बहुमत का प्रसंग आने पर $\frac{3}{4}$ बहुमत अर्थात् ७५% से होगा।

८—आचार्य के कर्तव्य और अधिकार

(१) साधु-साध्वियों के चातुर्मास के लिए आचार्यश्री विनतिपत्र आने पर अपनी सूचनाएँ देंगे और प्रधानमंत्री के द्वारा चातुर्माससमंत्री को योग्य आज्ञा प्रदान करने के लिए भिजवाएँगे।

(२) मंत्रिमण्डल और प्रधानमंत्री के कार्यों की देखभाल करेंगे और योग्य आज्ञा व सूचनाएँ प्रधानमंत्री को भेजेंगे।

(३) शेषकाल तथा चातुर्मास में साधु-साध्वियों का लाभ अधिक क्षेत्रों को मिल सके, धर्म का अत्यधिक प्रचार हो ऐसी व्यवस्था प्रधानमंत्री द्वारा कराएँगे।

(४) साधु-साध्वियों के ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि के हेतु, श्रद्धा-प्ररूपणा की एकता और चतुर्विध श्रीसंघ के उत्थान एवं कल्याण के हेतु यथायोग्य उपाय व कार्यवाही करते रहेंगे।

(५) श्रमणसंघ के सब साधु-साध्वियों पर आचार्यश्री का पूर्ण अधिकार होगा तथा दीक्षार्थी की योग्यता देख-समझ कर दीक्षा के लिए आज्ञा देंगे।

(६) श्रमणसंघ के बाहिर के साधु-साध्वियों को यथाविधि मिलाने का अधिकार आचार्यश्री को होगा।

(७) प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने और शासन की सुव्यवस्था के लिए आज्ञा व सूचनाएँ दे सकेंगे।

९—उपाचार्य के कर्तव्य व अधिकार—

(१) आचार्यश्री जितनी जितनी सत्ता और अधिकार देंगे, तदनुसार उत्तरदायित्व पूर्ण शासन संभालेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—मंत्रिमण्डल के कर्तव्य और अधिकार—

(१) योग्यतानुसार सुपुर्द किये हुए विभागों का कार्य संभालना और अमल में लाने के लिए साधु-साध्वियों को आज्ञा व सूचनाएँ देते रहना मंत्रिमण्डल का आवश्यक कार्य है।

(२) मन्त्रियों से परस्पर सहकारपूर्ण कार्य करना।

(३) आचार्यश्री व प्रधानमन्त्री की आज्ञा एवं सूचनाओं का पालन करना व कराना।

(४) अपनी कार्यवाही और गतिविधि से प्रधानमन्त्री तथा आचार्यश्री को सुपरिचित रखना।

११—प्रधानमंत्री के कर्तव्य और अधिकार—

(१) आचार्यश्री या उपाचार्यश्री की आज्ञा और सूचनाओं का पालन करना और मंत्रियों से कराना।

(२) मंत्रिमण्डल के कार्य की देखभाल रखना, उचित आज्ञा, सूचनाएँ एवं परामर्श मंत्रियों को देते रहना।

(३) सहमंत्रियों से उचित परामर्श लेते रहना।

(४) मंत्रिमण्डल के कार्य से सुपरिचित रहना और मंत्रिमण्डल की गतिविधि से आचार्यश्री तथा उपाचार्यश्री को सुपरिचित रखना।

१२—सहमंत्री के कर्तव्य और अधिकार—

(१) प्रधानमन्त्री को हर कार्य में सहयोग देना।

(२) अपने विभाग को उत्तरदायित्व के साथ पूर्णतया सँभालना।

१३—मंत्रियों के कर्तव्य और अधिकार

(१) मंत्रियों के अपने सुपुर्द किये गए विभाग को सुचारु रूप से चलाना।

(२) साधु-साध्वियों से प्रेमपूर्ण रीति से आज्ञा पालन कराना।

(३) अपने सहकारी मंत्रियों के साथ स्नेहपूर्वक कार्य संचालन करने में सहयोगी बनना।

(४) अपने कार्य की गतिविधि से प्रधानमंत्री को सुपरिचित रखना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) आचार्यश्री व उपाचार्यश्री और प्रधानमंत्री जी की आज्ञा एवं सूचनाओं को यथायोग्य पालन करना व कराना।

नोट—विधान में योग्य संशोधन करने की सत्ता आचार्यश्री को रहेगी। उस वक्त आचार्यश्री मंत्रिमण्डल की सलाह लेंगे।

१४—प्रायश्चित्त और पृथक्करण—

(१) उत्तरगुण सम्बन्धी छोटे अपराधों का प्रायश्चित्त साधु-साध्वियों के साथ में विचरने वाले बड़े साधु या साध्वी दे सकेंगे। परन्तु इसकी सूचना प्रायश्चित्त मंत्री को दी जायगी।

(२) बड़े [महाव्रतभंग रूप] अपराधों का प्रायश्चित्त इसी विभाग के मंत्री द्वारा होगा जिसकी सूचना प्रधान मंत्री और आचार्यश्री को देनी होगी। चतुर्थव्रत भंग के प्रत्यक्ष अपराध का प्रायश्चित्त प्रधानमंत्री और आचार्यश्री की सलाह से होगा।

(३) किसी भी मंत्री का अपराध हो तो प्रधानमंत्री द्वारा आचार्यश्री की सम्मति से प्रायश्चित्त होगा।

(४) प्रधानमंत्री का अपराध हो तो आचार्यश्री द्वारा प्रायश्चित्त होगा।

(५) आचार्यश्री को प्रायश्चित्त स्थान उपस्थित होने पर प्रधानमंत्री व सहमंत्रियों द्वारा होगा।

(६) प्रायश्चित्त का निश्चय न होने तक अपने साथ के साधु-साध्वी का आहार या वंदना-सम्बन्धविच्छेद किया जा सकेगा इसकी सूचना प्रायश्चित्त मंत्री को दी जानी चाहिए।

(७) आचार्यश्री व प्रधानमंत्री की आज्ञा बिना किसी साधु व साध्वी को कोई पृथक् नहीं कर सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ता० २७ अप्रैल १९५२ के मध्याह्न से ५ मई १९५२ के मध्याह्न तक

सादड़ी साधु-सम्मेलन में पास किये गए प्रस्ताव

—सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से ही पास हुए हैं—

शान्तिरक्षक का चुनाव

प्रस्ताव १—विचार-विमर्श के पश्चात् सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया है कि सभा का संचालन करने के लिए शान्तिरक्षक का पद पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज एवं व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज को दिया जाता है ।

दर्शक मुनियों को आज्ञा तथा रिपोर्टरों की नियुक्ति

प्रस्ताव २—विचार-विमर्श के बाद सर्वानुमति से निर्णय हुआ कि जो मुनि प्रतिनिधि नहीं हैं, वे दर्शक के रूप में उपस्थित रह सकते हैं उन्हें बोलने एवं परामर्श देने का अधिकार नहीं रहेगा और अपवाद रूप में श्री फिरोदिया जी (कान्फरेन्स के प्रेसिडेन्ट) भी बैठ सकते हैं ।

सर्वानुमति से यह पास किया जाता है कि गुजराती की रिपोर्ट लेने के लिए श्री चम्पकमुनि जी महाराज को एवं हिन्दी की रिपोर्ट लेने के लिए मुनि श्री आईदान जी महाराज को रिपोर्टर के तौर पर रखा जाय ।

विषय-निर्धारिणी का चुनाव

प्रस्ताव ३—पूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात् विषयनिर्धारिणी कमेटी का प्रस्ताव सर्वानुमति से पास हो गया और इसके लिए १५ सदस्यों का चुनाव किया गया :—

(१) पू० आनन्द ऋषि जी महाराज, (२) पू० हस्तीमल जी महाराज, (३) पं० मुनि प्यारचन्द जी महाराज, (४) उपा० अमरचन्द जी महाराज (५) पं० इन्द्रमल जी महाराज, (६) पं० श्रीमल जी महाराज, (७) उपा० प्रेमचन्द जी महाराज, (८) पं० मुनि लालचन्द जी महाराज, (९) पं० मुनि सौभाग्यमल जी महाराज, (१०) मधुकर मुनि मिश्रीलाल जी महाराज, (११) पं० मुनि सुशील कुमार जी महाराज, (१२) मरुधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्री मिश्रीलाल जी महाराज, (१३) मुनि श्री अम्बालाल जी महाराज, (१४) व्या० वा० श्री मदनललाल जी महाराज, और (१५) पं० पुष्कर मुनि जी महाराज। (ता० २७-४-५२ रात्री)

कार्य-प्रणाली

प्रस्ताव ४—जो प्रस्ताव होगें, वे यथाशक्य सर्वानुमति से अथवा बहुमत से-- अर्थात् जो प्रस्ताव ऐसे प्रसंग पर पहुँच जायँ कि उन्हें बहुमत से पास करना आवश्यक हो गया है तो वे ही प्रस्ताव बहुमत से—पास किये जा सकेंगे। बहुमत से तात्पर्य ३/४ अर्थात ७५% से लिया जायगा।

मत-गणना

प्रस्ताव ५—बहुत विचार-संघर्ष के बाद सर्वानुमति से यह निर्णय किया गया कि—वोटिंग (मतगणना) प्रत्यक्ष में भी लिया जा सकता है।

एक आचार्य के नेतृत्व में

प्रस्ताव ६—बृहत्साधु-सम्मेलन सादड़ी के लिए निर्वाचित प्रतिनिधि मुनिराजों ने यह निर्णय किया हैं कि अपनी अपनी सम्प्रदाय और साम्प्रदायिक पदवियों का विलीनीकरण करके "एक आचार्य के नेतृत्व में एक संघ" कायम करते हैं।

(ता० २८-४-५२ मध्याह्न)

संघ का नाम

प्रस्ताव ७—इस संघ का नाम **'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ'** रहेगा। (ता० २९-४-५२ प्रातः)

व्यवस्थापक मन्त्रिमण्डल

प्रस्ताव ८—शासन को सुविधा-पूर्वक प्रगति देने और सुव्यवस्था के लिए एक आचार्य के नीचे एक 'व्यवस्थापक मन्त्रिमण्डल' बनाया जाय।

मन्त्रिमण्डल की संख्या

प्रस्ताव ९—'व्यवस्थापक मन्त्रिमण्डल' के १६ सदस्य होंगे।

मन्त्रिमण्डल का कार्यकाल

प्रस्ताव १०—'व्यवस्थापक मन्त्रिमण्डल' का कार्यकाल तीन साल तक रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत्सरीपर्व-निर्णय

प्रस्ताव ११—संवत्सरी पर्वाराधन के विषय में कतिपय सम्प्रदायों में मत-भेद था, उन सभी सम्प्रदायों का एकीकरण करने के लिए दूसरे श्रावण तथा प्रथम भाद्रपद में संवत्सरी करने वाला जो बहुल पक्ष है, वह पक्ष संघ ऐक्य के हेतु "दो श्रावण हों तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद हों तो दूसरे भाद्रपद में संवत्सरी करना" प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है। (ता० ३०-४-५२ प्रातः)

पाक्षिकतिथि-निर्णय

प्रस्ताव १२—पाक्षिक तिथियों का निर्णय करने के लिए ८ साधुओं की कमेटी बनाई गई—१. पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज, २. पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज, ३. पूज्य श्री हस्तीमल जी महाराज, ४. युवाचार्य श्री शुक्लचन्दजी महाराज, ५. मुनि श्री कस्तूरचन्द जी महाराज, ६. उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज, ७. मरुधर मंत्री श्री मिश्रीलाल जी महाराज, ८. पं० श्री सुशीलकुमार जी महाराज।

तिथि-निर्णय कब से ?

प्रस्ताव १३—पाक्षिक तिथियों के संबंध में कमेटी का जो निर्णय हो वह आगामी वर्ष से माना जाय और आगामी वर्ष का पाक्षिक पत्र कमेटी के विचार से प्रकट हो।

दीक्षा के सम्बन्ध में

प्रस्ताव १४—(अ) 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' के मनोनीत आचार्य और व्यवस्थापक मंत्री, शास्त्र दृष्टि एवं लोकदृष्टि का द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार गंभीर विचार करके दीक्षार्थी की वय, वैराग्य, शिक्षण आदि की योग्यता का यथोचित निर्णय करें। (ता० २-५-५२)

(ब) 'श्री वर्धमान स्था० जैन श्रमण संघ' में जो दीक्षार्थी दीक्षा लेना चाहे वह आचार्यश्री या दीक्षा-मंत्री जी की आज्ञा से अपने अभीष्ट गुरुपद के योग्य, सुयोग्य मुनि को गुरु बना सकेगा। यह नियम आगामी सम्मेलन तक समझा जाए। आगामी सम्मेलन में इस पर पुनः विचार किया जायगा।

प्रतिक्रमण के सम्बन्ध में

प्रस्ताव १५—'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' के साधु-साध्वियों को देवसी, रायसी, पक्खी, चौमासी, और संवत्सरी का एक ही प्रतिक्रमण करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए और कायोत्सर्ग में देवसी व रायसी को ४, पक्खी को ८, चौमासी को १२ और संवत्सरी को २० लोगस्स का ध्यान करना चाहिए। (ता० २-५-५२

मुखवस्त्रिका का परिमाण

प्रस्ताव १६—मुखवस्त्रिका का परिमाण आत्म-अंगुल से चौड़ाई में १६ और लम्बाई में २१ अंगुल का होना चाहिए।

सचित्ताचित्त निर्णायक समिति

प्रस्ताव १७—सचित्ताचित्त निर्णायक कमेटी का सर्वानुमति से चुनाव हुआ—

(१) पूज्य आनन्दऋषि जी महाराज, (२) पूज्य श्री हस्तीमल जी महाराज, (३) उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज,)४) उपाध्याय श्री प्रेमचन्द जी महाराज, (५) पं० मुनि श्री प्यारचन्द जी महाराज, (६) पं० मुनि श्रीमल जी महाराज, (७) मरुधर मंत्री मिश्रीमल जी महाराज, और (८) पं० मुनि श्री सौभाग्यमल जी महाराज।

इलायची, पिस्ता, केले, अंगूर आदि फलों की सचित्त-अचित्तत्ता और ध्वनिवर्धकयन्त्र के संचालन में काम आने वाली बिजली और बेटरी की सचित्त-अचित्तत्ता का निर्णय यह समिति करेगी।

आचार्य का चुनाव

प्रस्ताव १८—सं० २००९ वैशाख शुक्ला ९ को श्री वर्धमान स्था० जैन श्रमण संघ के आचार्यश्री जैनधर्म दिवाकर साहित्यरत्न पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज साहब नियत किए जाते हैं और उपाचार्य पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज साहब नियत किए जाते हैं। यह प्रस्ताव सहर्ष प्रेमपूर्वक सर्वसम्मति से पास किया जाता है। (ता० ३-५-५२ प्रातः)

व्यवस्थापक मन्त्रिमण्डल का चुनाव

प्रस्ताव १९—व्यवस्थापक मन्त्रिमण्डल के १६ मंत्रियों का चुनाव—

(१) प्रधानमन्त्री—पं० श्री आनन्दऋषि जी महाराज। सहायक मन्त्री—(२) पं० श्री हस्तीमल जी महाराज और (३) पं० श्री प्यारचन्द जी महाराज। (४) पं० श्री पन्नालाल जी महाराज, (५) मरुधरकेशरी मिश्रीमल जी महाराज, (६) पं० श्री शुक्लचन्द जी महाराज, (७) पं० श्री किशनलाल जी महाराज, (८) धर्मोपदेष्टा फूलचन्द जी महाराज, (९) पं० श्री प्रेमचन्द जी महाराज, (१०) पं० श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज, (११) पं० श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घासीलाल जी महाराज, (१२) पं० श्री पुष्करमुनि जी महाराज, (१३) पं० श्री मोतीलाल जी महाराज (मेवाड़ी) (१४) पं० श्री समर्थमल जी महाराज, (१५) पं० श्री छगनलाल जी महाराज, (मरुधर) (१६) पं० श्री सहसमल जी महाराज ।

मन्त्रिमण्डल का कार्य-विभाग

प्रस्ताव २०—मंत्रि-मण्डल का कार्यविभाग नीचे लिखे अनुसार किया जाता है :—

१ **प्रायश्चित्त**···· पं० श्री आनन्दऋषि जी महाराज
,, ,, हस्तीमल जी ,,

२ **दीक्षा**··· ,, ,, समर्थमल जी ,,
,, ,, सहसमल जी ,,

३ **सेवा**··· ,, ,, शुक्लचन्द जी ,,
,, ,, किशनलाल जी ,,

४ **चातुर्मास**··· ,, ,, प्यारचन्द जी ,,
,, ,, पन्नालाल जी ,,

५ **विहार**··· ,, ,, मोतीलमल जी ,,
,, ,, मरुधर मिश्रील जी महाराज

६ **आक्षेप-निवारक**—,, श्री पृथ्वीचन्द जी महाराज
,, ,, मरुधर मिश्रीमल जी महाराज

७ **साहित्य-शिक्षण**—पं० श्री घासीलाल जी महाराज
,, ,, हस्तीमल जी ,,
,, ,, पुष्कर मुनि जी ,,

८ **प्रचार**— ,, ,, प्रेमचन्द जी ,,
,, ,, छगनलाल जी ,,
,, ,, फूलचन्द्र जी ,,

नोट :—इस मंत्रि-मण्डल का कार्यकाल तीन वर्ष तक रहेगा। यदि मंत्रि-मण्डल में कोई मतभेद हो गया हो तो आचार्यश्री फैसला करेंगे। मंत्रि-मण्डल यथाशक्य प्रतिवर्ष मिले, अगर न मिल सके तो तीसरे वर्ष अवश्य मिलना ही होगा। कोई मन्त्री कारणवश नहीं पधार सके तो अपनी सर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्ता, अधिकार देकर प्रतिनिधि बनाकर भेज देवे। यह मन्त्रिमण्डल अखिल भारतीय श्री वर्धमान श्रमण संघ के शासन का उत्तरदायित्व वहन करेगा। आक्षेप निवारक मन्त्री श्री वर्धमान स्था० जैन श्रमण संघ पर आये हुए आक्षेपों का निराकरण करेगा।

आचार्य पद प्रदान विधि

प्रस्ताव २१—आचार्य पद की चादर की रस्म वैशाख शुक्ला १३ (सं० २००९) बुधवार को दिन के ११।। बजे अदा की जायगी।

उसके पूर्व सब मुनि 'प्रतिज्ञापत्र' मय दस्तखत के तैयार रखेंगे, जो आचार्य पद पर विराजते ही आचार्यश्री के चरणों में भेंट कर देंगे।

संघ प्रवेश का प्रतिज्ञा-पत्र

प्रस्ताव२२—मैं मेरी सम्प्रदाय व साम्प्रदायिक पदवियाँ विलीनीकरण करके 'श्री वर्धमान स्था० जैन श्रमण संघ' में प्रविष्ट होता हूँ। मैं संघ के बंधारण के अनुसार आचार्य और मंत्रि-मण्डल की आज्ञानुसार प्रवृत्ति करूँगा।

मैंने अपने आचार्य, गुरुजन तथा बड़े मुनिराज (प्रवर्तिनी, गुरानी जी तथा बड़ी साध्वी जी) के समक्ष शुद्ध हृदय से आजतक लगे हुए जानते अजानते सभी दोषों की आलोचना कर ली है और छेदपर्याय को बाद करके आज मेरी दीक्षा-पर्याय............वर्ष की है।

मेरे भविष्य काल के चारित्र के संबंध में श्रमण संघ के आचार्यश्री और मंत्रियों एवं गुरुजनों को कोई शंका उत्पन्न होगी तो वह सिद्ध होने पर आचार्य-श्री और प्रायश्चित्त मंत्री की आज्ञानुसार मैं उसका प्रायश्चित्त करूँगा।

श्रमण संघ के बंधारण और समाचारी का मैं यथायोग्य पालन करूँगा।

मिति............................हस्ताक्षर.................................

(इस प्रतिज्ञापत्र के अनुसार ही इस नये संघ में सबको प्रविष्ट होना चाहिए)

चातुर्मास की विनती

प्रस्ताव २३—चातुर्मास संबंधी विनती पत्र माघ शुक्ला १५ तक आचार्य-श्री के पास भेज देने चाहिए। आचार्यश्री उन पर विचार-विनिमय करके फाल्गुन शुक्ला १५ तक चातुर्मास मन्त्री के पास भेज देंगे और चैत्र शुक्ला १३ तक चातुर्मास मन्त्री चातुर्मास की घोषणा कर देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण संघ की समाचारी

प्रस्ताव २४—वसति (मकान) के संबंध में स्थानक संबंधी निर्णय—

(१) पहले के जितने भी अलग अलग सम्प्रदायों के श्रावकों के धर्मध्यान करने के जो पंचायती स्थानक (मकान) हैं, उनका वर्तमान में जो भी नाम है, उन सबका और भविष्य में भी श्रावक संघ धर्मध्यान करने के लिए जो स्थानक (मकान) बनावें, उन सबका नाम "श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्थानक" रखना चाहिए।

(२) पहले के सभी धर्मध्यान करने के स्थानक जिन जिन के अधिकार में हैं, वे अधिकारी एक वर्ष में उन स्थानकों को "श्री वर्धमान स्थानक वासी जैन श्रावक संघ" को सौंप देवें। भविष्य में भी जो स्थानक पंचायती रूप से धर्मध्यान करने के लिये बनें, वे भी इस श्रावक संघ की अधीनता में रहें। पहले के जो जो स्थानक एक वर्ष में इस श्रावक संघ को नहीं सौंपे जायँगे तथा भविष्य में जो स्थानक पंचायती रूप से धर्मध्यान के लिए बनेंगे, वे इस श्रावक संघ के अधीन नहीं होंगे तो उनमें भी उक्त श्रमण संघ के साधु-साध्वी नहीं ठहरेंगे।

(३) शय्यातर—रात्री प्रतिक्रमण से लेकर फिर आज्ञा वापिस लौटाने तक शय्यातरत्व स्वीकार किया जाय। आज्ञा लौटाने के बाद अगर उसी गाँव में रहे तो आठ पहर तक शय्यातर के घर को टालना और यदि उस गाँव से विहार करने जैसी स्थिति हो तो शय्यातरत्व नहीं रह जाता।

(४) कोई पंचायती मकान क्लेशवाला हो तो तत्कालीन परिस्थिति का विचार कर उसमें उतरना नहीं।

(५) जिस मकान में शृंगारादिक फोटो, चित्र या दर्पणादि पर आवरण डाल दिया हो या उतार लिया हो, उस मकान में साधु-साध्वी ठहर सकते हैं। निर्दोष स्थान न मिलने पर उपर्युक्त स्थान में ठहरना पड़े तो एक रात्रि से ज्यादा न ठहरे।

(६) जिस गाँव में स्थानापन्न (ठाणापति) साधु-साध्वी हो, उस गाँव में यदि साधु-साध्वी विहार करते-करते पधारें तो स्थानापन्न साधु-साध्वी के स्थान पर ही उतरें। स्थान-संकोच के कारण यदि अन्य स्थान पर उतरना भी पड़े तो उनकी सेवा में बाधा न पड़े इसको दृष्टि में रखकर उनकी आज्ञा से उतर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) गाँव में विराजते समय अन्य वृद्ध, तपस्वी या रोगी साधु-साध्वियों की खबर, पूछ-ताछ और यथाशक्य सेवा करना (अन्योन्य के स्थानक पर जाते समय समझदार स्त्री या पुरुष को साथ में रखना)

प्रस्ताव २५—वस्त्र-पात्र सम्बन्धी—

(१) एक साधु या साध्वी चार पात्र से अधिक न रखे। यदि कारण-वश एकाध पात्र अधिक रखना पड़े तो आचार्यश्री तथा तत्संबंधी अधिकारी मन्त्री जी की आज्ञा से रख सकते हैं।

(२) पात्रों को सफेदा, बेलतेल व वारनीश के सिवाय रंग चढ़ाना नहीं।

(३) साधु ७२ हाथ और आर्या जी ९६ हाथ से अधिक वस्त्र रखें नहीं। रोगादि कारणवश अधिक रखना पड़े तो आचार्यश्री तथा तत्संबंधी मुनि की आज्ञा लेकर रखें।

(४) रंगीन या रंगीन किनारी वाले वस्त्र वापरना नहीं।

(५) अति बारीक वस्त्र जिसमें अंग दिखाई दे, ऐसे वस्त्र की चादर ओढ़ कर ठहरे हुए स्थान से बाहर गोचरी आदि के लिए जाना नहीं।

(६) वस्त्र पड़िहारा लेकर वापरना नहीं।

(७) धातु का पात्र कारणवश पड़िहारा लाए हो तो सूर्यास्त के पहले वापस दे देना।

प्रस्ताव २६—गोचरी विषयक—

(१) एषणा के ४२ दोष टालकर प्रासुक और ऐषणिक आहार-पानी साधु-साध्वी अपनी आवश्यकतानुसार लेवे, परन्तु नित्यप्रति एक ही गृहस्थ के घर से बिना कारण आहार लेवे नहीं।

(२) चुलिया (चणिवारा) वाले किवाड़, जमीन से घिसते हुए किवाड़ तथा लम्बे अरसे से बन्द हो ऐसे किवाड़ खुलवा कर कोई भी चीज लेना नहीं। गृहस्थ के बन्द किवाड़ खोलकर प्रवेश करना नहीं (जाली आदि का आगार)

(३) पड़िहारी लाई हुई औषधि सूर्यास्त के पहले वापस दे देना। कारण-वश पहुँचाया न जा सके या रखना जरूरी हो तो पास के किसी गृहस्थ के मकान में अथवा सेवा में (साथ में) रहने वाले भाई को दे देवें।

(४) गोचरी आदि एषणा के लिए गए हुए साधु-साध्वी गृहस्थों के साथ वार्तालाप करने के लिए ठहरें नहीं और न बैठें ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) पारस्परिक क्लेश की क्षमायाचना करके आहार-पानी करना।

(६) दो गाउ (२ कोस) से ऊपर ले जाकर आहार-पानी करना नहीं तथा प्रथम प्रहर का चतुर्थ प्रहर में करना नहीं।

(७) गोठ, दया, नवकारसी, स्वधर्मी वात्सल्य, संघ, विवाह, प्रीतिभोज, मृत्युभोज आदि जिमनवारों में गोचरी जाना नहीं। अनजान से उस तरफ गया हो तो बिना लिए ही वापस लौट जाय।

(८) एक दिन पहले का अचित्त जल (धोवन आदि) अथवावर्ण-गंध-रस चलित आहार ग्रहण करना नहीं।

(९) प्रत्येक साधु को एक दिन में तीन धार विगय से अधिक नहीं लगाना और प्रणीत आहार प्रतिदिन नहीं लेना, (वृद्ध, ग्लान, तपस्वी, विद्यार्थी का आगार)

(१०) साधु-साध्वी बाहर गाँव से दर्शनार्थ आये हुए गृहस्थियों से आहार ले सकते हैं। इसमें दिनों की मर्यादा की आवश्यकता नहीं।

२७—प्रकीर्णक

(१) सुबह का व्याख्यान और दुपहर का शास्त्रादि वाचन या चौपाई जो करीबन दो घण्टे तक होता है, उस समय के उपरान्त साधुओं के मकान में साध्वियों को और स्त्रियों को नहीं बैठना चाहिए और साध्वियों के स्थान में पुरुषों को नहीं बैठना चाहिए। यदि किसी खास कारण से बैठना ही पड़े तो साधु जी के मकान में समझदार पुरुष की और साध्वी जी के मकान में समझदार स्त्री की साक्षी के वगैर नहीं बैठना चाहिए। मांगलिक श्रवण, प्रत्याख्यान तथा संथारे के समय का आगार।

(२) अकेला मुनि, अकेली साध्वी या अकेली स्त्री के साथ बात करे नहीं। इसी तरह अकेली साध्वी जी, अकेले साधु या अकेले पुरुष से बातचीत नहीं करे। एकान्त स्थान में स्त्री के पास खड़ा रहना या बैठना भी नहीं।

(३) नासिका (तम्बाखू) सूँघने की नई आदत डालना नहीं। पहले की आदत को छोड़ना। नहीं छूटें तो चौविहार के पच्चक्खाण के बाद सूँघना नहीं।

(४) 'श्री वर्धमान स्थान० जैन श्रमण संघ' से बाहर किये हुए साधु-साध्वी के साथ आहारपानी करना नहीं; वन्दना व्यवहार, व्याख्यान, स्वाध्याय, पठन-पठनादि सहयोगी व्यवहार भी करे नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) साधु-साध्वियों को रुपये के लेनदेन में हस्तक्षेप करना नहीं। पुस्तक, शास्त्रादि खरीदने या छपवाने आदि के लिए भी किसी आदमी को रख कर लेनदेन कराना नहीं।

(६) साधु-साध्वियों ने कोई गद्य-पद्यमय साहित्य तैयार किया हो, वह तत्सम्बन्धी मन्त्री अथवा प्रकाशन समिति के पास पहुँचाना, योग्य साहित्य वहाँ से प्रकाशित होगा; परन्तु छापने-छपाने की प्रवृत्ति में साधु-साध्वी को भाग लेना नहीं।

(७) धातु की कोई चीज साधु-साध्वी अपनी निश्राय में रखे नहीं।

(८) पोस्ट की टिकिट अथवा टिकिट वाले कार्ड-कवर साधु-साध्वी रखे नहीं तथा गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को अपने हाथों से पत्र लिखना नहीं।

(९) बिना कारण साधु-साध्वी दर्शनादि के नाम से गृहस्थ के घर जावे नहीं।

(१०) साधु-साध्वी को छिद्रान्वेषी होना नहीं, परनिन्दा करना नहीं, कोई किसी से दोष हो गया हो तो आचार्य व तत्सम्बन्धी मन्त्री और संघाड़े के अग्रेसर के अलावा अन्य किसी के पास कहना नहीं।

(११) दोषों का प्रायश्चित्त हो जाने के बाद फिर कोई उसे प्रकट करे नहीं।

(१२) यंत्र, मंत्र, तंत्र, डोरा, तावीज, जड़ी-बूटी, तेजी-मंदी, फिचर आदि का प्रयोग बताना नहीं तथा ज्योतिष, भविष्य, औषधादि क्रिया का उपयोग गृहस्थ के लिए संसार विषयक करना नहीं।

(१३) साधु-साध्वी आपस में या गृहस्थ को क्लेशवर्धक, कठोर एवं अपमानसूचक शब्द कहे नहीं। भूल से अपशब्द निकल जाय तो क्षमायाचना करे।

(१४) दिन में वगैर कारण सोना नहीं। (वृद्ध, विहार, बीमार, तपस्वी का आगार) वगैर कारण सोना पड़े तो २५० गाथाओं का स्वाध्याय करे।

(१५) बिना कारण तैलमर्दन करना नहीं, कराना नहीं और अंजन आँजना नहीं।

(१६) जहाँ तक बन सके (यथाशक्य) सब वस्त्रपात्रों का दो वक्त प्रतिलेखन करना।

(१७) स्थविर, बीमार अथवा तपस्वी की सेवा में मंत्री जिसे रहने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज्ञा दे, वे साधु या साध्वी सहर्ष साथ रहकर सेवा करे। वैयावच्ची साधु-साध्वी जी का बन सके वहाँ तक प्रतिवर्ष स्थान परिवर्तन कर देना। अपवाद रूप में प्रवर्तक जी का निर्णय सब साधु-साध्वी मान्य रखेंगे।

(१८) सिर के बालों का वर्ष में दो बार लोच करना। वृद्ध मुनि अथवा जिसके कम बाल बढ़ते हों वे भले ही एक बार करे; परन्तु युवक साधु को तो दो बार करना ही चाहिए। संवत्सरी के दिन गाय के रोम जितने भी बड़े बाल किसी साधु-साध्वी के सिर पर नहीं रहने चाहिए।

(१९) तपस्या, दीक्षा-महोत्सव, संवत्सरी क्षमापणा, दीपावली के आशीर्वाद आदि की पत्रिकाएँ साधु-साध्वी अपने हाथ से गृहस्थ को लिखे नहीं, छपावे नहीं तथा दर्शनार्थ बुलावे भी नहीं।

(२०) फोटो पड़ाना नहीं, पाट, गादी, पगले आदि की जड़ मान्यता करना नहीं, कराना नहीं। समाधि, पगला और गुरु के चित्रों को धूप, दीप अथवा नमस्कार करने वाले को उपदेश देकर रोकना।

(२१) वस्त्र के, कंतान के, रब्बर के अथवा अन्य प्रकार के जूते अथवा मोजे पहनना नहीं।

(२२) गृहस्थ से हाथ, पाँव या सिर दबाना नहीं अथवा किसी प्रकार की सेवा कराना नहीं।

(२३) अविश्वासी घर अथवा दुकान पर किसी साधु-साध्वी को जाना नहीं। जिसके लिए रुपया आदि दिलाने का संकेत करना पड़े, ऐसे गृहस्थ पुरुष या स्त्री को साधु-साध्वी जी पास रखे नहीं।

(२४) गृहस्थ लोग अपने उत्सव के निमित्त जो सभा-मण्डप या मंच तैयार करें, उसको श्रमण संघ के साधु व्याख्यान आदि के लिए उपयोग में ला सकते हैं।

(२५) जिस क्षेत्र में वयोवृद्ध व शारीरिक कारण से सन्त विराजित हो वहाँ पर विदुषी प्रभाविका सती जी का आगमन हो गया हो और श्रीसंघ उन का व्याख्यान श्रवण करने के लिए उत्सुक हो तो वहाँ विराजित सन्तों की अनुमति से अवसर देखकर वे व्याख्यान दे सकती हैं। अवसर देखकर अन्य मुनि भी अनुमति देने की उदारता करें।

प्रस्ताव २८—सम्यक्त्व [समकित] देना—

सम्यक्त्व देते समय देव के रूप में वीतरागदेव को ही स्वीकार कराना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति का पालन करने वाले को ही गुरुरूप में स्वीकार कराना; 'अहिंसा परमो धर्मः' को धर्मरूप में स्वीकार कराना, श्रमण संघ के आचार्य को धर्माचार्य के रूप में स्वीकार कराना और तीसरे पद में उन्हीं का नामोच्चारण भी करना।

प्रस्ताव २९—श्रमण संघ में शामिल होने के लिए आमंत्रण—

(१) सादड़ी सम्मेलन में बृहद् गुजरात के संत (बरवाला के अतिरिक्त) नहीं पधारे हैं। स्थानकवासी जैनधर्म के किसी एक प्रान्त के मुनियों का अलग रहना ठीक नहीं। यह सम्मेलन हृदय से चाहता है कि गुजरात, कच्छ और सौराष्ट्र के मुनिवर इस श्रमण संघ में प्रविष्ट हो जावें। इसके लिए यह सम्मेलन यह भी चाहता है कि चातुर्मास के बाद सं० २००९ के माघ मास तक गुर्जर प्रान्तीय सम्मेलन होकर वे सब श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ से संघटित हो जावें। कान्फरेन्स और बृहद्-गुजरात के श्रावक इसके लिए पूर्ण प्रयत्न करें।

(२) संघ के बाहर रहे हुए साधु-साध्वियों को संघ में प्रवेश कराने का अधिकार दोनों आचार्य (आचार्य—उपाचार्य) और प्रधानमन्त्री को दिया जाता है कि वे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखकर उन्हें संघ में प्रविष्ट कर सकते हैं। यह श्रमण संघ उसे स्वीकार कर सकेगा।

(३) जिन जिन सम्प्रदायों के मुनिवर इस संघ में प्रविष्ट हुए हैं, वे अपनी अपनी सम्प्रदाय के सन्त-सतियों को संघ के विधानानुसार संघ में प्रविष्ट कराने का यथाशीघ्र प्रयत्न करें।

प्रस्ताव ३०—पारस्परिक व्यवहार—

'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' में प्रविष्ट होने वाले मुनियों के पारस्परिक ११ संभोग (व्यवहार) फरजियात होंगे (खुले रहेंगे) और बारहवाँ आहार पानी करने का मरजियात (ऐच्छिक) होगा।

प्रस्ताव ३१—श्रावक संघ को चेतावनी—

जो संघ सामूहिक रूप से इस श्रमण संघ के नियमों को बार बार तोड़ेंगे, वहाँ किसी साधु को चातुर्मास नहीं करना चाहिए। शेषकाल का आगार।

प्रस्ताव ३२—आभार प्रदर्शन व धन्यवाद

(१) सादड़ी साधुसम्मेलन में जो जो आचार्य, युवाचार्य, उपाध्याय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थविर आदि मुनिराज उग्र विहार करके अनेक परीषहों को सहन करते हुए पधारे हैं और बड़ी उदारता पूर्वक सम्मेलन को सफल बनाया है इसके लिए वे सब धन्यवाद के पात्र हैं।

(२) आचार्य, युवाचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक आदि पदवियों का संघ ऐक्य के लिए जिन जिन मुनिराजों ने विलीनीकरण किया है, एतदर्थ वे सब धन्यवाद के पात्र हैं।

(३) शान्ति-संरक्षक आचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज और पण्डित रत्न श्री मदनलाल जी महाराज के नेतृत्व में यह साधुसम्मेलन व्यवस्थित-रूप से सफल हुआ है उसके लिए हम सब प्रतिनिधि मुनि उनके हृदय से आभारी हैं।

(४) साधुसम्मेलन-नियोजक-समिति के मन्त्री श्री धीरज भाई के० तुरखिया ने साधुसम्मेलन के सम्बन्ध में जो प्रयत्न किया है और उनके इस शुभ कार्य में जिन जिन महाशयों ने सहयोग दिया है उन सब का यह साधु सम्मेलन सहर्ष उल्लेख करता है।

प्रस्ताव ३३—मंगल कामना—

(१) हम सब उपस्थित प्रतिनिधि मुनि हृदय से यह कामना करते हैं कि यह बृहत्साधु सम्मेलन सफल हो, साधु-साध्वियों के लिए ज्ञान, दर्शन, चारित्र में वृद्धिकारक हो, सर्वत्र प्रेमपूर्वक एकता का साम्राज्य स्थापित करने वाला बने। हमारी यह भी भावना है कि आत्म-साक्षी से हम सब अपने वचनपालन में सुदृढ़ रहें। —जयइ महप्पा महावीरो

यदि आप श्रमण-संस्कृति के हार्द को जानना व समझना चाहते हैं, तो 'श्रमण' मासिक पत्र को मँगवा कर अवश्य पढ़िए। वार्षिक मूल्य ४) रु०

व्यवस्थापक, 'श्रमण'
जैनाश्रम
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याश्रम-समाचार

काशी विश्वविद्यालय का नया सत्रारंभ

गरमी की छुट्टियों में विश्वविद्यालय मई-जून के दो मास तक बन्द रहा। इन दिनों विद्यार्थियों की चहल-पहल और विश्वविद्यालय की बहुत सी हलचलें बन्द रहती हैं। वातावरण निर्जन सा मालूम पड़ने लगता है। ९ जुलाई के आते ही फिर से चारों तरफ चहल-पहल दीखने लगती है। सब में नई उमंग और नया उत्साह रहता है। यूनिवर्सिटी के सभी दफ्तरों में विद्यार्थियों की अपार भीड़ देखने लायक होती है। वहाँ से लौटने पर कितनों के चेहरों पर प्रसन्नता होती है और बहुतेरों को प्रवेश न मिलने से निराशा का मुंह भी देखना पड़ता है।

९ जुलाई को नवीन सत्र का उद्घाटन करते हुए भारत के उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् ने जो व्याख्यान दिया था वह अधिकतर विद्यार्थियों से संबन्ध रखता है। उसका सारांश 'श्रमण' के इसी अंक में दिया गया है। भारत की बड़ी समस्याओं में से शिक्षाप्रणाली की भी एक समस्या है। यहां के न तो शिक्षा-अधिकारियों का और न स्वतंत्र भारत के विद्यार्थियों का ही मानस बदला है। कहने को भारत स्वतंत्र जरूर है पर रंग-ढंग शिक्षा-प्रणाली सब वही है, जो अंगरेजों के समय थी। आज भी देश का समय, शक्ति और अपार धन उसी क्लर्की शिक्षा के पीछे बरबाद हो रहा है जिसको १०-२० साल पहले से भी हम देखते आ रहे हैं। स्वतंत्र भारत को तो चीन की तरह बदल कर सबसे पहले अपनी घरेलू समस्याओं का रचनात्मक हल ढूँढ़ना चाहिए था। घर की हालत अच्छी न होने पर बाहर की शान व शौकत का कुछ अर्थ नहीं। इसका परिणाम भी बुरा है। हमें पहले तो इतना ही समझना है। कोई भी परिवर्तन या तो चोटी से होता है, या पैर से। भारत के चोटी के व्यक्तियों का मानस वही है, जो अंगरेजों के समय था। साधारण जनता को सूझबूझ नहीं। उसे तो यह भी पता नहीं लगा कि गुलाम भारत से आज के स्वतंत्र भारत में अन्तर क्या है। उसकी ठीक वही दशा है, जो पहले थी। बीच के लोग छटपटाते हैं, पर कर कुछ नहीं सकते। उनके सामने अपनी अड़चनें हैं। देश के नौजवानों से बड़ी आशाएँ थीं। उनका रंग-ढंग देखते हुए निराशा तो नहीं, कुछ खेद अवश्य है। देश की स्वतंत्रता पाने में उन्होंने बड़ा हाथ बँटाया था। इधर देश के रचनात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यों में वे भी कुछ उत्साहहीन लगते हैं। भारत की यह एक विवशता है। जिसका हल निकालने के लिए डॉ० राधाकृष्णन् ने भारत के नौजवानों का आह्वान किया है और उनसे बड़ी बड़ी आशाएँ रखी हैं।

समिति की रिपोर्ट और मीटिंग

श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर की सन १९५१ की वार्षिक रिपोर्ट 'श्रमण' के इसी अंक के साथ भेज रहे हैं। बनारस में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम के रूप में समिति की ओर से जो प्रवृत्तियाँ चालू हैं, उन पर इससे अच्छा प्रकाश पड़ता है। आगे को समिति क्या करना चाहती है, उस पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है। समिति के मंत्री जी ने जन समाज से इस कार्य के लिए पाँच लाख रुपये की अपील की है। नवीन जैन साहित्य के निर्माण का कार्य जैन समाज के इतिहास में नया ही नहीं, बल्कि अभूतपूर्व है। इस कार्य का कितना महत्व है, उसका पता 'श्रमण' के गत अंक में डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के लेख से चल सकेगा। आशा है जैन समाज इस पर अवश्य ध्यान देगा।

ता०२७ जुलाई १९५२ को अमृतसर में समिति की मीटिंग हो रही है। हम चाहते हैं, जो सज्जन समिति के सदस्य हैं, वे उत्साह से उसमें अवश्य हिस्सा लें। जिससे समिति के कार्य को बढ़ावा मिले। समिति के कार्यों में हिस्सा लेने का अर्थ है श्री पार्श्वनाथ भगवान् की जन्मभूमि बनारस में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम के सांस्कृतिक कार्यों को आगे बढाना।

श्रमण संघ का विधान

'श्रमण' के इसी अंक में 'श्री वर्धमान स्थानक वासी जैन श्रमण संघ' का विधान और सादड़ी बृहत्साधु-सम्मेलन के प्रस्ताव अविकल रूप से दिये गए हैं। हमें आशा है सभी साधु-साध्वी उनसे पूरा लाभ उठाएँगे। जिनको आवश्यकता हो, मँगवा भी सकते हैं।

—कृष्णचन्द्राचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन संस्कृति की महत्वपूर्ण पुस्तकें

Studies in Jaina Philosophy—Dr. Nathmal Tatia	...	16/-
Jaina Philosophy of Non-Absolutism—Dr. S. Mookerjee	...	15/-
Critique of the Organ of Knowledge—Dr. S. Mookerjee	...	15/-
Lord Mahavira—Dr. Bool Chand	...	4/8/-
Hastināpura—Amar Chand	...	2/4/-
Jainism—J. P. Jain M.A., LL.B.	...	1/8/-
तत्त्वार्थ सूत्र—पं० सुखलाल संघवी	...	5/8/-
प्राचीन जैन तीर्थ—डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	..	2/-
धर्म और समाज—पं० सुखलाल संघवी	...	1/8/-
जैनग्रन्थ और ग्रन्थकार—फतहचन्द बेलानी		1/8/-
निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय—पं० सुखलाल संघवी	...	1/-
गुजरात का जैन धर्म—मुनि जिनविजय जी	...	-/12/-
अनेकान्त वाद—पं० सुखलाल संघवी	...	-/12/-
जीवन में स्याद्वाद—चन्द्रशंकर शुक्ल	...	-/12/-
जैन साहित्य की प्रगति १९४९-५१—पं० सुखलाल संघवी	...	-/12/-
जैनागम—पं० दलसुख मालवणिया	...	-/10/-
हेमचन्द्राचार्य का शिष्यमंडल—प्रो० सांडेसरा	...	-/5/-

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखें :—

मंत्री, जैन संस्कृति संशोधन मंडल

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

... विद्यालय प्रेस, बनारस ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

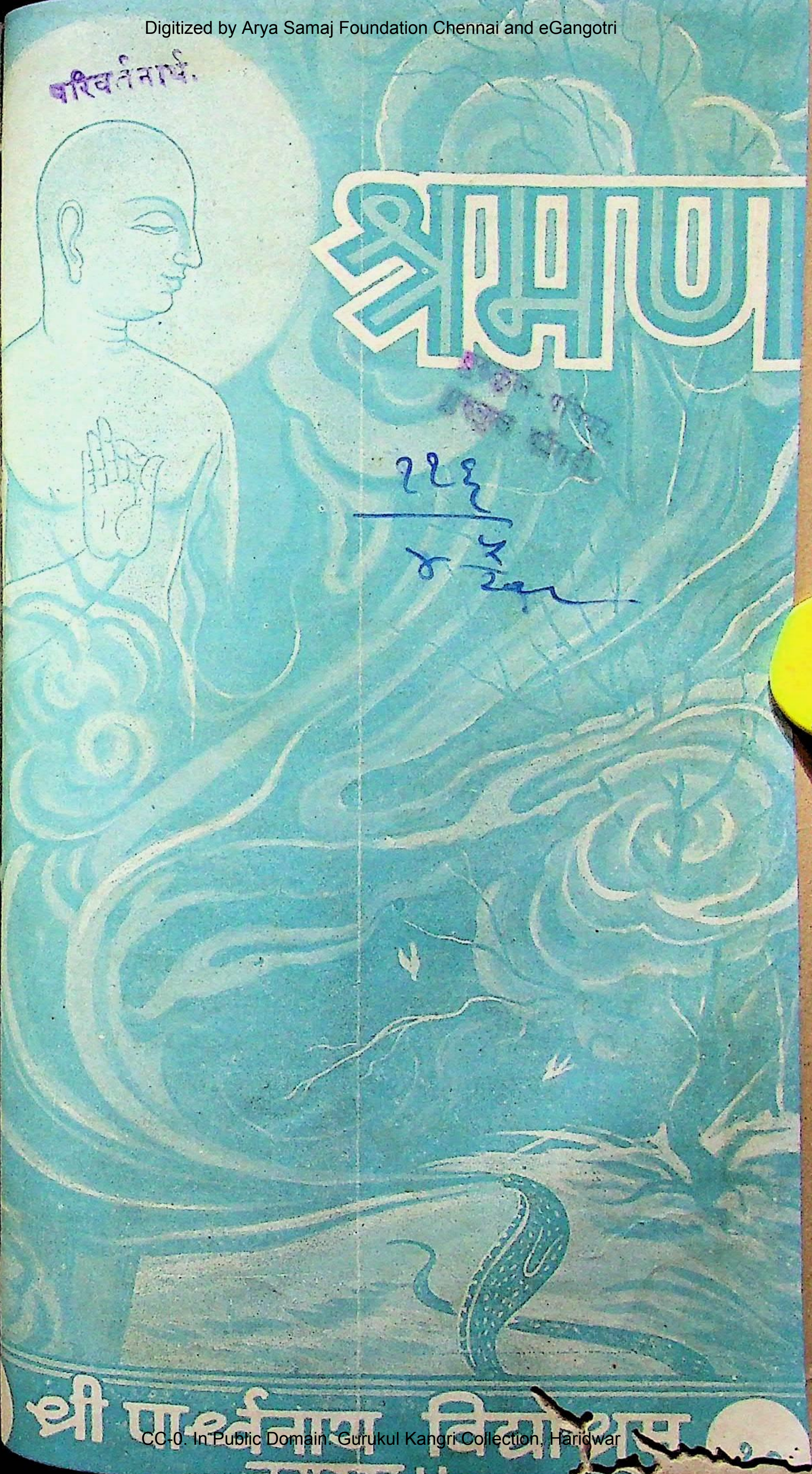

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक

मोहनलाल मेहता एम० ए०

इस अंक में–

१.	पुण्य-पर्व (कविता)—श्री 'अशेष'	१
२.	अपनी बात (संपादकीय)—	२
३.	क्या मैं जैन हूँ ?—प्रो० श्री दलसुख मालवणिया	९
४.	विजय (गद्यकाव्य)—श्री सत्यवती जैन, प्रभाकर	१३
५.	ओसवंश-स्थापना के समय संबन्धी महत्त्वपूर्ण उल्लेख—श्री अगरचन्द नाहटा	१५
६.	कवि की हुंकार (कहानी)—श्री जयभिक्खु	१९
७.	उज्जयिनी—श्रीअमरचन्द एम० ए०	२७
८.	विनोबाजी को खुला पत्र—श्री रघुवीरशरण दिवाकर	३४
९.	विद्याश्रम-समाचार—	४०

श्रमण के विषय में–

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेजी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।

२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे ।

३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा ।

४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें ।

५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें ।

६. वार्षिक मूल्य मनिऑर्डर से भेजना ठीक होगा ।

७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) **एक प्रति ।=)**

प्रकाशक—**कृष्णचन्द्राचार्य,**

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनि० बनारस का मुखपत्र

अगस्त १९५२

पुण्य-पर्व

विहान हो गया कि अब समाप्त हो चुकी निशा
प्रभात के प्रकाश में निखर उठी दिशा दिशा
कि क्रान्ति-लग्न में महान् पुण्य पर्व आ गया
नयी उमंग में नवीन गर्व आज छा गया

कि शंखनाद में पुकार कर उठी स्वतंत्रता
न आज लौह-शृंखला, न दीनता, न दासता
प्रमुक्त हो वसुन्धरा स्वदेश को सँवारती
उधर सजा रही उषा प्रभा-प्रदीप्त आरती

अशोकचक्र ले ध्वजा विशाल व्योम चीर कर
बिखेर कर छटा नवल फहर रही लहर-लहर
स्वतंत्र देश के उछाह का न आज अंत है
कि मुक्त है धरा कि आज मुक्त दिग्-दिगन्त है

—श्री 'अशेष'—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

संस्थाओं का उत्तरदायित्व—

हमारे समाज में प्रायः दो प्रकार की संस्थाएँ चल रही हैं। कुछ संस्थाएं ऐसी हैं जिनका कार्यक्षेत्र अत्यन्त सीमित है। वे पाठशालाओं के रूप में ही चलती रहती हैं और साधारण धार्मिक शिक्षण देने के साथ अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेती हैं। इस प्रकार की संस्थाओं पर समाज के नवयुवकों का विशेष भार नहीं है। उनका उद्देश्य यही होता है कि बच्चों में साधारण रूप से थोड़े से ऐसे संस्कार पड़ जाएँ जो परम्परा से हमारे समाज में चले आ रहे हैं। उन संस्कारों की उपयोगिता और अनुपयोगिता पर इस समय हम विचार नहीं करेंगे। इन छोटी छोटी संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ संस्थाएँ हमारे समाज में ऐसी भी हैं जिन पर संस्कृति की रक्षा का भार है। यद्यपि इस प्रकार की संस्थाएँ संख्या में बहुत कम हैं किन्तु उनका उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है। इन संस्थाओं को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। कुछ तो ऐसी हैं जो केवल प्रकाशन का काय करती ह और कुछ विद्वानों का निर्माण। जहाँ तक प्रकाशन-कार्य करने वाली संस्थाओं का प्रश्न है—उनका उत्तरदायित्व यही है कि वे प्रामाणिक साहित्य का प्रकाशन करें। ऐसे साहित्य को संसार के सामने रखें जिसे देख कर कोई भी समझदार व्यक्ति यह कह सके कि यह चीज किसी आधार पर तैयार की गई है। निराधार साहित्य का प्रकाशन आज के युग में कोई महत्त्व नहीं रखता। जिन लोगों ने मौलिक सामग्री का अध्ययन किया हो और जिनकी योग्यता ऐसी हो कि वे उस सामग्री की गहराई तक पहुँच सकें वे ही लोग यदि इस प्रकार के साहित्य का निर्माण करें और उस साहित्य को प्रकाशित किया जाय तभी प्रकाशन का उद्देश्य पूरा हो सकता है। पुस्तकों की संख्या के आधार पर साहित्य की समृद्धि का अनुमान लगाना आज के युग के अनुकूल नहीं है। पुस्तकें चाहे थोड़ी ही हों, किन्तु होनी चाहिए अधिकृत कृतियाँ। इन बातों को ध्यान में रख कर आगे बढ़ने वाली प्रकाशन संस्था अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होगी। कुछ संस्थाएँ इस ढंग से कार्य कर भी रही हैं। उन संस्थाओं को यदि धन का पूर्ण सहयोग मिले तो वे जैन-विचारधारा का प्रसार करने में अवश्य सफल हो सकती हैं।

कुछ संस्थाएँ ऐसी हैं जो साहित्य-प्रकाशन का कार्य तो नहीं करतीं किन्तु साहित्य के निर्माण के लिए योग्य विद्वान् तैयार करती हैं। ये संस्थाएँ प्रकाशन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थाओं की उद्देश्य-पूर्ति के लिए आवश्यक हैं। यदि इस प्रकार की संस्थाएँ न हों तो प्रामाणिक साहित्य तैयार नहीं हो सकता। इन संस्थाओं का उत्तरदायित्व सब से अधिक है। ये संस्थाएँ योग्य व्यक्तियों को आर्थिक सहायता देकर यह अवसर देती हैं कि वे अपने विषय के गम्भीर विद्वान् बनें। वे लोग अपना पूरा समय इस कार्य के लिए देते हैं और मौलिक ग्रन्थों के आधार पर युगानुकूल नए ग्रन्थ लिखते हैं। एक ग्रंथ लिखने के लिए एक विद्वान् को २-३ वर्ष का समय मिलता है। प्रायः उस काल के भीतर भीतर वह अपना कार्य समाप्त कर देता है। कभी कभी परिस्थिति विशेष के कारण अधिक समय भी लग जाता है। इस योजना से दोहरा लाभ होता है। प्रामाणिक ग्रन्थों का निर्माण और अधिकारी विद्वानों की वृद्धि। जहाँतक ग्रन्थों के प्रकाशन का प्रश्न है—प्रकाशन-संस्थाएँ यह कार्य कर सकती हैं किन्तु कठिनाई यह है कि वे कई बार यह कार्य नहीं कर पाती हैं और कई महत्व के ग्रन्थ यों ही पड़े रह जाते हैं। संस्था का जितना धन खर्च होता है उसका फल एक अलमारी में बन्द हो जाता है। परिणाम यह होता है कि जिस उद्देश्य से वह ग्रन्थ लिखा गया था वह उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता और परिश्रम तथा पैसा दोनों सड़ सड़ कर नष्ट हो जाते हैं। इस नाश से बचने के लिए साहित्य का निर्माण करने वाली संस्था को अपना प्रकाशन-विभाग भी खोलना चाहिए और ज्यों ही कोई ग्रन्थ तैयार हो, तुरन्त प्रकाशित कर देना चाहिए जिससे उसका सामाजिक महत्त्व भी कम न हो और आगे के लिए दूसरे लोग जो उसी दिशा में कार्य करते जारहे हैं, उससे पूरा लाभ उठा सकें। दूसरा प्रश्न विद्वानों के उपयोग का है। संस्था दो-तीन या कभी कभी पाँच-सात वर्ष लगा कर जिन विद्वानों को तैयार करती है उनका उचित उपयोग हो रहा है या नहीं, यह देखने का उत्तरदायित्व भी उस संस्था को अपने हाथ में लेना चाहिए। यदि कोई माता बच्चों को पैदा करके छोड़ दे और उनके लालन-पालन की कोई चिन्ता न करे तो वह माता अपने उत्तरदायित्व को पूर्णरूप से निभाने वाली नहीं कही जा सकती। उसी प्रकार यदि संस्था केवल विद्वानों को पैदा करे और उनके उपयोग की चिन्ता न करे तो वह अपना उत्तरदायित्व पूरी तरह से निभाने वाली नहीं कही जा सकती। बच्चे पैदा न करने में कोई दोष नहीं है किन्तु पैदा किए हुए बच्चों की देख-भाल न करने में दोष अवश्य पैदा हो जाता है। इसी प्रकार संस्था को चाहिए कि कमसे कम विद्वान् तैयार करे किन्तु जो विद्वान् तैयार हो जाय उसके उपयोग की पूरी चिन्ता करे। यह ठीक है कि जो व्यक्ति उस संस्था से तैयार होकर निकले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे स्वयं यह चिन्ता रहनी चाहिए कि मैं अपने पैरों पर खड़ा हो जाऊँ, किन्तु जब तक उसे योग्य स्थान न मिले—ऐसा स्थान न मिले जहाँ जाकर वह अपनी साधना एवं योग्यता का सदुपयोग कर सके तब तक संस्था का भी कर्तव्य है कि वह उसके उपयोग की चिन्ता करे।

पर्युषण पर्व

इस महीने में दो पर्व आ रहे हैं। एक राष्ट्रीय पर्व है और दूसरा धार्मिक। १५ अगस्त राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जाएगा और १८ से २५ अगस्त तक पर्युषणपर्व धार्मिकपर्व के रूप में। १५ अगस्त के विषय में यहाँ कुछ न लिखकर पर्युषण के विषय में थोड़ा सा प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

जीवन में पर्वों का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसका उत्तर जगत् की प्रत्येक जाति, संसार का प्रत्येक सम्प्रदाय, विश्व का प्रत्येक मानव दे रहा है। जगत् में कोई भी मानव-जाति का सदस्य ऐसा न होगा जो किसी न किसी रूप में पर्व की आराधना न करता हो। प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने धार्मिक-पर्वों की आराधना करते हैं। प्रत्येक समाज के सदस्य अपने सामाजिक पर्वों में रस लेते हुए देखे जाते हैं। प्रत्येक राजनैतिक दल किसी न किसी रूप में राजनैतिक उद्देश्य को लक्ष्य में रखते हुए एक दिन, एक सप्ताह या किसी अन्य रूप में आराधना करता है। पर्व है क्या? हमारे जीवन के किसी एक दृष्टिकोण को प्रकट करने वाला प्रतीकमात्र। मनुष्य के चित्त में अनेक प्रकार की वृत्तियाँ रहती हैं और उन वृत्तियों को वह किसी न किसी रूप में प्रकट करता है। वृत्तियों का दमन आज के युग की दृष्टि में गुरुतम अपराध है। जो व्यक्ति अपनी स्वाभाविक इच्छाओं और चेष्टाओं को दबाना चाहता है वह वास्तव में उन इच्छाओं पर विजय प्राप्त करने में सफल नहीं होता। यद्यपि कुछ समय के लिए सोचता अवश्य है कि मैंने अमुक इच्छा का दमन कर डाला, अमुक वृत्ति को कुचल डाला किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। स्वाभाविक वृत्तियाँ कभी नष्ट नहीं हो सकतीं। वे अपना कार्य चेतन या अचेतन अवस्था में करती ही रहती हैं। तात्पर्य यह है कि मानवसमाज की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह जीवन के नित्य के झंझटों से मुक्त होकर कभी कभी एक प्रकार के विशेष आनन्द का उपभोग करना चाहता है। यही प्रवृत्ति पर्व के रूप में परिणत होती है। यही कारण है कि मानवमात्र किसी न किसी रूप में पर्व की आराधना करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव की जीवन प्रवृत्तियां दो भागों में विभक्त हैं—एक शारीरिक प्रवृत्ति और दूसरी मानसिक प्रवृत्ति। शारीरिक प्रवृत्ति को दृष्टि में रखकर सामाजिक पर्वों का निर्माण होता है और मानसिक क्रियाओं के दृष्टिकोण से धार्मिक पर्वों का प्रचलन होता है। जैनों का सामाजिक जीवन तो प्रायः अन्य भारतीय सामाजिक जीवन सा ही है। धार्मिक-जीवन की विशेषता ही उनके लिए गौरव की वस्तु है। जैन-सिद्धान्तों का अहिंसा सम्बन्धी दृष्टिकोण जितना सूक्ष्म तथा सक्रिय है, पर्वों की दृष्टि भी उतनी ही सूक्ष्म तथा प्राणीमात्र तक पहुँचने वाली है। सच्चा जैन बाह्य-पदार्थ को उतना महत्त्व नहीं देता जितना कि आभ्यन्तर तत्त्व को। इसी भावना के फल-स्वरूप जैनों के जीवन में पर्युषण पर्व का विशेष महत्त्व रहा है।

अब यह समझना आवश्यक है कि पर्युषण का अर्थ क्या है। पर्युषण पर्व का अपने आप में क्या महत्त्व है? जीवन की मानसिक-प्रवृत्ति से उसका क्या संबन्ध है? पर्युषण पर्व का प्रतिपादन करने वाले दो शब्द मिलते हैं। एक शब्द है 'पज्जुसणा' और दूसरा शब्द है 'पज्जोसवणा'। इन शब्दों में से पहले 'पज्जुसणा' का अर्थ समझ लें।

'पज्जुसणा' प्राकृत भाषा का शब्द है। इसका संस्कृत रूप होता है 'पर्युषणा'। 'पर्युषणा' शब्द का अर्थ होता है 'पूर्णरूप से निवास करना'। अब प्रश्न यह होता है कि 'पूर्णरूप से निवास करना' इसका क्या अर्थ? निवास तो सब करते ही हैं फिर निवास करने के लिए एक विशेष पर्व की क्या आवश्यकता? क्या पर्व के अभाव में निवास-क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती? अथवा निवास करने के लिए भी क्या किसी पर्व की आवश्यकता रहती है? इन सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है और वह यह है कि हम लोग निवास करते अवश्य हैं किन्तु जहाँ करना चाहिए वहाँ नहीं करते और जहाँ नहीं करना चाहिए वहाँ करते हैं। हमारा विपरीत निवास है। अनुकूल निवास के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने आप में निवास करें। आत्मा का निवासस्थान आत्मा ही है, बाह्य पदार्थ नहीं। जिन बाह्य पदार्थों में हम निवास करते हैं वे हमारे निवासस्थान नहीं है अपितु अपने खुद के निवासस्थान हैं। प्रत्येक तत्त्व जब अपने आप में रहता है—स्वरूप में रहता है तभी उसका निवास निर्दोष समझा जाता है। स्व का निवासस्थान तो स्व ही है, पर की स्व को क्या आवश्यकता? पर को स्व समझना और उसी में निवास करना मिथ्यात्व है—नास्तिकता है। हाँ तो, 'पर्युषणा' शब्द का जो अर्थ है वह यही कि पूर्णरूप से निवास करना—अपने आतमभावों में पूरी तरह से रमना। आत्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का जो वास्तविक स्वरूप है उसी में रमण करना। वह स्वरूप क्या है? 'उपयोग'—कहा भी है "उपयोगलक्षणो जीवः"। आत्मा का स्वरूप उपयोग है। ज्ञान और दर्शन उसी उपयोग के भेद हैं।

अब प्रश्न यह है कि अन्य पदार्थों में ममत्व भाव रखने वाली हमारी वर्तमान आत्म-पर्यायावस्था अपने वास्तविक स्वरूप में कैसे पहुँच सकती है? आत्म-स्वरूप-निवास जो हमारा साध्य है उसको किन साधनों से प्राप्त कर सकते हैं? इन सब प्रश्नों का उत्तर दूसरा शब्द 'पज्जोसवणा' देता है। इस शब्द का संस्कृत रूप है—'पर्युपशमना'। इस पर्युपशमना का अर्थ होता है—'पूर्णरूप से शान्त करना'। यदि हम चाहते हैं कि हमें अपना इष्ट साध्य प्राप्त हो जाय तो उसके लिए यह आवश्यक है कि तदनुकूल साधन का अवलम्बन लें। आत्मा की स्वरूप प्राप्ति में यदि कोई बाधक है तो वह है कषाय। क्रोध, मान, माया और लोभ का नाम ही कषाय है। जब हम कहते हैं कि 'पर्युपशमना' का अर्थ होता है पूर्णरूप से शान्त करना—तो इसका यही अभिप्राय है कि हमारे अन्दर रहे हुए कलुषित भावों का सर्वथा नाश करें। क्रोध, मान, माया तथा लोभ का जब तक नाश न किया जाय—इनकी उद्दामवृत्ति जब तक शान्त न की जाय तब तक 'पूर्णरूप' से शान्त करना नहीं कहा जा सकता। क्रोध, मान, माया तथा लोभ आत्मा की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है अपितु विकृति मात्र है। विकृति का नाश करना पर्युषण पर्व का उद्देश्य है। —सम्पादक

'श्रमण' के पाठकों से

'श्रमण' के प्रधान संपादक पं० इन्द्रचन्द्र जी शास्त्री, एम० ए०, वेदान्ताचार्य ने 'रतनचन्द मेमोरियल स्कालर' के रूप में लगभग चार साल तक श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम में रहकर रिसर्च कार्य किया है। 'जैन ज्ञानवाद' (Jaina Epistemology) पर महानिबन्ध तैयार करके बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को गत मार्च में उपस्थित कर चुके हैं। सफलता की पूरी संभावना है। इसी अरसे में पं० इन्द्रचन्द्र जी ने 'श्रमण' को जन्म देकर अपनी कृति के रूप में परिचय दिया है। जिसका संपादन भी बड़े उत्साह व योग्यता से करते रहे हैं। आज 'श्रमण' का अपना स्थान है। इसके प्रेमी पाठक कितने उत्सुक रहते हैं, यह उनके गाह व गाह के पत्रों व संदेशों से पता लगता है।

यहाँ का कार्य पूरा हो जाने के बाद कहीं बाहर जाना अब उनके लिए अनिवार्य सा हो गया है। 'जैन प्रकाश' जैसे पत्र के संपादन का बोझ ले लेने से और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर की विभिन्न परिस्थितियों के कारण वहाँ से 'श्रमण' का संपादन करना शक्य नहीं रहा। इधर इसका बोझ शुरू से ही इन्द्र जी के सहयोगी श्री मोहन लाल जी मेहता एम० ए०, जैनदर्शन-शास्त्री अपने कंधों पर ले रहे हैं। इतना जान कर 'श्रमण' के पाठकों को अवश्य संतोष होगा। हम अपनी संस्था और 'श्रमण' के पाठकों की ओर से पं० इन्द्रचन्द्र जी को उक्त सेवा के लिए हार्दिक धन्यवाद देते हैं और यह आशा रखते हैं कि वे अपनी प्रिय कृति को भूलेंगे नहीं और 'श्रमण' के पृष्ठों को अपने मनोहर लेखों से निरन्तर और अवश्य सज्जित करते रहेंगे।

इस अंक से 'श्रमण' का संपादक-मंडल भी बदल गया है। उत्तरोत्तर कार्यभार बढ़ते जाने से श्री दलसुख मालवणिया भी संपादक-मंडल में नहीं रहे। पर उनका हर हालत में 'श्रमण' के साथ सहयोग है और रहेगा। वे स्वयमेव 'श्रमण' की चिन्ता रखने वाले हैं। संपादकों ने जब भी चाहा, वे अच्छे से अच्छे लेख देने में सर्वथा उदार रहते हैं।

इसमें संदेह नहीं, पुराने संपादकों मे से अब अकेले मेहता जी पर 'श्रमण' के संपादन का बोझ आ गया है। शुरू से ही संपादक-मडल में रहने के अलावा वे स्वयं लेखक, कवि और कहानीकार हैं। हमें विश्वास है वे इस दायित्व को पूरे उत्साह के साथ निभा सकेंगे और 'श्रमण' के अपने स्थान को बनाए रखने में समर्थ ही नहीं, बल्कि इसको और भी आगे बढ़ा सकेंगे। हमारी यह बड़ी इच्छा है कि 'श्रमण' का शरीर और रूप दोनों बढ़ें। इसके लिए हम प्रयत्नशील भी हैं।

'श्रमण' के प्रेमी पाठकों से हम एक निवेदन भी करना चाहते हैं। यह हम जानते हैं कि 'श्रमण' के ग्राहक कुछ अधिक नहीं हैं फिर भी इसके पाठकों में जो प्रेम और चाह है उसे देखकर हमारा उत्साह बढ़ता है। हम समझते हैं 'श्रमण' के उत्साही ग्राहक यदि थोड़ा भी प्रयत्न करें, तो इसकी ग्राहक-संख्या बढ़ने में देर नहीं लगेगी। हर ग्राहक एक भी नया ग्राहक बना दे, तो यह काम बड़ी आसानी से हो सकता है। बात कुछ मुश्किल भी नहीं। तब आप देखेंगे, 'श्रमण' और भी अच्छे रूप में सेवा कर सकेगा।

—कृष्णचन्द्राचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेह-दिवस : पर्युषण पर्व

जब स्नेह-दिवस यह आता है।
सद्भक्ति भाव श्रद्धा से नत, मानव मस्तक झुक जाता है।
जब स्नेह-दिवस यह आता है॥

निज स्निग्ध कणों से निखर निखर।
उर आँगन में नित बिखर बिखर॥
यह पुण्य-दीप स्नेहिल कण से, जल जल कर उर सहलाता है।
जब स्नेह-दिवस यह आता है॥

है भरा लबालब स्नेह पात्र।
चिर अवगाहन कर मृदुल गात्र॥
बस, स्नेह-स्निग्ध निर्मल निश्छल, उर का आँचल लहराता है।
जब स्नेह-दिवस यह आता है॥

चारित्र - ज्ञान - दर्शन - प्रदीप।
तप संयम से युग राह लीप॥
निज लुटा आत्म स्वर्णिम प्रकाश, जन-जीवन में मिल जाता है।
जब स्नेह-दिवस यह आता है॥

मात्सर्य - दम्भ - मद - काम - क्रोध।
तज, करता हर जन आत्मशोध॥
ले सत्य अहिंसा का माध्यम, पग मंज़िल राह बढ़ाता है।
जब स्नेह-दिवस यह आता है॥

गूँजत घर घर जिनवर वाणी।
चिर शाश्वत सुखदा कल्याणी॥
सब भूल भेद, बँध एक सूत्र, नव स्वर्ग यहाँ रच जाता है।
जब स्नेह-दिवस यह आता है॥

—श्री नरेन्द्र कुमार मनावत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो जैन होने का दावा नहीं करता किन्तु जिसकी आवाज में सच्चा जैनत्व है उस निर्भीक साधक के हृदय को इन पृष्ठों में ढूँढ़िए—

क्या मैं जैन हूँ ?

–प्रो० दलसुख मालवणिया

मेरे विषय में कई लोगों ने लिखित और अलिखित रूप से शंका उठाई है कि मैं जैन नहीं किन्तु नास्तिक हूँ। मैं नास्तिक तो अवश्य हूँ क्योंकि वेद के विषय में मेरी धार्मिक दृष्टि से कोई श्रद्धा नहीं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं वेद को कोई महत्त्व नहीं देता। वह विश्व में प्राचीनतम ग्रन्थ है इस दृष्टि से उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। ईश्वर इस विश्व का कर्ता है, उसने इस विश्व को बनाया है और वही उसका संचालन कर रहा है—इस मत में जो विश्वास नहीं करता वह भी नास्तिक माना जाता है। इस दृष्टि से मैं भी नास्तिक हूँ क्योंकि मेरा भी विश्वास है कि इस जगत् के संचालन में ईश्वर का कोई हाथ नहीं। एक और दृष्टि से भी मैं नास्तिक हूँ और वह यह कि मैंने अपना दिमाग़ किसी के यहाँ गिरवी नहीं रखा। आस्तिक बनने की सबसे बड़ी योग्यता यही मानी जाती है कि व्यक्ति धार्मिक और दार्शनिक मामलों में स्वयं कुछ न सोचे। दूसरे महान् समझे जाने वाले व्यक्ति ने उस के लिए सब कुछ सोच कर के रख दिया है। अतएव स्वयं कुछ नया सोचने की आवश्यकता नहीं—यह बात मैं नहीं मानता इसलिए भी मुझे लोग नास्तिक समझते हैं। इन सभी बातों के लिए नास्तिक बनना बुरा नहीं है; ऐसी मेरी मान्यता है। अतएव इन बातों के लिए नास्तिक बनना एक अच्छा प्रमाण पत्र है।

नास्तिक शब्द की एक सर्वसंमत व्याख्या यह भी है कि जो आत्मा और परलोक को न माने। मैं अपनी तुच्छ बुद्धि से अभी तक इस विषय में संदेह ही करता हूँ। शास्त्रकारों का भी यही मन्तव्य मालूम होता है कि दूसरों के कथन को मान लेना और अपने आप प्रतीति नहीं करना, यह आभिग्रहिक मिथ्यात्व है। मैं ऐसा मिथ्यात्वी नहीं बनना चाहता, अतएव लोग मुझे नास्तिक समझें इसमें मेरा अपराध नहीं किन्तु उनका ही हठाग्रह है; ऐसा मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानता हूँ। किसी वस्तु का ज्ञान होना अलग बात है और मनमें उस वस्तु का साक्षात्कार हो जाना—दृढ़ प्रतीति हो जाना—श्रद्धा हो जाना यह दूसरी बात है। शास्त्रों के अवलोकन से एक विषय को जाना जा सकता है किन्तु उसकी श्रद्धा होना बिलकुल दूसरी बात है। मुझे आत्मा या परलोक का साक्षात्कार है ऐसा मैं नहीं मानता और जब तक ऐसा साक्षात्कार नहीं होता तब तक आस्तिक की अपेक्षा नास्तिक बना रहना ही अच्छा समझता हूँ; क्यों कि इसमें नास्तिक से आस्तिक बना जा सकता है किन्तु नास्तिक होने पर भी अपने को आस्तिक मानने लग जाऊँ तब तो आस्तिक बनने का मार्ग ही बन्द हो जाता है। जीवन में ढोंग ही बढ़ जायगा। परम धार्मिक ही कहलाने लग जाऊँगा। तब मेरी जिज्ञासा ही समाप्त हो जायगी और चारित्र भी दिखावटी हो जायगा। ढोंग और धोखे की अपेक्षा मन की सफाई को मैं अधिक महत्त्व देता हूँ। अतएव इस दृष्टि से बनावटी आस्तिक की अपेक्षा स्पष्ट नास्तिक बना रहना ही अच्छा है। आत्मा की प्रतीति का पहला लक्षण यही है कि अनात्म वस्तु में अरुचि हो जाय और आत्मा की ओर ही दृष्टि रहे। मैं अपने अन्तर का निरीक्षण करता हूँ तो प्रतीति होता है कि मेरा बहुत कुछ कार्य अनात्मपोषण के लिए ही है। तब मैं अपने को आस्तिक मान कर या मनवा कर स्वयं को और दूसरों को धोखा क्यों दूँ? अतएव मैं नास्तिक कहलाना ही अच्छा समझता हूँ।

सामान्यत: लोग जैन कुल में जन्म लेने मात्र से अपने को जैन मानते हैं। किसी के धर्म के विषय में कुलधर्म देखकर ही लोग निर्णय करते हैं कि उस व्यक्ति का क्या धर्म होगा। मेरा जन्म भी जैन कुल में हुआ है। अतएव कुछ लोग मुझे जैन समझते हैं। किन्तु मैं अभी भी इस निर्णय पर नहीं आया कि क्या मैं वस्तुत: जैन हूँ? जैन धर्म की रक्षा का भार उठाने वाले कुछ लोगों ने मेरी इस शंका को दृढ़ भी कर दिया है। उनका फैसला है कि भगवान् महावीर और महात्मा गांधी की तुलना करने वाला व्यक्ति जैन धर्म के सिद्धान्तों से सर्वथा अनभिज्ञ ही होगा, वह सच्चा जैन नहीं हो सकता; मैंने उनके इस फैसले को सहर्ष स्वीकार किया है। मैंने तो कभी यह दावा किया ही नहीं कि मैं सच्चा जैन हूँ। बात यह है कि कुल धर्म को देखकर ही लोग किसी के धर्म का निर्णय कर लेते हैं और अन्य आवश्यक बातों को देखते ही नहीं। जैन धर्म—यह आत्मा का संस्कार है। वस्तुत: किसी कुल में जन्म लेनेमात्र से कोई किसी विशेष धर्म का हो जाता है, ऐसी बात नहीं है किन्तु यदि वह व्यक्ति चाहे तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज ही में कुल में प्रचलित धर्म को स्वीकार कर सकता है। जो संस्कार कुल में होंगे वे तो उसे सहज ही मिल जाते हैं— धर्म स्वीकार की योग्यता उत्पन्न कर देते हैं। संस्कारी कुटुम्ब में जन्म लेने वाले व्यक्ति को कई अच्छे संस्कार सहज ही प्राप्त हो जाते हैं जो कुसंस्कारी परिवार में जन्म लेनेवाले व्यक्ति के लिए असंभव नहीं तो दु:संभव अवश्य हैं। यदि इन संस्कारों की प्राप्ति से ही कोई यह समझ ले कि मैं सच्चा जैन हो गया तो वह बड़े धोखे में है। धर्म स्वोपार्जित होता है। दूसरों का दिया हुआ नहीं होता। कुल से जो संस्कार मिले, वे तो सहज थे। उसमें स्वात्मा का कोई परिश्रम नहीं। वह तो पिता की पूंजी की तरह एक प्रकार से विरासत हैं। स्वोपार्जित संपत्तिकी तरह उसपर अपना ही हक नहीं। धर्म तो स्वोपार्जित ही होता है और स्वाधीन भी रहता है।

वस्तुत: जिसे हम कुल धर्म कहते हैं वह भी एक सामाजिक धर्म ही है। उसे जैनधर्म या ऐसा कोई नाम नहीं देना चाहिए। जैनधर्म तो स्वोपार्जित संपत्ति है। वह कुल धर्म से भिन्न है और उस से ऊँचा भी है। अतएव कुलधर्म अर्थात् समाज धर्म को स्वीकार करते हुए भी कोई सच्चा जैन नहीं बन सकता। वह तो उसका अपना विकास है जो कुलधर्म से ऊँचे उठने पर ही हो सकता है। अपने विषय में मैं कह सकता हूँ कि कुल के धर्म के संस्कार भी मुझमें यथार्थ रूप में नहीं आए अतएव कुलधर्म की अपेक्षा से भी मैं अपने को जैन नहीं मान सकता।

बचपन से ऐसी संस्था में मेरा पालन हुआ जो किसी खास धर्म की नहीं थी। इसलिए मेरे जीवन में कुलधर्म के संस्कार तो आए ही नहीं और न किसी खास धर्म के। उस संस्था का अधिष्ठाता यदि गीता में विश्वास करता था तो वह सभी लड़कों को गीता का उपदेश देता था। मुझे याद है कि मैंने गीता का पाठ कई बार बचपन में किया है। उसकी सब बातें मैं उस वक्त नहीं समझता था तब भी श्रद्धालु की तरह भगवान् कृष्ण की मूर्ति के सामने बैठ कर पाठ किया करता था। जब गीता को कुछ समझने लगा तब से गीता की ऐसी आलोचना करता हूँ जो किसी गीताभक्त को पसन्द नहीं आती। अतएव मैं अपने को हिन्दू धर्मी भी नहीं मानता और न दूसरे ही मुझे हिन्दू धर्मी मानने को तैयार हैं।

हमारे अधिष्ठाता महोदय जब श्वेताम्बर मूर्ति पूजक होते तब वे स्थानकवासी या मूर्तिपूजक का भेद किए बिना जैन कुलोत्पन्न सभी लड़कों को श्वेताम्बर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन मंदिर में पूजा पाठ के लिए ले जाते थे। हमारे लिए तो उस वक्त कृष्ण-पूजा या जिनपूजा में कोई भेद नहीं था। हम लोग जिनपूजा भी बाल सुलभ श्रद्धा-भक्ति से करते थे। किन्तु आज मैं मंदिर में पूजा करने नहीं जाता। कभी कभी प्रचलित मूर्तिपूजा के तरीकों पर कटाक्ष भी करता हूँ तो मूर्तिपूजक भाई कह देते हैं कि यह तो स्थानकवासी है—इसे मूर्तिपूजा से नफ़रत है। कोई श्रद्धाभक्ति से पूजा करता हो उसका मुझे कोई विरोध नहीं है फिर भी मैं उनके अर्थ में मूर्तिपूजक तो नहीं हूँ। अतएव वे मुझे मूर्तिपूजक न मानें यह ठीक ही है। सच्चे अर्थ में भी मैं अब मूर्तिपूजक नहीं रहा हूँ अतएव मैं मूर्तिपूजक भी नहीं हूँ।

हमारी संस्था में अधिष्ठाता ही नहीं किन्तु उनकी पत्नी भी यदि स्थानक-वासी होती तो वह यह चाहती कि स्थानकवासी लड़कों को उपाश्रय में ही जाना चाहिए। और जो लड़के स्थानकवासी होते उन्हें स्थानकवासी जैनशाला में और साधु जी के व्याख्यान सुनने उपाश्रय में जाना पड़ता था। उन दिनों मैंने भी सामायिक श्रद्धापूर्वक की और श्री शतावधानी जी जैसे सद्गुणी साधुओं के चरणों में श्रद्धा से मस्तक नमाया। किन्तु आज मैं तथाकथित साधुओं को कोसता रहता हूँ तो स्थानकवासी भाई समझते हैं कि मैं मूर्तिपूजकों के हाथ बिक गया हूँ क्योंकि मुझे ऐसी नौकरी मिली जिसकी स्थापना श्वेताम्बर मूर्ति पूजकोंने की है। इसलिए मैं लोगों की दृष्टि में स्थानकवासी भी नहीं हूँ। मेरा कुल दिगम्बर धर्म को तो मानता ही नहीं और मैंने जिस साहित्य की सेवा अब तक की वह प्रायः श्वेताम्बरों का ही है अतएव मैं दिगम्बर भी नहीं हूँ। तेरापन्थी तो मैं होने से रहा। इस प्रकार मैं जैनों के किसी भी संप्रदाय का नहीं हूँ फिर भी मेरे सामने प्रश्न है कि क्या मैं जैन हूँ ?

इसका उत्तर स्वयं वाचक ही खोजें। क्योंकि आत्मा के ऊपर तो कोई लेबिल है नहीं जिससे पहचाना जा सके कि यह जैन है। समाज ही किसी व्यक्ति को अपने व्यवहार की सिद्धि के लिए जैन-जैनेतर का लेबिल लगाता है। समाज प्रदत्त ऐसे लेबिल से तो मैं वंचित ही हूँ। तब मैं कैसे कहूँ कि मैं जैन हूँ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय

तुम चले गए, अर्ध रात्रि में। मुझे अचेत, सोती हुई पाकर ......सोचा होगा—यशोधरा मेरे मार्ग का काँटा बनेगी, मुझ जाते हुए का आँचल पकड़कर रोक लेगी, परन्तु नाथ! आपने यशोधरा के हृदय के मर्म को नहीं समझा......... !

......बस एक यही वेदना मेरे हृदय को जलाकर क्षार किये जा रही है......मैं स्वयं तुम्हें हर्ष से—कर्मठ तपस्या करने के लिए वनों में भेजती; तुम्हारी जलाई हुई अग्नि में......... !

यशोधरा के नेत्रों से उष्ण जल टपक पड़ा—ओह, निर्मम बनकर चले गए, चोर बनकर मुझे छल गए। मैं नहीं जानती थी कि सुकुमार सिद्धार्थ इतने कठोर निकलेंगे!

"देवी! महाराज शुद्धोदन ने समाचार भेजा है कि दो किसानों द्वारा समाचार मिला है—राजकुमार सिद्धार्थ वन में अत्यन्त शान्ति पूर्वक तपस्या कर रहे हैं। उनकी दिव्य, अलौकिक आभा उनके आत्मिक उत्थान का शुभ संदेश देती है", सेवक ने कहा।

यशोधरा हर्षातिरेक से कह उठी—मेरे स्वामी का शुभ समाचार अहा, कहाँ वे......... !

परन्तु दूसरे ही क्षण स्वाभिमानिनी यशोधरा ने मुँह फेर लिया—ओह, राजकुमार तुम तो मुझे......... !

कुछ कहा उन्होंने ?—यशोधरा ने अश्रुपूरित पलकें ऊपर उठाकर पूछा।

"उन्हों ने सारी प्रजा को शुभाशीर्वाद भेजा है...... !"

"भगवान उनकी साधना को सफल करें," भर्राये हुए कंठ से कह कर यशोधरा समीपवर्ती शिला पर बैठ गई।

"वे चले गए, मुझसे छिपकर। परन्तु मैं उनकी अर्धांगिनी हूँ। वे वनों में तपस्या करेंगे, मैं घर में रह कर उनके लिए मंगल कामना करूँगी.........उनकी श्वासों के आधार पर अपने जीवन का भविष्य बनाऊँगी; वे चाहे आएँ चाहे न आएँ परन्तु मैं प्रतीक्षा द्वार पर स्वागत दीप लिये खड़ी रहूँगी............"यशोधरा के अन्तःकरण की ध्वनि उस वातावरण में गूँज उठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु यशोधरे! क्या तुम प्रतीक्षा द्वार पर खड़ी होकर उनका स्वागत कर सकोगी? वे तुम्हें सोती हुई छोड़ कर चले गए थे; क्या नारी जाति का स्वाभिमान इतना गिर चुका है?—यशोधरा के मन ने विद्रोह किया।

स्वामी के आने की अस्पष्ट आशा में वह व्यग्र हो उठी।

*　　*　　*　　*

"देवी! राजकुमार सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बन कर आए हैं पारिवारिक स्नेह छोड़कर अब वे विश्वप्रेमी बन कर आए हैं," सेविका ने गद्गद कंठ से कहा।

यशोधरा मचल उठी—वे स्वयं मेरे पास आएँ, मैं क्यो जाऊँ! अगर मेरे प्रेम में कुछ शक्ति होगी तो वे स्वयं मेरे पास आएँगे।

*　　*　　*　　*

सिद्धार्थ गौतम बुद्ध ने देखा—यशोधरा नहीं आई, स्वाभिमानिनी······हृदय में पावन प्रेम की लहरें उठने लगीं·········ठीक तो है, वह क्यों आए? मैं उसे अचेत सोती हुई छोड़ गया था, उसके स्वाभिमान पर चोट लगी थी, क्यों न जाकर स्वयं उसके स्वाभिमान को जीतने का अवसर दूँ।

जिसके चरणों पर संसार मस्तक झुका रहा था, वह कर्मठ तपस्वी आज महारानी यशोधरा के द्वार पर स्वयं उसे मनाने जा रहा था।

"लो स्वाभिमानिनी! तुम्हारे स्वाभिमान की विजय हो, मैं स्वयं भिक्षुक बनकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

प्रेम पुलकित यशोधरा ने, प्रेमाश्रु-पूरित पलकों से गौतम बुद्ध का हार्दिक स्वागत करते हुए कहा—

"नाथ! मेरे स्वाभिमान पर आपकी क्षमामय विशाल उदारता ने विजय पाई है। प्रभो! आप भिक्षुक बन कर आए, संसार आपको भिक्षा के रूप में भिन्न भिन्न वस्तुएँ भेंट करेगा, परन्तु यशोधरा आज आपको अपना हृदय भिक्षा के रूप में समर्पित करती है।"

—सत्यवती जैन, प्रभाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओसवंश-स्थापना के समयसंबन्धी महत्त्वपूर्ण उल्लेख-

-श्री अगरचंद नाहटा

ओसवाल वंश की स्थापना उपकेश-गच्छ प्रबन्धादि के अनुसार वीरात् ७० में ओसिया में रत्नप्रभसूरि जी ने की थी। पर ऐतिहासिक अन्वेषण द्वारा यह समय शंकित प्रतीत हुआ। फलतः स्वर्गीय पूर्णचंद जी नाहर आदि ने ओसवंश स्थापना विक्रमीय ८ वीं से १० वीं शताब्दी के लगभग होने का मत प्रकाशित किया। इधर मुनि ज्ञानसुंदर जी (वर्तमान देवगुप्त सूरि) ने पूर्व परम्परा व अनुश्रुति को सिद्ध करने का प्रयत्न किया, पर उनके दिये गए प्रमाण पुष्ट प्रतीत नहीं होने से मैंने उनका परीक्षण किया और ओस-वंश स्थापना का समय ८-९ वीं शताब्दी के लगभग होने का विचार प्रकट किया। यह मत अनेक ऐतिहासिक उल्लेखों के परिशीलन के आधार से ही बना था, पर अभी तक उसके समर्थन का सीधा प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सका था, जो अब हुआ है। वह प्रस्तुत लेख द्वारा पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है।

तीन वर्ष पूर्व बीकानेर के कलाप्रेमी मोतीचंद जी खजांची के संग्रह के गुटके में ओसिया का महावीर-स्तवन व ओसवंश-स्थापना संबन्धी एक उल्लेख पाया गया था, जिसमें महावीर मन्दिर का निर्माण और ओसवंश स्थापना का समय विक्रम सं० १०११ के लगभग का उल्लिखित था। उसके संबंध में 'ओसवाल' वर्ष १५, अंक ११ में प्रकाशित मेरे "ओसवंश स्थापना के समय संबन्धी दो अन्य उल्लेख" शीर्षक लेख में प्रकाश डाला जा चुका है। ओसिया के महावीर मन्दिर का शिलालेख भी लगभग इसी समय का है। लेख का पाठ त्रुटित होने से वह 'मन्दिर के निर्माण का सूचक है या जीर्णोद्धार का' यह निश्चित नहीं हो पाया है। ओसिया स्थित अन्य जैनेतर मन्दिर भी विद्वानों की राय में ९-१० वीं शताब्दी के पूर्व के नहीं हैं। अतः वहाँ इससे पहले के प्राचीन स्मारकों की अनुपलब्धि पर विचार करने से ओसिया नगर भी ८-९ वीं शताब्दी के लगभग बसाया जाना सम्भव प्रतीत होता है। उपकेश गच्छ प्रबन्धादि से यह तो स्पष्ट ही है कि श्रीमाल नगर में जैनधर्म के प्रचार के पश्चात् वहाँ के राजकुमार ने आकर ओसिया नगर बसाया और तत्पश्चात् रत्नप्रभसूरि जी के यहाँ पधारने पर ओसवंश की स्थापना हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रमी संवत् ८३५में रचित कुवलय माला की प्रशस्ति के अनुसार श्रीमाल नगर में शिवचन्द्र गणी पधारे थे। उनके शिष्य यक्षदत्त गणी ने गुर्जरधरा (उस समय के मारवाड़ प्रदेश का प्राचीन नाम) जैन मन्दिरों से मण्डित की थी। यह घटना ८ वीं शती की ही होनी चाहिए। इसी प्रकार संवत् १३६५ की कल्पसूत्र व कालिकाचार्य-कथा की प्रशस्ति से विक्रमी संवत् ७०४ के लगभग श्रीमाल वंश के डीडानामक श्रावक के शान्तिसूरि द्वारा प्रतिबोधित होने का पता चलता है। यथा :—

श्रीमालवंशेऽस्ति विशालकीर्तिः श्रीशान्तिसूरिप्रतिबोधितडीडकाख्यः।
श्री विक्रमाद्वेद नभों महर्षि वत्सरे, श्री आदि चैत्य कारापित नवहरेच॥

(प्र० जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह)

इसी प्रकार श्रीमाल वंशावली में सं० ७९५ में श्रेष्ठी तोड़ा के प्रतिबोध का उल्लेख है, यथा—"अथ भारद्वाजगोत्रे संवत् ७९५ वर्षे प्रतिबोधितः श्री श्रीमालज्ञातीयः श्री शान्तिनाथगोष्ठिकः श्री भिन्नमालनगरे भारद्वाजगोत्रे श्रेष्ठितोड़ा।" (प्र० जैन साहित्य संशोधक, आत्माराम शताब्दी स्मारक ग्रंथ)

मारवाड़ में जैन धर्म के प्रचार की स्थिति आदि पर विचार करने से भी श्रीमाल वंश की प्रसिद्धि ८ वीं शती के लगभग होनी चाहिए और ओसवंश की स्थापना तो उसके बाद हुई है। उपर्युक्त प्रमाण अन्य गच्छीय है जब कि हाल ही में उपकेशगच्छ की द्विवंदनीक शाखा के एक उल्लेख से भी मेरी मान्यता का समर्थन होता है। अतः प्रस्तुत लेख में उसे प्रकाशित किया जा रहा है।

दो वर्ष हुए बम्बई जाने पर स्व० देशाई के संग्रह में कवि उदयरत्न रचित 'पांच पाटरास' की प्रति उपलब्ध हुई जिसमें उपकेश गच्छ की शाखा द्विवन्दनीक गच्छ का संबंध लब्धिरत्न के पूछने पर उनके काका गुरु ने सारा वृत्तान्त बतलाया लिखा है। उस प्रसंग के आवश्यक पद्य उद्धृत किये जाते हैं :—

सीधपुरीइं पोहता स्वामी, वीर जी अंतरजामी,
गौतम आदे गहगाट, बीच माँहे बही गया पाट।
त्रेवीस ऊपरे आठ, बाधी धरमनी बाट,
श्री रहवी(रत्न)प्रभु सुरिश्वर राजे, आचारज पद छाजे॥
श्री रत्नप्रभु सूरिराय केशीना केडवाय,
सात से सैका ने समय रे श्रीमाल नगर सनूर।
श्री श्रीमाली थापिया रे, महालक्ष्मी हजूर,
नउ हजा घर नातीनां रे श्री रत्नप्रभु सूरि॥
थिर महूरत करी थापना रे, उल्लट धरी ने उर,
ब्रह्म क्षत्री ते भला रे, नहीं कारडियो कोय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहेलुं तीलक श्रीमाल ने रे, सिगली नाते होय,
महालक्ष्मी कुल देवता रे, श्रीमाली संस्थान ॥
श्री श्रीमाली नातीनां रे, जानें बिसवा बीस,
पूरब दिस थाप्यां ते रे, पोरवाड़ कहवाय।
ते राजाना ते समय रे, लघु वंधव इक जाय,
उवेस वासी रह्यो रे, तिणे उवेसापुर होय ॥
ओसवाल तिदां थापिया रे, सवा लाख घर जोय,
पोरवाड़ कुल अम्बिका रे, ओसवालां सची या व।
गोत्र देवीए ते गुरें, थापी तिण प्रस्ताव,
तिएय रुपे त्रिण थान के, चतुर रह्या चौमास ॥
रत्नप्रभ सूरिश्वरे, पूरी सहुनी आस,
उसवाला पुरे आविया, मूल रूप मुनिराज।
गुरु उसवाला ते सही, कहेवाइ छे आज,
पार्श्वनाथ ने वंदी ने, वन्दिया श्री वर्धमान ॥
बे बन्दणीक तेणे बोलियो, गच्छ तणु अभिधान,
ते रत्नप्रभु सूरि ने वंशे, देवगुप्ति सूरि भूप।
अडतीसवीं पाटे थयो, अभिनव ओसवाला गच्छ रूप,

अर्थात् वीरप्रभु के पश्चात् गौतमस्वामी के २३+८=३१ पाट बीत जाने पर रत्नप्रभसूरि हुए। वे श्रीमाल नगर में पधारे। ७०० संके में उन्होंने श्रीमाल वंश की स्थापना की। उस नगर के पूर्व दिशा में रहने वाले पोरवाड़ कहलाये। श्रीमाल नगर के राजा के लघु बांधव ने उवेश नगर बसाया। सूरि जी ने उसमें सवा लाख घरों को जैनधर्म का प्रतिबोध दे ओसवंश की स्थापना की। श्रीमाल, पोरवाड़ ओसवाल की गोत्रदेवी क्रमशः लक्ष्मी, अम्बिका और सचिया देवियाँ हैं। प्राचीन पार्श्वनाथ और वर्धमान दोनों को वंदन व मान्य करने से द्विवन्दनी शाखा हुई। रत्नप्रभसूरि जी के वंश में ३९ वें पट्ट पर देवगुप्त सूरि हुए।

उपर्युक्त उल्लेख से मेरी एक चिरकालीन धारणा का आश्चर्यजनक समर्थन हो जाता है। मेरी वह धारणा यह थी कि उपकेश गच्छ में 'रत्नप्रभसूरि' यह नाम ३२ वें पाट के बाद रखने की प्रथा बंद कर दी गई थी। यह परिपाटी किसी विशेष घटना की सूचक होनी चाहिए। वह कारण संभवतः यही होगा कि ऐसे प्रभावक आचार्य बिरले ही होते हैं; अतः साधारण व्यक्ति का भी यही नाम रखने से इस शुभ नाम का महत्व घट न जाय। अतएव रत्नप्रभ सूरि नाम वाले जो अन्तिम आचार्य हैं वे ही ओसवंश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापक होने चाहिएँ। ऐसे महत्त्व के नामवाले आचार्य का नाम साधारण व्यक्ति को मिलना उचित न समझ कर ही इस नाम की पुनरावृत्ति बंद कर दी गई प्रतीत होती है। इन रत्नप्रभसूरि नाम वाले आचार्य का नम्बर पट्टावली के अनुसार ३२ वाँ है और उपरोक्त उदाहरण में भी—'पाट बीच में चले जाने पर रत्नप्रभसूरि हुए' लिखा होने से नम्बर ३२ वाँ ही पड़ता है। अन्तर केवल इतना ही है कि पट्टावली में क्रम पार्श्वनाथ से प्रारम्भ किया गया है जब कि प्रस्तुत रास में महावीर भगवान् से। मेरी राय में केशी गणधर ने जब भगवान् महावीर के शासन को स्वीकार कर लिया तब परम्परा उन्हीं के साथ संबंधित होनी चाहिए। उपकेश गच्छ वालों ने अपनी परम्परा को प्राचीन दिखलाने के लिए ही भगवान् पार्श्वनाथ से सीधा संबंध मिलाये रखा है।

उपकेश-गच्छ पट्टावली में नम्बर ४१ के देवगुप्त सूरि का समय सं० ९९५ का बतलाया है। तदनुसार उनके नवें पाट पहले रत्नप्रभसूरि का समय विक्रम सं०७५०के लगभग ही पड़ता है। अतः उक्त रास में दिए हुए अनुमानित समय की संगति बैठ जाती है। भगवान् महावीर के ३२ वें पाट वाले रत्नप्रभसूरि का समय वि० सं० ७००—८०० के बीच का होने में इतिहास से भी विरोध व आपत्ति नहीं प्रतीत होती और उपकेशवंश की स्थापना का समय भी ८-९ वीं शताब्दी का होना विशेष सम्भव है।

अभी तक उपकेश गच्छ पट्टावली, उपकेशगच्छ प्रबन्ध आदि के उल्लेखों के अनुसार वीर भगवान् के ७० वर्ष बाद ओसवंश की स्थापना होना माना जाता रहा है, पर मेरी शोध से इस समय से भिन्न समय को सूचित करने वाले तीन उल्लेख प्रकाश में आए हैं। जिनमें से पहले कविवर ऋषभदास रचित हरिविजयसूरि रास के अनुसार ओसवाल वंश की स्थापना संवत् ५१०में रत्नसूरि द्वारा हुई। दूसरे उल्लेख ओसिया के महावीर-स्तवन और ओसवाल उत्पत्ति वृत्तान्त के अनुसार इस घटना का समय संवत् १०११–१५ है। तीसरे उल्लेख पाँच-पाट-रास का उद्धरण ऊपर दिया ही गया है जिसमें उक्त घटना का समय ७वाँ सैका कहा गया है अर्थात् पूर्वकाल में भी ओसवंश स्थापना के समय के संबंध में विभिन्न मत या प्रवाद परम्पराएँ प्रचलित थीं, ऐसा सिद्ध होता है। इनमें से मुझे ९ वीं से ११ वीं शताब्दी के बीच में ही सही समय होना संभव लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि की हुंकार–

–श्री जयभिक्खु

जयभिक्खु गुजराती के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, आदि साहित्य के विभिन्न अंगों पर आपने क़लम चलाई है। जैन कथा साहित्य पर आपकी अनेक रचनाएँ हैं। 'मत्स्य-गलागल' आदि अनेक जैन उपन्यास भी लिखे हैं। प्रस्तुत कहानी 'वीरधर्मनी बातो' नामक कहानी-संग्रह में से है। 'श्रमण' में क्रमशः इस संग्रह की सभी कहानियाँ दी जाएँगी। कहानियों की भाषा, शैली, भावाभिव्यक्ति आदि सभी बातें आकर्षक, रोचक एवं गम्भीर हैं। 'श्रमण' के पाठक हमारी इस योजना को अवश्य पसन्द करेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। इन कहानियों का अनुवाद स्वयं लेखक ने कराया है; अतः बिना अनुमति के उद्धृत न करने की प्रार्थना है। एतद्विषयक पत्र-व्यवहार 'श्रमण' के सम्पादक से किया जा सकता है।

–सम्पादक

एक समय ऐसा आता है जब साहित्यकार अथवा कवि को अपनी रचना काली स्याही से नहीं, अपितु लाल रक्त के अक्षरों से लिखनी पड़ती है। रण क्षेत्र में लड़ने वाले योद्धा को जैसे प्रत्येक कदम पर तन, मन और धन का बलिदान करना पड़ता है उसी प्रकार कवि को भी प्रत्येक पंक्ति पर धन, देह और मन की बलि चढ़ानी पड़ती है। इसी वेदना से—कवि के इसी स्वाभिमान से साहित्य की सरिता हृदय को चीर कर बाहर निकलती है। उसकी पीड़ा अक्षर अक्षर में प्राण का संचार करती है। उसके प्रत्येक करुणस्वर से नवयुग की संवेदना प्रकट होती है।

ऐसा समय एक बार गुजरात में पाटण नगर के एक स्वप्नदर्शी और आत्माभिमानी कवि के लिए आया। जिस समय सिद्धपुर—पाटण के देव मन्दिरों में संध्या की आरती के अन्तिम टकोर बज रहे थे उस समय नगर के एकान्त में बने हुए एक विहार में रोमांचकारी समाचार लिये हुए एक गुप्तचर धीरे धीरे घूम रहा था।

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी की घटना है। परमार्हत् और परम महेश्वर इस प्रकार दो दो देवों के परमभक्त, समदृष्टि महाराज कुमारपाल अनन्त की गोद में सो चुके थे। कलिकाल-सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य का केवल अक्षर देह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यमान था। विनाश और वैर की समग्र सामग्री के साथ महाराज अजयपाल कल ही सिंहासन पर बैठे थे। महाराज कुमारपाल की समदृष्टि, न्यायप्रियता और सहनशीलता को ये भूल चुके थे। पाटण की दीन प्रजा अत्याचारों की चक्की में पिस रही थी।

पाटण के आकाश मंडल में तारे निकल चुके थे। गुप्तचर ने एक जैन उपाश्रय में प्रवेश किया और एक कोने में ध्यान में बैठे हुए व्यक्ति से कहा—

"कविराज, जागते हो न! साधुराज, जानते हो न! पाटण के सिंहासन पर किस की सत्ता है ?"

"पाटण के सिंहासन पर चाहे किसी की सत्ता हो, मुझे इससे क्या? मेरे हृदय-सिंहासन पर किसकी सत्ता है, यह पूछो न, भाई!" उस व्यक्ति ने जरा सावधान होकर कहा—"कौन है भाई? अभ्यास में क्यों विघ्न डालते हो? मेरा सौवां काव्य कल पूरा हो जायगा। कल मुझे 'प्रबन्ध-शत-कर्ता' की उपाधि मिल जायगी।"

गुप्तचर का स्वर बहुत भारी हो गया। वह और समीप आया और कहने लगा—

"कविराज! काव्य और कला, रस और अलंकार सब एक क्षण के लिए भूल जाओ। उगते हुए सूर्य को नमस्कार करने के लिए सावधान हो जाओ! समय ऐसा आ रहा है कि तुम्हारी लेखनी और सरस्वती अब महाराज अजयपाल की स्तुति करेगी।"

"कौन मुझे राज्यतंत्र का क्रीतकवि बनाना चाहता है? मैं कौन? प्रकृति का महाकवि रामचन्द्र! जयपाल जैसे कुराजाओं की प्रशस्ति मेरे मुखसे! कवित्व की आत्म-हत्या मेरे हाथ से! शान्तं पापम्, शान्तं पापम्!"

"रामचन्द्र! तुम तो बहुत ही भोले कवि मालूम पड़ते हो। जानते नहीं कि प्रभु पंचासर के देवालय पर कल ही अजयपाल के नौकरों ने हथौड़े चलाए हैं, महाभंडार तत्कालही अग्नि को समर्पित किए गए हैं। अरे, कपर्दी जैसे मंत्री को एक दिन के लिए मंत्री बनाकर उबलते हुए तैल की कड़ाही में छोड़ दिया! आम्रभट जैसे वीरभट को सेना के घेरे में डालकर मरवा डाला, फिर तुम्हारी क्या हस्ती! राजाज्ञा स्पष्ट है। जैन, जैन हैं; ब्राह्मण, ब्राह्मण। जैन ब्राह्मण नहीं बन सकता, ब्राह्मण के लिए जैनत्व ठीक नहीं। ब्राह्मण तो प्रभु की प्रथम संतति! पूजा वेद की; अर्चना ब्रह्मा, विष्णु और महेश की; चर्चा यज्ञयाग की! क्या यह आदेश तुम नहीं जानते?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगाढ़ अंधकार में दीवालें भी बोलती हुई प्रतीत होती हैं। गुप्तचर ने दीवाल पर कान लगा कर सुना। कवि स्तब्ध था, विहार भूमि शान्त थी।

"भाई! मेरा राजा की आज्ञा से क्या प्रयोजन? परम गुरुदेव के वे वचन आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं—'ब्रह्मा वा, विष्णुर्वा, हरो जिनो वा' सभी रागद्वेष जीतने वालों को नमस्कार!"

"तुम अभेद की बातें करते हो किन्तु वे तो भेद ही मानते हैं। जैन, जैन हैं; ब्राह्मण, ब्राह्मण! दोनों में कोई संबन्ध नहीं।"

"किन्तु परमार्हत् और परम महेश्वर, इस प्रकार दो देवों के परम भक्त महाराज कुमारपाल के स्वामिभक्त सेवक कहाँ गए, वे समर्थ महारथी इस अन्याय के सामने क्यों नहीं बोलते?" कवि ने प्रश्न किया। काव्य-जगत् में रमण करने वाले योगी के मनोभाव इस समय भी टूटी हुई कड़ी को जोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे।

"सच्चे मोती राजा अजयपाल की कोपाग्नि में भस्म हो गए। दूसरे सेवक अजयपाल के सामने दीनता से पूँछ हिलाने लगे। सिर देने का समय चला गया। अब तो मनुष्यता को बेचकर भी मानव सिर बचाते हैं, कविराज!"

"और यही कारण हैं कि एक दिन जीवन कटु लगेगा। माँगने पर मौत नहीं आती!" कवि बोला। उसकी दुनिया, अलग ही थी।

"काल की कोई चिन्ता नहीं करता, कविराज! अन्यथा एक गुरु के दो शिष्यों में से एक तो भूखे कुत्ते की भाँति पूँछ हिलाए और दूसरा पर्वत की भाँति अडिग रहे, यह कैसे हो सकता है?"

"एक गुरु के दो शिष्य? कौन? मैं और बालचन्द्र?"

"हाँ, हाँ, यति बालचन्द्र। उसके काव्य राजा अजयपाल के चरणों में लोटते हैं। तुम्हारे काव्य और लेखनी को उसके चरणों में झुकाने का षड्यंत्र हो रहा है। कवि! जीवित रहना हो तो शीघ्र सावधान हो जाओ; कल्पनाविहार को छोड़ कर कर्तव्यविहार का आचरण करो।"

"नहीं भाई! अब नया नहीं सीखा जा सकता। परम गुरुदेव का आदेश विस्मृत नहीं किया जासकता। जीवन की कोई चिन्ता नहीं। एक बार जगत् को देख लेने दो कि एक ही वृक्ष के दो भिन्न जाति के पत्ते हो सकते हैं—एक तो कड़वा और दूसरा मीठा। एक ही पिता के दो पुत्र परस्पर विरोधी गुण वाले हो सकते हैं। रामचन्द्र की कविता ऐसे हीनपुरुषों के चरणों में नहीं लोट सकती! रामचन्द्र अर्थात् कौन?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कविराज ? भूल रहे हो। जाने वाले क्षण स्वर्ण के हैं। अब भी सावधान हो जाओ। विद्वान् होकर क्यों भूलते हो कि वर्षा के प्रवाह और पवन के झोंके के सामने समय देख कर झुक जाने वाले वृक्ष जीवित रहते हैं, अभिमान में खड़े रहने वाले वृक्ष धराशायी हो जाते हैं। समय का परिवर्तन होने पर मानव का अपरिवर्तन कैसा ?"

महाकवि के उत्तर देने के पहले ही विहार की सीढ़ियाँ सिपाहियों के फौजी जूतों से खटखटा उठीं। गुप्तचर कोने के कृष्णवर्ण में समा गया।

"कहाँ हैं कवि रामचन्द्र ?" स्वर भयंकर थे।

"सिपाहियो ! कवि रामचन्द्र यहीं रहता है। आइए क्या काम है ?" कवि ने निर्भयता से कविता में ही उत्तर दिया।

"गुर्जरेश्वर महाराजा अजयपाल तुमको आमन्त्रित करते हैं।" सिपाही सभ्य बनने का यत्न करने लगे।

"कल प्रातःकाल आऊँ तो ?"

"यह नहीं हो सकता।" सिपाही आगे बढ़े और कवि को घेर लिया। खड्ग कोष से बाहर निकल पड़े। उन्होंने घोषणा की—"अपराधी एक क्षण के लिए भी अकेला नहीं छोड़ा जा सकता, ऐसी राजा की आज्ञा है।"

"मैं, अपराधी !"

कवि के इन शब्दों की पूर्ति होने के पहले ही वे पकड़ लिये गए। थोड़े से समय में सारा विहार भयंकर-भीति से निस्तब्ध हो गया। पाटण की गलियां तो पहले से ही निष्क्रिय थीं।

समय देखकर आकृति बदलने वाले आकाश के तारे, अपनी और मानव-जगत् की तुलना करने के लिए पाटण की गलियों में छिप छिप कर झांक रहे थे।

[२]

सूर्योदय होते ही पाटण की गलियों में पटह-ध्वनि सुनाई दी—

"पाटण के प्रजाजनो ! महाराज अजयपाल की आज्ञा है कि ब्राह्मण और जैन एक नहीं हो सकते। ब्राह्मण, ब्राह्मण है और जैन, जैन। अग्नि और पानी एक साथ नहीं रह सकते। चाहे दोनों उपयोगी हों किन्तु एक नहीं हो सकते। परमार्हत् और परम महेश्वर, दोनों की भक्ति एक साथ कदापि नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकती। जैनों के देव कभी ब्राह्मण नहीं हो सकते और ब्राह्मणों के देवों को जैन कहना असह्य है। सभी ब्राह्मण धर्म का सम्मान करें, यज्ञ तथा वेदपूजा का महत्त्व बढ़ाएँ। जो लोग समदृष्टि के नाम से ब्राह्मणधर्म और जैनधर्म का सम्मिश्रण करना चाहते हैं उनको कठोर दण्ड मिलेगा।"

पाटण के निवासियों ने यह सन्देश सुना। घर में पड़े हुए समन्वय का संदेश देने वाले साहित्य का अग्नि देवता के आतिथ्य में उपयोग किया। अरे भाई, हम सब अलग अलग हैं! जैन और ब्राह्मण का क्या संबंध? मंदिरों के मार्ग जनशून्य हो गए। धर्मस्थान में जनरव का वह आनन्द न रहा।

इतना ही नहीं, अपितु सभी को न्यायसभा में उपस्थित होने का आदेश दिया गया। भरे न्यायालय में हठी कवि रामचन्द्र को न्याय की तुला में तोलना था।

अन्याय के भार से जिसका पलड़ा पहले से ही भारी बन गया था वही तुला प्रातःकाल न्यायभवन में तैयार थी।

कवि रामचन्द्र को बाँधकर सभा में उपस्थित किया गया। कवि के मुख पर एक अद्भुत आभा झलक रही थी।

"कविराज! तुमने ब्राह्मण और जैनों को एक करने के लिए काव्य बनाकर जो अपराध किया है उसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।"

"कवियों की काव्य-रचना किसी अज्ञात प्रेरणा का फल है। उसको पाप अथवा प्रायश्चित्त छू भी नहीं सकता! सत्ता अथवा समृद्धि उसको नहीं बदल सकती! कवि को प्रायश्चित्त कराने वाले के पास ऐसा कौन सा पांडित्य है, ऐसी कौन सी समन्वय दृष्टि है जो कवि का न्याय करेगी? अज्ञानी ज्ञानी का न्याय करेगा! संसार हँसेगा नहीं?" कवि रामचन्द्र ने निर्भय हो उत्तर दिया।

"अर्थात् तुम राजाज्ञा की अवज्ञा करना चाहते हो? तुम को इस राज्य की तथा हमारी प्रशस्ति लिखकर पूर्व कृत्यों का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। तुम्हारे गुरुभाई बालचन्द्र की भी यही सलाह है।"

"राजन्! कवि स्वाधीन होते हैं। कवि भी एक राजा है। राजा के राज्य से कवि का राज्य विशाल होता है। एक राजा की निधि में जितने जवाहर होते हैं उससे भी अधिक जवाहर कवि के कोष में होते हैं। क्या तू तलवार की आसुरी-शक्ति के बल से यह राज्य लूट सकेगा? क्या यह निधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु का भय दिखलाने से तेरी हो जायगी ? प्रशस्ति आज्ञा के आधार पर नहीं लिखी जा सकती। सांसारिक लोभ से आन्तरिक ऊर्मियाँ जागृत नहीं हो सकतीं। कवि का मन स्वतन्त्र है। उसको भावना की भूमि दिखाओ, तुरन्त नृत्य करने लग जायगी। वसन्त के आगमन पर कोयल को कौन कहता है कि अरी पगली, कुछ गा !" कवि रामचन्द्र ने कवियों के स्वभाव का परिचय दिया।

"पागल कवि ! छल छोड़ कर 'हाँ' या 'ना' कहो।"

"कवि कभी छल करना जानता है ? छल तो उसे सीखना चाहिए जिसे एक पापी पेट के लिए और क्षणिक वाह-वाह तथा वैभव के लिए अनन्त पाप करना पड़ें, एक कर्तव्य-च्युत राजा का आश्रय लेना पड़े। छल वही कर सकता है जो स्वतन्त्रता और स्वाभिमान का सर्वथा त्याग कर चुका हो ?"

"राजा जी ! रामचन्द्र मेरा अपमान करता है ?" रामचन्द्र के गुरुबंधु बालचन्द्र ने क्रोध से कहा।

"शान्त रहो ! इस कवि का मद अभी चूर चूर होता है। सिपाहियो ! इसकी दोनों आँखों को जलती हुई शलाका से आँज दो। देखते हैं, इसकी जिह्वा अभी भी खुलती है कि नहीं !"

"राजन् ! डराओ नहीं। चिड़िया कितना भी करे, समुद्र को नहीं सुखा सकती। तुझे चक्षु की आवश्यकता है ? ले ले। ये दो चक्षु मेरे पास अधिक हैं। कवित्व की दिव्य चक्षुओं का प्रकाश मेरे रोम रोम में भरा हुआ है। फिर चक्षु जायँ तो क्या और रहें तो क्या ? नेत्र होते हुए भी अंधे बने हुए अजयपाल को इनकी आवश्यकता है। भले ही तू ले ले !"

जंजीरों में जकड़े हुए कवि ने अपनी दोनों आँखें जल्लादों को सौंप दीं। आततायी भी आह करने लग जायँ ऐसी वेदनायुक्त स्थिति में भी यह कोमल कवि स्वस्थ है ! राजा अजयपाल के वदन पर हास्य था। प्रजा सोच रही थी कि हँसा जाय या रोया जाय ? प्रजा की स्वतन्त्र आत्मा विदा हो चुकी थी।

"किन्तु महाराज, इस गँवार कवि को आपने तो दिव्यचक्षु दे दिये," राजा अजयपाल की छत्रछाया में रहने वाले कवि बालचन्द्र ने कहा, "अंधकवि श्रोताओं की समवेदना का पात्र हो जायगा। उसके काव्यों में जीवन आ जायगा। जीवित रहने वाला यह कवि आपकी अपकीर्ति के कुकाव्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशाओं को कुत्सित कर देगा। ऐसा न करने की प्रतिज्ञा करे तब तो ठीक, अन्यथा ....''

राजा ने कवि को प्रतिज्ञाबद्ध होने का आदेश दिया।

कविराज ने ऐसे बंधन कब स्वीकृत किये थे कि आज स्वीकृत करता!

"राजन्! पवन को बाँधना यदि तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर नहीं है तो कवि के हृदय को बाँध सकते हो। तुम भयंकर भालू और विकराल बाघ को वश में कर सकते हो कदाचित् परिश्रम करके अपने संकेत पर नृत्य भी करा सकते हो किन्तु मुट्ठी भर कविहृदय करोड़ों मन की जंजीरों से भी नहीं जकड़ा जा सकता। कवि स्वयं उसके हृदय की परतंत्रता स्वीकार करता है फिर दूसरे का तो कहना ही क्या!"

"तो मेरी आज्ञा की अवहेलना का दण्ड सुना है?" राजा ने क्रोधित होकर कहा।

"नहीं, यह सुनने की इच्छा नहीं। कविराज के संसार में अन्य राजा का शासन असंभव है। ऐसी दशा में कौन दण्ड देगा और किसका दण्ड स्वीकृत होगा?"

"मनस्वी कवि! कल्पना के जगत् को थोड़ी देर के लिए भूल जाओ," राजा ने बात करने का ढंग बदला। वह छल से भरी हुई भाषा में कहने लगा, "राजकवि के लिए सज्जित है यह मान-सम्मान, भेंट-पूजा, स्वर्ण-शिविकाएँ, रौप्य-छत्र और जय-जयकार करते हुए ये राजभृत्य! सुख की दुनिया को न ठुकराओ। दूसरे 'कलिकाल-सर्वज्ञ' का पद मेरी परिषद् में खाली है। यह स्थान................"

"चुप रह राजा! पवित्र गुरुदेव के नाम को अपनी अधम जिह्वा से अपवित्र न कर! विशाल सरोवर की गम्भीरता को कूपमंडूक क्या समझ सकता है!"

"कवि! सीमा समाप्त हो रही है। मेरे कठोर आदेश के पहले कुछ समझ जा! साधु का संहार ठीक नहीं!"

कवि ने उत्तर देने के बजाय स्वरचित स्वतन्त्रता का वर्णन करना प्रारंभ किया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हे[1] देव ! मानव की स्वतन्त्रता अबाधित रहे ! परतन्त्र होकर स्वर्ग में जाने की अपेक्षा गली का श्वान बनकर स्वतन्त्र रहना अच्छा है। स्वतन्त्रता तो मानव की सर्वश्रेष्ठ संपत्ति है।

"हे देव ! कवि का यह अन्तिम गान है कि सरस्वती कभी लक्ष्मी की दासी न बने ! मेरा अंग-प्रत्यंग चाहे कण कण होकर बिखर जाय किन्तु मेरे ये परमाणु जगत् में सर्वदा यह घोषणा किया करें कि एक नम्रातिनम्र कविनामधारी रामचन्द्र ने सिंहासन के डर से, किसी लालच से, अरे, अत्याचारों के डर से भी अपनी पवित्र वाग्देवी को दूषित नहीं किया।"

"कवि ! उष्ण लोहे के रस को बहाने वाली इस जिह्वा को बंद कर !" राजा अजयपाल अब धैर्य न रख सका। सदैव स्वविरोधी जन के लिए प्रयोज्य 'राजद्रोही' शब्द का आश्रय लेकर गरज उठा, "मंत्री ! इस राजद्रोही कवि को ऐसा मृत्युदण्ड दो कि शैतान भी काँप उठे ! जल्लादों को आदेश दो कि तपे हुए तवे पर इस कविराज का अभिषेक कर उष्ण तैल से स्नान कराएँ ! दया, अनुकम्पा अथवा प्रार्थना के लिए अब मेरे द्वार बंद हैं। इसके लिए मेरे समीप कोई न आए।"

राजा ने सभा भंग की। जल्लादों ने अपना कार्य प्रारंभ किया। जिस राजसभा में कल ही कलिकाल-सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य के एक शब्द पर सारा जन-समुदाय सिर झुकाता था वही राजसभा उसी समर्थ आचार्य के प्रिय शिष्य की दयनीय मृत्यु देख कर मुख से आह तक न निकाल सकी !

कवि की आत्मा देह से अलग हो गई। आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य मर कर अमर हुआ !

उसकी वाणी पवित्र रही।

राजा की कठोर आज्ञा थी कि कवि के किसी भी परमाणु का धूप-दीप से सम्मान करने वाले को मृत्युदण्ड मिलेगा ! किन्तु कौन कहता है कि इस अमर कविराज के लिए सांसारिक धूप-दीप की आवश्यकता थी। कवि की आत्मज्योति का प्रकाश सदैव अमर था !

—अनु० मोहनलाल मेहता

१—स्वतन्त्रो देव ! भूयासं, सारमेयोऽपि वर्त्मनि।
मा स्म भूवं परायत्तः, त्रैलोक्यस्यापि नायकः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय इतिहास की एक झलक

उ ज्ज यि नी

—श्री अमरचन्द, एम० ए०

उज्जयिनी नगरी भारतीय इतिहास को गौरवमय बनाने वाले प्रभावशाली राजनीतिक एवं सांस्कृतिक केन्द्रों में से है। उज्जयिनी का अर्थ है 'विजयशालिनी'। इसको पाली में 'उज्जेनी', प्राकृत शिलालेखों में 'उजेनी' और ग्रीक लेखकों ने ओज़ेने (Ozene) नाम से पुकारा है। स्कन्दपुराण के अनुसार अवन्तियों की राजधानी अवन्तीपुर को उज्जैन कहा जाता था, क्योंकि यहाँ पर महादेव ने जो अवन्ती के देव माने जाते थे, त्रिपुरा अथवा त्रिपुरी के राक्षसराज त्रिपुर के ऊपर विजय पाई और उसी विजय के उपलक्ष में इस नगरी को उज्जयिनी कहा गया। त्रिपुरी पड़ौसी राज्य था। हो सकता है अवन्ती और त्रिपुरी की लड़ाई में अवन्तीराज विजयी हुआ हो और इसीलिए वहाँ की राजधानी अवन्ती को उज्जयिनी कहा जाने लगा हो। इसी पुराण के भिन्न भिन्न कल्पों में हमको उज्जयिनी के अलग अलग छ नाम मिलते हैं—स्वर्णशृंग, कुशस्थली, अवन्तिका, अमरावती, चूड़ामणि और पद्मावती। महाकवि कालिदास ने इस विख्यात और समृद्ध नगरी को विशाला, और श्री सोमदेव ने भोगवती, हिरण्यवती, कुमुद्वती आदि नामों से भी संबोधित किया है।

उज्जयिनी चम्बल की सहायक नदी क्षिप्रा के पूर्वी तट पर (अक्षांश २३·११ अंश उत्तर, देशान्तर ७५·५० अंश पूर्व) समुद्रतल से १६९८ फुट की ऊँचाई पर स्थित है। स्कन्दपुराण में क्षिप्रा को 'उत्तरवाहिनी' के नाम से संबोधित किया है क्योंकि वह उत्तर दिशा को बहती है।

वाशिष्ठीपुत्र पुलुमायि के नासिक के लेख में आकरावन्ती का उल्लेख है, जब कि रुद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ के लेख में 'पूर्व' और 'अपर' अर्थात् पूर्व और पश्चिम दो आकरावन्तियों का वर्णन है। 'आकर' सम्भवतः पूर्वी मालव था जिसकी राजधानी विदिशा थी, और अवन्ती पश्चिम मालव था जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। डॉ० भाण्डारकर का मत है कि अवन्तियाँ दो थीं–एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरीय जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी, और दूसरी दक्षिणीय जिसकी राजधानी माहिष्मती थी। डॉ० मलालसेकर का कहना है कि कुछ समय पश्चात् माहिष्मती की अवनति हो गई और वह उज्जयिनी की ख्याति में विलीन हो गई। परन्तु बुद्ध और महावीर के समय का कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे कि दो अवन्तियों का होना सिद्ध हो। उस समय केवल एक ही अवन्ती का वर्णन आता है जिसका राजा चण्डप्रद्योत था। उसकी राजधानी उज्जयिनी थी।

अवन्तीराज्य की सीमा कुछ इस प्रकार थी—उसके उत्तर में चर्मणवती नदी और पारियात्र अर्थात् अरवली पहाड़ थे, दक्षिण में नर्मदा नदी थी, पूर्व में विंध्य पर्वत और दक्षिण में सुराष्ट्र का राज्य था। महाराज अशोक के समय में अवन्ती प्रदेश में विदिशा अथवा भिलसा भी सम्मिलित था।

युवानच्वांग (चीनी यात्री) लिखता है कि उज्जयिनी प्रदेश के चारों ओर निम्नलिखित राज्य थे—कोंकनपुर, महाराष्ट्र, भरुकच्छ, मालव, कच्छ, वल्लभी और सुराष्ट्र। उज्जयिनी प्रदेश की लम्बाई चौड़ाई के विषय में वह बताता है कि वह प्रदेश ६०००लि या १२०० मील और इसकी राजधानी उज्जयिनी ३० लि या ६ मील में फैली हुई थी।

पुरातन नगरी वर्तमान उज्जैन से दो मील उत्तर की ओर थी। इसके संबन्ध में कहा जाता है कि इसे भूकम्प अथवा क्षिप्रा की असाधारण बाढ़ ने नष्ट कर दिया था। प्राचीन नगरी की भूमि पर पुरानी नींवें आज भी दिखाई देती हैं। यहाँ पुरातत्व की असंख्य वस्तुएँ रत्न, अक्ष, मुद्रा, आभूषण और सिक्के प्राप्त हुए हैं।

वर्तमान नगर आयताकार है पर कभी शिखरों वाले प्रस्तर प्राकार से परिवेष्टित था, जिसका मालवा के सुलतानों द्वारा १५ वीं शताब्दी में निर्मित होना बताया गया है। ई० १८१० में राजधानी लश्कर में स्थापित हो जाने के कारण इसका महत्व प्रायः समाप्त सा हो गया। आज का नगर अनेक भागों में विभक्त है। प्रत्येक विभाग का नाम उसके संस्थापक अथवा निवासियों की श्रेणी के नाम पर है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है जयसिंहपुरा जो कि जयपुर के महाराज सवाई सिंह द्वारा संस्थापित किया गया था, मुसलमानों में बोहराओ के नाम पर 'बोहरा बारवाल'; तथा कोट अथवा किला जो सम्भवतः संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध महाकाल वन के स्थल का संकेत करता है, प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ पर देखने योग्य कई एक ऐतिहासिक स्थान हैं जिनमें से कुछ तो मध्यकालीन ही हैं जैसे राजा भर्तृहरि की गुफा, चौबीस खंबा; पश्चात् के स्थानों में बिना नींव की मस्जिद, कालियादह जलगृह, पुरानी सराय और राजा जयसिंह की वेधशाला (Observatory) हैं; मन्दिरों में महाकाल, गोपाल हरसिद्धि और छत्री घाट के मन्दिर विशेष हैं। इसके अतिरिक्त कुछ मकानों में सुन्दर खुदाई का काम किए हुए लकड़ी के द्वार और अट्टालिकाएँ भी ध्यान करने योग्य हैं।

उज्जैन भारत के सात पवित्रतम तीर्थों में गिना जाता है। यहाँ की श्रद्धालु जनता तो आज भी काशी-तीर्थ से किसी भी प्रकार कम नहीं मानती। उनके कथनानुसार उज्जयिनी नगरी भी काशी के समान आदिकाल से चली आ रही है। तान्त्रिकों का विश्वास है कि 'पित्रस्थान' यही स्थान है जहाँ पर कि भगवान शिव को काटने पर 'सती' का हाथ गिरा था।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है उज्जयिनी भारत के प्राचीनतम नगरों में से है। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यों के भारत में आने के समय में भी उज्जयिनी प्रसिद्ध नगरी थी, क्योंकि आर्य लोग मालवा में आकर बसे थे। यह प्रमाणित है कि बुद्ध और महावीर के समय में अवन्ती देश बहुत उन्नति पर था और भारत के चार बड़े राज्यों में गिना जाता था। उसी समय की हमको उज्जेनी के महाराज 'चण्डपज्जोत' की पुत्री वसुलदत्ता को कोशाम्बिराज 'उदेन' द्वारा हरे जाने की कथा मिलती है। उज्जेनी की दक्षिणी पहाड़ी पर महात्मा बुद्ध के मुख्य शिष्यों में से 'कंचन' का जन्म यहीं पर हुआ था और उनके जन्मस्थान पर एक बौद्ध विहार बनाया गया था।

रामायण अवन्ती से परिचित है और वह केवल उज्जयिनी के चारों ओर का प्रदेश ही नहीं वरन् स्वयं नगरी के रूप में भी उल्लिखित है। महाभारत-कार भी महाकाल के प्रांगण कोटीतीर्थ और उज्जयिनी से निश्चित रूप से परिचित थे। गोदावरी के तट से गंगा की घाटी को जानेवाले मार्ग पर यह एक प्रधान स्थल था। ईसापूर्व चतुर्थ और तृतीय शताब्दियों में अवन्ती के स्वतन्त्र राज्य का अस्तित्व समाप्त प्रायः हो गया था। मौर्य साम्राज्य का प्रतिनिधि राजकुमार अवन्तिका में रहा करता था, ऐसा उल्लेख बौद्ध साहित्य में प्रायः मिलता है। जैन ग्रन्थों में अशोक पौत्र सम्प्रति की राजधानी के रूप में इस नगर का वर्णन आता है।

ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में उज्जयिनी पश्चिमी भारत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक शासकों तथा दक्षिण के सातवाहन सम्राटों के बीच युद्ध का कारण प्रतीत होती है। कुछ विद्वान् 'शकनिषूदन' एवं वर वारनविक्रम चारुविक्रम' उपाधिधारी एक सातवाहन विजेता को ईसवी पूर्व ५८-५७ में संवत् प्रवर्तन करनेवाले शकारि विक्रमादित्य से अभिन्न मानने की सीमा तक चले जाते हैं। किन्तु अनुश्रुति के अनुसार उज्जयिनी के महान् विक्रम से सातवाहन अथवा शालिवाहन, जिसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी, स्पष्ट रूप से भिन्न था। पेरीप्लस आफ दि एरीथ्रियन सी (Periplus of the Erythrean Sea) का अज्ञातनाम लेखक, जो ईसवी प्रथम शताब्दी का एक यनानी नाविक था, उज्जयिनी का उल्लेख 'ओज़ेने' (Ozene) के रूप में करता है और उसे भूतपूर्व राजधानी कहता है। इसी स्थान से देश की समृद्धि के लिए आवश्यक गिनी जानेवाली चीजें तथा व्यापार की अन्य वस्तुएँ जैसे संगेशाह और संगेसुलेमानी, भारतीय मलमल आदि वस्त्र प्रचुर मात्रा में बरिगज़ अथवा बरोच (Broach) आता था और यहाँ से बाहर दूसरे देशों में भी भेजा जाता था।

टालेमी (Ptolemy) के काल (ईसवी की दूसरी शताब्दी) में प्रसिद्ध रुद्रदामन के पितामह चष्टन के अधीन 'ओज़ेने' ने राजधानी का महत्त्व पुनः प्राप्त किया। इन शासकों से अपना वंशानुक्रम मानने वाले राजाओं की परम्परा को गुप्तवंश के विख्यात महाराज चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अन्तिमरूप से समाप्त कर दिया था।

महान् कवि कालिदास अपने अमर काव्य 'मेघदूत' में मेघ से अपनी प्रिय नगरी उज्जयिनी का दर्शन करने के लिए अपने मार्ग से किंचित् मुड़ने की प्रार्थना करता हुआ उसका मार्ग प्रदर्शन करता है।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के पश्चात् इस नगरी को जो राजनीतिक परिवर्तन देखने पड़े उनका वर्णन भी यहाँ संक्षिप्त रूप में ही किया जा सकता ह। पाँचवी शताब्दी के पश्चात् भारत की स्थिति शान्तिमय नहीं रही। कोई भी वंश मुसलमानों के आने तक अखिल भारत को अपने अधीन में न कर सका। ईस्वी की छठी शताब्दी के अन्तिम भाग में उज्जयिनी कटच्चुरियों के शासन में चली गई। हुएन्त्सांग एक दूसरा चीनी यात्री के काल में उज्जयिनी में एक ब्राह्मण वंश राज्य करता था। ऐसा उसने उल्लेख किया है।

ईसा की आठवीं शताब्दी के पहले तथा दूसरे दशकों में उज़ेन 'Uzain' और पश्चिमी भारत पर सिन्ध के शासक जुनैद के नेतृत्व में आक्रमण हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुश्रुति के अनुसार राष्ट्रकूट राजवंश के संस्थापक दन्तिदुर्ग ने उज्जयिनी में हिरण्यगर्भ उत्सव मनाया जिसमें गुर्जर आदि नरेशों को द्वारपाल बनाया। ई० सन् ७८३–८४ में अवन्ती के सिंहासन पर प्रतिहार सम्राट् वत्सराज ने अधिकार कर लिया। वत्सराज के साम्राज्य-स्वप्न राष्ट्रकूट शासक ने ध्वस्त कर दिए। किन्तु उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय मालव पर, जिसके पश्चिमी भाग में उज्जयिनी सम्मिलित थी, आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुआ। इसके पश्चात् सम्भवतः ९४६ ईसवी तक उज्जयिनी भोजराजाओं के अधीन रही।

प्रतिहारों का स्थान शीघ्र ही परमारों ने ले लिया जो अकालवर्ष को अपना पूर्वपुरुष मानते थे। इस वंश के प्रारम्भिक शासक वाक्पति प्रथम का वर्णन 'मालव बालाओं के नयन-सरोजों के लिए सूर्य' के रूप में किया गया है। संभवतः वाक्पति द्वितीय ने, जो मुंज नाम से अधिक विख्यात है और जिसने सरस्वती को संरक्षण देने में विक्रमादित्य का अनुकरण करने का प्रयत्न किया, उज्जयिनी को राजधानी का गौरव प्रदान किया और उसके उत्तराधिकारियों ने भी उस गौरव को बनाए रखा।

बारहवीं शताब्दी में परमारों को उत्तर तथा पश्चिम के अपने समीपवर्ती शासकों से कठिन संग्राम लड़ने पड़े थे। अजमेर का चाहमान शासक अजयराज उज्जैन तक देश जीत लेने का दावा करता है। इसके पश्चात् वल्लाल नामक राजा हुआ जिसने अवन्ती, मालव एवं धार पर आधिपत्य स्थापित किया। उसका जयसिंह सिद्धराज के उत्तराधिकारी कुमारपाल के एक माण्डलिक ने वध कर दिया। इस प्रकार क्षिप्रा के तट पर चालुक्य शासन की पुनः स्थापना हुई। 'महाकाल की नगरी' के परमारों के एक दानपत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि भाग्यचक्र में पुनः एक परिवर्तन लिखा था और भोज के वंशजों ने एक बार फिर उज्जयिनी को प्राप्त किया। यह घटना ई० सन् १२१३ से पूर्व कभी हुई होगी।

उज्जैन में परमारों के शासन पर दिल्ली के सुल्तानों ने अन्त तक आघात किया। कुतुबुद्दीन ऐबक जिस समय इतिहास प्रसिद्ध मुहम्मद गौरी का प्रतिनिधि था, उज्जैन के सीमान्त प्रदेशों तक विनाश करता चला गया था। उसके पश्चात् सुल्तान अलतमश (१२११–२६ ई०) का उज्जैन नगरी पर निर्दय आक्रमण हुआ। नगर नष्ट–भ्रष्ट कर दिया गया और महाकाल का मन्दिर पूर्ण रूप से ध्वस्त किया गया। सुल्तान अपने साथ महाकाल की तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीतल की ढली हुई विक्रमादित्य आदि की मूर्तियाँ दिल्ली ले गया और उनको जुम्मा मस्जिद के द्वार पर रखवा दिया। पश्चात् अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०) के अधिकारी मलिक-एन-उल-मुल्क ने उज्जैन तथा मालवा के अन्य प्रसिद्ध दुर्गों को बरबाद कर दिया। इसके पश्चात् ही विक्रमादित्य की राजधानी दिल्ली के सुल्तानों के अधिकार में अन्तिमरूप से चली गई।

पन्द्रहवीं शताब्दी में मालवा के मुसलमान प्रान्तपति दिलावर गौरी ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया परन्तु सुलतान द्वारा उन्मूलित हुआ। उज्जयिनी का इस समय तक महत्त्व समाप्त हो चुका था। मालवा में मुसलमान शासक का केन्द्र माण्डु-शादियाबाद में था परन्तु पुरानी राजधानी उज्जैन में ज़िले का प्रधान कार्यालय होने से उसकी थोड़ी बहुत प्रतिष्ठा रह गई थी। उज्जैन के समीप कालियादेह पर सुलतान नसीरुद्दीन खिलजी (१५००-१०ई०) ने बाग फिरोज में एक प्रासाद निर्मित कराया, जिसकी जहाँगीर ने भी प्रशंसा की है। अन्तिम खिलजी सुलतान के शासनकाल में उज्जैन पर राजपूत अधिकारी पूरबीय ने, जिसने दरबार में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था, अधिकार कर लिया। गुजरात के सुलतान बहादुर ने जिसने १५३१ में मालवा हस्तगत कर लिया था इस राजपूत अधिकारी का उज्जैन पर स्वत्व स्वीकृत कर लिया। इसने अपने को विरोधी सिद्ध किया अतः उज्जैन का अधिकार दर्याखाँ मन्दोवाली को प्राप्त हुआ।

मुग़ल सम्राटों के अभ्युदय की कहानी में उज्जयिनी का प्रमुख स्थान है। हुमायूँ ने सुलतान बहादुर के विरुद्ध अभियान किया और संभवतः अपना केन्द्रीय कार्यालय उज्जैन में ही रखा। कुछ समय के बाद पैदा होने वाली अव्यवस्था के कारण मल्लूखाँ ने उज्जैन नगर को घेर लिया तथा मुग़लों के अधिकारियों को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया। बाद में मल्लूखाँ ने कादिरशाह की उपाधि धारण कर अपने को सुलतान घोषित कर दिया और संभवतः उज्जैन को अपनी राजधानी बनाया। मालवविजय के समय शेरशाह ने अपनी उपस्थिति से इस नगर को सुशोभित किया। उसके सुबेदारों में मियाँ बायाजीद का नाम उल्लेखनीय है जो बाजबहादुर की उपाधि के साथ यहाँ के सिंहासन पर बैठा था और अपने समय के उच्चकोटि के गायक के रूप में प्रसिद्ध था। जब अकबर के अधिकारियों ने पुनः मालवा को जीता, उज्जैन पीर मुहम्मद को प्रदान किया गया। उस समय यह मालवा का केन्द्रीय नगर बना दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय का अंग्रेज यात्री हाकिन्स (Hawkins—१६०८-१३ ई०) लिखता है कि 'उजम' मालवा का प्रधान नगर था। सर टामस रो इस मत का समर्थन करता है।

सत्रहवीं शताब्दी के यूरोपीय यात्रियों के वर्णन सूचित करते हैं कि उस काल में भी दक्षिण से गंगा के दो-आब को जाने वाले मार्ग पर एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में उज्जैन की स्थिति अक्षुण्ण थी। राल्फ फिट्श (Ralf Fitch) लिखता है कि इस नगर में कपास व सूती वस्त्र का व्यापार समृद्ध था और औषधियों का प्रचुर संग्रह था। आइन-ए-अकबरी के अनुसार उज्जैन की सरकार की राजस्व की आय ४,३८,२७,९६०दाम थी। मालवा के मुग़ल प्रान्त-पतियों में राजपूत राजा सवाईसिंह प्रसिद्ध था जिसका उज्जैन की सांस्कृतिक कीर्ति के लिए किया गया सत्प्रयास निरूपण की अपेक्षा नहीं रखता।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में एक नवीन दृश्य का प्रादुर्भाव हुआ। पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०-४० ई०) की सेनाएँ मालवा में पहुँची। सन् १७२६ ई० में उन्होंने अपने प्रतिनिधि रानोजी शिन्दे तथा मल्हारराव होल्कर को उस प्रान्त की चौथ तथा सरदेशमुखी ग्रहण करने का अधिकार दिया। आलीशाह शिन्दे राजवंश के संस्थापक रानोजी (१७२६-४५ ई०) ने महाकाल तथा विक्रम की इस प्राचीन नगरी में अपना केन्द्रीय कार्यालय स्थापित किया। उसके वंशज अहमदशाह अब्दाली से भारतवर्ष की रक्षा करने के लिए वीरता से लड़े। इस वंश के महत्तम शासक महादजी शिन्दे (१७६१-९४ ई०) उच्च श्रेणी के राजनीतिक एवं श्रेष्ठ सामरिक प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। उनके अधीन अन्तिम बार उज्जैन एक विस्तृत राज्य की राजधानी बना। महादजी के उत्तराधिकारी दौलतराव द्वारा राजधानी का स्थानान्तर लश्कर हो गया। अब उज्जयिनी सामान्य नगर के रूप में रह गई। इतना होते हुए भी उज्जयिनी के गर्भ में आज भी एक महान् भविष्य प्रसवोन्मुख है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हिन्दू और जैन' की समस्या का सही समाधान

विनोबा जी को खुला पत्र—

—श्री रघुवीर शरण दिवाकर, जौनपुर

पूजनीय श्री विनोबा जी,

सर्वोदय के सितम्बर ४९ के अंक में आपने जैन धर्म के विषय में निम्न विचार प्रकट किए थे—

"बम्बई-सरकार ने हरिजनों को हिन्दुओं के मंदिरों में प्रवेश देने का जो कानन बनाया है उससे बचने के लिए हिन्दू धर्म से अपने को भिन्न बताने की कोशिश कुछ जैन लोग कर रहे हैं। मध्यप्रान्त सरकार ने उन्हें हिन्दू धर्म से अलग समझने की कृपा की है, इससे उनको उत्तेजना मिली है। किसकी व्याख्या में किसका समावेश हो सकता है, यह इस तरह तय नहीं किया जाता। विचार की दृष्टि से जैन कुछ भिन्नता भले ही रखते हों, लेकिन हिन्दू धर्म का जो व्यापक प्रवाह अनादि काल से यहाँ चला आ रहा है, उससे न तो वे अछूते हैं और न भिन्न ही। जैन तो क्या, हिन्दुस्तान में चलने वाले दूसरे धर्म भी यहाँ की विचारधारा से अछूते नहीं रहे हैं, रहना भी नहीं चाहिए। यहाँ के मुसलमान और यहाँ के ईसाई भी भारतीयता रखते हैं ....।

"जैन तो किसी दृष्टि से भी हिन्दूधर्म से अलग नहीं हैं। वे हिन्दू धर्म के सुधारक हैं, जैसे ब्रह्मसमाजी हैं, लिंगायत हैं, दूसरे भी हैं। लिंगायत पंथ निकाल कर वसवन्ना ने कोई स्वतंत्र धर्म की स्थापना नहीं की थी। गंगा से निकली हुई धारा गंगा से भिन्न नहीं होती।

"जैन शब्द का अर्थ होता है, 'जीतने वाला'। जो दुनियाँ को जीतन बैठा वह तो इतना नम्र होता है कि अपनी स्वतंत्र हस्ती नहीं रखना चाहता। वह सब में घुलमिल जाना चाहता है। हिन्दुस्तान में बौद्ध नहीं रहे, किन्तु जैन रहे हैं कारण उन्होंने नम्रता रखी। जैन धर्म की मुख्य विशेषताएं हैं अहिंसा और मध्यस्थ दृष्टि। जो इन दोनों को मानते है वे जैन हैं। तीसरी कोई चीज़ मैं जैन धर्म में नहीं मानता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके इन विचारों को जानकर मुझे यह पत्र लिखने की प्रेरणा मिली है। आशा है आप उचित ध्यान देकर उत्तर से अनुगृहीत करेंगे।

सबसे पहले यह बता दूँ कि मैं आपको यह पत्र एक जैन की हैसियत से नहीं लिख रहा हूँ। मैं तो धर्म-संस्था के संगठन की फिलासफी या सम्प्रदायवाद को ही नापसन्द करता हूँ। मैं धर्म-संस्था (धर्म नहीं) या सम्प्रदाय को एक बाड़ा समझता हूँ और कोई भी व्यक्ति उस बाड़े में घिरकर अपना सारा जीवन वहीं घुट-घुट कर गँवा दे, यह मुझे सह्य नहीं है। संस्कृति के विषय में भी मेरे विचार कुछ ऐसे ही हैं। वह एक साँचा है जिसमें संस्कारों के बल पर व्यक्तित्व को ढाला जाता है। मैं इस ढलाई को मानव-जीवन के सर्वतो-मुखी विकास का विरोधी समझता हूँ। धर्म और संस्कृति की संघटना के वातावरण में मनुष्यत्व के महान् आदर्श का गला घुटता है और इसीलिए मैं ऐसे वातावरण से दूर मौलिक सजीव और सतत विकासशील तत्वों पर मानव-जीवन को निर्धारित करने के पक्ष में हूँ। ऐसी स्थिति में, क्या जैन धर्म और क्या हिन्दू धर्म, कोई भी दूसरे की अपेक्षा से मेरा अपना या पराया नहीं है, ऐसी तटस्थता मैं अनुभव करता हूँ। लेकिन इस अनुभूति में ऐसी कोई चीज नहीं है कि अविवेक पूर्वक दोनों को समान रूप से अच्छा या बुरा कह दूँ या एक ही मान लूँ। सत्य की अवहेलना या उपेक्षा यहाँ जरा भी नहीं है। जहाँ या जिस रूप में समभाव सत्य है, वह मुझे ग्राह्य है पर जहाँ समभाव सत्य नहीं है, वहाँ वह चाहे सामयिक नीति की दृष्टि से कैसा भी हो मेरी श्रद्धा का पात्र नहीं है। महाकालीन व दीर्घकालीन दृष्टि से भी वह श्रद्धेय नहीं है। आजकल प्रायः लोग समभाव की दुहाई दिया करते हैं और बहुतों के लिए तो यह फैशन हो गया है, पर सत्य दृष्टि यहाँ नहीं है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। भले ही आप धर्म और संस्कृति विषयक मेरे विचारों से सहमत न हों पर मैं आशा करता हूँ मैंने ऊपर अपना जो दृष्टिकोण यहाँ प्रकट किया है, कम से कम उससे यह तो मान्य करेंगे ही कि साम्प्रदायिक या सम्प्रदायवादी दृष्टि से एक भी अक्षर यहाँ नहीं लिखा गया है।

बहुत पहले की बात जाने दीजिए, ढाई हजार वर्ष पहले महावीर और बुद्ध के जीवन-काल पर दृष्टि डालिए। तब ब्राह्मण संस्कृति ने बड़ा ही विकराल रूप धारण कर लिया था, मानव जीवन बुरी तरह त्रस्त हो रहा था और विषमता का दैत्य ही नहीं, हिंसा का पिशाच भी धम के नाम पर पुजने लगा था। जैनधर्म और बौद्ध धर्म के रूप में श्रमणसंस्कृति ने विद्रोह व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रान्ति का झण्डा ऊँचा किया। यह क्रान्ति कुछ सफल भी हुई लेकिन ब्राह्मण संस्कृति की जड़ें भारतीय जीवन में काफी गहरी धँसी हुई थीं इसलिए तथा श्रमणसंस्कृति में ही प्रतिक्रिया स्वरूप जो अतिवाद आया, उन्माद आया, और भी विकृतियाँ आईं, और फिर सम्प्रदायवाद के वृत्त में घिरे रहने से समयानुकूल परिवर्तन या विकास का मार्ग अवरुद्ध ही रहा, इस कारण फिर ब्राह्मण संस्कृति को सिर उठाने का अवसर मिला और शंकराचार्य के युग में इसने काफ़ी जोर पकड़ा। जैनियों और बौद्धों पर जुल्म हुए और उन्हें मिटाने का जितना भी प्रयत्न उस समय की परिस्थिति में संभव था, किया गया। तब तक बाहर के देशों में बौद्ध धर्म के केन्द्र स्थापित हो चुके थे और उसका प्रचार व प्रभाव भी वहाँ बढ़ चला था इसलिए बौद्ध धर्म के अनुयायिओं का दृष्टिकोण कुछ अंतर-राष्ट्रीय सा हो गया था और यही कारण है कि जब ब्राह्मण संस्कृति ने इस पर धावा बोला तब उसने अपना अस्तित्व खोकर समझौता न किया और वह अपना शरीर भारत से बाहर खींच ले गया। लेकिन जैनधर्म भारत की सीमाओं में ही आबद्ध था और उसके अनुयायिओं की परिस्थिति व मनःस्थिति बौद्धों से भिन्न थी। जैन उस साहस का परिचय देने की स्थिति में न थे इसलिए न दे सके और विवश व असहाय होकर उन्हें ब्राह्मण संस्कृति के आगे झुकना पड़ा, यहाँ तक कि ब्राह्मण संस्कृति की जिन बुराइयों के विरुद्ध श्रमण-संस्कृति या जैन संस्कृति ने विद्रोह किया था, उन्हीं बुराइयों के कड़वे घूँट इन्हें पीने पड़े। आप ने जैनियों की नम्रता की जो प्रशंसा की है, जाने या अनजाने में वह उनका उपहास है। जीतने वाला सचमुच नम्र होता है और सचमुच वह सब में घुल मिल जाना चाहता है पर कायरता, पराजय या आत्मसमर्पण नम्रता नहीं है और स्वत्वहीनता दूसरों में या सब में घुल-मिल जाना नहीं है। गांधी जी ने बार बार यह कहा था कि अहिंसा पथ पर किसी और ने उनका साथ न दिया, तो वे अकेले ही चलेंगे। तो क्या यह गांधी जी का अहंकार था? क्या वे नम्र, अतिनम्र न थे? सचमुच वे नम्र थे, अहंकार का नाम भी उनके व्यक्तित्व में न था। पर उनमें दृढ़ता थी, स्वाभिमान था, स्वत्व-शालीनता थी, फिर दुनियाँ को जीतने का प्रश्न यहाँ कहाँ है? 'जैन' शब्द का भावार्थ है जितेन्द्रिय। जैन धर्म हर व्यक्ति को—स्वयं को अपने को ही जीतने का आदेश या उपदेश देता है, किसी दूसरे को या दुनियाँ को नहीं। जहाँ यह आदर्श है वहाँ आदर्श या स्वत्व के लिए मर मिटने की सम्भावना तो है पर आत्म-समर्पण या पराजय की नहीं। जैन यहाँ परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहे। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवश भी थे और शायद सामयिक नीति की माँग भी ऐसी ही हो। पर कुछ भी हो, उनका यह आत्मसमर्पण उनकी नम्रता नहीं थी जिस पर गर्व किया जाए। यह उनकी पराजय थी जिसपर दो आँसू ही बहाए जा सकते हैं। ऐसा लगता है कि भारत का दुर्भाग्य भी इस दुखद घटना में निहित था। श्रमण संस्कृति रहती और फलती फूलती तो कौन कह सकता है कि ब्राह्मण संस्कृति रहकर भी परिष्कृत न होती और सम्भवतः भारतवर्ष का इतिहास ही बदल न जाता। जाति-पांति वर्ण-भेद छुआ-छूत आदि की हजारों विषमताओं ने मानवता व राष्ट्रीयता को टुकड़े-टुकड़े कर जिस तरह भारतीय जीवन को तहस-नहस किया है, उसे कौन नहीं जानता? भारतवर्ष का इतिहास इसी अनर्थ व सर्वनाश की एक लम्बी दुखभरी कहानी है। आज भी वही रफ़्तारें बेढंगी हैं। वर्ण हैं, हजारों जातियाँ-उपजातियाँ हैं, गोत्र हैं, अस्पृश्यता है, ऊँच-नीच की असंख्य श्रेणियाँ हैं और हजारों छोटे-बड़े बाड़ें हैं जिनमें घिर कर मानव-जीवन सड़ रहा है। यदि श्रमणसंस्कृति देश को अपनी देन दे पाती तो शायद देश में यह घिनौना दृश्य न दिखाई देता। पर अब यह रोना बेकार है। इस ऐतिहासिक सत्य को मानकर ही चलना होगा कि श्रमण संस्कृति न टिक सकी। यूँ काफी हद तक जैनियों ने अपनी विचारधारा को अक्षुण्ण बनाए रखा लेकिन सामाजिकता अथवा सभ्यता, संस्कृति व व्यावहारिक जीवन में वे ब्राह्मण संस्कृति के उपासक बन गए और आगे चलकर उनकी विचारधारा व उनके साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। आज के जैन समाज का जीवन इस सत्य का साक्षी है। शंकराचार्य-युग के बाद जिस जैन साहित्य का निर्माण हुआ है उसे प्राचीन जैन साहित्य की तुलना में रखकर हम अध्ययन करें तो इसी सत्य का साक्षात्कार होगा और यह भी हम सहज ही समझ सकेंगे कि जैन संस्कृति वस्तुतः ब्राह्मण संस्कृति तथा उसकी आधारभूत वर्ण-व्यवस्था या ऊँच-नीच की भावना, जाति-पांति की विषमता, अस्पृश्यता, अहिंसा की अपूर्णता व विकृति तथा अन्य अनेक बुराइयों के विरुद्ध एक खुला विद्रोह थी। यह समझना कि जैनधर्म ब्राह्मण संस्कृति या हिन्दुओं के भीतर का एक सुधारवादी आन्दोलन था, एक बड़ी भूल है। यदि इस्लाम अपने जन्म के समय के मत-मतान्तरों की या यहूदी धर्म की शाखा कहा जा सकता है, यदि बौद्ध धर्म को हिन्दूधर्म का अंग माना जा सकता है, यदि ईसाई धर्म अपने समय के यूरोप के मतमतान्तरों का अंग है, तो जैनधर्म भी हिन्दू धर्म की एक शाखा है, अन्यथा नहीं। बाह्य असफलता को देखकर किसी स्वतन्त्र आन्दोलन या संस्था को किसी दूसरी संस्था की शाखा कह देना न उचित है, न सत्य है। जरा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहराई से और निष्पक्ष होकर जैन दर्शन व जैन साहित्य का अध्ययन किया जाय तो हम देखेंगे कि वहाँ दृश्य ही दूसरा है। वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ वहाँ सर्वथा अमान्य हैं, ईश्वर तक को वहाँ स्थान प्राप्त नहीं है, अवतारवाद या राम और कृष्ण के भगवत् स्वरूप की प्रतिष्ठा भी वहां नहीं है ? ब्रह्मा, विष्णु, महेश वहाँ उपास्य नहीं हैं। वर्ण-भेद या ऊँच-नीच की कोई व्यवस्था वहाँ आदरणीय नहीं है। छुआ-छूत को वहाँ छुआ भी नहीं गया है। सूर्य, चन्द्र, वायु,अग्नि,वृक्ष, दुर्गा, काली, लक्ष्मी तथा इंद्र आदि असंख्य देवी देवताओं की मान्यता यहाँ नहीं है। गंगा वहाँ सिर्फ अन्य नदियों की तरह एक नदी है हिन्दुओं के त्योहार पर्व व तीर्थ स्थानों के प्रति भी श्रद्धा वहां नहीं है। हिन्दू लॉ उनपर लागू भले ही हो पर उनका अलग जैन लॉ भी है। किसी भी दृष्टि से देखें, हम कहीं भी ऐसा कुछ वहाँ न पायँगे जो यह कह सके कि जैनधर्म हिन्दूधर्म के अन्तर्गत ही एक सुधारवादी आन्दोलन है या जैनधर्म हिन्दू धर्म की एक शाखा है। आप का यह कहना है कि जैन तो किसी भी दृष्टि से हिन्दूधर्म से अलग नहीं हैं, ये हिन्दूधर्म के सुधारक हैं जैसे ब्रह्म-समाजी हैं, लिंगायत हैं, दूसरे भी हैं, यह किसी भी तरह वस्तुस्थिति या सत्य के अनुकूल नहीं है। सचमुच कोई भी आधार ऐसा नहीं है जिसे लेकर हम यह कहने का साहस कर सकें कि जैनधर्म हिन्दूधर्म के अन्तर्गत एक सुधारवादी आन्दोलन है। ब्रह्मसमाजी, लिंगायत, आर्यसमाजी आदि हिन्दू सुधारवादी आन्दोलनों की कोटि में जैनधर्म को हरगिज़ नहीं रखा जा सकता। जैन समाज में आज जो वर्णव्यवस्था, जाति-पांति, छुआ-छूत तथा अन्य अनेक विषमताओं की वृत्ति-प्रवृत्ति है वह जैन धर्म या श्रमण संस्कृति की चीज़ नहीं है। बल्कि, जैसा कि में ऐतिहासिक दृष्टि से ऊपर बता चुका हूँ, वह बाद को हिन्दू संस्कृति के आधिपत्य व आतंक स्वरूप आई हुई विकृति है। विकृति को मौलिक मानने से सत्य के प्रति न्याय नहीं हो सकता। मेरा ऐसा विनम्र मत है कि आप भी यहीं कहीं भूले हैं और इसीलिए आप जैन धर्म को एक स्वतन्त्र धर्म-संस्था नहीं मानते हैं।

आगे चलकर आपने जो यह लिखा है कि "जैन धर्म की मुख्य विशेषताएँ हैं, अहिंसा और मध्यस्थ दृष्टि। जो इन दोनों को मानते हैं वे जैन हैं। तीसरी कोई चीज़ में जैन धर्म में नहीं मानता।" इससे मेरी इस धारणा को पुष्टि ही मिलती है कि जैन धर्म के विषय में आपकी जानकारी बहुत कम है और शायद इसीलिए आपने उसे हिन्दूधर्म की एक शाखा कहने की भूल की है। एक धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्था में जो तत्त्व होने चाहिए, उसकी जो फिलासफी व संघटना होनी चाहिए, वह सब जैन धर्म में है। वह अच्छा है या बुरा, हिन्दू धर्म से ऊँचा है या नीचा, यह प्रश्न मेरे लिए यहाँ अस्पृश्य है। पर वह एक पूर्ण परिपूर्ण धर्मसंस्था है, वह एक अलग सम्प्रदायवादी संगठन है, हिन्दू धर्म के भीतर का कोई पंथ या उपसंप्रदाय वह नहीं है, मुझे यहाँ यही कहना है और कर्मफलवाद व अनीश्वरवाद का सामंजस्य, अनीश्वरवाद व अध्यात्मवाद का समन्वय, अनेकान्तवाद, अपरिग्रहवाद आदि जैन दर्शन की अपनी अनेक विशेषताओं की ओर आप का ध्यान खींचना है।

एक क्षण के लिए भी आपको यह भ्रम न होना चाहिए कि मेरे इस पत्र के पीछे जैन मंदिर में हरिजन के प्रश्न को लेकर कोई क्षोभ की भावना है। मैं कह चुका हूँ, मेरा दृष्टिकोण जैन दृष्टिकोण नहीं है। फिर, जैनधर्म में वर्ण व्यवस्था के लिए कोई स्थान ही नहीं है। जैन मंदिर में हरिजन क्या, मनुष्य मात्र को प्रवेश करने का अधिकार जैन धर्म देता है; भले ही आज के कुछ भ्रष्ट जैन न दें। किसी भी हालत में हिन्दू व जैन मंदिर ही क्या, प्रत्येक धर्म स्थान में मनुष्य मात्र के प्रवेश का अधिकार सर्वमान्य हो और इस मान्यता को कानूनी रूप मिले, ऐसा मेरा मत है।

आप एक गम्भीर विचारक व विद्वान हैं इसलिए आशा है मेरे दृष्टिकोण को आप ग़लत रूप में न लेंगे, तथा इन पंक्तियों पर विशेष विचार कर अपनी मान्यता सुधारेंगे, फिर भी यदि आपको मेरी भूल ही दिखे तो मुझे सुझाने का कष्ट करेंगे।

जैन परम्परा के अनुसार तात्त्विक धर्म तीन तत्त्वों में समाया हुआ है—देव, गुरु और धर्म। आत्मा की सम्पूण निर्दोष अवस्था का नाम देवतत्त्व, उस निर्दोषता को प्राप्त करने की सच्ची आध्यात्मिक साधना गुरुतत्त्व और सब तरह के विवेकपूर्ण यथार्थ संयम का नाम धर्मतत्त्व। इन तीन तत्त्वों को जैनत्व की आत्मा कहना चाहिए। इन तत्त्वों की रक्षा करने वाली और पोषण करने वाली भावना को उसका शरीर कहना चाहिए।

—*पं० सुखलाल संघवी*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याश्रम-समाचार

समिति की बैठकें

इसी गत २७ जुलाई को अमृतसर में समिति के प्रधान ला० त्रिभुवननाथ जी की अध्यक्षता में मैनेजिंग कमेटी की बैठक हुई। जिसमें मंत्री ने १९५१ की विशद रिपोर्ट और आडिट किया हुआ हिसाब पेश किया। रिपोर्ट व हिसाब 'श्रमण' के जुलाई अंक में पहले ही छप चुके थे, वे भी पढ़कर सुनाए। इसके बाद सन् १९५२ का करीब १५०००) रु० का बजट पास किया गया। 'श्रमण' की नवीन व्यवस्था करने के लिए मंत्री को अधिकार दिया गया कि वे अधिष्ठाता जी की सलाह से संपादन व व्यवस्था आदि का समिति के प्रस्तावानुसार समुचित प्रबन्ध कर दें।

इस बैठक में तीन प्रस्ताव बड़े महत्व पास किए गए हैं। पहला तो यह कि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के अधिकारियों से प्रार्थना की जाय कि वे श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम को प्राकृत और जैनॉलॉजी के लिए 'पोस्ट ग्रेजुएट रिसर्च इन्स्टीटयूट' के रूप में स्वीकार कर लें। दूसरा प्रस्ताव यह कि बिहार सरकार ने संस्कृत और वैदिक धर्म के अभ्यासार्थ दरभंगा में तथा पाली व बौद्ध धर्म के लिए नालन्दा में इन्स्टीटयूट कायम की हैं, वैसे ही प्राकृत और जैनधर्म के अभ्यासार्थ भी एक संस्था अवश्य खोले। क्योंकि भारतीय संस्कृति के अभ्यास में जैन परम्परा का उतना ही महत्व है जितना कि दूसरी धाराओं का। फिर स्वयं महावीर और उनके उपदेशों का बड़ा संबन्ध तो बिहार से ही है। तीसरा प्रस्ताव है भारतीय विश्व विद्यालयों से प्रार्थना की जाय कि वे अपने पाठचक्रमों में प्राकृत और जैनॉलॉजी को भी स्थान दें और इस विषय में परीक्षाएँ चालू करें। जिससे इस क्षेत्र में सबको प्रेरणा व प्रोत्साहन मिले।

एक कमेटी बनाई गई है जो तीन मास में अवश्य मिला करेगी। समिति की प्रवृत्तियों और उपस्थित समस्याओं के बारे में मंत्री जी से असली हालात मालूम करके विशेष विचार किया करेगी। स्वयं मंत्री भी उससे सलाह ले सकेंगे। इस कमेटी के कन्वीनर मंत्री नहीं होंगे। कमेटी में से ही किसी को चुना जायगा। जिससे वह स्वतंत्ररूप से अपना काम कर सके। जो बातें कमेटी जानना चाहेगी, मंत्री से उनकी माँग करने का इसको अधिकार रहेगा। इस कमेटी के निम्नांकित सदस्य होंगे :—

१ प्रो० मस्तराम जैन एम०ए०, अमृतसर (कन्वीनर) २ श्री रतनचन्द्र जैन एम० ए०, लुधियाना, ३ श्री त्रिभुवननाथ जैन, प्रधान समिति, कपूरथला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ श्री टेकचन्द्र जैन, देहली, ५ श्री पन्नालाल जैन, देहली व अमृतसर, ६ श्री हरजसराय जैन, मंत्री समिति, अमृतसर,

जनरल कमेटी की बैठक

मैनेजिंग कमेटी की बैठक के बाद ही जनरल कमेटी की बैठक हुई। जिसमें सन् १९५१ की रिपोर्ट और हिसाब तथा सन् १९५२ के बजट आदि पास किए गए। आडिटर की नियुक्ति की गई। मैनेजिंग कमेटी द्वारा भेजे गए उपनियम पास किये गए। बाद में मैनेजिंग कमेटी के सदस्यों का चुनाव हुआ। नामावली नीचे दी जाती है:—

साधारण सदस्यों के ८ प्रतिनिधि—१ श्री शोरीलाल कपूरथला, २ श्री प्यारेलाल चौधरी पटियाला, ३ श्री शादीलाल खार (बम्बई), ४ श्री अमरचन्द मालेरकोटला, ५ चौधरी बनारसीदास देहली, ६ श्री सुरेन्द्र नाथ अमृतसर, ७ श्री कश्मीरीलाल होशियारपुर, ८ श्री सुखचैनलाल देहली।

आजीवन सदस्यों के १४ प्रतिनिधि—१ श्री त्रिभुवननाथ कपूरथला, २ श्री हरजसराय जैन अमृतसर, ३ श्री बंसीलाल होशियारपुर, ४ श्री रामजी दास जिंदल मालेरकोटला (हाल देहली), ५ श्री हीरालाल एडवोकेट लुधियाना, ६ श्री मुनीलाल अमृतसर, ७ श्री टेकचन्द फगवाड़े वाले देहली, ८ प्रो० मस्तराम जैन अमृतसर, ९ श्री हंसराज जैन अमृतसर, १० श्री पन्ना-लाल देहली व अमृतसर, ११ श्री भगवानदास सुलतानपुर, १२ श्री शादीलाल बी० कॉम० अमृतसर, १३ सेठ आनन्दराज सुराणा देहली, १४ श्री लच्छीराम अम्बाला।

इस मीटिंग के बाद ही असाधारण जनरल मीटिंग भी हुई। जिसमें नियमावली के नियम नं० ५० को प्रस्तावित नियम से बदल दिया गया।

समिति की ओर से दौरा

समिति की उक्त बैठकों में यह भी निर्णय किया गया है कि बनारस में होने वाले समिति के कार्य व प्रवृत्तियों को समाज के सामने रखने के लिए यह जरूरी है कि आगामी पर्युषण पर्व के लगभग या बाद में इस साल पंजाब के बाहर दौरा किया जाय और बीकानेर, भीनासर, जोधपुर, पालनपुर, ब्यावर, अजमेर, उदयपुर, इन्दौर, रतलाम वगैरह स्थानों में जाने का विशेष प्रयत्न किया जाय।

अन्त में भीनासर निवासी सेठ चम्पालाल जी बाँठिया का इस बात के लिए आभार माना गया कि उन्होंने सादड़ी कान्फरेंस के अवसर पर अध्यक्ष पद से अपने भाषण में समिति के कार्य क्षेत्र श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस की प्रवृत्तियों का महत्वपूर्ण उल्लेख किया।

हरजसराय जैन, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन संस्कृति की महत्वपूर्ण पुस्तकें

Studies in Jaina Philosophy—
Dr. Nathmal Tatia ... 16/-

Jaina Philosophy of Non-Absolutism—
Dr. S. Mookerjee ... 15/-

Critique of the Organ of Knowledge—
Dr. S. Mookerjee ... 15/-

Lord Mahavira—Dr. Bool Chand ... 4/8/-

Hastināpura—Amar Chand M.A. ... 2/4/-

Jainism—J. P. Jain M.A., LL.B. ... 1/8/-

तत्त्वार्थ सूत्र—पं० सुखलाल संघवी ... 5/8/-

प्राचीन जैन तीर्थ—डॉ० जगदीशचन्द्र जैन .. 2/-

धर्म और समाज—पं० सुखलाल संघवी ... 1/8/-

जैनग्रन्थ और ग्रन्थकार—श्री फतहचन्द बेलानी 1/8/-

निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय—पं० सुखलाल संघवी ... 1/-

गुजरात का जैन धर्म—मुनि जिनविजय जी ... -/12/-

अनेकान्त वाद—पं० सुखलाल संघवी ... -/12/-

जीवन में स्याद्वाद—श्री चन्द्रशंकर शुक्ल ... -/12/-

जैन साहित्य की प्रगति १९४९--५१
—पं० सुखलाल संघवी ... -/12/-

जैनागम—पं० दलसुख मालवणिया ... -/10/-

हेमचन्द्राचार्य का शिष्यमंडल—प्रो० सांडेसरा ... -/5/-

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखें :—

मंत्री, जैन संस्कृति संशोधन मंडल
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, बनारस ।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक
मोहनलाल मेहता एम० ए०

इस अंक में—

१. दो गीत (कविता)—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल एम० ए० १
२. अपनी बात (संपादकीय)— ३
३. स्वरूप और पररूप—पं० सुखलाल जी संघवी ५
४. बरस पड़े मोती दो (गद्यकाव्य)—मुनि उमेश जी ११
५. दीर्घायु होने के उपाय—अत्रिपुत्र १२
६. जैन परम्परा—श्री मोहन लाल मेहता एम० ए० १३
७. गद्यगीत—सुश्री लीलावती 'रानी' १८
८. मृगतृष्णा (कहानी)—श्री जयभिक्खु १९
९. नैतिक उत्थान और शिक्षण संस्थाएँ—
प्रो० पृथ्वीराज जैन एम० ए०, २७
१०. 'देव' यह वैराग्य कैसा ? (कविता)—श्री कमला जैन 'जीजी' ३०
११. पल्लीवाल गच्छीय शान्तिसूरि का समय एवं प्रतिष्ठा—
श्री अगरचन्द नाहटा ३१
१२. नभ के घन मन में मँडराओ (कविता)—श्री नरेन्द्रकुमार भनावत ३४
१३. बुझती हुई चिनगारियाँ—मुनि श्री सुशील कुमार शास्त्री ३५
१४. साहित्य-सत्कार— ३८
१५. विद्याश्रम-समाचार— ४०

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाएँगे।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं मिलेगा।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनिऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

वर्ष ३
अंक ११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनि० बनारस का मुखपत्र

सितम्बर १९५२

वर्ष ३ अंक ११

दो गीत

[१]

कैसा नेह, कहाँ का नाता ?

जल-बुद्बुद सा मानव-जीवन
कैसा दो प्राणों का बंधन ?

साथ नहीं कोई आया था, साथ नहीं है कोई जाता।
कैसा नेह, कहाँ का नाता ?

तुम भी मेरा साथ न दोगे,
बहला कर मुझको क्या लोगे ?

इसीलिए मेरे उर का कवि पीड़ा के स्वर में है गाता।
कैसा नेह, कहाँ का नाता ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू मिट्टी के महल बनाता,
उन पर फूला नहीं समाता ?

मूढ़ ! मगर, यह स्वप्नों का जग बनता है, बनकर मिट जाता।
कैसा नेह, कहाँ का नाता ?

[२]

हम मिट्टी के गढ़े खिलौने !

दो दिन अलख जगाने आए,
दो क्षण हँसने गाने आए,

कल तो मिट्टी में मिल जायँगे ये कंचन-गात सलौने।
हम मिट्टी के गढ़े खिलौने।

तुम्हें खेलना है तो खेलो,
जो कुछ भी लेना है लेलो।

और बहुत आते जायँगे इस जीवन पर रोने धोने।
हम मिट्टी के गढ़े खिलौने।

इतना सा ही तो जीवन था,
आखिर नश्वर ही तो तन था।

लो, हम चले, कि मिट्टी के थे, जाते हैं मिट्टी में खोने।
हम मिट्टी के गढ़े खिलौने।

—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल एम. ए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

कर्मयोगी मणिभाई

हमें यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि ता० २५-७-५२ शुक्रवार के दिन प्रातःकाल ७ बजे श्री मणिलाल मोकमचंद शाह का ७४ वर्ष की आयु में लगभग तीन वर्ष की निरंतर बीमारी के बाद अवसान हो गया। श्री मणिलाल मोकमचंद शाह जैन समाज के बहुत बड़े सक्रिय कार्यकर्ता थे। आपने जैन समाज में शिक्षा प्रसार एवं समाज सुधार के लिए जो कार्य किया वह इस के इतिहास में सदैव अमर रहेगा।

स्वर्गीय मणिलाल मोकमचंद शाह ने अपने जीवन के इस लंबे काल में समाज के लिए जो कार्य किया वह वास्तव में बेजोड़ है। बंबई जैन युवक संघ की स्थापना आप ही के प्रयत्न का फल है। इस संघ की प्रारंभिक प्रवृत्ति बालदीक्षा के लिए भगाये जाने वाले अबोध बच्चों को बचाकर उन्हें किसी सुकार्य में लगाने की थी। इतना ही नहीं अपितु उनके कुटुंबीजनों को यह संघ सहायता भी देता था। संस्था के पास पैसे की बहुत कमी थी और श्री मणिभाई की आर्थिक स्थिति भी उस समय अच्छी न थी। इन्होंने अपने घर में कष्ट सहे किन्तु युवक संघ के कार्यकर्ताओं को पैसे की कभी कमी न होने दी।

चाहे उन्होंने खुद अपने पास से दिये चाहे किसी दूसरे के पास से दिलवाये किन्तु संघ का कार्य पैसे के अभाव में बंद न रहा। बंबई जैन युवक संघ की प्रवृत्तियों में भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न कारणों से रस लेते हैं और यथाशक्य तन मन और धन से सहायता करते हैं। कभी कभी कोई अपना इच्छित कार्य करवाना चाहता किन्तु युवक संघ ऐसे व्यक्ति की बात अनुचित मालूम होने पर पूरी करने के लिए कभी तैयार नहीं होता चाहे वह व्यक्ति संघ के कार्यों में कितना ही सहायक क्यों न होता। श्री मणिभाई इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत प्रभाव के कारण संघ का अनुचित उपयोग न करे।

एक बार एक जैनसाधु ने साधुवेष छोड़ दिया था। वह युवक संघ की प्रवृत्तियों में भाग लेना चाहता था। उसके निर्वाह की चिन्ता करने वाला कोई न मिला। उसकी यह दशा देखकर श्री मणिभाई का हृदय सहज ही द्रवित हो गया। उन्होंने अपने घरेलू-खर्च में कमी करके उसकी सहायता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की और उसे चिन्ता से मुक्त कर पूरे उत्साह से कार्य करने का अवसर दिया। उनके इस साहस के कारण उन्हें पैसे की दृष्टि से काफी कष्ट उठाना पड़ा किन्तु वे इसकी चिन्ता करने वाले कहाँ थे ? वे धन की अपेक्षा सत्कार्य को अधिक महत्त्व देते थे। जहाँ धन और कार्य में विरोध होता वहाँ वे कार्य को महत्त्व देते थे न कि धन को। उनकी दृष्टि में धन कार्य के लिए था न कि कार्य धन के लिए। वे वास्तव में कर्मयोगी थे।

श्री मणिभाई का दूसरा उल्लेखनीय कार्य 'संयुक्त जैन विद्यार्थी गृह' है। स्वर्गीय वाड़ीलाल मोतीलाल शाह और इन्होंने मिलकर यह प्रयत्न किया। जब कि सब अपनी अपनी जाति अथवा सम्प्रदाय के लिए छोटी छोटी संस्थाएँ खड़ी कर रहे थे, उन दिनों इन दोनों महारथियों ने समस्त जैन समाज के विद्यार्थियों के विकास के लिए इस संस्था की स्थापना की। इतना ही नहीं अपितु इन्होंने अपनी उस समय की शक्ति से भी बढ़ कर ३१०००) रु० इस संस्था के लिए दिया। उस समय की दृष्टि से यह रकम बहुत बड़ी है। सन् १९१० के समय में इतनी बड़ी रकम का बहुत महत्व था। आज के समय से उस समय की यदि तुलना की जाय तो यह रकम कम से कम ४ लाख रु० के बराबर तो हो ही सकती है। इतनी बड़ी रकम एक मुश्त दे देना खेल नहीं था और वह भी श्री मणिभाई जैसे एक साधारण व्यक्ति के लिए। यह उनकी अटूट विद्यानिष्ठा का ही फल था कि वे इतना साहस कर सके। मणिभाई इस कार्य के लिए घर घर फिरकर फंड इकट्ठा करने लगे। बीच में ये बीमार भी पड़ गए। इन्हें ऐसा लगा कि बढ़ती जाने वाली इस अशक्ति के कारण फंड अधूरा रह जायगा इसलिए इन्होंने और शीघ्रता करना प्रारंभ किया। इसी कार्य के लिए मोटर खरीदी और दो-ढाई लाख रुपया एकत्र किया। इस प्रकार 'संयुक्त जैन विद्यार्थी गृह' के लिए मकान की व्यवस्था भी सरल हो गई। जिस संस्था को उसके उद्घाटन के प्रसंग पर गांधी जी ने स्वयं उपस्थित रह कर आशीर्वाद दिया था; उस संस्था के मुख्य संस्थापक श्री मणिभाई ने संस्था के भवन की नींव डाली। अच्छा, नींव तो पड़ गई, भवन कब पूरा होगा ? कैसे पूरा होगा ? किस रूप में पूरा होगा ? अधिक विलम्ब तो नहीं होगा ? इत्यादि प्रश्न उनके मस्तिष्क में उस समय भी घूम रहे थे। जब तक भवन पूरी तरह बन न जाय उन्हें संतोष कहाँ था। उनका एक मात्र लक्ष्य उसी कार्य की ओर था। इसे कहते हैं कर्मयोग की सच्ची साधना ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्निरीक्षण के कुछ पृष्ठ

स्वरूप और पररूप—

—पं० सुखलाल जी संघवी

हुँ सरूप निज छोड़ि, रम्यो पर पुद्गले,
झील्यो उलट आणि, विषयतृष्णा जले,
आस्रवबन्ध विभाव, करूँ रुचि आपणी,
भूल्यो मिथ्यावास, दोष दऊँ परभणी॥

—देवचन्द्र

जीवनतत्त्व के आध्यात्मिक विकासक्रम में जो तत्त्व, पर (छाया) का मैल छोड़ कर अन्त में वास्तविक निर्मल रूप में शेष रहता है वही तत्त्व पारमार्थिक सत्य कहा जाता है और वही साध्य माना गया है। जो तत्त्व आध्यात्मिक साधना द्वारा जीवन में से हमेशा के लिए निकल जाता है वही पर (छाया) अथवा वैभाविक कहलाता है। कवि आध्यात्मिक मार्ग का पथिक है इसलिए अपने जैन-परंपरानुसारी संस्कारों के अनुसार विवेक से पारमार्थिक और वैभाविक तत्त्वों का भेद समझ कर अपनी स्वरूप-च्युति का वर्णन उक्त पद में करता है। कवि ऐसा जानता और मानता है कि वह मूल रूप से शुद्ध स्वरूपी है किन्तु अचिन्त्य कला और काल से अपने इस सच्चिदानन्द साहजिक स्वरूप से च्युत होकर पर-तत्त्व में मिल गया है और पर को ही स्व मान कर अपने सहज स्वरूप को भूल गया है। कवि इस कथन से जैन परम्परा के जीव, अजीव, आस्रव और बन्ध, इन चार तत्त्वों को सूचित करता है। भारत के सभी आत्मवादी दर्शन इन चार तत्त्वों की भूमिका पर ही अपने अपने दर्शन को खड़ा करते हैं। सांख्य दर्शन में जो प्रकृति-पुरुष का और वेदान्त में जो नित्यानित्य का विवेक है वही जैन-दर्शन में जीव-अजीव का विवेक है। ऐसे विवेक का उदय ही सम्यग्दर्शन है। ऐसे दर्शन से ही मनुष्य का आध्यात्मिक विकास-क्रम के चौथे गुणस्थान में प्रवेश होता है।

कवि के कथन को यदि उसके विकास की भूमिका के आधार पर समझा जाय तभी उसका भाव समझ में आ सकता है। यहाँ पर कवि की भूमिका आनन्दघन अथवा श्रीमद् राजचन्द्र के समान सम्यग्दर्शन की ही है, ऐसा समझ लेना चाहिए। सम्यग्दर्शन का अर्थ होता है आध्यात्मिक विवेक। इस विवेक में साधक मुख्य रूप से श्रद्धा की भूमिका पर खड़ा होता है तब भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको अपने संप्रदाय के अनुभवी ऋषियों का ज्ञान प्रतीतिकर रूप में रहता ही है। साम्प्रदायिक भेद के कारण से आध्यात्मिक साधक की भाषा बदल जाती है किन्तु भाव नहीं बदलते। इसका प्रमाण हमको प्रत्येक संप्रदाय के संतों की वाणी में मिल सकता है। देवचन्द्र जी द्वारा सूचित किए गए उपर्युक्त चार तत्त्वों में जीव और अजीव तत्त्व सत्-तत्त्व के अर्थात् विश्वस्वरूप के निर्देशक हैं तथा आस्रव और बन्ध तत्त्व जीवनलक्षी हैं। अनुभव में आने वाला जीवन न तो अकेला चैतन्यरूप है और न अकेला जड़रूप ही। यह तो दोनों का मिश्रण है। उसके प्रवाह की कोई आदि नहीं दीख सकती। ऐसा होने पर भी अध्यात्मिक द्रष्टाओं ने विवेक से इस जीवन के दो तत्त्वों को एक दूसरे से अलग और बिल्कुल स्वतन्त्र बतलाया है। एक तत्त्व में यदि ज्ञानशक्ति और चेतना है तो दूसरे में जड़ता है। जिसमें चैतन्य-स्वभाव है वह जीव है और जिसमें यह स्वभाव नहीं है वह अजीव है। इन्हीं दो तत्त्वों को सांख्य अनुक्रम से पुरुष और प्रकृति कहता है परन्तु वेदान्त ब्रह्म और माया कहता है। देवचन्द्र जी जीव और जड़ का जिस ढंग से विवेक प्रकट करते हैं उसी ढंग का विवेक सांख्य और वेदान्त आदि दर्शनों में भी है और इन दर्शनों में आध्यात्मिक प्रगति के लिए ऐसे विवेक का उदय अनिवार्य रूप से स्वीकारा गया है और उसी को यहाँ सम्यग्दर्शन के रूप से बतलाया गया है।

हुँ स्वरूप निज छोड़ि, रम्यो पर पुद्गले,
झील्यो उलट आणि, विषय तृष्णा जले।

कवि का यह कथन मैथ्यू आर्नोल्ड के सुविख्यात काव्य "Lead kindly light amid the encircling gloom! Lead thou me on!—"प्रेमल ज्योति तारो दाखवी मुज जीवन पंथ उजाल" (स्व० कवि नरसिंह राव) में आने वाली "The night is dark and I am far from home—"दूर पडचो निज धाम थी हुं ने घेरे घन अँधार" इन पंक्तियों का स्मरण दिलाता है। इस तरह के कथनों को जरा गहराई से देखना चाहिए। कवि जब ऐसा कहता है कि मैं अपना स्वरूप छोड़कर पररूप में रत हो गया हूँ तब क्या ऐसा समझना चाहिए कि किसी समय आत्मा बिल्कुल शुद्ध था और बाद में जड़पाश में बँध गया? यदि ऐसा मानें तो मोक्ष पुरुषार्थ की मान्यता ही बेकार हो जाती है क्योंकि यदि प्रयत्न द्वारा कभी मोक्ष सिद्ध हो जाय और शुद्ध स्वरूप का आविर्भाव हो जाय तो भी उसके बाद किसी समय फिर कर्मपाश लग जाना चाहिए। जिस न्याय से भूतकाल में शुद्ध स्वरूप विकृत हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी न्याय से मोक्षप्राप्ति के बाद के भविष्यत् काल में भी विकृत होगा और यदि ऐसा होने लगे तो मोक्ष की प्राप्ति हो तो भी वही हाल और न हो तो भी वही हाल। इसी बात को दूसरे ढंग से ऐसा भी कह सकते हैं कि यह जो मोक्षप्राप्ति है वह वास्तव में देवपद की प्राप्ति है। देव चाहे कितने ही समय तक सुख-समृद्धि भोगें किन्तु आखिर उससे च्युत तो होंगे ही। इसी प्रकार से मोक्षस्थिति भी चाहे कितनी ही लम्बी क्यों न हो किन्तु अन्त में च्युत तो होना ही पड़ेगा। तब फिर "हुँ स्वरूप निज छोड़ि, रम्यो पर पुद्गले" इसका क्या अर्थ हो सकता है? इसके लिए निश्चय और व्यवहार दृष्टि दोनों का उपयोग है। आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान के प्रदेश में मोक्ष नामक पुरुषार्थ को जो स्थान मिला है वह विचारविकास के इतिहास में अमुक समय पर ही मिला है न कि पहले से ही सनातन रहा है। जिस समय मोक्ष की कल्पना आई उस समय मुक्त आत्मा का अमुक स्वरूप भी कल्पना में आया और यही स्वरूप इसका असली स्वरूप है तथा इसके अतिरिक्त जो कुछ भी आत्मा में भासित होता है वह सब आगन्तुक और 'पर' है ऐसा माना गया। आत्मा के माने हुए शुद्ध स्वरूप में विजातीय तत्त्व कब आए और क्यों आए, ऐसा किसी भी अनुभवी ने अब तक नहीं जाना है और न जान ही सकता है। इतना होते हुए भी मोक्ष पुरुषार्थ की कल्पना के आधार पर कल्पित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को, प्रत्येक अनुभवी ने मौलिक, वास्तविक और स्वाभाविक मानकर ही अपना आध्यात्मिक प्रस्थान प्रारंभ किया और जीवन में अनुभव में आने वाले विकार-वासना के तत्त्व को विजातीय अथवा वैभाविक मानकर उसको निकाल फेंकने का पूर्ण प्रयत्न किया। मोक्ष जीवन का साध्य माना गया और मोक्ष-स्थिति आदर्श गिनी गई। इसी आदर्श स्थिति का स्वरूप देखनेवाली जो दृष्टि है वह निश्चय है और साधक दशा में 'पर' भाव अथवा विजातीय स्वरूप से मिश्रित चेतन दृष्टि का निरूपण करने वाली जो दृष्टि है वह व्यवहार है। देवचन्द्र जी इन दोनों दृष्टियों का आश्रय लेकर कहते हैं कि "हुँ स्वरूप निज छोड़ि, रम्यो पर पुद्गले।" वास्तव में पहले कभी भी आत्मा संपूर्ण रूप से शुद्ध स्वरूप में था ही नहीं। वह तो अनादि काल से अशुद्ध रूप में ही रम रहा था। किन्तु इस अशुद्ध रूप में से जो शुद्ध रूप कभी न कभी प्रकट होनेवाला है उसी को निश्चय दृष्टि से 'भूतकाल में भी ऐसा ही था' ऐसा मानकर कवि लौकिक भाषा में व्यवहार दृष्टि का आश्रय लेकर "हुँ स्वरूप निज छोड़ि, रम्यो पर पुद्गले" ऐसा कहता है। सांख्य और वेदान्त आदि दर्शनों में भी चेतन-अचेतन के सम्बन्ध को अनादि ही माना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; ऐसा होने पर भी निश्चय दृष्टि से चेतन अथवा ब्रह्म का स्वरूप वैसा ही माना गया है जैसा कि भविष्यत् में मोक्ष-प्राप्ति के बाद आविर्भूत होनेवाला है। वास्तव में एक समस्या तो आज तक भी हल नहीं हो सकी है कि यदि दोनों तत्त्व मूल रूप से एक दूसरे से बिल्कुल विरुद्ध स्वभाव के हों और फिर भी दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ा हो तो वह किस लिए और कब? यदि भविष्यत् में कभी भी एक का प्रभाव दूसरे पर से हटने वाला हो तो फिर ऐसा प्रभाव उस पर नहीं पड़ेगा, इसका क्या समाधान? यह सब कुछ होते हुए भी इस उलझी हुई समस्या पर ही आध्यात्मिक मार्ग का आधार है और इस के द्वारा ही चारित्र मार्ग के अनेक गुण मनुष्य जाति में विकसित हुए हैं। जैन परंपरा की जो निश्चयदृष्टि है वही बौद्ध और वेदान्तियों की परमार्थदृष्टि है तथा जैन परंपरा की जो व्यवहार दृष्टि है वही बौद्धों की संवृति और वेदान्तियों की माया (अविद्या) दृष्टि है।

देवचन्द्र जी ने जो तत्त्व इस पद में अनगार परंपरा की नीरस वाणी में गाया है वही तत्त्व सांख्य और वेदान्त परंपरा के गृहस्थाश्रम के अनुभवी ऋषियों ने स्निग्ध तथा रसिक वाणी में गाया है। कपिल इस वस्तु का एक ढंग से वर्णन करते हैं तो उपनिषद् के ऋषि इसी का दूसरे ढंग से वर्णन करते हैं। दाम्पत्य जीवन के लिए संसार जीवन एक नाटक है। गृहस्थाश्रम के स्त्री और पुरुष रूपी दोनों ही पात्र, ब्रह्माण्ड के मंच पर खेलते हुए सांसारिक जीवन के भी पात्र हैं, ऐसा कपिल ने माना है। इन दोनों का पत्नी तथा पति रूप से आश्रय लेकर कपिल ने अनुक्रम से प्रकृति और पुरुष को माना है। कपिल के रूपक के अनुसार प्रकृति, कुलवधू के समान पुरुष के समक्ष ही सम्पूर्ण नाटक खेलती है। जब उसको विश्वास हो जाता है कि पुरुष ने मेरा रूप देख लिया तब कृतार्थता-पूर्वक शर्मिन्दा हो कर अपना खेल समेट लेती है। प्रकृति की लीला के प्रारंभ से लेकर उसकी समाप्ति तक पुरुष कुछ भी नहीं करता। वह तो लीला का द्रष्टा होकर तटस्थ रहता है। प्रकृति स्वयं ही लीला करने वाली है और स्वयं ही उसको समेटने वाली। ऐसा होने पर भी पुरुष बद्ध अथवा मुक्त माना जाता है। वास्तव में वह न तो बद्ध है और मुक्त ही। कपिल की इस कल्पना को एक दूसरे ऋषि ने एक नए ही रूपक में व्यक्त किया है। इस ऋषि का कहना है कि अजा अर्थात् बकरी एक है और वह लाल, सफेद और काले वर्ण की बहुरंगी है और अपने समान ही सन्तति उत्पन्न करती है। इस सर्जन क्रिया में अज अर्थात् बकरा अजा का सेवन करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ भी सदा अविकारी रहता है और भुक्तभोग अजा को तटस्थ रूप से ही देखता है। सांख्य के इस मत में सारा कर्तृत्व और उसकी जिम्मेदारी सिर्फ़ प्रकृति तत्त्व पर ही है; पुरुष तो एकमात्र तटस्थ प्रेक्षक है।

इधर उपनिषद् के अनेक ऋषियों ने जो वर्णन किया है उसमें स्पष्ट रूप से पुरुष का ही कर्तृत्व भासित होता है। ये ऋषि कहते हैं कि आत्मा (ब्रह्म अथवा सत् तत्त्व) पहले अकेला था। इसको अकेले रहने में कुछ रस नहीं आया और उसे अनेक रूप होने की इच्छा हुई। इसी इच्छा से अज्ञात माया शक्ति के द्वारा वह अनेक रूप हुआ। यह जो अनेकरूपता है वही संसार है। इस वर्णन में सारा कर्तृत्व आत्मा यानी पुरुष का है। माया अथवा शक्ति ने इस सर्जन में जो भी सहायता दी है वह सब आत्मा की कामना और तपस्या के कारण ही। उपनिषद् की माया में स्वतन्त्र रूप से कर्तृत्व नहीं है किन्तु कपिल की प्रकृति में तो सारा कर्तृत्व स्वतन्त्र रूपसे विद्यमान है। उपनिषद् के मत में राम के पौरुष और सीता के अनुगमन मात्र के संबन्ध का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है जब कि कपिल के मत में कृष्ण और गोपीकृत रासलीला में कृष्ण के प्रेक्षकपने का ही प्रतिबिम्ब नजर आता है। एक के मत से संसार-नाटक के खेल की पूरी जिम्मेदारी प्रकृति पर हैं तो दूसरे के मत से पुरुष पर है। ये दोनों मत परस्पर विरुद्ध तथा एकान्त मालूम पड़ते हैं। देवचन्द्र जी उक्त पद में जैन दृष्टि उपस्थित करते हैं; किन्तु उनके "हुं स्वरूप निज छोड़ि रम्यो पर पुद्गले" इन शब्दों से व्यक्त होने वाली ध्वनि उपनिषद् की ध्वनि जैसी है। देवचन्द्र जी का 'हुं' स्वयं ही कहता है कि मैंने अपना स्वरूप स्वयं ही छोड़ा और पौद्गलिक लीला में रस लेने लग गया। देवचन्द्र जी का 'हुं' पुद्गल अथवा कर्म को दोष न देता हुआ सम्पूर्ण दोष अपने ही सिर पर ले लेता है।

इतनी चर्चा करने के बाद पाठक यह सोच सकेंगे कि भिन्न भिन्न आध्यात्मिक चिन्तकों ने एक ही वस्तु का अनेक रूप से वर्णन किया है। कोई प्रकृति, पुद्गल अथवा माया पर सारा दोष मढ़ता है तो कोई पुरुष, आत्मा अथवा जीव पर सम्पूर्ण दोष डालता है। कहने की शैली चाहे कैसी भी हो किन्तु उसी को अन्तिम सिद्धान्त मान कर वाद में पड़ जाना आध्यात्मिकता नहीं है। मूल वस्तु यही है कि वासना अथवा अज्ञान को कम अथवा निर्मूल किया जाय।

जैन दृष्टि मानती है कि कोई भी नाटक अथवा खेल किसी एक पात्र से नहीं खेला जा सकता किन्तु उसका कर्तृत्वफल सब के हिस्से में जाता है। यह हो सकता है कि उसमें एक का हिस्सा अमुक रीति से हो और दूसरे का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी रीति से। अजा तो संतति पैदा करे और उसमें अज का कुछ भी रस न हो यह कहना निरर्थक है। इसी प्रकार से आत्मा जब भी अपने एकाकीपन को छोड़कर किसी दूसरे से संबंध जोड़ता है तब भी उसे अन्य किसी अज्ञात तत्त्व की सहायता होती ही है।

सिर्फ तत्त्वज्ञान के प्रदेश में ही ऐसे आमने सामने टकराने वाले वाद नहीं हैं किन्तु इन वादों का मूल मनुष्य स्वभाव की सामान्य भूमिका में भी है। इस समय भी कई लोग ऐसा ही मानते हैं और कहते हैं कि स्त्री ने ही पुरुष को पाश में बाँधा है। स्त्री का आकर्षण ही पुरुष का बंधन है। दूसरे कई लोग ऐसा कहते हैं कि पुरुष ही ऐसा धूर्त है कि वह भोली और निर्दोष स्त्री जाति को अपने जाल में फँसाता है। हम इन दोनों कथनों में देख सकते हैं कि कहने की रीति में ही विरोध है। एक का आकर्षण चाहे कितना हो सुन्दर क्यों न हो पर यदि दूसरे में अमुक प्रकार का आकर्षण करने की और आकर्षित होने की शक्ति नहीं है तो दोनों का योग सिद्ध ही नहीं हो सकता। अतः जैनदृष्टि जीव और अजीव दोनों तत्त्वों का अपेक्षाभेद से कर्तृत्व स्वीकार करती है।

पहले बाइबल का ईश्वर-रचित आदम एडन के बाग में अकेला था और बाद में अपनी ही पसली में से दो के रूप में हुआ। जिस समय ईव सामने आई उसी समय वासना के सर्प ने उसको ललचाया और अन्त में ईव ने ही आदम को ललचाया। यह रूपक उपनिषद् के एक आत्मा में से बहु होने के रूपक से मिलता जुलता है, जब कि बर्नार्ड शॉ के Man and Superman नाटक का पुरुष, स्त्री द्वारा ही स्त्री की अपनी रति और सेवा के लिए बनाया गया है। चाहे बाद में भले ही वह अपनी स्त्री का स्वामी बन गया हो। शॉ के इस कथन के पीछे कपिल का रूपक भूमिका रूप में रहा हो तो भी हम इन्कार नहीं कर सकते। तत्त्वज्ञ ऐसे रूपक पढ़ें, सुनें और उन पर विचार करें किन्तु उनमें से एक रूपक को अन्तिम मान कर उससे सिद्धान्त न निकालें, यही यहाँ पर कहने का तात्पर्य है।

राग-द्वेष और अज्ञान का दोष ही पद के उत्तरार्ध में आस्रव के नाम से कहा है। और इस दोष से होने वाला लेप ही बंध है। इस जैन परिभाषा के आस्रव और बंध को सभी आस्तिक दर्शनों ने भिन्न भिन्न नाम से माना है। देवचन्द्र जी का "हुँ" आत्मनिरीक्षण-पूर्वक पश्चात्ताप की गहरी वेदना के साथ पुकार उठता है कि मैं स्वयं ही दोषी हूँ, मैं स्वयं ही कर्म लेप के लिए

[शेष पृष्ठ १७ पर देखिए]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरस पड़े मोती दो !

समय था—
रजनी के अवसान का
सुनकर आगमन
नलिनी-कान्त का
मैं भी होकर निवृत्त स्वकार्यों से
चल दिया था भ्रमण को।
अभी-अभी मेघों ने
किया था सिंचन वसुन्धरा का।
चहुँ ओर मंद मंद
शीतल समीर था बह रहा,
मैं भी था बह रहा—
विचारों की उत्ताल तरङ्गों में।
पहुँच चुका था अब मैं—
समीप में एक नन्हीं सी तलैया के,
वहाँ पर देखा क्या ?
सैंकड़ों ही मेढक थे उसमें
उछल रहे, कूद रहे,
आमोद प्रमोद में,
पाकर अपना साम्राज्य फिर से
खुशियाँ मना रहे।
सहसा हृदय में, मस्तिष्क में
विचारों का तूफान सा उमड़ पड़ा,
एकदम लग गई प्रश्नों की झड़ी सी
मनुष्य से क्या कहीं
सुखी अधिक हैं ये ?
क्या नहीं है चिन्ता इन्हें कुछ भी ?
सहसा एक ओर गई
जब दृष्टि मेरी,
तब पा रहा था उत्तर मैं
कुछ कुछ अपने प्रश्न का,
देखा, बड़े बड़े
छोटों को हैं सता रहे
और उन्हें भगाकर स्वस्थान से
अपना आधिपत्य जमा रहे !
करते वे बेचारे क्या !
चल देते वहाँ से चुपचाप
किसी दूसरे स्थान को।
पर उनको
वहाँ पर भी चैन कहाँ !
उस समय मस्तिष्क में—
आया था विचार एक,
सोच रहा था ऐसे ही—
सबल मानव भी,
कर रहे अत्याचार—
निर्बलों पर, दीनों पर, हीनों पर,
चूसकर उनके रक्त को—
उड़ा रहे मौज हैं।

*　*　*

विश्व में मच रहा है चहुँ ओर
हाहाकार
लाखों ही मानव नित
पिस रहे धनिकों के—
क्रूर जबाड़ों में !
होते नहीं दर्शन कहीं साम्य के !
एक ओर,
बड़े-बड़े प्रासादों में,
कोठियों में,
मचल रहा वैभव !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो दूसरी ओर
दुःख के, दैन्य के गर्त में–
पल रहे सैकड़ों ही दीन मानव !
और उनके प्राणों से–
कर रहे अठखेलियाँ,
पूँजी के गर्व में आकर पूँजीपति,
निर्माता हैं जो–
बड़े-बड़े प्रासादों के,
महलों के,
तरसता है कोई
एक झोंपड़ी के लिए,
यह भी कैसी है विडम्बना;
होंगे दर्शन तुम्हें !
देखकर दृश्य यह,
बरस पड़े बरबस हो–
आँखों से,
मोती दो
देने को सांत्वना !

—मुनि उमेश

दीर्घायु होने के उपाय

सत्यवादिन-मक्रोधं निवृत्तं मद्य-मैथुनात् ।
अहिंसक-मनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम् ॥
याज्य-शौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम् ।
देव-गो-ब्राह्मणाचार्य-गुरु-वृद्धार्चने रतम् ॥
आनृशस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम् ।
सम-जागरणस्वप्नं नित्यं क्षीर-घृताशिनम् ॥
देश-काल-प्रमाणज्ञं युक्तिज्ञ-मनहङ्कृतम् ।
शस्ताचार-मसंकीर्ण-मध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ॥
उपासितारं वृद्धाना-मास्तिकानां जितात्मनाम् ।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम् ॥

—अत्रिपुत्र

सत्यवादी, क्रोध न करने वाले, मद्य-मैथुन से अलग न रहने वाले, अहिंसक, बहुत श्रम न करने वाले, शान्त, प्रियवादी; यज्ञ-शौच में लग्न, धीर, नित्यदान करने वाले, तपस्वी, देवता-ब्राह्मण-गो-आचार्य-गुरु और वृद्धों की पूजा में रत; क्रूरता से रहित, करुणार्द्रचित्त; जागने और सोने में समानता रखने वाले, दूध-घी का नित्य सेवन करने वाले; देश-काल-प्रमाण को समझने वाले, युक्ति (लोकव्यवहार) को जानने वाले, अहंकार से शून्य, प्रशस्त आचार वाले, उदार मनोवृत्ति युक्त, अध्यात्म चिन्तन में रत; वृद्ध, आस्तिक और जितात्मा पुरुषों की सेवा में रहने वाले, तथा धर्मशास्त्र के पठन में रत व्यक्ति को सदा रसायनसेवी जाने ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भारतीय विचार और आचार में आज भी मौजूद है

जैन परम्परा —

—मोहनलाल मेहता एम० ए०

श्रमण संस्कृति की धाराओं में जैन परम्परा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। श्रमण संस्कृति की जो दो मुख्य धाराएँ आज भी जीवित हैं उनमें से बौद्ध परम्परा का भारतीय जीवन से विशेष संबंध नहीं रह गया है। यह ठीक है कि उसका थोड़ा बहुत प्रभाव किसी न किसी रूप में आज भी है और आगे भी रहेगा किन्तु भारतीय जीवन के निर्माण और परिवर्तन में जैन परम्परा का जो हाथ अतीत में रहा है, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा वह कुछ विलक्षण है। यद्यपि आज की जैन विचारधारा जो कि पार्श्व और महावीर के काल से चली आ रही है जैसा कि इतिहास भी मानता है, भारत के बाहर अपना प्रभाव नहीं जमा सकी, पर भारतीय विचारधारा और आचार को बदलने में इसने जो काम किया है वह इस देश के जनजीवन के इतिहास में बहुत समय तक अमर रहेगा।

जैन परम्परा और बौद्ध परम्परा दोनों श्रमण संस्कृति के अन्तर्गत हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जैन परम्परा और बौद्ध परम्परा दोनों एक हैं। जैन परम्परा, जैन परम्परा है और बौद्ध परम्परा, बौद्ध परम्परा। श्रमण परम्परा दोनों में प्रवाहित होने वाली एक सामान्य परम्परा है। श्रमण परम्परा की दृष्टि से दोनों एक हैं किन्तु परस्पर की अपेक्षा से दोनों भिन्न हैं। बुद्ध और महावीर दोनों भिन्न व्यक्ति हैं। बुद्ध की परम्परा आज बौद्ध धारा के नाम से प्रसिद्ध है और महावीर की परम्परा जैन धारा के नाम से; यह बात हम भारतीयों के लिए विवाद से परे हैं। हम लोग इन दोनों परम्पराओं को भिन्न परम्पराओं के रूप में देखते आए हैं। इसके विरुद्ध कुछ विदेशी विद्वान् यहाँ तक लिखने लग गए थे कि बुद्ध और महावीर एक ही व्यक्ति हैं क्योंकि जैन और बौद्ध परम्परा की मान्यताओं में बहुत समानता है। प्रो० लासेन आदि की इस मान्यता का खण्डन करते हुए प्रो०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेबर ने यह खोज की कि जैनधर्म बौद्धधर्म की एक शाखा मात्र है। प्रो० याकोबी ने इन दोनों मान्यताओं का खण्डन करते हुए यह सिद्ध किया कि जैन और बौद्ध दोनों सम्प्रदाय स्वतंत्र हैं। इतना ही नहीं अपितु जैन सम्प्रदाय बौद्ध सम्प्रदाय से प्राचीन है। ज्ञातपुत्र महावीर तो उस सम्प्रदाय के अन्तिम तीर्थङ्कर मात्र हैं।[1] इस प्रकार जैन परम्परा का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करने में अब किसी को आपत्ति नहीं है। इतना ही नहीं अपितु ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर तो यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि बौद्ध परम्परा पर जैन परम्परा का पूरा प्रभाव है। कुछ भी हो, जैन परम्परा का स्वतंत्र अस्तित्व है, यह निर्विवाद सत्य है। इस परम्परा का भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रभाव है। आचार और विचार दोनों पर इसकी गहरी छाप है। अब हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि जैन परम्परा के आचार और विचार की भित्ति क्या है? जैन परम्परा द्वारा मान्य आचार और विचार के मौलिक सिद्धान्त क्या हैं? किन सिद्धान्तों पर जैनाचार और जैन-विचार खड़े हैं?

जैनाचार की मूल भित्ति अहिंसा है। अहिंसा का जितना सूक्ष्म विवेचन जैन परम्परा में मिलता है उतना शायद ही किसी अन्य परम्परा में हो। प्रत्येक आत्मा चाहे वह पृथ्वी संबंधी हो, चाहे वह जलगत हो, चाहे उसका आश्रय कीट अथवा पतंग हो, चाहे वह पशु और पक्षी में रहती हो, चाहे उसका निवास स्थान मानव हो—तात्त्विक दृष्टि से उसमें कोई भेद नहीं है। जैन दृष्टि का यह साम्यवाद भारतीय संस्कृति के लिए गौरव की चीज है। इसी साम्यवाद के आधार पर जैन परम्परा यह घोषणा करती हैं कि "सभी जीव जीना चाहते हैं। वास्तव में कोई भी मरने की इच्छा नहीं करता। इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि हम मन से भी किसी का वध करना न सोचें"।[2] शरीर से किसी की हत्या कर देना तो पाप है ही किन्तु मन से तद्विषयक संकल्प करना, यह भी पाप है। मन, वचन और काय से किसी भी जीव को सन्ताप न पहुँचाना, यही सच्ची अहिंसा है।[3] वनस्पति से लेकर मानव तक की अहिंसा की यह कहानी जैन परम्परा की विशिष्ट देन है। विचारों में एक आत्मा—एक ब्रह्म का आदर्श अन्यत्र भी मिल सकता है किन्तु आचार पर

---

१. S. B. E. Vol. 22, Introduction पृष्ठ १८, १९।
२. दशवैकालिक सूत्र—६, ११।
३. आचारांग १, ४, १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना भार जैन परम्परा ने दिया है, उतना अन्यत्र नहीं मिल सकता। आचार विषयक अहिंसा का यह उत्कर्ष जैन परम्परा की अपनी देन है जो आज भी अधिकांश भारतीय जनता के जीवन में मौजूद है। जैन परम्परा के अनुयायी तो इससे पूरे प्रभावित हैं ही, इसमें कोई संशय नहीं।

अहिंसा को केन्द्र मानकर अमृषावाद, अस्तेय, अमैथुन, और अपरिग्रह का आदर्श सामने रखा गया। यथाशक्ति जीवन को स्वावलम्बी, सादा और सरल बनाने के लिए ही श्रमणपरम्परा ने इन सब बातों को अधिक महत्त्व दिया। असत्य का त्याग, अनधिकृत वस्तु का अग्रहण और संयम का परिपालन अहिंसा की पूर्ण साधना के लिए आवश्यक हैं। साथ ही साथ अपरिग्रह का जो आदर्श है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। परिग्रह के साथ आत्मविकास की घोर शत्रुता है। जहाँ परिग्रह रहता है वहाँ आत्मविकास नहीं रह सकता। परिग्रह मनुष्य के आत्मपतन का बहुत बड़ा कारण है। दूसरे शब्दों में स्वयं परिग्रह पाप का बहुत बड़ा संग्रह है। जितना अधिक परिग्रह बढ़ता जाता है उतना ही अधिक पाप बढ़ता जाता है। मानव समाज में वैषम्य उत्पन्न करने का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व परिग्रह बुद्धि का है। परिग्रह का दूसरा नाम ग्रन्थि भी है। जितनी अधिक गाँठ बाँधी जाती है उतना ही अधिक परिग्रह बढ़ता है। किसी की गाँठ मन तक ही सीमित रहती है तो कोई बाह्य वस्तुओं की भी गाँठें बाँधता है। यह गाँठ जब तक नहीं खुलती तब तक विकास का द्वार बन्द रहता है। महावीर ने ग्रन्थिभेदन पर बहुत अधिक भार दिया। इसीलिए उनका नाम निर्ग्रन्थ पड़ गया और उनकी परम्परा भी निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुई। जैन परम्परा को छोड़ अन्य किसी परम्परा को यह नाम न दिया गया। अपरिग्रह का मार्ग विश्व-शान्ति का प्रशस्त मार्ग है। इस मार्ग का उल्लंघन करने वाला संसार को स्थायी शान्ति नहीं दे सकता। वह स्वयं पतनोन्मुख होता है, साथ ही साथ अन्य प्राणियों को भी अपने स्तर से नीचे गिराता है। स्वाधीनता की रक्षा के लिए अपरिग्रह अत्यन्त आवश्यक है।

आचार की इसी भूमिका पर कर्मवाद का जन्म होता है। कर्मवाद का अर्थ है—कार्य-कारण-वाद। प्रत्येक काय का कोई न कोई कारण होता है और प्रत्येक कारण किसी न किसी कार्य को उत्पन्न करता है। यह कारण और कार्य का पारस्परिक संबंध ही जगत् की विविधता और विचित्रता की भूमिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हमारा कोई कर्म व्यर्थ नहीं जाता। हमें किसी भी प्रकार का फल बिना कर्म के नहीं मिलता। कर्म और फल का यह अविच्छेद्य संबंध ही आचारशास्त्र की नींव है। यह एक अलग प्रश्न है कि व्यक्ति के कर्मों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है और समाज के कर्म व्यक्ति के जीवन-निर्माण में कितने अंश में उत्तरदायी हैं। इतना निश्चित है कि बिना कर्म के किसी प्रकार का फल नहीं मिल सकता। बिना कारण के कोई कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। कर्मवाद का अर्थ यही है कि वर्तमान का निर्माण भूत के आधार पर होता है और भविष्य का निर्माण वर्तमान के आधार पर। व्यक्ति अपनी मर्यादा के अनुसार वर्तमान और भविष्य को परिवर्तित कर सकता है किन्तु यह परिवर्तन भी कर्मवाद का ही एक अंग है। जैन परम्परा नियतिवाद (Determinism) में विश्वास न करके इच्छा स्वातन्त्र्य (Freedom of will) को महत्त्व देती है किन्तु अमुक सीमा तक। प्राणी की भावनाओं को जैन दर्शन में भावकर्म कहा गया है। उस भावकर्म के द्वारा आकर्षित होने वाले सूक्ष्म भौतिक परमाणु द्रव्यकर्म हैं। इस प्रकार जैनदर्शन का कर्मवाद चैतन्य और जड़ के सम्मिश्रण द्वारा परम्परा से विधिवत् बढ़ती हुई एक प्रकार की क्रिया है। इस क्रिया के आधार पर से ही पुनर्जन्म का विचार किया जाता है। इस क्रिया की समाप्ति मोक्ष है। जैनदर्शन में प्रतिपादित चौदह गुणस्थान इसी क्रिया का क्रमिक विकास है जो अन्त में आत्मा के असली रूप में परिणत हो जाता है। आत्मा की यह अवस्था परमात्म-अवस्था है। आत्मा का अपने स्वरूप में वास करना, यही जैन दर्शन का परमात्म-पद है। प्रत्येक आत्मा के भीतर यह पद प्रतिष्ठित है। आवश्यकता है उसे पहचानने की। 'जे अप्पा से परमप्पा' 'जो आत्मा है वही परमात्मा है' जैन परम्परा की यह घोषणा साम्यदृष्टि का अन्तिम रूप है, समभाव का अन्तिम विकास है, समानता का अन्तिम दावा है। विचार में साम्यदृष्टि की भावना पर जो जोर दिया गया है उसी में से अनेकान्त दृष्टि का जन्म हुआ है। अनेकान्तदृष्टि तत्त्व को चारों ओर से देखती है। तत्त्व का स्वभाव ही ऐसा है कि वह अनेक प्रकार से जाना जा सकता है। वस्तु के अनेक धर्म होते हैं। किसी समय किसी की दृष्टि किसी एक धर्म पर भार देती है तो किसी समय दूसरे की दृष्टि किसी दूसरे धर्म पर जोर देती है। तत्त्व की दृष्टि से उस वस्तु में सारे धर्म हैं। इसीलिए वस्तु को अनेकधर्मात्मक कहा गया है। अपेक्षाभेद से दृष्टिभेद का प्रतिपादन करना और उस दृष्टिभेद को वस्तुधर्म का एक अंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझना, यही अनेकान्तवाद है। अपेक्षाभेद को दृष्टि में रखते हुए अनन्त-धर्मात्मक तत्त्व का प्रतिपादन 'स्यात्' शब्द द्वारा हो सकता है अतः अनेकान्त-वाद का नाम स्याद्वाद भी है। स्याद्वाद का यह सिद्धान्त जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों में भी मिलता है। मीमांसक, सांख्य और न्यायदर्शन में यत्र तत्र अनेकान्तवाद बिखरा हुआ मिलता है। बुद्ध का विभज्यवाद स्याद्वाद का ही निषेधात्मक रूपान्तर है। इतना होते हुए भी किसी दर्शन ने स्याद्वाद को सिद्धान्त रूप से स्वीकृत नहीं किया। अपने पक्ष की सिद्धि के लिए उन्हें यत्र तत्र स्याद्वाद का आश्रय लेना पड़ा। उन्होंने जान बूझकर उसे अपनाया हो, ऐसी बात नहीं है। जैन परम्परा ने जैसे अहिंसा पर अधिक भार दिया है, वैसे ही अनेकान्तवाद पर अत्यधिक भार दिया है। दूसरे शब्दों में अनेकान्तवाद जैनदर्शन का प्राण है। जैन परम्परा का प्रत्येक आचार और प्रत्येक विचार अनेकान्तदृष्टि से ओत-प्रोत है। जैन विचारधारा का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जिस पर अनेकान्तदृष्टि की छाप न हो। जैन दार्शनिकों ने इस विषय पर एक नहीं अनेकों ग्रंथ लिख डाले। अनेकान्तदृष्टि के आधार पर नयवाद का विकास हुआ। स्याद्वाद और नयवाद जैनपरम्परा की अमूल्य सम्पत्ति है। जैन दार्शनिक साहित्य का मुख्य आधार अनेकान्तदृष्टि की भूमि में उत्पन्न होने वाले एवं बढ़ने वाले स्याद्वाद और नयवाद हैं। आगमिक साहित्य से लेकर आजतक का साहित्य स्याद्वाद और नयवाद के मौलिक सिद्धान्तों से भरा हुआ है। जैन विद्वानों का यह दृष्टिकोण विश्व की दार्शनिक परम्परा में बेजोड़ है।

[पृष्ठ १० का शेष]

जिम्मेदार हूँ तो भी दूसरों पर दोष मढ़ता हूँ। वास्तव में पुद्गल अथवा जगत के अन्य जीव-जन्तु मेरे पतन के लिए जिम्मेदार नहीं है। मेरे पतन की पूरी जिम्मेदारी मेरे पर ही है। देवचन्द्र जी के "हुं" के ये उद्गार पुरुषार्थ की प्रेरणा करने वाले हैं। यदि अपने पतन में अन्य किसी का दोष नहीं हो, अन्य किसी की जिम्मेदारी अथवा नियति या यदृच्छा काम न कर रही हो तो इस दोष से बचने का आधार भी दूसरा नहीं हो सकता। यह भावना मूल रूप से महावीर द्वारा उपदेशित पराक्रम अथवा वीर्य से ही फलित होती है। जैन-दर्शन स्पष्ट रूप से अपना उद्धार अपने से ही मानता है चाहे भले ही वह ईश्वर अथवा गुरु के अवलम्बन की द्वैतवाणी का उच्चारण करता हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्य-गीत

सांध्य गगन में झुकते अंशुमाली की अरुणिम किरणें जब शून्य क्षितिज के भटकते बादलों पर पड़ती हैं तो मन के व्यथित भाव सिमटने लगते हैं और आँखें निर्विकार अम्बर में लीन हो जाती हैं !

जब झुके झुके से बादल अम्बर की पराग पूरित कलियों के ऊपर मँड़राने लगते हैं, पवन का हल्का उच्छ्वास उन्हें सिहरा देता है तो आँखों में जीवन मोती छलक पड़ते हैं !

और जब राका की शीतल किरणें नीरव निशीथ में संसार को उज्ज्वल परिधान से ढक लेती हैं, गुम्फित कलियों का हृदय हहर उठता है—तब अपनी पीड़ा के साम्राज्य की मैं एकाकी 'रानी' बन जाती हूँ !

—सुश्री लीलावती 'रानी'—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगतृष्णा–

–जयभिक्खु

"श्रीदेवी ! धन्य है तुझे ! गंभीरता से सोचने पर ऐसा प्रतीत होता है कि हमने मृगजल को अमृत सरोवर समझ कर उसके पीछे बहुत उत्साह से दौड़ लगाई थी। संतान तो प्रकृति-सन्देश है। वह अपनी इच्छा से आता है, हमारी चेष्टा से नहीं। हमारी चेष्टा, हमारी कामना तो स्वार्थी है। हम अपने लिए क्या माँग रहे हैं ? वही जो हमारे लोभ का उत्तराधिकारी बन सके ! आज का विशाल हृदय संतान प्राप्त कर क्षुद्र हो जायगा ! सर्वस्व की इतिश्री संतान में होगी, अनेक का प्रेम एक में समा जाएगा ! आज सारा विश्व हमारा घर है, फिर एकमात्र घर ही हमारा विश्व होगा।"

सूर्य पश्चिम दिशा की ओर बढ़ रहा था। आम्रसमूह में कपिवृन्द क्रीड़ा कर रहा था। रसाल की शोभा बढ़ाने वाला कोकिलकंठ मंद गति से मधुर स्वर का संचार कर रहा था। उत्तर गुजरात की इस विशाल भूमि पर अन्नपूर्णा का प्रभुत्व था। मयूर अपनी मनोहर कला का प्रदर्शन करते हुए जलपूरित कूप, तड़ाग और वापिकाओं के तट पर नाच रहे थे।

इस गर्वपूर्ण गुर्जर देश के समान ही जल से छलकती हुई एक वापिका अटालज ग्राम में सुशोभित थी। जल के झरने पाताल को फोड़कर प्रवाहित हो रहे थे। पंचमंजिल प्रसाद की भाँति पाँच पाँच मंजिलें पृथ्वी के नीचे खड़ी की गई थीं। हरेक मंजिल में शिल्पकला की सुन्दर कृतियाँ विद्यमान थीं। प्रत्येक भवन अद्भुत आकृतियों की आकर्षक कृतियों से सुशोभित था। ये शिल्पकृतियाँ क्या थीं, मानो पृथ्वी के कलाकारों का बनाया हुआ प्रकृति की महानता का अमर चिह्न था।

प्रातः और सायंकाल चमचमाते ताम्र घट सिर पर रखकर यौवनपूर्ण तन को हिलाती, मनोहर मस्तक को झुलाती, हाथों से तालियाँ बजाती पानी भरने जाती हुईं हँसती खेलती पनिहारियाँ दृष्टिगोचर होती थीं। इस प्रदेश की सम्पूर्ण भूमि काव्यानुकूल थी।

प्रकृति के इस मधुर वातावरण में दो अश्वारोही आते हुए दिखाई दिये। वे सहज ही किसी काव्य के नायक-नायिका बन सकते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पुरुष था, दूसरी स्त्री। नर विशालकाय था। उसकी ऊँचाई के सामने भव्य अरबी अश्व भी छोटा लगता था। पैरों में उच्च जाति के चर्म से बनी हुई जूतियाँ थीं। चीनांशुक के चमकते हुए बहुमूल्य वस्त्र शरीर पर शोभित हो रहे थे। पैरों में सोने के मोटे मोटे कड़े थे। कंठ में नीलमणि की दो मालाएँ थीं। करमें सुवर्ण के कंकण थे। मस्तक पर कीमती मंडिल था और ललाट पर बादामाकार तिलक। आकृति से महान् श्रेष्ठी प्रतीत होता था किन्तु कटिप्रदेश में लटकती हुई मखमली म्यान वाली और मणि-माणिक से जड़ी हुई मूठवाली सिरोही तलवार तथा बाजू में पड़ी हुई हीरा-कटारी से राज कर्मचारी जान पड़ता था। मुड़ी हुई मूँछें और लंबी लंबी भुजाएँ क्षत्रियत्व को प्रकट करती थीं। वीरत्व और वणिकत्व का मिश्रित मृत्पिण्ड उसके देह-निर्माण का कारण प्रतीत होता था।

नारी नर से किसी भी प्रकार कम न थी, वह रूप की साक्षात् मूर्ति थी। उसके मनोहर मस्तक के काले केशों में हीरक-माला सुशोभित हो रही थी। लटकती हुई सुवर्ण की कटिमेखला और उड़ता हुआ लाल रंग का उत्तरीय वस्त्र अद्भुत दृश्य के प्रतीक थे। चित्तौड़ की पद्मिनी मानो आज गुर्जरी के वेश में प्रवास के लिए निकली थी।

अश्वारोही वापिका के समीप पहुँचते ही अश्व से नीचे उतरा। इस अवरोहण में भी अद्भुत सौन्दर्य था। अपने अश्व को बाँधकर वह अश्वा-रोहिणी के पास आया और उसकी सहायता करने के लिए हाथ लंबा किया। स्त्री एक छलांग में नीचे कूद सकती थी किन्तु उसने सहायता के लिए लंबे किये गए हाथ का सम्मान किया। घोड़े से उतरना आता ही न हो इस ढंग से उसने उतरते उतरते अपने शरीर का सारा बोझ पुरुष के हाथ पर डाल दिया। स्त्री नीचे उतर गई।

कुछ ही दूर रहे हुए सैनिक समीप आ गए। एक सैनिक ने दोनों घोड़ों को अच्छी तरह बाँध दिया। स्त्री और पुरुष पैदल ही आगे बढ़े।

चारों ओर हरियाली छाई हुई थी। दूर्वादल से अपना पोषण करने वाली गायों के गले की घंटियाँ धीरे धीरे बज रही थीं। वृक्ष के नीचे मयूर नृत्य कर रहे थे। वापिका के तट पर बैठा हुआ कपिवृन्द इस नृत्य को देखकर प्रसन्न हो रहा था।

"श्रीदेवी! प्रकृति कैसी प्रफुल्लित है! राग-द्वेष का लेश तक नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हम लोग मरुभूमि में रहते हुए इस भूमि को भूल ही गए। इस भूमि के सामने संगमरमर की अट्टालिकाएँ भी व्यर्थ हैं! आबू के शृंग की आह्लादक वायु से भी यहाँ का वायु अधिक प्रिय है! मेरा हृदय तो यही चाहता है कि यहीं ठहरा जाय। मेरे नेत्र यहीं शीतलता का अनुभव करना चाहते हैं।

"देवी! मातृभूमि की माया अति विचित्र है। हमारे शरीर के अणु-परमाणु तो गुजरात के ही हैं न! चन्द्रावती बसाई तो क्या वहाँ के निवासी ही हो गए? पाटण हमारे हृदय में अंकित है और रहेगा। 'मरते समय ऊँट मारवाड़ की ओर मुँह रखता है' इस लोकोक्ति का रहस्य आज समझ में आरहा है। आबू के किसी रम्य शृंग पर मृत्यु भले ही हो किन्तु यह पगली गुर्जरभूमि विस्मृत नहीं की जा सकती। प्रिये! तुझे स्वप्न में जिस देवी के दर्शन हुए थे और जिस वापिका तू वणन करती थी वह देवी और वह वापिका दोनों यही मालूम होते हैं।" विमलशाह ने रहस्य का उद्घाटन किया।

"हाँ, नाथ! मेरी स्वप्नभूमि आज मेरे सामने है। यहाँ आने का जीवन में प्रथम अवसर है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है मानो यह भूमि चिर-परिचित हो। देवी ने स्वप्न में आकर अपने स्थान के मार्ग की सूचना देते हुए कहा था कि·······" स्त्री श्वास लेने लगी।

"माता ने स्वप्न में आकर क्या कहा था?"

"माता ने चन्द्रावती से लगाकर यहाँ तक का मार्ग बताते हुए कहा था कि विशाल वटवृक्ष और विपुल कपिवृन्द से सुशोभित प्रस्तर-निर्मित बृहद् वापिका मेरा वासस्थान है। भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को ठीक मध्यरात्रि के समय सात श्रीफल फोड़कर अपनी साड़ी मुझे ओढ़ा कर जोर से पुकारना। उपस्थित होकर वर दूँगी।"

"ठीक, देवी! सूर्य अस्त होरहा है। शिविर तैयार हो तब तक वापिका का निरीक्षण कर लें। देलवाड़े की कला का दर्शन भी यहाँ सुलभ है। देवी! मानव का अमरत्व इसी का नाम है।"

"आपका कथन ठीक है। मानव की अमरता दो प्रकार की होती है—एक सुकार्य से और दूसरी सुपुत्र से।" स्त्री ने धीरे से कहा।

"सुकार्य तो बहुत किए। महामंत्री विमल के नाम और काम से आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन अपरिचित है ? देवी ! आबू पर स्वर्गभवन खड़ा करवाया है। शत्रुंजय और गिरनार के मूक पत्थर कीर्तिगाथाएँ गा रहे हैं। एक देवमंदिर के के लिए चौदह वर्ष की साधना करने वाले की केवल शिल्प की भावना से प्रेरित होकर उन्नीस करोड़ रुपये खर्च करने वाले की कीर्ति सामान्य नहीं होती। जब तक आबू पर मंदिर का एक भी स्तम्भ रहेगा, विमल की कीर्ति अविचल रहेगी। अरे, विमलशाह का कलाप्रेम केवल देवालय अथवा उपाश्रय बनाकर ही संतुष्ट नहीं हुआ, वह मस्जिदों तक भी पहुँचा है। वापिका, कूप, तड़ाग और धर्मशालाओं में भी उसका नाम गूँजता है। इतनी सुकीर्ति एक जन्म में तो किसी को नहीं मिल सकती। आज देवी प्रसन्न होंगी। हमारा तप सफल होगा, सुपुत्र का वर मिलेगा। जीवित अवस्था में मुक्ति प्राप्त करने का आनन्द मिलेगा ?"

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनों वापिका की सीढ़ियों तक जा पहुँचे और फिर अन्दर उतर गए। निर्मल जलखण्ड में दोनों अपना प्रतिबिम्ब देखते रहे।

स्त्री दोनों का प्रतिबिम्ब जल में देखकर गर्व का अनुभव कर रही थी। "अरे ! विधाता ने यह कैसी जोड़ी घड़ी है ! सिर्फ एक वस्तु की कमी है, आज रात्रि में वह भी पूरी हो जायगी। देवी के वर से मेरी खाली कोख आज भर जायगी।"

पुरुष नीचे झुका। उसने कर-पात्र से जल लिया और श्रीदेवी से कहा- "देवी, अमृत का पान करो।"

प्रिय पति के हाथ का जलपान ! पत्नी को तो विष हो तो भी अमृत से अधिक मधुर लगे ! किन्तु श्रीदेवी लज्जा का अनुभव करने लगीं। मंद मुसकान करती हुई बोली :—

"ठहरिये, स्वर्ण-पात्र मँगाती हूँ।"

पुरुष के कर-पात्र से पानी गिर रहा था। उसने दूसरी बार अंजलि भरते हुए कहा :—

"कर-पात्र की तुलना में स्वर्ण-पात्र व्यर्थ है, देवी ! अधरामृत को इस अमृत से मिलने दो।"

श्रीदेवी ने लज्जावनत मुख से अपने अधरोष्ठ को ज्यों ही आगे बढ़ाया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर से एक बालक चिल्लाता हुआ नीचे आया। विशाल शत्रुसेना के आगे तनिक भी क्षोभ का अनुभव न करने वाला, अकेले हाथ से सिंह के साथ पंजे मिलाने वाला पुरुष आकस्मिक क्षोभ का अनुभव करने लगा।

पंद्रह-सोलह वर्ष का एक बालक जल्दी जल्दी नीचे आकर खड़ा हो गया। आँखें लाल थीं। बाल मुड़े हुए व अस्तव्यस्त थे।

"क्या बात है ?" विमलशाह ने आँख ऊँची की। महामंत्री के प्रताप के सामने उसकी उद्दण्डता शान्त होगई।

"पानी पीने का पैसा दीजिये।"

"किस लिए ?"

"ऐसा ही नियम ह। यह वापिका मेरे पूर्वज लाखा बनजारे ने बँधवाई है, मैं उसका उत्तराधिकारी हूँ। पैसे दिए बिना कोई भी पानी नहीं पी सकता।"

"श्रीदेवी ! वापिका का निर्माण इसके पूर्वज ने कराया है। यह उसका परंपरागत अधिकारी है ?"

"दीजिए, इसकी भूख बुझे उतना दीजिए ?" श्रीदेवी ने कहा।

विमलशाह ने मुट्ठी भरकर चाँदी के सिक्के दिए। वह लड़का 'सेठ जी की जय' 'सेठ जी की जय' से अभिवादन करता, नाचता, कूदता चला गया। 'सेठ जी की जय' की प्रतिध्वनि सारी वापिका में ध्वनित हो उठी।

"देवी ! वापिका-निर्माता के इस उत्तराधिकारी को देखा ? एक कितना महान्, दूसरा कितना अधम ! 'दिया तले अँधेरा' इसी का नाम है। जिसने अपनी सम्पत्ति का प्राणिमात्र के लिए खुले हाथ उपयोग किया उसका वंशज आज पानी का पैसा लेने के लिए·······"

"नाथ ! समय बीतता जा रहा है, चलें।" स्त्री ने पुरुष को विचार-सागर से बाहर निकाला।

दोनों अपने शिविर में विश्रान्ति के लिए चले गए। पृथ्वी ने अंधकार का चादरा ओढ़ लिया।

(२)

अनन्त चतुर्दशी का चन्द्र आकाश से अमृत बरसा रहा था। छोटा सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अटालज ग्राम निद्रा की गोद में छिपा हुआ था। वापिका का जल भी शान्त था। मन्द मन्द वायु वृक्षों के साथ क्रीड़ा कर रहा था।

विमलशाह और श्रीदेवी जग रहे थे। दोनों के शरीर ऐसे चमक रहे थे मानो अभी अभी स्नान किया हो। स्त्री की लंबी लटों से सुगन्धित जल टपक रहा था। दोनों ने सुन्दर वस्त्र धारण कर रखे थे। देह की शोभा आँखों को मुग्ध कर रही थी।

वे थोड़ी बहुत बातें करते जाते थे किन्तु वार्तालाप से अधिक मौन धारण करते थे। दोनों किसी गंभीर विचार में डूबे हुए थे।

"नाथ ! अब कितना समय बाकी है ?" स्त्री ने अलसाते हुए कहा। उसके स्वर में मन्द उत्साह था।

"थोड़ा सा ही, वह तारा मध्य आकाश की ओर बढ़े उतना सा, श्री देवी !" पुरुष कुछ समीप आया। "देवी से कितने पुत्र माँगेगी ? शक्ति के अनुसार भक्ति रखना।"

"पुत्र ?" श्रीदेवी ने निराश होकर कहा—"नाथ ? सिद्धि के अन्तिम क्षण में मन कुछ पीछे हटता है।"

"वापिका का वह उत्तराधिकारी याद आता है क्या ?"

"हाँ, नाथ ! पुत्र के लिए किये गए सारे जप-तप आज के इस अन्तिम क्षण में व्यर्थ मालूम हो रहे हैं। संतान की कामना किस लिए ? सारे सागर को अपने बाहुबल से पार कर किनारे पर डूबना ? संतान की याचना से हृदय में अशान्ति तो उत्पन्न नहीं होती ! न जाने पुत्र सुकीर्ति फैलाएँगें या पूर्वजों की कीर्तिसरिता को अपने कलंकित कर्मों से गंदी करेंगे ?"

"धन्य हो श्रीदेवी ! तू मानो मेरे मन के विचार ही कह रही है ! मन में कभी से मंथन हो रहा था किन्तु सोचता था कि प्रकृति ने स्त्री के हृदय में पुत्र की कामना पैदा की है। अन्तिम क्षण में मेरे विचार जानकर तेरा मन टूट न जाय इसीलिए शान्त था। यश ही हमारी चिर-संतति है, सुकीर्ति ही हमारी वास्तविक संतान है, ये न बीमार हो सकते हैं, न मर सकते हैं, न कलंकित कर सकते हैं।" विमलशाह ने अपने विचार व्यक्त किए।

"मेरे देव ! आप तो मेरे अन्तर्यामी हो। क्या युद्ध में और क्या अन्यत्र श्रीदेवी सदा आपके साथ नहीं रही ? मन में इतना अवश्य होता था कि पत्नी के कर्तव्य की पराकाष्ठा प्रजा की उत्पत्ति में ! मेरे विमल को सन्तान-प्राप्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो तो हमने जैसे अपने पूर्वजों का नाम उज्ज्वल किया वैसे ही हमारी सन्तति हमारा नाम उज्ज्वल करे ! किन्तु आज मुझे विश्वास न रहा। बड़ों की सन्तति सदैव छोटी होती है, यह संसार का अनुभव है। आज वह लड़का पूर्वजों के दान पर लांछन लगा रहा है ! कल हमारी सन्तति आबू के भव्य भवन क्यों न बेचे ? दर्शन का मूल्य क्यों न ले !"

"श्रीदेवी, धन्य है तुझे ! गंभीरता से सोचने पर ऐसा प्रतीत होता है कि हमने मृगजल को अमृत सरोवर समझ कर उसके पीछे बहुत उत्साह से दौड़ लगाई थी। संतान तो प्रकृति-सन्देश है। वह अपनी इच्छा से आता है, हमारी चेष्टा से नहीं। हमारी चेष्टा, हमारी कामना तो स्वार्थी है। हम अपने लिए क्या माँग रहे हैं ? वही, जो हमारे लोभ का उत्तराधिकारी बन सके ! आज का विशाल हृदय संतान प्राप्त कर क्षुद्र हो जायगा ! सर्वस्व की इतिश्री संतान में होगी, अनेक का प्रेम एक में समा जायगा ! आज सारा विश्व हमारा घर है, फिर एकमात्र घर ही हमारा विश्व होगा !"

श्रीदेवी ने कुछ भी उत्तर न दिया। वह विचार-मग्न हो गई।

(३)

मध्य रात्रि का अंधकार चन्द्रिका से युद्ध कर रहा था। वापिका के एक कोने में बैठी हुई देवी के आगे सुगन्धित धूप सुवास फैला रहा था। दीपमाला से कोना जगमगा रहा था।

फड़ाक ·····एक श्रीफल फूटा। वापिका के प्रत्येक खण्ड में उसकी प्रतिध्वनि हुई, शांत जल हिलने लगा।

फड़ाक ··· दूसरा श्रीफल फूटा और चारों ओर से वायु के झोंके धूप-दीप को हिलाने लगे।

फड़ाक, फड़ाक, फड़ाक············तीन चार और पाँच—पाँचवाँ श्रीफल फूटा कि वातावरण में एक प्रकार की ध्वनि होने लगी। वापिका का जल धीरे धीरे मानो सीढ़ियाँ चढ़ रहा था।

छठा श्रीफल फूटते ही पानी रंगीन हो गया। वातावरण अपार्थिव बन गया। सातवाँ श्रीफल फूटते ही पंचरंगी चूँदरी हिलाती हुई एक तेज मूर्ति सन्मुख आकर खड़ी हो गई।

श्रीदेवी ने साड़ी रखी। सुवर्ण कंकण से सुशोभित एक कोमल कर द्वारा वह उठा ली गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"श्रीदेवी, विमलशाह ! माँगों, माँगों, तुम्हें क्या चाहिए ? विश्वास रखो कि शक्ति की पूजा व्यर्थ नहीं जाती।"

"विश्वास है, माँ शक्ति, तेरे में !"

"तो उदार हृदय से माँग लो !"

"देवी ! हम अपने में समा जावें, हम जीवन भर निःसंतान रहें, ऐसा वरदान दो।" पुरुष ने कहा।

"क्या कहा ?" फिर प्रश्न हुआ।

"देवी ! संतान की वासना शान्त हो गई। ऐसी शक्ति दो कि पत्थर पर भी पुत्र की ममता हो। बिना वंश के हमारी लता फैले। हमारी सेवा और सुकीर्ति अमरवल्लरी की भाँति फले फूले।" श्रीदेवी ने कहा।

"पुत्री ! भूल तो नहीं रही हो ? फिर सोच लो।"

"सोच लिया, देवी ?"

"वन्ध्या होना दुःखदायी नहीं होगा ?"

"बड़े बड़े तीर्थंकर, संत और चक्रवर्ती दुःखी नहीं हुए तो क्या हम दुःखी होंगे ? पुत्र तो उत्पन्न होता है और मर भी जाता है, भरी गोद क्षण में खाली हो जाती है। पुत्र तो पिता की कीर्ति उज्ज्वल करता है उसी प्रकार कलंकित भी करता है। ऐसे चिरंजीवी से चिरंजीवी होने की अपेक्षा अपनी सेवा और स्वार्पण से ही चिरंजीव होना अच्छा है।"

"तथास्तु !"

हवा का एक झोंका आया। ज्योति विलीन हो गई। अपार्थिव वातावरण पार्थिव बन गया।

स्त्री और पुरुष चन्द्र के प्रकाश में बाहर निकले।

"प्रियतम ! आज फिर से हम यौवनावस्था में प्रविष्ट हो गए। वह निराशा, वह जड़ता, वह नीरसता जीवन से सदा के लिए निकल गई।"

"श्रीदेवी ! अब यह यौवन सदैव अमर रहेगा। अब हम वृद्ध नहीं होंगे, वानप्रस्थ नहीं होंगे। अकर्मण्यता कदापि हमारा पीछा नहीं करेगी। संसार को प्रेमभरी दृष्टि से देखेंगे, प्रेमसरिता से संसार को सिक्त कर देंगे।"

दोनों चंद्र और चन्द्रिका के समान मुसकाते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चरित्र नागरिक ही समाज के दृढ़ स्तम्भ हैं और उनके निर्माण में शिक्षण संस्थाओं का प्रमुख हाथ है—

नैतिक उत्थान और शिक्षण संस्थाएँ—

प्रो० पृथ्वीराज जैन एम०ए०, शास्त्री

हमारे देश में भ्रष्टाचार दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है; कर्तव्यपरायणता केवल कोरा आदर्श रह गया है; रिश्वतखोरी, पक्षपात, स्वार्थसिद्धि, संकुचित मनोवृत्ति, नियमोल्लंघन, अनुशासनहीनता आदि हमारे दैनिक जीवन का अनिवार्य अंग बन चुके हैं —ये बातें हम प्रायः नेताओं के ओजस्वी भाषणों तथा लेखकों के प्रभावशाली लेखों में सुनने और पढ़ने के अभ्यस्त हो चुके हैं। सरकारी विभागों में इन सब बातों का प्रचार, विशेषतः भारत के स्वतंत्र होने के बाद, किस तीव्रता से अधिक होता गया है, इस तथ्य का उन सब व्यक्तियों को यथार्थ अनुभव है जिन्हें कभी सौभाग्यवश या दुर्भाग्य से वहाँ कुछ काम पड़ा है। यदि कभी कोई जनता का सच्चा सेवक अथवा प्रतिनिधि इन बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाता है तो केन्द्रीय सरकार के जिम्मेवार अधिकारी यह उत्तर देते हैं कि संसार के अन्य राष्ट्रों में हमारे यहाँ की अपेक्षा कहीं अधिक भ्रष्टाचार फैला हुआ है। मिथ्या आत्म-सन्तोष अथवा आत्मरक्षा की क्या ही उत्तम युक्ति है।

हमारी शिक्षण संस्थाएँ और विशेषतः विद्यार्थी समाज वर्षों से अशिष्ट-व्यवहार, अनुशासनहीनता और उच्छृंखलता के दोषों का लक्ष्य बने हुए हैं। बालकजन माता-पिता और अध्यापकों का आदर नहीं करते; नम्रता, विनय, सादगी और संयम उनके जीवन से कोसों दूर हैं—ये शिकायतें बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही सुनने में आ रही हैं। गत कुछ वर्षों में वे अपनी चरमसीमा का उल्लंघन कर चुकी हैं। परीक्षा-भवन के निरीक्षकों पर आक्रमण, उनकी हत्या, स्कूलों और कालेजों की इमारतों तथा फर्नीचर को नुक्सान पहुँचाना, किसी समुचित आधार के बिना बात बात पर हड़ताल कर देना, सभाओं में शान्तिभंग करना तथा बहनों के उत्सवों पर धावा बोल देना—इत्यादि ऐसी लज्जास्पद घटनाएँ हमारे कुछ स्कूलों और कालेजों में हुईं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी के प्रसिद्ध पत्र 'हरिजन सेवक' के वर्तमान संपादक श्री मशरूवाला को दो शब्द लिखने के लिए बाध्य होना पड़ा कि "मौजूदा स्कूल और कालेजों से गुरु-शिष्य का परस्पर आदरभाव बिलकुल उठ सा गया है और शिक्षण संस्थाएँ गुण्डों और चरित्रहीनों की ट्रेनिंग के अड्डे बन गई हैं। चरित्रवान्, शांतिप्रेमी, अध्ययनशील विद्यार्थियों के लिए कालेज का वातावरण दिनों दिन ऊबाने वाला बनता जा रहा है; वह विद्यार्थियों के लिए समय, पैसे और शक्ति की बरबादी का कारण बन बैठा है।"

ये शब्द जितने कठोर हैं उतने ही यथार्थ भी। सहृदय लेखक की अन्तर्वेदना इस कटु सत्य को प्रकाशित करने के लिए विवश हुई। हम यह स्वीकार करते हैं कि इस दूषित वातावरण का पूर्ण उत्तरदायित्व अनुभव हीन तथा समुचित शिक्षादीक्षा रहित विद्यार्थियों पर ही नहीं डाला जा सकता। यह विषम परिस्थिति केवल उस दुरवस्था की एक झलक है जो समाज और राष्ट्र के विशाल क्षेत्र में व्याप्त है। जनसाधारण की दरिद्रता, साक्षरता की न्यूनता, शताब्दियों की पराधीनता, जीवन-निर्माण में उपयोगी शिक्षण पद्धति का अभाव तथा शिशु शिक्षा की नितान्त उपेक्षा इस शोचनीय दशा की आधार शिला है। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि शिक्षित होने के कारण अध्यापकों और छात्रों से यह आशा की जाती है कि वे इस विषाक्त वायुमंडल के सुधार का प्रयास करें। शिक्षण संस्थाओं में ही भावी नागरिकों का निर्माण होता है। यदि वे वर्तमान कलुषित प्रवाह से ही प्रभावित रहें और उसे शुद्ध करने का प्रयत्न न करें तो देश के उत्थान की आशा ही नहीं की जा सकती।

स्वतंत्र भारत के अध्यापकों और विद्यार्थियों पर महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा है। उन्हें नीतिविहीन, चरित्रहीन, कर्तव्य विमुख और पतनोन्मुख समाज में शिष्ट, सदाचारी, कर्तव्यपरायण और प्रगतिशील नागरिकों को दीक्षित करने का दुस्साध्य कार्य करना है। किसी भी राष्ट्र का वास्तविक बल उसकी जन संख्या, प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता, धनधान्य की बहुलता अथवा कल कारखानों की व्यापकता में नहीं होता। देश की यथार्थ शक्ति उसके दृढ़ नैतिक सिद्धांत हैं जिनका आचरण करते हुए वहाँ के निवासी जीवन यात्रा में अग्रसर होते हैं। भय, ईर्ष्या, लोभ, स्वार्थसाधना आदि जो जो दोष व्यक्ति में होते हैं वही समूह रूप में राष्ट्र में देखे जाते हैं। अतः राष्ट्र को उन्नत करने के लिए अथवा विश्व में स्थायी शांति व सुखसमृद्धि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापना के लिए हमें पहले व्यक्ति के सुधार की ओर ध्यान देना चाहिए। एक विद्वान् का कथन है "If you want to stop war in the world, stop war in the home."

हमारी शिक्षण-संस्थाएँ राष्ट्र के नैतिक उत्थान में वास्तविक सहायता प्रदान कर सकें, इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए सर्व प्रथम आवश्यकता शिक्षण प्रणाली में आमूल सुधार की है। पाठ्यपुस्तकों की परीक्षा में उत्तीर्ण होना ही हमारा लक्ष्य न हो, प्रत्युत बालकों को ऐसा समर्थ व योग्य बनाने का यत्न किया जाए कि वे स्वयं सब प्रकार की जीवन-परीक्षाओं में सफल हो सकें। इस विषय में यह आवश्यक है कि हम महान् दार्शनिक रस्किन् के इस परामर्श का पालन करें कि "All education must be moral first, intellectual secondarily."

हमारे प्राचीन ऋषियों ने धर्म और शिक्षा का मूल 'विनय' बताया था। आज यह गुण केवल अतीतकाल के गौरव का प्रतीक रह गया है। प्राचीन-काल की गुरुकुल पद्धति जिसके अनुसार गुरु और शिष्य साथ साथ रहते थे, इसके विकास में सहायक थी। वर्तमान स्कूल और कालेजों में गुरु शिष्य का संबंध प्रायः व्यावसायिक ही रह गया है। यूरोप के देशों में गुरुकुल पद्धति के नवीन संस्करण पब्लिक स्कूलों की संख्या बढ़ती जा रही है। भारत में शायद अर्थाभाव के कारण इस ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। किंतु यह निश्चित है कि विनय के आधार पर स्थापित गुरु-शिष्य के स्नेह संबंध व संपर्क हमारे नैतिक उत्थान की दृढ़ नींव बन सकते हैं। छात्रों तथा अध्यापकों को अधिक से अधिक समय तक साथ रहना चाहिए ताकि अध्यापक विद्यार्थियों के जीवन की विविध प्रवृत्तियों में उनके मार्गदर्शक और प्रेरक बन सकें। ट्यूटोरियल ग्रूप, अवकाश के समय भ्रमण, प्रकृतिनिरीक्षण, साधनों के अनुसार ग्रामसेवा तथा जनसेवा के छोटे छोटे कार्यक्रम इस विषय में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

अनुशासन तथा शिष्टाचार की सच्ची शिक्षा केवल भाषणों, उपदेशों अथवा लेखों से नहीं दी जा सकती। जरूरत यह है कि हम ऐसा वातावरण पैदा करें कि विद्यार्थी स्वतः अन्तःप्रेरणा से उन नियमों को समझें और पालन करें। खेलों का समुचित प्रबंध, शिक्षा में उपयोगी साधनों को जुटाने में तत्परता, विविध सभा समितियों का निर्माण और उनका उत्साहपूर्वक संचालन साथ साथ मिलकर बैठने, वाद विवाद अथवा वार्तालाप करने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ाई के अतिरिक्त दूसरी प्रवृत्तियों की ओर भी योग्य ध्यान देने से ऐसा वातावरण बनाया जा सकता है।

यद्यपि हमारी शिक्षण-संस्थाओं के पास इन सब बातों को कार्यान्वित करने के लिए साधनों का अभाव है, तथापि हमें आशा रखनी चाहिए कि वे इस विषय में पूरे उत्साह से काम करेंगी। लक्ष्य को निश्चित कर लेने के बाद धीरे धीरे भी उस ओर अग्रसर होने की सच्ची अभिलाषा हो तो व्यक्ति इष्ट स्थान पर पहुँच ही जाता है। राष्ट्र का नैतिक उत्थान करने में शिक्षण संस्थाएँ ही समर्थ हो सकती हैं अतः उन्हें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

'देव' यह वैराग्य कैसा ?

'देव' यह वैराग्य कैसा ?
भर गया स्वर्णिम 'उटज' में हाय यह नैराश्य कैसा ?
'देव' यह वैराग्य कैसा ?

ज्ञान तुमको हो गया इस जगत की निस्सारता का,
सुता, दारा, स्वजन परिजन हुआ है कोई किसी का ?
सबक समझी मैं तुम्हारा पर हृदय पर वश किसी का ?
चीख चीख पुकारता यह, यह हुआ कल्याण कैसा ?
'देव' यह वैराग्य कैसा ?

ज्ञात होगा पर कभी शुभ धर्म का कुछ मर्म मुझको,
शपथ पूर्वक कह रही हूँ छोड़ दूँगी देव तुमको।
चिर विरह या चिर मिलन बस उसी दिन होगा हमारा
त्याग कर पा सकूँ वह होगा कहो कल्याण कैसा ?
'देव' यह वैराग्य कैसा ?

—श्री कमला जैन 'जीजी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पल्लीवाल गच्छीय शांतिसूरि का समय एवं प्रतिष्ठा—

—श्री अगरचन्द नाहटा

आत्मानंद शताब्दी स्मारक ग्रन्थ में मेरे प्रकाशित 'पल्लीवाल गच्छ पट्टावली' में उल्लिखित शांतिसूरि का समय एवं प्रतिष्ठा लेखों के समय में जो अन्तर पड़ता है उसके संबन्ध में पं० दलसुखमालवणिया के न्यायावतार-वार्त्तिक-वृत्ति की प्रस्तावना में उठाई गई शंका मैंने यथासमय पढ़ी थी और मालवणियाजी को इसके संबन्ध में अपना वक्तव्य भी सूचित कर दिया था। पर 'जैन सत्य प्रकाश' के क्रमांक १७२ में प्रो० हीरालाल कापड़िया ने पुनः उसी शंका को उपस्थित कर प्रकाश डालने के लिए प्रेरणा की है। अतः यहाँ उसके संबन्ध में अपना वक्तव्य आवश्यक समझ कर प्रकाशित किया जाता है।

मुझे उपलब्ध हुई पल्लीवाल गच्छीय पट्टावली सं० १७२८ की लिखित है। इसे प्रकाशित करते समय हमें वर्त्तमान में उपलब्ध पट्टावलियों व इनकी प्रामाणिकता के संबंध में मैंने लिख दिया था कि—

"पहले के जमाने में लिखने की अपेक्षा स्मृति के आधार पर अधिक कार्य होता था। इससे भिन्न भिन्न पट्टावलियों में जिसे जो स्मरण था लिखते गए। अतएव अनेक पाठान्तर और वैषम्य बढ़ते ही चले गए; तो भी श्वेताम्बर समाज के पट्टधर आचार्यों की परम्परा वीरनिर्वाण के लगभग १००० वर्ष तक की नंदीसूत्र व कल्पसूत्र-स्थविरावली में व्यवस्थित रूप से उपलब्ध है। इसके बाद अनेक कारणों से पट्टधर आचार्यों का इतिहास व्यवस्थित न रह सका जिसके फलस्वरूप प्रायः सभी गच्छवालों की पट्टावलियों में मध्यकालीन आचार्यों के जन्म, दीक्षा, पद, प्रतिष्ठा, स्वर्गवास आदि के संवत नहीं पाए जाते। इतना ही नहीं उस समय के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह भी ज्ञात होता है कि असंभव और असंबन्धित—इतिहास विरुद्ध बातों का भी पट्टावलियों में संमिश्रण हो चुका है।

"चन्द्रसूरि के पश्चात् भी आचार्यों का स्वर्गवास संवत इस पट्टावली में लिखा है। यह इस पट्टावली की विशेषता है, पर वे संवत् सशंकित हैं।"

चन्द्रसूरि जी के पश्चात् प्रस्तुत पट्टावली में जिन जिन आचार्यों का नाम और स्वर्गवास संवत् लिखे हैं वे कहाँ तक ठीक हैं, प्रमाणाभाव से इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यानि इसकी परीक्षा के प्रमाणों का नितान्त अभाव है। तब भी परवर्ती जिन जिन आचार्यों के समय संबन्धी जो कुछ प्रमाण मिले हैं उनसे प्रस्तुत पट्टावली में लिखित कई आचार्यों का समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रामाणिक (ग़लत व भ्रमपूर्ण) ज्ञात होता है जिसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

उपर्युक्त वक्तव्य के बाद ही मैंने पट्टावली में दिये हुए आचार्यों का समय जो प्रतिमालेख आदि से भिन्नरूप से ज्ञात होता है, उसके उदाहरण उपस्थित किये हैं जिनमें विवेच्य शांतिसूरि का समय भी है। मैंने लिखा है—

"५१. शांतिसूरि का सं० १४४९ में स्वर्गवास लिखा है पर पट्टावली समुच्चय के पृ० २०५ में सं० १४५८ का इनका प्रतिष्ठित प्रतिमा लेख है।

"५२. यशोदेव सूरि का स्वर्गवास सं० १४८८ लिखा है पर सं० १५०१-५-११ तक की आपकी प्रतिष्ठित मूर्तियों के लेख उपरोक्त दोनों ग्रन्थों में पाये जाते हैं।"

मेरे उपर्युक्त वक्तव्य को यदि ध्यान पूर्वक पढ़ा जाता तो शंका का समाधान स्वयं ही हो जाता और मुझे स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता न रहती। मैंने पट्टावलियों की मध्यकालीन गड़बड़ी पर अपने एक अन्य लेख द्वारा भी प्रकाश डाला था जो कि 'जैन' पु० ३३, अं० २८ में प्रकाशित हुआ था। इस संबन्ध में मेरा मत स्पष्ट है कि वज्रसेन सूरि के शिष्य चन्द्रसूरि के बाद १०-११वीं शताब्दी वाले उद्योतनसूरि जी के २-३ पूर्ववर्ती नामों से पहले तक की पट्ट परम्परा में पट्टधर-अनुक्रमादि में प्रायः गड़बड़ी है। उद्योतनसूरि नामवाले थोड़े वर्षों के अन्तर में ही २–३ आचार्य हो गए हैं, इसी कारण कुछ पट्टावलियों में उनके समय एवं पूर्व परम्परा में भ्रम हुआ है। यह तो हुई खरतर, तपा व आंचल गच्छों की पट्टावलियों की बात। लोंका-गच्छादि की पट्टावलियों में तो भगवान् महावीर से अपना अविच्छिन्न सम्बन्ध प्रमाणित करने के लिए धर्मघोष गच्छ वालों की पट्टावली को बीच में से सम्मिलित कर लिया है पर यह सर्वथा असंगत एवं भ्रमपूर्ण है। उपकेश गच्छ की पट्टावली में भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही अशुद्धियाँ हैं। सभी लिखित पट्टावलियों के १५० वर्ष पूर्व के इतिवृत्त में भी भ्रम हुआ है। उपकेश-गच्छ-प्रबंध में पृथ्वीराज की सभा में हुए शास्त्रार्थ को वीसलदेव के समय का बतलाया है। सम नामवाले ५-७ आचार्यों के नामों की पुनरावृत्ति की परम्परा मुझे तो बहुत कुछ कल्पित सी जान पड़ती है। इसी से ओसवाल वंश स्थापना आदि के समय में भारी गड़बड़ी हुई है। पल्लीवाल गच्छ पट्टावली के संबन्ध में भी मेरा यही अभिमत है।

प्रस्तुत पट्टावली में चंद्रसूरि जी के बाद ही सम नामवाले ७ नामों की पुनरावृत्ति की जो परम्परा चालू कर दी है मुझे वह प्रमाणित नहीं जंचती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी राय में ऐसे नामों की परम्परा चैत्यवास के प्राबल्य के समय की देन है, ज्यादा प्राचीन नहीं है। पल्लीवाल गच्छ स्थापना के समय को ही लें—प्रस्तुत पट्टावली में पल्लीवाल गच्छ नाम की प्रसिद्धि का समय सं० ३९० (३४० ?) लिखा है पर वह सर्वथा कल्पित है। मेरे नम्र मतानुसार इस गच्छ का नामकरण १०-११वीं शताब्दी में हुआ होगा। उस गच्छ की एक अन्य प्राकृत पट्टावली में सं० १४०० के लगभग महेश्वरसूरिजी के द्वारा पल्लीवाल ब्राह्मणों को प्रतिबोध देने के कारण इस गच्छ का नाम पल्लीवाल गच्छ प्रसिद्धि में आया लिखा है। इस पट्टावली की अन्य बातें विशेष विश्वसनीय न होने पर भी संभव है यह ऐतिहासिक संकेत सत्यता के समीप हो।

अब शांतिसूरि के समय संबन्धी मेरा वक्तव्य यह है कि पट्टावली में निर्दिष्ट स्वर्गवास संवत सही नहीं है क्योंकि उनके पट्टधर आचार्य का काल भी प्रतिमालेखों से मेल नहीं खाता। लेखों में उल्लिखित शांतिसूरि पट्टावली वाले से भिन्न हैं, इस कथन का कोई कारण नहीं है क्योंकि पट्टावली के अनुसार सं० १५९५ से पूर्व इस गच्छ की कोई अन्य शाखा हुई नहीं प्रतीत होती। प्राकृत की पट्टावली भिन्नरूप में मिलती है पर उसमें शांतिसूरि का नाम नहीं आता; न अन्य साधनों से अभी तक ऐसा कोई प्रमाण मिला कि पल्लीवाल गच्छ में इस पट्टावली से भिन्न भी कोई शाखा थी। इस हालत में पट्टावली की अपेक्षा समकालीन सामयिक साधन-प्रतिमालेखों का ही सही प्रामाणिक मानना उचित है। मुझे इसी पल्लीवाल पट्टावली का एक अन्य पत्र भी मिला है जिसमें पट्टधरों का एक ही नाम ५ से अधिक वार हैं तथा कहीं कहीं समय व नाम की भी भिन्नता है। अतः इस पट्टावली का आधार सुनी सुनाई बातें एवं यथास्मरण रहा प्रतीत होता है। इसलिए पट्टावली लेखक के २०० वर्ष पहले की घटनाओं के समय में अन्तर व गलती रह जाना अस्वाभाविक नहीं है।

मध्यकालीन जैन इतिहास के संशोधन की बड़ी आवश्यकता है। बड़े बड़े आचार्यों के समयादि के सम्बन्ध में भी अभी निश्चिति नहीं हो पाई। यद्यपि जैन इतिहास के साधन बहुत विपुल हैं पर उनकी शोध, संग्रह व विचारणा करने वाले इतिहास प्रेमी व्यक्तियों का बहुत ही अभाव है। आशा है बनारस का जैन संस्कृति संशोधन मंडल इस सम्बन्ध में विशेष प्रगति कर जैन इतिहास को प्रामाणिक बनाने में प्रयत्नशील होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नभ के घन मन में मँडराम्रो

नभ के घन मन में मँडराओ ।
अन्तर छिपी बाष्प से उठ उठ ।
चिर प्यासे पलकों के झुरमुट—
में अपना रस घोल जलद, छुन छुन छींटे मीठे छिटकाओ ।
नभ के घन मन में मँडराओ ॥

गरज तरज उर धड़कन के संग ।
भावों को प्राणों का दे रंग ॥
साँसों की तूली से छींटे, छिटक स्निग्ध नभ चित्र बनाओ ।
नभ के घन मन में मँडराओ ॥

प्राणों से निर्मित कर बिजली ।
अश्रुधार सी पतली सजली ॥
उर मन्थन कर बुद्बुद के संग रूप लिये जीवन चमकाओ ।
नभ के घन मन में मँडराओ ॥

थिरक थिरक प्रलयंकर नर्तन ।
भीषण झंझावात विवर्तन—
में नव नीर सनी रुनझुन स्पन्दन से मन मानस लहराओ ।
नभ के घन मन में मँडराओ ॥

—नरेन्द्रकुमार भनावत

——:*:——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदाय की दम तोड़ती परम्परा पर जीने वाले अब भी सावधान न होंगे ?

बुझती हुई चिनगारियाँ–

–मुनि श्री सुशीलकुमार शास्त्री

क्रिया और प्रतिक्रिया का संघर्षण जब इतना तीव्र हो उठता है तो प्रतिक्रिया तूफान की तरह प्रचण्ड और दावाग्नि की तरह लपटदार बनकर पनप उठती है उस समय परिस्थिति का सहयोग यदि प्रतिक्रिया को मिल जाय तो दुनिया की कोई ताकत उसे लपेटकर समाप्त नहीं कर सकती।

हमारी साम्प्रदायिक प्रवृत्ति ने उसके विरोध में इतनी उग्र और सशक्त प्रतिक्रिया को जन्म दिया है कि उसके सहस्र चक्रों से निकलने वाले स्फुलिंगों को आज कोई भी विरोधी और प्रतिगामी तत्त्व आच्छन्न करने में एकदम असमर्थ हो गया है।

लाखों मुखों से उच्छ्वसित होकर संमिलन और संगठन का महास्वर इतना अन्तर्व्यापी वज्रघोष की तरह गूँज उठा है कि उसकी महाध्वनि को तथा उसके विराट नाद को तूती की तुनतनी, ढपली की ढप ढप तथा खिचड़ी की खदबद बेकार और अनसुना नहीं बना सकती।

स्थानकवासी जैन समाज में बरसाती नालों की तरह फूट पड़ने वाले सम्प्रदाय, अन्न के लहलहाते खेतों को टिड्डीदल की तरह सफाचट कर देने वाली अन्धश्रद्धाएँ, सीमा में बन्द कर सड़ा देने वाली संकीर्ण वृत्तियाँ, फूट, ईर्ष्या, द्वेष, विरोध, आडम्बर आदि को पैदा करने वाली संक्रामक बीमारियाँ, और कौटुम्बिक परिवार की तरह बढ़ जाने वाली चेले चेलियों की गुरुडम परम्पराएँ इतनी ताकत से कुचल दी गई हैं कि पुनः जीवित होने की संभावना समाप्त सी है।

परिस्थितियों ने ही इन बीमारियों का बेड़ा गरक किया है और आगे के लिए तूफान की तरह बढ़ती हुई संसार की प्रगति ही इस प्रश्न का उत्तर दे रही है कि भविष्य में पराजित हुए सम्प्रदायवादी भी सिर उठा सकेंगे कि नहीं।

पश्चिम की तरफ मुँह उठा कर देखो तो मालूम होगा कि विनाश के विकराल शस्त्रों का भण्डार यूरोप की जनता की शक्ति के आगे किस तरह घुटने टेके खड़ा है। दुनिया भर का मतभेद होने पर भी एशिया की इतनी मजाल नहीं पड़ी कि वह यू०एन०ओ० की महाशक्ति को ठुकरा कर चेतावनी दे सके।

कल मिस्र का बादशाह मिस्र और सूडान का शाह बनने के स्वप्न ले रहा था किन्तु एकदम आज ही एक ऐसा विकट परिस्थिति की झंझा का धक्का लगता है कि वह अपनी जनता, अपनी सेना और अपनी सरकार द्वारा निर्वासित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया जाता है, उसको रहने के लिए भी सारे मिस्र भर में कोई स्थान नहीं मिलता, अमेरिका की शरण में प्राण छिपा कर अपने छ मास के बच्चे की रक्षा करने के लिए सिसक सिसक कर जिन्दगी बिताता है।

यह हैं परिस्थिति के बदलते हुए चमत्कार। परिस्थिति जीवन में एक ओर उमँग भर देती है और दूसरी ओर उसके विरोध में पैर रखने वालों की जान नोच लिया करती है।

सम्प्रदाय की दम तोड़ती परम्परा पर जीने वालो! एकाकी उच्छृंखल और उद्दण्ड शासन की भूख मिटाने वालो! अपने नीचे की जमीन में कोटि कोटि महाक्रान्ति के संघात से उठने वाले भूकम्प को देखो। कुछ ही क्षणों में यह व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं पर खड़ी हुई संकीर्ण अट्टालिकाएँ भस्मसात् हो जाने वाली हैं। अगर अब भी बचना चाहते हो तो इन साम्प्रदायिक दीवारों को फाँद जाओ, सुनहली उषा में आकाश और मेदिनी की तरह विराट् मैदान में उतर आओ। देखो, तुम्हारे हाथ में अब भी प्रत्यंचा पर चढ़ा हुआ तीर है। जिधर चाहो उधर चला सकते हो। अगर इच्छा हो तो घेरों की छाती में छोड़ कर असीम विमुक्त और आनन्द की साँस ले सकते हो।

अतीत को भूल जाओ, आज वर्तमान है, भूत का अस्तित्व नहीं। उसमें जितने भी पाप पुण्य उभरे थे वे सब आज कहानी का विषय बन गए हैं। उनका नाम निशान भी नहीं रहा।

फूल भी एक दिन अपना सौरभ विमुक्त हाथों से लुटा कर धूल में मिल जायगा और काँटा भी दर्द की अमर परम्परा छोड़ कर मिट्टी की गोद में चिरविलीन हो जायगा। न फूल रहेगा न ही काँटा किन्तु काँटे का दर्द और पुष्प की सुरभि दोनों अमर हैं। इसीलिए भ्रमर लाख बार काँटे की टक्कर लेकर भी फूल का दोस्त ही बनना चाहता है और फूल भी अपना दिल बिंधवा गले का हार बन जाता है लेकिन सुगन्धि को संवरण करना नहीं जानता।

एक पुष्प की सुगन्ध किंचित् होती है और हजार पुष्पों की सुगन्ध समूचे वातावरण को ही महकदार बना देती है। एक फूल चाहे कि मैं ही गंदगी धो दूं तो यह भावना तो बुरी नहीं है किन्तु उसे अपने भाइयों के साथ भी सरलता से कार्य करने में क्या अड़चन होनी चाहिए? आखिर सब फूल हैं। उनकी जिन्दगी और मौत एक दूसरे के साथ सम्बद्ध है।

भूल जाओ फूल! व्यक्तिगत कल्पना पर निर्माण की गई मानापमान की दीवारों को!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूल जाओ फूल ! अतीत की सतह में डूबी हुई जीतहार की प्रतिस्पर्धाओं को!

तुम फूल हो, काँटे नहीं। उत्सर्ग के मार्ग को भूलो नहीं, इसी उत्सर्ग के कारण तुम्हें इतना अमर यश मिला है, इसको धूल में मत मिलाओ।

समाज की प्रगति में चट्टान की तरह बाधक बनने वालों का संगठन तृण की तरह उड़ा दिया जायगा। अब केवल एक ही ओर ध्यान देकर निर्णय कर लो कि आज स्थानकवासी समाज के एक एक साधु की ध्वनि उसके अपने कण्ठ की नहीं रही, अपितु अष्ट लक्ष कण्ठों की ध्वनि से लक्षगुणित होकर ध्वनित हो रही है।

आज प्रत्येक साधु श्रमणसंघ के जीवन से इस तरह गुँथ गया है कि उसे कोई अलग कर नहीं सकता और उससे अलग हुए को कोई बचा नहीं सकता।

आज के श्रमणसंघ के आचार्य और उपाचार्य पुरातनवादी अपनी सम्प्रदाय की नाक को ऊँचा रखने वाले नहीं बल्कि दो सहस्र साधु-सतियों के और समूचे स्थानकवासी समाज के प्रतिनिधि हैं।

उनकी एक एक साँस समाज के लिए है। यह संकीर्ण मनोवृत्ति को नष्ट कर नवल चेतना का संचार करने के लिए है।

आज प्रत्येक श्रावक एक आचार्य की छत्र छाया में अनुशासित स्वयं सेवक की तरह भगवान् महावीर का सैनिक है, सम्प्रदायवाद का पोषक नहीं।

वह इस श्रमणसंघ के प्रत्येक साधु-सती का भाई है, शिष्य है, पिता है, पुत्र है किन्तु सौत की तरह विरोधी नहीं।

उठो और इन लपटदार सुलगती हुई चिनगारियों पर संगठन का इतना धुआधार वर्षण करो कि ये सुलग न सकें। मिले हुए दिलों में, गठी हुई समाज में, प्रगतिशील मानस में और गुँथी हुई दुनिया में फिर कभी विध्वंस, विद्वेष और विवाद पैदा ही न हों। सदा के लिए आपसी फूट का, व्यावहारिक झूठ का तथा अनैतिक लूट का सत्यानाश ही हो जाय।

याद रखो, तुम्हारी वे पुरानी आदतें, सम्प्रदाय वाद के कारण मिली हुई हुकूमतें तथा साधक पर भी शासन करने की प्रवृत्ति अब और नहीं चल सकतीं। आचार्य का ही एकमात्र शासन चलेगा, गृहस्थों का मायाजाल नहीं।

यह भी ठीक है कि इन दोनों पहियों ने ही धर्मरूपी रथ को आगे बढ़ाना है, दूध और पानी की तरह प्रेम प्रदर्शित करना है लेकिन पानी को दूध बनकर रहना होगा। नहीं तो पानी पानी रह जायगा दूध नहीं बन सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सत्कार

समय के प्रवाह में

लेखक—श्री 'प्रवाही', प्रकाशक—प्रदीप प्रकाशन, ४२४, रविवार पेठ, पूना २, मूल्य—आठ आने

प्रस्तुत पुस्तिका 'प्रदीप प्रकाशन' की द्वितीय चिनगारी है। प्रथम चिनगारी 'जैन दीक्षा और वर्तमान अवस्था' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है। इस चिनगारी के लेखक मुनि श्री श्रीमल जी थे। 'समय के प्रवाह में' के लेखक का नाम क्या है, यह नहीं कहा जा सकता। लेखक ने अपना नाम प्रवाह से सम्बन्ध जोड़ते हुए 'प्रवाही' ही दिया है। प्रकाशक के निवेदन को पढ़ने से यह मालूम होता है कि 'प्रवाही' एक जैन श्रमण हैं। उनकी लेखनी से श्रमणों की वास्तविक दशा का चित्र खींचा जाय और वह हम लोगों को पढ़ने को मिले, यह बड़ी अच्छी बात है। इस प्रकार के यथार्थवादी श्रमणों की समाज को आवश्यकता है इसमें कोई सन्देह नहीं। अच्छा होता लेखक अपना ठीक नाम प्रकट करते। पुस्तिका जैन श्रमणों की आज की हालत का सही चित्र उपस्थित करती है। लेखक ने कहीं कहीं मीठी चुटकियाँ ली हैं जो पुस्तिका में रसका संचार कर देती हैं। 'शिष्यलोभ' का उल्लेख करते हुए लेखक ने कितनी मजे की बात लिखी है यह देखिए—'व्यापारी को जिस तरह हर रोज की कुछ नयी कमाई, नया उत्पन्न न हो तो चैन नहीं पड़ती उसी प्रकार इन साधुओं को भी, धर्मद्रोही—शासनद्रोही साधुओं को भी हर चातुर्मास में नये नये तरीकों से रुपयों की आमदनी की फिक्र रहती है। धर्मोत्सव, लोचोत्सव, पुस्तक-प्रकाशन, संस्था-स्थापन आदि अनेक अड़ंगे खड़े कर श्रावकों के रुपयों का शोषण किए बगैर उन्हें चैन नहीं पड़ती। इन सबका कारण गुरुओं का शिष्य-लोभ ही है। सच्चे स्वयंप्रेरित वैराग्यशील क्या हरदम थोड़े ही तैयार रहते हैं कि जिसे पकड़ लिया और पहना दिया साधु-वेष ?·····ऐसी अवस्था में हमारे गुरुदेव अपनी भूख अनाथालय से खरीदे दीक्षार्थियों से मिटा लेते हैं।' (पृ० १६) इसी प्रकार के कई वाक्य हैं जिनमें वास्तविकता का व्यङ्ग भरा वर्णन है। पुस्तिका आँखें खोलने वाली है। 'प्रदीप प्रकाशन' के कार्यकर्ताओं को बधाई।

जिनवाणी

मूल लेखक—डॉ० हरिसत्य भट्टाचार्य एम० ए०, बी० एल०, पीएच० डी०, गुजराती अनुवादक—श्री सुशील, हिन्दी अनुवादक—वैद्य श्री गोपीनाथ गुप्त, प्रकाशक—श्री चारित्र स्मारक ग्रंथमाला, अहमदाबाद, मूल्य—२॥) रु०

प्रस्तुत पुस्तक डॉ० हरिसत्य भट्टाचार्य के जैन दर्शन सम्बन्धी कतिपय लेखों का संग्रह है। मूललेख बंगला में लिखे गए थे जिनका गुजराती अनुवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सुशील ने किया था और उन लेखों का प्रकाशन 'जिनवाणी' नामक पुस्तक के रूप में बहुत पहले हो चुका था। यह ग्रन्थ उन्हीं लेखों का हिन्दी अनुवाद है। श्री भट्टाचार्य जैन दर्शन के अच्छे पण्डित हैं इसमें कोई संशय नहीं। जन्म और वातावरण से जैन न होते हुए भी उन्होंने जैन तत्त्व विचार का यथार्थ परिचय प्राप्त किया है। उनके लेखों को देखने से यह प्रतीत होता है कि उन्हें जैन विचारसरणी का वास्तविक ज्ञान है। साथ ही यह और भी महत्त्व की बात है कि उन्होंने जैन साहित्य का अध्ययन अपने खुद के अध्यवसाय से किया है। पुस्तक की भूमिका पं० श्री सुखलालजी ने लिखी है। भूमिका का उत्तर भाग बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें कई ऐसी बातों की चर्चा व निर्देश है जिनका विचार करना जैन साहित्य व संस्कृति के विकास के लिए आवश्यक है। ग्रन्थ में विविध विषयों पर आठ निबन्ध हैं। इनमें कुछ शुद्ध दार्शनिक हैं और कुछ ऐतिहासिक व पारम्परिक। पुस्तक जैन विचारसरणी के साधारण अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

—मोहन लाल मेहता

दो मासिक पत्रिकाएँ

स्वर्गीय कुशवाहा 'कान्त' की स्मृति **'चिनगारी'** को जीवित रखने के लिए उसके सम्पादकों ने उसे अब जो रूप दिया है उससे हम काफी सन्तुष्ट हैं। प्रस्तुत 'रिमझिम अंक' की सरस कविताओं, सुन्दर कहानियों एवं अध्ययनपूर्ण, ज्ञानवर्धक, आलोचनात्मक लेखों को देखते हुए इसका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। हमें आशा है कि यह निकट भविष्य में शीघ्र ही साहित्यिक पत्रिकाओं की श्रेणी में अपना स्थान बना लेगी। वार्षिक मूल्य ६) में चिनगारी प्रकाशन, बनारस से प्राप्त की जा सकेगी।

अंग्रेजी के 'रीडर्स डाइजेस्ट' के समान पत्रों का हिन्दी में अभाव ही कहा जा सकता है। आगरा से निकलने वाला **'गुलदस्ता'** बहुत कुछ अंशों में इस अभाव की पूर्ति कर रहा है। लेखों का चयन देखते हुए इसे कौतुकागार कहना अनुचित न होगा। विभिन्न भाषाओं की पत्र पत्रिकाओं से जीवन की सभी दिशाओं पर प्रकाश डालने वाले सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण लेखों का संकलन इसकी विशेषता है। वार्षिक मूल्य १०) व प्राप्तिस्थान ३९३८ पीपल मंडी, आगरा है।

—महेन्द्र 'राजा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०७७९८४१

विद्याश्रम-समाचार

पर्युषण पर्व

बनारस शहर के सभी सम्प्रदायों के जैन बन्धुओं ने पर्युषण पर्व बड़े उत्साह व प्रेम से मनाए। इस साल यहाँ चातुर्मास श्री प्रभाविजय जी महाराज आदि तीन मुनियों का है। श्री मन्नूभाई पटेल के अदम्य उत्साह से जैन पाठशाला के विद्यार्थियों व बच्चों ने प्रभात फेरी करके पर्युषण पर्व का पवित्र संदेश पहुँचाया। २४ अगस्त को जैन स्थानक में बच्चों का अपना कार्यक्रम था, जिसमें कई तरह के मनोरंजक व शिक्षाप्रद अभिनय किये गए। इनमें भी श्री मन्नूभाई का बड़ा हाथ था। श्री मोहनलाल भाई व श्री जगजीवन भाई आदि कुछ प्रतिष्ठित सज्जन पर्युषण के दिनों में कलकत्ता गए थे। वहाँ के श्री संघ ने इनका बड़ा सम्मान किया। बनारस में धर्मस्थान बनाने के लिए १५-२० हजार रुपया भी दिया। इस वर्ष कलकत्ता में पूज्य मुनि श्री जगजीवन जी व मुनि श्री जयन्ती लाल जी महाराज का चातुर्मास होने से सब में खूब उत्साह व प्रेम है। ब्यावर जैन गुरुकुल के लिए भी १०-१२ हजार रुपया इकट्ठा हुआ। श्री धीरजभाई आदि पहुँचे थे। आशा है बनारस शहर के जैनबन्धु धर्म स्थान बनाने के लिए पूरे उत्साह से काम लेंगे। वे स्वयं भी इस के लिए पहले से ही कुछ रुपया इकट्ठा कर चुके हैं।

विद्याश्रम वासियों ने भी पर्युषण पर्व को विधि पूर्वक मनाया। सामायिक प्रतिक्रमण आदि होते रहे। धार्मिक नियमों का विशेष रूप से पालन किया। संवत्सरी वाले दिन विद्यार्थिओं और विद्वानों ने मिलकर प्रतिक्रमण किया। कुछ प्रवचन भी हुए। अन्त में सब ने क्षमायाचना की।

राजस्थान आदि का दौरा

अमृतसर से ला० हरजसराय जैन, मंत्री–श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, लिखते हैं कि इस वर्ष अक्तूबर के प्रारंभ में समिति की ओर से एक डेपुटेशन बीकानेर, भीनासर, जोधपुर, पालनपुर, ब्यावर, अजमेर, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, नाथद्वारा, रतलाम, इंदौर वगैरह स्थानों में जायगा। जिसका प्रयोजन है समिति की ओर से बनारस में चल रहे श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय आदि कई तरह की प्रेरक प्रवृत्तियों का जैन समाज को परिचय देना और यह बतलाना कि आज हमारी समाज के उत्थान के लिए किन किन बातों की जरूरत है। उक्त स्थानों में विराजमान श्रमण संघ के मुनियों की उपस्थिति हमारे लिए विशेष आकर्षण का कारण भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर बनारस में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम का कार्यक्षेत्र दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। जैन दर्शन का अभ्यास करने वाले विद्यार्थिओं के अलावा करीब चार पाँच साल से विद्याश्रम ने रिसर्च विभाग शुरू करके बहुत बड़ा बोझ अपने ऊपर ले लिया है। जिसके लिए बम्बई के श्री जैन संघ और कलकत्ता के सिंघी भाइयों ने शुरू से ही हमारा हाथ बँटाया है। आज हमें संतोष है कि थोड़े से समय में ही विद्याश्रम ने अच्छी सफलता पा ली है। रिसर्च स्कालरों ने अपने आपको योग्य व समर्थ सिद्ध किया है। फलस्वरूप पं० इन्द्रचन्द्र जी शास्त्री एम० ए० ने अपना पी० एच० डी० का महानिबंध बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को गत मार्च मास में ही उपस्थित कर दिया था। इधर श्री गुलाब चन्द्र जी चौधरी एम० ए०, व्याकरणाचार्य भी अपना थीसिस इसी अक्तूबर तक उपस्थित करने वाले हैं। दूसरे विद्वान भी अपने अपने विषयों में आगे बढ़ रहे हैं। विद्याश्रम के वर्षों के पुराने विद्यार्थी श्री मोहन लाल मेहता ने एम० ए० करके जैनदर्शन में रिसर्च का काम शुरू कर दिया है। साथ में इसी वर्ष जैनदर्शनाचार्य भी कर लेंगे।

शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय भी बढ़ रहा है। जिसके लिए विशाल भवन बनाने की बड़ी आवश्यकता अनुभव हो रही है। सबसे पहले हमें जमीन खरीदनी है। इसके लिए पूरा प्रयत्न हो रहा है। ज़मीन के लिए एक ही दानी महाशय ने १५-२० हजार रुपये का वायदा देकर हमारा उत्साह बढ़ाया है।

पूज्य काशी[illegible] स्मारक फन्ड को भी बढ़ाने की जरूरत है। इसी फन्ड में से जैनदर्शन शास्त्री व आचार्य के विद्यार्थिओं को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। इस साल जितने विद्यार्थी आए हैं, सबको छात्रवृत्ति देने में हमें कठिनाई हो रही है।

मासिक 'श्रमण' भी प्रगति कर रहा है। उसका अपना स्थान बनता जा रहा है। अच्छे अच्छे विद्वान् भी इस की रीति-नीति व विचारों को काफ़ी पसंद करते हैं।

उपरोक्त सभी कामों को चालू रखने व आगे बढ़ाने के लिए जैन समाज के सहयोग की कितनी आवश्यकता है यह बात कहने-सुनने की नहीं रही। सबको इसकी चिन्ता करनी है। हम भी तभी कुछ कर सकेंगे। विद्याश्रम की रिसर्च विभाग आदि एक दो प्रवृत्तियाँ तो ऐसी है, जो सारे जैन समाज को नई प्रेरणा व नया प्रकाश देने वाली हैं।

—कृष्णचन्द्राचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस

जोकि

श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर की ओर से निम्नलिखित प्रवृत्तियों द्वारा समाज तथा संस्कृति की सेवा कर रहा है :—

(१) **रिसर्च विभाग**—पं० इन्द्रचन्द्र जी शास्त्री, एम० ए०, वेदान्ताचार्य ने 'रतनचन्द मेमोरियल स्कालर' के रूप में लगभग चार साल तक विद्याश्रम में रहकर रिसर्च कार्य किया है। जैन ज्ञानवाद (Jaina Epistemology) पर महानिबन्ध तैयार करके बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को गत मार्च मास में उपस्थित कर चुके हैं। श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम० ए०, व्याकरणाचार्य अपना थीसिस इसी अक्तूबर तक उपस्थित कर देंगे। श्री मोहनलाल मेहता ने एम० ए० करने के बाद रिसर्च का काम शुरू कर दिया है। इनके अलावा और भी दो विद्वान् इसी काम में लगे हुए हैं।

(२) **कालेज विभाग**—सन् १९५२ के अप्रैल में तीन विद्यार्थियों ने जैन दर्शन शास्त्री के द्वितीय खण्ड और दो विद्यार्थियों ने प्रथम खण्ड की परीक्षा देकर सफलता प्राप्त की थी। इस वर्ष ७ विद्यार्थी आए हैं।

(३) **शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय एवं वाचनालय**—पुस्तकालय में लगभग ४६०० के चुनी हुई पुस्तकें हैं। रिसर्च के विद्यार्थी तथा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर इससे काफी लाभ उठाते हैं। साथ ही वाचनालय है जिनमें लगभग ६०-७० पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं।

(४) **श्रमण**—श्रमण-संस्कृति का उज्ज्वल संदेश घर घर पहुँचाने वाला मासिक पत्र है। पुरानी रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों एवं सांप्रदायिक अभिनिवेशों से ऊपर उठकर यह समाज को शुद्ध व सात्त्विक विचार दे रहा है। अच्छे अच्छे विद्वानों ने भी इसकी सराहना की है।

विद्याश्रम की इन प्रवृत्तियों में सहयोगी बनने के लिए हम आप को आमन्त्रित करते हैं।

निवेदक—**हरजसराय जैन**

मंत्री, **श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर**

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri